महावीर-वाणी, भाग 2

प्रवचन-क्रम

1. समय और मृत्यु का अंतर्बोध (अप्रमाद-सूत्रः 1)...............................3
2. अलिप्तता और अनासक्ति का भाव-बोध (अप्रमाद-सूत्रः 2)...................21
3. एक ही नियमः होश (प्रमाद-स्थान-सूत्रः 1).......................................37
4. सारा खेल काम-वासना का (प्रमाद-स्थान-सूत्रः 2)............................53
5. ये चार शत्रु (कषाय-सूत्र)...71
6. अकेले ही है भोगना (अशरण-सूत्र)..90
7. यह निःश्रेयस का मार्ग है (पंडित-सूत्र)......................................107
8. आप ही हैं अपने परम मित्र (आत्म-सूत्र: 1)....................................126
9. साधना का सूत्र: संयम (आत्म-सूत्र: 2)..142 10.......................................विकास की ओर गति है धर्म (लोकतत्व-सूत्रः 1)
.... 158
11......................................आत्मा का लक्षण है ज्ञान (लोकतत्व-सूत्रः 2)
.... 178
12...मुमुक्षा के चार बीज (लोकतत्व-सूत्रः 3)
.... 200
13...पांच ज्ञान और आठ कर्म (लोकतत्व-सूत्र: 4)
.... 217
14.......................छह लेश्याएं: चेतना में उठी लहरें (लोकतत्व-सूत्रः 5)
.... 243
15.........................पांच समितियां और तीन गुप्तियां (लोकतत्व-सूत्रः 6)
.... 260
16..कौन है पूज्य? (पूज्य-सूत्र)
.... 279
17...................राग, द्वेष, भय से रहित है ब्राह्मण (ब्राह्मण-सूत्रः 1)
.... 300
18..................................अलिप्तता है ब्राह्मणत्व (ब्राह्मण-सूत्रः 2)
.... 318
19........................वर्णभेद जन्म से नहीं, चर्या से (ब्राह्मण-सूत्रः 3)
.... 340
20.........................भिक्षु की यात्रा अंतर्यात्रा है (भिक्षु-सूत्रः 1)
.... 357
21....................................अस्पर्शित, अकंप है भिक्षु (भिक्षु-सूत्रः 2)
.... 375
22..भिक्षु कौन? (भिक्षु-सूत्रः 3)
.... 392

23...................................कल्याण-पथ पर खड़ा है भिक्षु (भिक्षु-सूत्रः 4) 411

24.................................पहले ज्ञान, बाद में दया (मोक्षमार्ग-सूत्रः 1) 433

25.......................संयम है संतुलन की परम-अवस्था (मोक्षमार्ग-सूत्रः 2) 453

26.......................अंतस-बाह्य संबंधों से मुक्ति (मोक्षमार्ग-सूत्रः 3) 474

27....................संन्यास प्रारंभ है, सिद्धि अंत (मोक्षमार्ग-सूत्रः 4) 491

2

महावीर-वाणी, भाग 2
पहला प्रवचन

समय और मृत्यु का अंतर्बोध (अप्रमाद-सूत्रः 1)

सुत्तेसु यावी पडिबुद्धजीवी,
न वीससे पंडिए आसुपन्ने।
घोरा मुहुत्ता अवलं शरीरं,
भारुंडपक्खी व चरप्पमत्ते।।

आशुप्रज्ञ पंडित पुरुष को मोह-निद्रा में सोए हुए संसारी मनुष्यों
के बीच रह कर भी सब तरह से जागरूक रहना चाहिए और किसी का विश्वास नहीं करना चाहिए।
काल निर्दयी है और शरीर दुर्बल, यह जान कर भारंड पक्षी की तरह अप्रमत्त-भाव से विचरना चाहिए।

पहले कुछ प्रश्न।
एक मित्र ने पूछा हैः "मनुष्य जीवन है दुर्लभ, लेकिन हम आदमियों को उस दुर्लभता का बोध क्यों नहीं होता? श्रवण करने की कला क्या है? कलियुग, सतयुग मनोस्थितियों के नाम हैं? क्या बुद्धत्व को भी हम एक मनोस्थिति ही समझें?"

जो मिला हुआ है, उसका बोध नहीं होता। जो नहीं मिला है, उसकी वासना होती है, इसलिए बोध होता है।
दांत आपका एक टूट जाए, तो ही पता चलता है कि था। फिर जीभ चौबीस घंटे वहीं-वहीं जाती है। दांत था तो कभी नहीं गई थी; अब नहीं है, खाली जगह है तो जाती है।
जिसका अभाव हो जाता है, उसका हमें पता चलता है। जिसकी मौजूदगी होती है, उसका हमें पता नहीं चलता। मौजूदगी के हम आदी हो जाते हैं।
हृदय धड़कता है, पता नहीं चलता, श्वास चलती है, पता नहीं चलता। श्वास में कोई अड़चन आ जाए तो पता चलता है, हृदय रुग्ण हो जाए तो पता चलता है। हमें पता ही उस बात का चलता है जहां कोई वेदना, कोई दुख, कोई अभाव पैदा हो जाए। मनुष्यत्व का भी पता चलता है, हम आदमी थे, इसका भी पता चलता है जब आदमियत खो जाती है हमारी, मौत छीन लेती है हमसे। जब अवसर खो जाता है, तब हमें पता चलता है।
इसलिए मौत की पीड़ा वस्तुतः मौत की पीड़ा नहीं है, बल्कि जो अवसर खो गया, उसकी पीड़ा है। अगर हम मरे आदमी से पूछ सकें कि अब तेरी पीड़ा क्या है तो वह यह नहीं कहेगा कि मैं मर गया, यह मेरी पीड़ा है। वह कहेगा, जीवन मेरे पास था और यों ही खो गया, यह मेरी पीड़ा है।
हमें पता ही तब चलता है जीवन का, जब मौत आ जाती है। इस विरोधाभास को ठीक से समझ लें।
आप किसी को प्रेम करते हैं। उसका आपको पता ही नहीं चलता, जब तक कि वह
खो न जाए। आपके पास हाथ है, उसका पता नहीं चलता, कल टूट जाए तो पता चलता है। जो मौजूद है, हम उसके प्रति विस्मृत हो जाते हैं। खो जाए, न हो, तो हमें याद आती है। यही कारण है कि हम आदमी की तरह पैदा होते हैं तो हमें पता नहीं चलता कि कितना बड़ा अवसर हमारे हाथ में है। मछलियों को, कहते हैं, सागर का पता नहीं चलता। मछली को सागर के बाहर डाल दें रेत पर, तड़फे, तब उसे पता चलता है। जहां वह थी वह सागर था, जीवन था; जहां अब वह है, वहां मौत है।
जिस मछली को सागर में पता चल जाए, वह संतत्व को उपलब्ध हो गई कि सागर है। जिस आदमी को आदमियत खोए बिना, अवसर खोए बिना, पता चल जाए, उसके जीवन में क्रांति घटनी शुरू हो जाती है। महावीर हैं, बुद्ध हैं, कृष्ण हैं--उनकी सारी चेष्टा यही है कि हमें पता चल जाए तभी, जब कि अवसर शेष है। तो शायद हम अवसर का उपयोग कर लें। तो शायद अवसर को हम स्वर्णिम बना लें। शायद अवसर हमारे जीवन को और वृहत्तर परम जीवन में ले जाने का मार्ग बन जाए। अगर पता

भी उस दिन चला जब हाथ से सब छूट चुकता है तो उस पता चलने की कोई सार्थकता नहीं है, मगर यह मन का नियम है, मन को अभाव का पता चलता है।
गरीब आदमी को पता चलता है धन का, अमीर आदमी को धन का पता नहीं चलता। जो नहीं है हमारे पास वह दिखाई पड़ता है, जो है वह हम भूल जाते हैं।
इसलिए जो-जो आपको मिलता चला जाता है, आप भूलते चले जाते हैं और जो नहीं मिला होता, उस पर आंख अटकी रहती है। यह सामान्य मन का लक्षण है। इस लक्षण को बदल लेना साधना है। जो है, उसका पता चले तो बड़ी क्रांति घटित होती है। अगर जो नहीं है, उसका पता चले तो आपके जीवन में सिर्फ असंतोष के अतिरिक्त कुछ भी न होगा। जो है, उसका पता चले तो जीवन में परम तृप्ति छा जाएगी। जो नहीं है, उसका ही पता चले तो अक्सर अवसर जब खो जाएगा तब आपको पता चलेगा। जो है, उसका पता चले तो जो अवसर अभी मौजूद है, उसका आपको पता चलेगा; और अवसर आने के पहले, अवसर आते ही बोध हो जाए, तो हम अवसर को जी लेते हैं, अन्यथा चूक जाते हैं।
इसलिए ध्यान, जो है, उसको देखने की कला है। और मन, जो नहीं है, उसकी वासना करने की विधि है।
श्रवण करने की कला क्या है? सुनने की कला क्या है? निश्चित ही कला है,
और महावीर ने कहा है, धर्म-श्रवण, दुर्लभ चार चीजों में एक है। तो बहुत सोच कर कहा है। श्रवण की कला--सुनते तो हम सब हैं। कला की क्या बात है? हम तो पैदा ही होते हैं कान लिए हुए, सुनना हमें आता ही है।
नहीं, लेकिन हम सुनते नहीं हैं, सुनने के लिए कुछ अनिवार्य शर्तें हैं। पहली--जब आप सुन रहे हों तब आपके भीतर विचार न हों। अगर विचार की भीड़ भीतर है तो आप सुनेंगे वह वही नहीं होगा, जो कहा गया है। आपके विचार उसे बदल देंगे, रूपांतरित कर देंगे। उसकी शक्ल और हो जाएगी। विचार हट जाने चाहिए बीच से। मन खाली हो, शून्य हो और सुने, तभी जो कहा गया है, वह आप सुनेंगे। इसका यह अर्थ नहीं है कि आप उस पर विचार न करें। लेकिन विचार तो सुनने के बाद ही हो सकता है। सुनने के साथ ही विचार नहीं हो सकता। जो सुनने के साथ ही विचार कर रहा है वह विचार ही कर रहा है, सुन नहीं रहा है।
सुनते समय सुनें, सुन लें पूरा, समझ लें क्या कहा गया है, फिर खूब विचार कर लें। लेकिन विचार और सुनने को जो साथ में मिश्रित कर देता है, वह बहरा हो जाता है। वह फिर अपने ही विचारों की प्रतिध्वनि सुनता है। फिर वह नहीं सुनता जो कहा गया है, वही सुन लेता है, जो उसके विचार उसे सुनने देते हैं।
अपने को अलग कर देना सुनने की कला है। जब सुन रहे हैं, तब सिर्फ सुनें।
और जब विचार रहे हैं, तो सिर्फ विचारें। एक क्रिया को एक समय में करना ही उस क्रिया को शुद्ध करने कि विधि है। लेकिन हम हजार काम एक साथ करते रहते हैं। अगर मैं आपसे कुछ कह रहा हूं तो आप उसे सुन भी रहे हैं, आप उस पर सोच भी रहे हैं, उस संबंध में आपने जो पहले सुना है, उसके साथ तुलना भी कर रहे हैं। अगर आपको नहीं जंच रहा है, तो विरोध भी कर रहे हैं; अगर जंच रहा है, तो प्रशंसा भी कर रहे हैं। यह सब साथ चल रहा है। इतनी पर्तें अगर साथ चल रही हैं तो आप सुनने से चूक जाएंगे। फिर आपको राइट लिसनिंग, सम्यक श्रवण की कला नहीं आती।
महावीर ने तो श्रवण की कला को इतना मूल्य दिया है कि अपने चार घाटों में, जिनसे व्यक्ति मोक्ष तक पहुंच सकता है, श्रावक को भी एक घाट कहा है। जो सुनना जानता है, उसे श्रावक कहा है। महावीर ने तो कहा है कि अगर कोई ठीक से सुन भी ले तो भी उस पार पहुंच जाएगा। क्योंकि सत्य अगर भीतर चला जाए तो फिर आप उससे बच नहीं सकते। सत्य अगर भीतर चला जाए तो वह काम करेगा ही। अगर उससे बचना है तो उसे भीतर ही मत जाने देना, तो सुनने में ही बाधा डाल देना। उसी समय अड़चन खड़ी कर देना। एक बार सत्य की किरण भीतर पहुंच जाए तो वह काम करेगी, फिर आप कुछ कर न पाएंगे।
इसलिए महावीर ने कहा है कि अगर कोई ठीक से सुन भी ले, तो भी पार हो सकता है। हमको हैरानी लगेगी कि ठीक से सुनने से कोई कैसे पार हो सकता है!
जीसस ने भी कहा है कि सत्य मुक्त करता है। अगर जान लिया जाए, तो फिर आप वही

नहीं हो सकते जो आप उसके जानने के पहले थे। क्योंकि सत्य को जान लेना, सुन लेना भी, आपके भीतर एक नई घटना बन जाती है। फिर सारा पर्सपैक्टिव, सारा परिप्रेक्ष्य बदल जाता है। फिर उस सत्य का जुड़ गया आपसे संबंध, अब आप देखेंगे और ढंग से, उठेंगे और ढंग से। अब आप कुछ भी करेंगे, वह सत्य आपके साथ होगा। अब उससे बच कर भागने का कोई उपाय नहीं है।
इसलिए जो कुशल हैं भागने में, बचने में, वे सुनते ही नहीं। हमने सुना
है कि लोग अपने कान बंद कर लेते हैं, विपरीत बात सुनाई न पड़ जाए, प्रतिकूल बात सुनाई न पड़ जाए। हाथों से कान बंद करने वाले मूढ़ तो बहुत कम हैं, लेकिन हम ज्यादा कुशल हैं। हम भी कान बंद रखते हैं। हाथों से नहीं रखते। हम भीतर विचारों की पर्त कान के आस-पास इकट्ठी कर देते हैं। बाहर से कान बंद नहीं करते, भीतर से विचार से कान बंद कर देते हैं। तब कान पर कोई बात सुनाई पड़ती है, वह विचार की पर्त जांच-पड़ताल कर लेती है। वह हमारा सैंसर है। वहां से पार हम होने देते हैं तभी, जब लगे हमारे अनुकूल है।
और ध्यान रखना, सत्य आपके अनुकूल नहीं हो सकता, आपको ही सत्य के अनुकूल होना पड़ता है। अगर आप सोचते हैं, सत्य आपके अनुकूल हो, तभी गृहीत होगा, तो आप सदा असत्य में जीएंगे। आपको ही सत्य के अनुकूल होना पड़ेगा। इसलिए पहली बात तो ठीक से सुन लेना जरूरी है कि क्या कहा गया है। जरूरी नहीं कि उसे मान लें।
सुनने का अर्थ मानना नहीं है। इससे लोगों को बड़ी भ्रांति होती है। कई
को ऐसा लगता है कि अगर हमने सोचा-विचारा न, तो इसका मतलब हुआ कि हम बिना ही सोचे-विचारे मान लें! सुनने का अर्थ मानना नहीं है। सिर्फ सुन लें, अभी मानने न मानने की बात ही नहीं है। अभी तो ठीक तस्वीर सामने आ जाएगी कि क्या कहा गया है। फिर मानना न मानना पीछे कर लेना।
और एक बड़े मजे की बात है, अगर सत्य ठीक से सुन लिया जाए तो पीछे न मानना बहुत मुश्किल है; अगर सत्य है, तो पीछे न मानना बहुत मुश्किल है। अगर सत्य नहीं है तो पीछे मानना बहुत मुश्किल है। पर एक दफा शुद्ध प्रतिबिंब बन जाना चाहिए, फिर मानने न मानने की बात कठिन नहीं है। साफ हो जाएगी। सत्य मना ही लेता है। सत्य कनवर्शन है। फिर आप बच न सकेंगे। फिर तो आपको ही दिखाई पड़ने लगेगा कि मानने के सिवाय कोई उपाय नहीं है। फिर सोचें खूब, फिर कसौटी करें खूब। लेकिन सोचना और कसौटी भी निष्पक्ष होनी चाहिए।
हमारा सोचने का क्या अर्थ होता है?
हमारा सोचने का अर्थ होता है-पूर्वाग्रह, हमारी जो प्रेजुडिस होती है, जो हमने पहले से मान रखा है उससे अनुकूल खाए, उससे अनुकूल हो तो सत्य है।
एक आदमी हिंदू घर में पैदा हुआ है, एक आदमी मुसलमान घर में, एक आदमी जैन घर में, तो जो उसने पहले से मान रखा है, वही, उससे मेल खा जाए, इसका नाम सोचना नहीं है। यह तो सोचने से बचना है, एस्केपिंग फ्रॉम थिंकिंग। आपने जो मान रखा है, अगर वही सत्य है तब तो आपको खोज ही नहीं करनी चाहिए। आपने जो मान रखा है, अगर उसको ही पकड़ कर कसौटी करनी है, तब तो आपकी सारी कसौटियां झूठी हो जाएंगी। जो आपने मान रखा है, उसको भी दूर रखिए; जो आपने सुना है उसको भी दूर रखिए। आप दोनों से अलग हो जाएं, किसी से अपने को जोड़िए मत। क्योंकि जिससे आप जोड़ रहे हैं, वहां पक्षपात हो जाएगा। दोनों को तराजू पर रखिए, आप दूर खड़े हो जाइए। आप निर्णायक रहिए, पक्षपाती नहीं।
हर बार, जब नई बात सुनी जाए तो पुरानी को अपनी मान कर, नई को दूसरे की मान कर अगर तौलिएगा, तो आप कभी निष्पक्ष चिंतन नहीं कर सकते। अपनी पुरानी को भी दूर रखिए, इस नई को भी दूर रखिए, दोनों पराई हैं। सिर्फ फर्क इतना है कि एक बहुत पहले सुनी थी, एक अब सुनी है। समय भर का फासला है। कोई बात बीस साल पहले सुनी थी, कोई आज सुनी है। बीस साल पुरानी जो थी, वह आपकी नहीं हो गई है, वह भी पराई है। उसे भी दूर रखिए, इसे भी दूर रखिए। और स्वयं को पार, अलग रखिए, और तब दोनों को सोचिए। इस सोचने में पक्ष मत बनाइए, निष्पक्ष दृष्टि से देखिए तो निर्णय बहुत आसान होगा। और बड़ा मजा यह है कि इतना निष्पक्ष जो चित्त हो उसे सत्य दिखाई पड़ने लगता है, सोचना नहीं पड़ता।

इसलिए हमने निरंतर इस मुल्क में कहा है कि सत्य सोच विचार से उपलब्ध नहीं होता, दर्शन से उपलब्ध होता है। यह निष्पक्ष चित्त दर्शन की स्थिति है, देखने में आप कुशल हो गए। अब आपको दिखाई पड़ेगा, कि क्या है सत्य और क्या है असत्य। अब आपकी आंख खुल गई। यह आंख देख लेगी कि क्या है सत्य, क्या है असत्य। लेकिन अगर पक्षपात तय है, आप हिंदू हैं, मुसलमान हैं, जैन हैं। बंधे हैं अपने पक्षपात से, तो फिर आप कुछ भी न देख पाएंगे। वह पक्षपात आपकी आंख को बंद रखेगा।
जो पक्षपात से देखता है, वह अंधा है। जो निष्पक्ष होकर देखता है, वह आंखवाला है। सुनें, फिर आंखवाले का व्यवहार करें।
कलियुग, सतयुग मनोस्थितियां हैं, बुद्धत्व मनोस्थिति नहीं है।
स्वर्ग-नरक मनोस्थितियां हैं, बुद्धत्व मनोस्थिति नहीं है, या जिनत्व मनोस्थिति नहीं है।
इसे थोड़ा समझ लें।
हमारे भीतर तीन तल हैं। एक हमारे शरीर का तल है। सुविधाएं असुविधाएं, कष्ट-अकष्ट शरीर की घटनाएं हैं। इसलिए अगर आपका आपरेशन करना है तो आपको एक इंजेक्शन लगा देते हैं। वह अंग शून्य हो जाता है। फिर आपरेशन हो सकता है, आपको कोई तकलीफ नहीं होती है। पैर कट रहा है, आपको कोई तकलीफ नहीं होती। क्योंकि पैर कट रहा है, इसकी खबर मन को होनी चाहिए। जब खबर होगी, तभी तकलीफ होगी।
मन की तकलीफ नहीं है, यह तकलीफ पैर की है। तो पैर और मन के बीच में जिनसे जोड़ है, जिन स्नायुओं से, उनको बेहोश कर दिया तो आप तक तकलीफ पहुंचती नहीं। तकलीफ पहुंचनी चाहिए तो ही!
कष्ट, असुविधाएं शरीर की घटनाएं हैं। इसलिए बड़े मजे की बात है, आपके पैर में तकलीफ हो रही है, इंजेक्शन लगा दिया जाए, आपको पता नहीं चलता। आप मजे से लेटे गप-शप करते रहते हैं। इससे उलटा भी हो सकता है--पैर में तकलीफ नहीं हो रही, और आपके स्नायुओं को कंपित कर दिया जाए, जिनसे तकलीफ की खबर मिलती, तो आपको तकलीफ होगी। आप छाती पीट कर चिल्लाएंगे कि मैं मरा जा रहा हूं; और कहीं कोई तकलीफ नहीं हो रही।
तकलीफ से आपको जानने से रोका जा सकता है। तकलीफ की झूठी खबर मन को दी
जा सकती है। मन के पास कोई उपाय नहीं है जांचने का कि सही क्या है, गलत क्या है। शरीर जो खबर दे देता है वह मन मान लेता है। ये शरीर की स्थितियां हैं, आपको भूख लगी है, प्यास लगी है, ये सब शरीर की स्थितियां हैं। इसके पीछे मन की स्थितियां हैं। आपको सुख हो रहा है, आपको दुख हो रहा है, ये मन की स्थितियां हैं।
देखते हैं कि मित्र चला आ रहा है, चित्त प्रसन्न हो जाता है। सुखी हो जाता है। लेकिन पास आकर पता चलता है कि धोखा हो गया, मित्र नहीं है, कोई और है, सुख तिरोहित हो गया। यह मन की स्थिति है, इसका मित्र से कोई संबंध नहीं था। क्योंकि मित्र तो वहां था ही नहीं।
रात निकले हैं, और दिखता है कि अंधेरे में कोई खड़ा है, छाती धड़कने लगी,
भय हो गया। पास जाते हैं, देखते हैं, कोई भी नहीं है, लकड़ी का ठूंठ है, वृक्ष कटा हुआ है, निश्चिंत हो गए। छाती की धड़कन ठीक हो गई। फिर गुनगुनाने लगे गीत और चलने लगे। यह मन की स्थिति है।
मन, सुख और दुख भोगता है। मन में सतयुग होता है, कलियुग होता है। मन में स्वर्ग होते हैं, नरक होते हैं। शरीर के भी जो पार उठ जाता है, मन के भी जो पार उठ जाता है। उस घड़ी को हम कहते हैं बुद्धत्व, जिनत्व। उस घड़ी को हमने कहा है, कृष्ण चेतना; उस घड़ी को हमने कहा है, क्राइस्ट हो जाना।
जीसस का नाम तो जीसस है, क्राइस्ट नाम नहीं है। क्राइस्ट चित्त के पार होने का नाम है। बुद्ध का नाम तो गौतम सिद्धार्थ है, बुद्ध उनका नाम नहीं है। बुद्धत्व, उनकी चेतना का मन के पार चले जाना है। महावीर का नाम तो वर्धमान है, जिन उनका नाम नहीं है। जिन का अर्थ है, मन के पार चले जाना। क्राइस्ट के नाम में बड़ा मजा है। क्राइस्ट का नाम--जो इतिहास की गहरी खोज करते हैं, वे कहते हैं, क्राइस्ट कृष्ण का अपभ्रंश है। जीसस उनका नाम है, जीसस दी कृष्ण, जीसस जो कृष्ण हो गया। कृष्ण का रूप है क्राइस्ट।

बंगाली में अब भी कृष्ण को कहते हैं, क्रिस्टो। बंगाली रूप है, क्रिस्टो।
अगर कृष्ण का बंगाली रूप क्रिस्टो हो सकता है, तो हिब्रू या अरबी में क्राइस्ट हो सकता है, कोई अड़चन नहीं है।
यह जो, व्यक्ति जहां शरीर और मन, दोनों के पार हट जाता है, उन अवस्थाओं
के नाम हैं। बुद्धत्व मनोस्थिति नहीं है, स्टेट ऑफ माइंड नहीं है। बुद्धत्व है स्टेट ऑफ नो माइंड, अ-मन की स्थिति है, जहां मन नहीं है। बुद्ध के पास कोई मन नहीं है, इसलिए हम उनको बुद्ध कहते हैं। महावीर के पास कोई मन नहीं है, इसलिए हम उनको जिन कहते हैं।
मन का क्या अर्थ होता है? मन का अर्थ होता है--विचारों का संग्रह, कर्मों का संग्रह, संस्कारों का संग्रह, अनुभवों का संग्रह। मन का अर्थ होता है--पास्ट, अतीत, जो बीत गया है उसका संग्रह। मन है जोड़ अतीत अनुभव का। जो हमने जाना, जीया, अनुभव किया उन सबका जोड़ हमारा मन है। मन हमारा संग्रह है समस्त अनुभवों का।
हमारा मन बहुत बड़ा है। हम जानते नहीं। आप तो अपना मन उतना ही समझते हैं, जितना आप जानते हैं, वह तो कुछ भी नहीं है। उसके नीचे पर्त-पर्त गहरा मन है। फ्रायड ने खोज की है कि हमारा चेतन मन, उसके नीचे गहरा अचेतन मन है, अनकांशस है। फिर जुंग ने और खोज की कि उसके नीचे हमारा कलेक्टिव अनकांशस, सामूहिक अचेतन मन है। लेकिन ये खोजें अभी प्रारंभ हैं। बुद्ध और महावीर ने जो खोज की है, अभी उस अतल में उतरने की मनोविज्ञान की सामर्थ्य नहीं है। बुद्ध और महावीर तो कहते हैं, कि यह जो हमारा मन है, इसके नीचे बड़ी पर्तें हैं, आपके सारे जन्मों की, जो पशुओं में हुए हैं, उनकी पर्तें हैं। जो पौधों में हुए उनकी पर्तें हैं।
अगर आप कभी एक पत्थर थे, तो उस पत्थर का अनुभव भी आपके मन की गहरी पर्त में दबा हुआ पड़ा है। कभी आप पौधे थे, तो उस पौधे का अनुभव और स्मृतियां भी आपके मन के पर्त में दबी पड़ी हैं। आप कभी पशु थे, वह भी दबा हुआ पड़ा है। इसलिए कई बार ऐसा होता है कि आपकी उन पर्तों में से कोई आवाज आ जाती है तो आप आदमी नहीं रह जाते। जब आप क्रोध में होते हैं तो आप आदमी नहीं होते। असल में क्रोध के क्षण में आप तत्काल अपने पशु मन से जुड़ जाते हैं और पशु मन प्रकट होने लगता है।
इसलिए अक्सर क्रोध में आप कुछ कर लेते हैं और पीछे कहते हैं, मेरे बावजूद, इंस्पाइट ऑफ मी--मैं तो नहीं करना चाहता था, फिर भी हो गया। फिर किसने किया, आप नहीं करना चाहते थे तो! कभी आपने अपनी क्रोध की तस्वीर देखी है? कभी आईने के सामने खड़े होकर क्रोध करना, तब आप पाएंगे, यह चेहरा आपका नहीं है। ये आंखें आपकी नहीं हैं। यह कोई और आपके भीतर आ गया। वह कौन है? यह आपका ही कोई पशु-संस्मरण है, कोई स्मृति है, कोई संस्कार; जब आप पशु थे, वह आपके भीतर काम कर रहा है। उसने आपको पकड़ लिया। जब आप अपने को ढीला छोड़ते हैं, तब आपके नीचे का मन आपको पकड़ लेता है।
कई बार कई आदमियों की आंखों में देख कर आपको लगेगा कि वह पथरा गई हैं। लोग कहते हैं, उसकी आंखें पथरा गई हैं। जब हम कहते हैं, किसी की आंखें पत्थर हो गईं, तो उसका क्या मतलब होता है? उसका मतलब है कि इस व्यक्ति के पत्थर जीवन के अनुभव इसकी आंखों को पकड़ रहे हैं आज भी। इसलिए इसकी आंखों में कोई संवेदना नहीं मालूम होती।
अनेक लोग बिल्कुल मुर्दा मालूम पड़ते हैं। उनका शरीर लगता है, जैसे लाश है। वे चलते हैं तो ऐसा जैसे कि ढो रहे हैं अपने को। क्या हो गया है इनको?
मन की बहुत पर्तें हैं। इस पर्त-पर्त मन का जो लंबा इतिहास है, वह अतीत है। रोज हम इस मन में जोड़ दिए चले जाते हैं। जो भी हम अनुभव करते हैं, वह उसमें जुड़ जाता है। मैं कुछ बोल रहा हूं, यह आपके मन में जुड़ जाएगा। आपका मन रोज बढ़ रहा है, बड़ा हो रहा है, फैलता जा रहा है।
बुद्धत्व, जिनत्व, इस मन के अतीत के पार उठने की घटना है। जिस दिन कोई व्यक्ति अपने अतीत का त्याग कर देता है, अपने सारे मनों को छोड़ देता है, और अपनी चेतना को मन के पार खींच लेता है--और कहता है, अब मैं न शरीर हूं, न अब मैं मन हूं, अब मैं केवल जानने वाला हूं, जो मन को भी जानता है-वह हूं--अब

मैं ऑब्जेक्ट नहीं हूं, जाने-जानी वाली चीज नहीं हूं--ज्ञाता हूं, चिन्मय हूं, चैतन्य हूं।
कहने से नहीं--मन यह भी कह सकता है, यही बड़ा मजा है। मन यह भी कह सकता है
कि मैं चैतन्य हूं, आत्मा हूं, परमात्मा हूं। लेकिन अगर यह मन कह रहा है, अगर यह आप सुनी हुई बात कह रहे हैं, तो इसका आत्मा से कोई संबंध नहीं है। यह आपका अनुभव बन जाए और आप मन के पार अपने को पहचान लें कि यह मैं मन से अलग हूं, तब बुद्धत्व है।
बुद्ध से कोई पूछता है। बुद्ध एक वृक्ष के नीचे बैठे हैं। एक ज्योतिषी बड़ी मुश्किल में पड़ गया है। उसने बुद्ध के पैर देख लिए रेत पर बने हुए। वह काशी से लौट ही रहा था अपने पांडित्य की डिग्री लेकर। वह बड़ा ज्योतिषी था। उसने पोथे पंडित, अपनी सारी पोथियां लेकर चला आ रहा था। उसने देखे बुद्ध के चरण, गीली रेत पर, गीली मिट्टी पर पैर के चिह्न थे। वह चकित हो गया। यह आदमी सम्राट होना चाहिए ज्योतिष के हिसाब से। पैर के चिह्न सम्राट के चिह्न हैं। लेकिन कौन सम्राट, नंगे पैर इस साधारण से गरीब गांव की रेत में चलने आएगा!
वह बड़ी मुश्किल में पड़ गया। अभी लौटा ही है काशी से। उसने कहा कि अगर
इस साधारण से गांव-देहात में सम्राट नंगे पैर रेत में चलते हों, सम्राट मिलते हों, तो पोथी वगैरह यहीं, इसी नदी में डुबा कर हाथ जोड़ लेना चाहिए। कोई मतलब नहीं है। इस आदमी को खोजना पड़ेगा।
वह खोज करके पहुंचा, तो बुद्ध एक वृक्ष के नीचे बैठे हैं। बड़ी मुश्किल में पड़ गया ज्योतिषी। जिसको सम्राट होना चाहिए, वह भिक्षा पात्र लिए बैठा है! अगर यह आदमी सही है, तो ज्यातिष गलत है। अगर ज्योतिष सही है तो इस आदमी को यहां होना ही नहीं चाहिए इस वृक्ष के नीचे।
उसने बुद्ध से जाकर पूछा कि कृपा करें, मैं बड़ी मुश्किल में पड़ गया हूं। ये पैर के लक्षण सम्राट के हैं, चक्रव्रती सम्राट के। और आप यहां भिखारी होकर बैठे हुए हैं। क्या करूं, पोथियों को डुबा दूं पानी में? बुद्ध ने कहाः पोथियों को डुबाने की जरूरत नहीं, क्योंकि मेरे जैसा आदमी दुबारा तुम्हें जल्दी नहीं मिलेगा। होना चाहिए था चक्रवती सम्राट ही। ज्योतिष तुम्हारा ठीक ही कहता है। लेकिन एक और जगत है अध्यात्म का, जो ज्योतिष के पार चला जाता है। पर तुम्हें ऐसा बार-बार नहीं होगा, तुम बहुत चिंता में मत पड़ो। ऐसा जल्दी फिर दुबारा नहीं होगा। चक्रवती सम्राट ही होने को पैदा हुआ था, लेकिन उससे और ज्यादा होने का द्वार खुल गया। तो भिखारी मैं नहीं हूं, सम्राट भी मैं नहीं हूं।
तब आश्वस्त हुआ ज्योतिषी। उसने गौर से--चिंता छोड़ी--बुद्ध के चेहरे को देखा। वहां जो आभा थी, वहां जो गरिमा थी, वहां जो प्रकाश की किरणें फूट रही थीं... उसने पूछा, क्या आप देवता हैं? मुझसे भूल हो गई, मुझे क्षमा कर दें। बुद्ध ने कहाः मैं देवता भी नहीं हूं।
तो ज्योतिषी पूछता जाता है कि आप यह हैं, आप यह हैं, आप यह हैं। बुद्ध कहते जाते हैं, मैं यह भी नहीं, मैं यह भी नहीं, मैं यह भी नहीं। तब ज्योतिषी पूछता है, फिर आप हैं क्या? न आप पशु हैं, न आप पक्षी हैं, न आप पौधा हैं, न आप मनुष्य हैं, न आप देवता हैं, तो आप हैं क्या?
बुद्ध कहते हैंः मैं बुद्ध हूं।
तो वह ज्योतिषी पूछता है, बुद्ध होने का क्या अर्थ? तो बुद्ध कहते हैं,
जो भी परिधियां हो सकती थीं आदमी की, देवता की, पशु की, वे सब मन के खेल थे। मैं उनके पार हूं। मैंने उसे पा लिया है जो उस मन के भीतर छिपा था। अब मैं मन नहीं हूं।
पशु भी मन के कारण पशु है। और आदमी भी मन के कारण मनुष्य है। पौधा भी
मन के कारण पौधा है।
आप जो भी हैं, अपने मन के कारण हैं। जिस दिन आप मन को छोड़ देंगे उस दिन
आप वह हो जाएंगे जो आप अकारण हैं। वह अकारण होना ही हमारा ब्रह्मत्व है, वह अकारण होना ही हमारा परमात्म है।

कारण से हम संसार में है, अकारण से हम परमात्मा में हो जाते हैं। कारण
से हमारी देह निर्मित होती है, मन निर्मित होता है। अकारण हमारा अस्तित्व है। वह है, उसका कोई कारण नहीं है।
बुद्धत्व अवस्था नहीं है, अवस्थाओं के पार हो जाना है।
अब हम सूत्र लें।
"आशुप्रज्ञ पंडित पुरुष को मोहनिद्रा में सोए हुए संसारी मनुष्यों
के बीच रह कर भी सभी तरह से जागरूक रहना चाहिए और किसी का विश्वास नहीं करना चाहिए।"
"काल निर्दयी है, और शरीर दुर्बल। यह जान कर भारंड पक्षी की भांति अप्रमत्त भाव से विचरना चाहिए।"
बहुत सी बातें समझने की हैं।
महावीर अकेला पंडित नहीं कहते, आशुप्रज्ञ पंडित। तो पहले तो इस बात
को हम समझ लें।
पंडित का अर्थ होता है, जानने वाला, जानकारी वाला, जिसके पास सूचनाओं
का बहुत संग्रह है, लर्नेड। शास्त्र का जिसे पता है, सिद्धांत का जिसे पता है, प्राणियों का जिसे बोध है, तर्क में जो निष्णात है, ऐसा व्यक्ति पंडित है। जानकारियां जिसके पास है। आशुप्रज्ञ पंडित का अर्थ है--जानकारियां ही जिसके पास नहीं हैं, ज्ञान भी जिसके पास हैं। आशुप्रज्ञ शब्द का अर्थ होता है, ऐसे प्रश्न का उत्तर भी जो दे सकेगा, जिस प्रश्न के उत्तर की कोई जानकारी उसके पास नहीं है।
इसे थोड़ा समझ लें।
हम उस व्यक्ति को आशु कवि कहते हैं जो कविता बना कर नहीं आया है; जिसकी कविता तत्क्षण बनेगी। जो कविता पहले बनाएगा नहीं, फिर गाएगा नहीं; जो गाएगा और गाने में ही कविता निर्मित होगी। उसको कहते हैं, आशु कवि। उसका गाना और बनाना साथ-साथ है। वह पहले बनाता और फिर गाता, ऐसा नहीं। वह गाता है, और कविता बनती चली जाती है।
आशु कवि का अर्थ है, कविता उसके लिए कोई रचना नहीं है, उसका स्वभाव है।
वह बोलेगा, तो कविता है। उसके बोलने में ही काव्य होगा। काव्य को उसे बाहर से लाकर आरोपित नहीं करना होता। वह उससे वैसे ही निकलता है, जैसे वृक्षों में पत्ते निकलते हैं। जैसे झरना बहता है वैसा उसकी कविता बहती है, निष्प्रयोजन है, निष्चेष्ठित है। उसके लिए कोई प्रयास नहीं करना पड़ता। जितना छोटा कवि हो उतना ज्यादा प्रयास करना पड़ता है। जितना बड़ा कवि हो उतना कम प्रयास करना पड़ता है। आशु कवि हो तो प्रयास होता ही नहीं, कविता बहती है। तब कविता एक निर्माण नहीं है, कोई आयोजना, कोई व्यवस्था नहीं है। तब कविता वैसे ही है जैसे श्वास का चलना है। ऐसे व्यक्ति को हम कहते हैं, आशु कवि। आशुप्रज्ञ उसे कहते हैं, जिसका ज्ञान स्मृति नहीं है। आप उससे पूछते हैं।
आप किसी से कुछ पूछते हैं तो दो तरह के उत्तर संभव हैं। एक सवाल आप मुझसे पूछें तो दो तरह के उत्तर संभव हैं। एक--आप सवाल पूछते हैं, मैं तत्काल अपनी स्मृति के संग्रह में जाऊं और उत्तर खोज लाऊं। आप मुझसे कुछ पूछें, मैं तत्काल खोजूं अपने अतीत में, अपने मस्तिष्क में, अपनी स्मृति में, अपने कोश में, अपने संग्रह में उत्तर--उत्तर खींच कर स्मृति से ले आऊं, उत्तर दे दूं। यह एक पंडित का उत्तर है।
आप मुझसे प्रश्न पूछें, मैं अपने भीतर चला जाऊं, स्मृति में नहीं। आप मुझसे उत्तर पूछें, मैं उत्तर के सामने अपनी चेतना को खड़ा कर दूं, स्मृति को नहीं। आप उत्तर पूछें, मैं दर्पण की तरह आपके उत्तर के सामने खड़ा हो जाऊं, और मेरी यह चेतना प्रतिध्वनि दे, आपके प्रश्न का उत्तर दे। यह उत्तर स्मृति से न आए, इस क्षण की मेरी चेतना से आए, तो आशुप्रज्ञ। आशुप्रज्ञ का अर्थ है, अभी जिसकी चेतना से उत्तर आएगा, ताजा, सद्यःस्नात, अभी-अभी नहाया हुआ, बासा नहीं।
हमारे सब उत्तर बासे होते हैं। बासे उत्तर में समय लगता है, पता चले
या न चले। आशुप्रज्ञ में समय नहीं लगता।

आपसे कोई प्रश्न पूछे, समय लगता है। अगर ऐसा प्रश्न पूछे कि आपका नाम क्या है तो आपको लगता है, कोई समय नहीं लगता। कह देते हैं, राम। लेकिन इसमें भी समय लगता है। असल में आदत हो गई है। आपको पता है कि आपका नाम राम है, इसलिए समय लगता मालूम नहीं पड़ता, लेकिन इसमें भी समय जाता है। लेकिन कोई आपसे पूछे कि आपके पड़ोसी का नाम क्या है? तो आप कहते हैं, जबान पर रखा है, लेकिन याद नहीं आ रहा है।
इसका क्या मतलब है? इसका मतलब है, स्मृति में है, लेकिन हम स्मृति तक पहुंच नहीं पा रहे, बीच में कुछ दूसरी चीजें अड़ गई हैं, कुछ दूसरी स्मृतियां अड़ गई हैं; इसलिए हम ठीक पहुंच नहीं पा रहे। मालूम भी है, लेकिन पकड़ नहीं पा रहे स्मृति में।
आपको जो याद है, उसको आप तत्काल उत्तर दे देते हैं। समय बीत जाता है तो भूल जाता है, फिर आप तत्काल उत्तर नहीं दे पाते। लेकिन अगर आपको थोड़ा समय मिले, सुविधा मिले, तो आप खोज ले सकते हैं उत्तर।
स्मृति से आया हुआ उत्तर पांडित्य का उत्तर है।
आपसे किसी ने पूछा, ईश्वर है? तो आप जो भी उत्तर देंगे वह पांडित्य का
हो जाएगा। लेकिन कोई महावीर से पूछे, तो वह उत्तर पांडित्य का नहीं होगा, वह महावीर के जानने से निकलेगा। वह महावीर की जानकारी से नहीं निकलेगा-- जानने से निकलेगा। मेमोरी से नहीं, कांशसनेस से, चैतन्य से निकलेगा। महावीर कोई बंधा हुआ उत्तर तैयार नहीं रखते हैं कि आप पूछेंगे, वह दे देंगे। उनके पास रेडीमेड कुछ भी नहीं है। पंडित के पास सब रेडीमेड है। आप पूछेंगे, वह वही उत्तर देगा जो तैयार है। इसलिए एक बड़ी कठिनाई खड़ी होती है। महावीर का आज का उत्तर जरूरी नहीं कि कल भी हो, परसों भी हो। पंडित का आज भी वही होगा, कल भी वही होगा, परसों भी वही होगा। क्योंकि पंडित के पास वस्तुतः कोई उत्तर नहीं है, केवल एक जानकारी है। महावीर का उत्तर रोज बदल जाएगा, रोज बदल सकता है, प्रतिपल बदल सकता है। क्योंकि वह कोई जानकारी नहीं है।
महावीर की चेतना जो प्रतिध्वनि करेगी, इस प्रतिध्वनि में अंतर पड़ेगा, क्योंकि पूछने वाला रोज बदल जाएगा। और पूछने वाले पर निर्भर करेगा। इसे ऐसा समझें--एक फोटोग्राफ है, तो फोटोग्राफ आज भी वही शक्ल बताएगा, कल भी वही शक्ल बताएगा, परसों भी वही शक्ल बताएगा। किसी को दे दें देखने के लिए, इससे फर्क नहीं पड़ेगा। एक दर्पण है, दर्पण वही शक्ल नहीं बताएगा। जो देखेगा, उसकी ही शक्ल बताएगा। रोज बदल जाएगी शक्ल।
पांडित्य फोटोग्राफ है। सब पक्का बंधा हुआ है। हम उसी आदमी को बड़ा पंडित कहते हैं जिसका फोटोग्राफ बिल्कुल साफ है, एक-एक रेखा-रेखा साफ दिखाई पड़ती हो।
महावीर और बुद्ध जैसे लोग तो दर्पण की भांति हैं। आपकी शक्ल दिखाई पड़ेगी। इसलिए जब प्रश्न पूछने वाला बदल जाएगा तो उत्तर बदल जाएगा। पंडित का उत्तर कभी न बदलेगा। आप सोते से उठा कर पूछ लो, कुछ भी करो, उसका उत्तर नहीं बदलेगा। उसका उत्तर वही रहेगा।
इससे एक बड़ी कठिनाई पैदा होती है। महावीर और बुद्ध के वचनों में बड़ी असंगतियां दिखाई पड़ती हैं, दिखाई पड़ेंगी। पंडित ही संगत हो सकता है। आशुप्रज्ञ संगत नहीं हो सकता। क्योंकि प्रतिपल परिस्थिति बदल जाती है, पूछने वाला बदल जाता है, संदर्भ बदल जाता है, उत्तर बदल जाता है, दर्पण का प्रतिबिम्ब बदल जाता है।
आप पर निर्भर करेगा कि महावीर का उत्तर क्या होगा। पूछने वाले पर निर्भर करेगा कि उत्तर क्या होगा। इसलिए महावीर कहते हैं, आशुप्रज्ञ पंडित, जिसकी प्रज्ञा प्रतिपल तैयार है उत्तर देने को। प्रज्ञा, जिसका ज्ञान, प्रतिपल तैयार है उत्तर देने को।
"आशुप्रज्ञ पंडित पुरुष को मोह-निद्रा में सोए हुए संसारी मनुष्यों
के बीच रह कर भी सब तरह से जागरूक रहना चाहिए।"
महावीर कहते हैं कि जिसको भी ऐसी प्रज्ञा में थिर रहना है, ऐसे ज्ञान में थिर रहना है, ऐसे ज्ञान में गति करते जाना है, उसे संसारी सोए हुए मनुष्यों के बीच रह कर भी सब तरह से जागरूक रहना चाहिए। रहना तो पड़ेगा ही

सोए हुए लोगों के बीच। क्योंकि वे ही हैं, और तो कोई है भी नहीं। भागने से कोई सार भी नहीं है। कहीं भी भाग जाओ, सोए हुए लोगों के बीच ही रहना पड़ेगा। यह जरा समझ लेने जैसा है।
अक्सर लोग सोचते हैं कि शहर छोड़ कर गांव चला जाऊं। गांव में भी सोए हुए लोग ही हैं। कोई सोचता है, गांव छोड़ कर जंगल चला जाए। लेकिन आपको कभी ख्याल न आया होगा कि जंगल के पौधे मनुष्य से ज्यादा सोए हुए हैं, इसलिए तो पौधे हैं। और जंगल के पशु-पक्षी मनुष्य से ज्यादा सोए हुए हैं, इसलिए तो पशु-पक्षी हैं। ये मनुष्य भी कभी पशु-पक्षी थे और पौधे थे। ये थोड़े-थोड़े जाग कर मनुष्य तक आ गए हैं।
अगर एक आदमी मनुष्यों को छोड़ कर जंगल जा रहा है तो वह और भी गहन, सोई हुई चेतनाओं के बीच जा रहा है। वहां उसे शांति मालूम पड़ सकती है। उसका कुल कारण इतना है कि वह इन सोए हुए प्राणियों की भाषा नहीं समझ रहा है।
लेकिन सारा जंगल सोया हुआ है। ये सोए हुए वृक्ष, सोए हुए मनुष्य ही हैं। जो कभी मनुष्य हो जाएंगे। जागे हुए मनुष्य जो दिखाई पड़ रहे हैं, ये थोड़े से आगे बढ़ गए वृक्ष ही हैं जो कभी वृक्ष थे। पीछे लौटने में चूंकि भाषा का पता नहीं चलता, इसलिए आदमी सोचता है, जंगल में ठीक रहेगा। न कोई रहेगा आदमी, न कोई होगा उपद्रव। उपद्रव न होने का कुल कारण इतना है कि आदमी की भाषा जल्दी चोट करती है, और ज्यादा होश रखना पड़ता है, नहीं तो चोट से बचा नहीं जा सकता। आदमी गाली देगा तो क्रोध जल्दी आ जाएगा। पत्थर की चोट पैर में लगेगी तो उतनी जल्दी क्रोध नहीं आएगा क्योंकि हम सोचते हैं, पत्थर है। छोटे बच्चों को आ जाता है। क्योंकि अभी उनको पता नहीं है कि पत्थर और आदमी में फर्क करना है। वह पत्थर को भी गाली देंगे, डंडा उठा कर पत्थर को भी मारेंगे। कभी-कभी आप भी बचकाने होते हैं, तब वैसा कर लेते हैं। कलम ठीक से नहीं चलती तो गाली देकर फर्श पर पटक देते हैं।
लेकिन चाहे कहीं भी चले जाओ, महावीर कहते हैं, संसार में तो रहना ही पड़ेगा। संसार का मतलब ही है, सोई हुई चेतनाओं की भीड़। यह भीड़ चाहे बदल लो, चाहे वृक्षों की हो, चाहे पशुओं की हो, चाहे मनुष्यों की हो, यह भीड़ तो मौजूद है। यह स्थिति है, इससे बचा नहीं जा सकता।
संसार अनिवार्य है, उससे तब तक बचा नहीं जा सकता, जब तक हम पूरी तरह जाग न जाएं। तो आशुप्रज्ञ पंडित को भी, जो इस जागने की चेष्टा में सतत संलग्न है, सोए हुए लोगों के बीच रहना पड़ेगा। तो उसे सदा जागरूक रहना चाहिए।
क्यों?
क्योंकि नींद भी संक्रामक है, इनफैक्शस है। यहां इतने लोग बैठे हैं,
हम सब संक्रामक रूप से जीते हैं। अभी एक आदमी खांस दे, तभी पता चलेगा, दस बीस लोग खांसने लगेंगे। क्या हो गया? अभी तक ये चुपचाप बैठे थे, इनके गले को क्या हो गया? अभी तक कोई गड़बड़ न थी। एक आदमी ने खांसना शुरू किया, दस बीस लोग खांसना शुरू कर देंगे। संक्रामक है। हम अनुकरण से जीते हैं। एक आदमी पेशाब करने चला जाए तो कई लोगों को ख्याल हो जाएगा कि पेशाब करने जाना है। संक्रामक है। हम एक दूसरे के हिसाब से जी रहे हैं।
हिटलर अपनी सभाओं में अपने दस पांच आदमियों को दस जगह बिठा रखता था। ठीक वक्त पर दस आदमी ताली बजाते, वह पूरा हाल तालियों से गूंज उठता था। समझ गया था कि ताली संक्रामक है। दस आदमी अपने हैं, वे ताली बजा देते हैं, फिर बाकी दस हजार लोग भी ताली बजा देते हैं। ये दस हजार लोगों को क्या हो गया? इनकी ताली को क्या हो गया?
हमारा मन आस-पास से एकदम प्रभावित होता रहता है। बीमारियां ही नहीं पकड़ती हमको, फलू ही नहीं पकड़ता हमको, एक-दूसरे से क्रोध भी पकड़ता है, मोह भी पकड़ता है, लोभ भी पकड़ता है, कामवासना भी पकड़ती है। शरीर ही नहीं पकड़ता जीवाणुओं को, मन भी पकड़ता है।
इसलिए महावीर कहते हैं कि ऐसे व्यक्ति को सोए हुए लोगों के बीच जागरूक रहना चाहिए, क्योंकि वे चारों तरफ गहन निद्रा में सो रहे हैं। उनकी निद्रा की लहरें तुम्हें छुएंगी। वे चारों तरफ से तुम्हारे भीतर आएंगी। तुम अकेले ही अपनी नींद के लिए जिम्मेवार नहीं हो, तुम एक नींद के सागर में

हो जहां चारों तरफ से नींद तुम्हें छुएगी। अगर तुमने बहुत चेष्टा न की तो वह नींद तुम्हें पकड़ लेगी। वह नींद तुम्हें डुबा देगी। कोई तुम्हें डुबाने की उसकी आकांक्षा नहीं है, यह कोई सचेतन प्रयास नहीं है, यह केवल स्थिति है।
कभी आपने ख्याल किया है, अगर दस लोग बैठे हैं और एक आदमी जम्हाई लेने लगे फौरन दूसरे कुछ लोग जम्हाई लेना शुरू कर देंगे। एक आदमी सो जाए दूसरे लोगों को नींद पकड़ने लगेगी।
हम समूह का एक अंग हैं जब तक हम पूरे नहीं जाग गए। जब तक कोई व्यक्ति पूरा नहीं जागा, तब तक वह व्यक्ति नहीं है, भीड़ है। तब तक वह कितना ही समझे कि मैं अलग हूं, वह अलग है नहीं।
इसलिए बड़ी मजे की घटनाएं घटती हैं। दुनिया में बड़े पाप व्यक्ति से नहीं होते, भीड़ से होते हैं। क्योंकि भीड़ में संक्रमण हो जाता है। हजार लोगों की भीड़ मंदिर को जला रही है या मस्जिद में आग लगा रही है। इनमें से एक-एक आदमी को अलग करके पूछें कि मस्जिद में आग लगाना चाहते हो? मंदिर तोड़ना चाहते हो? क्या होगा? एक-एक आदमी को अलग पूछें, वह कहेगा, नहीं, इससे कुछ होने वाला नहीं है, इसमें कोई सार भी नहीं है। फिर क्या कर रहे थे? लेकिन हजार आदमियों की भीड़ में वह आदमी था ही नहीं, वह सिर्फ भीड़ का एक हिस्सा था। इसलिए बड़ा पाप भीड़ करती है। छोटे पाप निजी होते हैं। बड़े पाप सामूहिक होते हैं। जितना बड़ा पाप करना हो, उतनी बड़ी भीड़ चाहिए। क्योंकि भीड़ में व्यक्ति को जो निज की जिम्मेवारी है वह खो जाती है। भीड़ में व्यक्ति अपने में नहीं रह जाता। भीड़ में उसे लगता है, एक सागर है जिसमें बहे चले जा रहे हैं। भीड़ में उसे ऐसा नहीं लगता है कि मैं कर रहा हूं, भीड़ कर रही है, मैं सिर्फ साथ हूं।
कभी आपने ख्याल किया, अगर भीड़ तेजी से चल रही हो, आपके पैर भी तेज हो जाते हैं। हिटलर ने अपने सैनिकों को आदेश दे रखे थे कि जब भी तुम चलो तो एक दूसरे के शरीर छूते रहें। अगर पचास आदमी चल रहे हों, और एक दूसरे के शरीर छूते हैं और उनके कदम एक लय में पड़ते हैं, तो आप उस लय में फंस जाएंगे। जब उनका हाथ आपको छुएगा तो उनका जोश भी आपके भीतर चला जाएगा। और जब उनके कदम की चाप आपके सिर में पड़ेगी तो आपका कदम भी वैसा ही पड़ने लगेगा। पचास आदमियों की भीड़ में आप अकेले नहीं रह जाते, आप सिर्फ एक अंग हो जाते हैं, एक बड़ी चेतना का हिस्सा हो जाते हैं। और वह चेतना फिर आपको प्रवाहित कर लेती है। जैसे नदी की धार में कोई बहता हो और जब नदी वर्षा के पूर में आई हो जब कोई बहता हो, वैसा असहाय आदमी हो जाता है भीड़ में।
इसलिए सारे लोग भीड़ बना कर जीते हैं। राष्ट्र भीड़ों के नाम हैं। धर्म भीड़ों के नाम हैं--हिंदुओं की भीड़, मुसलमानों की भीड़, जैनों की भीड़, हिंदुस्तान, पाकिस्तान, चीन, रूस--ये सब भीड़ों के नाम हैं।
रूस खतरे में है, तो फिर सारा मामला खत्म हो गया। भारत खतरे में है, तो फिर आप व्यक्ति नहीं रह जाते। सिर्फ एक बड़ी भीड़ के हिस्से रह जाते हैं। फिर उसमें आप बहते हैं।
राजनीति भीड़ों को संचालित करने की कला है। इसलिए जहां भी भीड़ है वहां राजनीति होगी। चाहे वह धर्म की भीड़ क्यों न हो, राजनीति आ जाएगी। इसलिए मैं आपसे कहता हूं, धर्म का संबंध है व्यक्ति से और राजनीति का संबंध है भीड़ से। जहां धर्म भी भीड़ से संबंधित होता है वहां राजनीति का रूप है। इसलिए हिंदुओं की भीड़, मुसलमानों की भीड़, ईसाइयों की भीड़, ये सब राजनीति के रूप हैं, इनका धर्म से कोई संबंध नहीं है। धर्म का संबंध है व्यक्ति से। धर्म की चेष्टा ही यही है कि व्यक्ति को हम भीड़ से कैसे मुक्त करें, वह भीड़ के उपद्रव से कैसे बाहर आए, भीड़ के प्रभाव से कैसे छूटे, यही तो धर्म की सारी चेष्टा है। लेकिन धर्म भी भीड़ बन जाता है, और धर्म भीड़ बन जाता है तो उससे मुश्किल हो जाती है, कठिनाई खड़ी होती है। युद्ध में सैनिक ही भीड़ में नहीं लड़ते, लोग मस्जिदों में, मंदिरों में, भीड़ में प्रार्थना भी करते हैं। बह जाएंगे आप। बह जाना निद्रा में भी हो जाएगा, महावीर कहते हैं। इसलिए जागे हुए व्यक्ति को आस-पास पूरे वक्त सचेत रहना पड़ेगा। सब तरफ
से नींद आ रही है, सब तरफ सोए हुए लोग हैं। क्रोध आएगा, लोभ आएगा, मोह आएगा,

सब तरफ से बह रहा है, जैसे कि कोई आदमी सब तरफ से गंदी नालियां बह रही हों और उनके बीच में बैठा हो। उसको बहुत सचेत रहना पड़ेगा अन्यथा वे गंदी नालियां उसे भी गंदा कर देंगी। उसकी सचेतना ही उसको पवित्र रख सकती है। इसलिए महावीर कहते हैं, सब तरह से जागरूक रहना चाहिए, सब तरह से। इसलिए बहुत अदभुत वचन उन्होंने कहा है।
"और किसी का भी विश्वास नहीं करना चाहिए।"
इसका यह मतलब नहीं है कि महावीर अविश्वास सिखा रहे हैं। महावीर कहते हैं, तुमने किसी का विश्वास किया, सोए हुए आदमी का, तो तुम खुद सो जाओगे। तुमने अगर सोए हुए आदमी का विश्वास किया तो तुम सो जाओगे, क्योंकि विश्वास का मतलब यह है कि अब सचेतन रहने की कोई भी जरूरत नहीं है।
इसे थोड़ा समझ लें।
जिसका हम विश्वास करते हैं, उससे हमें सचेतन नहीं रहना पड़ता। एक अजनबी आदमी आपके कमरे में ठहर जाए तो आप रात ठीक से सो न पाएंगे। क्यों? अजनबी आदमी कमरे में है, पता नहीं क्या करे! नींद उखड़ी-उखड़ी रहेगी, रात में दो-चार दफा आप आंख खोल कर देख लेंगे कि कुछ कर तो नहीं रहा। आपकी पत्नी आपके कमरे में सो रही है, आप मजे से घोड़े बेच कर सो जाते हैं, क्योंकि अब अजनबी नहीं, और जो भी कर सकती थी, कर चुकी। अब सब परिचित है। अब जो कुछ भी होगा, होगा। अब इसमें कुछ ऐसा नया कुछ होने वाला नहीं है। कोई भय नहीं है। आप चेतना खो सकते हैं। आपको चेतन रहने की कोई जरूरत नहीं है।
इसीलिए तो नये मकान में, नये कमरे में नींद नहीं आती। स्थिति नई है, आदतन नहीं है। नये बिस्तर पर नींद नहीं आती, नये लोगों के बीच नींद नहीं आती, क्योंकि स्थिति नई है और थोड़ा सा होश रखना पड़ता है। पूरा भरोसा नहीं किया जा सकता।
महावीर कहते हैं, जीना जगत में जैसे अजनबियों के बीच ही हो सदा-- स्ट्रेंजर्स... ! है ही सच्चाई यह। पति और पत्नी चाहे बीस साल चाहे चालीस साल साथ रहे हों, अजनबी हैं। कभी भी कोई पहचान हो नहीं पाती; स्ट्रेंजस हैं। मान लेते हैं बीस साल साथ रहने के कारण कि अब हम परिचित हो गए हैं। क्या खाक परिचित हो गए! कोई परिचित नहीं होते, कोई परिचित नहीं होता, सब आइलैंड बने रहते हैं, अपने-अपने में द्वीप बने रहते हैं। परिचय हो जाता है ऊपरी, नाम-धाम, ठिकाना, यह सब पता हो जाता है, शकल-सूरत, लेकिन भीतर क्या संभावनाएं छिपी हैं, उसका कुछ परिचय नहीं होता, कोई पहचान नहीं होती। महावीर कहते हैं, किसी का विश्वास मत करना। इसका क्या मतलब है? इसका मतलब यह नहीं है कि अविश्वासी हो जाना, अनट्रस्टिंग हो जाना। इसका यह मतलब नहीं कि हर आदमी को समझना कि बेईमान है, हर आदमी को समझना कि चोर है। इससे कई लोगों को बड़ी प्रसन्नता होगी कि किसी का विश्वास मत करना। वे कहेंगे, यह तो हम कर ही रहे हैं, यह तो हमारी साधना ही है। किसी का विश्वास हम करते कहां हैं? अपना नहीं करते, दूसरे की तो बात ही दूसरी है।
कोई किसी का विश्वास नहीं कर रहा है, मगर वह अर्थ नहीं है महावीर का, इसे ठीक से समझ लें--
हम अविश्वास करते हैं, लेकिन वह अविश्वास महावीर का प्रयोजन नहीं है। महावीर कहते हैं, किसी का विश्वास न करना इस कारण, ताकि तुम सो न जाओ। निकटतम भी तुम्हारे कोई हो तो भी इतना विश्वास मत करना कि अब होश रखने की कोई जरूरत नहीं है। होश तो तुम रखना ही, जागे तो तुम रहना ही। क्योंकि जो निकटतम हैं उन्हीं से बीमारियां आसानी से आती हैं। वे करीब हैं उनका रोग जल्दी लगता है। होश तो रखना ही। अगर तुम होश खोकर अपनी पत्नी या अपने पति, या अपने बेटे, या अपनी मां के पास भी बैठे हो, तो उसकी बीमारियां तुम्हारे भीतर प्रवेश कर रही हैं। तुम्हारा चित्त पहरेदार बना ही रहे और मन की कोई बीमारी तुममें प्रवेश न कर पाए।
बुद्ध कहते थे, कि जिस मकान के बाहर पहरे पर कोई बैठा हो, चोर उसमें प्रवेश नहीं करते। जिस मकान का दीया जला हो और घर के बाहर रोशनी आ रही हो, चोर उस मकान से जरा दूर ही रहते हैं। ठीक ऐसे ही जिसके भीतर होश का दीया जला हो, ठीक ऐसे ही जिसने सावधानी को पहरे पर रखा हो, उसके भीतर मन की बीमारियां प्रवेश नहीं करतीं। जरा दूर ही रहती हैं।

हम ऐसे जीते हैं कि न कोई पहरे पर है, न घर का दीया जला है, अंधकार है घना, चोरों के लिए निमंत्रण है, और चारों तरफ हमारे चोर मौजूद हैं। हम गड्ढा बन जाते हैं, वे हममें बह जाते हैं भीतर।
ख्याल करें, एक उदास आदमी आकर आपके घर बैठ जाता है। कभी आपने ख्याल किया है, थोड़ी देर में आप भी उदास हो जाते हैं! एक हंसता हुआ, मुस्कुराता हुआ आदमी आपके घर में आ जाता है। कभी आपने ख्याल किया, आप भी मुस्कुराने लगते हैं, प्रसन्न हो जाते हैं। छोटे बच्चों को देख कर आपको इतना अच्छा क्यों लगता है? छोटे बच्चे उसका कारण नहीं हैं। छोटे बच्चे प्रसन्न हैं। उनकी प्रसन्नता संक्रामक हो जाती है। वे नाच रहे हैं, कूद रहे हैं, संसार का उन्हें अभी कोई पता नहीं, मुसीबतों का उन्हें अभी कोई बोध नहीं। अभी वे नये-नये खिले फूलों जैसे हैं। न उन्होंने तूफान देखे, न आंधियां देखीं, न अभी सूरज की तपती हुई आग देखी, अभी उन्हें कुछ भी पता नहीं।
उनको देख कर आप भी प्रसन्न हो जाते हैं। छोटे बच्चों के बीच भी अगर कोई उदास बैठा रहे तो समझो कि साधु।... मतलब यह कि उसे बहुत चेष्टा करके उदास रहना पड़े, वह बीमार है, पैथालॉजिकल है, रुग्ण है। छोटे बच्चों के बीच तो कोई प्रसन्न हो ही जाएगा।
नेहरू को छोटे बच्चों से बहुत लगाव था। उसका कारण, छोटे बच्चे नहीं थे, राजनीति की बीमारी थी। बच्चों में जाकर वे दुष्टों को भूल पाते थे, जिनसे घिरे थे, जिनके बीच थे, जिस उपद्रव में पड़े थे। वह बच्चों के बीच जाकर हलका हो जाता था मन। जैसे कि कोई हॉली-डे पर पहाड़ चला गया, छुट्टी मना ली। छोटे बच्चों के बीच उनका होना इस बात का सूचक था कि नेहरू मन से राजनीतिज्ञ नहीं थे, इसलिए छोटे बच्चों की तलाश थी, ताकि इन आदमियों से बचें जो उनको घेरे हुए थे।
नेहरू कम से कम राजनीतिज्ञ आदमी थे, नियति उनकी वह नहीं थी। नियति तो
थी कि वह कवि होते। हिंदुस्तान ने एक बड़ा कवि खो दिया, और एक कमजोर राजनीतिज्ञ पाया। वे हो नहीं सकते थे। कोई उपाय नहीं था। उनके लिए कोई वहां गति नहीं थी। इसलिए बचाव करते थे, बच्चों के साथ ही खेलते थे और प्रसन्न हो जाते थे। जैसे वहां उनको निकटता मालूम होती थी, सान्निध्य मालूम होता था।
जहां भी आप हैं, आप प्रभावित हो रहे हैं। कैसे लोगों के बीच आप हैं, आप वैसे हो जाएंगे।
तो महावीर कहते हैं, "किसी का विश्वास मत करना।" इसका मतलब यह हुआ कि अगर कोई और हंसता है और आपको हंसी आ जाती है तो समझना कि आपकी हंसी झूठी है। कोई और रोता है और आपको रोना आ जाता है, तो समझना कि रोना झूठा है। न यह हंसी आपकी है, न यह रोना आपका है। यह सब उधार है।
और हम सब उधारी में जीते हैं, हम बिल्कुल उधारी में जीते हैं। एक फिल्म में आप देख लेते हैं कोई करुण दृश्य और आपकी आंखों में आंसू बहने लगते हैं। ये उधार हैं। कुछ भी तो वहां नहीं हो रहा है। पर्दे पर केवल धूप-छाया का खेल है, मगर आप रोने लगे। वह बता रहा है कि आप किस भांति बाहर से संक्रामित होते हैं। फिर थोड़ी देर में आप हंसने लगेंगे। आपकी हंसी भी बाहर से खींची जाती है और आपका रोना भी बाहर से खींचा जाता है। आपकी अपनी कोई आत्मा है? जिसका सब कुछ बाहर से संचालित हो रहा है, उसके पास कोई आत्मा नहीं है।
महावीर कहते हैंः "जागरूक रहना, किसी का विश्वास मत करना।"
इसका मतलब यह है कि किसी को भी इस भांति मत स्वीकार करना कि वहां तुम्हें असावधान रहने की सुविधा मिले। तुम मान कर चलना कि तुम एक अजनबी देश में हो, अजनबी लोगों के बीच, एक आउट साइडर हो, जहां कोई तुम्हारा अपना नहीं, जहां सब पराए हैं। सब अपने-अपने हैं, कोई किसी दूसरे का नहीं है। लेकिन हम सब धोखा देते हैं। पत्नी कहती, कि मैं आपकी। पति कहता, कि मैं तुम्हारा। बाप कहता है बेटे से, कि मैं तुम्हारा। बेटा कहता, मां से, कि मैं तुम्हारा। सब अपने-अपने हैं। कोई यहां किसी का नहीं है। चारों तरफ हम इसे रोज देखते हैं, फिर भी एक-दूसरे को कहते हैं, मैं तुम्हारा, मैं

तुम्हारे बिना न जी सकूंगा, और सब सबके बिना जी लेते हैं। मगर यह कठोर है, सत्य।
महावीर कहते हैं, कोई अपना नहीं। इसका यह मतलब नहीं है कि सब दुश्मन हैं। इसका कुल मतलब इतना है कि तुम होश रखना। जैसे कि कोई आदमी युद्ध के मैदान पर होश रखता है। एक क्षण भी चूकता नहीं, बेहोशी को आने नहीं देता, तलवार सजग रखता, धार पैनी रखता, आंख तेज रखता, चारों तरफ चौकन्ना होता है। कभी भी, किसी भी क्षण जरा सी बेहोशी और खतरा हो जाएगा। ठीक वैसे जीना जैसे कि प्रतिपल कुरुक्षेत्र है, प्रतिपल युद्ध है, किसी का विश्वास न करना। "काल निर्दयी है, और शरीर दुर्बल।"
इन सत्यों को स्मरण रखना कि काल निर्दयी है। समय आपकी जरा भी चिन्ता नहीं करता। समय आपका विचार ही नहीं करता, बहा चला जाता है। समय को आपको होने का कोई पता ही नहीं है। समय आपको क्षमा नहीं करता। समय आपको सुविधा नहीं देता। समय लौट कर नहीं आता। समय से आप कितनी ही प्रार्थना करें, कोई प्रार्थना नहीं सुनी जाती। समय और आपके बीच कोई भी संबंध नहीं है। मौत आ जाए द्वार पर और आप कहें कि एक घड़ी भर ठहर जा, अभी मुझे लड़के की शादी करनी है, कि अभी तो कुछ काम पूरा हुआ नहीं, मकान अधूरा बना है।
एक बूढ़ी महिला संन्यास लेना चाहती थी, दो महीने पहले। उसकी बड़ी आकांक्षा थी संन्यास ले लेने की। मगर उसके बेटे खिलाफ थे कि संन्यास नहीं लेने देंगे। मैंने उसके एक बेटे को बुला कर पूछा कि ठीक है, संन्यास मत लेने दो, क्योंकि बूढ़ी स्त्री है, तुम पर निर्भर है और इतना साहस भी उसका नहीं है। लेकिन कल अगर इसे मौत आ जाए तो तुम मौत से क्या कहोगे, कि नहीं मरने देंगे।
जैसे कि कोई भी उत्तर देता, बेटे ने उत्तर दिया। कहा कि मौत कब आएगी,
कब नहीं आएगी, देखा जाएगा। मगर संन्यास नहीं लेने देंगे। और अभी दो महीने भी नहीं हुआ और वह स्त्री मर गई। जिस दिन वह मर गई, उसके बेटे की खबर आई कि क्या आप आज्ञा देंगे, हम उसे गैरिक वस्त्रों में माला पहना कर संन्यासी की तरह चिता पर चढ़ा दें!
"काल निर्दयी है।" लेकिन अब कोई अर्थ भी नहीं है, क्योंकि संन्यास कोई ऐसी बात नहीं है कि वह ऊपर से डाल दिया जाए। न जिंदा पर डाला जा सकता है, न मुर्दा पर डाला जा सकता है। संन्यास लिया जाता है, दिया नहीं जा सकता। मरा आदमी कैसे संन्यास लेगा? दिया जा सके तो मरे को भी दिया जा सकता है। संन्यास दिया जा ही नहीं सकता, लिया जा सकता है। इनटेंशनल है, भीतर अभिप्राय है। वही कीमती है, बाहर की घटना का तो कोई मूल्य नहीं है। भीतर कोई लेना चाहता था। संसार से ऊबा था, संसार की व्यर्थता दिखाई पड़ी थी, किसी और आयाम में यात्रा करने की अभीप्सा जगी थी, वह थी बात। अब तो कोई अर्थ नहीं है, लेकिन अब ये बेटे अपने मन को समझा रहे हैं। मौत को तो न समझा पाए, अपने मन को समझा रहे हैं। मौत को तो नहीं रोक सकते कि रुको, अभी हम न जाने देंगे। मां को रोक सकते थे। मां भी रुक गई क्योंकि उसे भी मौत का साफ-साफ बोध नहीं था। नहीं तो रुकने का कोई कारण भी नहीं था। मां डरी कि बेटों के बिना कैसे जीएगी! और अब, अब बेटों के बिना ही जीना पड़ेगा। अब इस लंबे यात्रा-पथ पर बेटे दुबारा नहीं मिलेंगे। और मिल भी जाएं तो पहचानेंगे नहीं।
क बूढ़ी औरत का मुर्गा बांग देता था एक गांव में। तो वह सोचती थी, सूरज उसी की वजह से उगता है। न मुर्गा बांग देगा, न सूरज उगेगा। अब यह बिल्कुल तर्कयुक्त था। क्योंकि रोज जब मुर्गा बांग देता था तभी सूरज उगता था। ऐसा कभी हुआ ही नहीं था कि सूरज बिना मुर्गे की बांग के उगा हो, इसलिए यह बात बिल्कुल तर्क शुद्ध थी।
फिर एक दिन बुढ़िया गांव पर नाराज हो गई। किन्हीं लोगों ने उसे नाराज
कर दिया, तो उसने कहा, ठहरो। पछताओगे पीछे। चली जाऊंगी अपने मुर्गे को लेकर दूसरे गांव। तब रोओगे, छाती पीटोगे, जब सूरज नहीं उगेगा।
नाराजगी में बुढ़िया अपने मुर्गे को लेकर दूसरे गांव चली गई। दूसरे गांव में मुर्गे ने बांग दी और सूरज उगा। बुढ़िया ने कहा, अब रो रहे होंगे।
सूरज यहां उग रहा है, जहां मुर्गा बांग दे रहा है।

तिनका भी सोचता है, मैं न होऊंगा तो नदी कैसे बहेगी। आप भी सोचते हैं,
आप न होंगे तो संसार कैसे होगा! हर आदमी यही सोचता है। कब्रों में जाकर देखें, बहुत ऐसे सोचने वाले कब्रों में दबे पड़े हैं जो सोचते थे उनके बिना संसार कैसे होगा। और संसार बड़े मजे में है, संसार उनको बिल्कुल भूल ही गया। संसार को कोई पता ही नहीं है।
हर आदमी के मरने पर हम कहते हैं कि अपूरणीय क्षति हो गई, अब कभी भरी न
जा सकेगी, और फिर बिल्कुल भूल जाते हैं, फिर पता ही नहीं चलता कि किसकी अपूरणीय क्षति हुई। ऐसा लगता है, सब अंधकार हो गया। और कोई अंधकार नहीं होता। दीये जलते चले जाते हैं, फूल खिलते चले जाते हैं।
समय की धारा निरपेक्ष है। आपसे कुछ लेना-देना नहीं। समय से आप कुछ कर सकते हैं, समय का आप कोई उपयोग कर सकते हैं। तिनका नदी का उपयोग करके सागर भी पहुंच सकता है, किनारे पर भी अटक सकता है, डूब भी सकता है। लेकिन नदी को कोई प्रयोजन नहीं है।
समय की धारा बही जाती है। आप उसका कोई उपयोग कर सकते हैं। आप सिर्फ एक उपयोग करते हैं, स्थगित करने का। कल करेंगे, परसों करेंगे, छोड़ते चले जाते हैं इस भरोसे कि कल भी होगा! लेकिन कल कभी होता नहीं है।
कल कभी भी नहीं होता है। जब भी हाथ में आता है, तो आता है आज। और उसको
भी कल पर छोड़ देते हैं। जीते ही नहीं, स्थगित किए चले जाते हैं। कल जी लेंगे, परसों जी लेंगे। फिर एक दिन द्वार पर मौत खड़ी हो जाती है, वह क्षण भर का अवसर नहीं देती है और तब हम पछताते हैं। वह सब जो स्थगित किया हुआ जीवन है, सब आपके सामने खड़ा हो जाता है कि क्या-क्या जी सकते थे, क्या हो सकता था, कितने अंकुर निकल सकते थे जीवन में, कितनी यात्रा हो सकती थी, वह कुछ भी न हो पाई।
तब पीछे लौट कर देखते हैं तो कुछ तिजोरियों में रुपये दिखाई पड़ते हैं, जिनको भर लिया, जीवन के मूल्य पर। कुछ लड़के-बच्चे दिखाई पड़ते हैं, जिनको बड़ा कर लिया जीवन के मूल्य पर। वे चारों तरफ बैठे हैं खाट के और सोच रहे हैं कि चाबी किसके हाथ लगती है। रो रहे हैं, लेकिन ध्यान चाबी पर है। इनको बड़ा कर लिया जीवन के मूल्य पर। हिसाब-किताब, खाता-बही, बैंक सब चलेगा। आप हट जाएंगे। आपका खाता किसी और के नाम हो जाएगा। आपका मकान किसी और का निवास स्थान बन जाएगा। आपकी आकांक्षाएं किन्हीं और के भूत बन जाएंगी, उन पर सवार हो जाएंगी और आप विदा हो जाएंगे। और आपने सारे जीवन, जो भी मूल्यवान था, उसको स्थगित किया।
हम धर्म को स्थगित करते हैं और अधर्म को जीते हैं। क्रोध हम अभी कर लेते हैं, ध्यान हम कहते हैं, कल कर लेंगे। प्रार्थना हम कहते हैं, कल कर लेंगे, बेईमानी हम अभी कर लेते हैं। धर्म को करते हैं स्थगित, अधर्म को अभी जी लेते हैं। लेकिन क्यों? हमको भी पता है कि जो कल पर स्थगित किया वह हो नहीं पाएगा; इसलिए जो हम करना चाहते हैं, वह आज कर लेते हैं। जो हम नहीं करना चाहते हैं, और केवल दिखाते हैं कि करना चाहते हैं वह हम कल पर छोड़ देते हैं। इसमें गणित है साफ। कोई महावीर को ही पता है, ऐसा नहीं, हमको भी पता है। हमको भी पता है, क्रोध करना हो, अभी कर लो। हम कभी नहीं कहते, कल क्रोध करेंगे।
गुरजिएफ का पिता मरा, तो उसने बेटे के कान में कहा कि तू एक वचन मुझे
दे दे। मेरे पास और कुछ तुझे देने को नहीं है। लेकिन जो मैंने जीवन में सर्वाधिक मूल्यवान पाया है वह मैं तुझसे कह देता हूं। वह नौ ही साल का था लड़का, समझ भी नहीं सकता था कि बाप क्या कह रहा है। लेकिन उसने कहा, इतना तू याद कर ले, कभी न कभी समझ जाएगा। जब भी तुझे क्रोध आए, तो चौबीस घंटे बाद करना। कोई गाली दे, सुन लेना, समझ लेना, क्या कह रहा है, उसको ठीक से देख लेना, क्या उसका मतलब है, उसकी पूरी स्थिति समझ लेना ताकि तू ठीक से क्रोध कर सके। और उससे कह आना कि अब मैं चौबीस घंटे बाद आकर उत्तर दूंगा। गुरजिएफ बाद में कहता था, उस एक वाक्य ने मेरे पूरे जीवन को बदल डाला।
वह एक वाक्य ही मुझे धार्मिक बना गया। क्योंकि चौबीस घंटे बाद क्रोध किया ही नहीं जा सका। वह उसी वक्त किया जा सकता है। जो भी किया जा सकता है, उसी

वक्त किया जा सकता है। और जब क्रोध न किया जा सका, और बुराई न की जा सकी, तो जो शक्ति बच गई उसका क्या करना?
तो गुरजिएफ ने ध्यान कर लिया आज और क्रोध किया कल। हम क्रोध करते हैं
आज, और ध्यान करेंगे कल। शक्ति क्रोध में चुक जाएगी, ध्यान कभी होगा नहीं। गुरजिएफ की शक्ति ध्यान में बह गई, क्रोध कभी हुआ नहीं।
जो हम करना चाहते हैं, हम भी जानते हैं, आज कर लो। समय का कोई भरोसा नहीं। महावीर ही जानते हैं, ऐसा नहीं, हम भी जानते हैं। जो हम करना चाहते हैं, अभी कर लेते हैं। जो हम नहीं करना चाहते--हम बेईमान हैं, नहीं करना चाहते तो साफ कहना चाहिए, नहीं करना चाहते हैं--लेकिन हम होशियार हैं। अपने को धोखा देते हैं। हम कहते हैं करना तो हम चाहते हैं, लेकिन अभी समय नहीं है। कल कर लेंगे।
इसे ठीक से समझ लें। जिसे आप कल पर छोड़ रहे हैं, जान लें, आप करना नहीं चाहते हैं। यह अच्छा होगा, ईमानदारी होगी अपने प्रति कि मैं करना ही नहीं चाहता। इसलिए तो शायद आपको चोट भी लगेगी कि क्या मैं ध्यान करना ही नहीं चाहता? क्या मैं शांत होना ही नहीं चाहता? क्या मैं अपने को जानना ही नहीं चाहता? क्या इस जीवन के रहस्य में मैं उतरना ही नहीं चाहता?
अगर आप ईमानदार हों तो आपको चोट लगेगी। शायद आपको ख्याल आए कि मैं गलती कर रहा हूं। यह करने योग्य जो है, मैं छोड़ रहा हूं। होशियारी यह है कि हम कहते हैं, करना तो हम चाहते हैं। कौन मना कर रहा है?
मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, साधना में तो हम जाना चाहते हैं। कौन मना कर रहा है? लेकिन अभी नहीं। यह है तरकीब। इस तरकीब में उनको यह नहीं दिखाई पड़ता कि जो हम नहीं करना चाहते, उसे हम भ्रम पाल रहे हैं कि हम करना चाहते हैं।
महावीर कहते हैंः "काल है निर्दई, और शरीर दुर्बल।"
काल पर भरोसा नहीं किया जा सकता, उससे हमारा कोई संबंध नहीं है और शरीर है दुर्बल। शरीर पर हम बहुत भरोसा करते हैं। शरीर पर हम इतना भरोसा करते हैं जो कि आश्चर्यजनक है।
क्या है हमारे शरीर की क्षमता? क्या है शक्ति? 98 डिग्री गर्मी और 110 डिग्री गर्मी के बीच में 12 डिग्री गर्मी आपकी क्षमता है। इधर जरा नीचे उतर जाएं, 95 डिग्री हो जाए, फैसला हो गया। उधर जरा 110 के करीब पहुंचने लगे, फैसला हो गया। 12 डिग्री गर्मी आपके शरीर की क्षमता है। उम्र कितनी है आपकी? इस विराट अस्तित्व में जहां समय को नापने के लिए कोई उपाय नहीं है, वहां आप कितनी देर जीते हैं? सत्तर वर्ष, अस्सी वर्ष, कोई सौ वर्ष जी गया तो चत्मकार है। सौ वर्ष हमें बहुत लगते हैं। क्या है सौ वर्ष इस समय की धारा में? कुछ भी नहीं है। क्योंकि पीछे है अनंत धारा, जो कभी प्रारंभ नहीं हुई। और आगे है अनंत धारा, जो कभी अन्त नहीं होगी। इस अनन्त में सौ वर्ष का क्या है अर्थ? इस सौ वर्ष में भी क्या करेंगे? वैज्ञानिक हिसाब लागाते हैं तो आदमी आठ घंटे सोता है चौबीस घंटे में। चार घंटे खाना, पीना, स्नान, कपड़े बदलना, उसमें व्यय हो जाते हैं। आठ घंटे रोटी कमाना, घर से दफ्तर, दफ्तर से घर उसमें व्यय हो जाते हैं--बीस घंटे। जो चार घंटे बचते हैं उसमें रेडियो सुनना, फिल्म देखना, अखबार पढ़ना, सिगरेट पीना, दाढ़ी बनाना--ऐसा चौबीस घंटे व्यय हो जाते हैं। बचता क्या है सौ वर्ष में आपके पास? जिससे आप अपनी आत्मा को जान सकें, पा सकें।
अगर आदमी की कहानी हम ठीक से बांटे तो बड़ी फिजूल मालूम पड़ेगी, ए टेल टोल्ड बाई एन इडिएट, फुल ऑफ फ्यूरी एण्ड न्वाइज सिग्निफाइंग नथिंग। एक मूर्ख द्वारा कही हुई कथा, शोरगुल बहुत, मतलब बिल्कुल नहीं। शोरगुल बड़ा होता है। हर बच्चा बड़ा शोरगुल करता हुआ संसार में आता है कि तूफान आ रहा है और थोड़े दिन में ठंडे हो जाते हैं। लकड़ी टेक कर चलने लगते हैं। वह सब तूफान, वह सब शोरगुल, सब खो जाता है। आंखें धुंधली पड़ जाती हैं, हाथ-पैर कमजोर हो जाते हैं। बिस्तर पर लग जाते हैं।
झूले से लेकर कब्र तक कहानी क्या है? सामर्थ्य क्या है शरीर की? बड़ा कमजोर है। जरा सा बेक्टीरिया घुस जाए बीमारी का, तब पता चल जाता है कि कितनी आपकी ताकत है। गामा लड़ते होंगे पहलवानों से, लेकिन क्षय रोग से नहीं

लड़ पाते। गामा टी. बी. से मरा। और टी. बी. के कीटाणु कितनी छोटी चीज है। आंख से दिखाई भी नहीं पड़ते। बड़े पहलवानों से जीत लिए, छोटे पहलवानों से हार गए। शरीर की ताकत कितनी है? बड़ी-बड़ी बीमारियां छोड़ दीजिए, कामन कोल्ड से लड़ना मुश्किल होता है। साधारण सर्दी-जुकाम पकड़ ले तो उपाय नहीं, सब ताकत रखी रह जाती है।
इस शरीर को अगर हम भीतर गौर से देखें, इसकी क्षमता क्या है? हड्डी- मांस-मज्जा, इसका मूल्य कितना है? वैज्ञानिक कहते हैं, पांच रुपये से ज्यादा नहीं। वह भी मंहगाई की वजह से। आपकी वजह से नहीं। इतना अल्युमिनियम है, इतना लोहा है, इतना तांबा है, इतना फलां-ढिंका। सब निकाल कर रख लें, पांच रुपये का सामान, पांच रुपये के सामान पर इतने इतरा रहे हैं?
यह जो थोड़ा सा अवसर है जीवन का, उसमें शरीर की कोई क्षमता तो है नहीं। शरीर दुर्बल है, एकदम दुर्बल है। उधर सूरज ठंडा हो जाए, ये साढ़े तीन अरब लोग यहां एकदम ठंडे हो जाएंगे। क्या है क्षमता? जरा सा ताप बढ़ जाए, गिर जाए जमीन का, ठंडे हो जाएंगे। अभी ध्रुव की जमी हुई बर्फ पिघल जाए, सब डूब जाए। वैज्ञानिक कहते हैं, वह पिघलेगी किसी न किसी दिन। अगर ध्रुव प्रदेश में जमी हुई बर्फ किसी भी दिन पिघल गई तो सारे समुद्रों का पानी हजार फीट ऊंचा उठ जाएगा। सारी जमीन डूब जाएगी। वह किसी भी दिन पिघलेगी। नहीं पिघलेगी तो रूसी या अमरीकी उसको पिघलाने का उपाय खोजते हैं। क्योंकि वे इसलिए खोजते हैं कि अगर कोई उपद्रव का, झगड़े का मौका हो तो दूसरे को मौका नहीं मिलना चाहिए दुनिया मिटाने का, हमको ही मिलना चाहिए। हालंकि हम भी उसमें मिटेंगे, लेकिन कहानी रह जाएगी, हालांकि कहानी कहने वाला कोई भी नहीं रहेगा।
कहते हैं, रूसी वैज्ञानिकों ने तो तरकीबें खोज ली हैं कि किसी भी दिन, आनेवाला अगर कोई तीसरा महायुद्ध हुआ, तो वह ध्रुव प्रदेश की, साइबेरिया की बर्फ को पिघला देंगे। कोई सात सेकेंड लगेंगे उनको पिघलाने में। एटामिक एक्सप्लोजन से पिघल जाएगी। तत्काल सारी जमीन बाढ़ में डूब जाएगी। वैसी बाढ़ पुराने ग्रंथों में एक दफा और आई है।
ईसाई कहते हैं, कि नोह ने अपनी नाव में लोगों को बचाया। सारी जमीन डूब गई। अध्यात्म की दिशा में जो गहरे काम करते हैं वे कहते हैं, पूरा महाद्वीप, एटलांटिस डूब गया। पूरा महाद्वीप, जो उस समय की शिखर सभ्यता पर था, जैसे आज अमरीका, वैसे एटलांटिस पूरा का पूरा डूब गया। अभी तक यह समझा नहीं जा सका। दुनिया के सभी धर्मों की कथाओं में उस महान बाढ़, ग्रेट फल्ड की बात है। भारतीय कथाओं में, मिस्री कथाओं में, यूनानी कथाओं में, सारी दुनिया की कथाओं में उस बाढ़ की बात है। बाढ़ जरूर हुई होगी। जबसे वैज्ञानिकों को पता चला है कि ध्रुव की बर्फ पिघलाई जा सकती है, तब से यह संदेह है कि वह बाढ़ भी किसी युद्ध का परिणाम थी। वह अपने आप नहीं हो गई थी, किसी महायुद्ध में, किसी महासभ्यता ने बर्फ को पिघला डाला, सारी जमीन डूब गई। वह महाप्रलय थी। वह कल फिर हो सकती है। आदमी का वश कितना है? हिरोशिमा पर बम गिरा, जो जहां था वहीं सूख गया, एक सेकेंड में। एक तस्वीर मेरे मित्र ने मुझे भेजी थी। एक बच्ची सीढ़ियां चढ़ कर अपना होमवर्क करने ऊपर जा रही है, रात नौ बजे वह अपनी किताब, बस्ता, बही के साथ सूख कर दीवाल से चिपक गई। राख हो गई। एक लाख बीस हजार आदमी सेकेंडों में राख हो गए। उनकी भी आकांक्षाएं आप ही जैसी थीं। उनकी भी योजनाएं आप ही जैसी थीं। उन्होंने भी समय का बड़ा भरोसा किया था। उन्होंने भी शरीर का बड़ा बल माना था। वह एक सेकेंड नहीं रुकता। अभी हम यहां बैठ कर बात कर रहे हैं, एक सेकेंड में सब रुक जा सकता है। और कोई उपाय नहीं है शिकायत का।
महावीर कहते हैं, "शरीर है, दुर्बल, काल है निर्दयी। यह जान कर भारंड पक्षी की तरह अप्रमत्त भाव से विचरण करना चाहिए।"
भारंड पक्षी एक मिथ, माइथोलॉजिक, पौराणिक पक्षी है, एक काल्पनिक कवि
की कल्पना है कि भारंड पक्षी मृत्यु से, समय से, जीवन की क्षणभंगुरता से इतना ज्यादा भयभीत है कि वह सोता ही नहीं। वह उड़ता ही रहता है, जागता हुआ।

कि सोए, और कहीं मौत न पकड़ ले, कि सोए और कहीं जीवन समाप्त न हो जाए, कि सोए और कहीं वापस न उठे। काल्पनिक पक्षी है।
तो महावीर कहते हैं, भारंड पक्षी की तरह समय निर्दयी, शरीर दुर्बल, ऐसा जान कर अप्रमत्त-भाव से, बिना बेहोश हुए, होशपूर्वक, विद अवेयरनेस, जागरूकता से जीना ही प्राज्ञ व्यक्ति का, प्रज्ञावान व्यक्ति का लक्षण है।
एक ही सूत्र है कृष्ण का, महावीर का, बुद्ध का, क्राइस्ट का। वह सूत्र
है अप्रमत्त-भाव, अवेयरनेस, होश। इसे हम आगे समझेंगे।

आज इतना ही।
रुकें पांच मिनट, कीर्तन करें, और फिर जाएं!

महावीर-वाणी, भाग 2
दूसरा प्रवचन

अलिप्तता और अनासक्ति का भाव-बोध (अप्रमाद-सूत्रः 2)

वोच्छिन्द सिणेहमप्पणो,
कुमुयं सारइयं व पाणियं
से सव्वसिणेहवज्जिए,
समयं गोयम! मा पमायए।।
तिण्णो हु सि अण्णवं महं,
किं पुण चिट्ठसि तीरमागओ।
अभितुर पारं गमितए,
समयं गोयम! मा पमायए।।

जैसे कमल शरद-काल के निर्मल जल को भी नहीं छूता और अलिप्त रहता है, वैसे ही संसार से अपनी समस्त आसक्तियां मिटा कर सब प्रकार के स्नेहबंधनों से रहित हो जा। अतः गौतम! क्षणमात्र भी प्रमाद मत कर।
तू इस प्रपंचमय विशाल संसार-समुद्र को तैर चुका है। भला किनारे पहुंच
कर तू क्यों अटक रहा है? उस पार पहुंचने के लिए शीघ्रता कर। हे गौतम! क्षणमात्र भी प्रमाद मत कर।

पहले कुछ प्रश्न।
एक मित्र ने पूछा हैः "कल आपने कहा, प्रश्न के उत्तर देने के दो तरीके हैं। एक स्मृति के संग्रह से, दूसरा स्वयं की चेतना से। जब आप उत्तर देते हैं, तब आपका उत्तर चेतना से होता है, या स्मृति से? क्योंकि आप अब तक हजारों किताबें पढ़ चुके हैं और आपकी स्मरण शक्ति भी फोटोग्राफिक है। यदि आपकी चेतना ही उत्तर देने में समर्थ है, तो इतनी विविध किताबें पढ़ने का क्या प्रयोजन है?"

दो तीन बातें समझनी चाहिए। एक, आपके प्रश्न पर निर्भर होता है कि उत्तर चेतना से दिया जा सकता है या स्मृति से। यदि आपका प्रश्न बाह्य जगत से संबंधित है तो चेतना से उत्तर देने का कोई भी उपाय नहीं है। न महावीर दे सकते हैं, न बुद्ध दे सकते हैं, न कोई और दे सकता है। चेतना से तो उत्तर चेतना के संबंध में पूछे गए प्रश्न का ही हो सकता है। अगर महावीर से जाकर पूछें कि कार पंक्चर हो जाती हो तो कैसे ठीक करनी है, तो इसका उत्तर चेतना से नहीं आ सकता। महावीर की स्मृति में हो तो ही आ सकता है।
बाह्य जगत को जानने का सूचनाओं के अतिरिक्त कोई भी उपाय नहीं है। और ठीक ऐसा ही अंतर्जगत को जानने का सूचनाओं के द्वारा कोई उपाय नहीं है। बाहर का जगत जाना जाता है इनफर्मेशन से, सूचनाओं से, और भीतर का जगत नहीं जाना जाता है सूचनाओं से। इसलिए अगर कोई व्यक्ति बाहरी तथ्यों के संबंध में चेतना से उत्तर दे तो वे वैसे ही गलत होंगे जैसे कोई चेतना के संबंध में शास्त्रों से पाई गई सूचनाओं से उत्तर दे। वे दोनों ही गलत होंगे।
हम दोनों तरह की भूल करने में कुशल हैं। हमने सोचा कि चूंकि महावीर या बुद्ध, कृष्ण ज्ञान को उपलब्ध हो चुके हैं, इसलिए अब बाहर के जगत के संबंध में भी उनसे जो हम पूछेंगे, वह भी विज्ञान होने वाला है। वहां हमसे भूल हुई, इसलिए हम विज्ञान को पैदा नहीं कर पाए।
विज्ञान पैदा करना है तो भीतर पूछने का कोई उपाय नहीं है, बाहर के जगत
से ही पूछना पड़ेगा। अगर पदार्थ के संबंध में कुछ जानना है तो पदार्थ से ही पूछना पड़ेगा। वृक्षों के संबंध में कुछ जानना है तो वृक्षों में ही खोजना पड़ेगा। लेकिन हमने इस मुल्क में ऐसा समझा कि जो आत्मज्ञानी हो गया, वह सर्वज्ञ हो गया। इसलिए हमने विज्ञान को कोई जन्म न दिया और हम सारी दुनिया में पिछड़ गए।

महावीर जो भी कहते हैं अंतस के संबंध में, वह उनकी चेतना से आया है।
लेकिन महावीर भी जो बाहर के जगत के संबंध में कहते हैं, वे सूचनाएं हैं।
इसलिए एक और बात समझ लेनी चाहिए।
वे सूचनाएं जो महावीर बाहर के जगत के संबंध में देते हैं, कल गलत हो सकती हैं। क्योंकि महावीर के समय तक बाहर के जगत के संबंध में जो सूचनाएं थीं, वही महावीर देते थे। फिर सूचनाएं बदलेंगी, विज्ञान तो रोज बढ़ता है, बदलता है। नई खोज होती है। तो महावीर ने भी जो बाहर के जगत के संबंध में कहा है, वह कल गलत हो जाएगा। उस कारण महावीर गलत नहीं होते। महावीर तो उसी दिन गलत होंगे जो उन्होंने भीतर के संबंध में कहा है, जब गलत हो जाए। इससे बड़ी तकलीफ होती है।
जीसस ने उस समय जो उपलब्ध सूचनाएं थीं, उसके संबंध में बातें कहीं। कहा कि जमीन चपटी है। क्योंकि उस समय तक यही सूचना थी। जीसस भी नहीं जान सकते थे कि जमीन गोल है। फिर ईसाईयत बड़ी मुश्किल में पड़ गई। जब पता चला कि जमीन गोल है और जमीन चपटी नहीं है तो बड़ा संकट आया। तो ईसाइयत ने पूरी कोशिश की कि जमीन चपटी ही है, क्योंकि जीसस ने कहा है। और जीसस गलत तो कह ही नहीं सकते। इसमें डर था। अगर जीसस एक बात गलत कह सकते हैं तो फिर दूसरी भी गलत हो सकती है, यह संदेह था।
अगर जीसस इतनी गलत बात कह सकते हैं कि जमीन चपटी है गोल की बजाय, तो क्या भरोसा? ईश्वर के संबंध में जो कहते हैं, आत्मा के संबंध में कहते हैं, वह भी गलत कहते हों। जब किसी की एक बात गलत हो जाए तो दूसरी बातों पर भी संदेह निर्मित हो जाता है। इसलिए ईसाइयत ने भरसक कोशिश की कि जो जीसस ने कहा है, सभी सही है। लेकिन उसका परिणाम घातक हुआ। क्योंकि विज्ञान ने जो सिद्ध किया, हजार जीसस भी कहें, उसको गलत नहीं किया जा सकता।
गैलिलियो को सजा दी जाए, सताया जाए, इससे कोई अंतर नहीं पड़ता, तथ्य को झुठलाया नहीं जा सकता। और तब आखिर में, मजबूरी में ईसाइयत को मानना पड़ा कि जमीन गोल है। तब ईसाइयों के मन में ही संदेह उठना शुरू हो गया कि फिर क्या होगा! जीसस जो कहते हैं और चीजों के संबंध में, कहीं वह भी तो गलत नहीं है! महावीर के मानने वाले सोचते हैं कि महावीर ने कहा है कि चंद्रमा देवताओं का आवास है। उस समय तक ऐसी बाहरी जानकारी थी। उस समय तक जो श्रेष्ठतम जानकारी थी, वह महावीर ने दी है। लेकिन यह महावीर के कहने की वजह से सच नहीं होती। यह तो वैज्ञानिक तथ्य है, बाहर का तथ्य है। इसमें महावीर क्या कहते हैं, सिर्फ उनके कहने से सही नहीं होता।
अब जैन मुनि तकलीफ में पड़ गए हैं। क्योंकि चांद पर आदमी उतर गया है, कोई देवता नहीं है। तो अब जैन मुनि उसी दिक्कत में पड़ गए हैं जिस दिक्कत में ईसाइयत पड़ गई थी। अब क्या करें? तो अब वे सिद्ध करने की कोशिश कर रहे हैं! सिद्ध करने की तीन-चार कोशिशें हैं, वह पिटी-पिटाई हैं, वही कोशिशें की जाती हैं। पहली तो यह, कि यह चांद वह चांद ही नहीं है, एक यह कोशिश है। तो कौन सा चांद है? दूसरी यह कोशिश की जा रही है कि इस चांद पर वैज्ञानिक उतरे ही नहीं है, यह झूठ है, यह अफवाह है। यह भी पागलपन है। तीसरी कोशिश यह की जा रही है, कि वे उतर तो गए हैं--एक जैन मुनि कोशिश कर रहे हैं-वे उतर तो गए हैं, अफवाह भी नहीं है, चांद भी यही है, लेकिन वे चांद पर नहीं उतरे हैं। चांद के पास देवी-देवताओं के जो बड़े-बड़े यान, उनके बड़े-बड़े रथ, विराटकाय रथ और यान ठहरे रहते हैं चांद के आस-पास, उन पर उतर गए हैं। उसी को वे समझ रहे हैं कि चांद है।
यह सब पागलपन है। लेकिन इस पागलपन के पीछे तर्क है। तर्क यह है कि अगर महावीर की यह बात गलत होती है, तो बाकी बातों का क्या होगा? तो मैं आपसे कहना चाहता हूं, महावीर, बुद्ध या कृष्ण किसी ने भी बाहर के जगत के संबंध में जो भी कहा है, वह उस समय तक की उपलब्ध जानकारी में जो श्रेष्ठतम था, वही कहा है। वह उस समय तक जो सत्यतर था, वही कहा है। लेकिन, बाहर की जानकारी रोज बढ़ती चली जाती है। और आज नहीं कल, महावीर और बुद्ध से आगे बात निकल जाएगी। जब आगे बात निकल जाएगी तो भक्त को, अनुयायी को परेशान होने की जरूरत नहीं है। एक विभाजन साफ कर लेना चाहिए। वह विभाजन यह कि महावीर ने जो बातें

बाहर के जगत के संबंध में कही हैं, वे सूचनाएं हैं। और महावीर ने जो अंतस-जगत के संबंध में बातें कही हैं, वे अनुभव हैं।
उचित होगा कि हम आर्मस्ट्रांग की बात मान लें चांद के संबंध में, बजाय महावीर की बात के। हम आइंस्टीन की बात मान लें पदार्थ के संबंध में, बजाय कृष्ण के। उसका कारण यह है कि बाहर के जगत में जो खोज चल रही है वह खोज रोज बढ़ती चली जाएगी। आज मैं आपसे जो बातें कह रहा हूं, उसमें जब भी मैं बाहर के जगत के संबंध में कुछ कहता हूं तो वह आज नहीं कल गलत हो जाएगा। गलत हो जाएगा, उससे ज्यादा ठीक खोज लिया जाएगा। लेकिन तब भी जो मैं भीतर के जगत के संबंध में कह रहा हूं, वह गलत नहीं हो जाएगा। वह मैं अपने अनुभव से कह रहा हूं।
सूचना और ज्ञान का अगर यह फासला हम न रख पाए तो आज नहीं कल, बुद्ध, महावीर, कृष्ण सब नासमझ मालूम होने लगेंगे। यह फासला रखना जरूरी है। आपके प्रश्न पर निर्भर करता है कि मैं उत्तर कहां से दे रहा हूं। कुछ उत्तर तो केवल स्मृति से ही दिए जा सकते हैं। क्योंकि बाहर के संबंध में स्मृति ही होती है, ज्ञान नहीं होता है। भीतर के संबंध में ज्ञान होता है, स्मृति नहीं होती। तो आप क्या पूछते हैं, इस पर निर्भर करता है।
दूसरी बात पूछते हैं कि "अगर भीतर का ज्ञान हो गया हो तो फिर शास्त्र, साहित्य, पुस्तक, इसका क्या प्रयोजन है?"
इसका प्रयोजन है, आपके लिए, मेरे लिए नहीं। आज मेरे पास कोई आ जाता है पूछने, या महावीर के पास, या बुद्ध के पास आ जाता था पूछने, चांद के संबंध में, तो महावीर कुछ कहते थे। महावीर को कोई प्रयोजन नहीं है चांद से, लेकिन जो पूछने आया था, उसका प्रयोजन है। लेकिन इसे भी कहने की क्या जरूरत है? कारण हैं। मेरे पास ऐसे लोग आते हैं। कोई फ्रॉयड को पढ़ कर विक्षिप्त हुआ जा रहा है, तो वह मेरे पास आता है। जब तक मैं फ्रॉयड के संबंध में उसे कुछ न कह सकूं तब तक उससे मेरा कोई सेतु निर्मित नहीं होता। जब उसे यह समझ में आ जाता है कि मैं फ्रॉयड को समझता हूं, तभी आगे चर्चा हो पाती है, तभी आगे बात हो पाती है। मेरे पास कोई आदमी आइंस्टीन को समझ कर आता है, और अगर मैं पिटी-पिटाई तीन हजार साल पुरानी फिजिक्स की बातें उससे कहूं, तो मैं तत्काल ही व्यर्थ हो जाता हूं। आगे कोई संबंध ही नहीं जुड़ पाता। अगर मुझे उसे कोई भी आंतरिक सहायता पहुंचानी है तो उसे मैं बाहर के जगत में उतना तो कम से कम मैं जानता ही हूं, जितना वह जानता है, इतना भरोसा दिलाना अत्यंत आवश्यक है। इस भरोसे के बिना उससे गति नहीं हो पाती, उससे संबंध नहीं बन पाता।
आज साधुओं संन्यासियों से आम आदमी का जो संबंध टूट गया है, उसका कारण
यह है कि आम आदमी उनसे ज्यादा जानता है बाहर के जगत के संबंध में। और जब आम आदमी भी उनसे ज्यादा जानता है तो यह भरोसा करना आदमी को मुश्किल होता है कि जिन्हें बाहर के जगत के संबंध में भी कुछ पता नहीं, वह भीतर के संबंध में कुछ जानते होंगे। आज हालत यह है कि आपका साधु आपसे कम जानकार है। महावीर के वक्त का साधु आम आदमी से ज्यादा जानकार था।
आपसे अगर कोई भी संबंध निर्मित करना है, तो पहले तो आपका जो बाह्य ज्ञान है, उससे ही संबंध जुड़ता है और जब तक मैं आपके बाह्य-ज्ञान को व्यर्थ न कर दूं तब तक भीतर की तरफ इशारा असंभव है। अपने लिए नहीं पढ़ता हूं, आपके लिए पढ़ता हूं। उसका पाप आपको लगेगा, मुझको नहीं।
और यह, मैं ऐसा कर रहा हूं, ऐसा नहीं है। बुद्ध या महावीर या कृष्ण सभी
को यही करना पड़ा है। करना ही पड़ेगा। अगर कृष्ण अर्जुन से कम जानते हों बाहर के जगत के संबंध में, तो बात आगे नहीं चल सकती। अगर महावीर गौतम से कम जानते हों बाहर के जगत के संबंध में तो बात आगे नहीं चल सकती। महावीर गौतम से ज्यादा जानते हैं। आपको पता होना चाहिए, गौतम महावीर का प्रमुख शिष्य है, जिसका नाम इस सूत्र में आया है। उसके संबंध में थोड़ा समझना अच्छा होगा, ताकि सूत्र समझा जा सके।
गौतम उस समय का बड़ा पंडित था। हजारों उसके शिष्य थे, जब वह महावीर को मिला, उसके पहले। वह एक प्रसिद्ध ब्राह्मण था। महावीर से विवाद करने ही आया था। गौतम, महावीर से विवाद करने ही आया था। महावीर को पराजित करने ही

आया था। अगर महावीर के पास गौतम से कम जानकारी हो, तो गौतम को रूपांतरित करने का कोई उपाय नहीं था। गौतम पराजित हुआ महावीर की जानकारी से। और गौतम ज्ञान से पराजित नहीं हो सकता था, क्योंकि ज्ञान का तो कोई सवाल ही नहीं था। जानकारी से ही पराजित हो सकता था। जानकारी ही उसकी संपदा थी। जब महावीर से वह जानकारी में हार गया, गिर गया, तभी उसने महावीर की तरफ श्रद्धा की आंख से देखा। और तब महावीर ने कहा कि अब मैं तुझे वह बात कहूंगा, जिसका तुझे कोई पता ही नहीं है। अभी तो मैं वह कह रहा था जिसका तुझे पता है। मैंने तुझसे जो बातें कहीं हैं वह तेरे ज्ञान को गिरा देने के लिए, अब तू अज्ञानी हो गया। अब तेरे पास कोई ज्ञान नहीं है। अब मैं तुझसे वे बातें कहूंगा जिससे तू वस्तुतः ज्ञानी हो सकता है। क्योंकि जो ज्ञान विवाद से गिर जाता है, उसका क्या मूल्य है? जो ज्ञान तर्क से कट जाता है, उसका क्या मूल्य है?
गौतम महावीर के चरणों में गिर गया, उनका शिष्य बना। गौतम इतना प्रभावित हो गया महावीर से, कि आसक्त हो गया, महावीर के प्रति मोह से भर गया। गौतम महावीर का प्रमुखतम शिष्य है, प्रथम शिष्य, श्रेष्ठतम। उनका पहला गणधर है। उनका पहला संदेशवाहक है। लेकिन, गौतम ज्ञान को उपलब्ध नहीं हो सका। गौतम के पीछे हजारों-हजारों लोग दीक्षित हुए और ज्ञान को उपलब्ध हुए, और गौतम ज्ञान को उपलब्ध नहीं हो सका। गौतम महावीर की बातों को ठीक-ठीक लोगों तक पहुंचाने लगा, संदेशवाहक हो गया। जो महावीर कहते थे, वही लोगों तक पहुंचाने लगा। उससे ज्यादा कुशल संदेशवाहक महावीर के पास दूसरा न था। लेकिन वह ज्ञान को उपलब्ध न हो सका। वह उसका पांडित्य बाधा बन गया। वह पहले भी पंडित था, वह अब भी पंडित था। पहले वह महावीर के विरोध में पंडित था, अब महावीर के पक्ष में पंडित हो गया। अब महावीर जो जानते थे, कहते थे, उसे उसने पकड़ लिया और उसका शास्त्र बना लिया। वह उसी को दोहराने लगा। हो सकता है, महावीर से भी बेहतर दोहराने लगा हो। लेकिन ज्ञान को उपलब्ध नहीं हुआ, वह पंडित ही रहा। उसने जिस तरह बाहर की जानकारी इकट्ठी की थी, उसी तरह उसने भीतर की जानकारी भी इकट्ठी कर ली। यह भी जानकारी रही, यह भी ज्ञान न बना।
गौतम बहुत रोता था। वह महावीर से बार-बार कहता था, मेरे पीछे आए लोग, मुझसे कम जानने वाले लोग, साधारण लोग, मेरे जो शिष्य थे वे, आपके पास आकर ज्ञान को उपलब्ध हो गए। यह दीया मेरा कब जलेगा? यह ज्योति मेरी कब पैदा होगी? मैं कब पहुंच पाऊंगा?
जिस दिन महावीर की अंतिम घड़ी आई, उस दिन गौतम को महावीर ने पास के गांव में संदेश देने भेजा था। गौतम लौट रहा है गांव से संदेश देकर, तब राहगीर ने रास्ते में खबर दी कि महावीर निर्वाण को उपलब्ध हो गए। गौतम वहीं छाती पीटकर रोने लगा, सड़क पर बैठ कर। और उसने राहगीरों को पूछा कि वह निर्वाण को उपलब्ध हो गए? मेरा क्या होगा? मैं इतने दिन तक उनके साथ भटका, अभी तक मुझे तो वह किरण मिली नहीं। अभी तो मैं सिर्फ उधार, वह जो कहते थे, वही लोगों को कहे चला जा रहा हूं। मुझे वह हुआ नहीं, जिसकी वह बात करते थे। अब क्या होगा? उनके साथ न हो सका, उनके बिना अब क्या होगा। मैं भटका, मैं डूबा। अब मैं अनंत काल तक भटकूंगा। वैसा शिक्षक अब कहां? वैसा गुरु अब कहां मिलेगा? क्या मेरे लिए भी उन्होंने कोई संदेश स्मरण किया है, और कैसी कठोरता की उन्होंने मुझ पर? जब जाने की घड़ी थी तो मुझे दूर क्यों भेज दिया?
तो राहगीरों ने यह सूत्र उसको कहा है। यह जो सूत्र है, राहगीरों ने कहा है। राहगीरों ने कहा कि तेरा उन्होंने स्मरण किया और उन्होंने कहा है कि गौतम को यह कह देना। गौतम यहां मौजूद नहीं है, गौतम को यह कह देना। यह जो सूत्र है, यह गौतम के लिए कहलाया गया है।
"जैसे कमल शरद-काल के निर्मल जल को भी नहीं छूता और अलिप्त रहता है वैसे ही संसार से अपनी समस्त आसक्तियां मिटा कर सब प्रकार के स्नेह-बंधनों से रहित हो जा। अतः गौतम! क्षण मात्र भी प्रमाद मत कर।"
"तू इस प्रपंचमय विशाल संसार-समुद्र को तैर चुका, भला किनारे पहुंच कर
तू क्यों अटक गया है। उस पार पहुंचने के लिए शीघ्रता कर। हे गौतम! क्षणमात्र भी प्रमाद न कर।"

ये जो आखिरी शब्द हैं कि तू सारे संसार के सागर को पार कर गया--गौतम पत्नी को छोड़ आया, बच्चों को छोड़ आया, धन, प्रतिष्ठा, पद। प्रख्यात था, इतने लोग जानते थे, सैकड़ों लोगों का गुरु था, उस सबको छोड़ कर महावीर के चरणों में गिर गया, सब छोड़ आया। तो महावीर कहते हैं, तूने पूरे सागर को छोड़ दिया गौतम, लेकिन अब तू किनारे को पकड़ कर अटक गया। तूने मुझे पकड़ लिया। तूने सब छोड़ दिया, तूने महावीर को पकड़ लिया। तू किनारा भी छोड़ दे, तू मुझे भी छोड़ दे। जब तू सब छोड़ चुका तो मुझे क्यों पकड़ लिया? मुझे भी छोड़ दे।
जो श्रेष्ठतम गुरु हैं, उनका अंतिम काम यही है कि जब उनका शिष्य सब छोड़ कर उन्हें पकड़ ले, तो तब तक तो वे पकड़नें दें जब तक यह पकड़ना शेष को छोड़ने में सहयोगी हो, और जब सब छूट जाए तब वे अपने से भी छूटने में शिष्य को साथ दें। जो गुरु अपने से शिष्य को नहीं छुड़ा पाता, वह गुरु नहीं है। यह महावीर का वचन है, कि अब तू मुझे भी छोड़ दे, किनारे को भी छोड़ दे। सब छोड़ चुका, अब नदी भी पार कर गया, अब किनारे को पकड़ कर भी नदी में अटका हुआ है, नदी को नहीं पकड़े हुए है। किनारे को पकड़े हुए है। किनारा नदी नहीं है। लेकिन कोई आदमी किनारे को पकड़ कर भी तो नदी में हो सकता है। और फिर किनारा भी बाधा बन जाएगा। किनारा चढ़ने को है, बाधा बनने को नहीं। इसे भी छोड़ दे और इसके भी पार हो जा।
इस सूत्र को हम समझेंगे। उसके पहले एक दो सवाल और हैं।
जिन मित्र ने यह पूछा हैः "ज्ञान और स्मृति का, वे ठीक से समझ लें। स्मृति व्यर्थ नहीं है। स्मृति सार्थक है बाहर के जगत के लिए। पांडित्य व्यर्थ नहीं है, सार्थक है, बाहर के जगत के लिए। भीतर के जगत के लिए व्यर्थ है। मगर उलटी बात, इससे विपरीत बात भी सही है।"
अंतःप्रज्ञा भीतर जगत के लिए सार्थक है, लेकिन बाहर के जगत के लिए सार्थक नहीं है। विज्ञान बाहर के जगत के लिए, धर्म भीतर के जगत के लिए। विज्ञान है स्मृति, धर्म है अनुभव। इसलिए विज्ञान दूसरों के सहारे बढ़ता है, धर्म केवल अपने सहारे। अगर हम न्यूटन को हटा लें तो आइंस्टीन पैदा नहीं हो सकता। हालांकि मजे की बात है कि आइंस्टीन न्यूटन को ही गलत करके आगे बढ़ता है, लेकिन फिर भी न्यूटन के बिना आगे नहीं बढ़ सकता। न्यूटन ने जो कहा है, उसके ही आधार पर आइंस्टीन काम शुरू करता है। फिर पाता है कि वह गलत है। तो फिर छांटता है। लेकिन अगर न्यूटन हुआ ही न हो तो आइंस्टीन कभी नहीं हो सकता, क्योंकि बाहर का ज्ञान सामूहिक है, पूरे समूह पर निर्भर है।
ऐसा समझ लें कि अगर हम विज्ञान की सारी किताबें नष्ट कर दें, तो क्या
आप समझते हैं कि आइंस्टीन पैदा हो सकेगा, बिल्कुल पैदा नहीं हो सकेगा। अ ब स से शुरू करना पड़ेगा। अगर हम विज्ञान की सब किताबें नष्ट कर दें तो क्या आप सोचते हैं, अचानक कोई आदमी हवाई जहाज बना लेगा? नहीं बना सकता। बैलगाड़ी के चक्के से शुरू करना पड़ेगा, और कोई दस हजार साल लगेंगे, बैलगाड़ी के चक्के से हवाई जहाज तक आने में। और यह दस हजार साल में एक आदमी का काम नहीं होने वाला है, हजारों लोग काम करेंगे। विज्ञान परंपरा है, ट्रेडिशन है। हजारों लोगों के श्रम का परिणाम है।
धर्म? महावीर न हों, बुद्ध न हों, तो भी आप महावीर हो सकते हैं। कोई बाधा नहीं है। जरा भी बाधा नहीं है। क्योंकि मेरे महावीर या मेरे बुद्ध होने में महावीर और बुद्ध के ऊपर उनके कंधे पर खड़े होने की कोई जरूरत नहीं है। कोई खड़ा हो भी नहीं सकता। धर्म के जगत में हर आदमी अपने पैर पर खड़ा होता है, विज्ञान के जगत में हर आदमी दूसरे के कंधे पर खड़ा होता है। इसलिए विज्ञान की शिक्षा दी जा सकती है, धर्म की शिक्षा नहीं दी जा सकती। विज्ञान की शिक्षा हमें देनी ही पड़ेगी। अगर हम एक बच्चे को गणित न सिखाएं, तो कैसे समझेगा आइंस्टीन को?
धर्म का मामला उलटा है। अगर हम एक बच्चे को बहुत धर्म सिखा दें तो फिर महावीर को न समझ सकेगा। धर्म की कोई शिक्षा नहीं हो सकती। शिक्षा बाहर की होती है, भीतर की नहीं होती, भीतर की साधना होती है। बाहर की शिक्षा होती है। शिक्षा से स्मृति प्रबल होती है, साधना से ज्ञान के द्वार टूटते हैं। इसको और इस तरह से समझ लें--कि बाहर के संबंध में हम जो जानते हैं वह नई बात है, जो कल पता नहीं थी और अगर हम खोजते न तो कभी पता न चलती। भीतर के संबंध

में जो हम जानते हैं वह सिर्फ दबी थी। पता थी गहरे में। खोज लेने पर जब हम उसे पाते हैं तो वह कोई नई चीज नहीं है। बुद्ध से पूछें, महावीर से पूछें, वे कहेंगे, जो हमने पाया, वह मिला ही हुआ था। सिर्फ हमारा ध्यान उस पर नहीं था।
आपके घर में हीरा पड़ा हो, रोशनी न हो, दीया जले, रोशनी हो जाए, हीरा मिल जाए तब आप ऐसा नहीं कहेंगे कि हीरा कोई नई चीज है जो हमारे घर में जुड़ गई, थी ही घर में। प्रकाश नहीं था, अंधेरा था, दिखाई नहीं पड़ता था।
आत्म-ज्ञान आपके पास है, सिर्फ ध्यान उस पर पड़ जाए। लेकिन विज्ञान आपके पास नहीं है, उसे खोजना पड़ता है। जैसे हीरे को खदान से खोज कर, निकाल कर घर लाना पड़े। इस फर्क के कारण विज्ञान सीखा जा सकता है। जो खदान तक गए हैं, जिन्होंने हीरा खोदा है, कैसे लाए हैं, क्या है तरकीब? वह सब सीखी जा सकती है। धर्म सीखा नहीं जा सकता, साधा जा सकता है। साधने और सीखने में बुनियादी फर्क है। सीखना, सूचनाओं का संग्रह है। साधना, जीवन का रूपांतरण है। अपने को बदलना होता है। इसलिए कम पढ़ा लिखा आदमी भी धार्मिक हो सकता है। लेकिन कम पढ़ा लिखा आदमी वैज्ञानिक नहीं हो पाता। बिल्कुल साधारण आदमी, जो बाहर के जगत में कुछ भी नहीं जानता है, वह भी कबीर हो सकता है, कृष्ण हो सकता है, क्राइस्ट हो सकता है।
क्राइस्ट खुद एक बढ़ई के लड़के हैं, कबीर एक जुलाहे के, कुछ जानकारी बाहर की नहीं है। कोई पांडित्य नहीं है, कोई बड़ा संग्रह नहीं है, फिर भी अंतःप्रज्ञा का द्वार खुल सकता है। क्योंकि जो पाने जा रहे हैं, वह भीतर छिपा ही हुआ है, थोड़े से खोदने की बात है। हीरा पास है, मुट्ठी बंद है, उसे खोल लेने की बात है। यह जो मुट्ठी खोलना है, यह साधना है। हीरा क्या है, कहां छिपा है, किस खदान में मिलेगा, कैसे खोदा जाएगा, इन सबकी जानकारी बाह्य सूचना है। शास्त्रों में अगर हम यह भेद कर लें तो हम शास्त्रों को बचाने में सहयोगी हो जायेंगे, अन्यथा हमारे सब शास्त्र डूब जाएंगे। क्योंकि कृष्ण के मुंह से ऐसी बातें निकलती हैं जो जानकारी की हैं। वह गलत होंगी आज नहीं कल। महावीर ऐसी बातें बोलते हैं, जो जानकारी की हैं, वह गलत हो जाएंगी।
विज्ञान के जगत में कोई कभी सदा सही नहीं हो सकता। रोज विज्ञान आगे बढ़ेगा और अतीत को गलत करता जाएगा। बुद्ध ने ऐसी बातें कही हैं जो गलत हो जाएंगी। जीसस ने, मोहम्मद ने, ऐसी बातें कही हैं जो गलत हो जाएंगी। लेकिन इससे कोई भी धर्म का संबंध नहीं है। धर्मशास्त्र में दोनों बातें हैं, वे भी जो भीतर से आई हैं, और वे भी जो बाहर से आई हैं। अगर भविष्य में हमें धर्मशास्त्र की प्रतिष्ठा बचानी हो तो हमें धर्मशास्त्र के विभाजन करने शुरू कर देने चाहिए। जानकारी एक तरफ हटा देनी चाहिए, अनुभव एक तरफ।
अनुभव सदा सही रहेगा, जानकारी सदा सही नहीं रहेगी।
तो मैं कुछ जानकारी की बातें आपसे कहता हूं। जरूरी नहीं है कि आपसे कहूं, और आपकी तैयारी बढ़ जाए तो नहीं कहूंगा। लेकिन जहां आप हैं वहां जो जानकारी की बातें हैं वही आपकी समझ में आती हैं। वह जो अनुभव की बातें कहता हूं वह तो आपको सुनाई ही नहीं पड़तीं। इस आशा में जानकारी की बात कहता हूं कि शायद उसी के बीच में एकाध अनुभव की बात भी आपके भीतर प्रवेश हो जाए। वह जानकारी की बात करीब-करीब ऐसी है जैसी एक कड़वी दवा की गोली पर थोड़ी शक्कर लगा दी जाए। वह शक्कर देने के लिए आपको नहीं लगाई गई है, उस शक्कर के पीछे कुछ छिपा है जो शायद साथ चला जाए। अगर आप समझदार हैं तो शक्कर लगाने की जरूरत नहीं है, दवा सीधी ही दी जा सकती है। लेकिन दवा थोड़ी कड़वी होगी। उसको समझदार ले सकेगा, बाल-बुद्धि के लोग नहीं ले सकेंगे।
सत्य, वह जो अनुभव का सत्य है वह थोड़ा कड़वा होगा। क्योंकि वह आपकी जिंदगी के विपरीत होगा। उसे आप तक पहुंचाना हो तो जानकारी केवल एक साधन है।
एक मित्र ने पूछा है कि क्या सिद्ध पुरुष को भी सोए हुए लोगों के बीच रहने में खतरा है, या केवल साधकों के लिए यह निर्देश है?
सिद्ध पुरुष को कोई खतरा नहीं है, क्योंकि वह मिट ही गया। खतरा तो उसको है जो अभी है। ऐसा समझें, कि क्या बीमारों के बीच मरे हुए आदमी को

रहने में कोई खतरा है? कोई बीमारी न लग जाए। लगेगी नहीं अब। मरे हुए आदमी को बीमारी नहीं लगती। चारों तरफ प्लेग हो, चारों तरफ हैजा हो, मरे हुए आदमी को बिठा दें बीच में आसन लगाकर, वे मजे से बैठे रहेंगे। न हैजा पकड़ेगा, न प्लेग पकड़ेगी। क्योंकि बीमारी लगने के लिए होना जरूरी है, पहली शर्त। वह मरा हुआ आदमी है ही नहीं अब। लगेगी किसको? सिद्ध पुरुष को तो कोई खतरा नहीं है। क्योंकि सिद्ध पुरुष एक गहरे अर्थों में मर गया है, भीतर से वह अहंकार मर गया, जिसको बीमारियां लगती हैं। लोभ लगता है, क्रोध लगता है। वह अहंकार अब नहीं है। अब सिद्ध पुरुष को कोई खतरा नहीं है। सिद्ध पुरुष का अर्थ ही यह है कि जो अब नहीं है। खतरा तो रास्ते पर है। जब तक आप सिद्ध नहीं हो गए हैं तब तक खतरा है।
मगर एक बड़े मजे की बात है अगर आपको ऐसा पता चलता है कि मैं सिद्ध हो गया हूं, तो अभी खतरा है। क्योंकि अगर आपको पता चलता है कि मैं मर गया हूं तो अभी आप जिंदा हैं। आंख बंद करके बैठे और आप सोच रहे हैं कि मैं मर गया हूं, अब मुझे कोई बीमारी लगने वाली नहीं है तो आप पक्का समझना, अभी सावधानी बरतें। अभी काफी जिंदा हैं, अभी बीमारी लगेगी।
सिद्ध पुरुष का अर्थ है--जो हवा पानी की तरह हो गया। अब जिसे कुछ भी नहीं है, जिसे यह भी नहीं है कि मैं सिद्ध पुरुष हो गया हूं। ऐसा भाव ही मैं का जहां खो गया है वहां कोई बीमारी नहीं है। क्योंकि बीमारी लगने के लिए मैं की पकड़ने की क्षमता चाहिए, और मैं बीमारी पकड़ने का मैगनेट है। वह जो मैं का भाव है, जो अहम है, वह है मैगनेट, वह बीमारियों को खींचता है। और आप ऐसा मत सोचना कि दूसरा ही आपको बीमारी दे देता है। आप लेने के लिए तैयार होते हैं तभी देता है।
आपने कभी ख्याल किया होगा, प्लेग है और डाक्टर घूमता रहता है और उसको प्लेग नहीं पकड़ती, और आपको पकड़ लेती है। क्या मामला है? खुद चिकित्सक बहुत परेशान हुए हैं इस बात से कि डाक्टर है, वहीं घूम रहा है। दिन भर हजारों मरीजों की सेवा कर रहा है, इंजेक्शन लगा रहा है, भाग-दौड़ कर रहा है। उन्हीं कीटाणुओं के बीच में भटक रहा है। जहां आपको बीमारी पकड़ती है, उसे बीमारी नहीं पकड़ती। कारण क्या है? कारण सिर्फ एक है कि डाक्टर की उत्सुकता मरीज में है, अपने में नहीं है। इसलिए मैं क्षीण हो जाता है। वह उत्सुक है दूसरे को ठीक करने में। वह इतना व्यस्त है दूसरे को ठीक करने में कि उसके होने की उसे सुविधा ही नहीं है जहां बीमारी पकड़ती है। वह नॉन-रिसेप्टिव हो जाता है, क्योंकि उसको पता ही नहीं रहता है कि मैं हूं।
जब बीमारी जोर की होती है, महामारी होती है, तो डाक्टर अपने को भूल ही जाता है। न भूले, तो बीमार पड़ेगा। यह भूलना बाहर की बीमारी तक को रोक देता है। वे जो दूसरे लोग हैं चारों तरफ, वे भयभीत हो जाते हैं कि कहीं बीमारी मुझे न पकड़ जाए। यह कहीं बीमारी मुझे न पकड़ जाए, यह मैं भाव ही बीमारी को पकड़ने का द्वार बन जाता है। रिसेप्टिव हो जाता है।
यह तो बाहर की बीमारी के संबंध में है, भीतर की बीमारी के संबंध में तो
और जटिलता हो जाती है।
ये सारी सूचनाएं साधक के लिए हैं। यही सूचनाएं नहीं, सूचनाएं मात्र साधक के लिए हैं। सिद्ध पुरुष के लिए क्या सूचना है। सिद्ध पुरुष का अर्थ ही यह है कि जिसको करने को अब कुछ न बचा। सिद्ध का अर्थ क्या होता है? सिद्ध का अर्थ होता है जिसे करने को कुछ न बचा, सब पूरा हो गया, सब सिद्ध हो गया। उसके लिए तो कोई भी सूचना नहीं है। ये सारी सूचनाएं मार्ग पर चलने वाले के लिए हैं, साधक के लिए हैं।
एक और प्रश्न है।
आशुप्रज्ञ होना प्रकृति-दत्त आकस्मिक घटना है या साधना-जन्य परिणाम? प्रकृति-दत्त घटना नहीं है, आकस्मिक घटना नहीं है, साधना-जन्य परिणाम है। प्रकृति है अचेतन। आपको भूख लगती है, यह प्रकृति-दत्त है। आपको प्यास लगती है, यह प्रकृति-दत्त है। आप सोते हैं रात, यह प्रकृति-दत्त है। आप जागते हैं सुबह, यह प्रकृति-दत्त है। यह सब प्राकृतिक है, यह अचेतन है। इसमें आपको कुछ भी नहीं करना पड़ा है, यह आपने पाया है। यह आपके शरीर के साथ जुड़ा हुआ है। लेकिन एक आदमी ध्यान करता है, यह प्रकृति-दत्त नहीं है। अगर

आदमी न करे तो अपने आप यह कभी भी न होगा। भूख लगेगी अपने आप, प्यास लगेगी अपने आप, ध्यान अपने आप नहीं लगेगा। कामवासना जगेगी अपने आप, मोह के बंधन निर्मित हो जाएंगे अपने आप, लोभ पकड़ेगा, क्रोध पकड़ेगा अपने आप। धर्म नहीं पकड़ेगा अपने आप। इसे ठीक से समझ लें।
धर्म निर्णय है, संकल्प है, चेष्टा है, इनटेंशन है। बाकी सब इंस्टिंक्ट है। बाकी सब प्रकृति है। आपके जीवन में जो अपने आप हो रहा है, वह प्रकृति है। जो आप करेंगे तो ही होगा और तो भी बड़ी मुश्किल से होगा। वह धर्म है। जो आप करेंगे, तभी होगा, बड़ी मुश्किल से होगा क्योंकि आपकी प्रकृति पूरा विरोध करेगी कि यह क्या कर रहे हो? इसकी क्या जरूरत है? पेट कहेगा, ध्यान की क्या जरूरत है? भोजन की जरूरत है। शरीर कहेगा, नींद की जरूरत है, ध्यान की क्या जरूरत है? काम-ग्रंथियां कहेंगी कि काम की, प्रेम की जरूरत है। धर्म की क्या जरूरत है?
आपके शरीर को अगर सर्जन के टेबल पर रखकर पूरा परीक्षण किया जाए तो कहीं भी धर्म की कोई जरूरत नहीं मिलेगी, किसी ग्रंथि में। सब जरूरतें मिल जाएंगी। किडनी की जरूरत है, फेफड़े की जरूरत है, मस्तिष्क की जरूरत है, वह सब जरूरतें सर्जन काट कर अलग-अलग बता देगा कि किस अंग की क्या जरूरत है, लेकिन एक भी अंग मनुष्य के शरीर में ऐसा नहीं जिसकी जरूरत धर्म है।
तो धर्म बिल्कुल गैरजरूरत है। इसीलिए तो जो आदमी केवल शरीर की भाषा में सोचता है वह कहता है, धर्म पागलपन है, शरीर के लिए कोई जरूरत है नहीं। बिहेवियरिस्ट्स हैं, शरीरवादी मनोवैज्ञानिक हैं; वे कहते हैं, क्या पागलपन है? धर्म की कोई जरूरत ही नहीं है। और जरूरतें हैं, धर्म की क्या जरूरत है? समाजवादी हैं, कम्युनिस्ट हैं, वे कहते हैं, धर्म की क्या जरूरत है? और सब जरूरतें हैं। और जरूरतें समझ में आती हैं। क्योंकि उनको खोजा जा सकता है। धर्म की जरूरत समझ में नहीं आती। कहीं कोई कारण नहीं है। इसलिए पशुओं में सब है जो आदमी में है। सिर्फ धर्म नहीं है। और जिस आदमी के जीवन में धर्म नहीं है, उसको अपने को आदमी कहने का कोई हक नहीं है। क्योंकि पशु के जीवन में सब है जो आदमी के जीवन में है। ऐसे आदमी के जीवन में, जिसके जीवन में धर्म नहीं है, वह कहां से अपने को अलग करेगा पशु से?
पशु प्रकृति-जन्य है। आदमी भी प्रकृति-जन्य है, जब तक धर्म उसके जीवन में प्रवेश नहीं करता। जिस क्षण धर्म जीवन में प्रवेश करता है, उसी दिन मनुष्य प्रकृति से परमात्मा की तरफ उठने लगा।
प्रकृति है निम्नतम, अचेतन छोर; परमात्मा है अंतिम, आत्यंतिक चेतन छोर। जो अपने आप हो रहा है, अचेतना में हो रहा है, वह है प्रकृति। जो होगा चेष्टा से, जागरूक प्रयत्न से, वह है धर्म। और जिस दिन यह प्रश्न इतना बड़ा हो जाएगा कि अचेतन कुछ भी न रह जाएगा, भूख भी लगेगी तो मेरी आज्ञा से, प्यास भी लगेगी तो मेरी आज्ञा से, चलूंगा तो मेरी आज्ञा से, उठूंगा तो मेरी आज्ञा से, शरीर भी जिस दिन प्रकृति न रह जाएगा, अनुशासन बन जाएगा, उस दिन व्यक्ति परमात्मा हो गया।
अभी तो हम जो भी कर रहे हैं, सोचते भी हैं तो, मंदिर भी जाते हैं तो, प्रार्थना भी करते हैं तो, ख्याल कर लेना, प्रकृति-जन्य तो नहीं है। हमारा तो धर्म भी प्रकृति-जन्य होगा। इसलिए धर्म नहीं होगा, धोखा होगा। जिसको हम धर्म कहते हैं, वह धोखा है धर्म का। इसलिए जब आप दुख में होते हैं तो धर्म की याद आती है। सुख में नहीं आती।
बर्ट्रेंड ने तो कहा है कि जब तक दुख है, तभी तक धर्मगुरु भगवान से प्रार्थना करें कि बचे हुए हैं। जिस दिन दुख नहीं होगा उस दिन धर्मगुरु नहीं होगा। वह ठीक कहता है। निन्यानबे प्रतिशत बात ठीक है। कम से कम आपके धर्मगुरु तो नहीं बच सकते, अगर दुख समाप्त हो जाए। क्योंकि दुखी आदमी उनके पास जाता है। दुख जब होता है तब आपको धर्म की याद आती है, क्यों? क्योंकि आप सोचते हैं कि अब यह दुख मिटता नहीं दिखता है, अब कोई उपाय नहीं दिखता मिटाने का, तो अब धर्म की तलाश में जायें। जब आप सुखी होते हैं तो निश्चिंत हैं, तब कोई बात नहीं। आप ही अपने मसले हल कर रहे हैं, परमात्मा की कोई जरूरत नहीं है। जब आपकी समस्या कहीं ऐसी उलझ जाती है--प्रकृतिगत समस्या-- जो आप हल नहीं कर पाते, तब आप परमात्मा की तरफ जाते हैं।

आदमी की असमर्थता उसका धर्म है? आदमी की नपुंसकता उसका धर्म है? उसकी विवशता? जब वह कुछ नहीं कर पाता तब वह परमात्मा की तरफ चल पड़ता है। तब तो उसका मतलब यह हुआ कि वह परमात्मा की तरफ भी किसी प्रकृति-जन्य प्यास या भूख को पूरा करने जा रहा है। अगर आप परमात्मा के सामने हाथ जोड़ कर प्रार्थना करते हैं कि मेरे लड़के की नौकरी लगा दे, कि मेरी पत्नी की बीमारी ठीक कर दे, तो उसका अर्थ क्या हुआ? उसका अर्थ हुआ कि आपकी भूख तो प्रकृति-जन्य है, और आप परमात्मा के सामने हाथ जोड़कर खड़े हैं। आप परमात्मा से भी थोड़ी सेवा लेने की उत्सुकता रखते हैं। थोड़ा अनुगृहीत करना चाहते हैं उसको भी, कि थोड़ा सेवा का अवसर देना चाहते हैं। इसका, ऐसे धर्म का कोई भी संबंध धर्म से नहीं है।
यह जो आशुप्रज्ञ होना है, यह प्रकृति-दत्त नहीं है। यह आपकी इंस्टिंक्ट, आपकी मूल वृत्तियों से पैदा नहीं होगा। कब होगा पैदा यह? अगर यह प्रकृति से पैदा नहीं होगा तो फिर पैदा कैसे होगा? यह कठिन बात मालूम होती है। यह तब पैदा होता है जब हम प्रकृति से ऊब जाते हैं, यह तब पैदा होता है जब हम प्रकृति से भर जाते हैं। यह तब पैदा होता है जब हम देख लेते हैं कि प्रकृति में कुछ भी पाने को नहीं है। यह दुख से पैदा नहीं होता। जब हमें सुख भी दुख जैसा मालूम होने लगता है, तब पैदा होता है। यह अतृप्ति से पैदा नहीं होता है। इसे थोड़ा ठीक से समझ लें।
प्रकृति की सब भूख प्यास कमी से पैदा होती है। शरीर में पानी की कमी
है तो प्यास पैदा होती है। शरीर में भोजन की कमी है तो भूख पैदा होती है।
शरीर में वीर्य ऊर्जा ज्यादा इकट्ठी हो गई तो कामवासना पैदा होती है।
फेंको उसे बाहर, उलीचो उसे, फेंक दो उसे, खाली हो जाओ, ताकि फिर भर सको।
शरीर की दो तरह की जरूरतें हैं--भरने की और निकालने की। जो चीज नहीं है उसे भरो, जो चीज ज्यादा हो जाए उसे निकालो। यह शरीर की कुल दुनिया है।
वीर्य भी एक मल है। जब ज्यादा हो जाए तो उसे फेंक दो बाहर, नहीं तो वह बोझिल करेगा, सिर को भारी इसलिए फ्रॉयड ने तो कहा है कि संभोग से ज्यादा अच्छा ट्रैंक्वेलाइजर कोई भी नहीं है। नींद के लिए अच्छी दवा है। क्योंकि अगर शक्ति भीतर है तो सो न पाएंगे। उसे फेंक दो बाहर, हलके हो जाओ, खाली हो जाओ। नींद लग जाएगी।
तो दो ही जरूरतें है--जब कमी हो तो भरो, जब ज्यादा हो जाए तो निकाल दो। इसलिए दुनिया में इतनी कामवासना दिखाई पड़ रही है आज, उसका कारण यह है कि भरने की जरूरतें काफी दूर तक काफी लोगों की पूरी हो गई हैं, निकालने की जरूरत बढ़ गई है, भूखा आदमी है, गरीब आदमी है, मकान नहीं, कपड़ा नहीं, प्रतिपल भरने की चिंता है, तो निकालने की चिंता का सवाल नहीं उठता। इसलिए आज अगर अमरीका में एकदम कामुकता है, तो उसका कारण आप यह मत समझना कि अमरीका अनैतिक हो गया है। जिस दिन आप भी इतनी समृद्धि में होंगे, इतनी ही कामुकता होगी। क्योंकि जब भरने का काम पूरा हो गया, तब निकालने का ही काम बचता है। जब भोजन की कोई जरूरत न रही, तो सिर्फ संभोग की ही, सेक्स की ही जरूरत रह जाती है, और कोई जरूरत बचती नहीं है।
भोजन है भरना, और संभोग है निकालना। तो जब भोजन ज्यादा होगा, तो तकलीफ शुरू होगी। इसलिए सभी सभ्यताएं जब भोजन की जरूरत पूरी कर लेती हैं, तब कामुक हो जाती हैं। इसलिए हम बड़े हैरान होते हैं कि समृद्ध लोग अनैतिक क्यों हो जाते हैं! गरीब आदमी सोचता है, हम बड़े नैतिक हैं। अपनी पत्नी से तृप्त हैं। ये बड़े आदमी, समृद्ध आदमी, तृप्त क्यों नहीं होते, शांत क्यों नहीं हो जाते? ये क्यों भागते रहते हैं।
मोरक्को का सुलतान था, उसके पास अनगिनत पत्नियां थीं, कभी गिनी नहीं गईं। लेकिन अनगिनत होंगी--उसके पास दस हजार बच्चे पैदा करने की कामना थी, उसकी। काफी दूर तक सफल हुआ। एक हजार छप्पन लड़के और लड़कियां उसने पैदा किए। गरीब आदमी को लगेगा, यह क्या पागलपन है! लेकिन एक सुलतान को नहीं लगेगा। भरने की जरूरतें सब पूरी हैं, जरूरत से ज्यादा पूरी हैं, अब निकालने की ही जरूरत रह गई है।
यह जो स्थिति है, यह तो प्रकृतिगत है। धर्म कहां से शुरू होता है? धर्म वहां से शुरू होता है, जहां भरना भी व्यर्थ हो गया, निकालना भी व्यर्थ हो

गया। जहां दुख तो व्यर्थ हो ही गए, सुख भी व्यर्थ हो गए। जहां सारी प्रकृति व्यर्थ मालूम होने लगी।
एक स्त्री से असंतुष्ट हैं तो आप दूसरी स्त्री की तलाश पर जायेंगे। लेकिन अगर स्त्री-मात्र से असंतुष्ट हो गए, तब धर्म का प्रारंभ होगा। इस भोजन से असंतुष्ट हैं, दूसरे भोजन की तलाश में जाएंगे। लेकिन भोजन मात्र, एक व्यर्थ का क्रम हो गया, तो धर्म की खोज शुरू होगी। यह सुख भोग लिया, इससे असंतुष्ट हो गए तो दूसरे सुख की खोज शुरू होगी। सब सुख देखे, और व्यर्थ पाए, तो धर्म की खोज शुरू होगी। जहां प्रकृति व्यर्थता की जगह पहुंच जाती है, मीनिंगलेसनेस, वहां आदमी आशुप्रज्ञता की तरफ, उस अंतस चैतन्य, उस भीतरी ज्योति की तरफ यात्रा करता है। क्यों?
क्योंकि प्रकृति है बाहर। जब बाहर से कोई व्यर्थता अनुभव करता है तो भीतर की तरफ आना शुरू होता है। एक है जगत, जो खाली है उसे भरो, जो भरा है उसे खाली करो ताकि फिर भर सको, ताकि फिर खाली कर सको। एक है जगत इस सर्कल, विसियस सर्कल का। और एक और जगत है, कि बाहर व्यर्थ हो गया, भीतर की तरफ चलो। प्रकृति व्यर्थ हो गई, परमात्मा की तरफ चलो।
इसलिए प्रकृति की ही मांग के लिए अगर आप परमात्मा की तरफ जाते हों, तो जानना कि अभी गए नहीं। जिस दिन आप परमात्मा के लिए ही परमात्मा की तरफ जाते हैं, उस दिन जानना कि धर्म का प्रारंभ हुआ।
अब हम सूत्र लें।
"जैसे कमल शरद-काल के निर्मल जल को भी नहीं छूता, और अलिप्त रहता है।"
कमल को देखा आपने? कमल हमारा बड़ा पुराना प्रतीक है। महावीर बात करते, कृष्ण बात करते, बुद्ध बात करते, उनकी बातों में कितने ही फर्क पड़ते हों; लेकिन कमल जरूर आ जाता है।
इस मुल्क में तीन बड़े धर्म पैदा हुए, हिन्दू, जैन, बौद्ध, और फिर सैकड़ों महत्वपूर्ण संप्रदाय पैदा हुए। लेकिन अब तक एक सदगुरु ऐसा नहीं हुआ जो कमल को भूल गया हो। कमल की बात करनी ही पड़ती है। कुछ मामला है, कुछ एक सत्य भीतर सब धर्मों की आवाज के भीतर दौड़ता हुआ एक स्वर है--चाहे कोई भी हो सिद्धांत। अलिप्तता मार्ग है, इसलिए कमल की बात आ जाती है।
भारत के बाहर जिन मुल्कों में कमल नहीं होता, उन मुल्कों के सदगुरुओं
को बड़ी कठिनाई रही है। कोई उदाहरण नहीं है उनके पास संन्यासी का, कि संन्यासी का क्या अर्थ है?
संन्यासी का अर्थ हैः कमलवत। कमल के पत्ते पर बूंद गिरती है पानी की, पड़ी रहती है, मोती की तरह चमकती है। जैसी पानी में भी कभी नहीं चमकी थी, वैसी कमल के पत्ते पर चमकती है। मोती हो जाती है। जब सूरज की किरण पड़ती, तो कोई मोती भी क्या; फीका हो जाए, वैसी कमल के पत्ते पर बूंद चमकती है। लेकिन पत्ते को कहीं छूती नहीं, पत्ता अलिप्त ही बना रहता है। ऐसी चमकदार बूंद, ऐसा मोती जैसा अस्तित्व उसका, और पत्ता अलिप्त बना रहता है। भागता भी नहीं छोड़ कर पानी को, पानी में ही रहता है। पानी में ही उठता है, पानी के ही ऊपर जाता है और कभी छूता नहीं, अछूता बना रहता है, कुआंरा बना रहता है।
एक यह अलिप्तता का जो भाव है, यह संसार के बीच संन्यास का अर्थ है। इसलिए कमल प्रतीक हो गया। पर कमल एक और कारण से भी प्रतीक है। मिट्टी से पैदा होता है, गंदे कीचड़ से पैदा होता है। ऊपर उठ जाता है और कमल हो जाता है। कमल में और कीचड़ में कितना फासला है! जितना फासला हो सकता है दो चीजों में। कहां कमल का निर्दोष अस्तित्व! कहां कमल का सौदर्य! और कहां कीचड़! पर कीचड़ से ही कमल निर्मित होता है।
इस कारण से भी कमल की बड़ी मीठी चर्चा जारी रही सदियों-सदियों तक। आदमी संसार में पैदा होता है कीचड़ में, पर कमल हो सकता है। कीचड़ में ही पैदा होना पड़ता है। चाहे महावीर हों, चाहे बुद्ध हों, कीचड़ में ही पैदा होते हैं। चाहे आप हों, चाहे कोई हो--सभी को कीचड़ में पैदा होना पड़ता है। संसार कीचड़ है। थोड़े से लोग इस कीचड़ के पार जाते हैं और कमल हो जाते हैं। वे ही लोग इस कीचड़ के पार जाते हैं जो अलिप्तता को साध लेते हैं।
अलिप्तता ही कीचड़ के पार जाने की पगडण्डी है। उससे ही वे दूर हो पाते हैं। कीचड़ नीचे रह जाती है, कमल ऊपर आ जाता है। जिस दिन कमल ऊपर आ जाता है,

कमल को देख कर कीचड़ की याद भी नहीं आती। कभी कमल आपको दिखाई पड़े, कीचड़ की याद आती है? वह याद भी नहीं आती। इसलिए बड़ी अदभुत घटनाएं घटीं।
जीसस के मानने वाले कहते हैं कि जीसस सामान्य संभोग से पैदा नहीं हुए, कुंआरी मां से पैदा हुए हैं। यह बात बड़ी मीठी है और बड़ी गहरी है। असल में जीसस को देख कर ऐसा नहीं मालूम पड़ता कि दो व्यक्तियों की कामवासना से पैदा हुए हों। कमल को देख कर कहां कीचड़ का ख्याल आता है। जीसस को देख कर ख्याल नहीं आता कि दो व्यक्ति जानवरों की तरह कामवासना में गुंथ गए हों, और उनके शरीर की बेचैनी, और उनके शरीर की अस्त-व्यस्तता, अराजकता, पशुता और उनके शरीर की वासना की दुर्गंध की कीचड़ से जीसस पैदा हुए।
कमल को देख कर कीचड़ का ख्याल ही भूल जाता है। और अगर हमें पता ही न हो
कि कीचड़ से कमल पैदा होता है, और जिस आदमी ने कभी कीचड़ न देखी हो और कमल ही देखा हो, वह कहेगा यह असंभव है कि यह कमल और कीचड़ से पैदा हो जाए।
इसलिए जीसस को देख कर अगर लोगों को लगा हो कि ऐसा व्यक्ति कुंआरी मां
से ही पैदा हो सकता है, तो वह लगना वैसा ही है, जैसे कमल को देख कर किसी को लगे कि ऐसा कमल जैसा फूल तो मक्खन से ही पैदा हो सकता है, कीचड़ से नहीं। लेकिन मक्खन से कोई कमल पैदा नहीं होता। अभी तक कोई मक्खन कमल पैदा नहीं कर पाया। कमल कीचड़ से ही पैदा होता है। असल में पैदा होने का ढंग कीचड़ में ही संभव है। इसलिए हमने कहा जो एक दफा कमल हो जाता है, फिर वह दुबारा पैदा नहीं होता, क्योंकि दुबारा पैदा होने का कोई उपाय नहीं रहा। अब वह कीचड़ में नहीं उतर सकता है इसलिए दुबारा पैदा नहीं हो सकता। इसलिए हम कहते हैं, उसकी जन्म-जन्म की यात्रा समाप्त हो जाती है, जिस दिन व्यक्ति कमल हो जाता है। कमल तक यात्रा है कीचड़ की। कीचड़ कमल हो सकती है लेकिन फिर कमल कीचड़ नहीं हो सकता। वापस गिरने का कोई उपाय नहीं है।
इसलिए भी कमल बड़ा मीठा प्रतीक हो गया। अगर हम भारतीय चेतना का, पूव्रूय चेतना का कोई एक प्रतीक खोजना चाहें तो वह कमल है।
महावीर कहते हैंः "जैसे कमल शरद-काल के निर्मल जल को भी नहीं छूता।"
बड़ी मजे की बात कही है। गंदे जल को तो छूता ही नहीं--निर्मल, शरद-काल के निर्मल जल को भी नहीं छूता। जिसको छूने में कोई हर्जा भी न होगा, लाभ भी शायद हो जाए, उसको भी नहीं छूता। छूता ही नहीं। लाभ-हानि का सवाल नहीं है। गंदे और पवित्र का भी सवाल नहीं है। छूना ही छोड़ दिया है। पाप को तो छूता ही नहीं, पुण्य को भी नहीं छूता है।
"शरद-काल के निर्मल जल को भी नहीं छूता, जैसे कमल, अलिप्त रहता है। वैसे ही संसार से अपनी समस्त आसक्तियां मिटा कर सब प्रकार के स्नेह-बंधनों से रहित हो जा गौतम!"
वह गौतम को कह रहे हैं कि ऐसा ही तू भी हो जा। जहां-जहां हमारा स्नेह है, वहां-वहां स्पर्श है, स्नेह हमारे छूने का ढंग है। जब आप स्नेह से किसी को देखते हैं, छू लिए, चाहे कितने ही दूर हों।
एक आदमी क्रोध से आकर छुरा मार दे आपको, तो भी छूता नहीं है। छुरा आपकी छाती में चला जाए, लहूलुहान हो जाए सब, तो भी आपको छूता नहीं है। दूर है बहुत। और एक आदमी हजारों मील दूर हो और आपकी याद आ जाए स्नेह-सिक्त, तो छू लेता है, उसी वक्त। स्नेह स्पर्श है। जब आप स्नेह से किसी की तरफ देखते हैं, तब आपने अलिंगन कर ही लिया, छू लिया। छूना हो गया। मन छू ही गया। महावीर कहते हैं, जब तक यह स्पर्श चल रहा है बाहर, यह आकांक्षा चल रही
है कि किसी का स्पर्श सुख देगा, यही स्नेह का अर्थ है। तब तक व्यक्ति संसार में ही होगा संन्यास में नहीं हो सकता।
जब तक कमल कीचड़ को छूने को आतुर है, तब तक दूर कैसे जाएगा, उठेगा कीचड़
से पार कैसे? जब तक कमल खुद ही छूने को आतुर है, तब तक मुक्त कैसे होगा। स्नेह बंधन है। जहां-जहां हम छूने की आकांक्षा से भरते हैं, जहां-जहां हम दूसरे में, दूसरे से सुख पाने की आकांक्षा से भरते हैं, वहां-वहां हम लिप्त हो जाते हैं। असल में, जहां दूसरा महत्वपूर्ण मालूम पड़ता है, वहीं हम लिप्त हो जाते हैं।
जहां दूसरे पर ध्यान जाता है, वहीं हम लिप्त हो जाते हैं। आपका ध्यान चारों तरफ तलाश करता रहता है कि किसको देखें, किसको छुएं। आपका ध्यान

चारों तरफ दौड़ता रहता है। जैसे आक्टोपस के पंजे चारों तरफ ढूंढते रहते हैं किसी को पकड़ने को। आपका ध्यान आपकी सारी इंद्रियों से बाहर जाकर तत्पर रहता है, किसको छुएं! आप अपने को रोकते होंगे, सम्हालते होंगे। जरूरी है, उपयोगी है, सुविधापूर्ण है। लेकिन आपका ध्यान भागता रहता है चारों तरफ। आप अपने मन की खोज करेंगे तो पायेंगे कि कहां-कहां आप लिप्त हो जाना चाहते हैं, कहां-कहां आप छू लेना चाहते हैं।
यह जो भागता हुआ, चारों तरफ बहता हुआ मन है आपका, यह जो सारे संसार को
छू लेने के लिए आतुर मन है आपका... वायरन ने कहीं कहा है कि एक स्त्री से नहीं चलेगा, मन तो सारी स्त्रियों को ही भोग लेना चाहता है। रिल्के ने अपने एक गीत में कड़ी लिखी है और कहा है कि यह नहीं है कि एक स्त्री को मैं मांगता हूं। एक स्त्री के द्वारा मैं सारी स्त्रियों को मांगता हूं। और ऐसा भी नहीं है कि सारी स्त्रियों को भोग लूं तो भी तृप्त हो जाऊंगा। तब भी मांग जारी रहेगी। छूने की मांग है, वह फैलती चली जाती है--स्त्री हो या पुरुष हो, धन हो या मकान हो--वह फैलती चली जाती है।
महावीर कहते हैंः "अलिप्त हो जा समस्त आसक्तियां मिटा कर, सब तरफ से अपने स्नेह-बंधन को तोड़ ले। यह जो फैलता हुआ वासना का विस्तार है, इसे काट दे।"
यह कैसे कटेगा?
तो महावीर कहते हैं, गौतम! क्षण मात्र भी प्रमाद मत कर।
प्रमाद का अर्थ हैः बेहोशी। प्रमाद का अर्थ हैः गैर-ध्यानपूर्वक जीना, प्रमत्त, मूर्च्छा में। यह जब-जब भी हम संबंध निर्मित करते हैं स्नेह के, तब तक मूर्छा में ही निर्मित करते हैं। यह कोई होश में निर्मित नहीं करते। होशपूर्वक जो व्यक्ति जीएगा, वह कोई स्नेह के बंधन निर्मित नहीं करेगा। इसका यह मतलब नहीं है कि वह पत्थर हो जाएगा, और उससें प्रेम नहीं होगा। सच तो यह है कि उसी में प्रेम होगा, लेकिन उसका प्रेम अलिप्त होगा। यह कठिनतम घटना है जगत में, प्रेम का और अलिप्त होना!
महावीर जब गौतम को यह कह रहे हैं, तो यह बड़ा प्रेमपूर्ण वक्तव्य है कि गौतम, तू ऐसा कर कि मुक्त हो जा, कि तू ऐसा कर गौतम कि तू पार हो जाए। इसमें प्रेम तो भारी है, लेकिन स्नेह जरा भी नहीं है, मोह जरा भी नहीं है। अगर गौतम मुक्त नहीं होता तो महावीर छाती पीटअकर रोने वाले नहीं है। अगर गौतम मुक्त नहीं होता, तो यह कोई महावीर की चिंता नहीं बन जाएगी। अगर गौतम महावीर की नहीं सुनता तो इसमें महावीर कोई परेशान नहीं हो जाएंगे। महावीर जब गौतम से कह रहे हैं कि तू मुक्त हो जा, और ये करुणापूर्ण वचन बोल रहे हैं, तब वे ठीक कमल की भांति हैं, जिस पर पानी की बूंद पड़ी है। बिल्कुल निकट है बूंद, और बूंद को यह भ्रम भी हो सकता है कि कमल ने मुझे छुआ। और मैं मानता हूं, कि बूंद को होता ही होगा यह भ्रम। क्योंकि बूंद यह कैसे मानेगी कि जिस पत्ते पर मैं पड़ी थी उसने मुझे छुआ नहीं। जिस पत्ते पर मैं रही हूं, जिस पत्ते पर मैं बसी हूं, जिस पत्ते पर मेरा निवास रहा, उस पत्ते ने मुझे नहीं छुआ, यह बूंद कैसे मानेगी! बूंद को यह भ्रम होता ही होगा कि पत्ते ने मुझे छुआ। पत्ता बूंद को नहीं छूता है।
गौतम को भी लगता होगा कि महावीर मेरे लिए चिंतित हैं। महावीर चिंतित नहीं हैं। महावीर जो कह रहे हैं, इसमें कोई चिंता नहीं है, सिर्फ करुणा है। ध्यान रहे, करुणा अपेक्षारहित प्रेम है। मोह, अपेक्षा से परिपूर्ण प्रेम है। अपेक्षा जहां है वहां स्पर्श हो जाता है। जहां अपेक्षा नहीं है, वहां कोई स्पर्श नहीं होता। प्रमाद है स्पर्श का द्वार, आसक्ति का द्वार, मूर्च्छित।
कभी आपने ख्याल किया, जब आप किसी के प्रेम में पड़ते हैं तो होश में नहीं रह जाते। बेहोशी पकड़ लेती है। बायोलाजिस्ट कहते हैं कि इसका कारण ठीक वैसा ही है, जैसा शराब पीकर आपके पैर डगमगाने लगते हैं, वैसा ही है। या एल. एस. डी., मारिजुआना लेकर जगत बहुत रंगीन मालूम होने लगता है। एक साधारण सी स्त्री या एक साधारण सा पुरुष, जब आप उसके प्रेम में पड़ जाते हैं, तो एकदम अप्सरा हो जाती है, देवता हो जाता है।

एक साधारण सी स्त्री अचानक, जिस दिन आप प्रेम में पड़ जाते हैं। कल भी
इस रास्ते से गुजरी थी, परसों भी इस रास्ते से गुजरी थी, हो सकता है, बचपन से आप उसे देखते रहे हों, और कभी नहीं सोचा था कि यह स्त्री अप्सरा है। अचानक एक दिन कुछ हो जाता है आपके भीतर। आपको भी पता नहीं चलता क्या होता है, और एक स्त्री अप्सरा हो जाती है। उस स्त्री का सब कुछ बदल जाता है, मेटामार्फोसिस हो जाती है। उस स्त्री में आपको वह सब दिखाई पड़ने लगता है, जो आपको कभी दिखाई नहीं पड़ा था। सारा संसार उस स्त्री के आसपास, इर्द-गिर्द इकट्ठा हो जाता है। सारे सपने उस स्त्री में पूरे होते मालूम होने लगते हैं। सारे कवियों की कविताएं एकदम फीकी पड़ जाती हैं, वह स्त्री काव्य हो जाती है।
क्या हो जाता है?
बायोलॉजिस्ट कहते हैं कि आपके शरीर में भी सम्मोहित करने के केमिकल्स हैं। कोई आदमी ऊपर से एल ए डी लेता है, एल. एस. डी. लेने से ही; जब हक्सले ने एल. एस. डी. लिया तो जिस कुर्सी के सामने बैठा था, वह कुर्सी एकदम इंद्रधनुषी रंगों से भर गई। लिया एल एस डी, भीतर एक केमिकल डाला, उससे सारी आंखें आच्छादित हो गईं। कुर्सी--साधारण कुर्सी, जिसको उसने कभी ध्यान ही नहीं दिया था, जो उसके घर में सदा से थी, वह उसके सामने रखी थी--उस कुर्सी में से रंग-बिरंगी किरणें निकलने लगीं। वह कुर्सी एक इंद्रधनुष बन गई। हक्सले ने लिखा है, कि उस कुर्सी से सुंदर कोई चीज ही नहीं थी उस क्षण में। ऐसा मैंने कभी देखा ही नहीं था। हक्सले ने लिखा है कि क्या कबीर ने जाना होगा अपनी समाधि में, क्या इकहार्ट को पता चला होगा, जब वह कुर्सी ऐसी रंगीन हो गई, स्वर्गीय हो गई। देवताओं के स्वर्ग की कुर्सियां फीकी पड़ गईं। सारा जगत ओछा मालूम पड़ने लगा।
क्या हो गया उस कुर्सी को? उस कुर्सी को कुछ नहीं हुआ। कुर्सी अब भी वही है। हक्सले को कुछ हो गया। हक्सले को भीतर कुछ हो गया। वह जो भीतर केमिकल गया है, खून में दौड़ गया है, उसने हक्सले की मनोदशा बदल दी। हक्सले अब सम्मोहित है। अब यह कुर्सी अप्सरा हो गई। छह घंटे बाद जब नशा उतर गया एल. एस. डी. का, तो, कुर्सी वापस कुर्सी हो गई। कुर्सी, कुर्सी थी ही; हक्सले वापस हक्सले हो गए। फिर कुर्सी साधारण है।
इसलिए हनीमून के बाद अगर स्त्री साधारण हो जाए, पुरुष साधारण हो जाए घबड़ाना मत। कुर्सी, कुर्सी हो गई। कोई आदमी सुहागरात में ही जिंदगी बिताना चाहे तो गलती में है। पूरी रात भी सुहागरात हो जाए तो जरा कठिन है। कब नशा टूट जाए, कुछ कहा नहीं जा सकता।
मुल्ला नसरुद्दीन स्टेशन पर खड़ा था। पत्नी को बिदा कर रहा था। गाड़ी छूट गई। किसी परिचित ने पूछा कि नसरुद्दीन! पत्नी कहां जा रही है?
मुल्ला ने कहाः हनीमून पर, सुहागरात पर।
मित्र थोड़ा हैरान हुआ। उसने कहा, "क्या कहते हो? तुम्हारी ही पत्नी है
न?
मुल्ला ने कहाः मेरी ही है।
तो अकेली कैसे जा रही है हनीमून पर?
मुल्ला ने कहाः हम पिछले साल हनीमून पर हो आए, यह सस्ता भी था, अलग-अलग जाना, सुविधापूर्ण भी था।
और फिर मैंने सुना है कि हनीमून के बाद विवाह फीका हो जाता है। तो हम अलग-अलग हो आए हैं, ताकि विवाह जो है फीका न हो। हनीमून पर हो भी आए हैं नियमानुसार, और हनीमून अभी हुआ भी नहीं।
वह जो हनीमून है, वह जो सुहागरात है, वह जो दिखाई पड़ता है, वह आपके भीतर केमिकल्स ही हैं। इसलिए बहुत ख्याल रखें, जहां अमरीका में या यूरोप में शादी के पहले यौन के संबंध निर्मित होने लगे हैं, वहां हनीमून तिरोहित हो गया। वहां हनीमून पैदा होता था--अगर बीस पच्चीस वर्ष की उम्र तक आपने अपनी काम-ऊर्जा को संगृहीत किया हो तो ही वे केमिकल्स निर्मित होते थे संग्रह के कारण, जो एक स्त्री और पुरुष को देवी और देवता बना देते थे। अब वे संग्रहीत ही नहीं होते। इसलिए हनीमून वैसा ही साधारण होता है जैसा कि साधारण रोज के दिन होते हैं।

हमारे भीतर रासायनिक उपक्रम हैं, जैविक विज्ञान के अनुसार, जिससे हम सम्मोहित होते रहते हैं। जब आप एक स्त्री के प्रेम में गिरते हैं तो आप मूर्छित हैं। इसे महावीर ने प्रमाद कहा है। जिसको जीव विज्ञानी बेहोशी के रासायनिक द्रव्य कहता है उसको महावीर ने प्रमाद कहा है। आप बेहोश हो जाते हैं।
इस बेहोशी को जो नहीं तोड़ता रहता है निरंतर, वह आदमी कभी भी कमलवत नहीं हो पाएगा। और जो कमलवत नहीं हो पाएगा, वह इस कीचड़ में कीचड़ ही रहेगा। इस कीचड़ के जगत में उसे फूल के होने का आनंद उपलब्ध नहीं हो सकता। उसे कीचड़ की ही पीड़ा झेलनी पड़ेगी।
प्रमाद मिटता है ध्यान से। ध्यान प्रमाद के विपरीत है। ध्यान का अर्थ
है होश। जो भी करें, होश से करना। अगर प्रेम भी करें तो होश से करना। यह कठिन मामला है। न चोरी हो सकती होश से, न क्रोध हो सकता होश से, न प्रेम हो सकता होश से। बेहोशी उनकी अनिवार्य शर्त है। बेहोश हों तो ही वे होते हैं। इसलिए अंग्रेजी में शब्द अच्छा है। हम कहते हैं कि कोई आदमी प्रेम में गिर गया, वन हैज फालन इन लव। कहना चाहिए, वन हैज राइजन इन लव। कहते हैं, गिर गया बेचारा; वह गिर गया, ठीक ही कहते हैं। क्योंकि बेहोशी का अर्थ है गिर जाना, होश खो दिया, सिर गंवा दिया।
इसलिए प्रेमी सबको पागल मालूम पड़ता है। इसका यह मतलब नहीं, कि जब आप प्रेम में गिरेंगे तब आपको पागलपन पता चलेगा। तब आपको सारी दुनिया पागल मालूम पड़ेगी। आप भर समझदार मालूम पड़ेंगे, और सारी दुनिया आपको पागल समझेगी। ऐसा नहीं है कि उनकी कोई बुद्धि बढ़ गई है। वे भी गिरते रहे हैं, गिरेंगे। लेकिन जब तक नहीं गिरे हैं, तब तक वे समझते हैं, देखते हैं, किसके पैर डगमगा रहे हैं, कौन बेहोशी में चल रहा है।
आसक्ति प्रमाद है, ध्यान, अनासक्ति है, कितने होश से जीते हैं। एक-एक
पल होश में रह गौतम।
"इस प्रपंचमय विशाल संसार-समुद्र को तैर चुका तू। भला किनारे पहुंच
कर तू क्यों अटक रहा है?"
महावीर कहते हैं, गौतम! तेरा स्नेह मुझसे अटक गया है। अब तू मुझे प्रेम करने लगा है। यह भी छोड़। पत्नी का, पति का, मित्र का, स्वजन का मोह छोड़ दिया, यह गुरु का मोह भी छोड़। यह स्नेह मत बना। यह आसक्ति मत बना।
"उस पार पहुंचने के लिए शीघ्रता कर। हे गौतम! क्षण मात्र भी प्रमाद मत कर।"
एक क्षण को भी बेहोश मत जी। उठ, तो यह जानते हुए उठ, कि तू उठ रहा है। बैठ तो जानते हुए बैठ, कि तू बैठ रहा है। श्वास भी ले तो यह जानते हुए ले, कि तू श्वास ले रहा है। यह श्वास भीतर गई तो महावीर ने कहा है, जान कि भीतर गई। यह श्वास बाहर गई, तो जान कि बाहर गई। तेरे भीतर कुछ भी न हो पाए जो तेरे बिना जाने हो रहा है।
यह कठिनतम साधना है, लेकिन एकमात्र साधना है। अनेक-अनेक रास्तों से लोग इसी साधना पर पहुंचते हैं। क्योंकि जब कोई व्यक्ति एक क्षण भी बेहोशी नहीं करता है और निरंतर होश की चेष्टा में लगा रहता है। भोजन करे तो होशपूर्वक, बिस्तर पर लेटने जाए तो होशपूर्वक, करवट ले तो रात में होशपूर्वक, इतना जो होश से जीता है, धीरे-धीरे होश सघन हो जाता है, इंटेंस हो जाता है। और जब होश सघन होता है तो अंतर-ज्योति बनती है। होश की सघनता ही भीतर की ज्योति है। होश का बिखर जाना ही भीतर का अंधकार है। जितना होश सघन हो जाता है, उतने हम प्रकाशित हो जाते हैं। और यह प्रकाश भीतर हो, तो फिर आसक्ति निर्मित नहीं होती। अंधेरे में निर्मित होती है। यह प्रकाश भीतर हो तो आपको मिल गई वह व्यवस्था, जिससे कीचड़ से कमल अपने को दूर करता जाएगा। होश बीच की डण्डी है, जिससे कीचड़ से कमल दूर चला जाता है। पार हो जाता है। फिर कुछ भी उसे स्पर्श नहीं करता। फिर वह अस्पर्शित और कुंआरा रह जाता है।
कमल का कुंआरापन संन्यास है।

आज इतना ही।

महावीर-वाणी, भाग 2
तीसरा प्रवचन

एक ही नियमः होश (प्रमाद-स्थान-सूत्रः 1)

पमायं कम्ममाहंसु, अप्पमायं तहावरं।
तब्भावादेसओ वावि, बालं पंडियमेव वा।।
दुक्खं हयं जस्स न होइ मोहो,
मोहो हओ जस्स न होई तण्हा।
तण्हा हया जस्स न होई लोहो,
लोहो हओ जस्स न किंचणाइं।।

प्रमाद को कर्म कहा है और अप्रमाद को अकर्म अर्थात जो प्रवृत्तियां प्रमादयुक्त हैं वे कर्म-बंधन करने वाली हैं और जो प्रवृत्तियां प्रमादरहित हैं, वे कर्म-बंधन नहीं करतीं। प्रमाद के होने और न होने से मनुष्य क्रमशः बाल-बुद्धि (मूर्ख) और पंडित कहलाता है।
जिसे मोह नहीं उसे दुख नहीं, जिसे तृष्णा नहीं उसे मोह नहीं, जिसे लोभ नहीं उसे तृष्णा नहीं, और जो ममत्व से अपने पास कुछ भी नहीं रखता, उसका लोभ नष्ट हो जाता है।

पहले एक-दो प्रश्न।
एक मित्र ने पूछा है कि "स्नेहयुक्त प्रेम और स्नेहमुक्त प्रेम में क्या अंतर है। साथ ही काम, प्रेम और करुणा की आंतरिक भिन्नता पर भी कुछ कहें।"

जिस प्रेम को हम जानते हैं, वह एक बंधन है, मुक्ति नहीं। और जो प्रेम बंधन है उसे प्रेम कहना भी व्यर्थ ही है। प्रेम का बंधन पैदा होता है अपेक्षा से। मैं किसी को प्रेम करूं तो मैं सिर्फ प्रेम करता नहीं, कुछ पाने को प्रेम करता हूं। प्रेम करना शायद साधन है, प्रेम पाना साध्य है। मैं प्रेम पाना चाहता हूं, इसलिए प्रेम करता हूं।
मेरा प्रेम करना एक इनवेस्टमेंट है। उसके बिना प्रेम पाना असंभव है। इसलिए जब मैं प्रेम करता हूं प्रेम पाने के लिए, तब प्रेम करना केवल साधन है, साध्य नहीं। नजर मेरी पाने पर लगी है। देना गौण है, देना पाने के लिए ही है। अगर बिना दिए चल जाए तो मैं बिना दिए चला लूंगा। अगर झूठा धोखा देने से चल जाए कि मैं प्रेम दे रहा हूं, तो मैं धोखे से चला लूंगा, क्योंकि मेरी आकांक्षा देने की नहीं, पाने की है। मिलना चाहिए।
जब भी हम देते हैं कुछ पाने को, तो हम सौदा करते हैं। स्वभावतः सौदे में हम कम देना चाहेंगे और ज्यादा पाना चाहेंगे। इसलिए सभी सौदे के प्रेम व्यवसाय हो जाते हैं, और सभी व्यवसाय कलह को उत्पन्न करते हैं। क्योंकि सभी व्यवसाय के गहरे में लोभ है, छीनना है, झपटना है, लेना है। इसलिए हम इस पर तो ध्यान ही नहीं देते कि हमने कितना दिया। हम सदा इस पर ध्यान देते हैं कि कितना मिला। और दोनों ही व्यक्ति इसी पर ध्यान देते हैं कि कितना मिला। दोनों ही देने में उत्सुक नहीं हैं, पाने में उत्सुक हैं।
वस्तुतः हम देना बंद ही कर देते हैं और पाने की आकांक्षा में पीड़ित होते रहते हैं। फिर प्रत्येक को यह ख्याल होता है कि मैंने बहुत दिया और मिला कुछ भी नहीं।
इसलिए हर प्रेमी सोचता है कि मैंने इतना दिया और पाया क्या? मां सोचती है, मैंने बेटे को इतना प्रेम दिया और मिला क्या? पत्नी सोचती है कि मैंने पति को इतना प्रेम दिया और मिला क्या? पति सोचता है, मैंने पत्नी के लिए सब कुछ किया, मुझे मिला क्या?
जो आदमी भी आपको कहीं कहते मिले कि मैंने इतना किया और मुझे मिला क्या, आप समझ लेना, उसने प्रेम किया नहीं, सौदा किया। दृष्टि ही जब पाने पर लगी हो, तो प्रेम जन्मता ही नहीं। यही अपेक्षा से भरा हुआ प्रेम बंधन बन

जाता है। और तब इस प्रेम से सिवाय दुख के, पीड़ा के, कलह के और जहर के कुछ भी पैदा नहीं होता।
एक और प्रेम भी है जो व्यवसाय नहीं है, सौदा नहीं है। उस प्रेम में देना ही महत्वपूर्ण है, लेने का सवाल ही नहीं उठता। देने में ही बात पूरी हो जाती है, देना ही साध्य है। तब वैसा व्यक्ति प्रेम मिले, इसकी भाषा में नहीं सोचता, प्रेम दिया, इतना काफी है। मैं प्रेम दे सका, इतना काफी है। और जिसने मेरा प्रेम लिया उसका अनुग्रह है, क्योंकि लेने से भी इनकार किया जा सकता है।
फर्क को समझ लें।
मैं अगर आपको प्रेम दूं और मेरी नजर लेने पर हो तो बंधन निर्मित होगा।
और अगर मैं प्रेम दूं, और मेरी नजर देने पर ही हो तो प्रेम मुक्ति बन जाएगा। और जब प्रेम मुक्ति होता है, तभी उसमें सुवास होती है। क्योंकि जब आगे कुछ मांग नहीं है तो पीड़ा का कोई कारण नहीं रह जाता। और जब प्रेम देना ही होता है, मात्र देना, तो जो ले लेता है उसके अनुग्रह के प्रति, उसकी दया के प्रति, उसने स्वीकार किया, इसके प्रति भी मन गहरे आभार से भर जाता है, अहोभाव से भर जाता है। जो मांगता है, वह सदा कहेगा कि मुझे कुछ मिला नहीं। जो देता है वह कहेगा कि इतने लोगों ने मेरा प्रेम स्वीकार किया, इतना स्वीकार किया, इतना मेरे प्रेम में कुछ था भी नहीं कि कोई स्वीकार करे। जिसका जोर देने पर है, उसका अनुग्रह भाव बढ़ता जाएगा। जिसका जोर लेने
पर है उसका भिक्षा भाव बढ़ता जाएगा। और भिखारी कभी भी धन्यवाद नहीं दे सकता, क्योंकि भिखारी की आकांक्षाएं बहुत हैं और जो मिलता है, वह हमेशा थोड़ा है। सम्राट धन्यवाद दे सकता है, क्योंकि देने की बात है, लेने की कोई बात नहीं है। ऐसा प्रेम बंधन मुक्त हो जाता है।
इसमें और एक बात समझ लेनी जरूरी है जो बड़ी मजेदार है और जीवन के जो गहरे पैराडाक्से.ज, जीवन के जो गहरे विरोधाभास हैं, पहेलियां हैं, उनमें से एक है। जो मांगता है उसे मिलता नहीं और जो नहीं मांगता उसे बहुत मिल जाता है। जो देता है पाने के लिए उसके हाथ की पूंजी समाप्त हो जाती है, लौटता कुछ नहीं है। जो देता है पाने के लिए नहीं, दे देने के लिए, बहुत वर्षा हो जाती है उसके ऊपर; बहुत लौट आता है।
उसके कारण हैं।
जब भी हम मांगते हैं, तब दूसरे आदमी को देना मुश्किल हो जाता है। जब भी
हम मांगते हैं तो दूसरे आदमी को लगता है कि उससे कुछ छीना जा रहा है। जब भी हम मांगते हैं तो दूसरे आदमी को लगता है, वह परतंत्र हो रहा है। जब हमारी मांग उसे चारों तरफ से घेर लेती है तो उसे लगता है कि कारागृह हो गया है यह। अगर वह देता भी है तो मजबूरी है, प्रसन्नता खो जाती है। और बिना प्रसन्नता के जो दिया गया है वह कुम्हलाया हुआ होता है, मरा हुआ होता है। अगर वह देता भी है तो कर्तव्य हो जाता है, एक भार हो जाता है कि देना पड़ेगा। और प्रेम इतनी कोमल, इतनी डेलिकेट, इतनी नाजुक चीज है कि कर्तव्य का ख्याल आते ही मर जाती है।
जहां ख्याल आ गया कि यह प्रेम मुझे करना ही पड़ेगा, यह मेरा पति है, यह मेरी पत्नी है, यह मेरा मित्र है, यह तो प्रेम करना ही पड़ेगा। जहां प्रेम करना पड़ेगा बन जाता है, कर्तव्य बन जाता है, वहीं वह प्राण तिरोहित हो गए जिससे पक्षी उड़ता था। अब मरा हुआ पक्षी है, पंख सजाकर रखे जा सकते हैं, लेकिन उड़ने के काम में नहीं आ सकते। वह जो उड़ता था, वह थी स्वतंत्रता। कर्तव्य में कोई स्वतंत्रता नहीं है, एक बोझ है, एक ढोने का ख्याल है। प्रेम इतना नाजुक है कि इतना सा बोझ भी नहीं सह सकता। प्रेम सूक्ष्मतम घटना है मनुष्य के मन में घटने वाली। जहां तक मन का संबंध है, प्रेम बारीक से बारीक घटना है। फिर प्रेम के बाद मन में और कोई बारीक घटना नहीं है। फिर तो जो घटता है वह मन के पार है, जिसको हम प्रार्थना कहते हैं। वह मन के भीतर नहीं है। लेकिन मन की आखिरी सीमा पर, मन का जो सूक्ष्मतम रूप घट सकता है, वह प्रेम है। शुद्धतम, मन की जो आत्यंतिक, अल्टीमेट पासिबिलिटी है, आखिरी संभावना है, वह प्रेम है। वह बहुत नाजुक है। हम वह भी काम करता है चित्रों के बेचने का। वह एक दुकानदार है, वह चित्र बेचने का

काम करता है। उसकी कल्पना के ही बाहर है, समझ के ही बाहर है कि चित्र बनाने में ही कोई बात हो सकती है, जब तक चित्र बिके न, तब तक बेमानी है। तब तक व्यर्थ गया श्रम।
उसने सोचा कि यह वानगाग जीवन भर हो गया बनाते-बनाते, इसका एक चित्र न बिका। कितना दुखी न होता होगा मन में! स्वभावतः व्यवसायी को लगेगा कि कितना दुखी न होता होगा मन में, कभी कुछ मिला नहीं। सारा जीवन व्यर्थ गया। तो उसने एक मित्र को कुछ पैसे दिए और कहा कि जाकर वानगाग का एक चित्र खरीद लो, कम से कम एक चित्र तो उसका बिके। उसको लगे कि कुछ मेरा चित्र भी बिका। वह मित्र गया। उसे तो खरीदना था, यह कर्तव्य था। उसे कोई चित्र से लेना-देना तो था नहीं। वानगाग चित्र दिखा रहा है, वह चित्र वगैरह देखने में उतना उत्सुक नहीं है, वह एक चित्र देख कर कहता है कि यह मैं खरीदना चाहता हूं। देखने में उसने कोई रस न लिया, डूबा भी नहीं, चित्रों में उतरा भी नहीं, चित्रों से उसका कोई स्पर्श भी नहीं हुआ। वानगॉग खड़ा हो गया, उसकी आंख से आंसू गिरने लगे। उसने कहा, कि मालूम होता है, मेरे भाई ने तुम्हें पैसे देकर भेजा। तुम बाहर निकल जाओ और कभी दुबारा लौट कर यहां मत आना। चित्र बेचा नहीं जा सकता।
वह आदमी तो हैरान हुआ। वानगॉग का भाई भी हैरान हुआ कि यह पता कैसे चला!
जब उसने वानगॉग को पूछा तो वानगॉग ने कहा, इसमें भी कुछ पता चलने की बात है! उस आदमी को मतलब ही न था चित्रों से। उसे तो खरीदना था। खरीदने में उसका कोई भाव नहीं था। मैं समझ गया कि तुमने ही भेजा होगा।
जीवन भर जिसके चित्र नहीं बिके, हमें भी लगेगा, कितनी पीड़ा रही होगी, लेकिन वानगाग पीड़ित नहीं था। आनंदित था। आनंदित था इसलिए कि वह बना पाया। प्रेम भी ऐसा ही है। वह चित्र बनाना वानगॉग का प्रेम था। जब आप किसी
को प्रेम करते हैं तो पीछे कुछ मिलेगा, ऐसा नहीं, जब आप प्रेम करते हैं तभी आपके प्राण फैलते हैं, विस्तृत होते हैं। जब आप प्रेम के क्षण में होते हैं तभी आपकी चेतना छलांग लगा कर ऊंचाइयों पर पहुंच जाती है। जब आप प्रेम के क्षण में होते हैं, जब आप दे रहे होते हैं, तभी वह घटना घट जाती है जिसे आनंद कहते हैं। अगर आपको वह घटना नहीं घटी है तो आप समझना कि आप व्यवसायी हैं, प्रेम के काव्य को आपने जाना नहीं है।
अगर आप पूछते हैं कि मिलेगा क्या, तब फिर बहुत फर्क नहीं रह जाता, तब बहुत फर्क नहीं रह जाता। एक वेश्या भी प्रेम करती है, वह भी मिलने के लिएक्या मिलेगा? इसमें उत्सुक है, प्रेम में उत्सुक नहीं है। एक पत्नी भी प्रेम करती है, वह भी क्या मिलेगा, इसमें उत्सुक है। प्रेम में उत्सुक नहीं है। मिलना सिक्कों में हो सकता है, साड़ियों में हो सकता है, मिलना गहनों में हो सकता है, मकान में हो सकता है, सुरक्षा में हो सकता है, इससे बहुत फर्क नहीं पड़ता। यह सब इकोनामिकली हैं, सभी आर्थिक मामले हैं, चाहे नगद रुपए हों, चाहे नगद साड़ियां हों, चाहे नगद गहने हों, चाहे नगद मकान हो, चाहे भविष्य की सुरक्षा हो, बुढ़ापे में सेवा की व्यवस्था हो, कुछ भी हो, यह सब पैसे का ही मामला है।
तो वेश्या में और फिर प्रेयसी में फर्क कहां है? इतना ही फर्क है कि वेश्या तत्काल इंतजाम कर रही है, प्रेयसी लंबा इंतजाम कर रही है, लांग टर्म प्लानिंग। लेकिन फर्क कहां है? अगर मिलने पर ध्यान है तो कोई फर्क नहीं है। प्रेम वहां नहीं है, व्यवसाय है। फिर व्यवसाय कई ढंग के होते हैं--पत्नी के ढंग का भी होता है, वेश्या के ढंग का भी होता है।
यह वेश्या और पत्नी में कोई बुनियादी अंतर तब तक नहीं हो सकता, जब तक ध्यान मिलने पर लगा हुआ है। बुनियादी अंतर उस दिन पैदा होता है जिस दिन प्रेम अपने में पूरा है, उसके पार कुछ भी नहीं। इसका यह मतलब नहीं कि उसके पार कुछ घटित नहीं होगा,
बहुत घटित होगा, लेकिन मन से उसका कोई लेना-देना नहीं है। उसकी कोई अपेक्षा नहीं है, उसकी कोई आयोजना नहीं है। क्षण काफी है, क्षण अनंत है। जो मौजूद है वह बहुत है।
इसलिए प्रेम में एक गहन संतृप्ति है, एक गहन संतोष है। एक इतनी गहन तृप्ति का भाव है, फुलफिलमेंट का, सब आप्तकाम मन हो जाता है। लेकिन हम

प्रेमियों को देखें, वहां कोई फुलफिलमेंट नहीं है। वहां, सिवाय दुख, छीना- झपटी, कलह, और ज्यादा, और ज्यादा मिलना चाहिए, उसकी दौड़, प्रतिस्पर्धा, ईर्ष्या ऐसी हजार तरह की बीमारियां हैं, तृप्ति का कोई भी भाव नहीं है। जिस प्रेम में मांग है, वह बंधनयुक्त है। और जिस प्रेम में दान है, वह बंधनमुक्त है। यह जो मुक्त दान है प्रेम का, इसमें अगर काम की घटना घटती हो; यह जो दान है मुक्त प्रेम का इसे ठीक से समझ लें।
जिसमें मांग है उसमें तो काम घटेगा ही। घटेगा नहीं, काम के लिए ही प्रेम होगा। सेक्स ही आधार होगा सारे प्रेम का जिसमें व्यवसाय है। वहां प्रेम तो बहाना होगा। वैज्ञानिक कहते हैं, वह जस्ट ए फोर प्ले--वह कामवासना में उतरने के पहले की थोड़ी क्रिया।
इसलिए जब नया-नया संबंध होता है दो व्यक्तियों का, तो काफी काम-क्रीड़ा चलती है। पति-पत्नी की काम-क्रीड़ा बंद हो जाती है। सीधा काम ही हो जाता है। फोर प्ले, वह जो पहले का खेल है वह सब बंद हो जाता है। उसकी कोई जरूरत नहीं रह जाती, लोग आश्वस्त हो जाते हैं।
जिसमें लक्ष्य कुछ और है, कुछ पाना है, वहां यौन केंद्र होगा। जहां लक्ष्य कोई और नहीं है, प्रेम देना है, वहां भी यौन घटित हो सकता है, लेकिन गौण होगा। छाया की तरह होगा। यौन के लिए वहां प्रेम नहीं होगा, प्रेम की घटना में यौन भी घट सकता है। लेकिन तब वह यौन सेक्सुअल नहीं रह जाएगा। उसमें दृष्टि ही पूरी बदल जाएगी। वह प्रेम की विराट घटना के बीच घटती हुई एक घटना होगी। प्रेम यौन के लिए नहीं होगा, प्रेम में कहीं यौन समाविष्ट हो जाएगा।
यह दूसरी स्थिति है, लेकिन यौन संभव है। इसकी शुद्धतम तीसरी स्थिति
है जहां यौन तिरोहित हो जाता है। उसी को हम करुणा कहते हैं। जहां प्रेम बस प्रेम रह जाता है। न तो यौन लक्ष्य रहता, और न यौन, प्रेम के बीच में घटने वाली कोई चीज रहती है। सिर्फ प्रेम रह जाता है।
जैसे हम दीया जलाएं, तो थोड़ा सा धुआं उठे। जैसे हम धुआं करें, तो थोड़ी
सी लपट जले। एक आदमी धुआं करे तो थोड़ी सी लपट जल जाए। ऐसा पहले ढंग का प्रेम। यौन, धुआं असली चीज है। अगर उस धुएं के करने में कहीं लपट जल जाती है प्रेम की, तो गौण है, बात अलग है। जल जाए तो ठीक, न जले तो ठीक। और जले भी तो उसके जलाने का मजा इतना ही है कि धुआं ठीक से दिखाई पड़ जाए। बाकी और कोई प्रयोजन नहीं है।
दूसरी स्थिति, जहां हम दीये की ज्योति जलाते हैं। लक्ष्य ज्योति का जलाना है। थोड़ा धुआं भी पैदा हो जाता है। धुएं के लिए ज्योति नहीं जलाई है। ज्योति जलाते हैं तो थोड़ा धुआं पैदा हो जाता है। प्रेम जलाते हैं तो थोड़ा सा यौन सरक आता है।
तीसरी अवस्था है, जहां सिर्फ शुद्ध ज्योति रह जाती है, कोई धुआं नहीं रहता--स्मोकलेस फ्लेम, धूम्ररहित ज्योति। उसका नाम करुणा है।
हम पहले प्रेम में जीते हैं। कभी-कभी कोई कवि, कोई चित्रकार, कोई संगीतज्ञ, कोई कलात्मक, एस्थेटिक बुद्धि की प्रज्ञा, दूसरे प्रेम को उपलब्ध होती है। लाखों में एक और कभी करोड़ों में एक व्यक्ति तीसरे प्रेम को उपलब्ध होता है--बुद्ध, महावीर, क्राइस्ट, कृष्ण यह है शुद्ध प्रेम। यहां अब लेने का तो कोई सवाल ही नहीं है, यहां अब देने का भी भाव नहीं है। इसको ठीक से समझ लें। यहां लेने का तो कोई सवाल ही नहीं है, यहां देने
का भी कोई भाव नहीं है। यहां तो करुणा ऐसे ही बहती है
जैसे फूल से गंध बहती है। राह निर्जन हो तो भी बहती है। कोई न निकले तो
भी बहती है। जैसे दीये से रोशनी बहती है। कोई न हो देखने वाला तो भी बहती है।
पहले तरह के प्रेम में कोई देने वाला हो, तो बहता है। दूसरे तरह के प्रेम में कोई लेने वाला हो, तो बहता है। तीसरे तरह के प्रेम में जिसको हमने करुणा कहा है, कोई भी न हो, न लेने वाला, न देने वाला, तो भी बहता है; स्वभाव है।
बुद्ध अकेले बैठे हैं तो भी करुणापूर्ण हैं। कोई आ गया तो भी करुणापूर्ण हैं। कोई चला गया तो भी करुणापूर्ण हैं।

पहला प्रेम मांग करता है कि मेरे अनुकूल जो है वह दो, तो मेरे प्रेम को मैं दूंगा। दूसरा प्रेम अनुकूल की मांग नहीं करता, लेकिन जहां प्रतिकूल होगा वहां से हट जाएगा। तीसरा प्रेम, प्रतिकूल हो, तो भी नहीं हटेगा।
मैं दूं पहले प्रेम में आप भी लौटाएं तो ही टिकेगा। दूसरे प्रेम में
आप न लौटाएं, सिर्फ लेने को राजी हों तो भी टिकेगा। तीसरे प्रेम में आप द्वार भी बंद कर लें, लेने को भी राजी न हों, नाराज भी हो जाते हों, क्रोधित भी होते हों, तो भी बहेगा।
तीसरा प्रेम अबाध है, उसे कोई बाधा नहीं रोक सकती। उसे लेने वाला भी नहीं रोक सकता। वह बहता ही रहेगा। वह अपने को लेने से रोक सकता है, लेकिन प्रेम की धारा को नहीं रोक सकता। उसको हमने करुणा कहा है।
करुणा प्रेम का परम रूप है।
पहला प्रेम, शरीर से बंधा होता है। दूसरा प्रेम, मन के घेरे में होता है। तीसरा प्रेम, आत्मा के जीवन में प्रवेश कर जाता है। ये हमारे तीन घेरे हैं--शरीर का, मन का, आत्मा का।
शरीर से बंधा हुआ प्रेम यौन होता है मूलतः। प्रेम सिर्फ आस-पास चिपकाए हुए कागज के फूल होते हैं। दूसरा प्रेम मूलतः प्रेम होता है। उसके आस-पास शरीर की घटनाएं भी घटती हैं, क्योंकि मन शरीर के करीब है। तीसरे प्रेम में शरीर बहुत दूर हो जाता है, बीच में मन का विस्तार हो जाता है, शरीर से कोई संबंध नहीं रह जाता। तीसरा प्रेम शुद्ध आत्मिक है।
एक प्रेम है शारीरिक, बंधन वाला। दूसरा प्रेम है शुद्ध मानसिक, निर्बंध। तीसरा प्रेम है शुद्ध आत्मिक। न बंधन है, न अबंधन है। न लेने का भाव है, न देने का भाव है। तीसरा प्रेम है स्वभाव।
बुद्ध से कोई पूछे, महावीर से कोई पूछे कि क्या आप हमें प्रेम करते हैं, तो वे कहेंगे कि नहीं। वे कहेंगे, हम प्रेम हैं, करते नहीं हैं। करते तो वे लोग हैं जो प्रेम नहीं हैं। उन्हें करना पड़ता है, बीच-बीच में करना पड़ता है। लेकिन जो प्रेम ही है, उसे करना नहीं पड़ता, करने का ख्याल ही नहीं उठता। करना तो हमें उन्हीं चीजों को पड़ता है--जो हम नहीं हैं। करना अभिनय है--होना--तो डूइंग और बीइंग का, करने और होने का फर्क है। करते हम वह हैं, जो हम हैं नहीं। मां कहती है, मैं बेटे को प्रेम करती हूं, क्योंकि वह प्रेम है नहीं। पति कहता है, मैं पत्नी को प्रेम करता हूं, क्योंकि वह प्रेम है नहीं। बुद्ध नहीं कहते कि मैं प्रेम करता हूं, महावीर नहीं कहते हैं कि मैं प्रेम करता हूं, क्योंकि वे प्रेम हैं। प्रेम उनसे हो ही रहा है। करने के लिए कोई चेष्टा, कोई आयोजन, कोई विचार भी आवश्यक नहीं है।
अब सूत्र--
"प्रमाद को कर्म कहा है, अप्रमाद को अकर्म। जो प्रवृत्तियां प्रमादयुक्त हैं, वे कर्म-बंधन करने वाली हैं। जो प्रवृत्तियां प्रमादरहित हैं, वे कर्म-बंधन नहीं करतीं। प्रमाद के होने न होने से मनुष्य क्रमशः मूढ़ और प्रज्ञावान कहलाता है।"
जो मैं कह रहा था, उससे जुड़ा हुआ सूत्र है। महावीर करने को कर्म नहीं कहते, न करने को अकर्म नहीं कहते। हम करते हैं तो कहते हैं कर्म, और नहीं करते हैं तो कहते हैं अकर्म। हमारा जानना बहुत ऊपरी है। आपने क्रोध नहीं किया तो आप कहते हैं कि मैंने क्रोध नहीं किया। आपने क्रोध किया तो आप कहते हैं मैंने क्रोध किया। जब आप कुछ करते हैं तो उसको कर्म कहते हैं, और कुछ नहीं करते हैं तो उसे अकर्म कहते हैं।
महावीर प्रमाद को कर्म कहते हैं, करने को नहीं। महावीर कहते हैं, मूर्छा से किया हुआ हो तो कर्म, होशपूर्वक किया हो तो अकर्म। जरा जटिल है और थोड़ा गहन उतरना पड़ेगा।
अगर आपने कोई भी काम बेहोशीपूर्वक किया हो, आपको करना पड़ा हो, आप अचेतन हो गए हों करते वक्त, आप अपने मालिक न रहे हों करते वक्त, आपको ऐसा लगा हो कि जैसे आप पजेस्ड हो गए हों, किसी ने आपसे करवा लिया है, आप मुक्त नियंता न रहे हों, तो कर्म है।

अगर आप अपने कर्म के मालिक हों, नियंता हों, किसी ने करवा न लिया हो, आपने ही किया हो पूरी सचेतनता से, पूरे होश से, अप्रमाद से, तो महावीर कहते हैं; अकर्म।
इसे हम उदाहरण लेकर समझें।
आपने क्रोध किया। क्या आप कह सकते हैं कि आपने क्रोध किया? या आपसे क्रोध करवा लिया गया? एक आदमी ने गाली दी, एक आदमी ने आपको धक्का मार दिया, एक आदमी ने आपके पैर पर पैर रख दिया, एक आदमी ने आपको इस ढंग से देखा, इस ढंग का व्यवहार किया कि क्रोध आप में हुआ, क्रोध आप में किसी से पैदा हुआ। यह आदमी गाली न देता, यह आदमी पैर पर पैर न रख देता, यह आदमी इस भद्दे ढंग से देखता नहीं तो क्रोध नहीं होता। क्रोध आपने नहीं किया, किसी और ने आपसे करवा लिया--पहली बात। मालिक कोई और है, मालिक आप नहीं हैं। इसको कर्म कहना ही फिजूल है, करने वाले ही जब आप नहीं हैं, तो इसे कर्म कहना फिजूल है। बटन हमने दबाई और पंखा चल पड़ा। पंखा नहीं कह सकता कि यह मेरा कर्म है। या कि कह सकता है? बटन बंद कर दी, पंखा चलना बंद हो गया। यह पंखे से करवाया गया। पंखा मालिक नहीं है, पंखा अपने वश में नहीं है। पंखा किसी और के वश में है। और के वश में होने का मतलब होता है, बेहोश होना। जब आप क्रोध करते हैं
तब आप होश में करते हैं? कभी आपने होश में क्रोध किया है? करके देखना चाहिए। पूरा होश संभालकर कि मैं क्रोध कर रहा हूं, और तब आप अचानक पायेंगे कि पैर के नीचे से जमीन खिसक गई, क्रोध तिरोहित हो गया।
होशपूर्वक आज तक क्रोध नहीं हो सका। और जब भी होगा तब बेहोशी में होगा। जब आप क्रोध करते हैं तब आप मौजूद नहीं होते, आप यंत्रवत हो जाते हैं। कोई बटन दबाता है, क्रोध हो जाता है। कोई बटन दबाता है, प्रेम हो जाता है। कोई बटन दबाता है, ईर्ष्या हो जाती है। कोई बटन दबाता है, यह हो जाता है, वह हो जाता है। आप हैं कि सिर्फ बटनों का एक जोड़ हैं, एक मशीन हैं जिसमें कई बटनें लगी हैं। यहां से दबाओ ऐसा हो जाता है, वहां से दबाओ वैसा हो जाता है।
एक आदमी मुस्कुराते हुए आकर कह देता है कुछ दो शब्द प्रशंसा के, भीतर कैसे गीत लहराने लगते हैं, वीणा बजने लगती है। और एक आदमी जरा तिरछी आंख से देख लेता है और एक तिरस्कार का भाव आंख से झलक जाता है। भीतर सब फूल मुरझा जाते हैं, सब धारा रुक जाती है गीत की। आग जलने लगती है, धुआं फैलने लगता है। आप हैं या सिर्फ चारों तरफ से आने वाली संवेदनाओं का आघात आपको चलायमान करता रहता है?
महावीर कहते हैं, मैं उसे ही कर्म कहता हूं, जो प्रमाद में किया गया हो। उसी से बंधन निर्मित होता है, इसलिए कर्म कहता हूं। जिसको आपने मूर्छा में किया है, उससे आप बंध जाएंगे। करने में ही बंध गए हैं, करने के पहले भी बंधे थे, इसीलिए किया है। वह बंधन है।
अगर हम अपने कर्मों की जांच-पड़ताल करें तो हम पाएंगे, वे सभी ऐसे हैं।
वे सब एक दूसरे पर निर्भर हैं। उसमें हम कहीं भी उसे अकर्म कहते हैं। महावीर प्रमाद को कर्म कहते हैं, करने को नहीं। महावीर कहते हैं, मूर्छा से किया हुआ हो तो कर्म, होशपूर्वक किया हो तो अकर्म। जरा जटिल है और थोड़ा गहन उतरना पड़ेगा।
अगर आपने कोई भी काम बेहोशीपूर्वक किया हो, आपको करना पड़ा हो, आप अचेतन हो गए हों करते वक्त, आप अपने मालिक न रहे हों करते वक्त, आपको ऐसा लगा हो कि जैसे आप पजेस्ड हो गए हों, किसी ने आपसे करवा लिया है, आप मुक्त नियंता न रहे हों, तो कर्म है।
अगर आप अपने कर्म के मालिक हों, नियंता हों, किसी ने करवा न लिया हो, आपने ही किया हो पूरी सचेतनता से, पूरे होश से, अप्रमाद से, तो महावीर कहते हैं; अकर्म।
इसे हम उदाहरण लेकर समझें।
आपने क्रोध किया। क्या आप कह सकते हैं कि आपने क्रोध किया? या आपसे क्रोध करवा लिया गया? एक आदमी ने गाली दी, एक आदमी ने आपको धक्का मार दिया, एक आदमी ने आपके पैर पर पैर रख दिया, एक आदमी ने आपको इस ढंग से देखा, इस ढंग का व्यवहार किया कि क्रोध आप में हुआ, क्रोध आप में किसी से पैदा हुआ। यह

आदमी गाली न देता, यह आदमी पैर पर पैर न रख देता, यह आदमी इस भद्दे ढंग से देखता नहीं तो क्रोध नहीं होता। क्रोध आपने नहीं किया, किसी और ने आपसे करवा लिया--पहली बात। मालिक कोई और है, मालिक आप नहीं हैं। इसको कर्म कहना ही फिजूल है, करने वाले ही जब आप नहीं हैं, तो इसे कर्म कहना फिजूल है। बटन हमने दबाई और पंखा चल पड़ा। पंखा नहीं कह सकता कि यह मेरा कर्म है। या कि कह सकता है? बटन बंद कर दी, पंखा चलना बंद हो गया। यह पंखे से करवाया गया। पंखा मालिक नहीं है, पंखा अपने वश में नहीं है। पंखा किसी और के वश में है। और के वश में होने का मतलब होता है, बेहोश होना। जब आप क्रोध करते हैं
तब आप होश में करते हैं? कभी आपने होश में क्रोध किया है? करके देखना चाहिए। पूरा होश सम्हाल कर कि मैं क्रोध कर रहा हूं, और तब आप अचानक पाएंगे कि पैर के नीचे से जमीन खिसक गई, क्रोध तिरोहित हो गया।
होशपूर्वक आज तक क्रोध नहीं हो सका। और जब भी होगा तब बेहोशी में होगा। जब आप क्रोध करते हैं तब आप मौजूद नहीं होते, आप यंत्रवत हो जाते हैं। कोई बटन दबाता है, क्रोध हो जाता है। कोई बटन दबाता है, प्रेम हो जाता है। कोई बटन दबाता है, ईर्ष्या हो जाती है। कोई बटन दबाता है, यह हो जाता है, वह हो जाता है। आप हैं कि सिर्फ बटनों का एक जोड़ हैं, एक मशीन हैं जिसमें कई बटनें लगी हैं। यहां से दबाओ ऐसा हो जाता है, वहां से दबाओ वैसा हो जाता है।
एक आदमी मुस्कुराते हुए आकर कह देता है कुछ दो शब्द प्रशंसा के, भीतर कैसे गीत लहराने लगते हैं, वीणा बजने लगती है। और एक आदमी जरा तिरछी आंख से देख लेता है और एक तिरस्कार का भाव आंख से झलक जाता है। भीतर सब फूल मुरझा जाते हैं, सब धारा रुक जाती है गीत की। आग जलने लगती है, धुआं फैलने लगता है। आप हैं या सिर्फ चारों तरफ से आने वाली संवेदनाओं का आघात आपको चलायमान करता रहता है?
महावीर कहते हैं, मैं उसे ही कर्म कहता हूं, जो प्रमाद में किया गया हो। उसी से बंधन निर्मित होता है, इसलिए कर्म कहता हूं। जिसको आपने मूर्च्छा में किया है, उससे आप बंध जायेंगे। करने में ही बंध गए हैं, करने के पहले भी बंधे थे, इसीलिए किया है। वह बंधन है।
अगर हम अपने कर्मों की जांच-पड़ताल करें तो हम पाएंगे, वे सभी ऐसे हैं।
वे सब एक दूसरे पर निर्भर हैं। उसमें हम कहीं भी मालिक नहीं हैं। हम केवल तंतुओं का एक जोड़ हैं और जगह-जगह से तंतु खींचे जाते हैं, और हमारे भीतर कुछ होता है। इसे महावीर कहते हैं, प्रमाद, मूर्च्छा, बेहोशी, अचेतना।
एक आदमी ने गाली दी, क्रोध हो गया। दोनों के बीच में जरा भी अंतराल नहीं है, जहां आप सजग हुए हों। और जहां आपने होशपूर्वक सुना हो कि गाली दी गई, और जहां आपने होशपूर्वक भीतर देखा हो कि कहां क्रोध पैदा हो रहा है, आप अगर दूर खड़े हो गए हों, गाली दी गई है, गाली सुनी गई है, गाली देने वाले के भीतर क्या हो रहा है, गाली सुनने वाले के भीतर क्या हो रहा है, अगर इन दोनों के पार खड़े होकर आपने देखा हो क्षण भर, तो उसका नाम होश है।
कहां लगी गाली, कहां घाव किया उसने, कहां छू दिया कोई पुराना छिपा हुआ घाव, कहां हरा हो गया कोई दबा हुआ घाव, कहां पड़ी चोट, क्यों पड़ी चोट, कहां भीतर मवाद बहने लगी। इसको अगर आपने खड़े होकर निष्पक्ष भाव से देखा हो जैसे यह गाली किसी और को दी गई हो, और ने तो दी है, किसी और को दी गई हो, अगर यह भी आपने देखा हो तो आप होश के क्षण में हैं। तो अप्रमाद है। और फिर आपने निर्णय किया हो कि क्या करना, और यह निर्णय शुद्ध रूप से आपका हो। यह निर्णय आपसे करवा न लिया गया हो, यह निर्णय आपका हो।
बुद्ध को कोई गाली दे, महावीर को कोई पत्थर मारे, जीसस को कोई सूली लगाए, तो भी वह साक्षी बने रहते हैं। यह जो साक्षी भाव हैतो भी वे देखते रहते हैं। जीसस मरते वक्त भी प्रार्थना करते हैं, हे प्रभु! इन सबको माफ कर देना, क्योंकि ये नहीं जानते कि ये क्या कर रहे हैं।
यह वही आदमी कह सकता है जो अपने शरीर से भी दूर खड़ा हो। नहीं तो यह कैसे कह सकते हैं आप? आपको कोई सूली दे रहा हो, और आप यह कह सकते हैं कि इनको माफ कर देना?

जीसस के शिष्य नहीं सोच रहे थे ऐसा। जीसस के शिष्य सोच रहे थे, इस वक्त होगा चमत्कार। पृथ्वी फटेगी, आग बरसेगी आकाश से, महाप्रलय हो जाएगी। जीसस का एक इशारा और भगवान से यह कहना कि नष्ट कर दो इन सबको, अभी चमत्कार हो जाएगा।
लेकिन जीसस ने जो कहा वह असली चमत्कार है। अगर जीसस ने यह कहा होता, कि नष्ट कर दो इन सबको, आग लगा दो, राख कर दो इस पूरी भूमि को, जिन्होंने मेरे साथ ऐसा व्यवहार किया। मैं जो ईश्वर का इकलौता बेटा हूं। हे पिता, नष्ट कर दे इन सबको, तो शिष्य समझते कि चमत्कार हुआ।
लेकिन यह चमत्कार नहीं था, यह तो आप भी करते। यह तो कोई भी कर सकता था।
यह चमत्कार था ही नहीं, क्योंकि यह तो जिसको सूली लगती है वह करता ही है, हो या न हो यह दूसरी बात है। सूली तो बहुत दूर है, कांटा गड़ता है तो सारी दुनिया में आग लगवा देने की इच्छा होती है। जरा सा दांत में दर्द होता है तो लगता है, कोई ईश्वर वगैरह नहीं है। सब नरक है।
यह तो सभी करते। आप थोड़ा सोचें, आप सूली पर लटके होते, क्या भाव उठता आपके भीतर? न तो पृथ्वी फटती आपके कहने से, क्योंकि ऐसे फटने लगे तो एक दिन भी बिना फटे नहीं रह सकती। एक क्षण नहीं रह सकती। न कोई सूरज आग बरसाता, न और कुछ होता। लेकिन इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। आपका मन तो यही होता कि हो जाए ऐसा।
मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है जो जिंदगी में दस-पांच बार हत्याएं करने का विचार न करता हो। दस-पांच बार अपनी हत्या करने का विचार न करता हो। दस-पांच बार सारी दुनिया को नष्ट कर देने का जिसे ख्याल न आ जाता हो, ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है।
जीसस ने यह जो कहा कि इनको माफ कर देना, क्योंकि ये नहीं जानते कि ये क्या कर रहे हैं, इसमें कई बातें निहित हैं।
पहली बात, ये जीसस के साथ कर रहे हैं, ऐसा जीसस को अगर लगता हो तो यह बात पैदा नहीं हो सकती। जिसके साथ ये कर रहे हैं वह जीसस से उतना ही दूर है जितना कि ये करने वाले लोग दूर हैं। यह चेतना भीतर अलग खड़ी है। एक तीसरा कोण मौजूद हो गया है।
साधारण आदमी की जिंदगी में दो कोण होते हैं--करने वाला, जिस पर किया जा रहा है, वह।
होश वाले आदमी की जिंदगी में तीन कोण होते हैं--जो कर रहा है वह, जिस पर किया जा रहा है वह, और जो दोनों को देख रहा है वह।
यह जो थर्ड, यह जो तीसरा है, यह जो तीसरी आंख है, यह जो देखने का तीसरा स्थान है, इसे महावीर कहते हैं, अप्रमाद।
बड़ा मुश्किल है, सूली पर चढ़े हों, हाथ में खीलें ठोंके जा रहे हों, होश बचाए रखना मुश्किल है। जरा सा एक आदमी धक्का देता है होश खो जाता है।
हमारा होश है ही कितना? किसी आदमी का होश मिटाना हो, जरा सी, कुछ भी करने की जरूरत नहीं है। जरा सा कुछ और सारा होश खो जाता है। होश जैसे है ही नहीं।
एक झीनी पर्त है, झूठी पर्त है ऊपर-ऊपर। जरा सा कंपन, सब टूट जाता है।
किसी भी आदमी को पागल करने में कितनी देर लगती है। आप जरूर दूसरों के बाबत सोच रहे होंगे, जिन-जिन को आपने पागल किया है। अपने बाबत सोचिए। पत्नी एक शब्द बोल देती है, और आप पागल हो जाते हैं। पत्नी को भी तब तक राहत नहीं मिलती, जब तक आप पागल हो न जायें। अगर न हों तो उसको लगता है, वश के बाहर हो गए।
एक मित्र मेरे पास आते हैं। पत्नी कर्कशा है, उपद्रवी है। वे मुझसे बार-बार कहते हैं, क्या करूं! सब सम्हाल कर घर जाता हूं, लेकिन उसका एक शब्द, और आग में घी का काम हो जाता है। बस उपद्रव शुरू हो जाता है।
मैंने उनसे कहा कि एक दिन सम्हाल कर मत जाओ, क्योंकि सम्हाल कर तुम जो जाते हो वही तुम्हारे भीतर इकट्ठा हो जाता है। फिर पत्नी जरा सा घी छिड़क देती है तो आग तो तुम सम्हाल कर ला रहे हो। एक दिन तुम सम्हाल कर जाओ ही मत। गीत गुनगुनाते जाओ, नाचते जाओ, सम्हाल कर मत जाओ, कोई फिकर ही मत करो, जो होगा देखा जाएगा। और जब पत्नी कुछ करे, क्योंकि तुमने आज तक बहुत क्रोध पत्नी पर कर लिया, कोई परिणाम तो होता नहीं, कोई हल तो होता नहीं। एक नई

तरकीब का उपयोग करो। जब पत्नी कुछ करे तो तुम मुस्कुराते रहना। कुछ नहीं करना है, ऐसा नहीं, कुछ नहीं करोगे तो मुश्किल पड़ेगी। तुम मुस्कुराते रहना। यह कुछ करना रहेगा, एक बहाना रहेगा। हंसते रहना।
पांच-सात दिन बाद उनकी पत्नी ने आकर कहा कि मेरे पति को क्या हो गया है। बिल्कुल हाथ के बाहर जाते हुए मालूम पड़ते हैं। उनका दिमाग तो ठीक है? पहले मैं कुछ कहती थी तो क्रोधित होते थे, वह समझ में आता था। अब मैं कुछ कहती हूं तो वे हंसते हैं। इसका मतलब क्या है? उनका दिमाग तो ठीक है! जब उनका दिमाग बिगड़ जाता था तब पत्नी मानती थी कि ठीक है, क्योंकि वह नार्मल था। अब ठीक हो रहा है तो पत्नी समझती है कि दिमाग कुछ खराब हो रहा है। स्वभावतः जब कोई गाली दे तो हंसना। तो अगर जीसस को सूली देने वाले लोगों को लगा हो कि यह आदमी पागल है, तो आश्चर्य नहीं है। क्योंकि एब-नार्मल था, असाधारण थी यह बात। जो सूली दे रहे हैं इनके लिए प्रार्थना करनी कि हे प्रभु, इन्हें माफ कर देना।
हम सब जीते हैं प्रमाद में, इसलिए प्रमाद में होना हमारी साधारण, नार्मल अवस्था हो गई है। हमारे बीच कोई जरा होश से जीए तो हमें अड़चन मालूम होती है। क्योंकि होश से जीने वाला हमारे बंधन के बाहर होने लगता है। होश से जीने वाला हमारे हाथ के बाहर खिसकने लगता है। क्योंकि होश से जीनेवाले का अर्थ है कि हम बटन दबाते हैं, उसके भीतर क्रोध नहीं होता। हम बटन दबाते हैं, उसके भीतर आनंद नहीं होता, वह अपना मालिक होता जा रहा है। अब जब वह आनंदित होता है, होता है।
एक और ध्यान रखने की बात है कि आनंदित आप अकेले हो सकते हैं, लेकिन क्रोधित आप अकेले नहीं हो सकते। आनंद के लिए किसी की आपको अपेक्षा नहीं है कि कोई आपकी बटन दबाए। इसलिए हमने कहा है कि जब कोई व्यक्ति अपना परम मालिक हो जाता है तो परम आनंद को उपलब्ध हो जाता है।
कुछ चीजें हैं जो दूसरों पर निर्भर हैं। जो दूसरों पर निर्भर हैं वह प्रमाद में ही हो सकती हैं। कुछ चीजें हैं जो किसी पर निर्भर नहीं-- स्वतंत्र हैं--वे अप्रमाद में हो सकती हैं।
इसलिए महावीर कहते हैं प्रमाद को कर्म, कर्म-बंधन के कारण। जब भी हम बेहोशी में कुछ कर रहे हैं, हम बंध रहे हैं। और यह कर्म-बंधन हमें लंबी यात्राओं में उलझा देगा, लंबे जाल में डाल देगा।
अप्रमाद को अकर्म, होश को अकर्म कहा है महावीर ने। अगर आप होशपूर्वक क्रोध कर सकते हैं तो महावीर कहते हैं कि आपको क्रोध का कोई बंधन नहीं होगा। लेकिन होशपूर्वक क्रोध होता ही नहीं। अगर आप होशपूर्वक चोरी कर सकते हैं, तो महावीर कहते हैं चोरी अकर्म है। इसमें फिर कोई कर्म-बंधन नहीं है। लेकिन होशपूर्वक चोरी होती ही नहीं। अगर आप होशपूर्वक हत्या कर सकते हैं, तो महावीर हिम्मतवर हैं, वे कहते हैं, इसमें कोई कर्म का बंधन नहीं है। आप होशपूर्वक हत्या करें। लेकिन होशपूर्वक हत्या होती ही नहीं। हत्या होती है अनिवार्य रूप से बेहोशी में।
तो महावीर कहते हैं, एक ही है नियम, होशपूर्वक। एक ही है पुण्य, होशपूर्वक। एक ही है धर्म, होशपूर्वक। फिर सारी छूट है। होशपूर्वक जो भी करना हो करो। धर्म को इतना इसेंशिएल, इतना सारभूत कम ही लोगों ने समझा और कहा है। इसलिए महावीर की सारी उपदेशना, उनकी सारी धर्मदेशना इस एक ही शब्द के आस-पास घूमती है--होश, विवेक, जागरूकता, अप्रमाद। इतना मूल्य दिया है उन्होंने तो सोचने जैसा है। नीति की दूसरी कोई आधारशिला नहीं रखी। यह करना बुरा है, यह करना अच्छा है, इस पर महावीर का जोर नहीं है, लेकिन तब बड़ी हैरानी होती है। महावीर को जिन्होंने पच्चीस सौ साल अनुगमन किया है, उनको होश की कोई फिकर नहीं है! उनको कर्मों की फिकर है। वे कहते हैं--यह कर्म ठीक, वह कर्म गलत।
इस फर्क को समझ लें।
जब मैं कहता हूं, यह कर्म ठीक, यह कर्म गलत, तो होश का कोई सवाल नहीं है। जब मैं कहता हूं, होश ठीक, बेहोशी गलत, तो कर्म का कोई सवाल नहीं है।
जिस कर्म के साथ भी मैं होश जोड़ लेता हूं वह ठीक हो जाता है। वह अकर्म हो

जाता है, उसका कोई बंधन नहीं रह जाता। और जिस कर्म के साथ मैं होश नहीं जोड़ पाता हूं वह पाप है, वह बंधन है, वह अधर्म है, वह कर्म है।
रहस्य यह है कि जो भी गलत है, उसके साथ होश नहीं जोड़ा जा सकता। गलत होने का मतलब ही यह है कि वह केवल बेहोशी में ही संभव है। गलत होने का एक ही गहरा मतलब है कि जो बेहोशी में ही संभव है। सही होने का एक ही मतलब है कि जो केवल होश में ही होता है, बेहोशी में कभी नहीं होता।
इसका क्या मतलब हुआ?
इसका मतलब हुआ कि आप अगर बेहोशी से दान करते हैं तो वह बंधन है।
एक आदमी रास्ते पर भीख मांगता हुआ खड़ा है। आप अकेले जा रहे हैं तो आप भीख मांगने वाले की फिकर नहीं करते। चार लोग आपके साथ हैं और भीख मांगने वाला हाथ फैला देता है तो आपको कुछ देना पड़ता है। यह भीख मांगने वाले को आप नहीं देते, अपनी इज्जत को, जो चार लोगों के सामने दांव पर लगी है। इसलिए भिखारी भी जानता है कि अकेले आदमी से उलझना ठीक नहीं। चार आदमियों के सामने हाथ फैला देता है, पैर पकड़ लेता है। उस वक्त सवाल यह नहीं है कि भिखारी को देना है, उस वक्त सवाल यह है कि लोग क्या कहेंगे कि दो पैसे न दे सके। आपका हाथ खीसे में जाता है। यह लोगों के लिए जा रहा है, जो मौजूद हैं। यह दान नहीं है, यह मूर्च्छा है। आप भिखारी को दे रहे हैं, लेकिन कहीं कोई दया-भाव नहीं है। यह मूर्च्छा है।
आप दान करते हैं कि मंदिर पर मेरे नाम का पत्थर लग जाए। यह मूर्च्छा है। आप ही न बचे, मंदिर का पत्थर कितने दिन बचेगा? और जरा जाकर देखें पुराने मंदिरों पर जो पत्थर लगे हैं कौन उनको पढ़ रहा है। वह भी आप ही जैसे लोग लगवा गए हैं। आप भी लगवा जाएंगे।
अगर दान मूर्च्छा है तो कर्म-बंधन है। लेकिन दान मूर्च्छा से हो ही नहीं सकता। अगर हो रहा है तो उसका मतलब वह दान नहीं है। आप धोखे में हैं, वह कुछ और है। चार लोगों में प्रशंसा मिलेगी, यह दान नहीं है। हजारों साल तक नाम रहेगा, यह दान नहीं है। यह तो सौदा है, यह तो सीधा सौदा है। अगर अकेले भी हैं आप, कोई देखने वाला नहीं है और भिखारी हाथ फैलाता है, तब भी जरूरी नहीं है कि दान ही हो।
कई बार ऐसा होता है कि इनकार करना ज्यादा मंहगा और दे देना सस्ता होता है। एक दो पैसे दे देने में ज्यादा सस्ता मालूम पड़ता है मामला, बजाय यह कहने में कि नहीं देंगे। यह नहीं देना ज्यादा मंहगा मालूम पड़ता है। आप दो पैसे दे देते हैं।
भिखारियों को लोग अक्सर दान नहीं देते, सिर्फ टालने की रिश्वत देते हैं कि जाओ, आगे बढ़ो। वह रिश्वत है, और भिखारी भी अच्छी तरह जानते हैं कि ज्यादा शोरगुल मचाओ, डटे रहो।
आप देखेंगे कि भिखारी डटा ही रहता है। वह भी जानता है कि एक सीमा है, वहां तक रुको। एक सीमा है, जहां यह आदमी रिश्वत देगा कि अब जाओ। भिखारी भी जानते हैं कि दान कोई नहीं देता, इसलिए भिखारी भी आप यह मत सोचना कि अनुगृहीत होते हैं। भिखारी भी जानते हैं, अच्छा बुद्धू बनाया। जब वह लेकर आपसे चले जाते हैं तो आप यह मत सोचना कि वह समझते हैं कि बड़ा दानी आदमी मिल गया था।
आप रिश्वत देते हैं। भिखारी भी जानता है कि यह रिश्वत है। इसलिए जानता है कि आपकी सहनशीलता की सीमा को तोड़ना जरूरी है, तब आपका हाथ खीसे में जाता है। कितनी सहनशीलता है, इस पर निर्भर करता है।
अकेले में भी अगर आप देते हैं तो टालने के लिए, हटाने के लिए। तो फिर दान नहीं है, मूर्च्छा है। दान मूर्च्छा से हो ही नहीं सकता। अगर मूर्च्छा है, दान नहीं हो सकता।
चोरी बिना मूर्च्छा के नहीं हो सकती। अगर आप होशपूर्वक चोरी करने जायें, तो जा ही न सकेंगे। अगर आप होशपूर्वक किसी की चीज उठाना चाहें, उठा ही न सकेंगे। और अगर उठा लें तो जरा भीतर गौर करके देखना। जिस क्षण उठाएंगे, उस क्षण होश खो जाएगा, मोह पकड़ लेगा, तृष्णा पकड़ लेगी, होश खो जाएगा।

एक बारीक संतुलन है भीतर होश और बेहोशी का। जो आदमी होशपूर्वक जी रहा
है, उससे पाप नहीं होता। इसका मतलब यह नहीं है कि महावीर चलेंगे तो कोई चींटी कभी मरेगी ही नहीं, महावीर चलेंगे तो चींटी मर सकती है, मरेगी। फिर भी महावीर कहते हैं, उसमें पाप नहीं, क्योंकि महावीर अपने तईं पूरे होशपूर्वक चल रहे हैं। अपने होश में कोई कमी नहीं है। अब अगर चींटी मरती है तो यह केवल प्रकृति की व्यवस्था है, महावीर का कोई हाथ नहीं है।
और आप, आप भी चल रहे हैं उसी रास्ते पर, और चींटी मरती है तो आपको पाप लगेगा। यह जरा अजीब सा गणित मालूम पड़ता है। महावीर चलते हैं, पाप नहीं लगता। आप चलते हैं, पाप लगता है, चींटी वही मरती है। क्या फर्क है?
आप बेहोशी से चल रहे हैं। इसलिए प्रकृति-दत्त मरना नहीं है चींटी का, आपका हाथ है। आप अपनी तरफ से होश से चले होते, आपने मारने के लिए न जाने, न अनजाने कोई चेष्टा की होती, आपने सब भांति अपने होश को सम्हाल कर कदम उठाया होता, फिर चींटी मर जाती, वह चींटी जाने, प्रकृति जाने, आप जिम्मेवार नहीं थे। आप जो कर सकते थे, वह किया था।
लेकिन आप बेहोशी से चल रहे हैं। आपको पता ही नहीं कि आप चल रहे हैं। आपको यह पता ही नहीं कि पैर आपका कहां पड़ रहा है, क्यों पड़ रहा है? आपका सिर कहीं आसमान में घूम रहा है, पैर जमीन पर चल रहे हैं। आप मौजूद यहां हैं शरीर से, मन कहीं और है।
यह जो बेहोश चलना है, इसमें जो चींटी मर रही है, उसमें आप जिम्मेवार हैं। वह जिम्मेवारी बेहोशी की जिम्मेवारी है, चींटी के मरने की नहीं। चींटी तो आपके होश में भी मर सकती है, लेकिन तब जिम्मेवारी आपकी नहीं। महावीर चालीस साल जीए, और यह बड़ी गहन चिंतना का विषय रहा है, तत्व-दार्शनिकों को, तत्वज्ञों को, कि महावीर को ज्ञान हुआ, उसके बाद वह चालीस साल जिंदा थे। तो कर्म तो कुछ किया ही होगा। इन चालीस सालों में जो कर्म किया, उसका बंधन महावीर पर हुआ या नहीं? कितना ही कम किया हो, कुछ तो किया ही होगा, उठे होंगे, बैठे होंगे, नहीं उठे, नहीं बैठे, सांस तो ली होगी। सांस लेने में भी तो जीवाणु मर रहे हैं, लाखों मर रहे हैं। एक श्वास में कोई एक लाख जीवाणु मर जाते हैं। बहुत छोटे हैं, सूक्ष्म हैं।
और जब महावीर ने पहली दफे इनकी बात कही थी तो लोगों को भरोसा नहीं आया
कि श्वास में कहां के जीवाणु। लेकिन अब तो विज्ञान कहता है कि वे हैं, और महावीर ने जितनी संख्या बताई थी, उससे ज्यादा संख्या है।
आपके ख्याल में नहीं है, आप एक चुंबन लेते हैं तो एक लाख जीवाणु मर जाते हैं। दो ओंठों के संस्पर्श के दबाव में एक लाख जीवाणु मर जाते हैं। यह वैज्ञानिक कहते हैं। महावीर ने तो बहुत पहले इशारा किया था कि श्वास लेते हैं तो भी जीवाणु मर जाते हैं।
इसलिए आप जानकर हैरान होंगे कि महावीर ने प्राणायम जैसी क्रियाओं को जरा भी जगह नहीं दी। यह हैरानी की बात है। क्योंकि योग प्राणायाम पर इतना जोर देता हो, उसके कारण बिल्कुल दूसरे हैं। लेकिन महावीर ने बिल्कुल जोर नहीं दिया। क्योंकि इतने जोर से श्वास का लेना, छोड़ना, महावीर को लगा, अकारण हिंसा को बढ़ा देना हो जाएगा।
इसलिए महावीर उतनी ही श्वास लेते हैं जितने के बिना नहीं चल सकता, जितने के बिना नहीं चल सकता। श्वास लेने में भी महावीर होश में हैं, जिसके बिना नहीं चल सकता है। अनिवार्य है जो होने के लिए, बस उतनी ही श्वास, वह भी होश में हैं वह, इसलिए दौड़ते नहीं कि श्वास तेज न हो जाए। चिल्लाते नहीं कि श्वास तेज न हो जाए। उतना ही बोलते हैं जितना अपरिहार्य है। चुप रह जाते हैं। क्योंकि जब कुछ भी हम कर रहे हैं उसमें अगर बेहोशी है, तो हिंसा हो रही है।
पर फिर भी महावीर बोले, फिर भी महावीर चले। नहीं कुछ किया तो श्वास तो ली। रात जमीन पर लेटे तो, शरीर का वजन पड़ा होगा। जब एक चुंबन में एक लाख कीटाणु मर जाते हैं, तो जब आदमी जमीन पर लेटेगा, कितना ही साफ-सुथरा करके लेटे करोड़ों कीटाणु मर जाएंगे, करोड़ों जीवाणु मर जाएंगे।
महावीर रात करवट नहीं लेते हैं, फिर भी एक करवट तो लेनी ही पड़ेगी, सोते वक्त। एक बार तो पृथ्वी छूनी ही पड़ेगी।

महावीर रात में करवट नहीं बदलते कि बार-बार बहुत सी हिंसा अकारण है।
एक करवट से काम चल जाता है तो बस एक करवट काफी है। एक ही करवट सोए रहते हैं।
फिर भी एक करवट तो सोते ही हैं।
आप ज्यादा हिंसा करते होंगे, वे कम करते हैं, लेकिन नहीं करते हैं ऐसा
तो दिखाई नहीं पड़ता। तो सवाल है कि महावीर ने चालीस साल में इतनी हिंसा की, उसका कर्म-बंधन अगर हुआ हो तो फिर वह मोक्ष कैसे जा सकते हैं? उनका पुनर्जन्म होगा। उतना बंधन, उतना संस्कार फिर जीवन में ले आएगा। लेकिन नहीं कोई कर्म-बंधन नहीं होता क्योंकि महावीर की कर्म की परिभाषा हम समझ लें।
जो हम मूर्च्छापूर्वक करते हैं, तभी कर्म-बंधन होता है। जो हम होशपूर्वक करते हैं, कोई कर्म-बंधन नहीं होता। तो महावीर यह नहीं कहते, आप क्या करते हैं। महावीर यह कहते हैं कि आप कैसे करते हैं। क्या महत्वपूर्ण नहीं है, भीतर का होश महत्वपूर्ण है।
"प्रमाद को कर्म, अप्रमाद को अकर्म कहा है, अर्थात जो प्रवृत्तियां प्रमादयुक्त हैं वे कर्म-बंधन करने वाली हैं और जो प्रवृत्तियां प्रमादरहित हैं, वे कर्म-बंधन नहीं करती हैं।"
इसलिए उन प्रवृत्तियों की खोज कर लेना जो मूर्छा के बिना नहीं हो सकतीं। उनको छोड़ना। उन प्रवृत्तियों की भी खोज कर लेना जो बेहोशी में हो ही नहीं सकतीं, सिर्फ होश में हो सकती हैं, उनकी खोज करना, उनका अभ्यास करना। लेकिन यह अभ्यास बहिर्मुखी न हो, भीतरी हो, और होश से प्रारंभ होता हो। होश को बढ़ाना, ताकि वे प्रवृत्तियां बढ़ जाएं जीवन में, जो होश में ही होती हैं।
जैसे मैंने कहा, प्रेम। अगर आप बेहोश हैं तो पहले तरह का प्रेम होगा। अगर थोड़े से होश में हैं और थोड़े से बेहोश में हैं तो दूसरे तरह का प्रेम होगा। अगर बिल्कुल होश में हैं तो तीसरे तरह का प्रेम होगा। प्रेम करुणा बन जाएगी। अगर बेहोश हैं तो करुणा कामवासना बन जाती है। अगर दोनों के मध्य में हैं तो काम और करुणा के बीच में वह जो कवियों का प्रेम है, वह होता है। प्रमाद के होने और न होने से; ज्ञान के होने या न होने से नहीं, प्रमाद
के होने या न होने से, महावीर कहते हैं, मैं किसी को मूढ़ और किसी को ज्ञानी कहता हूं। वह कितना जानता है, इससे नहीं; कितना होशपूर्वक जीता है, इससे। उसकी जानकारी कितनी है, इससे मैं उसे ज्ञानी नहीं कहता हूं, और उसकी जानकारी बिल्कुल नहीं है, इससे अज्ञानी भी नहीं कहता हूं। जानकारी का ढेर लगा हो और आदमी बेहोश जी रहा हो।
मैंने सुना है एडिसन के बाबत। शायद इस सदी का बड़े से बड़ा जानकार आदमी था। एक हजार आविष्कार एडिसन ने किए हैं, कोई दूसरे आदमी ने किए नहीं। आपकी जिंदगी अधिकतर एडिसन से घिरी है। चाहे आप कहते कितने ही हों कि हम भारतीय हैं और हम महावीर और बुद्ध से घिरे हैं। भूल में मत रहना, महावीर और बुद्ध से आपके फासले अनंत हैं। घिरे आप किसी और से हैं। एडिसन से ज्यादा घिरे हैं, बजाय महावीर या बुद्ध के।
बिजली का बटन दबाओ, तो एडिसन का आविष्कार है। रेडियो खोलो तो एडिसन का आविष्कार है। फोन उठाओ, तो एडिसन का आविष्कार है। हिलो-डुलो, सब तरफ एडिसन है। एक हजार आविष्कार हैं, जो हमारी जिंदगी के हिस्से बन गए हैं। इस आदमी के पास जानकारी का अंत नहीं था। बड़ा अदभुत जानकार आदमी था।
लेकिन एक दिन एडिसन का एक मित्र मिलने आया है। एडिसन सुबह-सुबह अपना नाश्ता करता है। नाश्ता रखा हुआ है। और एडिसन किसी सवाल को हल करने में लगा हुआ है। नौकर को आज्ञा नहीं है कि वह कहे, चुपचाप नाश्ता रख जाए। मित्र ने देखा, एडिसन उलझा है अपने काम में। नाश्ता तैयार है, उसने नाश्ता कर लिया। प्लेट साफ करके, ढांक करके रख दी। थोड़ी देर बाद जब एडिसन ने अपनी आंख उठाई कागज के ऊपर, देखा, मित्र आया है। कहा कि बड़ा अच्छा हुआ आए। नजर डाली खाली प्लेट पर। एडिसन ने कहा जरा देर से आए। पहले आते तो तुम भी नाश्ता कर लेते। मैं नाश्ता कर चुका। खाली प्लेट।
जानकारी अदभुत है इस आदमी की, लेकिन होश? होश बिल्कुल नहीं है।

होश और बात है, जानकारी और बात है। आप कितना जानते हैं, यह अंततः निर्णायक नहीं है धर्म की दृष्टि से। आप कितने हैं, कितने चेतन हैं, कितने जगे हुए हैं, इस पर निर्भर करेगा।
कबीर की जानकारी कुछ भी नहीं है, लेकिन होश अनूठा है। मोहम्मद की जानकारी बहुत ज्यादा नहीं है, लेकिन होश अनूठा है। जीसस की जानकारी क्या है? कुछ भी नहीं, एक बढ़ई के लड़के की जानकारी हो भी क्या सकती है? लेकिन होश अनूठा है।
एडिसन नाश्ते में भी बेहोश हो जाता है और जीसस सूली पर भी होश में हैं। इसलिए महावीर कहते हैं, प्रमाद को मैं कहता हूं, मूर्खता। अप्रमाद को मैं कहता हूं, पांडित्य, प्रज्ञा।
"जिसे मोह नहीं, उसे दुख नहीं।"
जो प्रज्ञावान है, उसको यह सूत्र ख्याल में आ जाएगा जीवन की व्यवस्था का। जीवन की जो आंतरिक व्यवस्था है वह यह है, जिसे मोह नहीं, उसे दुख नहीं। अगर आपको दुख है, तो आप जानना कि मोह है। दुख हम सभी को है। कम ज्यादा, और हर आदमी सोचता है, उससे ज्यादा दुखी आदमी संसार में दूसरा नहीं है। हर आदमी यह सोचता है, सारे दुख के हिमालय वही ढो रहा है।
"जिसे मोह नहीं, उसे दुख नहीं।" अगर आपको ऐसा लगता हो कि दुख के हिमालय
ढो रहे हैं तो समझ लेना कि मोह के प्रशांत सागर भी आपके भीतर होंगे। मोह के बिना दुख होता ही नहीं। जब भी दुख होता है, मोह से होता है।
मोह का अर्थ है--ममत्व। मोह का अर्थ है--मेरा का भाव। मकान में आग लग गई, मेरा है तो दुख होता है। मेरा नहीं है तो दुख नहीं होता। मेरा नहीं है तो सहानुभूति दिखा सकते हैं आप, लेकिन उसमें भी एक रस होता है। मेरा है, तब दुख होता है। मकान वही है, लेकिन अगर इनशयोर्ड है तो उतना दुख नहीं होता। बीमा कंपनी का जाता होगा, सरकार का जाता होगा; अपना क्या जाता है?
अपना है, तो दुख होता है। आपका बेटा मर गया, छाती पीट रहे हैं। और तभी
एक चिट्ठी आपके हाथ लग जाए, जिससे पता चले कि यह बेटा आपसे पैदा नहीं हुआ। पत्नी का किसी और से संबंध था, उससे पैदा हुआ। आंसू तिरोहित हो जाएंगे, दुख विलीन हो जाएगा। छुरी निकाल कर पत्नी की तलाश में लग जायेंगे कि पत्नी कहां है।
क्या हो गया?
वही व्यक्ति मरा हुआ पड़ा है सामने। मरने में कोई कमी नहीं होती है, आपकी इस जानकारी से, इस पत्र से। मौत हो गई है, लेकिन मौत का दुख नहीं है, मेरे का दुख है। जो हमारा नहीं है उसे हम मारना भी चाहते हैं। जो हमारे विपरीत है, उसको हम नष्ट भी करना चाहते हैं। जो अपना है, उसे बचाना चाहते हैं।
महावीर कहते हैंः "जिसे मोह नहीं, उसे दुख नहीं।" अगर दुख है तो जानना
कि मोह है।
"जिसे तृष्णा नहीं, उसे मोह नहीं।" अगर मोह है तो उसके भीतर तृष्णा होती है। "मेरा", हम कहते ही क्यों हैं? क्योंकि बिना "मेरे" के "मैं" को खड़े होने की कोई जगह नहीं। जितना मेरे "मेरे" का विस्तार होता है उतना बड़ा मेरा "मैं" होता है। इसलिए मैं की एक ही तृष्णा है, एक ही वासना है कि बड़ा, बड़ा हो जाऊं।
जिसके पास बड़ा राज्य है, उसके पास बड़ा मैं है। एक राजा का राज्य छीन लो, राज्य ही नहीं छिनता उसका, मैं भी छिन जाता है, सिकुड़ जाता है। एक धनी का धन छीन लो, धन ही नहीं छिनता, धनी सिकुड़ जाता है।
जो भी आपके पास है, वह आपका फैलाव है। मैं की एक ही तृष्णा है कि मैं ही बचूं। यह सारा ब्रह्मांड मेरे अहंकार की भूमि बन जाए। यह जो वासना है कि मैं फैलूं, मैं बचूं, सुरक्षित रहूं, सदा रहूं, अमरत्व को उपलब्ध हो जाऊं, मेरी कोई सीमा न हो, अनंत हो जाए मेरा साम्राज्य, तो यह है तृष्णा, यह है डिजायर।
महावीर कहते हैंः "जिसे तृष्णा नहीं, उसे मोह नहीं।" जिसको अपने मैं
को बढ़ाना ही नहीं है, वह मेरे से क्यों जुड़ेगा?

छोटे झोपड़े में जब आप रहते हैं तो आपका मैं भी उतना ही छोटा रहता है, झोपड़े वाले का मैं। बड़े महल में रहते हैं तो बड़े महल वाले का मैं। मैं आपका खोज करता है, कितनी बड़ी जगह घेर ले। स्पेस चाहिए मैं को फैलने के लिए। इसलिए आप देखते हैं कि अगर एक नेता चल रहा हो भीड़ में, तो बिल्कुल भीड़
के साथ नहीं चलता, थोड़ी स्पेस, थोड़ा आगे चलेगा, भीड़ थोड़ी पीछे चलेगी, जगह चाहिए। अगर भीड़ बिल्कुल पास आ जाए तो नेता को तकलीफ शुरू हो जाती है। तकलीफ इसलिए शुरू हो जाती है कि उसका जो विस्तार था मैं का, वह छीना जा रहा है।
और कोई आदमियों के नेता की ही ऐसी बात नहीं, अगर बंदरों का झुंड चल रहा हो, तो जो नेता है, उसमें जो बॉस है, उसके आस-पास एक आदरपूर्ण स्थान होता है, जिसमें कोई प्रवेश नहीं कर सकता। बाकी बंदर की जो भीड़ है, वह थोड़ी दूर जगह पर बैठेगी।
अगर आप नेता से मिलने गए हैं तो बिल्कुल पास नहीं बैठ सकते। अपने-अपने स्थान पर बैठना पड़ता है। एक जगह है, उसको वैज्ञानिक कहते हैं, टैरिटोरियल। एक अहंकार है जो प्रदेश घेरता है। फिर कितना बड़ा प्रदेश घेरता है? जितना बड़ा घेरता है उतना "मैं" को मजा आता है। उतना लगता है कि अब मैं मजबूत हूं, शक्तिशाली हूं। इसलिए किसी सम्राट के कंधे पर हाथ जाकर मत रख देना।
कहा जाता है कि हिटलर की जिंदगी में कोई उसके कंधे पर हाथ नहीं रख सका। इतना फासला ही कभी मिटने नहीं दिया। गोबेल्स हो कि उसके और निकट के मित्र हों, वह भी एक फासले पर खड़े रहेंगे, दूर, कंधे पर कोई हाथ नहीं रख सकता।
हिटलर का कोई मित्र नहीं था। मित्र बनाए नहीं जा सकते, क्योंकि मित्र
का मतलब है कि वह जो जगह है अहंकार की, उसको आप दबायेंगे। छीनेंगे। राजनीतिज्ञ के आप अनुयायी हो सकते हैं, शत्रु हो सकते हैं, मित्र नहीं हो सकते।
यह जो महावीर कहते हैं, जिसे मोह है, उसे तृष्णा है। अगर दुख है तो जानना कि मोह का सागर भरा है नीचे। अगर मोह है तो जानना कि तृष्णा की दौड़ है पीछे।
"जिसे लोभ नहीं, उसे तृष्णा नहीं।"
और इसलिए लोभ गहरे से गहरा है। तृष्णा भी लोभ का विस्तार है, ग्रीड का। मैं ज्यादा हो जाऊं। ज्यादा होने की जो दौड़ है, वह तृष्णा है। ज्यादा होने की जो वृत्ति है, वह लोभ है।
तृष्णा परिधि है, लोभ केंद्र है। परिधि सफल हो जाए तो मोह निर्मित होता है। परिधि असफल निर्मित हो जाए, असफल हो जाए तो क्रोध निर्मित होता है। जितनी तृष्णा सफल होती जाए, मोह बनता जाता है, और जितनी असफल हो उतना दुख। असफल हो, तो दुख।
"जिसे लोभ नहीं, उसे तृष्णा नहीं। और जो ममत्व से अपने पास कुछ भी नहीं रखता, उसका लोभ नष्ट हो जाता है।"
क्या है उपाय फिर?
एक ही उपाय है, "मेरे" को क्षीण करते जाना। पत्नी होगी, पर मेरे का भाव क्षीण कर लें। बेटा होगा, पर मेरे का भाव क्षीण कर लें। मकान को रहने दें, मकान को गिराने से कुछ न गिरेगा। मेरे को हटा लें। मकान पर वह जो मेरे को चिपका दिया है, वह जो आपके प्राण भी मकान के ईंट-गारे में समा गए हैं, उनको वापस हटा लें।
मेरे को हटाते जाएं, ममत्व को तोड़ते चले जाएं, और एक दिन ऐसी स्थिति आ जाए कि मकान तो दूर, यह जो और पास का मकान है--देह, शरीर--इससे भी पीछे हटा लें। ये हड्डियां भी मेरी नहीं; हैं भी नहीं। यह मांस भी मेरा नहीं, यह खून भी मेरा नहीं, यह चमड़ी भी मेरी नहीं। है भी नहीं। मैं नहीं था, तब ये हड्डियां किसी और की हड्डियां थीं, और मैं नहीं रहूंगा तब यह मांस किसी और का मांस हो जाएगा। यह खून किसी और की नसों में बहेगा। और यह चमड़ी किसी और के मकान का घेरा बनेगी। यह मेरा है नहीं। यह मेरे पहले भी था और मेरे बाद भी होगा। इससे भी अपने को हटा लें।

फिर और भीतर मैं का एक मकान है, मन का। कहते हैं, मेरे विचार। तो जरा गौर से देखें, कौन सा विचार आपका है? सब विचार पराए हैं। सब संग्रह हैं, सब स्मृति है। वहां से भी अपने को तोड़ लें। तोड़ते चले जाएं ममत्व से उस घड़ी तक, उस समय तक, जब तक कि मेरा कहने योग्य कुछ भी बचे। जब कुछ भी न बचे मेरा कहने योग्य, तब जो शेष रह जाता है, उसका नाम आत्मा है।
लेकिन हम तो ऐसे हैं कि हम कहते हैं, मेरी आत्मा। मेरी आत्मा जैसी कोई चीज नहीं होती। जहां तक मेरा होता है, वहां तक आत्मा का कोई अनुभव नहीं होता।
इसलिए बुद्ध ने तो कह दिया कि आत्मा शब्द ही छोड़ दो, क्योंकि इससे मेरे का भाव पैदा होता है, यह शब्द ही मत उपयोग करो, क्योंकि इससे लगता है मेरा, आत्मा का मतलब ही होता है मेरा। यह छोड़ ही दो। तो बुद्ध ने कहा, यह शब्द ही छोड़ दो, ताकि यह मेरा पूरी तरह टूट जाए। कहीं मेरा न बचे, तब भी आप बचते हैं।
जब सब मेरा छूट जाता है तब जो बचता है, वही है आपका अस्तित्व, वही है आपकी चेतना, वही है आपकी आत्मा। वह जो शून्य निराकार, होना, बच रहता है, वही है आपकी मुक्ति, वही है आनंद।

आज इतना ही।
रुकें पांच मिनट, कीर्तन करें।

महावीर-वाणी, भाग 2
चौथा प्रवचन

सारा खेल काम-वासना का (प्रमाद-स्थान-सूत्रः 2)

रसा पगामं न निसेवियव्वा,
पायं रसा दित्तिकरा नराणं।
दित्तं च कामा समभिद्दवन्ति,
दुमं जहा साउफलं व पक्खी।।
न कामभोगा समयं उवेन्ति,
न यावि भोगा विगइं उवेन्ति।
जे तप्पओसी य परिग्गही य,
सो तेसु मोहा विगइं उवेइ।।

दूध, दही, घी, मक्खन, मलाई, शक्कर, गुड़, खांड, तेल, मधु, मद्य, मांस आदि रस वाले पदार्थों का अधिक मात्रा में सेवन नहीं करना चाहिए, क्योंकि वे मादकता पैदा करते हैं और मत्त पुरुष अथवा स्त्री के पास वासनाएं वैसी ही दौड़ी आती हैं, जैसे स्वादिष्ट फल वाले वृक्ष की ओर पक्षी।
काम-भोग अपने आप न किसी मनुष्य में समभाव पैदा करते हैं और न किसी में राग-द्वेष रूप विकृति पैदा करते हैं, परंतु मनुष्य स्वयं ही उनके प्रति राग-द्वेष के नाना संकल्प बनाकर मोह से विकारग्रस्त हो जाता है।

पहले एक दो प्रश्न।
एक मित्र ने पूछा हैः "यदि महावीर की साधना विधि में अप्रमाद प्राथमिक है, तो क्या अहिंसा, अपरिग्रह, अचौर्य, अकाम उसके ही परिणाम हैं या वे साधना के अलग आयाम हैं?"

जीवन अति जटिल है, और जीवन की बड़ी से बड़ी और गहरी से गहरी जटिलता यह है
कि जो भीतर है, आंतरिक है, वह बाहर से जुड़ा है, और जो बाहर है, वह भी भीतर से संयुक्त है। यह जो सत्य की यात्रा है यह कहां से शुरू हो, यह गुह्यतम प्रश्न रहा है मनुष्य के इतिहास में।
हम भीतर से यात्रा शुरू करें या बाहर से, हम आचरण बदलें या अंतस, हम अपना व्यवहार बदलें या अपना चैतन्य? स्वभावतः दो विपरीत उत्तर दिए गए हैं। एक ओर हैं वे लोग, जो कहते हैं, आचरण को बदले बिना अंतस को बदलना असंभव है। उनके कहने में भी गहरा विचार है। वे यह कहते हैं, कि अंतस तक हम पहुंच ही नहीं पाते, बिना आचरण को बदले। वह जो भीतर छिपा है उसका तो हमें कोई पता नहीं है, जो हमसे बाहर होता है उसका ही हमें पता है। तो जिसका हमें पता ही नहीं है उसे हम बदलेंगे कैसे? जिसका हमें पता है उसे ही हम बदल सकते हैं। हमें अपने केंद्र का तो कोई अनुभव नहीं है, परिधि का ही बोध है। हम तो वही जानते हैं जो हम करते हैं।
मनसविदों का एक वर्ग है जो कहता है, मनुष्य उसके कर्म के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। कहलर ने कहा है--यू आर वॉट यू डू। जो करते हो, वही हो तुम, उससे ज्यादा नहीं। उससे ज्यादा की बात करनी ही नहीं चाहिए। हमारा किया हुआ ही हमारा होना है। इसलिए हम जो करते हैं, उससे ही हम निर्मित होते हैं। सार्त्र ने भी कहा है कि प्रत्येक कृत्य तुम्हारा जन्म है, क्योंकि प्रत्येक कृत्य से तुम निर्मित होते हो, और प्रत्येक व्यक्ति प्रतिपल अपने को जन्म दे रहा है। आत्मा कोई बंधी हुई, बनी हुई चीज नहीं है, बल्कि एक लंबीशृंखला है निर्माण की। तो जो हम करते हैं, उससे ही वह निर्मित होती है।
आज मैं झूठ बोलता हूं तो मैं एक झूठी आत्मा निर्मित करता हूं। आज मैं चोरी करता हूं तो मैं एक चोर आत्मा निर्मित करता हूं। आज मैं हिंसा करता हूं तो मैं एक हिंसक आत्मा निर्मित करता हूं, और यह आत्मा मेरे कल के व्यवहार को प्रभावित करेगी, क्योंकि कल का व्यवहार इससे निकलेगा।

पहले, क्योंकि अंडे के पहले मुर्गी हो कैसे सकेगी! और ऐसा नहीं कि गैर-बुद्धिमान इस तरह के तर्क में पड़ते हैं, बड़े-बड़े विचारशील लोग, बड़े दार्शनिकों ने भी इस पर चिंतन किया है कि मुर्गी पहले कि अंडा पहले।
एक भारतीय विचारक राहुल सांकृत्यायन ने बड़ी मेहनत की है इस विचार पर
कि मुग्रू पहले कि अण्डा पहले। हमको भी लगता है कि प्रश्न तो सार्थक है, पूछा जा सकता है। लेकिन प्रश्न व्यर्थ है, पूछा ही नहीं जा सकता। प्रश्न भाषा की भूल से पैदा होता है, लिंग्विस्टिक फैलिसी है।
असल में जब हम मुर्गी कहते हैं तो अंडा आ गया। जब हम अंडा कहते हैं तो मुर्गी आ गई। हम बाहर से मुर्गी-अंडे को दो में कर लेते हैं, लेकिन मुर्गी- अंडे दो नहीं हैं। एकशृंखला के हिस्से हैं। हम तोड़ लेते हैं कि यह रही मुर्गी और यह रहा अंडा। जब हम कहते हैं, यह रही मुर्गी, तो मुर्गी में अंडा छिपा है। जब हम कहते हैं, यह रही मुर्गी तो यह मुर्गी अंडे से ही पैदा हुई है। यह अंडे का ही फैलाव है, यह अंडे का ही आगे का कदम है। यह अंडा ही तो मुर्गी बना है।
जब हम आपसे कहते हैं बूढ़ा, तो आपका बचपन उसमें छिपा हुआ है। आपकी जवानी उसमें छिपी हुई है। बूढ़ा आदमी जवानी लिए हुए है, बचपन लिए हुए है। जब हम कहते हैं बच्चा, तो बच्चा भी बुढ़ापा लिए हुए है, जवानी लिए हुए है जो कल होगा वह अभी छिपा हुआ है। जो कल हो गया, वह भी छिपा है। लेकिन हम भाषा में तोड़ लेते हैं, मुर्गी अलग मालूम पड़ती है, अंडा अलग मालूम पड़ता है। और ठीक भी है, जरूरी भी है।
अगर दुकानदार से मैं जाकर कहूं कि मुझे अंडा चाहिए और वह मुझे मुर्गी
दे दे, तो बड़ी कठिनाई खड़ी हो जाएगी। दुकानदार के लिए और मेरे लिए जरूरी है कि अंडा अलग समझा जाए, मुर्गी अलग समझी जाए। लेकिन मुर्गी और अंडे की जीवन व्यवस्था में वे अलग नहीं हैं। अंडे का अर्थ होता है, होने वाली मुर्गी। मुर्गी का अर्थ होता है, हो गया अंडा।
देकार्त ने मजाक में कहा है--यह सवाल किसी ने देकार्त को पूछा है, तो देकार्त ने कहा कि मुझे मुश्किल में मत डालो। पहले तुम मेरी मुर्गी की परिभाषा समझ लो। देकार्त ने कहा कि मुर्गी है अंडे का एक ढंग और अंडे पैदा करने का। ए मेथड ऑफ दि एग्ग टु प्रोड्यूज मोर एग्स। मुर्गी बस केवल एक विधि है अंडे की और अंडे पैदा करने की। इससे उलटा भी हम कह सकते हैं, कि अंडा केवल एक विधि है मुर्गी की, और मुर्गियां पैदा करने की। एक बात साफ है, कि अंडा और मुर्गी अस्तित्व में दो नहीं हैं, एकशृंखला के दो छोर हैं। एक कोने पर अंडा है, दूसरे कोने पर मुर्गी है। जो अंडा है वही मुर्गी हो जाता है, जो मुर्गी है वही अंडा हो जाती है। इसलिए जो इसे दो में तोड़ कर हल करने की कोशिश करते हैं, वे कभी हल न कर पाएंगे। भाषा की भूल है। अस्तित्व में दोनों एक हैं, भाषा में दो हैं।
ठीक ऐसा ही बाहर और भीतर भाषा की भूल है। जिसको हम बाहर कहते हैं, वह भीतर का ही फैलाव है। जिसको हम भीतर कहते हैं, वह बाहर की ही भीतर प्रवेश कर गई नोक है। बाहर और भीतर हमारे लिए दो हैं, अस्तित्व के लिए एक हैं। वह जो आकाश आपके बाहर है मकान के, और जो मकान के भीतर है वह दो नहीं हो गया है आपकी दीवाल उठा लेने से, वह एक ही है।
मैंने अपनी गागर सागर में डाल दी है। वह जो पानी मेरी गागर में भर गया
है वह, और वह जो पानी मेरी गागर के बाहर है, दो नहीं हो गया है मेरी गागर की वजह से। वह जो भीतर है, वह जो बाहर है, वह एक ही है। आकाश अखंडित है, आत्मा भी अखंडित है। आत्मा का अर्थ हैः भीतर छिपा हुआ आकाश। आकाश का अर्थ हैः बाहर फैली हुई आत्मा।
यह मैं क्यों कह रहा हूं? यह मैं इसलिए कह रहा हूं ताकि आपको यह दिखाई
पड़ जाए कि चाहे बाहर से शुरू करो, चाहे भीतर से शुरू करो। बाहर से शुरू करो तो भी भीतर से शुरू करना पड़ता है, भीतर से शुरू करो तो भी बाहर से शुरू करना पड़ता है।
पहले, क्योंकि अंडे के पहले मुर्गी हो कैसे सकेगी! और ऐसा नहीं कि गैर-बुद्धिमान इस तरह के तर्क में पड़ते हैं, बड़े-बड़े विचारशील लोग, बड़े दार्शनिकों ने भी इस पर चिंतन किया है कि मुर्गी पहले कि अंडा पहले।

एक भारतीय विचारक राहुल सांकृत्यायन ने बड़ी मेहनत की है इस विचार पर
कि मुर्गी पहले कि अंडा पहले। हमको भी लगता है कि प्रश्न तो सार्थक है, पूछा जा सकता है। लेकिन प्रश्न व्यर्थ है, पूछा ही नहीं जा सकता। प्रश्न भाषा की भूल से पैदा होता है, लिंग्विस्टिक फैलिसी है।
असल में जब हम मुर्गी कहते हैं तो अंडा आ गया। जब हम अंडा कहते हैं तो मुर्गी आ गई। हम बाहर से मुर्गी-अंडे को दो में कर लेते हैं, लेकिन मुर्गी- अंडे दो नहीं हैं। एकशृंखला के हिस्से हैं। हम तोड़ लेते हैं कि यह रही मुर्गी और यह रहा अंडा। जब हम कहते हैं, यह रही मुर्गी, तो मुर्गी में अंडा छिपा है। जब हम कहते हैं, यह रही मुर्गी तो यह मुर्गी अंडे से ही पैदा हुई है। यह अंडे का ही फैलाव है, यह अंडे का ही आगे का कदम है। यह अंडा ही तो मुर्गी बना है।
जब हम आपसे कहते हैं बूढ़ा, तो आपका बचपन उसमें छिपा हुआ है। आपकी जवानी उसमें छिपी हुई है। बूढ़ा आदमी जवानी लिए हुए है, बचपन लिए हुए है। जब हम कहते हैं बच्चा, तो बच्चा भी बुढ़ापा लिए हुए है, जवानी लिए हुए है जो कल होगा वह अभी छिपा हुआ है। जो कल हो गया, वह भी छिपा है। लेकिन हम भाषा में तोड़ लेते हैं, मुर्गी अलग मालूम पड़ती है, अंडा अलग मालूम पड़ता है। और ठीक भी है, जरूरी भी है।
अगर दुकानदार से मैं जाकर कहूं कि मुझे अंडा चाहिए और वह मुझे मुर्गी
दे दे, तो बड़ी कठिनाई खड़ी हो जाएगी। दुकानदार के लिए और मेरे लिए जरूरी है कि अंडा अलग समझा जाए, मुर्गी अलग समझी जाए। लेकिन मुर्गी और अंडे की जीवन व्यवस्था में वे अलग नहीं हैं। अंडे का अर्थ होता है, होने वाली मुर्गी। मुर्गी का अर्थ होता है, हो गया अंडा।
देकार्त ने मजाक में कहा है--यह सवाल किसी ने देकार्त को पूछा है, तो देकार्त ने कहा कि मुझे मुश्किल में मत डालो। पहले तुम मेरी मुर्गी की परिभाषा समझ लो। देकार्त ने कहा कि मुर्गी है अंडे का एक ढंग और अंडे पैदा करने का। ए मैथड ऑफ दि एग्ग टु प्रोड्यूस मोर एग्स। मुर्गी बस केवल एक विधि है अंडे की और अंडे पैदा करने की। इससे उलटा भी हम कह सकते हैं, कि अंडा केवल एक विधि है मुर्गी की, और मुर्गियां पैदा करने की। एक बात साफ है, कि अंडा और मुर्गी अस्तित्व में दो नहीं हैं, एकशृंखला के दो छोर हैं। एक कोने पर अंडा है, दूसरे कोने पर मुर्गी है। जो अंडा है वही मुर्गी हो जाता है, जो मुर्गी है वही अंडा हो जाती है। इसलिए जो इसे दो में तोड़ कर हल करने की कोशिश करते हैं, वे कभी हल न कर पाएंगे। भाषा की भूल है। अस्तित्व में दोनों एक हैं, भाषा में दो हैं।
ठीक ऐसा ही बाहर और भीतर भाषा की भूल है। जिसको हम बाहर कहते हैं, वह भीतर का ही फैलाव है। जिसको हम भीतर कहते हैं, वह बाहर की ही भीतर प्रवेश कर गई नोक है। बाहर और भीतर हमारे लिए दो हैं, अस्तित्व के लिए एक हैं। वह जो आकाश आपके बाहर है मकान के, और जो मकान के भीतर है वह दो नहीं हो गया है आपकी दीवाल उठा लेने से, वह एक ही है।
मैंने अपनी गागर सागर में डाल दी है। वह जो पानी मेरी गागर में भर गया
है वह, और वह जो पानी मेरी गागर के बाहर है, दो नहीं हो गया है मेरी गागर की वजह से। वह जो भीतर है, वह जो बाहर है, वह एक ही है। आकाश अखंडित है, आत्मा भी अखंडित है। आत्मा का अर्थ है, भीतर छिपा हुआ आकाश। आकाश का अर्थ है, बाहर फैली हुई आत्मा।
यह मैं क्यों कह रहा हूं? यह मैं इसलिए कह रहा हूं ताकि आपको यह दिखाई
पड़ जाए कि चाहे बाहर से शुरू करो, चाहे भीतर से शुरू करो। बाहर से शुरू करो तो भी भीतर से शुरू करना पड़ता है, भीतर से शुरू करो तो भी बाहर से शुरू करना पड़ता है।
महावीर जैसे व्यक्ति मनुष्य के अस्तित्व को देखते हैं उसकी अखंडता में। इसलिए महावीर ने कहा है, कहां से शुरू करो, यह गौण है, क्योंकि बाहर और भीतर जुड़े हुए हैं। अगर एक व्यक्ति अहिंसक आचरण से शुरू करे, तो भी उसको अप्रमाद साधना पड़ेगा। उसको होश साधना पड़ेगा। क्योंकि बिना होश के अहिंसा नहीं हो सकती। और अगर बिना होश के अहिंसा हो रही है तो वह महावीर की अहिंसा नहीं है, वह जैनियों की अहिंसा भले हो। महावीर की अहिंसा में तो अप्रमाद आ

ही जाएगा, क्योंकि महावीर की अहिंसा का मतलब दूसरे को मारने से बचाना नहीं है।
यह बड़े मजे की बात है। क्योंकि दूसरे को हम मार ही कहां सकते हैं। इसलिए जो लोग सोचते हैं, अहिंसा का अर्थ है दूसरे को न मारना--उनसे ज्यादा मूढ़, चिंतना करने वाले लोग खोजने मुश्किल हैं। लेकिन यही समझाया जाता है कि अहिंसा का अर्थ है दूसरे को न मारना। दूसरे की हत्या न करना, दूसरे को दुख न पहुंचाना।
इसे हम थोड़ा समझ लें।
महावीर कहते हैं, आत्मा अमर है, इसलिए दूसरे को मार कैसे सकते हैं। दूसरे को मारने का उपाय कहां है? अगर मैं एक चींटी को पैर रख कर पिसल डालता हूं, तो भी मैं मार नहीं सकता। चींटी मर नहीं सकती मेरे पिसल देने से। अगर चींटी मर ही नहीं सकती, और उसकी आत्मा अमृत है, तो फिर दूसरे को मारना, नहीं मारना--ऐसी बातें करना अहिंसा के संबंध में बेमानी हैं। मार तो हम सकते ही नहीं--पहली बात। मारने का तो कोई उपाय ही नहीं है। और अगर हम मार ही सकते और आत्मा मिट जाती तो फिर आत्मा को खोजने का भी कोई उपाय नहीं था। फिर व्यर्थ थी सारी खोज। क्योंकि अगर मेरे मारने से किसी की आत्मा मर जाती है तो कोई मुझे मार डाले, मेरी आत्मा मर जाएगी। तो जो मर जाती है, उस आत्मा को पाकर भी क्या करेंगे? वह तो जरा सा पत्थर फेंक दिया जाए और आत्मा खत्म हो जाएगी। अमृत की तलाश है, इसलिए महावीर यह नहीं कह सकते कि दूसरे को मत मारो,
यह अहिंसा की परिभाषा है। दूसरा तो मारा जा नहीं सकता--पहली बात। फिर अहिंसा का क्या अर्थ होगा?
महावीर के लिए अहिंसा का अर्थ है दूसरे को मारने की धारणा मत करो। दूसरे को मारा नहीं जा सकता, लेकिन दूसरे को मारने का विचार किया जा सकता है। वही विचार पाप है। दूसरे को मारने का तो कोई उपाय नहीं है। लेकिन दूसरे को मारने का विचार किया जा सकता है, वही पाप है।
इसलिए महावीर ने कहा, मारो या विचार करो, बराबर है। इसलिए भाव-हिंसा
को भी उतना ही मूल्य दिया, जितना वास्तविक हिंसा को। हम कहेंगे, ज्यादती है। अदालत भाव-हिंसा को नहीं पकड़ती। अगर आप कहें कि मैं एक आदमी को मारने का विचार कर रहा हूं, तो अदालत आपको सजा नहीं दे सकती। आप कहें कि मैंने सपने में एक आदमी की हत्या कर दी है तो अदालत आपको सजा नहीं दे सकती। अपराध जब तक कृत्य न हो तब तक अपराध नहीं है। लेकिन महावीर ने कहा है, पाप और अपराध में यही फर्क है। अदालत तो तभी पकड़ेगी जब कृत्य हो, लेकिन धर्म तभी पकड़ लेता है, जब भाव हो।
एक आदमी को मैं मारूं, या एक आदमी को मारने का विचार करूं, बराबर पाप
हो गया, बराबर। जरा भी फर्क नहीं है। क्यों? क्योंकि वास्तविक मार कर भी मैं मार कहां पाता हूं? वह भी मेरा विचार ही है मारने का। और कल्पना में भी मार कर मैं मारता नहीं, मेरा विचार ही है, लेकिन जो मारने के विचार करता है, वह हिंसक है। कोई मरता नहीं मेरे मारने से, लेकिन मार-मार कर मैं अपने भीतर सड़ता हूं।
हम कहते हैं आमतौर से कि दूसरे को दुख नहीं देना है, दूसरे को दुख देना हिंसा है, लेकिन यह भी बात महावीर की नहीं हो सकती। क्योंकि दूसरे को मैं दुख दे कैसे सकता हूं? आप महावीर को दुख देकर देखें, तब आपको पता चलेगा। आप लाख उपाय करें, आप महावीर को दुख नहीं दे सकते। दूसरे को दुख देना मेरे हाथ में कहां है, जब तक दूसरा दुखी होने को तैयार न हो। यह मेरी स्वतंत्रता नहीं है कि मैं दूसरे को दुख दे दूं। जीसस को हमने सूली देकर देख ली, और हम दुख नहीं दे पाए। और मंसूर के हमने हाथ पैर काट डाले और गर्दन तोड़ डाली, तो भी हम दुख नहीं दे पाए। मंसूर हंस रहा था। और हमने वह लोग भी देख लिए हैं कि उनको सिंहासनों पर बिठा दो तो भी उनके चेहरे पर हंसी नहीं आती।
हम न सुख दे सकते हैं, न दुख दे सकते हैं। यह हमारे हाथ में नहीं है। यह
भी थोड़ा समझ लेने जैसा है। हम आमतौर से सोचते हैं, किसी को दुख मत दो। आप दे कब सकते हो दूसरे को दुख? यह कहा किसने? यह वहम आपको पैदा कैसे हुआ? यह वहम एक गहरे दूसरे वहम पर खड़ा हुआ है। हम सोचते हैं, हम दूसरे को सुख दे सकते हैं। इसलिए यह जुड़ा हुआ है।

सब आदमी सुख दे रहे हैं। मां बेटों को सुख दे रही हैं। बेटे मां को सुख
दे रहे हैं। पति पत्नियों को सुख दे रहे हैं। भाई भाई को, मित्र मित्र को सुख देने की कोशिश में लगे हैं और कोई किसी को सुख नहीं दे पा रहा है। अभी तक मुझे ऐसा आदमी नहीं मिला जो कहे कि मुझे मेरी मां ने सुख दिया। कि मां मिले, कहे कि मेरे बेटे ने मुझे सुख दिया। कोई किसी को सुख नहीं दे पा रहा है। और सारी दुनिया सुख देने की कोशिश में लगी है। इतनी सुख देने की चेष्टा, और सुख का कहीं कोई पता नहीं चलता। बल्कि अक्सर ऐसा लगता है कि जितना सुख देने की चेष्टा करो उतना दुख पहुंचता मालूम पड़ता है।
क्या, हो क्या रहा है? हम सुख दे सकते हैं दूसरे को, तब तो यह पृथ्वी स्वर्ग बन सकती थी, कभी की बन जाती, कोई कमी नहीं है इसमें। कभी कोई कमी नहीं रही है। लेकिन यह पृथ्वी स्वर्ग बन नहीं पाती, क्योंकि हम दूसरे को सुख दे नहीं सकते। कितने ही उपकरण जुटा लें हम, और कितना ही धन हो, और कितना ही वैभव हो, कितना ही धान्य हो, कितनी ही खुशहाली हो, एफ्लुएंस कितना ही हो जाए, समृद्धि कितनी ही हो जाए, हम सुख नहीं दे सकते, क्योंकि सुख दिया नहीं जा सकता। कोई सुखी होना चाहे तो सुखी हो सकता है, लेकिन कोई किसी को सुखी कर नहीं सकता।
इस बात को ठीक से समझ लें।
सुख दूसरे के द्वारा, दूसरे से, निर्मित नहीं होता। आप चाहें तो सुखी
हो सकते हैं। प्रत्येक व्यक्ति चाहे तो सुखी हो सकता है। लेकिन महावीर की भी यह हैसियत नहीं है कि किसी को सुखी कर दें। आप अगर महावीर के पास भी हों तो दुखी रहेंगे। आपसे महावीर हारेंगे, जीतने का कोई उपाय नहीं है। आप जीत कर ही लौटेंगे। अपनी रोती हुई शक्ल लेकर ही आप लौटेंगे। महावीर भी आपको हंसा नहीं सकते। विजेता अंत में आप ही होंगे। इसका कारण यह नहीं कि महावीर कमजोर हैं और आप बड़े शक्तिशाली हैं।
इसका कुल कारण इतना है कि दूसरे को सुखी करने का कोई उपाय ही नहीं है। दूसरे को दुखी करने का भी कोई उपाय नहीं है। अगर सुखी करने का उपाय होता तो दुखी करने का भी उपाय होता। जो अपने हैं, जिनके साथ हमारा ममत्व का बंधन है, उनको हम सुखी करने का उपाय करते हैं। जिनके साथ हमारा ममत्व के विपरीत संबंध है, जिनसे हमारी घृणा है, ईर्ष्या है, जलन है, क्रोध है, उन्हें हम दुखी करने का उपाय करते हैं। हम दोनों में असफल होते हैं। न हम मित्रों को सुखी कर पाते, न हम शत्रुओं को दुखी कर पाते।
अगर मित्र सुखी होते हैं तो यह उनका ही कारण होगा; अगर शत्रु दुखी होते हैं तो यह उनका ही कारण होगा। आप इसमें नाहक अपने को न लाएं। क्योंकि अगर मैं दुखी होना न चाहूं तो कोई दुनिया की शक्ति मुझे दुखी नहीं कर सकती। अगर मैं सुखी न होना चाहूं तो कोई दुनिया की शक्ति मुझे सुखी नहीं कर सकती। सुख और दुख व्यक्ति के निर्णय हैं, निजी, आत्मगत और व्यक्ति स्वतंत्र है।
तब तो इसका यह अर्थ हुआ कि अहिंसा का यह अर्थ भी करना ठीक नहीं कि हम दूसरे को दुखी न करें, यह अर्थ भी ठीक नहीं है। दूसरे को दुखी करने की चेष्टा न करें, इतना है अहिंसा का अर्थ। क्योंकि दूसरे को हम दुखी तो कर ही न पाएंगे, लेकिन दूसरे को दुखी करने की चेष्टा में हम अपने को दुखी कर लेते हैं। ठीक अगर इसको हम और गहरा समझें तो हम दूसरे को सुखी तो कर ही न पायेंगे, लेकिन दूसरे को सुखी करने की चेष्टा में हम अपने को दुखी कर लेते हैं।
यह बड़े मजे की बात है, अगर आप अपने को सुखी करने में लग जायें तो शायद आपके आसपास के लोग भी थोड़े सुखी होने लगेंगे। लेकिन हम उनको सुखी करने में लगे रहते हैं। उसमें वह तो सुखी हो नहीं पाते, हम दुखी हो जाते हैं। अगर आप अपने आस-पास के लोगों को पूरी स्वतंत्रता दे सकें, यही अहिंसा है। इसे ठीक से समझ लें।
अगर मैं दूसरे को परिपूर्ण स्वतंत्रता दे सकूं कि न तो मैं तुम्हें दुखी करूंगा, और न तुम्हें मैं सुखी करूंगा, मैं तुम्हें परिपूर्ण स्वतंत्रता देता हूं। तुम जो होना चाहो हो जाओ, मैं कोई बाधा नहीं डालूंगा, इस भाव का नाम अहिंसा है। अहिंसा जरा जटिल मामला है। इतना आसान

नहीं है, जितना आप सोचते हैं। कई लोग कहते हैं, हम किसी को दुखी नहीं कर रहे। फिर भी अहिंसा नहीं हो जाएगी। यह ख्याल भी कि आप दूसरे को दुखी कर सकते थे और अब नहीं कर रहे हैं, भ्रम है।
अहिंसा का अर्थ है, व्यक्ति परम स्वतंत्र है और मैं कोई बाधा नहीं डालूंगा। इतनी बाधा भी नहीं डालूंगा कि उसे सुखी करने की कोशिश करूं। मैं सुखी हो जाऊं तो शायद मेरे आस-पास जो आभा निर्मित होती है सुख की, वह किसी के काम आ जाए, लेकिन वह भी मेरी चेष्टा से काम नहीं आएगी। वह भी उसका ही भाव होगा काम में लाने का, तो काम में आएगी।
अहिंसा का इतना ही मतलब है कि मेरे चित्त में दूसरे को कुछ करने की धारणा मिट जाए। अगर कोई आदमी अहिंसा से शुरू करेगा तो भी अप्रमाद पर पहुंच जाएगा। क्योंकि बड़ा होश रखना पड़ेगा। हमें पता ही नहीं रहता है कि हम किन-किन मार्गों से, कितनी-कितनी तरकीबों से दूसरे को बाधा देते हैं--हमें पता ही नहीं रहता। हमारे उठने में, हमारे बैठने में, निंदा, प्रशंसा सम्मिलित रहती है। हमारे देखने में, समर्थन और विरोध शामिल रहता है। हम दूसरे को स्वतंत्रता देना ही नहीं चाहते। और जितने निकट हमारे कोई हो, हम उसको उतना परतंत्र करने की कोशिश में संलग्न रहते हैं। हमारी चेष्टा ही यही है कि दूसरा स्वतंत्र न हो जाए। इसका नाम हिंसा है, इस चेष्टा का नाम।
कोई आप परतंत्र कर पाएं गे, इस भ्रम में मत पड़ें। कोई परतंत्र हो नहीं पाता। पति अपने मन में कितना ही सोचता हो कि हम मालिक हैं, पति हैं और पत्नी उसको चिट्ठी में लिखती भी हो, स्वामी, आपके चरणों की दासी; मगर इससे कुछ हल नहीं होता। घर लौट कर पता चलेगा कि दासी क्या करती है। पत्नी कितनी ही सोचती हो कि मालकियत मेरी है, और पति के शरीर पर नहीं, उसकी आत्मा पर भी मेरा कब्जा है और उसकी आंख भी किस तरफ देखे और किस तरफ न देखे, यह भी मेरे इशारे पर चलता है। वह कितनी ही चेष्टा करती हो, लेकिन वह भ्रम में है। कोई किसी को परतंत्र कर नहीं पाता। हां, करने की चेष्टा में कलह, संघर्ष, संताप, धुंआ, चारों तरफ जीवन में जरूर पैदा हो जाता है।
महावीर का अहिंसा से अर्थ है--प्रत्येक व्यक्ति की जो परम स्वतंत्रता है, उसका समादर। एक चींटी की भी परम स्वतंत्रता है, उसका समादर। न हमने उसे जन्म दिया है, न हमने उसे जीवन दिया है, हम उसे मृत्यु कैसे दे सकते हैं। जो जीवन हमने दिया नहीं, वह हम छीन कैसे सकते हैं। वह अपनी हैसियत से जीती है, लेकिन हम बाधा डालने की कोशिश कर सकते हैं। उस कोशिश में चींटी को नुकसान होगा, यह महावीर का कहना नहीं है। उस कोशिश में हमको नुकसान हो रहा है। वह कोशिश हमें पथरीला बनाएगी और डुबा देगी जिंदगी में।
जो व्यक्ति दूसरे को परतंत्र करने चला है, या दूसरे की स्वतंत्रता में बाधा डालने चला है वह गुलाम की तरह मरेगा। जो व्यक्ति सबको स्वतंत्र करने चला है और जिसने सारे बंधन ढीले कर दिए हैं, और जिसने जाना भीतर कि प्रत्येक व्यक्ति परम गुह्य रूप से स्वतंत्र है,
आत्यंतिक रूप से स्वतंत्र है, और दूसरे की आत्मा का अर्थ ही यह होता
है कि उसे परतंत्र नहीं किया जा सकता।
इसे ठीक से समझ लें।
परतंत्र हम कर ही सकते हैं किसी को तब, जब कि उसमें आत्मा न हो। मशीन परतंत्र हो सकती है। मशीन के लिए स्वतंत्रता का कोई अर्थ नहीं होता। लेकिन व्यक्ति कभी परतंत्र नहीं हो सकता, और हम व्यक्ति को मशीन की तरह व्यवहार करना चाहते हैं। वह व्यवहार ही हिंसा है। तब तो बड़ा होश रखना पड़ेगा। व्यवहार के छोटे-छोटे हिस्से में होश रखना पड़ेगा कि मैं किसी की परतंत्रता लाने की चेष्टा में तो नहीं लगा हूं। आएगी तो है ही नहीं, लेकिन चेष्टा, मेरा प्रयास, मुझे दुख में डाल जाएगा। अप्रमाद तो रखना पड़ेगा, होश तो रखना पड़ेगा।
आप रास्ते से गुजर रहे हैं और एक आदमी की तरफ आप किसी भांति देखते हैं। अगर उसमें निंदा है, और भले आदमी बड़े निंदा के भाव से देखते हैं। एक साधु के पास आप सिगरेट पीते चले जाएं, फिर उसकी आंखें देखें कैसी हो गईं। उसका वश चले तो अभी इसी वक्त आपको नरक भेज दे। साधु नहीं है यह आदमी, क्योंकि आपकी स्वतंत्रता पर गहन बाधा डाल रहा है, चेष्टा कर रहा है।

साधुओं के पास जाओ तो उनके पास बात ही इतनी है, ऐसा मत करो, वैसा मत करो। जैसे ही साधु के पास जाएंगे वहां आपकी स्वतंत्रता को छीनने की चेष्टा में संलग्न हो जाएगा। उसको वह कहता है, व्रत दे रहा हूं। कौन किसको व्रत दे सकता है? इसीलिए साधुओं के पास जाने में डर लगता है लोगों को, कि वहां गए तो यह छोड़ दो, यह पकड़ लो। ऐसा मत करो, वैसा मत करो; यह नियम ले लो। मगर सारी चेष्टा का मतलब क्या है कि साधु आपको बरदाश्त नहीं कर सकता,
कि आप जैसे हैं। आप में फर्क करेगा, आपके पंख काटेगा, आपकी शक्ल-सूरत में थोड़ा सा हिसाब-किताब बांटेगा। तब, आप जैसे हैं इसकी परम स्वतंत्रता का कोई समादर साधु के पास नहीं है। और जिसके पास आपकी स्वतंत्रता का समादर नहीं है, वह साधु कहां? साधुता का मतलब ही यह है कि मैं कौन हूं जो बाधा दूं। मुझे जो ठीक लगता है वह मैं निवेदन कर सकता हूं, आग्रह नहीं।
महावीर ने कहा है, साधु उपदेश दे सकता है, आदेश नहीं। उपदेश का मतलब अलग होता है, आदेश का मतलब अलग। उपदेश का मतलब होता है, ऐसा मुझे ठीक लगता है, वह मैं कहता हूं। आदेश का मतलब है, ऐसा ठीक है, तुम भी करो। मुझे जो ठीक लगता है वह जरूरी नहीं कि ठीक हो। यह मेरा लगना है। मेरे लगने की क्या गारंटी है? मेरे लगने का मूल्य क्या है? यह मेरी रुचि है, यह मेरा भाव है। यह परम सत्य होगा, यह मैं कैसे कहूं?
असाधुता वहीं से शुरू होती है जहां मैं कहता हूं, मेरा सत्य तुम्हारा
भी सत्य है, बस असाधुता शुरू हो गई, हिंसा शुरू हो गई। जब तक मैं कहता हूं, मेरा सत्य मेरा सत्य है। निवेदन करता हूं कि मुझे क्या ठीक लगता है। शायद तुम्हारे काम आ जाए, शायद काम न भी आए, शायद तुम्हें सहयोगी हो, शायद तुम्हें बाधा बन जाए। सोच-समझ कर, अप्रमाद से, होशपूर्वक, तुम्हें जैसा लगे करना। आदेश मैं नहीं दे सकता हूं। लेकिन जब मैं आदेश देता हूं तब उसका मतलब हुआ कि मैं कह रहा हूं, मेरा सत्य सार्वभौम सत्य है, माई ट्रूथ मींस दि ट्रूथ, मेरा जो सत्य है वही सत्य है, और कोई सत्य नहीं है। अगर मेरे सत्य के विपरीत किसी का सत्य है तो वह असत्य है, उसे छोड़ना होगा। अगर उसे नहीं छोड़ते हो तो नरक जाना पड़ेगा, वह नरक की व्यवस्था मेरी है। जो मुझे नहीं मानेगा वह नरक जाएगा, यह उसका अर्थ है। जो मुझे नहीं मानेगा वह आग में सड़ेगा, इसका यह अर्थ है। जो मुझे मानेगा उसके लिए स्वर्ग का आश्वासन है, उसे स्वर्ग के सुख हैं।
यह क्या हुआ? यह साधु का भाव न हुआ। यह असाधु हो गया आदमी। यह हिंसा हो गई।
महावीर की अहिंसा गुह्य है, एसोटेरिक है, गुप्त है। अहिंसा का मतलब यह है, यह स्वीकृति कि प्रत्येक आत्मा परमात्मा है, उससे नीचे नहीं। यह अहिंसा का अर्थ है। अहिंसा का अर्थ है कि मैं तुमसे ऐसा व्यवहार करूंगा कि तुम परमात्मा हो, इससे कम नहीं। और मैं अपने को तुम्हारे ऊपर थोपूंगा नहीं। और अगर तुम मेरे विपरीत जाते हो, तो तुम्हें नरक में नहीं डाल दूंगा। और तुम अनुकूल आते हो तो तुम्हारे लिए स्वर्ग का आयोजन नहीं करूंगा। तुम अनुकूल आते हो या प्रतिकूल, यह तुम्हारा अपना निर्णय है, और मेरा कोई भाव इस निर्णय पर आरोपित नहीं होगा।
तो अहिंसा साधते वक्त अप्रमाद अपने आप सध जाएगा। तो चाहे कोई अहिंसा
से शुरू करे, अलोभ से शुरू करे, अक्रोध से शुरू करे, वह अप्रमाद पर उसे जाना ही होगा। वह अंडे से शुरू करे, मुर्गी तक उसे जाना ही होगा। और चाहे कोई अप्रमाद से शुरू करे वह अप्रमाद से शुरू करेगा, हिंसा गिरनी शुरू हो जाएगी। क्योंकि अप्रमाद में कैसे, होश में कैसे, हिंसा टिक सकती है? हिंसा गिरेगी, परिग्रह गिरेगा, पाप हटेगा, पुण्य अपने आप प्रवेश करने लगेगा।
तो जब मुझसे कोई पूछता है कि इसमें महावीर की विधि क्या? वह बाहर पर जोर देते हैं कि भीतर पर? महावीर इस बात पर जोर देते हैं कि तुम कहीं से भी शुरू करो, दोनों सदा मौजूद रहेंगे। और अगर एक मौजूद रहता है तो विधि में भूल है और खतरा है। अगर कोई व्यक्ति कहता है, मैं तो भीतर से ही मैं बाहर से ध्यान नहीं दूंगा, वह अपने को धोखा दे सकता है। क्योंकि वह बाहर हिंसा कर सकता है और कहे कि मैं तो भीतर से अहिंसक हूं। ऐसे बहुत लोग हैं जो भीतर से

साधु और बाहर से असाधु हैं। और वे कहते चले जायेंगे, यह तो मामला बाहर का है। बाहर में क्या रखा हुआ है, बाहर तो माया है।
एक बौद्ध भिक्षु कहता था कि सारा संसार माया है। बाहर क्या रखा है? है
ही नहीं कुछ, सपना है। इसलिए वेश्या के घर में भी ठहर जाएगा, शराब भी पी लेगा। क्योंकि अगर सपना ही है तो पानी और शराब में फर्क कैसे हो सकता है? अगर शराब में कुछ वास्तविकता है, तो ही फर्क हो सकता है। नहीं तो पानी में और शराब में क्या फर्क है, अगर सब माया है? तो आपको मैं मारूं कि जिलाऊं, कि जहर दूं, कि दवा दूं क्या फर्क है? फर्क तो सच्चाइयों में होता है। दो झूठ बराबर झूठ होते हैं। और अगर आप कहते हैं, एक झूठ थोड़ा कम झूठ है, तो उसका मतलब है कि वह थोड़ा सच हो गया।
अगर सारा जगत माया है तो ठीक है। तो वह जो मन में आए करता था। एक सम्राट ने उससे अपने द्वार पर बुलाया। विवाद में जीतना उस आदमी से मुश्किल था। असल में विवाद की जिसे कुशलता आती हो, उससे जीतना किसी भी हालत में मुश्किल है। क्योंकि तर्क वेश्या की तरह है। कोई भी उसका उपयोग कर ले सकता है। और यह तर्क गहन है कि सारा जगत माया है। सिद्ध भी कैसे करो कि नहीं है।
पर सम्राट था बुद्धू, इसलिए कभी-कभी बुद्धू तार्किकों को बड़ी मुश्किल में डाल देते हैं। तो उसने कहा, अच्छा! सब माया है? तो उसने कहा, अपना जो पागल हाथी है, उसे ले आओ। वह भिक्षु घबराया कि यह झंझट होगी। तर्क का मामला था तो वह सिद्ध कर लेता था। तर्क के मामले में आप जीत नहीं सकते, जो आदमी कहता है कि सब असत्य है, उसको कैसे सिद्ध करिएगा कि सत्य है? क्या उपाय है? कोई उपाय नहीं है।
उस सम्राट ने कहा कि बैठें, अभी पता चलता है। वह पागल हाथी बुला कर उसने महल के आंगन में छोड़ दिया और भिक्षु को खींचने लगे सिपाही, तो वह चिल्लाने लगा। कि यह क्या कर रहे हैं! विचार से विचार करिए।
पर सम्राट ने कहा कि हाथी पागल है। हमारी समझ में वास्तविकता है यह, तुम्हारी समझ में तो सब माया है। माया के हाथी से ऐसा भय क्या?
उस भिक्षु ने कहाः क्या मेरी जान लोगे?
उस सम्राट ने कहा कि माया का हाथी है, क्या जान ले पाएगा!
भिक्षु चिल्लाता रहा। जबरदस्ती उसे आंगन में छोड़ दिया। भिक्षु भागता है। और हाथी उसके पीछे चिंघाड़ता है। भिक्षु चिल्लाता है कि क्षमा करो, वापस लेता हूं अपना सिद्धांत। अब कभी ऐसी भूल की बात न करूंगा। ऐसा मैंने कभी देखा नहीं था कि तर्क का और यह! बहुत रोता-गिड़गिड़ाता है, आंसू बहने लगते हैं। सम्राट उसे उठवा लेता है और कहता है, अब शांत होकर बैठ जायें, भूल जायें अपनी बात।
भिक्षु ने कहाः कौन सी बात?
"वह जो अभी आप माफी मांग रहे थे, चिल्ला रहे थे।"
भिक्षु ने कहाः सब माया है--वह रोना, चिल्लाना, तुम्हारा बचाना।
जहां तक तर्क का मामला है, उससे बचना मुश्किल है।
सम्राट ने कहाः क्या मतलब?
उसने कहाः लेकिन दुबारा उस झंझट को खड़ा करने की
अगर पागल हाथी फिर पागल मालूम पड़ता है, तो फर्क है। भेद अगर दिखाई पड़ता है जरा सा भी, तो फर्क है। तो फिर हम अपने को धोखा दे सकते हैं। हम कह सकते हैं कि बाहर की तो हमें कोई चिंता नहीं है। बाहर तो सब ठीक है, असली चीज भीतर है। लेकिन अगर असली चीज भीतर है, तो उसके प्रमाण बाहर भी मिलेंगे, क्योंकि भीतर बाहर आता रहता है, प्रतिपल। वह जो झरना भीतर छिपा है वह बाहर छलांग लगा कर उचकता रहता है। बाहर फेंकता रहता है अपनी धारा को। अगर कोई झरना यह कहे, कि हम तो भीतर भीतर हैं, बाहर कुछ भी नहीं, बाहर रेगिस्तान है, तो झरना झूठा है। झरने का मतलब ही क्या जो फूटे न। फूटे तभी झरना है।
अगर भीतर मेरे अप्रमाद है तो बाहर परिणाम होंगे। बाहर हिंसा गिरेगी। अगर भीतर मेरे अप्रमाद है, तो बाहर लोभ गिरेगा। अगर भीतर मेरे अप्रमाद है तो बाहर, वह जो आसक्ति है, मोह है, क्षीण होगा।

भीतर की बात करके आदमी अपने को धोखा दे सकता है। बाहर से भी आदमी अपने
को धोखा दे सकता है। बाहर इंतजाम कर लेता है वह कि मैं अहिंसा पालन करूंगा, लोभ नहीं करूंगा, दान करूंगा और भीतर प्रमाद घना होता है। बेहोशी घनी होती है। बाहर सम्हल कर चलने लगता है। चींटी पर पैर नहीं रखता। लेकिन भीतर दूसरे को दुख-सुख पहुंचाने का भाव घना होता है। वह साधु हो जाता है, लेकिन नरक और स्वर्ग की बातें करता रहता है। वह साधु हो जाता है, लेकिन दूसरों को ऐसे देखता है जैसे वे कीड़े-मकोड़े हों।
शायद साधु होने का गहरा मजा यही है कि दूसरे कीड़े-मकोडे दिखाई पड़ने लगते हैं। हम सभी एक दूसरे को कीड़ा-मकोड़ा देखना चाहते हैं। तरकीबें अलग-अलग हैं। कोई एक बहुत बड़ा मकान बना कर उस पर खड़ा हो जाता है, झोपड़ों के लोग कीड़े-मकोड़े हो जाते हैं। कोई आदमी चढ़ जाता है राजधानी के शिखर पर, भीड़ कीड़ा-मकोड़ा हो जाती है। एक आदमी त्याग के शिखर पर खड़ा हो जाता है, भोगी कीड़े-मकोड़े हो जाते हैं। और बड़ा मजा यह है कि झोपड़े वाला आदमी तो शायद अकड़ कर भी चल सके महल वाले के सामने कि तुम शोषक, हत्यारे, हिंसक। भीड़ का आदमी राजनीति के शिखर पर खड़े आदमी के सामने अकड़ कर भी चल सके कि तुम बेईमान, झूठे; लेकिन भोगी, त्यागी के सामने अकड़ कर नहीं चल सकता।
तो त्याग बारीक से बारीक अकड़ है, जिसका जवाब देना मुश्किल है। भोगी को खुद ही लगता है, हम गलत, तुम ठीक। यह भोगी को इसीलिए लगता है कि त्यागी हजारों साल से उसको समझा रहे हैं, बिल्ट इन कंडीशनिंग कर दी है उसके दिमाग में कि तुम गलत हो। उसको भी लगता है कि गलत तो मैं हूं। त्यागी ठीक, त्यागी शिखर पर हो जाता है, भोगी नीचे पड़ जाता है। सारी दुनिया में एक चेष्टा चलती रहती है कि मैं दूसरे से ऊपर, यही हिंसा है।
तो चींटी से बच कर चलने में बहुत कठिनाई नहीं है। अगर जो चींटी से बच
कर नहीं चलता, उसको मैं देखता हूं कि वह कीड़ा-मकोड़ा है, तो कोई कठिनाई नहीं है, चींटी से बच कर चलने में अगर यही मजा है कि जो बच कर नहीं चलते, उनको मैं पापी की तरह देख सकता हूं, तो चींटी से बचा जा सकता है। लेकिन यह हिंसा और गहरी हो गई। चींटी का मर जाना, उसको बेहोशी से दबा देना, हिंसा थी, अप्रमाद था। यह अप्रमाद और गहरा हो गया। इसने रास्ता बदल दिया, रुख बदल दिया। बीमारी दूसरी तरफ चली गई, लेकिन मौजूद है, और गहरी हो गई।
चाहे तो कोई बाहर के आचरण को ठोंक-पीट कर ठीक कर ले, और भीतर बेहोश बना रहे। चाहे तो कोई भीतर बेहोशी न टूटे, और बाहर के आचरण में जैसा है वैसा ही चलता रहे, जरा भी न बदले, धोखा दे सकता है।
महावीर जैसे व्यक्ति अखंड व्यक्ति को स्वीकार करते हैं। वे कहते हैं, पूरा व्यक्ति ही बदलना है। बाहर और भीतर दो टुकड़े नहीं हैं। एक धारा के अंग हैं। कहीं से भी शुरू करो, दूसरा भी अंतर्निविष्ट है, दूसरा भी अंतर्निहित है।
अब सूत्र।
"रस वाले पदार्थों का अधिक मात्रा में सेवन नहीं करना चाहिए, क्योंकि
वे मादकता पैदा करते हैं और मत्त पुरुष अथवा स्त्री के पास वासनाएं वैसी ही दौड़ी आती हैं, जैसे स्वादिष्ट फल वाले वृक्ष की ओर पक्षी।"
अप्रमाद की बात कही, वह भीतर की बात थी। तत्काल रस की बात कही, वह बाहर
की बात है। कहा कि भीतर जागते रहो, होश सम्हाले रखो, और फिर तत्काल यह कहा कि बाहर से भी वही लो अपने भीतर जो बेहोशी न बढ़ाता हो। नहीं तो एक आदमी ध्यान करता रहे और शराब पीता रहे, तो यह ऐसे हुआ कि एक कदम आगे गए और एक कदम पीछे आए। फिर जिंदगी के आखिर में पाए कि वहीं खड़े हैं। खड़े नहीं, गिर पड़े हैं, वहीं जहां पैदा हुए थे। तो इसमें हैरानी न होगी, लेकिन हम सब यही कर रहे हैं। एक कदम जाते हैं, तत्काल एक कदम उलटा वापस लौट आते हैं। तो इससे बेहतर है, जाओ ही मत। शक्ति और श्रम नष्ट मत करो।
अगर भीतर अप्रमाद की साधना चल रही है, भीतर ध्यान की साधना चल रही है,
तो महावीर कहते हैं, फिर ऐसे पदार्थ मत लो जो बेहोशी बढ़ाते हैं। और पदार्थ ऐसे हैं जो बेहोशी बढ़ाते हैं। मादक हैं। ऐसे पदार्थ हैं जो हमारे भीतर के प्रमाद को सहारा देते हैं।

इसलिए आप देखें--एक आदमी शराब पी लेता है, तत्काल दूसरा आदमी हो जाता है, इसलिए तो शराबी को भी शराब का रस है, कि एक ही आदमी रहते-रहते ऊब जाता है, अपने से ऊब जाता है। जब शराब पी लेता है तो जरा मजा आता है। नई जिन्दगी हो जाती है, नया आदमी हो जाता है, यह नया आदमी कौन है?
यह शराब से नहीं आता, यह नया आदमी भीतर छिपा था। शराब इसको सिर्फ सहारा दे सकती है। शराब आपके भीतर कुछ पैदा नहीं करती। जो छिपा है, उसको उकसा सकती है। जगा सकती है। इसलिए बहुत मजे की घटनाएं घटती हैं।
एक अदामी शराब पीकर उदास हो जाता है। एक आदमी शराब पीकर प्रसन्न हो जाता है, एक आदमी गाली-गलौज बकने लगता है, एक आदमी बिल्कुल मौन ही हो जाता है। मौन साध लेता है। एक आदमी नाचने कूदने लगता है और एक आदमी बिल्कुल शिथिल होकर मुर्दा हो जाता है, सोने की तैयारी करने लगता है। शराब एक, फर्क इतने! शराब कुछ भी नहीं करती। जो आदमी के भीतर पड़ा है, उसको भर उत्तेजित करती है।
तो अकसर उलटा हो जाता है। जो आदमी आमतौर से हंसता रहता है वह शराब पीकर उदास हो जाता है, क्योंकि हंसी झूठी थी, ऊपर-ऊपर थी, उदासी भीतर थी, असली थी। शराब ने झूठ को हटा दिया। शराब सत्य की बड़ी खोजी है। शराब ने असत्य को हटा दिया, वह जो हंसते रहते थे बन-बन कर। अब उतना भी होश रखना मुश्किल है कि बन कर हंस सकें। अब बनावट नहीं टिकेगी। हंसी खो जाएगी। और वह जो हंसी के नीचे छिपा रखा था, अम्बार लगा रखा था उदासी का, दुख का, आंसुओं का, वह बाहर आने लगेंगे।
इसलिए गुरजिएफ के पास जब भी कोई जाता था, पंद्रह दिन तो वह धुआंधार शराब पिलाता था। सिर्फ उसकी डाइग्नोसिस, उसके निदान के लिए। पंद्रह दिन वह उसे शराब पिलाता जाता था, जब तक कि उसे बेहोश न कर दे इतना कि जो उसने ऊपर-ऊपर से थोपा है वह टूट जाए। और जो भीतर-भीतर है वह बाहर आने लगे। तब वह उसका निरीक्षण करता।
गुरजिएफ ने कहा है कि जब तक कोई साधक मेरे पास आकर पंद्रह दिन जितनी शराब मैं कहूं, उतना पीने को राजी न हो, तब तक मैं साधना शुरू नहीं करता। क्योंकि मुझे असली आदमी का पता ही नहीं चलता कि असली आदमी है कौन। जो वह बताता है, मैं हूं, वह, वह है नहीं। उस पर मैं मेहनत करूं, वह बेकार जाएगी, वह पानी पर खींची गई लकीरें सिद्ध होंगी। और जो वह है, उसका उसको भी पता नहीं, उसको वह दबा चुका है जन्मों-जन्मों। उसका उसे भी पता नहीं कि वह कौन है।
इधर मुझे भी निरंतर यह अनुभव आता है, एक आदमी आकर मुझे कहता है कि यह मेरी तकलीफ है। वह उसकी तकलीफ ही नहीं है। वह कहता है, यह मेरा रोग है, वह उसका रोग ही नहीं है। वह समझता है कि वह उसका रोग है। यह रोग उसकी पर्त का रोग है, और पर्त वह है नहीं। पर्त उसने बना ली है।
एक आदमी आता है और कहे कि मेरी कमीज पर यह दाग लगा है, यह मेरी आत्मा का दाग है। अब इसको मैं धोने में लग जाऊं, यह धुल भी जाए तो भी आत्मा नहीं धुलेगी क्योंकि यह दाग कमीज पर था, आत्मा पर नहीं। यह न भी धुले, तो भी आत्मा पर नहीं है। इस आदमी को मुझे नग्न करके देखना पड़ेगा कि इसकी आत्मा पर दाग कहां है। उसको धोने में ही कोई सार है, इसकी कमीज को धोने में समय गंवाना व्यर्थ है।
गुरजिएफ पंद्रह दिन शराब पिलाता, पूरी तरह बेहोश कर देता, डुबा देता बुरी तरह। और जिसने कभी नहीं पी है, वह बिल्कुल मतवाला हो जाता, बिल्कुल पागल हो जाता। तब वह अध्ययन करता उस आदमी का, कि यह आदमी असलियत में क्या है।
फ्रायड जिन लोगों का अध्ययन करता, वह उनसे कहता कि अपने सपने बताओ, और बातें नहीं चाहिए। अपने सिद्धांत मत बताओ। अपनी फिलासफी अपने पास रखो, सिर्फ अपने सपने बताओ। जब पहली दफे फ्रायड ने सपनों पर खोज शुरू की, तो उसने अनुभव किया कि सपने में असली आदमी प्रकट होता है। ऊपरी चेहरे झूठे हैं।
एक आदमी को देखें, अपने बाप के पैर छू रहा है, और सपने में बाप की हत्या
कर रहा है। आप आमतौर से यह सोचेंगे कि सपना तो सपना है, असली तो वही है, वह

जो सुबह हम रोज पैर छूते हैं। वह असली नहीं है, ध्यान रख लें। सपना आपकी असलियत से ज्यादा असली हो गया है, क्योंकि आप बिल्कुल झूठे हैं। वह जो सुबह आप पैर छूते हैं पिता का, वह सिर्फ सपने में जो असली काम किया, उसका पश्चाताप है। सपना असली है। क्यों? सपने में धोखा देने में अभी आप कुशल नहीं हो पाए। सपना गहरा है, बेहोश है। आप का जो होश है, उस वक्त आप आदर दिखा रहे हैं। आपका जो होश है उस वक्त पत्नी कह रही है पति से कि तुम मेरे परमात्मा हो, और सपने में उसे दूसरा पति और दूसरा परमात्मा दिखाई पड़ रहा है। वह कहती है, यह तो सब सपना है।
बाकी यह सपना ज्यादा गहरा है। क्योंकि सपने में न सिद्धांत काम आते हैं, न समाज काम आता है, न सिखावन काम आती है। सपने में तो वह जो असली मन है, अचेतन, वह प्रकट होता है। इसलिए फ्रायड ने कहा कि अगर असली आदमी को जानना है तो सपनों का अध्ययन जरूरी है। बात एक ही है।
गुरजिएफ ने कहा है कि शराब पिला कर उघाड़ लेंगे, अनकांशस, अचेतन को। उसने कहा कि हम आपका सपना; गुरजिएफ का मेथड ज्यादा तेज है। पंद्रह दिन में पता चल जाता है। फ्रायड के मैथड में पांच साल लग जाते हैं। पांच साल सपनों का अध्ययन करना पड़ेगा तब वह नतीजा निकालेगा कि तुम आदमी कैसे हो, तुम्हारे भीतर असलियत क्या है, तुम्हारा मूल रोग क्या है? लेकिन यह निदान बहुत लंबा हो गया।
महावीर कहते हैं कि जो भी हम बाहर से भीतर ले जाते हैं, वह भीतर किसी चीज को पैदा नहीं कर सकता, लेकिन अगर भीतर कोई चीज पड़ी है तो उसके लिए सहयोगी हो सकता है, या विरोधी हो सकता है।
तो जो आदमी भीतर अप्रमाद की साधना करने में लगा है, जो इस साधना में लगा है कि मैं होश को जगा लूं, वह साथ में शराब पीता रहे और होश जगाने की कोशिश करता रहे, सांझ शराब पी ले और सुबह प्रार्थना करे और पूजा करे और ध्यान करे, वह आदमी असंगत है। अपने ही साथ उलटे काम कर रहा है, कंट्राडिक्ट्री है। वह आदमी कभी कहीं पहुंचेगा नहीं। उसकी गाड़ी का एक बैल एक तरफ जा रहा है, दूसरा बैल दूसरी तरफ जा रहा है। एक चक्का एक तरफ जा रहा है, दूसरा चक्का दूसरी तरफ जा रहा है।
मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन एक यात्रा में था। जब ऊपर की बर्थ
पर सोने लगा तो उसने नीचे के आदमी से पूछा कि मैं यह तो पूछना ही भूल गया कि आप कहां जा रहे हैं? उस नीचे के आदमी ने कहा कि मैं बम्बई जा रहा हूं। मुल्ला नसरुद्दीन ने कहाः गजब! विज्ञान का चमत्कार! मैं कलकत्ता जा रहा हूं, एक ही गाड़ी में हम दोनों! विज्ञान का चमत्कार देखो कि नीचे की बर्थ बंबई जा रही है, ऊपर की बर्थ कलकत्ता जा रही है।
और मुल्ला शान से सो गया।
मुल्ला पर हमें हंसी आएगी, लेकिन हमारी जिंदगी ऐसी ही है; एक बर्थ बंबई जा रही है, एक कलकत्ता जा रही है। आदमी का चमत्कार देखो। आप विरोधी काम किए चले जा रहे हैं, पूरे वक्त। बड़ा मजा यह है कि आप जो भी कर रहे हैं, करीब-करीब उससे विपरीत भी कर रहे हैं। और जब तक विपरीत नहीं करते, तब तक भीतर एक बेचैनी मालूम पड़ती है। विपरीत कर लेते हैं, सब ठीक हो जाता है।
एक आदमी क्रोध करता है, फिर पश्चात्ताप करता है। आप आमतौर से सोचते होंगे कि पश्चात्ताप करने वाला आदमी अच्छा आदमी है। लेकिन आपको पता नहीं, एक बर्थ कलकत्ता जा रही है, एक बंबई जा रही है। क्रोध करता है, पश्चात्ताप करता है। फिर क्रोध करता है, फिर पश्चात्ताप करता है। जिंदगी भर यही चलता है। कभी आपने ख्याल किया? और हमेशा सोचता, अब क्रोध न करूंगा। क्रोध करके पश्चात्ताप कर लेता है। होता क्या है? आमतौर से आदमी सोचता है, क्रोध करके पश्चात्ताप कर लिया, अच्छा ही हुआ, अब कभी क्रोध न करेंगे। लेकिन यह तो बहुत बार पहले भी हो चुका है, हर बार क्रोध किया, पश्चात्ताप किया, पश्चात्ताप से क्रोध कटता नहीं।
सचाई उलटी है। सचाई यह है कि पश्चात्ताप से क्रोध बचता है, कटता नहीं। क्योंकि जब आप क्रोध करते हैं तो आपकी जो अपनी प्रतिमा है, अपनी आंखों में, अच्छे आदमी की, वह खंडित हो जाती है। अरे, मैंने क्रोध किया! मैंने क्रोध किया! इतना सज्जन आदमी हूं मैं! इतना साधु चरित्र, और मैंने क्रोध किया! तो

आपको जो पीड़ा अखरती है, खटकती है, अपनी प्रतिमा अपनी आंखों में गिर गई।
पश्चात्ताप करके प्रतिमा फिर अपनी जगह खड़ी हो जाती है। फिर आप सज्जन हो जाते हैं कि मैंने पश्चात्ताप कर लिया। मांग ली क्षमा, मिच्छामि दुक्कड़म, निपटारा हो गया, आदमी फिर अच्छे हो गए। फिर अपनी जगह खड़ी हो गई प्रतिमा।
यही प्रतिमा क्रोध करने के पहले अपनी जगह खड़ी थी, क्रोध करने से गिर गई थी। पश्चात्ताप ने फिर इसे खड़ा कर दिया। जहां यह क्रोध करने के पहले खड़ी थी, वहीं फिर खड़ी हो गई। अब आप फिर क्रोध करेंगे, जगह आ गई वापस, स्थान पर आ गए आप अपने।
पश्चात्ताप तरकीब है। जैसे मुर्गी तरकीब है अंडे की और अंडा पैदा करने की। पश्चात्ताप तरकीब है क्रोध की, और क्रोध करने की।
अब आप फिर क्रोध कर सकते हैं। अब आप फिर अपनी जगह आ गए। तो दो में से एक
भी टूट जाए, फिर दूसरा नहीं टिक सकता। मुर्गी मर जाए तो फिर अंडा नहीं हो सकता, अंडा फूट जाए तो फिर मुर्गी नहीं हो सकती। क्रोध को तो छोड़ने की बहुत कोशिश की, अब कृपा करके इतना करो कि पश्चात्ताप ही छोड़ दो, मत करो पश्चात्ताप। रहने दो क्रोध को वहीं, तो आपकी प्रतिमा वापस खड़ी न हो पाएगी, और वही प्रतिमा खड़े होकर क्रोध करती है। लेकिन हम होशियार हैं। हम हर कृत्य से दूसरे कृत्य को बैलेंस कर लेते हैं। तराजू को हम हमेशा सम्हाल कर रखते हैं। अच्छाई करते हैं थोड़ी, तत्काल थोड़ी बुराई कर लेते हैं। थोड़ा हंसते हैं, थोड़ा रो लेते हैं, थोड़े रोते हैं, थोड़े हंस लेते हैं। सम्हाले रहते हैं अपने को।
हम नटों की तरह हैं जो रस्सियों पर चल रहे हैं, पूरे वक्त सम्हाल रहे हैं। बाएं झुकते हैं, दाएं झुक जाते हैं। दायें गिरने लगते हैं, बाएं झुक जाते हैं। अपने को सम्हाले हुए रस्सी पर खड़े हैं।
आदमी तभी पहुंचता है मंजिल तक, जब उसके जीवन की यात्रा यह इस चमत्कार
से बच जाती है, कि एक बर्थ बंबई, एक बर्थ कलकत्ता। जब आदमी एक दिशा में यात्रा करता है तो परिणाम, निष्पत्तियां, उपलब्धियां आती हैं, नहीं तो जीवन व्यर्थ हो जाता है, अपने ही हाथों व्यर्थ हो जाता है।
तो महावीर कहते हैं, ऐसे रस का अधिक मात्रा में सेवन नहीं करना चाहिए। महावीर बहुत ही सुविचारित बोलते हैं। उन्होंने ऐसा भी नहीं कहा कि सेवन नहीं करना चाहिए, क्योंकि वह अति हो जाएगी। कभी सेवन करने की जरूरत भी पड़ सकती है। कभी जहर भी औषधि होता है।
महावीर बहुत ही सुविचारित हैं। एक-एक शब्द उनका तुला हुआ है। कहीं भी
वे अति नहीं करते, क्योंकि अति में हिंसा हो जाती है। वे ऐसा नहीं कहते कि ऐसा करना ही नहीं चाहिए, वे इतना ही कहते हैं कि अधिक मात्रा में सेवन नहीं करना चाहिए।
ध्यान रहे, औषधि की मात्रा होती है, शराब की कोई मात्रा नहीं होती। शराब का मजा ही अधिक मात्रा में है। औषधि की मात्रा होती है। औषधि मात्रा से ली जाती है, शराब कोई मात्रा से नहीं ली जाती। और जितनी मात्रा से आप लेते हैं, कल मात्रा बढ़ानी पड़ती है, क्योंकि उतने आप आदी होते चले जाते हैं। जितनी आप शराब पीते चले जाते हैं उतनी शराब बेकार होती चली जाती है। फिर और पियो, और पियो, तो ही कुछ परिणाम होता दिखाई पड़ता है।
ध्यान रहे अगर एक आदमी शराब पी रहा है तो मात्रा बढ़ती जाएगी। और अगर
एक आदमी शराब को दवा की तरह ले रहा है तो मात्रा घटती जाएगी। क्योंकि जैसे- जैसे बीमारी कम होगी, मात्रा कम होगी। और जिस दिन बीमारी नहीं होगी, मात्रा विलीन हो जाएगी। और अगर एक आदमी शराब नशे की तरह ले रहा है, तो मात्रा रोज बढ़ेगी। क्योंकि हर शराब बीमारी को बढ़ाएगी, और ज्यादा शराब की मांग करेगी।
मुल्ला नसरुद्दीन कहता था कि मैं कभी एक पैग से ज्यादा नहीं पीता। उसके मित्रों ने कहाः हद्द कर दी! झूठ की भी एक सीमा होती है। अपनी आंखों से तुम्हें पैग पर पैग ढालते देखते हैं! तो मुल्ला ने कहाः मैं तो पहला ही पीता हूं। फिर पहला पैग दूसरा पीता है, फिर दूसरा, तीसरा। अपना जिम्मा एक का ही है। उससे सिलसिला शुरू हो जाता है। बाकी के हम जिम्मेवार नहीं है।

हम अपने होश में एक ही पीते हैं। फिर होश ही कहां, फिर हम कहां, फिर पीने वाला कहां, फिर तो बस शराब ही शराब को पीए चली जाती है।
वह ठीक कहता है। बेहोशी का पहला कदम आप उठाते हैं। फिर पहला कदम दूसरा कदम उठाता है, फिर दूसरा तीसरा उठाता है।
जिसे बेहोशी को रोकना हो, उसे पहले कदम पर ही रुक जाना चाहिए, क्योंकि वहीं उसके निर्णय की जरूरत है। दूसरे कदम पर रुकना मुश्किल है। तीसरे पर असंभव हो जाएगा। हर रोग हमारे मानसिक जीवन में पहले कदम पर ही रोका जा सकता है। दूसरे कदम पर रोकना बहुत मुश्किल है। जितना हम आगे बढ़ते हैं उतना ही रोग भयंकर होता चला जाता है और जो पहले पर ही नहीं रोक पाया, वह अगर सोचता हो कि तीसरे पर रोक लेंगे तो वह अपने को धोखा दे रहा है। क्योंकि पहले पर वह वजनी था, ताकतवर था, तब नहीं रोक पाया, अब तीसरे पर रोकेगा, जब कमजोर हो जाएगा!
इसलिए महावीर कहते हैं, "अधिक मात्रा में सेवन नहीं करना चाहिए, क्योंकि वे मादकता पैदा करते हैं। और मत्त पुरुष अथवा स्त्री के पास वासनाएं वैसे ही दौड़ी आती हैं, जैसे स्वादिष्ट फल वाले वृक्ष की ओर पक्षी।"
लेकिन हम तो चाहते हैं कि लोग हमारे चारों तरफ दौडे हुए आएं, हम तो चाहते हैं कि स्वादिष्ट फल बन जायें हम, लदे हुए वृक्ष। सारे पक्षी हम पर ही डेरा करें। तो जहां नहीं भी हैं फल, वहां हम झूठे नकली फल लटका देते हैं ताकि वृक्ष पर दौड़े हुए लोग आयें। पक्षी तो धोखा नहीं खाते नकली फलों से, आदमी धोखा खाते हैं।
हर आदमी बाजार में खड़ा है अपने को रसीला बनाए हुए कि चारों तरफ से लोग दौडें और मधुमक्खियों की तरह उस पर छा जायें। जब तक किसी को ऐसा न लगे कि मैं बहुत लोगों को पागल कर पाता हूं तब तक आनंद ही नहीं मालूम होता है जीवन में। जब भीड़ चारों तरफ से दौड़ने लगे तब आपको लगता है कि आप मैग्नेट हो गए, करिश्मैटिक हो गए। अब आप चमत्कारी हैं।
राजनीतिक का रस यह है, नेता का रस यह है कि लोग उसकी तरफ दौड़ रहे हैं, भाग रहे हैं। अभिनेता का, अभिनेत्री का रस यह है कि लोग उसकी तरफ दौड़ रहे हैं, भाग रहे हैं।
तो हम तो अपने को एक मादक बिंदु बनाना चाहते हैं, जिसमें चारों तरफ, जिसके व्यक्तित्व में शराब हो और खींच ले। और महावीर कहते हैं कि जो दूसरे को खींचने जाएगा, वह पहले ही दूसरों से खिंच चुका है। जो दूसरों के आकर्षण पर जीएगा वह दूसरों से आकर्षित है। और जो अपने भीतर मादकता भरेगा, बेहोशी भरेगा, लोग उसकी तरफ खिंचेंगे जरूर, लेकिन वह अपने को खो रहा है और डुबा रहा है। और एक दिन रिक्त हो जाएगा और जीवन के अवसर से चूक जाएगा।
निश्चित ही, एक स्त्री जो होशपूर्ण हो, कम लोगों को आकर्षित करेगी। एक स्त्री जो मदमत्त हो, ज्यादा लोगों को आकर्षित करेगी। क्योंकि जो मदमत्त स्त्री पशु जैसी हो जाएगी--सारी सभ्यता, सारा संस्कार, सारा जो ऊपर था वह सब टूट जाएगा। वह पशुवत हो जाएगी। एक पुरुष भी, जो मदमत्त हो, ज्यादा लोगों को आकर्षित, ज्यादा स्त्रियों को आकर्षित कर लेगा, क्योंकि वह पशुवत हो जाएगा। उसमें ठीक पशुता जैसी गति आ जाएगी। और सब वासनाएं पशु जैसी हों तो ज्यादा रसपूर्ण हो जाती हैं। इसलिए जिन मुल्कों में भी कामवासना प्रगाढ़ हो जाएगी, उन मुल्कों में शराब भी प्रगाढ़ हो जाएगी। सच तो यह है कि फिर बिना शराब पीए कामवासना में उतरना मुश्किल हो जाएगा। क्योंकि वह थोड़ी सी जो समझ है, वह भी बाधा डालती है। शराब पीकर आदमी फिर ठीक पशुवत व्यवहार कर सकता है।
यह जो हमारी वृत्ति है कि हम किसी को आकर्षित करें, अगर आप आकर्षित करना चाहते हैं किसी को, तो आपको किसी न किसी मामले में मदमत्त होना चाहिए। जो राजनीतिज्ञ नेता पागल की तरह बोलता है, जो पागल की तरह आश्वासन देता है, जो कहता है कि कल मेरे हाथ में ताकत होगी तो स्वर्ग आ जाएगा पृथ्वी पर, वह ज्यादा लोगों को आकर्षित करता है। जो समझदारी की बातें करता है, उससे कोई आकर्षित नहीं होता। जिस अभिनेत्री की आंखों से शराब आपकी तरफ बहती हुई मालूम पड़ती है, वह आकर्षित करती है। अभिनेत्री के पास बुद्ध जैसी

आंख हो, तो आप पागल जैसे गए हों तो शांत होकर घर लौट आयेंगे। उसके पास आंख चाहिए जिसमें शराब का भाव हो। मदहोश आंख चाहिए। उसके चेहरे पर जो रौनक हो, वह आपको जगाती न हो, सुलाती हो।
जहां भी हमें बेहोशी मिलती है, वहां हमें रस आता है। जिस चीज को भी देख
कर आप अपने को भूल जाते हैं, समझना कि वहां शराब है। जिस चीज को भी देख कर आप अपने को भूल जाते हैं, अगर एक अभिनेत्री को देख कर आपको अपना ख्याल नहीं रह जाता, तो आप समझना कि वहां बेहोशी है, शराब है। और शराब ही आपको खींच रही है। शराब, शराब की बोतलों में ही नहीं होती, आंखों में भी होती है, वस्त्रों में भी होती है, चेहरों में भी होती है, हाथों में भी होती है, चमड़ी में भी होती है। शराब बड़ी व्यापक घटना है।
महावीर कहते हैं कि जो व्यक्ति इस तरह के रसों का सेवन करता है जो मादक हैं, और जो अपने भीतर की मादकता को मिटाता नहीं, बढ़ाता है, उसकी तरफ वासनाएं ऐसे ही दौड़ने लगेंगी जैसे फल भरे वृक्ष के पास पक्षी दौड़ आते हैं। और जो व्यक्ति अपने पास वासनाएं बुला रहा है वह अपने हाथ से अपने बन्धन आकर्षित कर रहा है। वह अपनी हथकड़ियों और अपनी बेड़ियों को निमंत्रण दे रहा है कि आओ, वह अपने हाथ से अपने कारागृहों को बुला रहा है कि आओ, और मेरे चारों तरफ निर्मित हो जाओ। वह व्यक्ति कभी मुक्त, वह व्यक्ति कभी शांत, वह व्यक्ति कभी शून्य, वह व्यक्ति कभी सत्य को उपलब्ध नहीं हो सकता है। क्योंकि सत्य की पहली शर्त है, स्वतंत्रता। सत्य की पहली शर्त है, एक मुक्त भाव। और वासनाओं से कोई कैसे मुक्त हो सकता है?
"काम-भोग अपने आप न किसी मनुष्य में समभाव पैदा करते हैं, और न किसी में राग-द्वेष रूपी विकृति पैदा करते हैं। परंतु मनुष्य स्वयं ही उनके प्रति राग-द्वेष के नाना संकल्प बना कर मोह से विकारग्रस्त हो जाता है।" यह सूत्र कीमती है।
महावीर कहते हैं कि सारा खेल कामवासना का तुम्हारा अपना है।
मैं कुंभ के मेले में था। एक मित्र मेरे साथ थे। मेला शुरू होने में अभी देर थी कुछ। हम दोनों बैठे थे गंगा के किनारे, दूर बहुत दूर नहीं, दिखाई पड़े इतने दूर। एक महिला अपने बाल संवार रही थी स्नान करने के बाद। उसकी पीठ ही दिखाई पड़ती थी। मित्र बिल्कुल पागल हो गए। बातचीत में उनका रस जाता रहा। उन्होंने मुझसे कहा कि रुकें। मैं इस स्त्री का चेहरा न देख लूं तब तक मुझे चैन न पड़ेगा। मैं जाऊं, चेहरा देख आऊं। वह गए, और वहां से बड़े उदास लौटे। वह स्त्री नहीं थी, एक साधु था जो अपने बाल संवार रहा था। गए, तब उनके पैरों की चाल, लौटे तब उनके पैरों का हाल! मगर संकोची होते, शिष्ट होते, मन में ही रख लेते, और जिंदगी भर परेशान रहते।
सच में ही पीछे से आकृति आकर्षक मालूम पड़ी थी। पर वह आकर्षण वहां था
या मन में था? क्योंकि वहां जाकर पता चला कि पुरुष है, तो आकर्षण खो गया। आकर्षण स्त्री में है या स्त्री के भाव में है? आकर्षण पुरुष में है
या पुरुष के भाव में?
गहरा आकर्षण भीतर है, उसे हम फैलाते हैं बाहर। बाहर खूंटियां हैं सिर्फ, उन पर हम टांगते हैं अपने आकर्षण को। और ऐसा भी नहीं है कि ऐसी घटना घटे, तभी पता चलता है। आज आप किसी के लिए दीवाने हैं, बड़ा रस है। और कल सब फीका हो जाता है, और आप खुद ही नहीं सोच पाते कि क्या हुआ, कल इतना रस था, आज सब फीका क्यों हो गया? व्यक्ति वही है, सब रस फीका हो गया!
मन का जो आकर्षण था, वह पुनरुक्ति नहीं मांगता। अगर व्यक्ति का ही आकर्षण हो तो वह आज भी उतना ही रहेगा, कल भी उतना था, परसों भी उतना ही रहेगा। लेकिन मन नये को मांगता है। इसलिए जिसे आज आकर्षित जाना है, पक्का समझ लेना, कल वह उतना आकर्षित नहीं रहेगा। परसों और फीका हो जाएगा। नरसों धूमिल हो जाएगा, आठ दिन बाद दिखाई भी नहीं पड़ेगा, सब खो जाएगा।
यह मन तो नये को मांगता है। पुराने में इसका रस खोने लगता है। यह मन का स्वभाव है। कुछ भूल नहीं है इसमें, सिर्फ उसका स्वभाव है। आज जो भोजन किया, कल जो भोजन किया, परसों जो भोजन किया, तो चौथे दिन घबड़ाहट हो जाएगी। मन तो ऐसा ही मांगता है; आज भी वही पत्नी है, कल भी वही पत्नी है, परसों भी वही पत्नी है। चौथे दिन मन उदास हो जाएगा। मन तो नये को मांगता है। इसलिए अगर

पत्नी में आकर्षण जारी रखना है, तो नये के सब उपाय बिल्कुल बंद कर देने चाहिए, तो मार-पीट कर आकर्षण चलता रहता है। इसलिए हमने विवाह के इतने इंतजाम किए हैं, ताकि बाहर कोई उपाय ही न रह जाए।
जिन मुल्कों ने बाहर के उपाय छोड़ दिए, वहां विवाह टूट रहा है। विवाह
बच नहीं सकता। विवाह एक बड़ी आयोजना है, वह आयोजना ऐसी है कि पुरुष फिर किसी और स्त्री को ठीक से देख भी न पाए। स्त्री फिर किसी और पुरुष के निकट पहुंच भी न पाए। तो फिर मजबूरी में उन दोनों को हमने छोड़ दिया। उसका मतलब यह हुआ कि मुझे आज भी वही भोजन दें, कल भी वही भोजन दें, परसों भी वही भोजन दें, और अगर किसी और भोजन का कोई उपाय ही न हो, और मेरी कालकोठरी में वही भोजन मुझे उपलब्ध होता हो, तो चौथे दिन भी मैं वही भोजन करूंगा। पांचवें दिन भी करूंगा। लेकिन अगर मुझे और भोजन उपलब्ध हो सकते हों, कोई अड़चन न आती हो, कोई असुविधा न होती हो, तो नहीं करूंगा।
इसलिए एक बात पक्की है, विवाह तभी तक टिक सकता है दुनिया में, जब तक हम बाहर के सारे आकर्षणों को पूरी तरह रोक रखते हैं। और बाहर के आकर्षण में जितना आकर्षण मिलता है, उससे ज्यादा खतरा मिले, उपद्रव मिले, झंझट मिले, परेशानी मिले, तो रुक सकता है। नहीं तो विवाह टूट जाएगा। लेकिन यह विवाह जो टूट जाएगा, झूठा ही होगा। जिस दुनिया में सारा आकर्षण मिलता हो और विवाह बच जाए, तो ही समझना कि विवाह है। नहीं तो धोखा था इसलिए जिस दिन विवाह के कोई दिन बंधन नहीं होंगे, उसी दिन हमें पता चलेगा कि कौन पति- पत्नी है, उसके पहले कोई पता नहीं चल सकता--कोई उपाय नहीं पता चलने का। मुझे क्या पसंद है, मेरा किसके साथ गहरा नाता है, आंतरिक, वह तभी पता चलेगा जब बदलने के सब उपाय हों, और बदलाहट न हो, जब बदलने के कोई उपाय ही न हों, और बदलाहट न हो तो सभी पत्नियां सतियां हैं। कोई अड़चन नहीं है, और सभी पति एक पत्नीव्रती हैं। जितना हमारे चारों तरफ खूंटियां हों, उतना ही हमें पता चलेगा कि कितना प्रोजेक्शन है, कितना हमारा मन एक खूंटी से दूसरी खूंटी, दूसरी से तीसरी पर नाचता रहता है। जो हम रस पाते हैं उस खूंटी से, वह भी हमारा दिया हुआ दान है, यह महावीर कह रहे हैं। उससे कुछ मिलता नहीं है हमें।
एक कुत्ता है, वह एक हड्डी को मुंह में लेकर चूस रहा है। कुत्ता जब हड्डी चूसे, तो बैठ कर ध्यान करना चाहिए उस पर क्योंकि वह बड़ा गहरा काम कर रहा है, जो सभी आदमी करते हैं। कुत्ता हड्डी चूसता है, तो हड्डी में कुछ रस तो होता नहीं, लेकिन कुत्ते के खुद ही मुंह में जख्म हो जाते हैं। हड्डी चूसने से, उनसे खून निकलने लगता है। वह जो खून निकलने लगता है, वह कुत्ता समझता है, हड्डी से आ रहा है। वह खून गले में जाता है, स्वादिष्ट मालूम पड़ता है, अपना ही खून है। लेकिन कुत्ता समझे भी कैसे कि हड्डी से नहीं निकल रहा है। जब हड्डी चूसता है, तभी निकलता है। स्वभावतः तर्कयुक्त है, गणित साफ है कि जब हड्डी चूसता हूं, तभी निकलता है, हड्डी से निकलता है। लेकिन वह निकलता है अपने ही मसूढ़ों के टूट जाने से, अपने ही मुंह में घाव हो जाने से। कुत्ता मजे से हड्डी चूसता रहता है, और अपना ही खून पीता रहता है।
जब आप किसी और से रस लेते हैं, तब आप हड्डी चूस रहे हैं। रस आपके ही मन
का है, अपना ही खून झरता है। किसी दूसरे से कोई रस मिलता नहीं, मिल सकता नहीं। अगर एक व्यक्ति संभोग में भी सोचता है, सुख मिल रहा है तो वह अपने ही खून झरने से मिलता है, किसी दूसरे से कुछ लेना-देना नहीं है। हड्डी चूसना है। लेकिन कठिन है, न कुत्ते की समझ में आता है, न आदमी की समझ में आता है। खुद को समझना जटिल है।
महावीर कहते हैं। काम-भोग अपने आप न मनुष्य में समभाव पैदा करते हैं,
न तो सोचना कि काम-भोग से कोई समता उपलब्ध होती है, सुख उपलब्ध होता है, शांति उपलब्ध होती है। इससे विपरीत भी मत सोचना। साधु-संन्यासी यही सोचते हैं, काम-भोग से दुख उत्पन्न होता है। कठिनाई आती है, राग-द्वेष पैदा होते हैं, नरक निर्मित होता है। ध्यान रखना कि यह वही आदमी है जो कल सोचता था कि काम-भोग से स्वर्ग मिलता है। यह वही आदमी है, अब शीर्षासन करने लगा। अब यह कहता है कि काम-भोग से नरक मिलता है।

महावीर कहते हैं, काम-भोग से न स्वर्ग मिलता है, न नरक मिलता है। काम-भोग पर स्वर्ग भी तुम्हारा मन ही आरोपित करता है, काम-भोग पर तुम्हारा मन ही तुम्हारा नरक भी निर्मित करता है। तुम काम-भोग से वही पाते हो जो तुम डाल देते हो उसमें। तुम्हें वही मिलता है जो तुम्हारा ही दिया हुआ है। और तुम देना, डालना बंद कर दो तो काम-भोग विलीन हो जाता है, तिरोहित हो जाता है। खूंटियां खड़ी रहें अपनी जगह, तुम अपनी वृत्तियों को उन पर टांगना बंद कर देते हो।
और जिस दिन कोई व्यक्ति यह जान लेता है कि सुख भी मेरे, दुख भी मेरे--सब भाव मेरे हैं, उस दिन व्यक्ति मुक्त हो जाता है। जब तक मुझे लगता है कि दुख किसी और से आता है, सुख किसी और से आता है, तब तक मैं परतंत्र होता हूं, निर्भर होता हूं।
मुक्ति का यही है अर्थ--जिस दिन मुझे लगता है कि सब कुछ मेरा फैलाव है। जहां मैंने चाहा, सुख पाऊं, वहां मैंने सुख देख लिया। जहां मैंने चाहा दुख पाऊं वहां मैंने दुख देख लिया। जो मैंने देखा वह मेरी आंख से गए हुए चित्र थे, जगत ने केवल पर्दे का काम किया, चित्र मेरे थे। प्रोजेक्टर मैं हूं। लेकिन प्रोजेक्टर दिखाई नहीं पड़ते। फिल्म में भी आप बैठ कर देखते हैं, प्रोजेक्टर पीठ के पीछे होता है। वह वहां छिपा रहता है, दीवार के भीतर, छोटे से छेद से निकलते रहते हैं चित्र, दिखाई पड़ते हैं पर्दे पर, जहां होते नहीं। जहां होते हैं, वह होती है पीठ के पीछे, वहां कोई देखता नहीं। पर्दे पर कुछ होता नहीं। पर्दे पर केवल जो प्रोजेक्टर फेंकता है वही दिखाई पड़ता है।
ध्यान रहे, जब मैं किसी स्त्री, किसी पुरुष, किसी मित्र, किसी शत्रु के प्रति किसी भाव में पड़ जाता हूं, तो प्रोजेक्टर मेरे पीछे भीतर छिपा है जहां से मैं चित्र फेंकता हूं, और दूसरा व्यक्ति केवल एक पर्दा है, जिस पर वह चित्र दिखाई पड़ता है। मैं ही दिखाई पड़ता हूं बहुत लोगों पर। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि जब किसी आदमी में तुम्हें कोई बुराई दिखाई पड़े, तो बहुत गौर से सोचना। ज्यादा मौके ये हैं कि वह बुराई तुम्हारी होगी। जैसे एक बाप है--अगर बाप गधा रहा हो स्कूल में, तो बेटे को गधा बिल्कुल बरदाश्त नहीं कर सकेगा, बेटे को वह बुद्धिमान बनाने की कोशिश में लगा रहेगा। और जरा-सा बेटा कुछ नासमझी और मूढ़ता करे, जरा नंबर उसके कम हो जाएं तो भारी शोरगुल मचाएगा। बुद्धिमान बाप इतना नहीं मचाएगा। बुद्धू बाप जरूर मचाएगा। उसका कारण है, कि बेटा सिर्फ प्रोजेक्शन का पर्दा है। जो उनमें कम रह गया है वह उसमें पूरा करने की कोशिश कर रहे हैं।
मुल्ला नसरुद्दीन का बेटा एक दिन अपना स्कूल से प्रमाण-पत्र लेकर लौटा सालाना परीक्षा का। मुल्ला ने बहुत हाय-तौबा मचाई, बहुत उछला-कूदा। और कहा कि बरबाद कर दिया, नाम डुबा दिया। किसी विषय में बेटा उत्तीर्ण नहीं हुआ है। अधिकतर में शून्य प्राप्त हुआ है।
लेकिन बेटा नसरुद्दीन का ही था। वह खड़ा मुस्कुराता रहा। जब बाप काफी शोरगुल कर लिया और काफी अपने को उत्तेजित कर लिया, तब उसने कहा कि जरा ठहरिए, यह प्रमाण-पत्र मेरा नहीं है, पुरानी कुरान की किताब में मिल गया है। यह आपका है।
मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, "तो ठीक, तो जो मेरे बाप ने मेरे साथ किया था वही मैं तेरे साथ करूंगा।"
उसके लड़के ने पूछा, "तुम्हारे बाप ने तुम्हारे साथ क्या किया था?"
उसने कहा, "नंगा करके चमड़ी उधेड़ दी थी।"
"तो ठीक! मेरा ही सही, कोई हर्जा नहीं। तेरा कहां है?"
उसके बेटे ने कहा, "मेरी भी हालत यही है। इसीलिए तो मैंने आपका दिखाया है, शायद आप थोड़े नरम हो जायें।"
उसने कहा कि नरम का कोई उपाय नहीं। जो मेरे बाप ने मेरे साथ किया था, वही मैं तेरे साथ करूंगा।
जो हमें दूसरों में दिखाई पड़ता है--आपको दिखाई पड़ता है कि फलां आदमी बहुत ईर्ष्यालु है, थोड़ा ख्याल करना, कहीं वह आदमी पर्दा तो नहीं है, और आपके भीतर ईर्ष्या है। आपको दिखाई पड़ता है, फलां आदमी बहुत अहंकारी है,

थोड़ा ख्याल करना, वह पर्दा तो नहीं है, और अहंकार आपके भीतर है। आपको लगता है, फलां आदमी बेईमान है, थोड़ा ख्याल करना, थोड़ा मुड़-मुड़ कर देखना शुरू करो, ताकि प्रोजेक्टर का पता चले। पर्दे पर ही मत देखते रहो।
महावीर कहते हैं, सब पीछे से, भीतर से आ रहा है और बाहर फैल रहा है।
सारा खेल तुम्हारा है। तुम्हीं हो नाटक के लेखक, तुम्हीं हो उसके पात्र, तुम्हीं हो उसके दर्शक। दूसरे को मत खोजो, अपने को खोज लो। जो इस खोज में लग जाता है, वह एक दिन मुक्त हो जाता है।

आज इतना ही।

महावीर-वाणी, भाग 2
पांचवां प्रवचन

ये चार शत्रु (कषाय-सूत्र)

कोहो य माणो य अणिग्गहीया,
माया य लोभो य पवड्ढमाणा।
चत्तारि एए कसिणा कसाया,
सिंचन्ति भूलाइं पुण्णब्भवस्स।।
पुढवी साली जवा चेव,
हिरण्णं पसुभिस्सह।
पडिपुण्णं नालमेगस्स,
इह विज्जा तवंचरे।।

अनिगृहित क्रोध और मान तथा बढ़ते हुए माया और लोभ, ये चारों काले कुत्सित कषाय पुनर्जन्मरूपी संसार-वृक्ष की जड़ों को सींचते रहते हैं।
चावल और जौ आदि धान्यों तथा सुवर्ण और पशुओं से परिपूर्ण यह समस्त पृथ्वी भी लोभी मनुष्य को तृप्त कर सकने में असमर्थ है, यह जान कर संयम का ही आचरण करना चाहिए।

सूत्र के पूर्व कुछ प्रश्न।
महावीर ने अप्रमाद को साधना का आधार कहा है, होश को, सतत जागृति को। एक मित्र ने पूछा है कि जो होश के बारे में कहा गया है वह हम अपने काम-काज में, आफिस में, दुकान में कार्य करते समय कैसे आचरण में लाएं? होश में रहने पर ध्यान जाये तो काम कैसे हो? काम में होते हुए होश का क्या स्थान और साधना हो सकती है?
दो तीन बातें ख्याल में लेनी चाहिए।
एक--होश कोई अलग प्रक्रिया नहीं है। आप भोजन कर रहे हैं, तो होश कोई अलग प्रक्रिया नहीं है कि भोजन करने में बाधा डाले। जैसे मैं आपसे कहूं कि भोजन करें और दौड़ें। तो दोनों में से एक ही हो सकेगा, दौड़ना या भोजन करना। आपसे मैं कहूं कि दफ्तर जाएं, तब सोएं, तो दोनों में से एक ही हो सकेगा, सोएं या दफ्तर जाएं।
होश कोई प्रतियोगी प्रक्रिया नहीं है। भोजन कर सकते हैं, होश को रखते हुए या बेहोशी में। होश भोजन के करने में बाधा नहीं बनेगा। होश का अर्थ इतना ही है कि भोजन करते समय मन कहीं और न जाए, भोजन करने में ही हो। मन कहीं और चला जाए तो भोजन बेहोशी में हो जाएगा। आप भोजन कर रहे हैं, और मन दफ्तर में चला गया। शरीर भोजन की टेबल पर, मन दफ्तर में, तो न तो दफ्तर में हैं आप, क्योंकि वहां आप हैं नहीं, और न भोजन की टेबल पर हैं आप, क्योंकि मन वहां नहीं रहा। तो वह जो भोजन कर रहे हैं, वह बेहोश है, आपके बिना हो रहा है।
इस बेहोशी को तोड़ने की प्रक्रिया है होश, भोजन करते वक्त मन भोजन में
ही हो, कहीं और न जाए। सारा जगत जैसे मिट गया, सिर्फ यह छोटा सा काम भोजन करने का रह गया। पूरी चेतना इसके सामने है। एक कौर भी आप बनाते हैं, उठाते हैं, मुंह में ले जाते हैं, चबाते हैं, तो यह सारा होशपूर्वक हो रहा है। आपका सारा ध्यान भोजन करने में ही है, इस फर्क को आप ठीक से समझ लें।
अगर मैं आपसे कहूं कि भोजन करते वक्त राम-राम जपें, तो दो क्रियाएं हो जाएंगी। राम-राम जपेंगे तो भोजन से ध्यान हटेगा। भोजन पर ध्यान लाएंगे तो राम-राम का ध्यान टूटेगा। मैं आपको कहीं और ध्यान ले जाने को नहीं कह रहा हूं, जो आप कर रहे हैं उसको ही ध्यान बना लें। इससे आपके किसी काम में बाधा नहीं पड़ेगी, बल्कि सहयोग बनेगा। क्योंकि जितने ध्यानपूर्वक काम किया जाए, उतना कुशल हो जाता है।
काम की कुशलता ध्यान पर निर्भर है। अगर आप अपने दफ्तर में ध्यानपूर्वक कर रहे हैं, जो भी कर रहे हैं तो आपकी कुशलता बढ़ेगी, क्षमता बढ़ेगी, काम की मात्रा बढ़ेगी और आप थकेंगे नहीं। और आपकी शक्ति बचेगी। और

आप दफ्तर से भी ऐसे वापस लौटेंगे जैसे ताजे लौट रहे हैं। क्योंकि जब शरीर कुछ और करता है, मन कुछ और करता है तो दोनों के बीच तनाव पैदा होता है। वही तनाव थकान है। आप होते हैं दफ्तर में, मन होता है सिनेमा-गृह में। आप होते हैं सिनेमा में, मन होता है घर पर, तो मन और शरीर के बीच जो फासला है वह तनाव ही आपको थकाता है और तोड़ता है।
जब आप जहां होते हैं वहीं मन होता है। इसलिए आप देखें, जब आप कोई खेल-खेल रहे होते हैं तो आप ताजे होकर लौटते हैं। खेल में शक्ति लगती है, लेकिन खेल के बाद आप ताजे होकर लौटते हैं। बड़ी उलटी बात मालूम पड़ती है। आप बेडमिंटन खेल रहे हैं कि आप कबड्डी खेल रहे हैं, या कुछ भी, या बच्चों के साथ बगीचे में दौड़ रहे हैं। शक्ति व्यय हो रही है, लेकिन इस दौड़ने के बाद आप ताजे होते हैं। और यही काम अगर आपको करना पड़े तो आप थकते हैं।
काम और खेल में एक ही फर्क है, खेल में पूरा ध्यान वहीं मौजूद होता है, काम में पूरा मौजूद नहीं होता। इसलिए अगर आप किसी को नौकरी पर रख लें खेलने के लिए, तो वह खेलने के बाद थक कर जाएगा। क्योंकि वह फिर खेल नहीं है, काम है। और जो होशियार हैं, वे अपने काम को भी खेल बना लेते हैं। खेल का मतलब यह है कि आप जो भी कर रहे हैं, इतने ध्यान, इतनी तल्लीनता, इतने आनंद से डूब कर कर रहे हैं कि उस करने के बाहर कोई संसार नहीं बचा है। आप इस करने के बाहर ज्यादा ताजे, सशक्त लौटेंगे। और कुशलता बढ़ जाएगी।
जो भी हम ध्यान से करते हैं, उसकी कुशलता बढ़ जाती है। लेकिन, अनेक लोग ध्यान का मतलब समझते हैं, जोर जबरदस्ती से की गई एकाग्रता। तो आप थक जाएंगे। अगर आप जबरदस्ती अपने को खींच कर किसी काम पर मन को लगाते हैं, तो आप थक जाएंगे। तब तो यह ध्यान भी एक काम हो गया। जो भी जबरदस्ती किया जाता है, वह काम हो जाता है।
ध्यान को भी आनंद समझें। इसको भी बेचैनी मत बनाएं। यह आपके सिर पर एक बोझ न हो जाए कि मुझे ध्यानपूर्वक ही काम करना है। इसको चेष्टा और प्रयत्न का बोझ न दें, हलके-हलके इसे विकसित होने दें, इसको सहारा दें। जब भी ख्याल आ जाए, तो होशपूर्वक करें। भूल जाए, तो चिंता न लें। जब ख्याल आ जाए, फिर होशपूर्वक करने लगें।
अगर आपने तय किया है कि अब मैं काम अपना होशपूर्वक करूंगा, तो आप कर पाएंगे आज ही, ऐसा नहीं है; वर्षों लग जाएंगे। क्षण भर भी होश रखना मुश्किल है। तय करेंगे कि होशपूर्वक चलूंगा, दो कदम नहीं उठा पाएंगे और होश कहीं और चला जाएगा, कदम, कहीं और चलने लगेंगे। उससे चिन्तित न हों, पश्चात्ताप न करें। लाखों-लाखों जीवन की आदत है बेहोशी की, इसलिए दुखी होने का कोई कारण नहीं है। हमने ही साधा है बेहोशी को, इसलिए किससे शिकायत करने जाएं? और परेशान होने से कुछ हल नहीं होता।
जैसे ही ख्याल आ जाए कि पैर बेहोशी में चलने लगे, मेरा ध्यान कहीं और चला गया था, आनंदपूर्वक फिर ध्यान को ले आएं। इसको पश्चात्ताप न बनाएं। इससे मन में दुखी न हों, इससे पीड़ित न हों, इससे ऐसा न समझें कि यह अपने से न होगा। यह भी न समझें कि मैं तो बहुत दीन-हीन हूं, कमजोर हूं, मुझसे होने वाला नहीं है। होता होगा महावीर से, अपने वश की बात नहीं है। बिल्कुल न सोचें। महावीर भी शुरू करते हैं तो ऐसा ही होगा। कोई भी शुरू करता है तो ऐसा ही होता है। महावीर इस यात्रा का अंत हैं, प्रारम्भ पर वे भी आप जैसे हैं। अंत आपको दिखाई पड़ा है, महावीर के प्रारंभ का आपको कोई पता नहीं है। प्रारम्भ में सभी के पैर डगमगाते हैं।
छोटा बच्चा चलना शुरू करता है, अगर वह आपको देख ले चलता हुआ, और सोचे
कि यह अपने से न होगा। आप भी ऐसे ही चले थे, आपने भी ऐसे ही कदम उठाए थे और गिरे थे, और दो कदम उठाने के बाद बच्चा फिर चारों हाथ पैर से चलते लगता है, सोच कर कि यह अपने वश की बात नहीं। यह अब भूल ही जाता है कि दो कदम से चलना था, फिर चारों से घिसटने लगता है।
बढ़ेगी, क्षमता बढ़ेगी, काम की मात्रा बढ़ेगी और आप थकेंगे नहीं। और आपकी शक्ति बचेगी। और आप दफ्तर से भी ऐसे वापस लौटेंगे जैसे ताजे लौट रहे हैं। क्योंकि जब शरीर कुछ और करता है, मन कुछ और करता है तो दोनों के बीच तनाव पैदा होता है। वही तनाव थकान है। आप होते हैं दफ्तर में, मन होता है

सिनेमा-गृह में। आप होते हैं सिनेमा में, मन होता है घर पर, तो मन और शरीर के बीच जो फासला है वह तनाव ही आपको थकाता है और तोड़ता है।
जब आप जहां होते हैं वहीं मन होता है। इसलिए आप देखें, जब आप कोई खेल-खेल रहे होते हैं तो आप ताजे होकर लौटते हैं। खेल में शक्ति लगती है, लेकिन खेल के बाद आप ताजे होकर लौटते हैं। बड़ी उलटी बात मालूम पड़ती है। आप बेडमिंटन खेल रहे हैं कि आप कबड्डी खेल रहे हैं, या कुछ भी, या बच्चों के साथ बगीचे में दौड़ रहे हैं। शक्ति व्यय हो रही है, लेकिन इस दौड़ने के बाद आप ताजे होते हैं। और यही काम अगर आपको करना पड़े तो आप थकते हैं।
काम और खेल में एक ही फर्क है, खेल में पूरा ध्यान वहीं मौजूद होता है, काम में पूरा मौजूद नहीं होता। इसलिए अगर आप किसी को नौकरी पर रख लें खेलने के लिए, तो वह खेलने के बाद थक कर जाएगा। क्योंकि वह फिर खेल नहीं है, काम है। और जो होशियार हैं, वे अपने काम को भी खेल बना लेते हैं। खेल का मतलब यह है कि आप जो भी कर रहे हैं, इतने ध्यान, इतनी तल्लीनता, इतने आनंद से डूब कर कर रहे हैं कि उस करने के बाहर कोई संसार नहीं बचा है। आप इस करने के बाहर ज्यादा ताजे, सशक्त लौटेंगे। और कुशलता बढ़ जाएगी।
जो भी हम ध्यान से करते हैं, उसकी कुशलता बढ़ जाती है। लेकिन, अनेक लोग ध्यान का मतलब समझते हैं, जोर जबर्दस्ती से की गई एकाग्रता। तो आप थक जाएंगे। अगर आप जबरदस्ती अपने को खींच कर किसी काम पर मन को लगाते हैं, तो आप थक जाएंगे। तब तो यह ध्यान भी एक काम हो गया। जो भी जबरदस्ती किया जाता है, वह काम हो जाता है।
ध्यान को भी आनंद समझें। इसको भी बेचैनी मत बनाएं। यह आपके सिर पर एक बोझ न हो जाए कि मुझे ध्यानपूर्वक ही काम करना है। इसको चेष्टा और प्रयत्न का बोझ न दें, हलके-हलके इसे विकसित होने दें, इसको सहारा दें। जब भी ख्याल आ जाए, तो होशपूर्वक करें। भूल जाए, तो चिंता न लें। जब ख्याल आ जाए, फिर होशपूर्वक करने लगें।
अगर आपने तय किया है कि अब मैं काम अपना होशपूर्वक करूंगा, तो आप कर पाएंगे आज ही, ऐसा नहीं है; वर्षों लग जाएंगे। क्षण भर भी होश रखना मुश्किल है। तय करेंगे कि होशपूर्वक चलूंगा, दो कदम नहीं उठा पाएंगे और होश कहीं और चला जाएगा, कदम, कहीं और चलने लगेंगे। उससे चिंतित न हों, पश्चात्ताप न करें। लाखों-लाखों जीवन की आदत है बेहोशी की, इसलिए दुखी होने का कोई कारण नहीं है। हमने ही साधा है बेहोशी को, इसलिए किससे शिकायत करने जाएं? और परेशान होने से कुछ हल नहीं होता।
जैसे ही ख्याल आ जाए कि पैर बेहोशी में चलने लगे, मेरा ध्यान कहीं और चला गया था, आनंदपूर्वक फिर ध्यान को ले आएं। इसको पश्चात्ताप न बनाएं। इससे मन में दुखी न हों, इससे पीड़ित न हों, इससे ऐसा न समझें कि यह अपने से न होगा। यह भी न समझें कि मैं तो बहुत दीन-हीन हूं, कमजोर हूं, मुझसे होनेवाला नहीं है। होता होगा महावीर से, अपने वश की बात नहीं है। बिल्कुल न सोचें। महावीर भी शुरू करते हैं तो ऐसा ही होगा। कोई भी शुरू करता है तो ऐसा ही होता है। महावीर इस यात्रा का अंत हैं, प्रारंभ पर वे भी आप जैसे हैं। अंत आपको दिखाई पड़ा है, महावीर के प्रारंभ का आपको कोई पता नहीं है। प्रारंभ में सभी के पैर डगमगाते हैं।
छोटा बच्चा चलना शुरू करता है, अगर वह आपको देख ले चलता हुआ, और सोचे
कि यह अपने से न होगा। आप भी ऐसे ही चले थे, आपने भी ऐसे ही कदम उठाए थे और गिरे थे, और दो कदम उठाने के बाद बच्चा फिर चारों हाथ पैर से चलते लगता है, सोच कर कि यह अपने वश की बात नहीं। यह अब भूल ही जाता है कि दो कदम से चलना था, फिर चारों से घिसटने लगता है।
ठीक, प्रमाद को तोड़ने में भी ऐसा ही होगा। दो कदम आप होश में चलेंगे, फिर अचानक चार हाथ-पैर से आप बेहोशी में चलने लगेंगे। जैसे ही होश आ जाए, फिर खड़े हो जाएं। चिंता मत लें इसकी कि बीच में होश क्यों खो गया। इस चिंता में समय और शक्ति खराब न करें। तत्काल होश को फिर से साधने लगें। अगर चौबीस घंटे में चौबीस क्षण भी होश सध जाए, तो आप महावीर हो जाएंगे। काफी है, इतना भी बहुत है। इससे ज्यादा की आशा मत रखें, अपेक्षा भी मत करें। चौबीस घंटे में अगर चौबीस क्षणों को भी होश आ जाए तो बहुत है। धीरे-धीरे

क्षमता बढ़ती जाएगी। और वह जो बच्चा आज सोच रहा है कि अपने वश के बाहर है दो पैर से चलना, एक दिन वह दो पैर से चलेगा और कोई प्रयत्न नहीं करना पड़ेगा, कोई प्रयास नहीं रह जाएगा।
तो यह ध्यान रख लें, ध्यान को काम नहीं बना लेना है। नहीं तो बहुत से धार्मिक लोग ध्यान को ऐसा काम बना लेते हैं कि उनके सिर पर पत्थर रखा है। उसकी वजह से उनका क्रोध बढ़ जाता है। क्योंकि फिर जिससे भी उन्हें बाधा पड़ जाती है, उस पर वे क्रोधित हो जाते हैं। जो काम में उनका ध्यान नहीं टिकता, वह उस काम को छोड़ कर भागना चाहते हैं। जिनके कारण असुविधा होती है, उनका त्याग करना चाहते हैं। यह सब क्रोध है। इस क्रोध से कोई हल नहीं होगा। साधक को चाहिए धैर्य, और तब दुकान भी जंगल जैसी सहयोगी हो जाती है। साधक को चाहिए अनंत प्रतीक्षा, और तब घर भी किसी भी आश्रम से महत्वपूर्ण हो जाता है। निर्भर करता है आपके भीतर के धैर्य, प्रतीक्षा और सतत, सहज प्रयास पर। प्रयास तो करना ही होगा, लेकिन उस प्रयास को एक बोझिलता जो बनाएगा, वह हार जाएगा।
जीवन में जो भी महत्वपूर्ण है, वह प्रतीक्षा से, सहजता से, बिना बोझ बनाए प्रयास से उपलब्ध होता है। सच तो यह है कि हम कोई भी चीज आज भी कर सकते हैं, लेकिन अधैर्य ही हमारा बाधा बन जाता है। उससे उदासी आती है, निराशा आती है, हताशा पकड़ती है, और आदमी सोचता है, नहीं, यह अपने से न हो सकेगा। यह जो बार-बार हताशा पकड़ती है, यह अहंकार का लक्षण है।
आप अपने से बहुत अपेक्षा कर लेते हैं पहले, फिर उतनी पूरी नहीं होती।
वह अपेक्षा आपका अहंकार है। एक क्षण भी होश सधता है तो बहुत है। एक क्षण जो सधता है, कल दो क्षण भी सध जाएगा। और ध्यान रहे, एक क्षण से ज्यादा तो आदमी के हाथ में कभी होता नहीं। दो क्षण तो किसी को इकट्ठे मिलते नहीं। इसलिए दो क्षण की चिंता भी क्या? जब भी आप के हाथ में समय आता है, एक ही क्षण आता है। अगर आप एक क्षण में होश साध सकते हैं, तो समस्त जीवन में होश सध सकता है। इसका बीज आपके पास है। एक ही क्षण तो मिलता है हमेशा, और एक क्षण का होश साधने की क्षमता आप में है।
आदमी एक कदम चलता है एक बार में, कोई मीलों की छलांग नहीं लगाता। और एक-एक कदम चल कर आदमी हजारों मील चल लेता है। जो आदमी अपने पैर को देखेगा और देखेगा, एक कदम चलता हूं, एक फीट पूरा नहीं हो पाता; हजार मील कहां पार होने वाले हैं! यहीं बैठ जाएगा। लेकिन जो आदमी यह देखता है कि अगर एक कदम चल लेता हूं, तो एक कदम हजार मील में कम हुआ। और अगर जरा सा भी कम होता है तो एक दिन सागर को भी चुकाया जा सकता है। फिर कुछ भी अड़चन नहीं है। इतना चल लेता हूं तो एक हजार मील भी चल लूंगा। दस हजार मील भी चल लूंगा। लाओत्से ने कहा है, पहले कदम को उठाने में जो समर्थ हो गया, अंतिम बहुत दूर नहीं है। कितना ही दूर हो।
जिसने पहला उठा लिया है, वह अंतिम भी उठा लेगा। पहले में ही अड़चन है, अंतिम में अड़चन नहीं है। जो पहले पर ही थक कर बैठ गया, निश्चित ही वह अंतिम नहीं उठा पाता है। पहला कदम आधी यात्रा है, चाहे यात्रा कितनी ही बड़ी क्यों न हो। जिसने पहले कदम के रहस्य को समझ लिया, वह चलने की तरकीब समझ गया, विज्ञान समझ गया। एक-एक कदम उठाते जाना है, एक-एक पल को प्रमाद से मुक्त करते जाना है। जो भी करते हों, होशपूर्वक करें। होश अलग काम नहीं है, उस काम को ही ध्यान बना लें। महावीर और बुद्ध इस मामले में अनूठे हैं। दुनिया में और जो साधन पद्धतियां हैं, वे सब ध्यान को अलग काम बनाती हैं, वे कहती हैं, रास्ते पर चलो तो राम को स्मरण करते रहो। वे कहती हैं कि बैठे हो खाली, तो माला जपते रहो। कोई भी पल ऐसा न जाए जो प्रभु स्मरण से खाली हो। इसका मतलब हुआ कि जिंदगी का काम एक तरफ चलता रहेगा और भीतर एक नये काम की धारा शुरू करनी पड़ेगी।
महावीर और बुद्ध इस मामले में बहुत भिन्न हैं। वे कहते हैं कि यह भेद करने से तनाव पैदा होगा, अड़चन होगी।
मेरे पास एक सैनिक को लाया गया था। सैनिक था, सैनिक के ढंग का उसका अनुशासन था मन का। फिर उसने किसी से मंत्र ले लिया। तो जैसा वह अपनी सेना में आज्ञा मानता था, वैसे ही उसने अपने गुरु की भी आज्ञा मानी। और मंत्र को

चौबीस घंटे रटने लगा। अभ्यास हो गया। दो तीन महीने में मंत्र अभ्यस्त हो गया। तब बड़ी अड़चन शुरू हुई, उसकी नींद खो गई। क्योंकि वह मंत्र तो जपता ही रहता। धीरे-धीरे नींद मुश्किल हो गई, क्योंकि मंत्र चले तो नींद कैसे चले। फिर धीरे-धीरे रास्ते पर चलते वक्त उसे भ्रम पैदा होने लगे। कार का हार्न बज रहा है, उसे सुनाई न पड़े, क्योंकि वहां भीतर मंत्र चल रहा है। वह इतना एकाग्र होकर मंत्र सुनने लगा कि कार का हार्न कैसे सुनाई पड़े। उसकी मिलिटरी में उसका कैपटन आज्ञा दे रहा है, बाएं घूम जाओ, वह खड़ा ही रहे। भीतर तो वह कुछ और कर रहा है।
उसे मेरे पास लाए। मैंने पूछा कि तुम क्या कर रहे हो? इसमें तुम पागल
हो जाओगे। उसने कहा, अब तो कोई उपाय नहीं है। अब तो मैं न भी जपूं राम-राम, भीतर का मंत्र न भी जपूं तो भी चलता रहता है। मैं अगर उसे छोड़ दूं, तो मेरा मामला नहीं अब, उसने मुझे पकड़ लिया है। मैं खाली भी बैठ जाऊं तो कोई फर्क नहीं पड़ता है, मंत्र चलता है।
इस तरह की कोई भी साधना पद्धति जीवन में उपद्रव पैदा कर सकती है। क्योंकि जीवन की एक धारा है, और एक नई धारा आप पैदा कर लेते हैं। जीवन ही काफी बोझिल है। और एक नई धारा तनाव पैदा करेगी। और अगर इन दोनों धाराओं में विरोध है, तो आप अड़चन में पड़ जाएंगे।
महावीर और बुद्ध अलग धारा पैदा करने के पक्ष में नहीं हैं। वे कहते हैं, जीवन की जो धारा है, इसी धारा पर ध्यान को लगाओ। इसमें भेद मत पैदा करो, द्वैत मत पैदा करो। ध्यान ही चाहिए न, तो राम-राम पर ध्यान रखते हो, क्या सवाल हुआ? श्वास चलती है, इसी पर ध्यान रख लो। ध्यान ही बढ़ाना है तो एक मंत्र पर ध्यान बढ़ाते हो, पैर चल रहे हैं, यह भी मंत्र है। इसी पर ध्यान को कर लो। भीतर कुछ गुनगुनाओगे उस पर ध्यान करना है, बाजार पूरा गुनगुना रहा है, चारों तरफ शोरगुल हो रहा है, इसी पर ध्यान कर लो। ध्यान को अलग क्रिया मत बनाओ, विपरीत क्रिया मत बनाओ। जो चल रहा है, मौजूद है उसको ही ध्यान का आब्जेक्ट, उसको ही ध्यान का विषय बना लो। और तब इस अर्थों में, महावीर की पद्धति जीवन विरोधी नहीं है, और जीवन में कोई भी अड़चन खड़ी नहीं करती।
महावीर ने सीधी सी बात कही है, चलो, तो होशपूर्वक। बैठो, तो होशपूर्वक। उठो, तो होशपूर्वक। भोजन करो, तो होशपूर्वक। जो भी तुम कर रहे हो जीवन की क्षुद्रतम क्रिया, उसको भी होशपूर्वक किए चले जाओ। क्रिया में बाधा न पड़ेगी, क्रिया में कुशलता बढ़ेगी और होश भी साथ-साथ विकसित होता चला जाएगा। एक दिन तुम पाओगे, सारा जीवन होश का एक द्वीप-स्तंभ बन गया, तुम्हारे भीतर सब होशपूर्ण हो गया है।
एक दूसरे मित्र ने पूछा है कि कल आपने कहा, प्रत्येक व्यक्ति की परम स्वतंत्रता का समादर करना ही अहिंसा है। दूसरे को बदलने का, अनुशासित करने का, उसे भिन्न करने का प्रयास हिंसा है। तो फिर गुरजिएफ और झेन गुरुओं द्वारा अपने शिष्यों के प्रति इतना सख्त अनुशासन और व्यवहार और उन्हें बदलने के तथा नया बनाने के भारी प्रयत्न के संबंध में क्या कहिएगा? क्या उसमें भी हिंसा नहीं छिपी है?
दूसरे को बदलने की चेष्टा हिंसा है। अपने को बदलने की चेष्टा हिंसा नहीं है। दूसरे की जीवन पद्धति पर आरोपित होने की चेष्टा हिंसा है। अपने जीवन को रूपांतरण करना हिंसा नहीं है, और यहीं फर्क शुरू हो जाता है।
जब भी एक व्यक्ति किसी झेन गुरु के पास आकर अपना समर्पण कर देता है तो गुरु और शिष्य दो नहीं रहे। अब यह दूसरे को बदलने की कोशिश नहीं है। झेन गुरु आपको आकर बदलने की कोशिश नहीं करेगा, जब तक कि आप जाकर बदलने के लिए अपने को उसके हाथ में नहीं छोड़ देते हैं। जब आप बदलने के लिए अपने आपको उसके हाथ में छोड़ देते हैं, समग्ररूपेण समर्पण कर देते हैं, यह सरेंडर टोटल, पूरा है, तो अब गुरु आपको अलग नहीं देखता, अब आप उसका ही विस्तार हैं, उसका ही फैलाव हैं। अब वह आपको ऐसे ही बदलने में लग जाता है, जैसे अपने को बदल रहा हो। इसलिए झेन गुरु सख्त मालूम पड़ सकता है बाहर से, देखने वालों को। शिष्यों को कभी सख्त मालूम नहीं पड़ा है।

हुई हाई ने कहा है कि जब मेरे गुरु ने मुझे खिड़की से उठा कर बाहर फेंक दिया, तो जो भी देखने वाले थे, सभी ने समझा कि यह गुरु दुष्ट है, यह भी कोई बात हुई। शिष्य को खिड़की से उठा कर बाहर फेंक देना, यह भी कोई बात हुई! और यह भी कोई सदगुरु का लक्षण हुआ!
लेकिन हुई हाई ने कहा है कि सब ठीक चल रहा था मेरे मन में, सब शांत होता
जा रहा था, लेकिन मैं का भाव बना हुआ था। मैं शांत हो रहा हूं, यह भाव बना हुआ था। मेरा ध्यान सफल हो रहा है, यह भाव बना ही हुआ था। मैं बना हुआ था। सब टूट गया था, सिर्फ मैं रह गया था, और बड़ा आनंद मालूम हो रहा था। और उस दिन जब अचानक मेरे गुरु ने मुझे खिड़की से उठा कर बाहर फेंक दिया, तो खिड़की से बाहर जाते और जमीन पर गिरते क्षण में वह घटना घट गई, जो मैं नहीं कर पा रहा था। वह जो मैं था, उतनी देर को मुझे बिल्कुल भूल गया। वह जो खिड़की के बाहर जाकर झटके से गिरना था, वह जो शाक था, समझ में नहीं पड़ा। मेरी बुद्धि एकदम मुश्किल में पड़ गई। कुछ समझ न रही कि यह क्या हो रहा है। एक क्षण को "मैं" से मैं चूक गया और उसी क्षण में मैंने उसके दर्शन कर लिए जो मैं के बाहर है।
हुई हाई कहता था कि मेरे गुरु की अनुकंपा अपार थी। कोई साधारण गुरु होता तो खिड़की के बाहर मुझे फेंकता नहीं। और जिस काम में मुझे वर्षों लग जाते वह क्षण में हो गया।
आप जानकर हैरान होंगे कि झेन गुरु के शिष्य जब ध्यान करने बैठते हैं
तो गुरु घूमता रहता है, एक डंडे को लेकर। झेन गुरु का डंडा बहुत प्रसिद्ध चीज है। वह डंडे को लेकर घूमता रहता है। जब वह, लगता है कि कोई भीतर प्रमाद में पड़ रहा है, होश खो रहा है, झपकी आ रही है, तभी वह कंधे पर डंडा मारता है। और बड़े मजे की बात तो यह है कि जिनको वह डंडा मारता है, वे झुक कर प्रणाम करते हैं, अनुगृहीत होते हैं। इतना ही नहीं, जिनको ऐसा लगता है कि गुरु उन्हें डंडा मारने नहीं आया और भीतर प्रमाद आ रहा है तो वे दोनों अपने हाथ छाती के पास कर लेते। वह निमंत्रण है कि मुझे डंडा मारें, मैं भीतर सो रहा हूं।
तो साधक बैठे रहते हैं, गुरु घूमता रहता है या बैठा रहता है। जब भी कोई साधक अपने दोनों हाथ छाती के पास ले आता है उठा कर, पैरों से उठा कर छाती के पास ले आता है, वह खबर दे रहा है कि कृपा करें, मुझे मारें, भीतर मैं झपकी खा रहा हूं। जिन लोगों ने झेन गुरुओं के पास काम किया है, उनका अनुभव यह है कि गुरु का डंडा बाहर के लोगों को दिखाई पड़ता होगा, कैसी हिंसा है! लेकिन गुरु का डंडा जब कंधे पर पड़ता है, कंधे पर हर कहीं नहीं पड़ता, खास केंद्र हैं जिन पर झेन गुरु डंडा मारते हैं। उन केंद्रों पर चोट पड़ते ही भीतर का पूरा स्नायु तंतु झनझना जाता है। उस स्नायु तंतु की झनझनाहट में निद्रा मुश्किल हो जाती है, झपकी मुश्किल हो जाती है, होश आ जाता है।
तो हमें बाहर से दिखाई पड़ेगा। बाहर से जो दिखाई पड़ता है, उसको सच मत मान लेना। जल्दी निष्कर्ष मत ले लेना। भीतर एक अलग जगत भी है। और गुरु और शिष्य के बीच जो घटित हो रहा है वह बाहर से नहीं जाना जा सकता। उसे जानने का उपाय भीतरी ही है। उसे शिष्य होकर ही जाना जा सकता है। उसे बाहर से खड़े होकर देखने में आपसे भूल होगी। निर्णय गलत हो जाएंगे, निष्पत्तियां भ्रांत होंगी। क्योंकि बाहर से जो भी आप नतीजे लेंगे--अगर आप एक रास्ते से गुजर रहे हैं और एक मठ के भीतर एक झेन गुरु किसी को बाहर फेंक रहा है खिड़की के, तो आप सोचेंगे, पुलिस में खबर कर देनी चाहिए। आप सोचेंगे, यह आदमी कैसा है। अगर आप इस आदमी से मिलने आए थे तो बाहर से ही लौट जाएंगे। लेकिन, भीतर क्या घटित हो रहा है, वह है सूक्ष्म। और वह केवल हुइ हाई और उसका गुरु जानता है कि भीतर क्या हो रहा है।
पश्चिम में शाक ट्रीटमेंट बहुत बाद में विकसित हुआ है। आज हम जानते हैं, मनसविद, मनोचिकित्सक जानते हैं कि अगर व्यक्ति ऐसी हालत में आ जाए पागलपन की कि कोई दवा काम न करे, तो भी शाक काम करता है। अगर हम उसके स्नायु तंतुओं को इतना झनझना दें कि एक क्षण को भी सातत्य टूट जाए, कंटीन्युटी टूट जाए।

एक आदमी अपने को नेपोलियन समझ रहा है, या अपने को हिटलर माने हुए है। इसके सब इलाज हो चुके हैं, लेकिन कोई उपाय नहीं होता। जितना इलाज करो वह उतना और मजबूत होता चला जाता है। क्या करो? इसके मन की एक धारा बंध गई है, एक सातत्य हो गया है। एक कंटीन्युटी हो गई है, यह दुहराए चला जा रहा है कि मैं हिटलर हूं, आप कुछ भी करो, यह उस सबसे यही नतीजा लेगा कि मैं हिटलर हूं। इसे समझाने का कोई उपाय नहीं है। समझाने की सीमा के बाहर चला गया है यह। मैं निरंतर कहता हूं कि एक आदमी को अब्राहम लिंकन होने का ख्याल पैदा
हो गया। नाटक में काम मिला था उसको अब्राहम लिंकन का। और अमरीका अब्राहम लिंकन की कोई विशेष जन्म-तिथि मना रहा था। इसलिए एक वर्ष तक उसको अमरीका के नगर-नगर में जाकर लिंकन का पार्ट करना पड़ा। उसका चेहरा लिंकन से मिलता- जुलता था। एक वर्ष तक निरंतर अब्राहम का, लिंकन का पार्ट करते-करते उसे यह भ्रांति हो गई कि वह अब्राहम लिंकन है। फिर नाटक खत्म हो गया, पर उसकी भ्रांति खत्म न हुई। उसकी चाल अब्राहम लिंकन की हो गई। अब्राहम लिंकन जैसा हकलाता था बोलने में, वैसा वह हकलाने लगा। साल भर लंबा अभ्यास था। मुस्कुराए तो लिंकन के ढंग से, छड़ी उठाए तो लिंकन के ढंग से, बैठे उठे तो लिंकन के ढंग से।
थोड़े दिन घर के लोगों ने मजाक लिया, फिर घबड़ाहट हुई। वह अपना नाम भी अब्राहम लिंकन बताने लगा। घर के लोगों ने बहुत समझाया कि तुम्हें क्या हो गया है, तुम पागल तो नहीं हो गए हो? लेकिन जितना उसे समझाया, उतना ही वह उन पर मुस्कुराता था। लोग उससे पूछते थे कि तुम क्यों मुस्कुरा रहे हो, तो वह कहता, तुम सब पागल हो गए, क्या हुआ? मैं अब्राहम लिंकन हूं। हालत यहां तक पहुंची कि लोग कहने लगे, कि जब तक इसको गोली न मारी जाए, तब तक यह मानेगा नहीं। अब्राहम लिंकन को गोली मारी गई तब तक यह चैन नहीं लेगा। चिकित्सकों ने समझाया, मनो-विश्लेषण किया, कोई उपाय नहीं था।
अमरीका में एक लाइ-डिटेक्टर उन्होंने एक छोटी मशीन बनाई है जिसमें झूठ आदमी बोले तो पकड़ जाता है। क्योंकि जब आप झूठ बोलते हैं तो हृदय में सातत्य टूट जाता है। आपसे मैंने पूछा, आपका नाम? आपने कहा, राम। आपकी उम्र? आपने कहा, पैंतालीस साल। आज की तारीख? आपने कहा यह, दिन? सब ठीक बोला। तब मैंने अचानक आपसे पूछा, आपने चोरी की? तो आपके भीतर से तो आएगा, हां। क्योंकि आपने की है। और उसको आप बदलेंगे बीच में। भीतर से--उठेगा हां, गले तक आएगा, हां। फिर हां को आप नीचे दबाएंगे और कहेंगे--नहीं। यह पूरा का पूरा झटका जो है, नीचे जो मशीन लगी है, उस पर आ जाएगा। जैसे कि अपके हृदय की धड़कन का ग्राफ आता है, वैसे ही ग्राफ में ब्रेक आ जाएगा, झटका आ जाएगा। वह झटका बताएगा कि किस प्रश्न को आपने झूठा उत्तर दिया है।
तो इन सज्जन को लाइ-डिटेक्टर पर खड़ा किया गया, कि अगर यह आदमी झूठ बोल रहा है तो पकड़ जाएगा। यह भीतर गहन में तो जानता ही होगा कि मैं अब्राहम लिंकन नहीं हूं। वह आदमी भी परेशान हो गया था, यह सब इलाज, चिकित्सा, समझाने से। उसने आज तय कर लिया था कि ठीक है, आज मान लूंगा। जो कहते हो, वही ठीक है।
पूछे बहुत से प्रश्न। फिर पूछा गया कि तुम्हारा नाम क्या अब्राहम लिंकन है? उसने कहाः नहीं। और मशीन ने नीचे बताया कि यह आदमी झूठ बोल रहा है। तब तो मनोचिकित्सक ने भी सिर ठोंक लिया। उसने कहाः अब कोई उपाय ही न रहा। आखिरी हद्द हो गई। वह लाइ-डिटेक्टर कह रहा है कि यह झूठ बोल रहा है। क्योंकि भीतर तो उसे आया हां, लेकिन कब तक इस उपद्रव में पड़ा रहूं, एक दफा न कहकर झंझट छुड़ाऊं। उसने ऊपर से कहा कि नहीं, मैं अब्राहम लिंकन नहीं हूं। इस आदमी के लिए क्या किया जाए? तो शॉक-ट्रीटमेंट है, अब कोई उपाय नहीं। ऐसे आदमी के मस्तिष्क को बिजली से धक्का पहुंचाना पड़ेगा। धक्के का एक ही उपयोग है कि वह जो सतत धारा चल रही है कि मैं अब्राहम लिंकन हूं, मैं अब्राहम लिंकन हूं, उस धारा को समझाने से कोई उपाय नहीं है, क्योंकि धारा उससे टूटती नहीं। बिजली के धक्के से वह धारा टूट जाएगी, छिन्न-भिन्न हो जाएगी। एक क्षण को, इस आदमी के भीतर का जो सातत्य है वह खंडित हो जाएगा, गैप, अंतराल हो जाएगा। शायद उस गैप के कारण दुबारा इसको ख्याल न आए कि मैं अब्राहम लिंकन हूं। इसलिए मनोविज्ञान अब शॉक-ट्रीटमेंट का उपयोग करता

है। अंतिम उपाय वही है। धक्का पहुंचा कर स्नायु तंतुओं की धारा को तोड़ देना। झेन गुरु बहुत प्राचीन समय से, हजार साल से, डेढ़ हजार साल से उसका उपयोग कर रहे हैं। यह जो शिष्य के साथ झेन गुरु का इतना तीव्र हिंसात्मक दिखाई पड़ने वाला व्यवहार है, यह तो कुछ भी नहीं है।
एक झेन गुरु बांकेई की आदत थी कि जब भी वह ईश्वर के बाबत कुछ बोलता तो
एक अंगुली ऊपर उठा कर इशारा करता। जैसा कि अक्सर हो जाता है, जहां गुरु और शिष्य, एक दूसरे को प्रेम करते हैं, शिष्य पीठ पीछे गुरु की मजाक भी करते हैं। यह बहुत आत्मीय निकटता होती है, तब ऐसा हो जाता है। इतना परायापन भी नहीं होता कि
तो वह जो उसकी आदत थी अंगुली ऊपर उठा कर बात करने की सदा, यह मजाक का विषय बन गई थी, जब कोई बात कहता शिष्यों में, तो वह अंगुली ऊपर उठा देता। उसमें एक छोटा बच्चा भी था, जो आश्रम में झाडू-बुहारी लगाने का काम करता था। वह भी बड़े-बड़े साधकों के बीच कभी-कभी ध्यान करने बैठता था, और जो बड़ों से नहीं हो पाता था, वह उससे हो रहा था। क्योंकि छोटे बच्चे अभी सरल हैं, बूढ़े जटिल हैं। बूढ़े काफी बीमारी में आगे जा चुके हैं, बच्चे अभी बीमारी की शुरुआत में हैं। उसे ध्यान भी होने लगा था, और वह अपनी उंगली को उठाकर गुरु जैसी चर्चा भी करने लगा था।
एक दिन सब बैठे थे और बांकेई ने कहाः "ईश्वर के संबंध में कुछ बोल"--उस बच्चे से। उसने कहाः ईश्वर। उसकी अंगुलियां अनजाने ऊपर उठ गईं। वह भूल गया कि गुरु मौजूद है। मजाक पीछे चलता है, सामने नहीं। जल्दी से उसने अंगुली छिपाई, लेकिन गुरु ने कहा, नहीं, पास आ।
चाकू पास में पड़ा था, उठा कर उसकी अंगुली काट दी। चीख निकल गई उस बच्चे
के मुंह से। हाथ में खून की धारा निकल गई। बांकेई ने कहाः अब ईश्वर के संबंध में बोल! उस बच्चे ने अपनी टूटी हुई अंगुली वापस उठाई, और बांकेई ने कहा कि तुझे जो पाना था, वह पा लिया है।
वह दर्द खो गया, वह पीड़ा मिट गई। एक नये लोक का प्रारंभ हो गया। बड़ा गहन शॉक ट्रीटमेंट हुआ। आज शरीर व्यर्थ हो गया।
जो अंगुली नहीं थी, वह भी उठाने की सामर्थ्य आ गई। अब अंगुली के होने में, न होने में कोई फर्क न रहा। जो अंगुली कट गई थी, हाथ से खून बह रहा था, लेकिन बच्चा मुस्कुराने लगा। क्योंकि जब गुरु ने अंगुली कटने पर फिर दुबारा पूछा कि ईश्वर के संबंध में? तो जैसे शरीर की बात भूल ही गया वह। एक क्षण में गुरु की आंखों में झांका, और उसके मुंह पर हंसी फैल गई। वह बच्चा, जिसको झेन में सतोरी कहते हैं, समाधि, उसको उपलब्ध हो गया। उस बच्चे ने अपने संस्मरणों में लिखा है कि चमत्कार था उस गुरु का कि अंगुली ही उसने नहीं काटी, भीतर मुझे भी काट डाला। लेकिन बाहर जो बैठे थे, बाहर से जो देख रहे होंगे, उनको तो लगा होगा कि यह तो पक्का कसाई मालूम होता है।
तो झेन गुरु की जो हिंसा दिखाई पड़ती है, वह दिखाई ही पड़ती है, उसकी अनुकंपा अपार है। और जिस साधना पद्धति में गुरु की इतनी अनुकंपा न हो, वह साधना पद्धति मर जाती है। हमारे पास भी बहुत साधना पद्धतियां हैं, लेकिन करीब-करीब मर गई हैं। क्योंकि न गुरु में साहस है, न इतनी करुणा है कि वह रास्ते के बाहर जाकर भी सहायता पहुंचाए। नियम ही रह गए हैं। नियम धीरे- धीरे मुर्दा हो जाते हैं। उनका पालन चलता रहता है, मरी हुई व्यवस्था की तरह। हम उन्हें ढोते रहते हैं। लेकिन उनमें जीवन नहीं है।
दूसरे को बदलने की चेष्टा नहीं है झेन गुरु की, लेकिन जिसने अपने को समर्पित किया है बदलने के लिए, वह दूसरा नहीं है, एक। दूसरे को बदलने में कोई अपने अहंकार की तृप्ति नहीं है। जिसने समर्पित कर दिया है--यह बहुत मजे की बात है, जब कोई व्यक्ति किसी के प्रति पूरा समर्पित हो जाता है तो उन दोनों के बीच जो सीमाएं तोड़ती थीं, अलग करती थीं अहंकार की, वे विलीन हो जाती हैं। यह मिलन इतना गहरा है जितना पति-पत्नी का भी कभी नहीं होता। प्रेमी और प्रेयसी का भी कभी नहीं होता, जितना गुरु और शिष्य का हो सकता है। लेकिन अति कठिन है, क्योंकि पति और पत्नी का मामला तो बायोलॉजिकल है, शरीर भी साथ देते हैं। गुरु और शिष्य का संबंध स्प्रिचुअल है, बायोलॉजिकल नहीं है। जैविक कोई उपाय नहीं है। तो पति और पत्नी तो पशुओं में भी होते

हैं, प्रेमी और प्रेयसी तो पक्षियों में भी होते हैं, कीड़े-मकोड़ों में भी होते हैं। सिर्फ गुरु और शिष्य का एकमात्र संबंध है जो मनुष्यों में होता है। बाकी सब संबंध सब में होते हैं।
इसलिए जो व्यक्ति गुरु-शिष्य के गहन संबंध को उपलब्ध न हुआ हो, एक अर्थ में ठीक से अभी मनुष्य नहीं हो पाया है। उसके सारे संबंध पाशविक हैं। क्योंकि वे सब संबंध तो पशु होने में भी हो जाते हैं। कोई अड़चन नहीं है। कोई कठिनाई नहीं है। लेकिन पशुओं में गुरु और शिष्य का कोई संबंध नहीं होता, हो नहीं सकता। यह जो संबंध है, इस संबंध के हो जाने के बाद फासला नहीं है--कि हम दूसरे को बदल रहे हैं, हम अपने को ही बदल रहे हैं। इसलिए बुद्ध का जब कोई शिष्य मुक्त होता है, तो बुद्ध कहते हुए सुने गए कि आज मैं फिर तेरे द्वारा पुनः मुक्त हुआ।
महायान बौद्ध धर्म एक बड़ी मीठी कथा कहता है। वह कथा यह है कि बुद्ध का निर्वाण हुआ, शरीर छूटा, वे मोक्ष के द्वार पर जाकर खड़े हो गए, लेकिन उन्होंने पीठ कर ली। द्वारपाल ने कहाः आप भीतर आएं, युगों-युगों से हम प्रतीक्षा कर रहे हैं आपके आगमन की, और आप पीठ फेर कर क्यों खड़े हो गए हैं! तो बुद्ध ने कहाः जिन-जिन ने मेरे प्रति समर्पण किया, जिन-जिन ने मेरा सहारा मांगा, जब तक वे सभी मुक्त नहीं हो जाते, तब तक मेरा मोक्ष में प्रवेश कैसे हो सकता है? तब तक मैं कहीं न कहीं बंधा ही हुआ रहूंगा। इसलिए मैं अकेला नहीं जा सकता हूं।
इसलिए महायान बौद्ध धर्म कहता है कि जब तक पूरी मनुष्यता मुक्त न हो जाए, तब तक बुद्ध द्वार पर ही खड़े रहेंगे। यह कहानी मीठी है, कहानी सूचक है। यह कहानी बहुत गहरे अर्थ लिए हुए है। कहीं कोई बुद्ध खड़े हुए नहीं हैं। हो भी नहीं सकते। खड़े होने का कोई उपाय भी नहीं है। मुक्त होते ही तिरोहित हो जाना पड़ता है। कहीं कोई द्वार नहीं है। लेकिन यह एक मीठे सूत्र की खबर देती है कि गुरु शिष्य के द्वारा पुनः-पुनः मुक्त होता है। और यह संबंध इतना आत्मीय और निकट है कि वहां पराया कोई भी नहीं है।
इसी संदर्भ में पूछा है कि यह भी समझाएं कि हिंसक वृत्ति के कारण निकले आदेश, और करुणा के कारण निकले उपदेश में साधक कैसे फर्क कर पाए? साधक फर्क कर ही नहीं पाएगा। करना भी नहीं चाहिए। साधक को इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है। इसे ठीक से समझ लें।
गुरु ने चाहे हिंसा भाव से ही साधक को आदेश दिया हो। यह हिंसा अगर होगी तो गुरु के सिर होगी। साधक को तो आदेश का पालन कर लेना चाहिए। वह तो रूपांतरित होगा ही, चाहे आदेश करुणा से दिया गया हो और चाहे आदेश हिंसक भाव से दिया गया हो। चाहे मैं किसी को बदलने में इसलिए मजा ले रहा हूं कि बदलने में तोड़ने का मजा है, मिटाने का मजा है। चाहे मैं इसलिए दूसरे को आदेश दे रहा हूं कि नये के जन्म का आनंद है, नये के जन्म की करुणा है। पुराने को मिटाने में हिंसा हो सकती है, नये को बनाने में करुणा है। मैं किसी भी कारण से आदेश दे रहा हूं, यह मेरी बात है। लेकिन जिसको आदेश दिया गया है, उसे कोई फर्क नहीं पड़ता।
एक मकान को गिराना है और नया बनाना है। हो सकता है मुझे गिराने में ही मजा आ रहा हो, इसलिए बनाने की बातें कर रहा हूं। इसलिए उसको तोड़ने में मुझे रस है। या मैं बनाने में इतना उत्सुक हूं कि तोड़ना मजबूरी है, तोड़ना पड़ेगा। लेकिन यह मेरी बात है। मकान के बनने में कोई फर्क नहीं पड़ता है। इसलिए साधक को यह चिंता नहीं करनी चाहिए कि गुरु ने जो खिड़की के बाहर फेंक दिया है, यह तोड़ने का रस था, कोई हिंसा थी या कोई महा करुणा थी।
और अगर साधक यह फर्क करता है, तो समर्पित नहीं है। शिष्य नहीं है। यह
तो उसे पहले ही गुरु के पास आने के पहले सोच लेना चाहिए। यह समर्पण के पहले सोच लेना चाहिए। गुरु के चुनाव की स्वतंत्रता है, गुरु के आदेशों में चुनाव की स्वतंत्रता नहीं है। मैं "अ" को गुरु चुनूं कि "ब" को, कि "स" को, मैं स्वतंत्र हूं। लेकिन "अ" को चुनने के बाद स्वतंत्र नहीं हूं कि "अ" का--"अ" आदेश मानूं कि "ब" आदेश मानूं, कि "स" आदेश मानूं।

गुरु को चुनने का अर्थ समग्र चुनना है। इसलिए झेन ने, सूफियों ने, जहां बहुत गहन गुरु की परम्परा विकसित हुई है, और बड़े आंतरिक रहस्य उन्होंने खोले हैं।
सूफी शास्त्र कहते हैं कि गुरु को चुनने के बाद खंड-खंड विचार नहीं किया जा सकता कि वह क्या ठीक कहता है और क्या गलत कहता है। अगर लगे कि गलत कहता है, तो पूरे ही गुरु को छोड़ देना तत्काल। ऐसा मत सोचना कि यह बात न मानेंगे, यह गलत है। यह बात मानेंगे, यह सही है। इसका तो मतलब हुआ कि गुरु के ऊपर आप हैं, और अंतिम निर्णय आपका ही चल रहा है कि क्या ठीक है और क्या गलत है। तो परीक्षा गुरु की चल रही है, आपकी नहीं। और इस तरह के लोग जब मुसीबत में पड़ते हैं तो जिम्मा गुरु का है।
सूफी कहते हैं कि जब गुरु को चुन लिया तो पूरा चुन लिया। यह टोटल एक्सेप्टेंस है। अगर किसी दिन छोड़ना हो तो टोटल छोड़ देना, पूरा छोड़ देना। हट जाना वहां से। लेकिन आधा चुनना और आधा छोड़ना मत करना। बहुत कीमती बात है कि यह ठीक लगता है, इसलिए चुनेंगे। तो आखिर में आप ही ठीक हैं। जो ठीक लगता है वह चुनते हैं। जो गलत लगता है, वह नहीं चुनते हैं। तो आपको ठीक और गलत का तो राज मालूम ही है। अब बचा क्या है चुनने को? जब आप यह भी पता लगा लेते हैं कि क्या ठीक है और क्या गलत है, तो आपको बचा ही क्या है? शिष्य होने की कोई जरूरत ही नहीं है। लेकिन अगर शिष्य होने की जरूरत है तो आपको पता नहीं है कि क्या ठीक है और क्या गलत है।
गुरु का चुनाव समग्र है। छोड़ना हो तो सूफी कहते हैं, पूरा छोड़ देना। बड़ी मजे की बात सूफियों ने कही है। बायजीद ने कहा है कि अगर गुरु को छोड़ना हो तो जितने आदर से स्वीकार किया था, जितनी समग्रता से, उतने ही आदर से, उतनी ही समग्रता से छोड़ देना। कठिन है मामला। किसी को आदर से स्वीकार करना तो आसान है, आदर से छोड़ना बहुत मुश्किल है। हम छोड़ते ही तब हैं जब अनादर मन में आ जाता है। लेकिन बायजीद कहता है, जिसको तुम आदर से न छोड़ सको, समझ लेना आदर से चुना ही नहीं था। क्योंकि यह तुमने चुना था। तुम निर्णायक न थे कि गुरु ठीक होगा कि गलत होगा। यह चुनाव तुम्हारा था। आदरपूर्वक तुमने चुना था। अगर तुम मेल नहीं खाते तो बायजीद ने कहा है कि समझना कि यह गुरु मेरे लिए नहीं है। ठीक और गलत तुम कहां जानते हो? तुम इतना ही कहना कि इस गुरु से मैं जैसा हूं, उसका मेल नहीं खा रहा है।
बायजीद का मतलब यह है कि जब भी तुम्हें गुरु छोड़ना पड़े तो तुम समझना
कि मैं इस गुरु का शिष्य होने के योग्य नहीं हूं। छोड़ देना। लेकिन हम गुरु को तब छोड़ते हैं, जब हम पाते हैं कि यह गुरु हमारा गुरु होने के योग्य नहीं है।
मैं शिष्य होने के योग्य नहीं हूं, इसका यही भाव हो सकता है, शिष्यत्व का। गुरु के शिखर को नहीं समझा जा सकता है। अब यही, हुई हाई को फेंक दिया है खिड़की के बाहर। यह समग्र स्वीकार है। इसमें भी कुछ हो रहा होगा, इसलिए गुरु ने फेंक दिया है, इसलिए हुई हाई स्वीकार कर लेगा।
गुरजिएफ के पास लोग आते थे, तो गुरजिएफ अपने ही ढंग का आदमी था। सभी गुरु अपने ढंग के आदमी होते हैं, और दो गुरु एक से नहीं होते। हो भी नहीं सकते। क्योंकि गुरु का मतलब यह है कि जिसने अपनी अद्वितीय चेतना को पा लिया--बेजोड़। तो वह अलग तो हो ही जाएगा।
गुरजिएफ के पास कोई आता तो वह क्या करेगा, इसके कोई नियम न थे। हो सकता
है वह कहे, एक वर्ष तक रहो आश्रम में, लेकिन मुझे देखना मत। मेरे पास मत आना। यह काम है साल भर का। यह काम करना। कि सड़क बनानी है, कि गिट्टी फोड़नी हैं, कि गड्ढा खोदना है, कि वृक्ष काटने हैं, यह काम सालभर करना। और साल भर के बीच एक बार भी मेरे पास मत आना।
एक रूसी साधक हार्टमन गुरजिएफ के पास आया। एक वर्ष तक--पहले दिन जो पहला सूचन मिला वह यह कि एक वर्ष तक मेरे पास दुबारा मत आना। रहना छाया की तरह। सुबह चार बजे से हार्टमेन को काम दे दिया गया सालभर के लिए। वह करेगा दिन-रात काम। गुरजिएफ के मकान में रात रोज दावत होगी, सारा आश्रम आमंत्रित होगा, सिर्फ हार्टमन नहीं। रात संगीत चलेगा दो-दो बजे तक। गुरजिएफ के बंगले की रोशनी बाहर पड़ती रहेगी और हार्टमन अपनी कोठरी में सोया रहेगा।

सभाएं होंगी, लोग आएंगे, भीड़ होगी, अतिथि आएंगे, चर्चा होगी, प्रश्न होंगे, हार्टमन नहीं होगा। साल भर!
जिस दिन साल भर पूरा हुआ, उस दिन गुरजिएफ हार्टमन के झोपड़े पर गया और गुरजिएफ ने हार्टमन से कहा कि अब तुम जब भी आना चाहो, आधी रात भी जब मैं सो रहा हूं तब भी, जिस क्षण, चौबीस घंटे तुम आ सकते हो। अब तुम्हें किसी से पूछने की जरूरत नहीं है, कोई आज्ञा लेने की जरूरत नहीं है।
और हार्टमेन ने उसके चरण छुए और कहा कि अब तो जरूरत भी न रही। यह साल
भर दूर रख कर तुमने मुझे बदल दिया। यह कहा नहीं जा सकता, लेकिन यह मुश्किल मामला है। हार्टमेन सोच सकता था, यह भी क्या बात हुई, एक प्रश्न का उत्तर नहीं मिला, कुछ चर्चा नहीं, कुछ बात नहीं, यह क्या एक साल! दिन दो दिन की बात भी नहीं है। लेकिन गुरु को चुनने का मतलब है, पूरा चुनना, या पूरा छोड़ देना। फिर गुरु क्या करता है, वह तभी कर सकता है जब इतना समर्पण हो, अन्यथा नहीं कर सकता है।
एक मित्र ने पूछा है कि आप महावीर, बुद्ध, लाओत्सु पर न बोल कर अपनी निजी और आंतरिक बातें बताएं। और यह भी लिखा है--बिना दस्तखत किए--कि आपको मैं इतना कायर नहीं मानता हूं कि आप अपनी निजी बातें नहीं बताएंगे।
आप तो नहीं मानते हैं मुझे इतना कायर, लेकिन मैं आपको इतना बहादुर नहीं मानता हूं कि मेरी निजी बातें सुन पाएंगे। और जिस दिन तैयारी हो जाए निजी बातें सुनने की, उस दिन मेरे पास आ जाना। क्योंकि निजी बातें निजता में ही कही जा सकती हैं, पब्लिक में नहीं। मगर उसके पहले कसौटी से गुजरना पड़ेगा। बहादुरी की मैं जांच कर लूंगा। चूंकि क्या मैं आपको दूं, यह आपके पात्र की क्षमता पर निर्भर है।
मेरे निजी जीवन में कुछ भी छिपाने जैसा नहीं है, लेकिन आप देख भी पाएंगे, समझ भी पाएंगे, उसका उपयोग भी कर पाएंगे, आपके जीवन में वह सृजनात्मक भी होगा, सहयोगी भी होगा, यह सोचना जरूरी है। क्योंकि जो भी मैं कह रहा हूं, वह आपके काम पड़ सके, तो ही उसका कोई अर्थ है।
तो जिसकी भी तैयारी हो मेरे निजी जीवन में उतरने की, वह जरूर मेरे पास
आ जाए। लेकिन उसे तैयारी से गुजरना पड़ेगा, यह ख्याल रख कर आए। अभी तो दस्तखत करने की भी हिम्मत नहीं है।
अब हम सूत्र लें।
"क्रोध, मान, माया और लोभ ये चारों काले कुत्सित कषाय पुनर्जन्मरूपी संसार वृक्ष की जड़ों को सींचते रहते हैं।"
"चाव॰ और जौ आदि धान्यों तथा सुवर्ण और पशुओं से परिपूर्ण यह समस्त पृथ्वी भी लोभी मनुष्य को तृप्त कर सकने में असमर्थ है, यह जान कर संयम का आचरण करना चाहिए।"
चार कषाय महावीर ने कहे--क्रोध, मान, माया, लोभ। ये चारों शब्द हमारे बहुत परिचित हैं--शब्द। ये चारों बिल्कुल अपरिचित हैं। शब्द के परिचय को हम भूल से सत्य का परिचय समझ लेते हैं। हम सभी को मालूम है, क्रोध का क्या मतलब है? और क्रोध से हमारा मिलना हुआ नहीं। हालांकि क्रोध हम पर हुआ है बहुत बार, हमसे हुआ है। क्रोध में हम डूबे हैं। लेकिन क्रोध इतना डुबा लेता है कि जो देखने की तटस्थता चाहिए, जो क्रोध को समझने की दूरी चाहिए वह नहीं बचती। इसलिए क्रोध हमसे हुआ है लेकिन क्रोध को हमने जाना नहीं। हमारे क्रोध को दूसरों ने जाना होगा, हमने नहीं जाना। इसलिए मजे की घटना घटती है। क्रोधी आदमी भी अपने को क्रोधी नहीं समझता। सारी दुनिया जानती है कि वह क्रोधी है, लेकिन वह भर नहीं जानता है कि मैं क्रोधी हूं। क्या मामला है? सब देख लेते हैं क्रोध को, वह खुद क्यों नहीं देख पाता?
असल में क्रोध की घटना में वह मौजूद ही नहीं रहता। वह जो ऑब्जर्वर है, निरीक्षक है, वह डूब जाता है। उसका कोई पता ही नहीं रहता। बाकी तो कोई क्रोध में नहीं है इसलिए वे लोग देख लेते हैं कि यह आदमी क्रोध में है। आपको पता नहीं चलता। यह बात इतनी भी दब सकती है गहन, कि कई तथ्य जो वैज्ञानिक हो सकते थे वे भी खो गए हैं।
मैं कल ही एक लियोनल टाइगर की एक किताब देख रहा था। उसने बड़ी महत्वपूर्ण खोज की है। उसने काम किया है स्त्रियों के मासिक-धर्म पर। तो

वह कहता है कि जब मासिक-धर्म के चार-पांच दिन होते हैं, तब स्त्रियां ज्यादा क्रोधी होती हैं। ज्यादा चिड़चिड़ी होती हैं, ज्यादा परेशान होती हैं, ज्यादा हिंसक हो जाती हैं। उनकी सारी वृत्तियां निम्न हो जाती हैं। न केवल इतना, बल्कि उन पांच दिनों में उनका बौद्धिक स्तर भी गिर जाता है, उनकी इंटेलिजेंस भी गिर जाती है। उनका आई-क्यू, उनका जो बुद्धि-माप है वह नीचे गिर जाता है, पंद्रह प्रतिशत।
इसलिए परीक्षा के समय स्त्रियों के लिए विशेष सुविधा होनी चाहिए। मेंसेस में किसी लड़की की परीक्षा नहीं होनी चाहिए, अकारण पिछड़ जाएगी। ठीक पीरिएड के मध्य में, पिछले पीरिएड और दूसरे पीरिएड के ठीक बीच में चौदह दिन के बाद स्त्रियों के पास सबसे ज्यादा प्रसन्न भाव होता है और उस समय वे कम क्रोधी होती हैं, कम चिड़चिड़ी होती हैं। और उस समय उनका बुद्धि-माप पंद्रह प्रतिशत बढ़ जाता है। इसलिए अगर मध्य पीरिएड में लड़की हो और लड़के के साथ परीक्षा दे तो वह फायदे में रहेगी, पंद्रह प्रतिशत ज्यादा।
अगर मेंसेस में हो तो नुकसान में रहेगी पंद्रह प्रतिशत कम। और दोनों मिल कर तीस प्रतिशत का फर्क हो जाता है। जो कि बड़ा फर्क है।
इस पर जितना काम चलता है उससे धीरे-धीरे यह भी ख्याल में आना शुरू हुआ। लेकिन इतने हजार साल लग गए और ख्याल में नहीं आया कि स्त्री और पुरुष दोनों एक ही जाति के पशु हैं। तो स्त्रियों में ही मासिक-धर्म हो, यह आवश्यक नहीं है, कहीं न कहीं पुरुष में भी मासिक धर्म जैसी कोई समान घटना होनी चाहिए। लेकिन पुरुषों को अब तक ख्याल नहीं आया। होनी चाहिए ही, क्योंकि दोनों की शरीर रचना एक ही ढांचे में होती है। दोनों की सारी व्यवस्था एक जैसी है। जो भेद है वह थोड़ा सा ही भेद है, और वह भेद इतना है कि स्त्री ग्राहक है और पुरुष दाता है, जीवाणुओं के संबंध में। बाकी तो सारी बात एक है। तो स्त्री में अगर मासिक-धर्म जैसी कोई घटना घटती है तो पुरुष में भी घटनी चाहिए।
सौ वर्ष पहले एक आदमी ने इस संबंध में थोड़ी खोज-बीन की है, एक जर्मन सर्जन ने। और उसे शक हुआ कि पुरुष में भी मासिक-धर्म होता है। लेकिन चूंकि कोई बा॰हय घटना नहीं घटती रक्तस्राव की, इसलिए आदमी भूल गया है। तो उसने आदमी के क्रोध और चिड़चिड़ेपन के रिकार्ड बनाए और पाया कि हर अट्ठाइसवें दिन पुरुष भी चार-पांच दिन के लिए उसी तरह अस्त-व्यस्त होता है, जैसे स्त्री अस्त-व्यस्त होती है। और अभी, एक दूसरे विचारक ने एक नये विज्ञान को जन्म दे दिया है--पैट्रिक विनियम्स उसका नाम है, बायो डायनेमिक्स। और उसने समस्त रूप से वैज्ञानिक अर्थों में सिद्ध कर दिया है कि पुरुष का भी मेंसेस होता है। कोई बाहर घटना नहीं घटती, लेकिन भीतर वैसी ही घटना घटती है, जैसी स्त्री को घटती है। और उन चार-पांच दिनों में आप क्रोधी, चिड़चिड़े, परेशान, नीचे गिर जाते हैं चेतना में।
यह हर महीने हो रहा है। जिस दिन आदमी पैदा होता है, उसको पहला दिन समझ लें, तो उसके हिसाब से हर अट्ठाइसवें दिन का पूरा कैलेंडर बना सकते हैं जीवन का। वह पहला दिन है, फिर हर अट्ठाइसवें दिन पुरुष का कैलेंडर बन सकता है। और जब आपके कलेंडर में आपका मेंसेस आ जाए तो दूसरे को भी बता दें और खुद भी सावधान रहें। और आज नहीं कल, हमें स्त्री-पुरुष का विवाह करते वक्त ध्यान रखना चाहिए कि दोनों का मेंसेस साथ न पड़े। ऐसा लगता है स्त्री- पुरुषों को, पति-पत्नियों को देख कर कि बहुत मात्रा में साथ पड़ता होगा। क्योंकि दोनों का मेंसेस साथ पड़ जाए तो भारी उपद्रव और कलह होने वाली है। यह इसलिए संभव हो सका कि आज तक ख्याल नहीं आया कि पुरुष का भी मासिक-धर्म होता है, क्योंकि हम क्रोध से परिचित ही नहीं हैं, नहीं तो यह ख्याल आ जाता। इसलिए मैं कह रहा हूं। अगर हम क्रोध की धारा का निरीक्षण करते तो हमको भी पता चल जाएगा कि हर महीने आपका बंधा हुआ दिन है, बंधा हुआ समय है जब आप ज्यादा क्रोधी होते हैं। और हर महीने आपके बंधे हुए दिन हैं, जब आप कम क्रोधी होते हैं। लेकिन यह तो बड़ी यांत्रिक बात हुई, यह तो आप मशीन की तरह घूम रहे हैं। आपकी मालकियत नहीं मालूम पड़ती।

जैसा क्रोध है, वैसा ही लोभ भी है, वैसी ही माया भी है, वैसा ही मोह भी है। उन सबमें आप बंधे हुए हैं। और यह जो बंधन हैं, यह बड़ा अदभुत है। आपको ख्याल, सिर्फ भ्रम रहता है कि आप मालिक हैं।
अभी चूहों पर बहुत वैज्ञानिकों ने प्रयोग किए। छोटा सा हार्मोन जो पुरुष में होता है, पुरुष चूहे में--जरा सी मात्रा उसकी अगर मादा चूहे को इंजेक्ट कर दी जाए, तो बड़ी हैरानी की बात है, मादा चुहिया जो है, वह पुरुष चूहे की तरह व्यवहार करना शुरू कर देती है। वही अकड़, वही चाल, जो पुरुष चूहे की होती है वही झगड़ालू वृत्ति, हमले का भाव, वह सब आ जाता है। इतना ही नहीं, पुरुष हार्मोन के इंजेक्शन के बाद मादा चुहिया जो है, पुरुष चुहिया पर चढ़ कर संभोग करने की कोशिश करती है, जो कि वह कर नहीं सकती। पुरुष चूहों को स्त्री हार्मोन के इंजेक्शन देकर देखा गया, वे बिल्कुल स्त्रैण हो जाते हैं, दब्बू हो जाते हैं, भागने लगते हैं, भयभीत हो जाते हैं और होने का कोई पता ही नहीं है। समय आपको क्षमा नहीं करता। समय आपको सुविधा नहीं देता। समय लौट कर नहीं आता। समय से आप कितनी ही प्रार्थना करें, कोई प्रार्थना नहीं सुनी जाती। समय और आपके बीच कोई भी संबंध नहीं है। मौत आ जाए द्वार पर और आप कहें कि एक घड़ी भर ठहर जा, अभी मुझे लड़के की शादी करनी है, कि अभी तो कुछ काम पूरा हुआ नहीं, मकान अधूरा बना है।
एक बूढ़ी महिला संन्यास लेना चाहती थी, दो महीने पहले। उसकी बड़ी आकांक्षा थी संन्यास ले लेने की। मगर उसके बेटे खिलाफ थे कि संन्यास नहीं लेने देंगे। मैंने उसके एक बेटे को बुला कर पूछा कि ठीक है, संन्यास मत लेने दो, क्योंकि बूढ़ी स्त्री है, तुम पर निर्भर है और इतना साहस भी उसका नहीं है। लेकिन कल अगर इसे मौत आ जाए तो तुम मौत से क्या कहोगे, कि नहीं मरने देंगे।
जैसे कि कोई भी उत्तर देता, बेटे ने उत्तर दिया। कहा कि मौत कब आएगी,
कब नहीं आएगी, देखा जाएगा। मगर संन्यास नहीं लेने देंगे। और अभी दो महीने भी नहीं हुआ और वह स्त्री मर गई। जिस दिन वह मर गई, उसके बेटे की खबर आई कि क्या आप आज्ञा देंगे, हम उसे गैरिक वस्त्रों में माला पहना कर संन्यासी की तरह चिता पर चढ़ा दें!
"काल निर्दयी है।" लेकिन अब कोई अर्थ भी नहीं है, क्योंकि संन्यास कोई ऐसी बात नहीं है कि वह ऊपर से डाल दिया जाए। न जिंदा पर डाला जा सकता है, न मुर्दा पर डाला जा सकता है। संन्यास लिया जाता है, दिया नहीं जा सकता। मरा आदमी कैसे संन्यास लेगा? दिया जा सके तो मरे को भी दिया जा सकता है। संन्यास दिया जा ही नहीं सकता, लिया जा सकता है। इंटेंशनल है, भीतर अभिप्राय है। वही कीमती है, बाहर की घटना का तो कोई मूल्य नहीं है। भीतर कोई लेना चाहता था। संसार से ऊबा था, संसार की व्यर्थता दिखाई पड़ी थी, किसी और आयाम में यात्रा करने की अभीप्सा जगी थी, वह थी बात। अब तो कोई अर्थ नहीं है, लेकिन अब ये बेटे अपने मन को समझा रहे हैं। मौत को तो न समझा पाए, अपने मन को समझा रहे हैं। मौत को तो नहीं रोक सकते कि रुको, अभी हम न जाने देंगे। मां को रोक सकते थे। मां भी रुक गई क्योंकि उसे भी मौत का साफ-साफ बोध नहीं था। नहीं तो रुकने का कोई कारण भी नहीं था। मां डरी कि बेटों के बिना कैसे जीएगी! और अब, अब बेटों के बिना ही जीना पड़ेगा। अब इस लंबे यात्रापथ पर बेटे दुबारा नहीं मिलेंगे। और मिल भी जाएं तो पहचानेंगे नहीं।
हर छोटी चीज से कंपने लगते हैं।
क्या इसका यह अर्थ हुआ कि छोटे-छोटे हार्मोन इतने प्रभावी हैं और आपकी चेतना इतनी दीन है कि एक इंजेक्शन आपको स्त्री और पुरुष बना सकता है! और एक इंजेक्शन आपको बहादुर और कायर बना सकता है! तो फिर जिसको आप कहते हैं कि भयभीत है, कायर है, जिसको आप कहते हैं, बहादुर है, हिम्मतवर है, जिसको आप कहते हैं साहसी है, दुस्साहसी है, इनके बीच जो फर्क है, वह छोटे से हार्मोन का है।
आमतौर से यही है बात। आपकी कुछ ग्रंथियां निकाल ली जाएं, आप क्रोध नहीं कर पाएंगे। कुछ ग्रंथियां निकाल ली जाएं, आपकी कामवासना तिरोहित हो

जाएगी। तो क्या यह शरीर आप पर इतना हावी है और आपकी आत्मा की कोई स्वतंत्रता नहीं है?
इसीलिए महावीर इनको चार शत्रु कहते हैं, क्योंकि जब तक कोई इन चार के ऊपर न उठ जाए, तब तक उसको आत्मा का कोई अनुभव नहीं होता। जब तक क्रोध के हार्मोन आपके भीतर मौजूद हैं और फिर भी आप क्रोध नहीं करते, और कामवासना के हार्मोन आपके भीतर मौजूद हैं और फिर भी आप ब्रह्मचर्य को उपलब्ध हो जाते हैं, लोभ की सारी की सारी रासायनिक प्रक्रिया भीतर है और फिर भी आप अलोभ को उपलब्ध हो जाते हैं, तभी आपको आत्मा का अनुभव होगा।
आत्मा का अर्थ हैः शरीर के पार सत्ता का अनुभव।
लेकिन हम तो शरीर के पार होते ही नहीं, शरीर ही हमें चलाता है। कई बार ऐसा भी होता है कि आप सोचते हैं कि आप पार हो गए। सुबह उठते हैं, पत्नी कुछ बोल रही है कि बच्चे कुछ गड़बड़ कर रहे हैं कि नौकर कुछ उपद्रव कर रहा है और आप हंसते रहते हैं। तो आप सोचते हैं कि मैंने तो क्रोध पर विजय पा ली। यही घटना सांझ को घटती है तो आप विक्षिप्त हो जाते हैं। सुबह हार्मोन ताजे हैं, शरीर थका हुआ नहीं है। आप ज्यादा आश्वस्त हैं। सांझ थक गए हैं, हार्मोन टूट गए हैं, शक्ति क्षीण हो गई है। सांझ आप वल्नरेबल हैं, ज्यादा खुले हैं। जरा सी बात आपको पीड़ा और चोट पहुंचा जाएगी। तो सुबह जिसको आपने सह लिया, सांझ को नहीं सह पाते हैं। लेकिन सुबह भी आप आत्मा को नहीं पा गए थे, सुबह भी शरीर ही कारण था। सांझ भी शरीर ही कारण है।
आत्मा को पाने का अर्थ तो यह है कि शरीर कारण न रह जाए। आपके जीवन में ऐसे अनुभव शुरू हो जाएं, जिनमें शरीर की रासायनिक प्रक्रियाओं का हाथ नहीं है, उनके पार। इसीलिए इन चार को शत्रु कहा है। और महावीर ने कहा है, इन चारों से ही हम पुनर्जन्म रूपी संसार के वृक्ष की जड़ों को सींचते रहते हैं। इन चारों से ही हम फिर से अपने जन्म को निर्मित करने का उपाय करते रहते हैं। जो इन चार में फंसा है, उसका अगला जन्म उसने बना ही लिया।
लोग मेरे पास आते हैं और कहते हैं, कैसे आवागमन से छुटकारा हो? छुटकारा भी मांगते हैं और जड़ों को अच्छी तरह पानी भी सींचते चले जाते हैं। इस वृक्ष से कैसे छुटकारा हो? सांझ को कहते हैं और सुबह वहीं पानी सींचते पाए जाते हैं। उनको पता ही नहीं कि वृक्ष की जड़ों में पानी सींचना और वृक्ष के पत्तों का आना एक ही क्रिया के अंग हैं। यह एक ही बात है। कभी मत पूछें कि आवागमन से कैसे छुटकारा हो, पूछें ही मत, यही पूछें कि क्रोध, माया, मोह और लोभ से कैसे छुटकारा हो। आवागमन से छुटकारा पूछने की बात ही गलत है। यही पूछें कि कैसे मैं अपने को वृक्ष को पानी देने से रोकूं। वृक्ष कैसे न हो, यह मत पूछें। क्योंकि अगर ध्यान आपने वृक्ष के पत्तों पर रखा और हाथ पानी देते रहे वृक्ष को--वृक्ष के साथ हम ऐसा नहीं करते, क्योंकि हमें पता है कि यह पानी देना और वृक्ष में पत्तों और फूलों का आना, एक ही क्रिया का अंग है।
आपको अपने जीवन वृक्ष का कोई पता नहीं है कि उसके साथ आप क्या कर रहे हैं। इधर कहे चले जाते हैं, दुख मुझे न हो, और सब तरह से दुख को सींचते हैं। हर उपाय करते हैं कि दुख कैसे हो और हर वक्त चिल्लाते रहते हैं कि दुख मुझे न हो। शायद आपको जीवन वृक्ष आप खुद हैं, इसलिए अपनी जड़ों और अपने पत्तों को जोड़ नहीं पाते। समझ नहीं पाते कि क्या मामला है। जब दुख हो, तब दुख के पत्ते को पकड़कर पीछे उतरना चाहिए जड़ तक, कि कहां से दुख हुआ, और जड़ को काटने की चिंता करनी चाहिए।
इसलिए महावीर कहते हैं, ये चार हैं जड़ें--क्रोध, मान, माया, लोभ। चारों इतने अलग-अलग नहीं हैं, एक ही चीज के चार चेहरे हैं-एक ही चीज के, एक ही घटना के। बुद्ध ने उस घटना को नाम दिया है, जीवेषणा, लस्ट फार लाइफ।
अब यह बड़ी कठिन बात है। लोग कहते हैं, आवागमन हमारा कैसे रुके। पूछो, क्यों? किसलिए, आवागमन से दिक्कत क्या हो रही है आपको? चले जाओ मजे से, पैदा होते जाओ बार-बार, हर्ज क्या है?
नहीं, पैदा होने से उन्हें भी तकलीफ नहीं है। जीवन से उन्हें भी कोई कठिनाई नहीं है, लेकिन जीवन में दुख मिलता है, उससे कठिनाई है। दुख न हो और जीवन हो, दुख कट जाए और जीवन हो। हम ऐसी दुनिया चाहते हैं जिसमें रातें न

हों, दिन ही दिन हों। हम ऐसी दुनिया चाहते हैं, जहां जवानी ही जवानी हो, बुढ़ापा न हो। स्वास्थ्य हो, बीमारी न हो। मित्र ही मित्र हों, शत्रु न हों। प्रेम ही प्रेम हो, घृणा न हो।
इस दुनिया में एक हिस्सा काट देना चाहते हैं और एक को बचा लेना चाहते हैं। और मजा यह है कि वह दूसरा हिस्सा इसीलिए बचा हुआ है कि हम इस एक को बचाना चाहते हैं, हम चाहतें हैं दुनिया में मित्र ही मित्र हों। इसलिए शत्रु ही शत्रु हो जाते हैं। हम चाहते हैं, दुनिया में सुख ही सुख हों, इसलिए दुख ही दुख हो जाता है। सुख को बचाना चाहते हैं, दुख को हटाना चाहते हैं, लेकिन सुख जड़ है और दुख पत्ता है। जिसे हम बचाना चाहते हैं, उसी को बचाने में उसे बचा लेते हैं जिसे हम बचाना नहीं चाहते हैं, जिससे हम छूटना चाहते हैं।
आदमी जब कहता है, कि आवागमन से मुक्ति हो, तो वह यह नहीं कहता कि मैं समाप्त हो जाऊं। वह कहता है, मैं मोक्ष में रहूं, मैं स्वर्ग में रहूं। दुख न हो वहां दुख से छुटकारा हो जाए। तो बुद्ध ने कहा है, जीवेषणा, होने की वासना कि मैं रहूं, यही तुम्हारे समस्त दुखों का मूल है।
महावीर कहते हैं कि ये जो चार शत्रु हैं, ये भी जीवेषणा से पैदा होते हैं।
क्रोध क्यों आता है? जब कोई आपके जीवन में बाधा बनता है, तब। जब कोई आपको मिटाना चाहता है, या आपको लगता है कि कोई मिटाना चाहता है तब, जब आपको कोई बचाना चाहता है, तब आपको क्रोध नहीं आता।
अगर मैं एक छुरा लेकर आपके पास जाऊं तो आप डरेंगे। छुरे से नहीं डर रहे हैं आप, क्योंकि सर्जन उससे भी बड़ा छुरा लेकर आपके पास आता है। तब आप निश्चिंत टेबल कि वृक्ष की जड़ों में पानी सींचना और वृक्ष के पत्तों का आना एक ही क्रिया के अंग हैं। यह एक ही बात है। कभी मत पूछें कि आवागमन से कैसे छुटकारा हो, पूछें ही मत, यही पूछें कि क्रोध, माया, मोह और लोभ से कैसे छुटकारा हो। आवागमन से छुटकारा पूछने की बात ही गलएक ही गहरे में भय है, कहीं मैं न मिट जाऊं।
तो जहां लगता है कि कोई मुझे मिटाने आ रहा है, वहां क्रोध खड़ा होता है। जहां लगता है कि कोई मुझे बचाने आ रहा है, वहां मोह खड़ा होता है। जहां लगता है कि मैं बच न सकूंगा, तो बचाने की जो हम चेष्टा करते हैं, वह सब हमारा लोभ है। जब मुझे लगता है कि मैं अच्छी तरह बच गया हूं और अब मुझे कोई नहीं मिटा सकता, तो वह जो अहंकार पैदा होता है, वह हमारा मान है।
लेकिन ये चारों के चारों जीवेषणा के हिस्से हैं। यह चतुर्मूर्ति इनके भीतर जो छिपी है, वह है जीवेषणा। ये चारों चेहरे उसी के हैं। अलग-अलग परिस्थितियों में अलग-अलग चेहरे दिखाई पड़ते हैं, लेकिन भाव एक है कि मैं बचूं। तो जब तक जो आदमी स्वयं को बचाना चाहता है, वह आदमी आत्मा को न पा सकेगा। इसे थोड़ा और हम समझ लें।
जो आदमी स्वयं को बचाना चाहता है, वह दूसरों को मिटाना चाहेगा। क्योंकि स्वयं को बचाने का दूसरे को मिटाए बिना कोई उपाय नहीं है। महावीर का अहिंसा पर इतना जोर इसीलिए है। वे कहते हैं, दूसरे को मिटाने की बात ही छोड़ दो, और ध्यान रखना, दूसरे को मिटाने की बात वही छोड़ सकता है, जो स्वयं को बचाने की बात छोड़ दे।
जब आप दूसरे को, किसी को भी नहीं मिटाना चाहते, तब एक बात पक्की हो गई,
कि आपको अपने को बचाने का कोई मोह नहीं है। अगर अपने को बचाने का कोई भाव नहीं बचा है, तो फिर कोई क्रोध नहीं है, फिर कोई मोह नहीं, कोई माया नहीं, कोई मान नहीं। इसका यह मतलब नहीं कि जो अपने को बचाने का भाव छोड़ देता है वह नहीं बचता है। मामला उलटा है। जो नहीं बचाता अपने को, वही बचता है और जो बचाता है, वह बार-बार मरता है।
जीसस ने कहा हैः "जो बचाएगा वह मिटेगा, और जो अपने को खोने को तैयार है, उसको कोई भी मिटा नहीं सकता है।" लेकिन ऐसा मत सोचना कि अगर ऐसा है कि खोने की तैयारी से हम सदा के लिए बच जाएंगे, इसलिए हम खोने को तैयार हैं, तो आप न बचेंगे। आपका मनोभाव बचने के लिए ही है। वही वासना, जन्मों का कारण है।

कोई आपको जन्म देता नहीं, आप ही अपने को जन्म देते हैं। आप ही अपने पिता हैं, आप ही अपने माता हैं, आप ही अपने को जन्म दिए चले जाते हैं। यह जन्म का जो उपद्रव है, इसके कारण आप ही हैं। इसलिए तो मौत से इतनी घबड़ाहट होती है, इतनी बेचैनी होती है। और मरते वक्त भी आदमी कहता है कि जन्म-मरण से छुटकारा हो जाए। लेकिन मतलब उसका इतना ही होता है कि मरण से छुटकारा हो जाए। जन्म तो वह भाषा की भूल से कह रहा है, फिर से सोचेगा तो नहीं कहेगा। सोचें, जन्म से छुटकारा चाहते हैं? जीवन से छुटकारा चाहते हैं? जिस दिन आप जन्म से छुटकारा चाहते हैं, उस दिन मरण से छुटकारा हो जाएगा। हम सब मरण से छुटकारा चाहते हैं इसलिए नये जन्म का सूत्रपात हो जाता है। हम छोर से बचना चाहते हैं, जड़ से नहीं। मरण है पत्ता आखिरी, जन्म है जड़। तो जड़ ही काटनी होगी।
संन्यास का अर्थ हैः जड़ को काटना। संसार का अर्थ हैः पत्तों को काटना, काटते दोनों हैं। संन्यासी बुद्धिमान है। वह वहां से काटता है जहां से काटना चाहिए। संसारी मूढ़ है। वह वहां काटता है, जहां काटने का कोई अर्थ नहीं है, बल्कि खतरा है। क्योंकि पत्ते समझते हैं कि कलम की जा रही है। तो एक पत्ता काटो, चार निकल आते हैं।
महावीर कहते हैं कि इन जड़ों को सींचते रहने से तो होगा बार-बार जन्म, बार-बार मृत्यु। और घूमोगे चक्र में, नीचे-ऊपर, सुख में, दुख में, हार में, जीत में, और यह चक्र है अनंत। और ऐसा मत सोचना कि दुख इसलिए है कि मुझे अभी अभाव है। सब मिल जाए तो दुख न रहेगा।
तो महावीर कहते हैं कि तुम्हें अगर सभी मिल जाए स्वर्ण पृथ्वी का, सभी मिल जाए धन-धान्य, हो जाए समस्त पृथ्वी तुम्हारी दास तो भी तुम्हें तृप्त करने में असमर्थ है।
तृप्ति का संबंध क्या तुम्हारे पास है, इससे नहीं है, क्या तुम हो, इससे है। और जो अतृप्त है उसके पास कुछ भी हो तो अतृप्त होगा। और जो तृप्त है उसके पास कुछ हो या कुछ भी न हो तो भी तृप्त होगा।
तृप्ति या अतृप्ति अंतर्दशाएं हैं। बाहर की वस्तुओं से उनका कोई भी संबंध नहीं है। इसलिए महावीर कहते हैं, सब तुम्हारे पास हो जाए तो भी तुम तृप्त न होओगे। क्योंकि न हमने सिकंदर को तृप्त देखा, न हमने नेपोलियन को तृप्त देखा, न रॉकफेलर तृप्त है, न मार्गन तृप्त है, न कारनेगी तृप्त है। सब उनके पास है, जो हो सकता है। शायद नेपोलियन के पास भी नहीं था जो रॉकफेलर के पास है। लेकिन तृप्ति? तृप्ति का कोई पता नहीं।
और महावीर जो कहते हैं, अनुभव से कहते हैं। उनके पास भी सब था। इसलिए
यह कोई सड़क पर खड़े भिखारी की बात नहीं है। सड़क पर खड़े भिखारी की बात में तो धोखा भी हो सकता है, सांत्वना भी हो सकती है। अक्सर होती है। सड़क का भिखारी कहता है, क्या मिलेगा यदि सारी पृथ्वी भी मिल जाए? उसका यह मतलब नहीं कि वह सारी पृथ्वी नहीं पाना चाहता। वह यह कह रहा है कि हम पाने योग्य ही नहीं मानते। इसलिए नहीं कि पाने योग्य नहीं मानता, इसलिए कि जानता है कि पाने योग्य मानो तो भी कोई सार नहीं है। छाती पीटनी पड़ेगी, रोना पड़ेगा। होने वाला नहीं है। अंगूर खट्टे हैं, क्योंकि दूर हैं।
भिखारी भी कहता है, अपने मन को समझाने के लिए कहता है। इसलिए अध्यात्म
के इतिहास में एक बड़ी विचित्र घटना घटती है। सम्राट भी कहते हैं, भिखारी भी कहते हैं। वचन एक ही हो सकता है, अर्थ एक ही नहीं होते। जब सम्राट कहते हैं, कि नहीं है कोई सार सारी पृथ्वी में, तो यह एक अनुभव का वचन है। और जब भिखारी कहता है तब अक्सर, हमेशा नहीं, अक्सर अनुभव का वचन नहीं, सांत्वना की चेष्टा है। समझाना है अपने को, बेकार है। कुछ होगा नहीं। तृप्ति होने वाली नहीं, पूरी पृथ्वी मिल जाए तो भी। यह अपने को संतुष्ट करने की चेष्टा है।
महावीर जो कह रहे हैं, यह संतुष्ट करने की चेष्टा नहीं है, यह असंतोष
के गहन अनुभव का परिणाम है। तो महावीर कहते हैं, सब भी तुम्हें मिल जाए, तो भी कुछ न होगा। क्योंकि सबके मिलने से भी तुम, तुमको नहीं मिलोगे। सब भी मिल जाए, पूरी पृथ्वी भी मिल जाए तो अपने से मिलन नहीं होगा।

और तृप्ति है अपने से मिलन का नाम। दूसरे से मिलने में सिवाय अतृप्ति
के कुछ भी पैदा नहीं होता। वह धन हो, कि व्यक्ति हो, कि कुछ भी हो, दूसरे से मिलन, अतृप्ति का ही जन्मदाता है। और अतृप्ति होगी, और मिलने की आकांक्षा होगी, और भ्रम पैदा होगा कि और मिल जाए तो शायद सब ठीक हो जाए।
अपने से ही मिलने पर तृप्ति होती है, क्योंकि फिर खोजने को कुछ भी नहीं रह जाता। लेकिन अपने से वह मिलता है, जो जीवेषणा छोड़ देता है। अपने से वह मिलता है जो काम, क्रोध, लोभ, मोह के पागलपन को छोड़ देता है। क्योंकि यह पागलपन दूसरे में ही उलझाए रखते हैं। यह अपने पास आने ही नहीं देते। क्रोध का मतलब है--दौड़ गए आग में दूसरे की तरफ। अक्रोध का अर्थ हैः लौट
आए आग से अपनी तरफ। मोह का अर्थ है-जुड़ गए दूसरे से पागल की तरह। अमोह का अर्थ है, लौट आए बुद्धिमान की तरह, अपनी तरफ। अहंकार का अर्थ हैः दूसरे की आंखों में दिखने की चेष्टा। पागलपन है, क्योंकि सब दूसरे भी इसी कोशिश में लगे हैं। मान अहंकार छोड़ देने का अर्थ है, अपनी ही आंख में अपने को देखने की चेष्टा, आत्म-दर्शन। अहंकार का अर्थ हैः दूसरे की आंखों में दिखने की चेष्टा। निर-अहंकार का अर्थ हैः अपना दर्शन। अपनी आंखों में अपने को देखने की चेष्टा। अपने को मैं देख लूं, अपने को मैं पा लूं, अपने साथ मैं हो जाऊं, अपने में मैं जी लूं, तो है परम तृप्ति। दूसरे में मैं दौड़ता रहूं, दौड़ता रहूं, दौड़ है जरूर, पहुंचना बिल्कुल नहीं है। यात्रा बहुत होती है, मतलब कुछ नहीं निकलता।
इसलिए महावीर कहते हैं कि इन चार को ठीक से पहचान लेना। और जब ये चार तुम्हें पकड़ें, तो एक बात का ध्यान रखना, स्मरण रखना कि समस्त पृथ्वी को पा लेने पर भी कुछ होता नहीं है।
"जान कर संयम का आचरण करना।"
संयम का क्या अर्थ है? संयम का अर्थ है, यह जो चार पगलपन हैं हमारे बाहर ले जानेवाले, इनसे बचना। संयम का अर्थ है संतुलन। क्रोध में संतुलन खो जाता है। आप वह करते हैं जो नहीं करना चाहते थे। वह करते हैं जो नहीं कर सकते थे, वह भी कर लेते हैं। लोभ में संतुलन टूट जाता है। मोह में ऐसी बातें निकल जाती हैं, संतुलन छूट जाता है।
मुल्ला नसरुद्दीन एक स्त्री के प्रेम में था, और उसने कहाः अगर तुमने मुझसे विवाह न किया, तो पक्का जान रखो, आत्महत्या कर लूंगा। उस स्त्री ने पूछाः सच? वह डर गई, "सच आत्महत्या कर लोगे? मुल्ला नसरुद्दीन ने कहाः दिस हैज बीन माई यूजुअल प्रोसीजर। यह मैं सदा ऐसा ही करता रहा हूं। जब भी किसी स्त्री के प्रेम में पड़ता हूं, तो सदा यही करता हूं, आत्महत्या!
जब आप भी प्रेम में होते हैं तो आप ऐसी बातें कहते हैं, जो आप न करते हैं, न कर सकते हैं। वह पागलपन है--एक हारमोनल डिसीज। आपके भीतर ऐसे रासायनिक तत्व दौड़ रहे हैं कि अब आप होश में नहीं हैं। जो आप कह रहे हैं, उसका कोई मतलब नहीं है ज्यादा।
मुल्ला नसरुद्दीन अपनी प्रेयसी से कहता है कि कल तो मैं आऊंगा। न पहाड़ मुझे रोक सकते हैं, न आग की वर्षा। भगवान भी बीच में आ जाए, तो मुझे रोक नहीं सकता। फिर जाते वक्त कहता है कि अगर पानी न गिरा तो पक्का आऊंगा। अपनी एक प्रेयसी से बिदा ले रहा है। बिदा लेते वक्त उससे कहता है, तेरे बिना मैं जी न सकूंगा। तुझ से ज्यादा सुंदर स्त्री इस पृथ्वी पर कोई भी नहीं है। शरीर ही जा रहा है, आत्मा यहीं छोड़े जा रहा हूं। फिर सीढ़ियां उतरते कहता है; लेकिन कुछ ज्यादा इसका ख्याल मत करना, ऐसा मैं बहुत स्त्रियों से पहले भी कह चुका हूं, आगे भी कहूंगा।
जब आप मोह में हैं--जिसको आप प्रेम कहते हैं, और प्रेम शब्द को खराब करते हैं--तब आप जो बोल रहे हैं, वह बेहोशी है। जब आप क्रोध में हैं, तब आप जो कह रहे हैं, वह भी बेहोशी है।
संयम का अर्थ हैः होश। ये बेहोशियां न पकड़ें, आदमी संतुलित हो जाए, संयमी हो जाए, अपने में खड़ा हो जाए। ऐसी बातें न करे, ऐसा व्यवहार न करे, ऐसा जीवन चेतना का, समय का उपयोग न करे, जिसके लिए वह खुद भी होश में आने पर कहेगा, पागलपन था।

इसलिए सभी बूढ़े जवानों पर नाराज दिखाई पड़ते हैं। इसका और कोई कारण नहीं है, अपनी जवानी का दुख। सभी बूढ़े जवानों को शिक्षा देते दिखाई पड़ते हैं। असल में अगर उनको मौका मिलता अपनी जवानी को शिक्षा देने का, जो किसी को मिलता नहीं, वह दूसरों पर निकाल रहे हैं। लेकिन वे भूल कर रहे हैं। उनके मां-बाप भी उनको ऐसी शिक्षा दिए थे, कोई कभी सुनता नहीं। जवानों को बड़ा गुस्सा आता है कि क्या बकवास लगा रखी है, लेकिन बूढ़े बेचारे अनुभव से कह रहे हैं। उन्होंने ये दुख उठा लिए हैं और ये पागलपन कर लिए हैं।
मुल्ला नसरुद्दीन बैठा है एक बगीचे की बेंच पर अपनी पत्नी के साथ। सांझ हो गई है। वृक्षों की छाया में कोई नया युगल, एक नया युवक और नई युवती प्रेम की बातें कर रहे हैं। पत्नी बेचैन हो गई है। आखिर पत्नी ने मुल्ला से कहा कि ऐसा मालूम पड़ता है कि यह लड़का और यह लड़की शादी करने की तैयारी कर रहे हैं। तुम जाकर कुछ रोकने की कोशिश करो। जरा खांसो खंखारो।
मुल्ला ने कहा, "मुझको किसने रोका था? सब अपने अनुभव से सीखते हैं, बीच में पड़ने की कोई भी जरूरत नहीं है।"
वह जब काम पकड़े, क्रोध पकड़े, मोह पकड़े, मान पकड़े तब ख्याल करना, कितने अनुभव से सीखिएगा! काफी अनुभव नहीं हो सका है, नहीं हो चुका है। कितना अनुभव हो चुका है? पुनरुक्ति कर रहे हैं। हां, एक अनुभव जरूरी है, लेकिन पुनरुक्ति मूढ़ता है। एक भूल आवश्यक है, लेकिन उसी को दुबारा दोहराना मूढ़ता है।
मूढ़ वे नहीं हैं, जो भूलें करते हैं, और बुद्धिमान वे नहीं हैं, जो भूलें नहीं करते। बुद्धिमान वे हैं जो एक ही भूल दुबारा नहीं करते। मूढ़ वे हैं जो एक ही भूल को अभ्यास से बार-बार करते हैं।
तो ये चार जब पकड़ें तो थोड़ी बुद्धिमानी बरतना और जरा होश रखना कि बहुत बार यह हो चुका है। क्या है परिणाम? क्या है निष्पत्ति? और अगर कोई परिणाम, कोई निष्पत्ति न दिखाई पड़े तो संयम रखना। ठहराना अपने को, खड़े हो जाना, मत दौड़ पड़ना पागल की तरह। जो इन विक्षिप्तताओं से अपने को रोक लेता है, वह धीरे-धीरे उसको जान लेता है, जो विक्षिप्तताओं के पार है। उसका नाम ही आत्मा है।

आज इतना ही।
पांच मिनट रुकें, कीर्तन करें और फिर जाएं।

महावीर-वाणी, भाग 2
छठवां प्रवचन

अकेले ही है भोगना (अशरण-सूत्र)

जमिणं जगई पूढ़ो जगा,
कम्मेहिं लुप्पन्ति पाणिणो।
सयमेव कडेहि गाहई,
नो तस्स मुच्चेज्ज पुट्ठयं।।
न तस्य दुक्खं विभयन्ति नाइओ,
न भित्तवग्गा न सुया न बंधवा।
एक्को सयं पच्चणुहोई दुक्खं,
कत्तारमेव अणुजाइ कम्मं।।

संसार में जितने भी प्राणी हैं, सब अपने कृतकर्मों के कारण ही दुखी होते हैं। अच्छा या बुरा जैसा भी कर्म हो, उसका फल भोगे बिना छुटकारा नहीं हो सकता।
पापी जीव के दुख को न जाति वाले बंटा सकते हैं, न मित्र वर्ग, न पुत्र,
और न भाई-बंधु। जब दुख आ पड़ता है, तब वह अकेला ही उसे भोगता है। क्योंकि कर्म अपने कर्त्ता के ही पीछे लगते हैं, अन्य किसी के नहीं।

पहले कुछ प्रश्न।
एक मित्र ने पूछा हैः कल आपने समझाया कि मनुष्य की जीवेषणा ही उसके पुनर्जन्म को, संसार के दुख-चक्र को चलाए रखने का कारण है। लेकिन आप हमेशा कहते हैं कि "जीवन ही है परमात्मा" और आपकी पूरी देशना जीवन स्वीकार पर केंद्रित है। जीवेषणा का दुख मूल कारण है, ऐसा कहना जीवन-निषेधक लगता है। जीवेषणा है कल, भविष्य में, और जीवन है अभी और यहीं। जो जीवेषणा से घिरा है वह जीवन से वंचित रह जाता है। और जिसे जीवन को जानना हो उसे जीवेषणा छोड़ देनी पड़ती है। इसे थोड़ा ठीक से समझ लें।
वासना कभी भी वर्तमान में नहीं होती, हमेशा भविष्य में होती है। और अस्तित्व सदा वर्तमान में होता है। आपका होना तो सदा होता है, अभी और यहीं। लेकिन आपकी वासना सदा होती है कहीं और, कहीं दूर। आप हैं अभी और यहीं, और आपका मन है कहीं और। आपकी आकांक्षा, अभीप्सा, वासना सदा भविष्य में है। भविष्य का कोई अस्तित्व नहीं है, सिवाय आपकी वासना को छोड़ कर। भविष्य है ही आपकी वासना का विस्तार। अतीत है, आपकी स्मृतियों का संग्रह, भविष्य है आपकी वासनाओं का विस्तार। समय तो सदा वर्तमान है।
हम आमतौर से समय का विभाजन करते हैं--वर्तमान, अतीत, भविष्य--तीन टुकड़ों में तोड़ देते हैं समय को, वह भ्रांत है। अतीत और भविष्य समय के खंड नहीं हैं। अतीत है हमारी स्मृति और भविष्य है हमारी वासना। समय तो सदा वर्तमान है। समय तो सदा अभी है। समय के तीन टुकड़े नहीं हैं, समय तो एक अखंड धारा है, जो अभी है।
साधारणतः हम कहते हैं, समय बीत जाता है। ज्यादा अच्छा हो कहना कि हम बीत जाते हैं। समय को आपने कभी बीतते देखा है? कभी अतीत से आपका मिलना हुआ है? कभी भविष्य से आपकी मुलाकात हुई है? जब भी मिलन होता है, वर्तमान से ही होता है। लेकिन कभी आप बच्चे थे, अब आप जवान हैं--आप बीत गए। अभी आप जवान हैं, कल आप बूढ़े हो जाएंगे, और भी बीत जाएंगे। कभी पैदा हुए थे, कभी मर जाएंगे। कभी भरे थे, कभी चुक जाएंगे।
आदमी बीतता है। समय नहीं बीतता। हम खर्च होते हैं, समय खर्च नहीं होता। घड़ी चल कर यह नहीं बताती कि समय चल रहा है। घड़ी चल कर यह बताती है कि आप चूक रहे हैं, आप समाप्त हो रहे हैं। घड़ी आपके संबंध में कुछ बताती है, समय के संबंध में कुछ भी नहीं।
अगर इसे ठीक से समझ लें तो ख्याल में आ जाएगा कि जीवेषणा और जीवन में क्या फर्क है। जीवेषणा का मतलब है, कल जीऊंगा। मुझे कल चाहिए जीने के लिए।
आज नहीं जी सकता हूं। आज जो भी है, व्यर्थ है। जो भी सार्थक है, वह कल होगा।

जो भी सुंदर है, जो भी सुखद है, वह कल में छिपा है। जो भी दुखद है, अप्रीतिकर है, वह आज में प्रकट हुआ है। लेकिन कल तो कभी आता नहीं, जब भी आता है, आज ही आता है। कल भी आज ही आएगा। और आज सदा व्यर्थ मालूम पड़ता है, और कल सदा सपनों से भरा मालूम पड़ता है।
तो हम ऐसे जीवन को स्थगित करते हैं। हम कहते हैं, कल जी लेंगे। आज तो जीने में असमर्थ पाते हैं अपने को, आज तो जीवन से जुड़ने की कला नहीं जानते, आज तो जीवन में डूबने और सरोबोर होने का रास्ता नहीं जानते, आज तो जीवन ऐसे ही बीत जाता है; कल जी लेंगे, इस आशा में, इस भरोसे में आज को हम बिता देते हैं। लेकिन कल कभी आता नहीं, कल फिर आज आ जाता है। उस आज को भी हम वही करेंगे जो हमने आज किया, आज के साथ। कल फिर हम वही करेंगे। फिर हम आगे, कल पर टाल देंगे।
ऐसे आदमी टालता चला जाता है। मौत जब आती है, तो हमें जो दुख और पीड़ा होती है, वह मृत्यु की नहीं है। जो असली पीड़ा है, वह कल के समाप्त हो जाने की है। मौत जब द्वार पर खड़ी हो जाती है तो आज ही बचता है, कल नहीं बचता। मौत आपको नहीं मारती, भविष्य को मार देती है। मौत आपका अन्त नहीं है, भविष्य की समाप्ति है। अब आप अपनी वासना को आगे नहीं फैला सकते, अब कोई कल नहीं है। वह कल कभी भी नहीं था, लेकिन जो आपको जिंदगी न बता सकी वह आपको मौत बताती है कि अब कल नहीं है। तब दीवार के किनारे आप अटके खड़े हो गए, अब यही क्षण बचा। अब क्या करें? जीवन भर की आदत है। आज तो जी नहीं सकते, कल ही जी सकते हैं। अब क्या करें?
इसलिए मौत की दीवाल से टकराते लोग स्वर्ग की, मोक्ष की, पुनर्जन्म की भाषा में सोचने लगते हैं। उसका मतलब? अब वह कल को फिर फैला रहे हैं। अब वह यह कह रहे हैं, मरने के बाद भी शरीर ही मरेगा, आत्मा तो रहेगी। हम फिर जिएंगे, भविष्य में जिएंगे। उसका यह मतलब नहीं है कि आत्मा मर जाती है। लेकिन जितने लोग यह सोचते हैं कि आत्मा रहेगी, उनमें से शायद ही किसी को पता है, आत्मा के रहने का। उनके लिए यह फिर एक ट्रिक, एक तरकीब है मन की, वे फिर भविष्य को निर्मित कर रहे हैं।
एक बात तय है कि हम आज जीना नहीं जानते। वही अधर्म है। पर हम कैसे आज जीना जानेंगे? एक ही उपाय है कि हम कल की आशा में न जीएं, और आज चेष्टा करें जीने की, अभी। यह जो समय हमारे साथ अभी जुड़ा है, इसमें ही हम प्रवेश कर जाएं, इस क्षण में हम उतर जाएं।
जो आदमी बुद्धिमान है, वह ऐसा मान कर चलता है कि दूसरे क्षण मौत है। है भी। एक क्षण मेरे हाथ में है, दूसरे क्षण का कोई भरोसा नहीं। इस क्षण का मैं क्या उपयोग करूं, इस क्षण को मैं कैसे उसकी परिपूर्णता में निचोड़ लूं, कैसे इस क्षण को मैं पूरा जी लूं, कैसे यह क्षण व्यर्थ न चला जाए? ऐसी चिंता है बुद्धिमान की।
बुद्धिहीन की चिंता यह है कि इस क्षण को अगले क्षण के विचार में खो दूं, अगले क्षण को और अगले क्षण के विचार में खो दूंगा। ऐसे पूरे जीवन भ्रम होगा कि जीया, और जीऊंगा बिल्कुल भी नहीं। हम सिर्फ पोस्टपोन करते हैं, स्थगित करते हैं--कल कल कल। एक दिन पाते हैं, मौत आ गई। अब आगे कोई कल नहीं। तब छाती पर धक्का लगता है कि पूरा अवसर व्यर्थ खो गया।
जीवेषणा का अर्थ हैः जीवन चूकने की तरकीब। इसलिए जीवन तो प्रभु है, जीवेषणा संसार है। जीवन तो धर्म है, जीवेषणा पाप है। क्या यह नहीं हो सकता कि हम इस क्षण से ही जुड़ जाएं, डूब जाएं, इसमें ही लीन और एक हो जाएं? अगला क्षण भी आएगा। लेकिन जो व्यक्ति इस क्षण में डुबकी लगाने में समर्थ है, वह अगले क्षण में भी डुबकी लगा लेगा।
जीसस ने अपने शिष्यों को कहा है, देखो! खेतों में खिले हुए लिली के फूलों को, वे कल की चिंता नहीं करते। वे अभी और यहीं खिल गए हैं। ऐसे ही तुम भी हो जाओ। डू नाट थिंक आफ टुमारो। कल की मत सोचो। लिली का फूल भी अगर कल की सोच सके, अगर किसी तरकीब से हम उसमें भी जीवेषणा पैदा कर दें, तो अभी कुम्हला जाएगा। आदमी का कुम्हलाना कल की चिन्ता का परिणाम है। बच्चे फूल की तरह खिले मालूम पड़ते हैं। क्या है कारण, क्या है राज! बच्चों के लिए अभी जीवेषणा नहीं है, जीवन ही है। अभी वे खेल रहे हैं, तो जैसे यहीं सब समाप्त

हो गया, इसी खेल में सब पूरा है। इस खेल में वे अपनी समग्र आत्मा से उतर गए हैं, कल नहीं है। जिस दिन बच्चा कल की सोचने लगता है, समझना कि वह बूढ़ा होना शुरू हो गया।
जब तक बच्चा आज में जीता है, अभी में जीता है, तब तक समझना, अभी वह बचपन
का सौंदर्य है। जिस दिन वह कल की सोचने लगे, समझो कि बुढ़ापे ने उसे पकड़ लिया। अब दुबारा बचपन बहुत मुश्किल हो जाएगा।
जीसस ने कहा है, वही मेरे स्वर्ग के राज्य में प्रवेश करेंगे, जो बच्चों की भांति हैं। बच्चों की भांति होने का एक ही अर्थ है कि जो अभी और यहीं जीने में समर्थ हैं, वे स्वर्ग में प्रवेश कर जाएंगे। स्वर्ग कहीं और नहीं है, इसी क्षण में है। नरक कहीं और नहीं है, स्थगित जीवन में है, कल में है। अस्तित्व पास खड़ा है।
स्वामी राम एक कहानी कहा करते थे, वे कहते कि एक प्रेमी दूर चला गया।
जो समय दिया था, नहीं लौट सका। पत्र उसके आते रहे, आऊंगा, जल्दी आता हूं, जल्दी आता हूं। वह टालता रहा आना। फिर प्रेयसी थक गई प्रतीक्षा करते-करते और एक दिन उसके द्वार पर पहुंच गई। सांझ हो गई थी, अंधेरा उतर रहा था, छोटा सा दीया जला कर वह अपने कमरे में बैठ कर कुछ लिख रहा था। प्रेयसी ने बाधा न डालनी उचित समझी। वह सामने बैठ गई। वह पत्र लिखता रहा--वह पत्र ही लिख रहा था। इसी प्रेयसी को लिख रहा था!
प्रेमियों के पत्र, उनका अंत नहीं आता। वह लंबा होता चला गया। रात आगे बढ़ती चली गई। उसने आंख भी न उठाई, आंख से आंसू बह रहे हैं। और वह पत्र लिख रहा है, और फिर समझा रहा है कि आऊंगा, जल्दी आऊंगा। अब ज्यादा देर नहीं है। और जिसके लिए पत्र लिख रहा है, वह सामने बैठी है। पर आंसुओं से धूमिल आंखें, पत्र में लीन उसका मन, भविष्य में डूबी हुई उसकी वासना, जो मौजूद है उसे नहीं देख पा रहा है।
फिर आधी रात गए उसका पत्र पूरा हुआ। आंखें उसने ऊपर उठाईर्ं, भरोसा न आया। जिस दिन आप भी आंखें उठाएंगे भरोसा न आएगा कि जीवन सामने ही बैठा है। वह घबरा गया। घबड़ा कर उसने पूछा। अभी यही सोच रहा था कि कब देखूंगा अपनी प्रेयसी को, कब होंगे दर्शन? और अब दर्शन सामने हो गए हैं तो वह घबरा गया।
समझा कि कोई भूत है, प्रेत है। घबड़ा कर जोर से पूछा, कौन है तू?
उसकी प्रेयसी ने कहाः क्या मुझे भूल ही गए मैं बड़ी देर से आकर बैठी हूं। तुम लिखने में लीन थे, सोचा, बाधा न डालूं।
उसने सिर ठोंक लिया। उसने कहाः मैं तुझे ही पत्र लिखता था।
हम सब भी, जिसे पत्र लिख रहे हैं जिस जीवन को, वह अभी और यहीं मौजूद है। जिसकी हम कामना कर रहे हैं, वह यहीं बिल्कुल हाथ के पास निकट ही खड़ा है, लेकिन आंखें हमारी दूर भटक गई हैं, कल्पना हमारी दूर चली गई है, इसलिए पास नहीं देख पाती।
हम पास के लिए सभी अंधे हो गए हैं। दूर का हमें दिखाई पड़ता है, पास का हमें बिल्कुल दिखाई नहीं पड़ता। पास देखने की क्षमता ही हमारी खो गई है। अभ्यास ही हमारा दूर के देखने का है। जितना दूर हो, उतना साफ दिखाई पड़ता है। जितना पास हो उतना धुंधला हो जाता है।
जीवन है अभी और जीवेषणा है कल। जो अपने प्राणों को कल पर लगाए हुए है,
उस विक्षिप्त चेतना का नाम जीवेषणा है। जो जीवेषणा को छोड़ देता है और अभी जीता है, यहीं, कल जैसे मिट ही गया। समय समाप्त हुआ। यह क्षण ही सारा जीवन हो गया। वह व्यक्ति उस द्वार को खोल लेता है जो जीवन का द्वार है। जीवेषणा का विरोध जीवन का विरोध नहीं है, जीवेषणा का विरोध जीवन का स्वीकार है। यह प्रश्न महत्वपूर्ण है। क्योंकि पश्चिम के विचारकों को भी ऐसा लगा कि महावीर, बुद्ध, ये सब जीवन विरोधी हैं। इन सबकी चिंतना लाइफ निगेटिव है। अलबर्ट श्वाइत्जर ने बहुत गहरी आलोचना की है, भारतीय चिंतन की, चिंतना की; समस्त भारतीय विचारधारा की। और कहा है, कि कितनी ही सुन्दर बातें उन्होंने कही हों, लेकिन जीवन निषेधक, लाइफ निगेटिव हैं। जीवन के दुश्मन हैं ये लोग।
और श्वाइत्जर विचारशील मनुष्यों में से एक है। उसके कहने में अर्थ है। वह भी यही समझा कि सब छोड़ दो। जीवन की कामना ही छोड़ दो, तब तो जीवन की

दुश्मनी हो गई, शत्रुता हो गई। तो धर्म फिर जीवन का साथी न रहा। फिर तो ऐसा लगता है कि अधर्म ही जीवन का साथी है और धर्म मृत्यु का।
इसलिए श्वाइत्जर ने कहा है, बुद्ध और महावीर और इस तरह के सारे चिंतक मृत्युवादी हैं। और कहीं न कहीं शत्रु हैं वे जीवन के, और जीवन को उजाड़ डालना चाहते हैं, नष्ट कर देना चाहते हैं।
फिर फ्रायड ने एक बहुत महत्वपूर्ण खोज की है इस सदी की। इस सदी में मनुष्य के मन के संबंध में जो महत्वपूर्ण जानकारियां मिली हैं, उनमें बड़ी से बड़ी जानकारी फ्रायड की यह खोज है। फ्रायड ने पूरे जीवन, जीवन की कामना पर श्रम किया है। लिबिडो वह नाम देता था, वासना को, कामना को--यौन, सेक्स, लेकिन इनसे भी बेहतर शब्द उसने खोज रखा था, लिबिडो। उसे हम जीवेषणा कह सकते हैं।
सब आदमी जीवेषणा से चल रहे हैं, और जिस दिन जीवेषणा बुझ जाएगी, उसी दिन आदमी बुझ जाएगा। लेकिन जीवन के अंत-अंत में फ्रायड को लगा कि यह आधी ही बात है। आदमी में जीवन की इच्छा तो है ही, यह बड़ी प्रबल कामना है। लेकिन उसे लगा कि यह अधूरी बात है, इसका दूसरा छोर भी है, क्योंकि इस जगत में कोई भी सत्य बिना द्वंद्व के नहीं होता, डायलेक्टिकल होता है। जब जन्म होता है तो मृत्यु भी होती है। तो अगर जीवन की वासना गहरे में है तो कहीं न कहीं मृत्यु की वासना भी होनी चाहिए, अन्यथा आदमी मरेगा कैसे? अगर जीवन की वासना से जन्म होता है तो फिर मृत्यु की भी कोई गहरी छिपी कामना होनी चाहिए।
तो जीवन की वासना को फ्रायड ने कहा, लिबिडो, और मृत्यु की वासना को उसने एक नया नाम दिया, थानाटोस--मृत्यु की आकांक्षा। क्योंकि एक आदमी आत्महत्या भी कर लेता है। एक आदमी बूढ़ा होकर सोचने लगता है, जीवन व्यर्थ है, नहीं जीना है। सिकोड़ लेता है अपने को। एक घड़ी आ जाती है जब लगता है, अब नहीं जीना है। ऐसा नहीं कि किसी विषाद से आ जाती हो, किसी फ्रस्ट्रेशन से। नहीं, सारे जीवन को देखकर ही ऊब हो जाती है और आदमी सोच लेता है, बस ठीक है, देख लिया, जान लिया। पुनरुक्ति है, वही-वही है, बार-बार वही-वही है। उठो सुबह, सांझ सो जाओ। खाओ-पियो, लेकिन अर्थ क्या है?
एक दिन आदमी को लगता है कि वह सब बचपना था, जिसमें मैंने अर्थ समझा, अभिप्राय देखा, कुछ भी न था वहां, राख सब हो जाती है। नहीं, कि असफल हो गया आदमी, हार गया, इसलिए मरने की सोच रहा है, कुछ ऐसे लोग भी हैं, जो इसलिए मरने की सोचते हैं कि उनके जीवन की कामना बहुत प्रबल है।
आप एक स्त्री को चाहते थे, वह नहीं मिल सकी, आप कहते हैं कि हम नहीं जीएंगे। इसका मतलब यह नहीं कि आप जीवन से उदास हो गए। आपका जीवन सशर्त जीवन था, एक कन्डीशन थी कि यह स्त्री मिलेगी तो ही जीएंगे। यह मकान बनेगा तो ही जीएंगे, यह धन मिलेगा तो ही जीएंगे, नहीं तो नहीं जीएंगे।
आप जीवन के प्रति बड़े मोह-ग्रस्त थे। आपने शर्त बना रखी थी। शर्त पूरी नहीं हुई, इसलिए मर रहे हैं। आप जीवन के विरोधी नहीं हैं, आप जीवन के बड़े मोही थे। और मोह ऐसा भारी था कि ऐसा होगा तो ही जीएंगे। यह लगाव इतना गहरा हो गया था, यह विक्षिप्तता इतनी तीव्र थी, इसलिए आप मरने की तैयारी कर रहे हैं।
यह नहीं है थानाटोस। यह मृत्यु-एषणा नहीं है। मृत्यु-एषणा तो तब है जब
कि जीवन में न कोई असफलता है, न जीवन में कोई विषाद है, लेकिन सब चीजें पूरी हो गईर्ं और सूर्यास्त हो रहा है। शरीर भी डूब रहा है, और मन भी अब जीने की बात से ऊब गया और मन भी डूब रहा है। ऐसा आदमी आत्महत्या नहीं करता, ध्यान रखना। आत्महत्या तो वही करता है जो अभी जीवन की आकांक्षा से भरा था। यह उल्टा मालूम पड़ेगा। लेकिन जितने आत्महत्यारे हैं, बड़े जीवन-एषणा से भरे हुए लोग होते हैं।
ऐसा आदमी आत्महत्या नहीं करता, आत्महत्या भी व्यर्थ मालूम पड़ती है। जिसे जीवन ही व्यर्थ मालूम पड़ रहा है, उसे आत्महत्या सार्थक नहीं मालूम पड़ती। वह कहता है, न जीवन में कुछ रखा है, न जीवन के मिटाने में कुछ रखा है।
ऐसा आदमी चुपचाप डूबता है, जैसे सूरज डूबता है। झटके से छलांग नहीं लगाता, डूबता चला जाता है। लेकिन डूबने का कोई विरोध नहीं करता।

अगर ऐसा आदमी पानी में डूब रहा हो तो हाथ-पैर भी नहीं चलाएगा। न बचने में कोई अर्थ है, न ही वह अपने हाथ से डुबकी लगा कर मरना चाहेगा, गला घोटेंगा। न घोंटने में कोई अर्थ है। पानी के साथ हो जाएगा कि डुबाए तो डुबाए, न डुबाए तो न डुबाए। जो हो जाए। सब बेकार है, इसलिए कुछ करने का भाव नहीं रह जाता।
इसको फ्रायड ने थानाटोस कहा है। बूढ़ी उम्र के, ज्यादा उम्र के लोगों
को अकसर यह आकांक्षा पकड़ लेती है। यह आकांक्षा बूढ़ी उम्र के लोगों को भी पकड़ती है, और फ्रायड का कहना है, बूढ़ी सभ्यताओं को भी पकड़ती है। जब कोई सभ्यता बूढ़ी हो जाती है, जैसे, भारत। बूढ़ी से बूढ़ी सभ्यता है इस जमीन पर। हम इसमें गौरव भी मानते हैं।
सीरिया अब कहां है? मिस्र की पुरानी सभ्यता अब कहां है? यूनान कहां रहा? सब खो गए। बेबीलोन कहां है अब? खंडहरों में, सब खो गए। पुरानी सभ्यताओं में एक ही सभ्यता बाकी है--भारत। बाकी सब सभ्यताएं जवान हैं। कुछ तो बिल्कुल अभी दुधमुंही, दूध पीती हुई बच्चियां हैं-जैसे अमेरिका। अभी उम्र ही तीन सौ साल की है। तीन सौ साल की कुल सभ्यता है। तीन सौ साल हमारे लिए कोई हिसाब ही नहीं होता। दस हजार साल से तो हम अपना स्मरण और अपना इतिहास भी सम्भालते रहे हैं। लेकिन तिलक ने कहा है कि कम से कम भारत की सभ्यता नब्बे हजार वर्ष पुरानी है। और बड़े प्रामाणिक आधारों पर कहा है। सम्भावना है कि इतनी पुरानी है।
तो फ्रायड कहता है, जैसे आदमी बूढ़ा होता है, ऐसे सभ्यताएं भी बच्ची होती हैं, जवान होती हैं, बूढ़ी होती हैं। जब सभ्यताएं बचपन में होती हैं तब खेल-कूद में उनकी उत्सुकता होती है, जैसे अमेरिका है। अमेरिका की सारी उत्सुकता मनोरंजन है, खेल-कूद है, नाच-गान है। हमें बहुत हैरानी होती है, उनका जाज, उनके बीटल, उनके हिप्पी, हमें देख कर बड़ी हैरानी होती है, लेकिन हमको समझ में नहीं आता। छोटे-छोटे बच्चे जैसे होते हैं, ऐसे छोटी सभ्यताएं होती हैं।
आज हिप्पी लड़के और लड़कियों को देखें! उनके रंगीन कपड़े, उनके घूंघर, उनके गले में लटकी हुई मालाएं, यह सब छोटे बच्चों का खेल है। सभ्यता अभी ताजी है। बूढ़ी सभ्यताएं बहुत हिकारत से देखती हैं। जैसे बूढ़े बच्चों को देखते हैं--नासमझ।
फिर जवान सभ्यताएं होती हैं। जवान सभ्यताएं जब होती हैं, तब वे युद्धखोर हो जाती हैं, क्योंकि जवान लड़ना चाहता है, जीतना चाहता है। जैसे अभी चीन जवान हो रहा है, वह लड़ेगा, जीतेगा। अभी भाव विजय-यात्रा का है। फिर बूढ़ी सभ्यताएं होती हैं।
तो फ्रायड ने कहा है, जैसे व्यक्ति के जीवन में बचपन, जवानी, बुढ़ापा होता है, ऐसे सभ्यताओं के जीवन में भी होता है। अगर हम श्वाइत्जर और फ्रायड दोनों के ख्यालों को ध्यान में ले लें तो ऐसा लगेगा कि महावीर और बुद्ध की बातें एक बूढ़ी सभ्यता की बातें है जो अब मरने के लिए उत्सुक हो गई हैं। जो कहती हैं, कुछ सार नहीं है जीवन में, कुछ अर्थ नहीं जीवन में। जीवन असार है। छोड़ो आशा, छोड़ो सपने, मरने के लिए तैयार हो जाओ।
और निर्वाण शब्द ने और भी सहारा दे दिया। बुद्ध का निर्वाण शब्द मृत्यु-सूचक है। निर्वाण का अर्थ होता है, बुझ जाना, मिट जाना, समाप्त हो जाना। निर्वाण का अर्थ होता है, दीये का बुझना। जब दीया बुझता है, तब हम कहते हैं, दीया निर्वाण को उपलब्ध हो गया। ऐसे ही जब अदमी के भीतर जीवेषणा की ललक, जीवेषणा की आकांक्षा, जीवेषणा की ज्योति बुझ जाती है, खो जाती है; उसको बुद्ध ने कहा है निर्वाण।
तो स्वभावतः श्वाइत्जर और फ्रायड को लगे कि यह कौम बूढ़ी हो गई है। और केवल बूढ़ी नहीं हो गई है, इतनी बूढ़ी हो गई है कि जीने की कोई आकांक्षा नहीं रह गई। फिर महावीर की, संथारा की धारणा ने और भी ख्याल दे दिया। अकेले महावीर ही ऐसे व्यक्ति हैं पूरी पृथ्वी पर, जिन्होंने संन्यासी को मरने की सुविधा दी है और जिन्होंने कहा है कि अगर कोई संन्यासी मरना चाहे, तो हकदार है मरने का। इतनी हिम्मत की बात किसी और ने नहीं कही।

महावीर कहते हैं कि अगर कोई मरना चाहे, तो यह उसका हक है, अधिकार है।
हम न मानना चाहेंगे, हम कहेंगे, पुलिस पकड़ेगी, अदालत में मुकदमा चलेगा।
अगर पकड़ लिए गए, अगर असफल हो गए, और हम असफल करने का सारा उपाय करेंगे। इसका तो मतलब हुआ, महावीर ने स्युसाइड की, आत्महत्या की आज्ञा दी, कि कोई संन्यासी मरना चाहे तो मर सकता है। किसी को हक नहीं है उसे जबरदस्ती रोकने का।
इससे और भी ख्याल साफ हो गया कि यह धारणा मृत्युवादी है, डेथ ओरिएंटेड है। जीवन से इसका संबंध कम और मृत्यु से संबंध ज्यादा है। तो यह लिबिडो के खिलाफ है। इसलिए ब्रह्मचर्य के पक्ष में है, काम के खिलाफ है। सिकोड़ने के पक्ष में है, फैलने के खिलाफ है। प्रेम के खिलाफ है, विरक्ति के पक्ष में है और अन्ततः मृत्यु के पक्ष में है, और जीवन के खिलाफ है। और महावीर से तो सहारा पूरा मिल गया, क्योंकि महावीर कहते हैं, आदमी को हक है मरने का। लेकिन भूल हो गई है। महावीर और बुद्ध जैसे व्यक्तियों को समझना सिर्फ ऊपर से, आसान नहीं है, भीतर उतरना बहुत जरूरी है। महावीर ने आत्महत्या की आज्ञा नहीं दी है, क्योंकि महावीर की शर्तें हैं। महावीर कहते हैं, वह आदमी मरने का हकदार है जिसको जीवन की कोई भी आकांक्षा शेष नहीं रह गई, कोई भी।
इसलिए महावीर ने नहीं कहा कि जहर लेकर मर जाना। क्योंकि धोखा हो सकता है। एक क्षण में कभी ऐसा लग सकता है कि सब आकांक्षा खत्म हो गई और आदमी मर सकता है। इसलिए महावीर ने कहा है कि जहर लेकर मत मर जाना। क्योंकि क्षण में धोखा हो सकता है। महावीर ने कहा, उपवास कर लेना। उपवास करके कोई मरेगा तो कम से कम नब्बे दिन लग जाते हैं। नब्बे दिन सोच विचार के लिए लंबा अवसर है।
दुनिया में कोई आदमी नब्बे दिन तक आत्महत्या के विचार पर थिर नहीं रह सकता, और अगर रह जाए तो अपूर्व ध्यान को उपलब्ध हो गया। नब्बे दिन की बात अलग, वैज्ञानिक कहते हैं कि एक सेकेंड भी आत्महत्या में चूके कि चूक गए। उसी वक्त कर लो तो कर लो। क्योंकि वह भावावेश में होती हैं, तीव्र भावावेश में। कोई दुख लगा और एक आदमी छलांग लगा कर छत से कूद गया। फिर अब बीच में समझ में भी पड़े तो कोई उपाय नहीं है। अब कूद ही गए, अब मरना ही पड़ेगा। जितने लोग आत्महत्या करके मरते हैं, अगर हम उनको जिला सकें तो वे सभी कहेंगे कि हमसे गलती हो गई। क्षण के आवेश अकेले ही है भोगना में आदमी कुछ भी कर लेता है। इसलिए महावीर ने कहा, आवेश नहीं चलेगा, नब्बे दिन का वक्त चाहिए। भोजन त्याग कर दो, पानी का त्याग कर दो।
जिस आदमी को जीवन का सब रंग चला गया है, उसको प्यास की पीड़ा भी अखरेगी नहीं। अगर अखरती है, तो अभी जीवन को जीने का रस बाकी है। जिस आदमी को जीवन का ही अर्थ चला गया, वह अब यह नहीं कहेगा कि मुझे भूख लगी है और पेट में बड़ी तकलीफ होती है, क्योंकि पेट की तकलीफ जीवन का अंग थी। वे सारी चीजें कि तकलीफ हो रही है, पीड़ा हो रही है, वह जीवेषणा को ही हो रही थी। अगर जीवेषणा नहीं रही तो ठीक है; भूख भी ठीक है, भोजन भी ठीक है, प्यास भी ठीक है, पानी भी ठीक है। न मिला तो भी ठीक है। मिला तो भी ठीक है। ऐसी विरक्ति आ जाएगी।
तो महावीर ने कहा है, नब्बे दिन तक जो शांतिपूर्वक मृत्यु की प्रतीक्षा कर सके, अशांत न हो जाए, इसमें भी जल्दबाजी न करे, उसे आज्ञा है कि वह मर सकता है।
यह आत्महत्या नहीं है। यह जीवन से मुक्त होना है, जीवन की मृत्यु नहीं है। और जीवन से मुक्त होना कहना भी ठीक नहीं है, यह जीवेषणा से मुक्त होना है। लेकिन समझना कठिन है। और उन्होंने जो जो बातें कही हैं, जिनमें हमें लगता है कि निषेधक हैं, वे कोई भी निषेधक नहीं हैं। महावीर तो कहते ही यह हैं कि जब कोई व्यक्ति अपने ही मन से मृत्यु को अंगीकार करता है, तभी परिपूर्ण जीवन को समझ पाता है।
इसे थोड़ा हम समझ लें। है भी यही बात। जब हमें सफेद लकीर खींचनी होती
है तो हम काले ब्लैक-बोर्ड पर खींचते हैं, सफेद दीवाल पर नहीं। सफेद दीवाल पर खींची गई सफेद लकीर दिखाई भी नहीं पड़ेगी। जितना होगा काला तख्ता, उतनी

उभर कर दिखाई पड़ेगी। जब बिजली चमकती है पूर्णिमा की रात में, तो पता भी नहीं चलती। और जब बिजली चमकती है अमावस को, तभी पता चलती है।
महावीर की समझ यह है कि जब कोई व्यक्ति मृत्यु को अपने हाथ से वरण कर लेता है, मृत्यु को स्वीकार कर लेता है, तो मृत्यु का जो दंश है, दुख है, पीड़ा है वह तो खो गई। मृत्यु एक काली रात्रि की तरह चारों तरफ घिर जाती है। और जब कोई व्यक्ति इसका कोई निषेध नहीं करता, कोई इनकार नहीं करता; तो मृत्यु पृष्ठभूमि बन जाती है, बैकग्राउंड बन जाती है। और पहली दफे जीवन की जो आभा है, जीवन की जो चमक है, बिजली है, जीवन की जो ज्योति है, इस चारों तरफ घिरी हुई मृत्यु के बीच में दिखाई पड़ती है।
जो जीवेषणा से घिरा है, वह जीवन को कभी नहीं देख पाता, क्योंकि वह सफेद दीवाल पर लकीरें खींच रहा है। जो मृत्यु से घिर कर जीवन को देखने में समर्थ हो जाता है, वही जान पाता है कि मैं अमृत हूं, मेरी कोई मृत्यु नहीं है। यह जरा उलटा मालूम पड़ता है, लेकिन जीवन के नियम के अनुकूल है।
मृत्यु की सघनता में घिर कर ही जीवन भी सघन हो जाता है। मृत्यु जब चारों तरफ से घेर लेती है तो जीवन भी अखंड होकर बीच में खड़ा हो जाता है। और जब हम मृत्यु में भी जानते हैं कि "मैं हूं", जब हम मृत्यु में डूबते हुए भी जानते हैं कि "मैं हूं", जब मृत्यु सब तरफ से हमें घेर लेती है, तब भी हम जानते हैं कि "मैं हूं", जब मृत्यु हमें शरीर के बाहर भी ले जाती है, तब भी हम जानते हैं कि "मैं हूं", तभी कोई जानता है कि मैं के होने का क्या अर्थ है। क्या है जीवन? वह हम मृत्यु में ही जानते हैं।
मरते हम सब हैं, लेकिन हमारी मृत्यु बेहोश है। मरते हम सब हैं, लेकिन नहीं मरने की आकांक्षा इतनी प्रबल होती है कि मृत्यु को हम दुश्मन की तरह लेते हैं। और जब दुश्मन की तरह लेते हैं तो हम मृत्यु से लड़ते हैं। हम मरते नहीं, हम लड़ते हुए मरते हैं। हम मरते नहीं-शांत, मौन, ध्यानपूर्वक देखते हुए। हम इतना लड़ते हैं, इतना उपद्रव मचाते हैं, इतना बचना चाहते हैं कि उस चेष्टा में बेहोश हो जाते हैं।
मृत्यु की एक व्यवस्थित प्रक्रिया है। जैसे कि सर्जन आपकी कोई हड्डी काट रहा हो तो अनस्थेसिया दे देता है, बेहोशी की दवा दे देता है। क्योंकि डर है कि जब वह हड्डी काटेगा तो आप लड़ेंगे काटने से कि न काटी जाए। घबड़ाएंगे, पीड़ित होंगे, परेशान होंगे। रेसिस्टेंस खड़ा होगा। तो आपके शरीर में दो तरह की धाराएं हो जाएंगी, एक तरफ काटने की बात है, और एक तरफ आप बचाने की चेष्टा करेंगे। अगर आपको सुई भी चुभाई जाए तो आप बचाने की चेष्टा करेंगे अपने को। स्वाभाविक है। तो बेहोश करना जरूरी है, ताकि आप उपद्रव खड़ा न करें।
मृत्यु सबसे बड़ी सर्जरी है। एक हड्डी नहीं कटती, सारी हड्डियों से संबंध कटता है। एक मांस-पेशी नहीं कटती, सारे मांस से संबंध टूट जाता है। जिस शरीर के साथ आप सत्तर वर्ष तक एक होकर जीए थे, और जिसके खून-खून और रोएं-रोएं में आपकी चेतना समाविष्ट हो गई थी, और जिसमें समाविष्ट ही नहीं हो गई थी, आपने एकात्म बना लिया था कि मैं शरीर हूं, उससे अलग होना बड़ी से बड़ी सर्जरी है।
आप होश में तभी रह सकते हैं, जब आपका मृत्यु से विरोध न हो। अगर विरोध
न हो, आप मौन और शांति स्वीकारपूर्वक अगर मृत्यु में डूबें--उसी को महावीर ने संथारा कहा है, आत्म-मरण कहा है--तो आप बेहोशी में नहीं होंगे, तो मृत्यु को अनस्थेसिया की जरूरत नहीं पड़ेगी।
लेकिन हम इतने घबड़ा जाते हैं और इतने तनाव से भर जाते हैं और इतना बचना चाहते हैं और अपनी खाट को इतने जोर से पकड़ लेते हैं कि कहीं मृत्यु छीन कर न ले जाए। इतने तनाव में भर जाते हैं कि वह तनाव एक सीमा पर आ जाता है। उस सीमा के आगे जाना असंभव है। तत्काल शरीर अनस्थेसिया को छोड़ देता है और हम बेहोश हो जाते हैं। अधिक लोग अधिकतम लोग बेहोशी में मरते हैं, इसलिए हमें मृत्यु की फिर नये जन्म में कोई याद नहीं रह जाती। जो लोग होश में मरते हैं, उनको दूसरे जन्म में याद रह जाती है। क्योंकि याद हमेशा होश की रह सकती है, बेहोशी की याद नहीं रह सकती।

यह जो बेहोशी की घटना घटती है मृत्यु में, यह हमारी ही जीवेषणा का परिणाम है। तो महावीर कहते हैं, जीवेषणा छोड़ दो, जीयो। और जो जीवन को जीता है, अभी और कल की फिकर नहीं करता, वह मृत्यु को भी जी लेगा, जब मृत्यु आएगी, और कल की फिकर नहीं करेगा। मृत्यु भी उसे जीवन की परिपूर्णता बन जाएगी, विरोध नहीं। वह मृत्यु को भी देख लेगा, पहचान लेगा। और जिसने होश से मृत्यु को देख लिया, उसने जीवन को भी देख लिया, क्योंकि वह होश, जो मृत्यु के मुकाबले भी टिक गया, वही है जीवन। वह जागृति जो मृत्यु भी न बुझा सकी, वह समझ जो मृत्यु भी मिटा न सकी, वह बोध जो मृत्यु भी धुंधला न कर सकी, वही बोध है जीवन।
महावीर जीवन विरोधी नहीं हैं, जीवेषणा विरोधी हैं। और जीवेषणा मिटे,
तो ही जीवन का अनुभव संभव है।
अब हम उनके सूत्र को लें।
"संसार में जितने भी प्राणी हैं, सब अपने कृतकर्मों के कारण ही दुखी होते हैं। अच्छा या बुरा जैसा भी कर्म हो, उसका फल भोगे बिना छुटकारा नहीं मिलता।"
"पापी जीव के दुख को न जाति वाले बंटा सकते हैं, न मित्र, न पुत्र, न भाई, न बंधु। जब दुख आ पड़ता है तब अकेला ही उसे भोगना है, क्योंकि कर्म अपने कर्त्ता के पीछे लगते हैं, अन्य किसी के नहीं।"
इसमें कुछ क्रमिक रूप से हम बिंदु समझ लें।
संसार में जितने प्राणी हैं, सब अपने कृतकर्मों के कारण ही दुखी होते हैं--पहली बात। यह आधारभूत है। अगर आप दुखी होते हैं तो अपने ही कारण। लेकिन हम सभी सोचते हैं कि दूसरे के कारण। कभी आपने ऐसा समझा है कि दुखी आप हो रहे हैं, अपने कारण?
कभी भी नहीं। क्योंकि जिस दिन आप ऐसा समझ लेंगे, उस दिन आपके जीवन में क्रांति घटनी शुरू हो गई, उस दिन आपने धर्म के मंदिर में प्रवेश करना शुरू कर दिया।
हम सदा सोचते हैं, दुखी हो रहे हैं दूसरे के कारण। कभी ऐसा नहीं लगता
कि अपने कारण दुखी हो रहे हैं। न वह गाली देता, न हम दुखी होते। न उस आदमी ने हमारी चोरी की होती, न हम दुखी होते। न वह आदमी पत्थर मारता, न हम दुखी होते। साफ ही है बात कि दूसरे हमें दुख दे रहे हैं इसलिए हम दुखी हो रहे हैं। अगर कोई हमें दुख न दे तो हम दुखी न होंगे।
यह बात इतनी तर्कपूर्ण लगती है हमारे मन को कि दूसरी बात का ख्याल ही नहीं आता कि हम अपने कारण दुखी हो रहे हैं। पति पत्नी के कारण, बेटा मां के कारण, भाई भाई के कारण, हिंदुस्तान पाकिस्तान के कारण, पाकिस्तान हिंदुस्तान के कारण, हिंदू मुसलमान के कारण, मुसलमान हिंदुओं के कारण; सब किसी और की वजह से दुखी हो रहे हैं।
राजनीति का मौलिक आधार यह सूत्र है, कि दुख दूसरे के कारण है। और धर्म
का यह मौलिक सूत्र है, कि दुख अपने कारण है। सारी राजनीति इस पर खड़ी है कि दुख दूसरे के कारण है। इसलिए दूसरे को मिटा दो, दुख का कारण मिट जाएगा। या दूसरे को बदल डालो, दुख का कारण मिट जाएगा। या परिस्थिति को दूसरा कर लो, दुख मिट जाएगा।
दुनिया में दो तरह की बुद्धियां हैं--राजनीतिक और धार्मिक। और ये दो सूत्र हैं उनके आधार में, अगर आप सोचते हैं कि दूसरे के कारण दुखी हैं तो आप राजनीतिक चित्तवाले व्यक्ति हैं।
आपको कभी ख्याल भी न आया होगा, कि पत्नी सोच रही है, पति के कारण दुख है। इसमें कोई राजनीति है। पूरी राजनीति है। इसलिए राजनीति में जो होगा, वह यहां भी होगा। कलह खड़ी होगी। संघर्ष खड़ा होगा, एक-दूसरे को बदलने की चेष्टा होगी, एक-दूसरे को अपने ढंग पर लाने का प्रयास होगा, एक-दूसरे को मिटाने की चेष्टा होगी।
हम इस भाषा में कभी सोचते नहीं। क्योंकि भाषा अगर सख्त हो तो हमारे भ्रम तोड़ सकती है। इसलिए हम ऐसा कभी नहीं कहते कि हम एक-दूसरे को मिटाने की चेष्टा में लगे हैं, हम कहते हैं, एक-दूसरे को बदल रहे हैं।
बदलने का मतलब क्या है?

तुम जैसे हो, वैसे मेरे दुख के कारण हो। तुमको मैं बदलूंगा। जब तुम अनुकूल हो जाओगे मेरे, तो मेरे सुख के कारण हो जाओगे।
दूसरी बात ध्यान में ले लें। चूंकि हम सोचते हैं कि दूसरा दुख का कारण है, इसलिए हम यह भी सोचते हैं कि दूसरा सुख का कारण है। न दूसरा दुख का कारण है, न दूसरा सुख का कारण है। सदा कारण हम हैं। जिस दिन आदमी इस सत्य को समझना शुरू कर देता है, उस दिन धार्मिक होना शुरू हो जाता है।
क्यों? यह जोर इतना क्यों है महावीर का कि दुख या सुख के कारण हम हैं। इसके जोर के गहरे अवलोकन पर निर्भर यह बात है। और यह कोई महावीर अकेले का कहना नहीं है। इस पृथ्वी पर जिन लोगों ने भी मनुष्य के सुख-दुख के संबंध में गहरी खोज की है, निरपवाद रूप से वे इस सूत्र से राजी हैं। इसलिए मैं नहीं कहता कि ईश्वर का मानना धर्म का मूल सूत्र है। क्योंकि बहुत धर्म ईश्वर को नहीं मानते खुद महावीर नहीं मानते। बुद्ध नहीं मानते। ईश्वर मूल आधार नहीं है धर्म का। कोई सोचता हो, वेद मूल आधार है तो गलती में है, कोई सोचता हो बाइबिल मूल आधार है तो गलती में है। कोई सोचता हो कि यह है मूल आधार धर्म का कि दुख और सुख का कारण मैं हूं, तो गलती में नहीं। तो धर्म की मौलिक पकड़ उसकी समझ में आ गई। यह निरपवाद सत्य है।
वेद माने, कोई कुरान, कोई बाइबिल, महावीर, बुद्ध, जीसस, मोहम्मद, किसी
को माने, अगर इस सूत्र पर उसकी समझ आ गई है तो कहीं से भी रास्ता मिल जाएगा। अगर यह सूत्र उसके ख्याल में नहीं आया तो वह किसी को भी मानता रहे, कोई रास्ता मिल नहीं सकता।
क्यों? मैं ही क्यों जिम्मवार हूं अपने सुख और दुख का? जब कोई मुझे गाली देता है, स्वभावतः दिखाई पड़ता है कि वह गाली दे रहा है और मैं दुखी हो रहा हूं। लेकिन यह पूरीशृंखला नहीं है। आप आधीशृंखला देख रहे हैं।
मेरा कोई अपमान करता है, गाली देता है, मुझे दुख होता है। लेकिन यहशृंखला अधूरी है। यह दुख असली में इसलिए होता है कि मैं मान चाहता था, सम्मान चाहता था और कोई गाली देता है, अपमान करता है। जो मैं चाहता था, वह नहीं होता। दुखी होता हूं। मेरे दुख का कारण आपका अपमान करना नहीं है, मेरी मान की आकांक्षा है। मान की आकांक्षा जितनी ज्यादा होगी, उतना ही अपमान का दुख बढ़ता जाएगा। मान की आकांक्षा न होगी, अपमान का दुख कम होता जाएगा। मान की आकांक्षा शून्य हो जाएगी, अपमान में कोई भी दुख नहीं रह जाता।
तो दुख अपमान में नहीं है, मान की आकांक्षा में है। और ध्यान रहे, अपमान तो कोई बाद में करता है, पहले मान की आकांक्षा मेरे पास होनी चाहिए। मेरे पास मान की आकांक्षा हो तो ही कोई अपमान कर सकता है। जो मैंने चाहा ही नहीं है, उसके न मिलने पर कैसा दुख?
अगर चोर आपको दुख देता है, आपकी चीज छीन ले जाता है, तो ऊपर से साफ दिखता है कि चोर की वजह से दुख हो रहा है। लेकिन चीज को पकड़ने का मोह, परिग्रह का जो भाव था, उसके कारण दुख हो रहा है, वह ख्याल में नहीं आता। मूल में चोर नहीं है, मूल में आप ही हैं। मूल में पकड़ना चाहते थे, यह चीज मेरी है। इसे कोई न छीने। और फिर कोई छीन लेता है तो दुख होता है। अपना ही लोभ, अपना ही परिग्रह चोर को दुख देने के लिए अवसर बनता है।
इसे हम खोजें ठीक से तो जहां भी हम दुख पाएंगे, वहांशृंखला की एक कड़ी
हम देखते नहीं। उसे हम छोड़ जाते हैं। हम अपने को बचा कर सोचते हैं सदा। दूसरे से शुरू करते हैं, जहां से कड़ी की शुरुआत नहीं है। वहां से शुरू नहीं करते जहां से कड़ी की असली शुरुआत है।
कौन सी चीज आपकी है? प्रूधो ने कहा है, सब संपत्ति चोरी है। इस अर्थ में कहा है कि आप नहीं थे तब भी वह संपत्ति थी, आप नहीं होंगे तब भी होगी। कोई संपत्ति आपकी नहीं है। आपने नहीं चुराई होगी, आपके पिता ने चुराई होगी। पिता ने नहीं चुराई होगी, उनके पिता ने चुराई होगी। लेकिन सब संपत्ति चोरी है, छीना-झपटी है। फिर कोई दूसरा चोर आपसे छीन ले जाता है। आप दुखी हो रहे हैं। चोरों का समाज है, उसमें एक चोर दूसरे चोर को सुखी कर रहा है, दुखी कर रहा है।

इसे अगर कोई ठीक से देखेगा कि जिसको भी मैं कहता हूं, मेरा, वहीं मैंने दुख की शुरुआत कर दी, क्योंकि मेरा कुछ भी नहीं है। मैं आता हूं खाली हाथ, बिना कुछ लिए और जाता हूं खाली हाथ, बिना कुछ लिए। इन दोनों के बीच में बहुत कुछ मेरे हाथ में होता है। इसमें कुछ भी मेरा नहीं है। जब मेरा कुछ भी नहीं है, ऐसा जिसको दिखाई पड़ जाए, चोर उसे दुखी नहीं करेगा।
रिंझाई के बाबत सुना है मैंने, एक रात चोर उसके घर में घुस गया। कुछ भी
न था घर में। रिंझाई बहुत दुखी होने लगा। अकेला एक कंबल था, जिसे वह ओढ़ कर सो रहा था। वह बड़ा चितिंत हुआ कि चोर आया, खाली हाथ लौटेगा। रात ठंडी है, इतनी दूर आया, गांव से पांच मील का फासला है। और फकीर के घर में कहां चोर आते हैं! और जो चोर फकीर के घर में आया, उसकी हालत कैसी बुरी न होगी। तो वह बड़ा चितिंत होने लगा, और कैसे इसकी सहायता करूं, एक कम्बल है, वह मैं ओढ़े हूं। तो जो मैं ओढ़े हूं, वह तो यह ले न जा सकेगा। तो कंबल को दूर रख कर सरक कर सो गया।
चोर बड़ा हैरान हुआ कि आदमी कैसा है! घर में कुछ है भी नहीं, एक कंबल ही दिखाई पड़ता है, वह भी अलग रखकर अलग क्यों सो गया मुझे देख कर। वह लौटने लगा तो रिंझाई ने कहा, ऐसे खाली हाथ मत जाओ। मन में पीड़ा रह जाएगी। कभी तो कोई चोरी करने आया। ऐसा अपना सौभाग्य कहां कि कोई चोरी करने आए! है ही नहीं कुछ, यह कंबल लेते जाओ। और अब जब दुबारा आओ तो जरा पहले से खबर करना। गरीब आदमी हूं, कुछ इंतजाम कर लूंगा।
चोर तो घबड़ाहट में कंबल लेकर भागा कि कहां के आदमी के चक्कर में पड़ गया हूं। लेकिन रास्ते में जाकर उसे ख्याल आया कि भागने की कोई जरूरत न थी। पुरानी आदत से भाग आया हूं। इस आदमी से भागने की क्या जरूरत थी? वापस लौटा। वापस लौटा तो नग्न रिंझाई लंगोटी लगाए खिड़की पर बैठा था, चांद को देख रहा था और उसने एक गीत लिखा था। चोर वापस आया तो वह गीत गुनगुना रहा था। उसका गीत बहुत प्रसिद्ध हो गया। उस गीत में वह चांद से कह रहा है कि मेरा वश चले तो चांद को आकाश से तोड़ कर उस चोर को भेंट कर दूं।
चोर ने गीत सुना। वह चरणों में गिर पड़ा। उसने कहा, "तुम कह क्या रहे हो? मैं चोर हूं, मुझे तुम चांद भेंट करना चाहते हो? मैं गलती से भाग गया, मुझे पास ले लो। कब ऐसा दिन आएगा कि मैं भी तुम जैसा हो जाऊंगा! अब तक जिनके घर में मैं गया, वे भी सब चोर थे। मालिक, मुझे पहली दफा मिला।"
कोई बड़े चोर हैं, कोई छोटे चोर हैं। कोई कुशल चोर हैं, कोई अकुशल चोर हैं। कुछ न्यायसंगत चोरी करते हैं, कुछ न्याय-विपरीत चोरी करते हैं।
पर उस चोर ने कहाः जिनके घर में भी गया, सब चोर थे। एक दफा पहला आदमी मिला है जो कि चोर नहीं है। और वे सब भी मुझे शिक्षा देते रहे हैं कि चोरी मत करो, लेकिन उनकी बात मुझे जंची नहीं, क्योंकि वह चोरों की ही बात थी। तुमने कुछ भी न कहा, लेकिन मेरी चोरी छूट गई। मुझे अपने जैसा बना लो कि मैं भी चोर न रह जाऊं।
क्या हम अनुभव करते हैं, वह हम पर निर्भर है। यह रिन्झाई की करुणा चोर
के प्रति, रिन्झाई की ही बात है। चोर के प्रति आपमें दुख पैदा होता, क्रोध पैदा होता, घृणा पैदा होती, लेकिन करुणा पैदा नहीं हो सकती थी। जो हममें पैदा होता है वह हमारे भीतर है। दूसरा तो सिर्फ बहाना है, दूसरा है सिर्फ बहाना। जो निकलता है वह हमारा है, लेकिन हमें अपना कोई पता नहीं; इसलिए जब बाहर आता है तब हम समझते हैं कि दूसरे का दिया हुआ है।
अगर आपके बाहर दुख आता है तो दूसरा केवल बहाना है। दुख आपके भीतर है। दूसरा तो सिर्फ सहारा बन जाता है बाहर लाने का। इसलिए जो आपके दुख को बाहर ले आता है, उसका अनुग्रह मानना। क्योंकि वह बाहर न लाता तो शायद आपको अपने भीतर छिपे हुए दुख के कुओं का पता ही न चलता। सुख भी दूसरा बाहर लाता है, दुख भी दूसरा बाहर लाता है, सिर्फ निमित्त है।
निमित्त शब्द का महावीर ने बहुत उपयोग किया है। यह शब्द बड़ा अदभुत है। ऐसा कोई शब्द दुनिया की दूसरी भाषा में खोजना मुश्किल है, निमित्त। निमित्त का मतलब है, जो कारण नहीं है और कारण जैसा मालूम पड़ता है।
आपने मुझे गाली दी, दुख हो गया, तो महावीर नहीं कहते कि गाली देने से दुख हुआ। वे कहते हैं निमित्त, गाली निमित्त बनी, दुख तैयार था, वह प्रगट

हो गया। गाली कारण नहीं है, कारण तो सम्मान की आकांक्षा है। गाली निमित्त है। निमित्त का मतलबः सूडो कॉ.ज, झूठा कारण, मिथ्या कारण। दिखाई पड़ता है यही कारण है, और यह कारण नहीं है। निमित्त का मतलबः कारण को छिपाने की तरकीब। असली कारण छिप जाए भीतर, और झूठा कारण बना लेने का उपाय।
इसलिए महावीर कहते हैं, संसार में जितने भी प्राणी हैं, सब अपने ही कारण दुखी होते हैं। और यह कारण क्यों उनके भीतर इकट्ठा हुआ है? कृतकर्मों के कारण। जो-जो उन्होंने पीछे किया है, उससे उनकी आदतें निर्मित हो गई हैं। जो-जो उन्होंने पीछे किया है उससे उनके संस्कार निर्मित हो गए हैं, उनकी कंडीशनिंग हो गई है। जो उन्होंने किया है, वही उनका चित्त है। जो-जो वे करते रहे हैं वही उनका चित्त है। उस चित्त के कारण वे दुखी होते हैं। चित्त है हमारे अनंत-अनंत कर्मों का संस्कार।
समझें, कल भी आपने कुछ किया, परसों भी आपने कुछ किया, इस जन्म में भी, पिछले जन्म में भी, वह जो सब आपने किया है उसने आपको ढांचा दे दिया है, एक पैटर्न। एक सोचने, समझने, व्याख्या करने की एक व्यवस्था आपके मन में दे दी। आप उसी व्याख्या से चलते हैं और सोचते हैं। उसी व्याख्या के कारण आप सुखी और दुखी होते रहते हैं और उस व्याख्या को आप कभी नहीं बदलते। सुख-दुख को बदलने की बाहर कोशिश करते हैं और भीतर की व्याख्या को पकड़कर रखते हैं। और आपकी हर कोशिश उस व्याख्या को मजबूत करती है। आपके चित्त को मजबूत करती है, आपके माइंड को और ताकत देती चली जाती है। जिसके कारण दुख होता है, उसको आप मजबूत करते जाते हैं और निमित्त को बदलने की चेष्टा में लगे रहते हैं। कारण छिपा रहता है, निमित्त हम बदलते चले जाते हैं। फिर बड़े मजे की घटनाएं घटती हैं--कितना ही निमित्त बदलो, कारण नहीं बदलता।
एक मित्र परसों मेरे पास आए। अमरीका में उन्होंने शादी की। काफी पैसा कमाया शादी के बाद। वह सारा का सारा पैसा अमरीका के बैंकों में अपनी पत्नी के नाम से जमा किया। खुद के नाम से कर नहीं सकते जमा, पत्नी के नाम से वह सारा पैसा जमा किया। अचानक पत्नी चली गई और उसने वहां से जाकर खबर दी कि मुझे तलाक करना है। अब बड़ी मुश्किल में पड़ गए। पत्नी भी हाथ से जाती है, वह जो चार लाख रुपया जमा किया है, वह भी हाथ से जाता है। अब किसी को कह भी नहीं सकते कि चार लाख जमा किया है, क्योंकि उसमें पहले यहां फंसेंगे कि वह चार लाख वहां ले कैसे गए। वह जमा कैसे किया?
मेरे पास वे आए। वे कहने लगे कि मैं पत्नी को इतना प्रेम करता हूं कि उसके बिना बिल्कुल नहीं जी सकता। तो कोई योग में ऐसा चमत्कार नहीं है कि मेरी पत्नी का मन बदल जाए? वह खिंची चली आए? लोग योग वगैरह में तभी उत्सुक होते हैं जब उनको कोई चमत्कार खिंची चली आए, ऐसा कुछ कर दें।
मैंने उनसे कहा कि पहले तुम सच-सच मुझे बताओ कि पत्नी से मतलब है कि चार लाख से? क्योंकि योग में अगर पत्नी को खींचने का चमत्कार है तो चार लाख खींचने का भी चमत्कार हो सकता है। तुम सच-सच बताओ।
उन्होंने कहाः क्या कह रहे हैं, रुपया अकेला आ सकता है? तो पत्नी से कोई लेना-देना नहीं है। भाड़ में जाए, रुपया निकल आए। कहने लगे कि मैं तो उससे बहुत प्रेम करता था, क्यों मुझे छोड़ कर चली गई, समझ में नहीं आता। क्यों मुझे इतना दुख दे रही है? समझ में नहीं आता।
मैंने कहाः बिल्कुल साफ समझ में आ रहा है, पत्नी को कभी तुमने भूलकर
भी प्रेम नहीं किया होगा। तुमने भी पत्नी को शायद यह रुपया जमा करने के लिए ही चुना होगा। और पत्नी भी इन रुपयों के कारण ही तुम्हारे पास आई होगी। मामला बिल्कुल साफ है। वे कहने लगे, एक अवसर मुझे मिल जाए, पत्नी वापस आ जाए। तो मैंने, जो-जो भूलें आप बताते हैं, अब दुबारा नहीं करूंगा। आप मुझे समझा दें, कैसा व्यवहार करूं, क्या प्रेम करूं; लेकिन एक अवसर तो मुझे मिल जाए सुधरने का।
यह जो आदमी कह रहा है, एक अवसर मुझे मिल जाए सुधरने का, इसे अवसर मिले,
यह सुधरेगा? यह हो सकता है पत्नी की हत्या कर दे। इसके सुधरने का आसार नहीं है कोई, सुधरना यह चाहता भी नहीं है। यह मान भी नहीं रहा है कि यह गलत है।

वह जो हमारे भीतर मन है, उसको तो हम मजबूत किए चले जाते हैं। मैंने उनसे कहा कि दूसरी शादी कर लो, छोड़ो भी। दूसरी शादी कर लो, इस बात को छोड़ो। पैसा फिर कमा लोगे। लेकिन अब दुबारा जमा मत करना अमेरिका में। तुम भी चोर थे, पत्नी भी चोर साबित हुई, चोर चोरों को खोज लेते हैं। लेकिन यह मत सोचो कि इसमें दुख का कारण पत्नी है। वे बड़े दुखी हैं, आंसू निकल-निकल आते हैं। ये वह चार लाख पर निकल रहे हैं, पत्नी से कोई लेना-देना नहीं है। बड़े दुखी हैं, लेकिन दुख का कारण वे सोच रहे हैं, पत्नी का दगा है। और दगा यह आदमी पत्नी को पहले से ही दे रहा है। इसका कोई लेना-देना नहीं है पत्नी से। वह रुपया ही सारा-सारा हिसाब-किताब है। यह मन तो भीतर वही का वही है। अगर यह कल फिर शादी कर ले तो फिर यही करेगा।
पश्चिम में मनसविद जिन लोगों के तलाकों का अध्ययन करते हैं, वे कहते हैं, बड़ी हैरानी की बात है, आदमी एक स्त्री से शादी करता है, तलाक देकर दूसरी से शादी करता है। फिर दूसरी बार भी वैसी ही स्त्री चुन लेता है जैसी पहली बार चुनी थी। एक आदमी ने आठ बार तलाक किया। सॉल्टर ने उसकी पूरी जिन्दगी का विवरण दिया है, और हर बार उसने सोचा कि अब दुबारा ऐसी पत्नी नहीं चुनूंगा। और हर बार फिर वैसी ही पत्नी चुन ले। छह महीने बाद उसे पता चला कि वह फिर वैसी ही पत्नी चुन लाया है।
भारतीय इसलिए कुशल थे कि नाहक परेशान क्यों करना! एक ही पत्नी चुननी
है बार-बार, तो एक से निपटा लेने में हर्जा क्या है? कम से कम इतनी राहत तो रहेगी कि मौका मिलता तो दूसरी भी चुन सकते थे। चुन नहीं सकते हैं आप। और इसलिए भारतीय बड़े अदभुत थे कि वे पत्नी के चुनाव का काम खुद को नहीं देते थे, मां-बाप से करवा लेते थे, जो ज्यादा अनुभवी थे। जो जिंदगी देख चुके थे और जिंदगी की नासमझियां समझ चुके थे। इसलिए हमने व्यक्तियों के ऊपर नहीं छोड़ा था चुनाव।
अमरीका में सॉल्टर ने कहा कि इस आदमी ने आठ दफा शादी की और हर बार वैसी
ही पत्नी फिर चुन लाया। कारण क्या है? चुनाव जिस मन से होता है वह तो वही है। इसलिए मैं दूसरा चुन भी कैसे सकता हूं? मुझे एक स्त्री की आवाज अच्छी लगती है, आंख अच्छी लगती है, चलने का ढंग अच्छा लगता है, शरीर की बनावट अच्छी लगती है, अनुपात पसंद पड़ता है, उठना-बैठना पसंद पड़ता है, व्यवहार पसंद पड़ता है, इसलिए मैं चुनता हूं।
जब मैं एक स्त्री को चुनता हूं तो मैं अपने मन को ही चुनता हूं, उसको नहीं चुनता, मेरी पसंदगी को चुनता हूं। फिर यह स्त्री उपद्रवी मालूम पड़ती है, झगड़ालू मालूम पड़ती है। फिर इसमें दूसरे गुण दिखाई पड़ने शुरू होते हैं, तब मैं इसे तलाक देता हूं। फिर दुबारा मैं एक स्त्री चुनता हूं। मैं फिर वही गुण खोजूंगा जो मैंने पहली स्त्री में खोजे थे, और हर गुण के साथ जुड़ा हुआ दुर्गुण है। जो स्त्री एक खास ढंग से चलती है उसमें खास तरह का दुर्गुण होगा, और जो स्त्री एक खास तरह से मुझे पसंद पड़ती है, उसका दूसरा पहलू भी खास ढंग का होगा, जो मुझे दिक्कत देगा। पहली स्त्री में मैंने उसका चेहरा चुन लिया, मैंने पूर्णिमा चुन ली, लेकिन अमावस भी है। और वह अमावस भी आएगी। और जब अमावस आएगी तब मुझे तकलीफ होगी। तब मैं कहूंगा, यह मैंने फिर भूल कर ली। लेकिन फिर तीसरी बार मैं चुनूंगा, लेकिन फिर मैं पूर्णिमा चुनूंगा। फिर अमावस होगी।
हर व्यक्तित्व के कैरेक्टर हैं। जो मुझे पसंद पड़ता है उसके साथ जुड़ी हुई बात भी है। वह बात मुझे दिखाई नहीं पड़ रही है। वह जब दिखाई पड़ेगी, तब समझ में आएगा। वह आदमी आठ दफा हर बार एक सी स्त्रियां चुन लेता है।
इसे समझें। एक आदमी को ऐसी स्त्री पसंद है जो बिल्कुल दब्बू हो। हर बात में उसकी मान कर चले। लेकिन दब्बूपन भी एक तरकीब है दूसरे को दबाने की। दब्बू भी बिल्कुल दब्बू नहीं होते। वह अपने दब्बूपन से भी दबाते हैं। तो एक स्त्री आपने चुन ली कि दब्बू है, मान कर चलेगी, सब ठीक है। लेकिन
यह पहला चेहरा है। यह सिर्फ शुरुआत है, यह खेल का प्रारंभ है, नियम हैं खेल के। आपको दब्बू स्त्री पसंद है तो पसंद पड़ गई, लेकिन कोई आदमी दब्बू नहीं है भीतर से। कोई हो ही नहीं सकता दब्बू। तो जैसे ही काम पूरा हो गया, शादी हो गई, रजिस्टरी हो गई, अब वह दब्बूपन खिसकना शुरू हो जाएगा। वह तो सिर्फ

तरकीब थी। वह उस व्यक्ति की तरकीब थी आपको पकड़ने की। वह तो मछली के लिए कांटे पर जो आटा लगा था, वही था।
लेकिन कोई आटा खिलाने के लिए नहीं बैठा रहता जाकर मछलियों को। वह कांटा खिलाने के लिए बैठा रहता है। जरूरी नहीं कि उसको भी पता हो, वह भी शायद सोचता हो कि आटा खिला रहे हैं मछलियों को। लेकिन आटा जब मुंह में चला जाएगा तो कांटा अटक जाएगा। वह जो दब्बू मालूम पड़ रही थी, वह धीरे-धीरे शेर होने लगेगी। हालांकि उसके शेर होने के ढंग में भी दब्बूपन होगा। जैसे, अगर दब्बू स्त्री आपको सताना चाहे तो रोएगी, चिल्लाएगी नहीं, क्रोध नहीं करेगी; लेकिन रोना भी जानखाऊ हो जाता है। और कभी-कभी तो क्रोधी स्त्री कम जानखाऊ मालूम पड़ेगी, निपट जाएगी। रोने वाली स्त्री ज्यादा कुशलता से सताती है। आप यह भी नहीं कह सकते कि वह गलत है, क्योंकि रोने वाले को क्या गलत कहो। वह आपको दोहरी तरह से मारती है। नैतिक रूप से भी आपको लगता है कि आप गलती कर रहे हैं। वह आपको अपराधी सिद्ध कर देगी। लेकिन तब, तब लगेगा कि फिर वही चुन लाए।
दुबारा फिर चुनने जाएंगे, फिर आपकी पसंद, आपका जो मन है वह भीतर बैठा है। वह फिर दब्बू स्त्री पसंद करता है। अब की दफा वह और भी ज्यादा दब्बू खोजेगा, क्योंकि पहली दफा भूल हो गई, उतनी दब्बू साबित नहीं हुई। ध्यान रखना, और बड़ी दब्बू खोजेंगे तो और बड़ी उपद्रवी स्त्री मिल जाएगी। मगर यह चलेगा। क्योंकि हम जो मूल कारण है, उसे नहीं देखते, बाहर के निमित्त देखते हैं। और बाहर के निमित्त काम नहीं पड़ते।
महावीर कहते हैंः "अपने ही कृतकर्मों के कारण हम दुखी होते हैं।"
अब अगर मैं दब्बू स्त्री पसंद करता हूं तो यह मेरे लम्बे कर्मों, विचारों, भावों का जोड़ है। लेकिन मैं पसंद क्यों करता हूं दब्बू स्त्री? मैं किसी को दबाना पसंद करता हूं, इसलिए जब कोई मुझसे नहीं दबेगा तो मैं दुखी हो जाऊंगा। असल में दबाना पसंद करना ही पाप है। किसी को दबाना पसंद करना ही हिंसा है। यह मैं गलत कर रहा हूं कि मैं किसी को दबाया हुआ पसंद करूं।
स्वभावतः मैं भी दबाना चाहता हूं, दूसरे भी दबाना चाहते हैं। फिर कलह होगी, फिर दुख होगा और दुख मैं दूसरे पर थोपने चला जाऊंगा।
"अच्छा या बुरा जैसा भी कर्म हो, उसके फल को भोगे बिना छुटकारा नहीं है।"
कैसा भी कर्म हो, कर्म का फल होकर ही रहता है। उसका कोई उपाय ही नहीं। उसका कारण? क्योंकि कर्म और फल दो चीजें नहीं हैं, नहीं तो बचना हो सकता है। कर्म और फल एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। मैं एक रुपये को उठा कर मुट्ठी में रख लूं और मैं कहूं कि मैं तो सिर्फ सीधे पहलू को ही मुट्ठी में रखूंगा, और वह जो उलटा हिस्सा है वह मुट्ठी में नहीं रखूंगा, तो मैं पागल हूं। क्योंकि सिक्के में दो पहलू हैं। और कितना ही बारीक सिक्का बनाया जाए, कितना ही पतला सिक्का बनाया जाए, दूसरा पहलू रहेगा ही। कोई उपाय नहीं है एक पहलू के सिक्के को बनाने का। कोई उपाय नहीं है कर्म को फल से अलग करने का। कर्म और फल एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। कर्म एक बाजू, फल दूसरी बाजू छिपा है, पीछे ही खड़ा है। हम सब इसी कोशिश में लगे हैं कि फल से बच जाएं। और कभी-कभी जिंदगी की व्यवस्था में हम बचते हुए मालूम पड़ते हैं।
एक आदमी चोरी कर लेता है, अदालत से बच जाता है तो वह सोचता है कि वह फल
से बच गया। वह फल से नहीं बचा, समाज के दण्ड से बच गया। फल से नहीं बचा। फल तो आत्मिक घटना है। अदालतों से उसका कोई लेना-देना नहीं है। कानून से उसका कोई संबंध नहीं है। फल से कोई नहीं बच सकता। सामाजिक व्यवस्था से बच सकता है, छूट सकता है। लेकिन बचने और छूटने का जो कर्म कर रहा है, उसके फल से भी नहीं बच सकता। भीतर तो बचाव का कोई उपाय ही नहीं है। मैंने किया क्रोध और मैंने भोगा फल, मैंने किया मोह और मैंने भोगा फल। मैंने किया ध्यान और मैंने भोगा फल। उससे बचने का कोई उपाय ही नहीं है। नहीं है उपाय इसलिए कि कर्म और फल दो चीजें नहीं हैं। नहीं तो हम एक को अलग कर सकते हैं, दूसरे को अलग कर सकते हैं। वे पहलू हैं।

इस संबंध में एक बात और ख्याल में ले लेनी जरूरी है। कुछ लोग सोचते हैं कि मैंने एक बुरा कर्म किया। फिर एक अच्छा कर्म कर दिया तो बुरे को काट देगा। वे गलत सोचते हैं। कोई अच्छा कर्म किसी बुरे कर्म को नहीं काट सकता है। इसलिए महावीर कहते हैं, अच्छा या बुरा जैसा भी कर्म हो, उसका फल भोगना पड़ेगा। ऐसी काट-पीट नहीं चलती। यह कोई लेन-देन नहीं है कि मैंने आपको-आपने मुझे पांच रुपये उधार दिए, मैंने आपको पांच रुपये लौटा दिए, हिसाब-किताब साफ हो गया। इधर मैंने चोरी की, उधर दान कर दिया, मामला खत्म हो गया। इधर मैंने किसी की हत्या की, वहां एक बेटे को जन्म दे दिया, मामला खत्म हो गया। आपके अच्छे और बुरे कर्म एक-दूसरे को काट नहीं सकते, क्योंकि अच्छा कर्म अपने में पूरा है, बुरा कर्म अपने में पूरा है। बुरे कर्म का आपको दुखद फल और अच्छे कर्म का सुखद फल मिलता रहेगा। आप यह नहीं कह सकते कि हमने एक आम का बीज बो दिया, पहले एक नीम का बीज बोया तो नीम का कड़वा वृक्ष लग गया, फिर हमने एक आम का वृक्ष बो दिया तो आम का मीठा वृक्ष लग गया तो अब नीम का फल कड़वा नहीं होगा।
दोनों अलग-अलग हैं। नीम का फल अब भी कड़वा होगा। आम का फल अब भी मीठा होगा। आम की मिठास नीम की कड़वाहट को नहीं काटेगी। नीम की कड़वाहट आम की मिठास को नहीं काटेगी। बल्कि यह भी होगा कि जिसने नीम को भी चखा--अकेला नीम को चखा, शायद नीम उतनी कड़वी न मालूम पड़े, जिसने आम को भी चखा, नीम ज्यादा कड़वी मालूम पड़ेगी। जिसने नीम को भी चखा, आम ज्यादा मीठा मालूम पड़ेगा। कंट्रास्ट होगा, लेकिन कटाव नहीं होगा। दोनों साथ-साथ होंगे।
इसलिए महावीर कहते हैं, अच्छे का फल अच्छा है, बुरे का फल बुरा है। अच्छा बुरे को नहीं काटता, बुरा अच्छे को नष्ट नहीं करता। इसलिए हमें मिश्रित व्यक्ति मिलते हैं जिनको देख कर मुसीबत होती है। एक आदमी में हम देखते हैं कि वह चोर भी है, बेईमान भी है, फिर भी सफल हो रहा है। तो हमें बड़ी अड़चन होती है कि क्या मामला है? क्या भगवान चोरों और बेईमानों को सफल करता है? और एक आदमी को हम देखते हैं कि ईमानदार है, चोर भी नहीं है और असफल हो रहा है और जहां जाता है, तो ऐसे आदमी कहते हैं, सोना छुओ तो मिट्टी हो जाता है; कहीं भी हाथ लगाओ, असफलता हाथ लगती है। क्या मामला है?
मामला इस वजह से है, क्योंकि प्रत्येक आदमी अच्छे और बुरे का जोड़ है।
जो आदमी चोर है, बेईमान है वह सफल हो रहा है, क्योंकि सफलता के लिए जिन अच्छे कर्मों का होना आवश्यक है साहस, दांव, असुरक्षा में उतरना, जोखिम--वे उसमें हैं; जिसको हम कहते हैं, ईमानदार आदमी और अच्छा आदमी असफल हो रहा है। न जोखिम, न दांव, न साहस, वह घर बैठ कर सिर्फ अच्छे रह कर सफल होने की कोशिश कर रहे हैं। वह बुरा आदमी दौड़ रहा है। अच्छा आदमी बैठा है। वह बुरा आदमी पहुंच जाएगा। दौड़ रहा है, कुछ कर रहा है, और ये दोनों मिश्रित हैं।
हर आदमी एक मिश्रण है, इसलिए इस जगत में इतने विरोधाभास दिखाई पड़ते हैं। अगर कोई बुरा आदमी भी सफल हो रहा है और किसी तरह का सुख पा रहा है तो उसका अर्थ है कि उसके पास कुछ अच्छे कर्मों की संपदा है। और अगर कोई अच्छा आदमी भी दुख पा रहा है तो जान लेना, उसके पास बुरे कर्मों की सम्पदा है। और एक दूसरे का कटाव नहीं होता।
इसलिए महावीर कहते हैं, अच्छे कर्म कर करके कोई मुक्त नहीं हो सकता, क्योंकि अच्छे कर्म का फलबुरे कर्म केवल छोड़ देने से कोई मुक्त नहीं हो सकता। अच्छा और बुरा जब दोनों छूट जाते हैं तब कोई मुक्त होता है। इसलिए महावीर कहते हैं, पुण्य से मुक्ति नहीं होती, पुण्य से सुख मिलता है। पाप के छोड़ने से मुक्ति नहीं होती, केवल दुख नहीं मिलता। लेकिन पाप और पुण्य जब दोनों छूट जाते हैं--न अच्छा, न बुरा--तब आदमी मुक्त होता है।
मुक्ति, अच्छे और बुरे से मुक्ति है। मुक्ति, द्वंद्व से मुक्ति है। मुक्ति, विरोध से मुक्ति है। मोक्ष का अर्थ--अच्छे कर्मों का फल नहीं है। मोक्ष फल नहीं है।
महावीर की भाषा में स्वर्ग फल है, अच्छे कर्मों का। नरक फल है बुरे कर्मों का। और हर आदमी स्वर्ग और नरक में एक-एक पैर रखे हुए खड़ा है, क्योंकि हर आदमी मिश्रण है बुरे और अच्छे कर्मों का। आदमी की एक टांग नरक तक पहुंचती है और एक टांग स्वर्ग तक पहुंचती है। और निश्चित ही स्वर्ग और

नरक के फासले पर जो आदमी खड़ा है उसको बड़ी बेचैनी, खिंचावआज नरक, कल स्वर्ग, सुबह नरक, सांझ स्वर्ग, इसमें तनाव, चिंता पैदा होगी।
महावीर कहते हैं, ये दोनों पैर हट जाते हैं स्वर्ग और नरक से, जब आदमी
के सारे कर्म शून्य हो जाते हैं। कर्म की शून्यता मोक्ष है, कर्म का फल नहीं; शून्यता, जब सब कर्म क्षीण हो जाते हैं।
इसलिए महावीर कहते हैं, पापी जीव के दुख को न जाति वाले बंटा सकते हैं,
न मित्र, न पुत्र, न भाई, न बंधु। दुख आता है, तब अकेले ही भोगना है। क्योंकि कर्म कर्त्ता के पीछे लगते हैं, अन्य के नहीं। कर्म का फल आपको ही भोगना पड़ेगा, क्योंकि कर्म आपका है। कर्म दूसरे का नहीं है। मेरी पत्नी का कर्म नहीं है, मेरा कर्म मेरा है, मुझे भोगना पड़ेगा।
इस अर्थ में महावीर मानते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति परम स्वतंत्र है, दूसरे से बंधा नहीं है। और इसलिए कोई लेन-देन का उपाय नहीं है कि मैं दुख आपको दे दूं। हालांकि हम कहते हैंहम कहते हैं किसी को प्रेम करते हैं तो हम कहते हैं कि सब दुख मुझे दे दो। कोई उपाय नहीं है। और शायद इसीलिए आसानी से कहते हैं, क्योंकि कोई उपाय नहीं है। अगर ऐसा हो सके तो मैं नहीं मानता कि कोई किसी से कहेगा कि सब दुख मुझे दे दो। तब प्रेमी ऐसा सोचेंगे कि कब दूसरा मांग ले सब दुख। अभी हम बड़े मजे से कहते हैं कि तुम्हारी पीड़ा मुझे लग जाए, मेरी उम्र तुम्हें लग जाए। वह लगती-वगती नहीं है, इसलिए। लगने लगे तो फिर कोई कहने वाला नहीं मिलेगा।
असल में प्रत्येक व्यक्ति अकेला है। भीड़ में भी अकेला है। कितने ही संगसाथ में हो, अकेला है। वह जो चैतन्य की भीतर धारा है उसकी अपनी निजता है, इंडिविजुएलिटी है। और जो भी उस चेतना की धारा ने किया है, उसी धारा को भोगना पड़ेगा।
गंगा बहती है एक रास्ते से, नर्मदा बहती है दूसरे रास्ते से। तो गंगा जिन पत्थरों से बहती है, जिस मिट्टी से बहती है उसका रंग गंगा को मिलेगा। और नर्मदा जिस मिट्टी से बहती है, जिन पत्थरों से बहती है, उनका रंग नर्मदा को मिलेगा। और कोई उपाय नहीं है, कोई उपाय नहीं है। हम सब धाराएं हैं, हम सब के जीवन पथ अलग-अलग हैं। कितने ही पास-पास और कितने ही एक दूसरे को हम काटते मालूम पड़े, और कितने ही चौरस्तों पर मुलाकात हो जाए, हमारा अकेलापन नहीं कटता। हम अकेले हैं और दूसरे पर बांटने का कोई उपाय नहीं है।
इस पर बहुत जोर है महावीर का, क्योंकि यह बहुत महत्वपूर्ण है। अगर यह ख्याल में आ जाए तो व्यक्ति अपनी पूरी जिम्मेवारी अपने ऊपर ले लेता है। और जिस व्यक्ति ने समझा कि सारी जिम्मेवारी मेरी है, वह पहली दफे मैच्योर, प्रौढ़ होता है। नहीं तो हम बच्चे बने रहते हैं।
प्रौढ़ता का एक ही अर्थ है--बच्चा सोचता है, मां की जिम्मेवारी, बाप की जिम्मेवारी--पढ़ाओ-लिखाओ, बड़ा करो। प्रौढ़ आदमी सोचता है, अपने पैरों पर खड़ा होऊं। एक आध्यात्मिक प्रौढ़ता है। उस प्रौढ़ता का अर्थ है कि कोई के लिए मैं जिम्मेवार नहीं हूं, कोई मेरे लिए जिम्मेवार नहीं है। मैं बिल्कुल अकेला हूं। और कोई उपाय नहीं है कि हम बांट सकें, साझा कर सकें। तो जो भी मैं हूं, उसे मुझे स्वीकार कर लेना है और जो भी मैं हूं उसको ही मुझे रूपांतरित करना है, और जो भी परिणाम आएं, किसी की शिकायत का कोई कारण नहीं है। जो भी फल आएं, उनका बोझ मुझे ही ढो लेना है।
यह जोर इसलिए है कि अगर दूसरे हमारे लिए जिम्मेवार हैं तो फिर हम कभी मुक्त न हो सकेंगे। जब तक सारा जगत मुक्त न हो जाए, तब तक मेरी मुक्ति का कोई उपाय नहीं है।
अगर मैं ही जिम्मेवार हूं तो मैं मुक्त भी हो सकता हूं। अगर दूसरे भी जिम्मेवार हैं अगर आप मुझे दुख दे सकते हैं, सुख दे सकते हैं, अगर आप मुझे आनंदित कर सकते हैं और पीड़ित कर सकते हैं तो फिर मेरी मुक्ति का कोई उपाय नहीं है। फिर आपके ऊपर मैं निर्भर हूं। आप मेरी मज्रू पर निर्भर हैं, मैं आपकी मज्रू पर निर्भर हूं। तब तो सारा संसार एक जाल है। उस जाल में से कोई हिस्सा नहीं छूट सकता।
महावीर कहते हैं, प्रत्येक व्यक्ति कितने ही संसार के बीच में खड़ा हो, अकेला है, टोटली अलोन, एकांतरूपेण, अकेला है। इस अकेलेपन को समझ ले तो

संन्यास फलित हो जाता है, वह जहां भी है। इस अकेलेपन के भाव को समझ ले तो संन्यास फलित होता है, चाहे वह कहीं भी हो। अपने को अकेला जानना संन्यास है, अपने को साथियों में जानना संसार है। मित्रों में, परिवार में, समाज में, देश में, बंधा हुआ अंश की तरह जानना संसार है। मुक्त, अलग, टूटा हुआ, अकेला, आणविक, एटामिक, अकेला अपने को जानना संन्यास है।

आज इतना ही।
पांच मिनट कीर्तन करें।

महावीर-वाणी, भाग 2
सातवां प्रवचन

यह निःश्रेयस का मार्ग है (पंडित-सूत्र)

जे य कंते पिए भोए,
लद्वे विपिट्ठीकुव्वई।
साहीणे चयइ भोए,
से हु चाइ त्ति वुच्चई।।
वत्थगंधमलंकारं,
इत्थियो सयणाणि य।
अच्छन्दा जे न भुंजंति,
न से चाइ ति वुच्चई।।
तस्सेस मग्गो गुरु विद्धसेवा,
विवज्जणा बालजणस्स दूरा।
सज्झायएगन्तनिसेवणा य,
सुत्तत्थसंचिन्तणया धिई य।।

जो मनुष्य सुंदर और प्रिय भोगों को पाकर भी पीठ फेर लेता है, सब प्रकार से स्वाधीन भोगों का परित्याग करता है, वही सच्चा त्यागी कहलाता है।
जो मनुष्य किसी परतंत्रता के कारण वस्त्र, गंध, अलंकार, स्त्री और शयन आदि का उपभोग नहीं कर पाता, वह सच्चा त्यागी नहीं कहलाता।
सद्गुरु तथा अनुभवी वृद्धों की सेवा करना, मूर्खों के संसर्ग से दूर रहना, एकाग्र चित्त से सत शास्त्रों का अभ्यास करना और उनके गंभीर अर्थ का चिंतन करना, और चित्त में धृतिरूप अटल शांति प्राप्त करना, यह निःश्रेयस का मार्ग है।

पहले एक-दो प्रश्न।
एक मित्र ने पूछा हैः "कल आपने कहा कि महावीर की चिंतना में प्रत्येक कृत्य और कर्म के लिए मनुष्य अकेला पूरा खुद ही जिम्मेवार है। जब कि दूसरी चिंतनाएं कहती हैं कि इतने बड़े संचालित विराट में मनुष्य की बिसात ही क्या? परमात्मा की मर्जी के बिना एक पत्ता भी नहीं हिल सकता। इस चिंतना में कर्म को कहां रखिएगा? एक ओर स्वतंत्रता की घोषणा और दूसरी ओर परतंत्रता की बात है। या यों कहें कि डूइंग एण्ड हैपनिंग में तालमेल कैसे बैठेगा?

तालमेल बिठाने की बात से ही परेशानी शुरू हो जाती है। तालमेल बिठाना
ही मत। दो मार्गों में तालमेल कभी भी नहीं बैठता। दोनों की मंजिल एक हो सकती है, लेकिन मार्गों में तालमेल कभी भी नहीं बैठता। और जो बिठाने की कोशिश करता है, वह मंजिल तक कभी भी नहीं पहुंच पाता।
यह हो सकता है कि पहाड़ पर चलने वाले बहुत से रास्ते एक ही शिखर पर पहुंच जाते हों, लेकिन दो रास्ते दो ही रास्ते हैं और उनको एक करने की कोशिश व्यर्थ है। और जो व्यक्ति दो रास्तों पर तालमेल बिठा कर चलने की कोशिश करेगा, वह चल ही नहीं पाएगा।
मंजिल में समन्वय है, मार्गों में कोई समन्वय नहीं है। लेकिन हम सब मार्गों में समन्वय बिठाने की कोशिश करते हैं और उससे बड़ी कठिनाई होती है।
महावीर का मार्ग है संकल्प का मार्ग, मीरा का मार्ग है समर्पण का मार्ग। ये बिल्कुल विपरीत मार्ग हैं, और मंजिल एक है। मीरा कहती है: "तू" ही सब कुछ है, "मैं" कुछ भी नहीं। मेरा कोई होना ही नहीं है, तेरा ही होना है। इसमें "मैं" को पूरी तरह मिटा देना है। इतना मिटा देना है कि कुछ शेष न रह जाए, शून्य हो जाए। "तू" ही एक मात्र सत्ता बचे, "मैं" बिल्कुल खो जाए। जिस दिन "तू" की ही सत्ता बचेगी, उस दिन "तू" का भी कोई अर्थ न रह जाएगा।

क्योंकि "तू" में जो भी अर्थ है वह "मैं" के कारण है। अगर मैं अपने "मैं" को बिल्कुल मिटा दूं, तो "तू" में क्या अर्थ होगा? यह कहना भी व्यर्थ होगा कि "तू" ही है। यह कौन कहेगा, यह कौन अनुभव करेगा? अगर मैं "मैं" को पूरी तरह मिटा दूं तो "तू" में "तू" का अर्थ ही न रह जाएगा। एक मिट जाए तो दूसरा भी मिट जाएगा।
मीरा कहती है, "मैं" को हम मिटा दें। चैतन्य कहते हैं, "मैं" को हम मिटा दें। कबीर कहते हैं, "मैं" को हम मिटा दें। ये समर्पण के मार्ग हैं। महावीर कहते हैं, "तू" को हम मिटा दें, "मैं" ही बच रहे। यह बिल्कुल उलटा है, लेकिन गहरे में उलटा नहीं भी है, क्योंकि मंजिल एक है। महावीर कहते हैं, "तू" को भूल ही जाओ, उससे कुछ लेना-देना नहीं है, उससे कोई संबंध नहीं है। जैसे "तू" है ही नहीं। आपके लिए बस "मैं" ही है। इस "मैं" को ही अकेला बचा लेना है। जिस दिन "मैं" अकेला बचता है, "तू" बिल्कुल नहीं होता, उस दिन "मैं" का अर्थ खो जाता है। क्योंकि "मैं" में सारा अर्थ "तू" के द्वारा डाला गया है। "मैं" ओर "तू", साथ-साथ ही हो सकते हैं, अलग-अलग नहीं हो सकते। एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। कोई कहता है, सिक्के का सीधा पहलू फेंक दो, तो उल्टा भी उसके साथ फिंक जाएगा। कोई कहता है, सिक्के का उलटा पहलू फेंक दो, सीधा भी उसके साथ फिंक जाएगा।
महावीर कहते हैं, "मैं" ही है अकेला अस्तित्व। जिस दिन "तू" बिल्कुल मिट जाएगा, न कोई परमात्मा, इसलिए महावीर परमात्मा को कोई जगह नहीं देते। परमात्मा का मतलब है "तू" को जगह देना। कोई "तू" नहीं "मैं" ही हूं। तो सारा जिम्मा मेरा है, सारा फल मेरा है, सारे परिणाम मेरे हैं। जो भी भोग रहा हूं, वह "मैं" हूं, जो भी हो सकूंगा, वह भी "मैं" हूं। इस भांति अकेला "मैं" ही बचे एक दिन, और सब "तू" विलीन हो जाएं, उन दिन "मैं" में कोई अर्थ न रह जाएगा, "मैं" भी गिर जाएगा।
चाहे "तू" को बचाएं, चाहे "मैं" को बचाएं, दो में से एक को बचाना मार्ग है। और अंत में जब एक बचता है तो एक भी गिर जाता है, क्योंकि वह दूसरे के सहारे के बिना बच नहीं सकता। कहां से आप शुरू करते हैं, यह अपनी वृत्ति, अपने व्यक्तित्व, अपनी रुझान की बात है, टाइप की बात है। लेकिन दोनों में मेल मत करना। दोनों में कोई मेल नहीं हो सकता, अन्यथा उनका जो नियोजित प्रयोजन है, वही समाप्त हो जाता है। इन दोनों में कोई मेल नहीं है। महावीर और मीरा को कभी भूल कर मत मिलाना। वे बिल्कुल एक दूसरे की तरफ पीठ करके खड़े हैं। जहां से वे चलते हैं, वहां उनकी पीठ है। जहां वे मिलते हैं, वहां वे दोनों ही खो जाते हैं।
मीरा नहीं बचती, क्योंकि "मैं" को खोकर चलती है। और जब "मैं" खो जाता
है तो "तू" भी खो जाता है। महावीर भी नहीं बचते, क्योंकि "तू" को खोकर चलते हैं, और जब "तू" बिल्कुल खो जाता है, तो "मैं" में कोई अर्थ नहीं रह जाता, वह गिर जाता है। दोनों पहुंच जाते हैं परम शून्य पर, परम मुक्ति पर, लेकिन मार्ग बड़े विपरीत हैं।
और हमारी सबकी तकलीफ यह है कि हम सोचते हैं सदा द्वंद्व की भाषा में,
कि या तो महावीर ठीक होंगे, या मीरा ठीक होगी। दोनों में से कोई एक ठीक होगा। ऐसा हमारी समझ में पड़ता है। क्योंकि दोनों कैसे ठीक हो सकते हैं! वहीं गलती शुरू हो जाती है। दोनों ठीक हैं। अगर हम यह भी समझ लेते हैं कि दोनों ठीक हैं, तो फिर हम तालमेल बिठाते हैं। हम सोचते हैं, दोनों ठीक हैं, तो दोनों का मार्ग एक होगा। फिर भूल हो जाएगी। दोनों ठीक हैं और दोनों का मार्ग एक नहीं है।
इस दुनिया में समन्वयवादियों ने जितना नुकसान किया है, उतना और किन्हीं ने भी नहीं किया है। जो हर चीज को मिलाने की कोशिश में लगे रहते हैं वे खिचड़ियां बना देते हैं। सारा अर्थ खो जाता है। भले मन से ही करते हैं वे, कि कोई कलह न हो, कोई झगड़ा न हो, कोई विरोध न हो, लेकिन विरोध है ही नहीं। जिसको वे मिटाने चलते हैं, वह है ही नहीं।
महावीर और मीरा में विरोध नहीं है, मंजिल की दृष्टि से। मार्ग की दृष्टि से भिन्नता है। अलग-अलग छोर से उनकी यात्रा शुरू होती है। और यात्रा हमेशा वहां से शुरू होती है, जहां आप हैं।

ध्यान रखें, मंजिल से उसका कम संबंध है, आपसे ज्यादा संबंध है, कहां आप हैं; मैं पूरब में खड़ा हूं, आप पश्चिम में खड़े हैं। हम दोनों के मार्ग एक से कैसे हो सकते हैं। मैं जहां खड़ा हूं, वहीं से मेरी यात्रा शुरू होगी। आप जहां खड़े हैं, वहीं से आपकी यात्रा शुरू होगी। मीरा जहां खड़ी है, वहीं से चलेगी। महावीर जहां खड़े हैं, वहीं से चलेंगे।
मीरा है स्त्रैण-चित्त की प्रतीक। महावीर हैं पुरुष चित्त के प्रतीक। स्त्रैण चित्त से मतलब स्त्रियों का नहीं है और पुरुष चित्त से मतलब पुरुषों का नहीं है। अनेक स्त्रियों के पास पुरुष चित्त होता है। अनेक पुरुषों के पास स्त्री चित्त होता है। चित्त बड़ी और बात है। स्त्रैण चित्त का अर्थ हैः समर्पण का भाव, अपने को किसी की शरण में खो देने की क्षमता; अपने को मिटा देने की। इतनी ग्राहकता कि मैं न रहूं और दूसरा ही रह जाए।
स्त्री जब प्रेम करती है तो उसका प्रेम बनता है समर्पण। प्रेम का अर्थ हैः मिट जाना। वह जिसे प्रेम करती है, वही रह जाए। इतनी एक हो जाए प्रेम करने वाले के साथ कि कोई भिन्नता न रह जाए। यह है स्त्रैण-चित्त, रिसेप्टिविटी, ग्राहकता, समर्पण, सरेंडर!
पुरुष प्रेम करता है तो समर्पण नहीं है। पुरुष के प्रेम का अर्थ यह होता है कि वह समर्पण को पूरी तरह स्वीकार कर लेता है। जब प्रेमी उसे समर्पित होता है तो वह पूरी तरह स्वीकार कर लेता है। वह इतना आत्मसात कर लेता है अपने में अपनी प्रेयसी को कि प्रेयसी नहीं बचती, वही बचता है। और प्रेयसी इतनी आत्मसात हो जाती है प्रेमी में कि खुद नहीं बचती, प्रेमी ही बचता है। लेकिन पुरुष समर्पण नहीं करता है, इसलिए अगर कोई पुरुष किसी स्त्री को प्रेम करे और समर्पण कर दे उसके चरणों में, तो वह स्त्री उसे प्रेम ही न कर पाएगी। क्योंकि समर्पण करने वाला पुरुष स्त्री जैसा मालूम पड़ेगा।
पुरुष है शिखर जैसा, स्त्री है खाई जैसी। वे दोनों की भाव-दशाएं भिन्न हैं। तो मीरा मिट जाती है और कृष्ण को अपने में समा लेती है। समर्पण उसका रास्ता है। वह कहती है, मैं नहीं हूं, तू ही है, और तेरी इच्छा के बिना कुछ भी नहीं होता। बुरा हो मुझ से, तो तेरा। भला हो मुझ से, तो तेरा। पाप हो मुझसे, तो तेरा, पुण्य हो मुझसे तो तेरा। मेरा कुछ भी नहीं है।
यह मत सोचना कि मीरा यह कह रही है कि भला हो तो मेरा, और बुरा हो तो तेरा। भला करूं तो मैं, और पाप और बुरा हो जाए तो तू-विधि। न, मीरा कह रही है, तू ही है, मैं हूं ही नहीं। इसलिए कुछ भी हो, अब मेरी कोई भी जिम्मेवारी नहीं है। क्योंकि जब मैं नहीं हूं तो मेरी जिम्मेवारी का कोई सवाल ही नहीं है। तू डुबाए, तू बचाए, तू मोक्ष में ले जाए, तू नरक में डाल दे, तेरी मर्जी मेरी खुशी है। अब यह भी नहीं है कि तू मुझे मोक्ष में ले जाएगा तो ही मेरी खुशी होगी। तू ले जाएगा, यही मेरी खुशी है। कहां ले जाएगा, यह तू जान। इतने समग्र से अपने को छोड़ सके कोई, फिर कोई कर्म का बंधन नहीं है। क्योंकि कर्ता ही न रहा।
ठीक से समझ लें, जब तक करने वाले का भाव है तभी तक कर्म का बंधन है। मैं करनेवाला ही नहीं हूं, वही करने वाला है। यह विराट जो अस्तिव है, वही कर रहा है। फिर कोई कर्म का बंधन नहीं है। कर्म बनता है कर्ता के भाव को, अहंकार को। इसलिए मीरा स्त्रैण-चित्त की परिपूर्ण अभिव्यक्ति में अपने को खो देती है। मीरा ही ऐसा करती है, ऐसा नहीं। चैतन्य भी यही करते हैं। इसलिए पुरुष स्त्री का सवाल नहीं है, प्रतीक हैं।
महावीर बिल्कुल भिन्न हैं। महावीर कहते हैं, समर्पण कैसा? किसके प्रति समर्पण? और महावीर कहते हैं कि समर्पण भी मैं ही करूंगा। वह भी मेरा ही कृत्य है। महावीर सोच ही नहीं सकते समर्पण की भाषा, वे पुरुष चित्त के शिखर हैं। इसलिए ईश्वर को उन्होंने इनकार ही कर दिया, क्योंकि ईश्वर होगा तो समर्पण करना ही पड़ेगा।
कोई और नहीं है, मैं ही हूं। इसलिए सारी जिम्मेवारी का बोझ मेरे ही ऊपर है। वह मुझे ही खींचना है। मुझे ही तय करना है, कि क्या करूं और क्या न करूं। और जो भी परिणाम हो, वह मुझे जानना है कि मेरे ही द्वारा हुआ है।

इसलिए "मैं" छोड़ने का कोई उपाय नहीं है। मुझे अपने को बदलना है और शुद्धतर, और शुद्धतर, और शून्यतर; इतना शुद्ध हो जाना है, इतना ट्रांसपेरेंट, पारदर्शी हो जाना है कि कुछ बुरा मुझमें न रह जाए।
इस शुद्ध करने की प्रक्रिया में ही "मैं" विलीन होगा, लेकिन समर्पित नहीं होगा। इसका फर्क समझ लें।
पुरुषों का नहीं है। अनेक स्त्रियों के पास पुरुष चित्त होता है। अनेक पुरुषों के पास स्त्री चित्त होता है। चित्त बड़ी और बात है। स्त्रैण चित्त का अर्थ है-समर्पण का भाव, अपने को किसी की शरण में खो देने की क्षमता; अपने को मिटा देने की। इतनी ग्राहकता कि मैं न रहूं और दूसरा ही रह जाए।
स्त्री जब प्रेम करती है तो उसका प्रेम बनता है समर्पण। प्रेम का अर्थ हैः मिट जाना। वह जिसे प्रेम करती है, वही रह जाए। इतनी एक हो जाए प्रेम करने वाले के साथ कि कोई भिन्नता न रह जाए। यह स्त्रैण-चित्त, रिसेप्टिविटी, ग्राहकता, समर्पण, सरेंडर।
पुरुष प्रेम करता है तो समर्पण नहीं है। पुरुष के प्रेम का अर्थ यह होता कि वह समर्पण को पूरी तरह स्वीकार कर लेता है। जब प्रेमी उसे समर्पित होता है तो वह पूरी तरह स्वीकारकर लेता है। वह इतना आत्मसात कर लेता है अपने में अपनी प्रेयसी को कि प्रेयसी नहीं बचती, वही बचता है। और प्रेयसी इतनी आत्मसात हो जाती है प्रेमी में कि खुद नहीं बचती, प्रेमी ही बचता है। लेकिन पुरुष समर्पण नहीं करता है, इसलिए अगर कोई पुरुष किसी स्त्री को प्रेम करे और समर्पण कर दे उसके चरणों में, तो वह स्त्री उसे प्रेम ही न कर पाएगी। क्योंकि समर्पण करने वाला पुरुष स्त्री जैसा मालूम पड़ेगा।
पुरुष है शिखर जैसा, स्त्री है खाई जैसी। वे दोनों की भाव-दशाएं भिन्न हैं। तो मीरा मिट जाती है और कृष्ण को अपने में समा लेती है। समर्पण उसका रास्ता है। वह कहती है, मैं नहीं हूं, तू ही है, और तेरी इच्छा के बिना कुछ भी नहीं होता। बुरा हो मुझ से, तो तेरा। भला हो मुझ से, तो तेरा। पाप हो मुझसे, तो तेरा, पुण्य हो मुझसे तो तेरा। मेरा कुछ भी नहीं है।
यह मत सोचना कि मीरा यह कह रही है कि भला हो तो मेरा, और बुरा हो तो तेरा। भला करुं तो मैं, और पाप और बुरा हो जाए तो तू, विधि। न, मीरा कह रही है, तू ही है, मैं हूं ही नहीं। इसलिए कुछ भी हो, अब मेरी कोई भी जिम्मेवारी नहीं है। क्योंकि जब मैं नहीं हूं तो मेरी जिम्मेवारी का कोई सवाल ही नहीं है। तू डुबाए, तू बचाए, तू मोक्ष में ले जाए, तू नरक में डाल दे, तेरी मर्जी मेरी खुशी है। अब यह भी नहीं है कि तू मुझे मोक्ष में ले जाएगा तो ही मेरी खुशी होगी। तू ले जाएगा यही मेरी खुशी है। कहां ले जाएगा, यह तू जान।
मीरा समर्पण करेगी, "मैं" खो जाएगा। महावीर शुद्ध करेंगे, शून्य करेंगे और "मैं" खो जाएगा। लेकिन महावीर श्रम करेंगे, मीरा समर्पण करेगी। इसलिए महावीर और बुद्ध संस्कृति को हम कहते हैं, "श्रमण संस्कृति।"
श्रम पर उनका जोर है, पुरुषार्थ पर उनका बल है, कुछ करो। इसलिए महावीर कहते हैं, मैं श्रम करूंगा अपने साथ और जो भी परिणाम होगा- नरक होगा तो भी जानूंगा कि मेरे द्वारा, और मोक्ष होगा तो भी जानूंगा कि मेरे द्वारा।
लेकिन किसी और पर जिम्मेवारी नहीं रखूंगा।
यह पुरुष चित्त का लक्षण है कि वह किसी और पर जिम्मेवारी नहीं रखेगा।
आप कहां हैं, इसे सोच लेना चाहिए। क्या आप पुरुष हैं, क्या आप स्त्री हैं? चित्त की दृष्टि से, शरीर की दृष्टि से नहीं।
आपका भाव भीतर समर्पण करने का है या संकल्प को सम्हाले रखने का है? तो
एक बात तय कर लें, दोनों के बीच मत दौड़ना। क्योंकि नपुंसक के लिए कोई भी जगह नहीं है। वे जो समझौते वाले हैं, वे अक्सर नपुंसक पैदा कर देते हैं। वे जो समन्वयवादी हैं, जो कहते हैं, दोनों में थोड़ा तालमेल कर लो, थोड़ा मीरा का भी लो, थोड़ा महावीर का भी लो, थोड़ा कुरान का भी, थोड़ा गीता का भी--अल्ला- ईश्वर तेरे नाम, दोनों को जोड़ो, फिर उनको मिला कर चलो--इस तरह के लोग सारे मार्गों को भ्रष्ट कर देते हैं।
हर मार्ग की अपनी शुद्धता है, प्योरिटी है। और बड़े से बड़ा अन्याय जो
हम कर सकते हैं, वह किसी मार्ग की शुद्धता को नष्ट करना है। हर मार्ग पूरा

है। पूरे का अर्थ यह है कि उससे मंजिल तक पहुंचा जा सकता है। दूसरे मार्ग की कोई भी जरूरत नहीं है। इसका यह मतलब नहीं कि दूसरे मार्ग से नहीं पहुंचा जा सकता। दूसरा मार्ग भी इतना ही पूरा है, उससे भी पहुंचा जा सकता है। आप मार्गों को मिलाने की बजाय यही सोचना कि आप कहां खड़े हैं। कहां से आपके लिए निकटतम मार्ग मिल सकता है। फिर दूसरे की भूल कर मत सुनना। क्योंकि हम बड़े अजीब लोग हैं। हम इसकी फिक्र ही नहीं करते कि कौन कहां खड़ा है।
एक मित्र हैं। उनकी पत्नी का भाव है भक्ति का, समर्पित होने का, छोड़ देने का, परमात्मा के चरणों में। मित्र का भाव नहीं है। उनका भाव है अपने को शुद्ध करने का, रूपांतरित करने का, बदलने का, ठीक है। लेकिन वह मित्र अपनी पत्नी को भी भक्ति में नहीं जाने देते। क्योंकि वे मानते हैं, कि वे जो कहते हैं, वही ठीक है। वह उनके लिए ठीक है, उनकी पत्नी के लिए ठीक नहीं है। लेकिन जो पति के लिए ठीक है वह पत्नी के लिए भी ठीक होना चाहिए, ऐसी उनकी धारणा है। अगर कल पत्नी भी उनकी उन पर जोर देने लगे कि तुम भी चलो मंदिर में, और नाचो और कीर्तन करो, और गाओ। तो मैं कहूंगा, वह भी गलती कर रही है। क्योंकि जो उसके लिए ठीक है, वह उसके पति के लिए ठीक है, ऐसा मानने का कोई भी कारण नहीं है।
असल में दूसरे पर कभी मत थोपना अपना ठीक होना। क्योंकि आपको पता नहीं, दूसरा कहां खड़ा है। आप जहां खड़े हैं, अपना रास्ता आप चुन लेना। दूसरा जहां चल रहा है, उसे चलने देना। अकसर बहुत लोग दूसरों के रास्ते पर बड़ी बाधाएं उपस्थित करते हैं। उसका कारण है, कि वह समझ ही नहीं पाते कि दूसरा रास्ता भी हो सकता है।
हम सबको ऐसा ख्याल है कि सत्य एक है, बिल्कुल ठीक है। लेकिन उसके कारण हमको एक ख्याल और पैदा हो गया कि सत्य का मार्ग भी एक है, वह बिल्कुल गलत है। सत्य एक है, सौ प्रतिशत ठीक। सत्य का मार्ग एक है, सौ प्रतिशत गलत। सत्य के मार्ग अनन्त हैं, अनेक हैं। असल में जितने पहुंचने और चलने वाले लोग हैं, उतने मार्ग हैं। हर आदमी पगडंडी से चलता है, अपनी ही पगडंडी से चलता है। और अस्तित्व की यात्रा में हम अलग-अलग जगह खड़े हैं, और अस्तित्व की यात्रा में हमने अलग-अलग चित्त निर्मित कर लिया है, जन्मों- जन्मों में हम सबके पास अलग-अलग भाव-दशा निर्मित हो गई है। हम उससे ही चल सकते हैं। कोई उपाय नहीं है दूसरे के मार्ग पर चलने का, कोई उपाय नहीं है। जैसे दूसरे के पैरों से चलने का कोई उपाय नहीं है। दूसरे के मार्ग पर भी चलने का कोई उपाय नहीं है। और जब एक दूसरे को लोग अपने मार्गों पर घसीटते हैं तो पंगु कर देते हैं, उनके पैर काट डालते हैं। बहुत हिंसा होती है ऐसे, लेकिन हमारे ख्याल में नहीं आती।
तालमेल बिठाना मत। अगर यह बात ठीक लगती हो कि परमात्मा की मज्रू के बिना पत्ता भी नहीं हिलता तो फिर पूरे के पूरे इसमें डूब जाना, ताकि मैं मिट जाए। लेकिन यह समग्र फिर एक आदमी आकर पत्थर मार जाए सिर में तो यह मत सोचना कि इस आदमी ने पत्थर मारा। फिर सोचना कि परमात्मा की इच्छा के बिना पत्ता भी नहीं हिलता।
लेकिन हम जिनको बहुत विचारशील लोग कहते हैं, वे भी भ्रांतियां करते हैं, और हम भी उन भ्रांतियों को समझ नहीं पाते, क्योंकि अगर हमें रुचिकर लगती हैं, तो समझने की हम फिक्र ही नहीं करते।
महात्मा गांधी की हत्या की बात चलती थी, हत्या के पहले। तो सरदार वल्लभ भाई पटेल ने उनसे जाकर कहा कि मैं सुरक्षा का इंतजाम करूं? तो गांधी जी ने जो कहा वह पूरे मुल्क को प्रीतिकर लगा, लेकिन बिल्कुल नासमझी से भरी हुई बात है।
गांधीजी ने कहा कि उसकी मर्जी के बिना मुझे कोई हटा भी कैसे सकेगा। यह बात बिल्कुल ठीक है। अगर ईश्वर चाहता है तो मुझे उठा लेगा, तुम मुझे कैसे बचाओगे। यह उसकी मर्जी के बिना पत्ता नहीं हिलता, इस विचार का अनुषंग है। अगर वह मुझे बचाना चाहता है तो कोई मुझे उठा नहीं सकता, और वह मुझे उठाना चाहता है तो कोई मुझे बचा नहीं सकता।

सरदार वल्लभ भाई को भी लगा, तर्क करने का कोई उपाय न रहा। मैं उनकी जगह होता तो गांधीजी को कहता कि वह खुद तो हत्या करने आएगा नहीं, नाथूराम गोडसे का उपयोग करेगा, और अगर उसको बचाना है तो भी खुद बचाने नहीं आएगा, वल्लभ भाई पटेल का उपयोग करेगा।
तो आधी बात कह रहे हैं आप। आप कहते हैं कि अगर वह उठाना चाहेगा तो कोई बचा नहीं सकेगा। और जो उठानेवाले हैं वे चारों तरफ घूम रहे हैं। और जिनके द्वारा वह बचा सकता है, वे इसलिए रुक जाएंगे कि हम क्या बचा सकते हैं। अगर मैं गांधीजी की जगह होता तो मैं कहता कि तुम अपनी कोशिश करो, नाथूराम गोडसे को अपनी कोशिश करने दो। आखिर उसकी मज्रू जो होगी, लेकिन तुम दोनों अपनी कोशिश करो, क्योंकि उसकी मज्रू भी तो किसी के द्वारा।
गांधी जी ने आधी बात कही। उसमें उन्होंने एक पत्ते को तो हिलने दिया, दूसरे पत्ते को रोकने की कोशिश की। तो सब उसकी मर्जी से हो रहा है, उन्होंने कहा जरूर, लेकिन उनको भी साफ नहीं है, नहीं तो वल्लभ भाई को भी रोकने का कोई अर्थ नहीं है। अगर उसकी ही मर्जी से यह सरदार भी हिल रहे हैं तो इनको भी हिलने दो। लेकिन गोडसे हिलता रहेगा उसकी मर्जी से और सरदार गांधी जी की मर्जी से रुक रहे हैं।
जीवन जटिल है, इसलिए मैं मानता हूं कि गांधीजी का पूरा भरोसा नहीं है उसकी मर्जी पर, नहीं तो वे कहते कि ठीक है। किसी को वह इशारा कर रहा होगा मुझे मारने का, तुम्हें इशारा करता है मुझे बचाने का; जो उसकी मज्रू, वह हो। मैं बीच में नहीं आऊंगा। लेकिन वे बीच में आए और उन्होंने सरदार को रोका। नाथूराम को तो नहीं रोक सकते, सरदार को रोक सकते हैं।
उसकी मर्जी पर पूरा भरोसा नहीं है। हालांकि ऐसी आलोचना किसी ने भी नहीं की। किसी ने भी यह नहीं कहा कि गांधी जी को उसकी मजीं पर पूरा भरोसा नहीं है। पूरा भरोसा नहीं है। बाएं हाथ को तो मानते हैं उसका हाथ और दाएं हाथ को नहीं मानते हैं उसका हाथ।
हम भी ऊपर से देखेंगे तो हमें भी ख्याल में नहीं आएगा। लेकिन जिंदगी ज्यादा गहरी है, जैसा हम ऊपर से देखते हैं, उतनी उथली नहीं है।
अगर सच में ही इस बात का भरोसा है कि उसकी मर्जी, तो फिर ठीक है। फिर आपके लिए कुछ भी अपनी तरफ से जोड़ने का कोई सवाल नहीं है। फिर आप बहते हैं, फिर आप पूरे ही बहें और जो भी हो, ठीक है। अगर इसमें आपको अड़चन मालूम पड़ती हो कि ऐसे हम अपने को कैसे छोड़ सकते हैं, नदी कहीं भी बहा ले जाए, पता नहीं कहां; तो फिर नदी के बाहर निकल कर खड़े हो जाएं। फिर यह बात ही छोड़ दें कि उसकी मज्रू के बिना पत्ता नहीं हिलता। फिर तो एक ही बात स्मरण रखें कि पत्ता हिलेगा तो मेरी मर्जीं से, नहीं हिलेगा तो मेरी मर्जी से। हिलता है तो मैंने चाहा होगा, इसलिए हिलता है, चाहे मुझे पता न हो; और नहीं हिलता है तो मैंने चाहा होगा कि न हिले, चाहे मुझे पता न हो। मैंने जो किया है, उसके कारण हिलता है और मैं जो किया हूं, उसके कारण रुकता है। फिर सारी जिम्मेवारी अपने पर ले लेना।
दोनों तरह से लोग पहुंच गए हैं, लेकिन दोनों को मिलाकर अब तक सुना नहीं कि कोई पहुंचा हो। दोनों को मिलाने वाला वही आदमी है, जो चलना ही नहीं चाहता। असल में दोनों को मिलाना एक तरकीब है, एक डिसेप्शन, एक वंचना है, खुद को धोखा है। उसका मतलब यह कि जब जैसा मतलब होगा, जब जैसा अपने अनुकूल होगा, उसको कह लेंगे। जब कोई बुरी बात घटेगी तो कहेंगे, उसकी मज्रू और जब कुछ ठीक हो जाएगा तो कहेंगे, अपना संकल्प।
मिलाने का मतलब यह होता है कि हम दोनों नावों पर पैर रखेंगे। इसमें होशियारी तो है, चालाकी तो है, लेकिन बहुत बुद्धिमानी नहीं है।
चालाक आदमी दोनों नाव पर पैर रखता है, पता नहीं किसकी कब जरूरत पड़ जाए। चालाकी उनकी ठीक है, लेकिन मूढ़तापूर्ण है, क्योंकि दो नाव पर कोई भी सवार होकर चल नहीं सकता। दो नावों पर जो सवार होता है, वह डूबेगा। और अगर नहीं डूबना है तो नावों को खड़ा रखना पड़ेगा, चलाना नहीं पड़ेगा। फिर वहीं खड़ा रहेगा। वह भी डूबना ही है।
महावीर को समझते वक्त मीरा को बीच में मत लाएं। महावीर के रास्ते पर मीरा से कहीं भी मिलन नहीं होगा। और मीरा के रास्ते पर महावीर से कोई

मुलाकात नहीं होगी। आखिर में जहां महावीर भी खो जाते हैं और मीरा भी खो जाती है, वहां मिलन है।
जब तक महावीर हैं, तब तक संकल्प रहेगा। जब तक मीरा है, तब तक समर्पण रहेगा। और जहां समर्पण भी समाप्त हो जाता है, संकल्प भी समाप्त हो जाता है। मंजिल जब आती है तो रास्ते समाप्त हो जाते हैं।
मंजिल का मतलब क्या है? मंजिल का मतलब है, रास्ते का समाप्त हो जाना, रास्ते से मुक्त हो जाना। मंजिल का मतलब है, रास्ता खत्म हुआ। मंजिल रास्ते की पूर्णता है। और जो भी चीज पूर्ण हो जाती है वह मर जाती है, मृत्यु हो जाती है। फल पक जाता है, गिर जाता है। रास्ता पक जाता है, खो जाता है। फिर मंजिल रह जाती है।
मंजिल पर मिलन है। सागर में नदियां मिल जाती हैं। जो नदी पूरब की तरफ बही, वह भी जाकर गिर जाती है हिंद महासागर में। जो पश्चिम की तरफ बही है, वह भी जाकर गिर जाती है हिंद महासागर में। अगर रास्ते में उन दोनों का कहीं मिलना हो तो वे नहीं मान सकतीं कि हम दोनों सागर में जा रहे हैं। पूरब चलनेवाली नदी कहेगी पागल हो गई हो, पश्चिम जा रही हो, सागर पूरब है। पश्चिम जाने वाली नदी कहेगी, पागल तू है, सागर पश्चिम है। सदा से हम गिरते रहे हैं और जानते रहे हैं कि सागर पश्चिम है।
सागर सब ओर है। सागर का मतलब ही है जो सब ओर है। कहीं से भी जाओ, पहुंचना हो सकता है। एक ही बात ध्यान रखना, जाना, रुक मत जाना। तालाब भर नहीं पहुंचते, नदियां तो सब पहुंच जाती हैं। और समझौतावादी तालाब की तरह हो जाते हैं। ठहर जाते हैं, थोड़ा पूरब भी चलते हैं, थोड़ा पश्चिम भी चलते हैं। फिर चारों दिशाओं में चलने की वजह से चक्कर लगाने लगते हैं, फिर अपनी जगह पर ही घूमते रहते हैं। वहीं सूखते हैं, सड़ते हैं।
समझौता नहीं है मार्ग धर्म में, दर्शन में भला हो, विचार में भला हो। जिनको चलना है उनके लिए समझौता मार्ग नहीं है, उनके लिए तो स्पष्ट चुनाव। और वह चुनाव करना अपनी आंतरिक भाव-दशा के अवलोकन से, दूसरे की बातों से नहीं। अपने को सोचना कि मैं क्या कर सकता हूं, समर्पण या संकल्प।
एक मित्र ने पूछा है कि मैं तो हूं बहुत पापी। आकांक्षा होती है प्रभु
तक पहुंचने की; क्या मुझ जैसे पापी के लिए प्रभु का द्वार खुला होगा? मैं बहना ही चाहूं, बहता ही रहूं, तो भी क्या परमात्मा के सागर को पा सकूंगा? यह महत्वपूर्ण है भाव, क्योंकि जो जान लेता है कि मैं पापी हूं, उसके जीवन में पुण्य का प्रारंभ हो जाता है। यह एक पंडित का प्रश्न नहीं है, एक धार्मिक व्यक्ति का प्रश्न है। पंडित ज्ञान की बातों में से प्रश्न उठाता है, धार्मिक व्यक्ति अपनी अंतर-दशा में से प्रश्न उठाता है। पंडित के प्रश्न शास्त्रों से आते हैं, धार्मिक व्यक्ति के प्रश्न अपनी स्थिति से आते हैं।
यह भाव, कि मैं पापी हूं, धार्मिक भाव है। यह जानना कि मेरा पहुंचना मुश्किल है, पहुंचने के लिए पहला कदम है। यह मानना कि क्या मेरे लिए भी प्रभु के द्वार खुले होंगे, द्वार पर पहली दस्तक है।
वे ही पहुंच पाते हैं जो इतने विनम्र हैं। जो बहुत अकड़ से चलते हैं, जो सोचते हैं कि दरवाजे का क्या सवाल, परमात्मा बीच में स्वागत के लिए खड़ा होगा वंदनवार बनाकर, वे कभी नहीं पहुंच पाते। क्योंकि उस परम सत्ता में लीन होना है। लीनता यहीं से शुरू होगी, आपकी तरफ से शुरू होगी। परम सत्ता के कोई द्वार नहीं हैं कि बंद हों।
समझ लें।
उसके कोई दरवाजे नहीं हैं, उसके महल के, कि बंद हों। परम सत्ता खुलापन है। परम सत्ता का अर्थ हैः खुला हुआ होना। खुली ही हुई है परम सत्ता। सवाल उसकी तरफ से नहीं है कि वह आपको रोके, बुलाए, खींचे। सवाल सब आपकी तरफ से है कि अब आप भी उस खुलेपन में उतरने को तैयार हैं? आप कहीं बंद तो नहीं हैं? परमात्मा बंद नहीं है। बंद आप तो नहीं हैं?
सूरज निकला है और मैं अपने द्वार दरवाजे बंद करके घर में आंख बंद किए बैठा हूं और सोच रहा हूं कि अगर मैं द्वार के बाहर जाऊं तो सूरज से मेरा मिलन होगा? मैं आंख खोलूं तो सूरज मुझ पर कृपा करेगा?

सूरज की कृपा बरस ही रही है। अकृपा कभी होती ही नहीं। वह सदा मौजूद ही
है द्वार पर, आप द्वार खोलें। और द्वार आपने बंद किए हैं, उसने बंद नहीं किए हैं। आंख आपकी है, आप आंख खोलें। आंख आपने बंद की है।
परमात्मा है सदा खुला हुआ, हम हैं बंद। और हमारे बंद होने में सबसे बड़ा कारण क्या है? सबसे बड़ा कारण यह है हम यह मान कर चलते हैं कि हम तो खुले हुए हैं। अंधे को अगर यह ख्याल हो कि मेरी आंखें तो खुली हुई हैं, तब बहुत अड़चन हो जाती है। हम सब मानते हैं, हम तो खुले ही हुए हैं।
हम खुले हुए नहीं हैं, हम बिल्कुल बंद हैं। और अगर परमात्मा हमारे द्वार पर भी आ जाए तो शायद ही संभावना है कि हम उसे भीतर आने दें। बहुत मुश्किल है कि हम उसके लिए दरवाजा खोलें, क्योंकि वह इतना अजनबी होगा, हमने उसे कभी देखा नहीं। उससे ज्यादा अजनबी कोई भी न होगा।
हम पहले पूछेंगे, कहां के रहने वाले हो? हिंदू हो कि मुसलमान कि जैन? कोई कैरेक्टर सर्टिफिकेट साथ लाए हो? परमात्मा तो इतना स्ट्रेंजर होगा, अगर हमारे द्वार पर आ जाए, अगर परम सत्य हमारे पास आ जाए तो हम भाग खड़े होंगे। क्योंकि हम उसे बिल्कुल न पहचान पाएंगे। हम पहचानते उसे हैं जिसे हम पहले से जानते हैं। जिसे हमने कभी जाना नहीं, हम उसे पहचानेंगे कैसे! हम उससे ऐसे सवाल पूछेंगे, हम उसकी इंक्वायरी करेंगे। हम जाकर पुलिस दफ्तर में पूछताछ करेंगे कि यह आदमी कैसा है? घर में ठहरना चाहता है। और हम द्वार बंद कर लेंगे।
अजनबियों के लिए हमारे द्वार खुले हुए नहीं हैं। और परमात्मा से ज्यादा अजनबी कौन होगा? और हमारी नीति, हमारे चरित्र के नियम सब छोटे पड़ जाएंगे। उनसे हम उसे नाप न पाएंगे। बड़ी अड़चन होगी। हमने बहुत बार यह किया है।
हम, महावीर मौजूद हों, तो नाप नहीं पाते। बुद्ध मौजूद हों तो नाप नहीं पाते। जीसस मौजूद हों, तो नाप नहीं पाते। हम ऐसे बेहूदे सवाल पूछते हैं बुद्ध से, महावीर से, जीसस से, वह असल में हम अजनबीपन के कारण पूछते हैं। जीसस एक वेश्या के घर में ठहर गए। आपने क्या पूछा होता सुबह? जीसस को घेर कर आप क्या सवाल उठाते?
हम वही सवाल उठा सकते हैं, जो हम वेश्या के घर ठहरे होते तो जो हमने किया होता, वही सवाल हम उठाएंगे। हम यह सोच ही नहीं सकते कि जीसस के होने का कोई और अर्थ हो सकता है।
जीसस को कोई बुद्ध समझ सकता था।
बुद्ध का एक शिष्य एक वेश्या के घर ठहर गया। सारे भिक्षु परेशान हो गए
और उन्होंने आकर बुद्ध को शिकायत की कि यह तो बहुत अशोभन बात है कि हमारा एक भिक्षु और वेश्या के घर ठहर जाए!
ये जो भिक्षु थे, ये ठहरना चाहते होंगे वेश्या के घर। यह ईर्ष्या से उठा हुआ सवाल था। बुद्ध ने कहा कि अगर तुम ठहर जाते तो चिंता होती। जो ठहर गया उसे मैं जानता हूं। लेकिन शिष्यों ने कहा कि आप यह अन्याय कर रहे हैं। इससे तो रास्ता खुल जाएगा। इससे तो और लोग भी ठहरने लगेंगे। और लोग--मतलब वे अपने को सोच रहे हैं कि क्या गुजरेगी उन पर अगर वे वेश्या के घर ठहर जाएं।
हम हमेशा अपने से सोचते हैं। और तो कोई उपाय भी नहीं है, हम अपने से ही सोचते हैं।
और वेश्या सुंदरी है, उन भिक्षुओं ने कहा, बहुत सुंदरी है। और उसके आकर्षण से बचना बहुत मुश्किल है। रातभर भिक्षु वहीं ठहर गया। और हमने तो यह भी सुना है कि रात, आधी रात तक गीत भी चलता रहा, नाच भी चलता रहा, यह क्या हो रहा है?
बुद्ध ने कहा, मैं उस भिक्षु को भलीभांति जानता हूं। और अगर मेरा भिक्षु वेश्या के घर ठहरता है, तो मेरा भिक्षु वेश्या को बदलेगा, न कि वेश्या मेरे भिक्षु को। और अगर मेरे भिक्षु को वेश्या बदल लेती है तो वह भिक्षु इस योग्य ही न था कि अपने को भिक्षु कहे। वह ठीक ही हुआ। इसमें बिगड़ा क्या? जो बदला जा सकता था वही बदला जाएगा। और सुबह ऐसा हुआ कि

भिक्षु वापस आया और पीछे उसके वेश्या आई। और बुद्ध ने अपने भिक्षुओं को कहा, इस वेश्या को देखो।
उस वेश्या ने कहा कि मैं आपके चरणों में आना चाहती हूं, क्योंकि पहली दफे मुझे एक पुरुष मिला, जिसको मैं डांवाडोल न कर सकी। अब मेरे मन में भी यह भाव उठा कि कब ऐसा क्षण मुझे भी आएगा कि कोई मुझे डांवाडोल न कर सके। जो इस भिक्षु के भीतर घटा है, वही मेरे भीतर भी घट जाए, अब इसके सिवाय और कोई आकांक्षा नहीं है। तो बुद्ध ने अपने भिक्षुओं से कहा कि तुम देखो।
लेकिन कठिन है। हम जो हैं, वही हम सोच पाते हैं। इसलिए बुद्ध हों, महावीर हों, हम अपनी तरफ से सोचते हैं। हम अपने ढंग से सोचते हैं। कोई उपाय भी नहीं है। हमारी भी मजबूरी है। हम वही ढंग जानते हैं, हम वही दृष्टि जानते हैं, हम अपनी आंख से ही तो देखेंगे! किसी और की आंख से कैसे देख सकते हैं?
परमात्मा अगर आपके द्वार पर भी आ जाए तो आप नहीं पहचानेंगे, यह पक्का है। और आप उसको ठहरने भी नहीं देंगे, यह पक्का है। नहीं, लेकिन परमात्मा आपके द्वार पर आता भी नहीं। वह सदा खुला हुआ आकाश है चारों तरफ।
परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं है। परमात्मा है खुला हुआ आकाश। परमात्मा
है स्पेस, चारों तरफ। आप कूद जाएं, वह आकाश आपको लीन करने में सदा तत्पर है। आप खड़े रहें, तो वह आकाश आपको खींच कर जबरदस्ती लीन नहीं करना चाहता है। क्योंकि उतनी हिंसा भी अस्तित्व को स्वीकार नहीं है। आप स्वतंत्र हैं रुकने को, कूद जाने को। सागर मौजूद है, नदियों को निमंत्रण भी नहीं देता, बुलाता भी नहीं। नदियां स्वतंत्र हैं, रुक जाएं, तालाब बन जाएं, छलांग ले लें, सागर में खो जाएं।
जिस व्यक्ति को यह ख्याल हो रहा हो कि मैं पापी हूं, यह ख्याल महत्वपूर्ण है। क्योंकि इस ख्याल में ही अहंकार गलता है। जिसको यह ख्याल हो रहा हो कि मेरे लिए उसके द्वार न खुले होंगे, वह निश्चिंत रहे, उसके लिए द्वार बिल्कुल ही खुले हुए हैं। और बहता रहे और धीरे-धीरे अपने को डुबाता रहे। एक न एक दिन वह घड़ी घटती है, जब भीतर वह जो अहंकार की छोटी सी टिमटिमाती ज्योति है, वह बुझ जाती है। और जिस दिन वह टिमटिमाती ज्योति बुझती है, उसी दिन हमें पता चलता है उस सूर्य का, जो हमेशा मौजूद था; लेकिन हम अपनी टिमटिमाती ज्योति में इतने लीन थे कि सूर्य की तरफ आंख भी नहीं जाती थी। जब तक मैं न बुझ जाऊं, तब तक मुझे उसका पता नहीं चलता जो चारों तरफ मौजूद है; क्योंकि मैं अपने में ही संलग्न हूं, अपने में ही लगा हुआ हूं। टू मच आक्युपाइड विद माईसेल्फ, सारी व्यस्तता अपने में लगी है।
जिस दिन जीसस को सूली हुई, उस दिन गांव में एक आदमी की दाढ़ में दर्द था। सारा गांव जीसस को सूली देने जा रहा है। जीसस कंधे पर अपना क्रास लेकर उस मकान के सामने से निकल रहे हैं, और वह आदमी बैठा है, और जो भी रास्ते से निकलता है वह अपने दाढ़ के दर्द की उससे चर्चा करता है। वह कहता है, आज बड़ी तकलीफ है दांत में। लोग कहते हैं, छोड़ो भी। पता है कुछ? आज मरियम के बेटे जीसस को सूली दी जा रही है। वह आदमी सुनता है, लेकिन सुनता नहीं। वह कहता है, होगा। लेकिन दांत में बहुत दर्द है।
जिस दिन जीसस को सूली हुई उस दिन वह आदमी अपने दांत में ही उलझा था। उस दिन इस पृथ्वी का बड़े से बड़ा चमत्कार घट रहा था, लेकिन वह आदमी अपने दांत के दर्द में उलझा था। और हम सब ऐसे ही लोग हैं जिनकी दाढ़ में दर्द है। अपनी अपनी दाढ़ का दर्द लिए बैठे हैं। चारों तरफ विराट घटना घट रही है, हर पल। वह मौजूद है सब तरफ, लेकिन हमारी दाढ़ दुख रही है। हम उसी में लीन हैं।
और अहंकार बड़ी पीड़ा का घाव है। दाढ़ भी वैसा दर्द नहीं देती, जैसा अहंकार देता है। ख्याल है आपको, दाढ़ के दर्द में थोड़ी मिठास भी होती है, दर्द भी होता है, मिठास भी होती है। अहंकार के दर्द में बड़ी मिठास होती है। दर्द होता है, तब हम सोचते हैं छोड़ दें, लेकिन मिठास इतनी होती है कि छोड़ भी नहीं पाते। उस मिठास के कारण हम दर्द को भी झेलते हैं। जब कोई गाली देता है तब चोट लगती है, दर्द होता है। जब कोई फूलमाला गले में डालता है, तब मिठास भर जाती है। सारे शरीर में रोयां-रोयां पुलकित हो जाता है।

ये दोनों बातें एक साथ छोड़नी पड़ेंगी। अगर गाली का दुख छोड़ना है तो फिर फूलमाला का सुख भी छोड़ देना पड़ेगा। वह सुख इतना मीठा है कि हम कितने ही दुख उसके लिए झेल लेते हैं। हजार कांटे हम झेल लेते हैं, एक फूल के लिए। हजार निन्दा झेल लेते हैं, एक प्रशंसा के लिए। मिठास है बहुत। इस मिठास को और पीड़ा को एक साथ देखना होगा और धीरे-धीरे इस "मैं" के घाव को छोड़ते जाना होगा। एक दिन, जिस दिन "मैं" नहीं रहता, उस दिन मिलन हो जाता है।
इस "मैं" के न रहने के दो रास्ते हैं--एक रास्ता है महावीर का, एक है मीरा का। एक रास्ता है कि इस "मैं" को इतना शुद्ध करो, इतना परिशुद्ध करो कि उसकी शुद्धता के कारण ही वह शून्य होकर तिरोहित हो जाए। एक रास्ता है, यह जैसा है, वैसा ही परमात्मा के चरणों में रख दो। क्योंकि उसके चरण में रख देना आग में रख देना है। वह आग जला लेगी, निखार लेगी। दोनों कठिन हैं, ध्यान रखना।
आमतौर से लोग सोचते हैं कि दूसरी बात सरल मालूम पड़ती है। समर्पण कर दिया, खत्म हुआ मामला। लेकिन समर्पण कर दिया, समर्पण आसान नहीं है। न तो संकल्प आसान है, न समर्पण आसान है, दोनों एक से कठिन हैं या एक से आसान हैं। कभी भूलकर भी यह मत सोचना कि यह सरल है। सरल का मतलब यह कि जिसमें आपको धोखा देने की सुविधा हो, उसको आप सरल समझते हैं। कहा कि कर दिया समर्पण। लेकिन समर्पण आसान है!
कोई आकर मेरे पास कहते हैं कि मैं सब समर्पण आपको करता हूं। अब आप जो चाहें करें। उनसे मैं कहता हूं, कूद जाओ वुडलैंड के ऊपर से। वे कूदनेवाले नहीं हैं। कह रहे थे कि समर्पण कर दिया। मैं भी कुदाने वाला नहीं हूं, लेकिन क्या भरोसा! कूदने वाले वे नहीं हैं। जैसे ही मैं यह कहूंगा, वैसे ही वे कहेंगे कि क्या कह रहे हैं आप! वे भूल गए समर्पण।
समर्पण का अर्थ क्या होता है?
बोधिधर्म भारत से चीन गया तो नौ साल तक दीवाल की तरफ मुंह रखता था और पीठ लोगों की तरफ रखता था। बोलता था तो मेरे जैसा नहीं। आपकी तरफ पीठ, मुंह दीवाल की तरफ। हालांकि बहुत फर्क नहीं पड़ता, क्योंकि जब मैं बोल रहा हूं, तब आप पीठ मेरी तरफ किए हुए हैं, फिर कोई फर्क नहीं पड़ता। मुंह आपका दीवार की तरफ है।
बोधिधर्म से लोग पूछते हैं, यह क्या करते हो? तो बोधिधर्म कहता कि जब ठीक आदमी आ जाएगा, जो समर्पण करने को तैयार है, तो मुंह उस तरफ कर लूंगा। अभी व्यर्थ के लोगों की शक्ल देखने से फायदा भी क्या है? क्या तुम हो, वह आदमी जो समर्पण करेगा? वह आदमी कहते कि अभी लड़की की शादी करनी है, अभी लड़के बड़े हो रहे हैं, जरा व्यवस्था कर लें, पिता बूढ़े हैं, उनकी सेवा करनी है। फिर कभी आएंगे।
फिर आया हुई-नेंग नाम का आदमी। उसने आकर कुछ कहा नहीं। उसने अपना एक हाथ काटा और बोधिधर्म के सामने कर दिया, और कहा कि तत्काल इस तरफ मुंह करो, नहीं तो गर्दन काटकर रख दूंगा। बोधिधर्म तत्काल लौटा, क्योंकि अभी यह आदमीबोधिधर्म ने कहा, तुम्हारी ही प्रतीक्षा थी, हुई-नेंग। तुम आ गए वक्त पर, तो जो मुझे कहना है, तुमसे कह दूं और अब मैं मर जाऊं। मर मुझे जाना चाहिए बहुत पहले। वक्त मेरा बहुत पहले पूरा हो चुका है। सिर्फ उस आदमी की तलाश में था जिसे मैं जो जान गया हूं, वह दे दूं। क्योंकि हजारों-हजारों वर्षों में कभी कोई आदमी यह जान पाता है। अगर मैं इसे बिना बताए मर जाऊं तो हजारों वर्ष तक अंतराल पड़ जाएगा। तो उस आदमी की तलाश में था, लेकिन मैं यह उससे ही कह सकता हूं जो मरने को तैयार हो। क्योंकि यह एक बहुत गहरी भीतरी मौत है।
हुई-नेंग को शिष्य की तरह स्वीकार किया बोधिधर्म ने और हुई-नेंग को सारी बात कह दी, जो उसे कहनी थी।
क्या है वह बात? अपने को मिटाने की तैयारी का एक मार्ग है समर्पण। लेकिन लोग सोचते हैं, सरल है। बहुत कठिन है। धोखा देने में आपको लगता है, लेकिन बहुत कठिन है। दूसरा भी कोई सरल नहीं है। कोई सोचता है कि ठीक है, अपने को शुद्ध कर लेंगे। चोरी न करेंगे, बेईमानी न करेंगे, यह न करेंगे, वह न करेंगे, शुद्ध कर लेंगे। वह भी इतना आसान नहीं है, क्योंकि चोरी बहुत

गहरी है। चोरी आपका कृत्य नहीं है, आप चोर हो। हजारों-हजारों जन्मों तक चोरी की है, वह चोरी का जो जहर है, वह धीरे-धीरे प्राण की तलहटी तक पहुंच गया है। झूठ छोड़ देंगे। झूठ अगर कोई वचन होता तो छूट जाता। आपकी आत्मा झूठ हो गई है। यह कोई कपड़े उतार कर रख देने जैसा मामला नहीं है। चमड़ी खींच कर रखने जैसा मामला है। इतना सब जुड़ गया है।
एक आदमी कहता है, झूठ छोड़ देंगे। झूठ अगर कोई वक्तव्य होते तो हम छोड़ देते; हम झूठ हो गए हैं बोलते-बोलते, करते-करते हम झूठ हो गए हैं।
हमें पता ही नहीं हैं कि हम कब झूठ बोल रहे हैं और कब सच बोल रहे हैं।
छोड़ेंगे कैसे? पता भी नहीं चलता कि कब झूठ बोल रहे हैं। होश ही नहीं रहता और झूठ निकल जाता है। झूठ हमारी आत्मा हो गई है।
कहते हैं, हिंसा छोड़ देंगे, इसको नहीं मारेंगे, उसको नहीं मारेंगे।
लेकिन हिंसा भीतर है। ऊपर से छोड़ना बहुत कठिन नहीं मालूम पड़ता, लेकिन भीतर गहरे में दबा हुआ है।
बहुत मजेदार घटनाएं घटती हैं। अभी मैं एक हिंदी के विचारक प्रभाकर माचवे का एक लेख पढ़ता था। बहुत मजा आया। क्षमा पर लेख लिखा है। उदाहरण जो दिया है, वह दिया है कि चर्चिल ने महात्मा गांधी के लिए कुछ अपशब्द कहे हैं, अपशब्द है कि गांधी भी क्या है, एक नंगा फकीर।
तो माचवे ने अपने लेख में लिखा है कि गांधीजी ने चर्चिल को उत्तर दिया--क्षमा का उदाहरण दे रहे हैं--गांधीजी ने उत्तर दिया कि आपने आधी बात तो ठीक कही कि मैं फकीर हूं। गरीब मुल्क का आदमी हूं और पूरा मुल्क मेरा फकीर है, उनका मैं प्रतिनिधि हूं इसलिए मैं फकीर हूं। लेकिन दूसरी बात आपने जरा ज्यादा कह दी। नंगा होना जरा मुश्किल है। और बाइबिल का एक वचन उद्धृत किया अपने पत्र में, जिसमें जीसस ने कहा है कि परमात्मा के सामने जो पूर्णतया नग्न है, वही नग्न है। तो गांधी ने लिखा है कि परमात्मा के सामने पूर्णतया नग्न होने की हिम्मत मेरी अभी भी नहीं है, लेकिन कभी यह आकांक्षा है कि उसके सामने परिपूर्ण नग्न हो सकूं ताकि आपका वचन पूरा हो जाए।
प्रभाकर माचवे ने लिखा है कि गांधीजी ने ऐसा जवाब देकर चर्चिल को खूब नीचा दिखाया। क्षमा का उदाहरण दे रहे हैं, क्षमा की चर्चा कर रहे हैं, लेकिन नीचा दिखाना नीचा दिखाने का मजा ले रहे हैं।
पता नहीं, गांधी ने नीचा दिखाने के लिए जवाब दिया या नहीं दिया, लेकिन माचवे को ख्याल में भी नहीं आ रहा है कि नीचा दिखाने में क्षमा हो कैसे सकती है! और नीचा दिखाना ही तो क्रोध है। कोई आदमी गाली देकर नीचा दिखा देता है और कोई आदमी क्षमा करके नीचा दिखा दे, तो भी वही बात है। क्योंकि नीचा दिखाना, वही तो हिंसा है।
अब यह तरकीब की बात है कि आप किस तरह नीचा दिखाते हैं। अगर आप किसी को क्षमा करके नीचा दिखा रहे हैं तो ख्याल रखना कि यह क्षमा नहीं है। आप ज्यादा चालाक हैं, उस आदमी से ज्यादा बेईमान हैं जो गाली देकर नीचा दिखाता है। वह जरा अकुशल है। उसके ढंग नीचा दिखाने के सीधे-साफ हैं, आपके ढंग चालबाजी के हैं। घूम फिर के हैं।
मुझे पता नहीं कि गांधीजी ने नीचा दिखाने के लिए जवाब दिया होगा। लेकिन, जैसा माचवे कहते हैं, अगर नीचा दिखाया है तो फिर यह क्षमा नहीं है। तब चर्चिल ज्यादा ईमानदार और गांधी ज्यादा बेईमान हो जाते हैं। क्योंकि चर्चिल को लगता है कि नंगा फकीर, तो वह कहता है कि नंगा फकीर। इसमें ज्यादा ऑनेस्टी है, ज्यादा सच्चाई मालूम पड़ती है। लेकिन, अगर यह नीचा दिखाने के लिए जवाब दिया गया है तो ज्यादा बेईमानी दिखाई पड़ती है।
लेकिन हमें ख्याल नहीं आता कि हिंसा बहुत गहरी है, हिंसा बड़ी गहरी है।
और अहिंसक होने की चेष्टा में भी प्रकट हो सकती है। और क्रोध बहुत गहरा है और अक्रोध में भी उसकी झलक आ जाती है। अपने को संकल्प से बदलना भी इतना आसान नहीं है।
मार्ग तो दोनों कठिन हैं, फिर भी अगर आप वह मार्ग चुन लें जो आपके व्यक्तित्व से मेल नहीं खाता तो असंभव हो जाएगा; कठिन नहीं, असम्भव। अगर मीरा महावीर का मार्ग चुन ले तो असंभव है। अपने ही मार्ग पर चले तो कठिन

है, सरल नहीं। अगर महावीर मीरा का मार्ग चुन लें तो असभ्मव है, अपने ही मार्ग पर चलें तो कठिन है, सरल नहीं।
सरल तो कुछ भी नहीं हो सकता। इसलिए नहीं कि सत्य कठिन है, बल्कि इसलिए
कि लाखों-लाखों जन्मों की हमारी आदतें कठिन हैं, उनको तोड़ना कठिन है। सत्य तो सरल है। सागर में गिरते समय नदी को क्या कठिनाई है? लेकिन नदी को आना पड़ता है हिमालय की कंदराओं को, पहाड़ों को पार करके, पत्थरों को काटकर। वह जो मार्ग है, वह कठिन है।
हम कठिन हैं। हमें अपने से ही गुजरकर तो सत्य तक पहुंचना है। सत्य है सरल, हम हैं कठिन। अगर हम अपने विपरीत मार्ग चुन लें तो यात्रा है असभ्मव। अब हम सूत्र को लें।
"जो मनुष्य सुंदर और प्रिय भोगों को पाकर भी पीठ फेर लेता है, सब प्रकार से स्वाधीन भोगों का परित्याग कर देता है, वही सच्चा त्यागी है।" भोग मौजूद न हो, भोग का उपाय न हो, भोग को भोगने की क्षमता न हो, असहाय
हो आदमी, तब भी त्याग कर सकता है। लेकिन महावीर कहते हैं, तब त्याग का कोई भी अर्थ नहीं है। जो भोग ही नहीं सकता, उसके त्याग का क्या अर्थ है? जिसके पास भोगने की सुविधा नहीं, उसके त्याग का क्या अर्थ है? उसका त्याग कोई भी अर्थ नहीं रखता।
त्याग का सभी अर्थ भोग के संदर्भ में है। इसलिए जब बूढ़ा ब्रह्मचर्य
का व्रत ले लेता है तो उसका कोई भी अर्थ नहीं है। बूढ़ा अपने को धोखा दे रहा है। जवान जब ब्रह्मचर्य का व्रत ले लेता है, तब उसकी कोई सार्थकता है। जब मरता हुआ आदमी अन्न-जल का त्याग कर देता है, जब डाक्टर बता देते हैं कि घड़ी दो घड़ी से ज्यादा नहीं, जब बिल्कुल पक्का हो जाता है कि मर ही रहे हैं, तो अन्न-जल का त्याग कर देता है। उसका कोई भी मूल्य नहीं है। लेकिन जो जीवन को पूरी तरह अभी स्वस्थ मानकर अन्न-जल का त्याग कर देता है और मृत्यु की प्रतीक्षा करता है आनंदपूर्वक, तो उसका कोई अर्थ है।
आप अपनी बेबसी में जब त्याग करते हैं तो अपने को धोखा दे रहे हैं। अपने को दे सकते हैं, जगत की व्यवस्था को धोखा आप न दे सकेंगे। इसलिए, दो बातें ठीक से समझ लें। एक, बेबसी का नाम त्याग नहीं है, सामर्थ्य का नाम त्याग है। इसलिए त्याग के पहले समर्थ हो जाना अत्यंत जरूरी है और त्याग के क्षण में सामर्थ्य हो तो ही त्याग में त्वरा, तेजी, चमक, ओज उत्पन्न होता है। इसलिए महावीर ने हिंदू व्यवस्था की, जो वर्ण की कल्पना थी, आश्रम की कल्पना थी, वह बिल्कुल तोड़ दी। और उन्होंने कहा कि जब प्रखर हो ऊर्जा जीवन को भोगने की, तभी रूपांतरण है। जब सारा जीवन बहता हो कामवासना की तरफ, तभी लौट पड़ना।
जब रिक्त हो जाती हो--जैसे, बंदूक की गोली चल चुकती हो, और फिर अहिंसक
हो जाए। चली चलाई बंदूक की कारतूस कहे कि अब मैंने अहिंसा का व्रत ले लिया, उसमें कोई भी सार्थकता नहीं है। लेकिन हम यही करते हैं। या तो हमारे पास सुविधा नहीं होती, तो हम त्याग कर देते हैं, या हम असमर्थ हो जाते हैं, सुविधा भोगने में, तो हम त्याग करते हैं।
त्याग का बिंदु वही है जो भोग का बिंदु। क्षण एक है, क्षण दो नहीं हैं। दिशा अलग है। त्याग अलग दिशा में जाता है, भोग अलग दिशा में, लेकिन है। त्याग और भोग एक ही क्षण की घटनाएं हैं, रुख अलग है, दिशा अलग है; लेकिन जहां से यात्रा होती है, वह बिंदु एक है।
इसलिए महावीर कहते हैं, सुंदर और प्रिय भोगों को पाकर भी जो पीठ फेर लेता है। सब प्रकार से स्वाधीन, किसी परतंत्रता में नहीं, किसी परवशता में नहीं, स्वतंत्र रूप से परित्याग कर देता है। परित्याग करना नहीं पड़ता, कर देता है। यह उसका संकल्प है। संकल्प से त्याग फलित होना चाहिए तो सामर्थ्य बढ़ती है, शक्ति बढ़ती है। असमर्थता से त्याग होता है तो दीनता बढ़ जाती है।
"जो मनुष्य किसी परतंत्रता के कारण वस्त्र, गंध, अलंकार, स्त्री और शयन आदि का उपभोग नहीं कर पाता, वह सच्चा त्यागी नहीं कहलाता।"

"सदगुरु तथा अनुभवी वृद्धों की सेवा करना, मूर्खों के संसर्ग से दूर रहना, एकाग्र चित्त से सत शास्त्रों का अभ्यास, उनके गंभीर अर्थ का चिंतन, चित्त में धृतिरूप अटल शांति प्राप्त करना, यह निःश्रेयस का मार्ग है।" इस सूत्र के दो हिस्से हैं--एक त्याग क्या है, और त्याग के बाद क्या करने योग्य है। क्योंकि त्याग सिर्फ एक निषेध नहीं है कि छोड़ दिया, बात खत्म हो गई। छोड़ने से कुछ मिलता नहीं। छोड़ने से सिर्फ बाधाएं कटती हैं। छोड़ने से कुछ उपलब्धि नहीं होती, छोड़ने से भटकाव बचता है। छोड़ने से गलत यात्रा रुकती है, सही यात्रा शुरू नहीं होती। लेकिन बहुत लोग इस भ्रांति में रहते हैं। बहुत लोग यह सोचते हैं कि अरे मैंने पत्नी छोड़ दी, घर छोड़ दिया, धन छोड़ दिया, अब और क्या करना है? हमारे अनेक साधु इसी निषेध में जीते हैं, और हम भी इसी निषेध को बड़ा मूल्य देते हैं कि बेचारे ने पत्नी छोड़ दी, घर छोड़ दिया, बच्चे छोड़ दिए, महात्यागी है।
फिर पाया क्या? यह तो छोड़ दिया, बहुत अच्छा किया, फिर पाया क्या? फिर कुछ मिला भी? और अगर पत्नी छोड़ दी और पत्नी से श्रेष्ठतर कुछ न मिला, तो क्या अर्थ हुआ छोड़ने का? और जिसने पत्नी छोड़ दी, और कुछ मिला नहीं, उसके मन में पत्नी की तरफ दौड़ जारी रहेगी। क्योंकि इस अस्तित्व में खाली जगह को बरदाश्त करने का उपाय नहीं है। प्रकृति खाली जगह को बरदाश्त नहीं करती। अंतस जीवन में भी खाली जगह बरदाश्त नहीं होती। अगर पत्नी की जगह परमात्मा न आ जाए तो पत्नी झांकती ही रहेगी उस खाली जगह में। झांकने की तरकीबें बहुत हो सकती हैं।
अगर धन छोड़ दिया और धर्म भीतर न उठा, तो यह इस छोड़े हुए आदमी की स्थिति त्रिशंकु की हो जाएगी। इसलिए हमारे साधु छोड़ तो देते हैं, पा कुछ नहीं पाते। फिर परेशान होते हैं। और वह इसी आशा में छोड़ देते हैं कि छोड़ने से ही पाना हो जाएगा।
छोड़ना आवश्यक है, पर्याप्त नहीं।
मैंने कुछ छोड़ दिया, इससे जो अगर मैं पकड़े रहता उसे तो जो-जो भूलें मुझसे होतीं, वे नहीं होंगी--यह निषेधक है। लेकिन अब मुझे कुछ करना होगा। तो क्या करना होगा।
महावीर कहते हैं, "सदगुरु अनुभवी वृद्धों की सेवा करना।"
महावीर बहुत ही सशर्त बोलते हैं, क्योंकि उन्हें पक्का पता है कि जो सुननेवाले लोग हैं, उन्हें जरा सा भी छिद्र मिल जाए तो वे इस छिद्र में से अपना बचाव खोज लेते हैं।
तो महावीर वृद्ध की सेवा नहीं बोलते, क्योंकि वृद्ध होने से कोई ज्ञानी नहीं होता। सिर्फ बूढ़े होने से कोई ज्ञानी नहीं होता। सिर्फ बूढ़े होते जाना तो प्राकृतिक घटना है, उसमें आपका काम ही क्या है? लेकिन बूढ़े बूढ़े होकर समझते हैं कि कुछ पा लिया।
सिर्फ खोया है, कुछ पाया नहीं। जिंदगी खोई है। मगर वे समझते हैं कि बूढ़े हो गए तो कुछ पा लिया। सिर्फ बूढ़े हुए हैं, और इस होने में उनका हाथ ही क्या है? उन्होंने तो पूरा चाहा था कि न हों, फिर भी हो गए। अपनी सब कोशिश की थी, फिर भी हो गए। अब इसको ही वे गुण मान रहे हैं, यह भी कोई योग्यता है! तो महावीर कहते हैंः अनुभवी वृद्धों की सेवा।
बड़ा मुश्किल है! वृद्ध और अनुभवी, बड़ी कठिन बात है। बूढ़े तो सभी हो जाते हैं, अनुभवी सभी नहीं होते। अनुभव का मतलब है-वह जो-जो जीवन में हुआ, वह सिर्फ हुआ नहीं, उससे कुछ सीखा भी गया।
अब एक बूढ़ा आदमी भी अगर क्रोध करता है तो समझना, अनुभवी नहीं है। क्योंकि जिंदगीभर क्रोध करके अगर इतना भी नहीं सीख पाया कि क्रोध व्यर्थ है, तो यह जिंदगी बेकार गई। एक बूढ़ा आदमी भी अगर उन्हीं क्षुद्र बातों में उलझा है, जिनमें बच्चे उलझे होते हैं, तो समझना कि यह आदमी बूढ़ा तो हो गया, वृद्ध नहीं हुआ। सिर्फ बुढ़ा गया, सिर्फ उमर पक गई, लेकिन धूप में पक गए, अनुभव में नहीं। लेकिन आप हैरान होंगे कि बूढ़े भी वही करते रहते हैं जो बच्चे करते हैं। हालांकि निश्चित ही बूढ़े करते हैं तो ज्यादा सोफिस्टिकेटेड, ज्यादा ढंग से करते हैं। बच्चे उतने ढंग से नहीं करते। अब बच्चे हैं छोटे, गुड्डा-गुड्डी का विवाह कर रहे हैं। बूढ़े हैं, राम सीता का

जुलूस निकाल रहे हैं। बच्चे गुड्डा-गुड्डी के श्रृंगार में लगे हैं, बूढ़े महावीर स्वामी का श्रृंगार कर रहे हैं। लेकिन गुड्डियां बड़ी हो गई हैं, बदलीं नहीं। विवाह है, बच्चे भी मजा ले रहे थे, गुड्डों का कर रहे थे, अब ये राम-सीता की बारात निकाल रहे हैं। यह बूढ़ों का बचपना है।
बच्चे इतने गंभीर भी नहीं थे, ये भारी गंभीर हैं। बस इतना ही फर्क पड़ा है। और बच्चे के गुड्डा-गुड्डी के मामले में कभी कोई हिंदू-मुस्लिम दंगा नहीं होता, इनमें हो जाएगा। बूढ़े ज्यादा उपद्रवी हैं। क्योंकि वे जो भी करते हैं, उसको खेल नहीं मान सकते, क्योंकि उनको उम्र का अनुभव है। लेकिन सीखा उन्होंने कुछ भी नहीं। वहीं के वहीं खड़े हैं। कहीं कोई अंतर न पड़ा। वे वहीं खड़े हैं, उनकी चेतना वहीं खड़ी है, शरीर सिर्फ बूढ़ा हो गया।
इसलिए महावीर ने कहा, अनुभवी वृद्ध, सदगुरु।
सिर्फ गुरु नहीं कहा, साथ में जोड़ा सदगुरु।
क्या फर्क है गुरु और सदगुरु में?
गुरु से मतलब तो सिर्फ इतना ही है कि जो आपको खबर दे दे, सूचना दे दे, शास्त्र समझा दे। उसके स्वयं के अस्तित्व से इसका कोई जरूरी संबंध नहीं है-शिक्षक। सदगुरु से मतलब है, जो स्वयं शास्त्र है। जो-जो कह रहा है, वह किसी से सुन कर नहीं कह रहा है, यह उसका अपना अनुभव, अपनी प्रतीति है। वेद में ऐसा कहा है, ऐसा नहीं। गीता में ऐसा कहा है इसलिए ठीक होना चाहिए, ऐसा नहीं। महावीर ने ऐसा कहा है, इसलिए ठीक होगा; क्योंकि महावीर ने कहा है, ऐसा नहीं। ऐसा जो कहता है, वह शिक्षक है साधारण। लेकिन जो अपने अनुभव में परखता है और जो अपने अनुभव में देखता है और अगर कभी कहता भी है कि वेद में ठीक कहा है, तो इसलिए कहता है, कि मेरा अनुभव भी कहता है। वेद कहता है, इसलिए ठीक नहीं, मेरा अनुभव कहता है, इसलिए वेद ठीक।
इस फर्क को आप समझ लें।
वेद ठीक कहता है, इसलिए मेरा अनुभव ठीक, यह उधार है आदमी। मेरा अनुभव कहता है इसलिए वेद ठीक या वेद गलत। वह आदमी वहीं खड़ा है ज्ञान के स्रोत पर, जहां खुद अपनी आंख से देखता है। किताब नंबर दो हो जाती है, शास्त्र नंबर दो हो जाते हैं। गुरु के लिए शास्त्र होता है नंबर एक, सदगुरु के लिए शास्त्र होता है नंबर दो। शास्त्र भी प्रामाणिक होता है इसलिए कि मेरा अनुभव शास्त्र की गवाही देता है। मैं हूं गवाह।
जीसस से कोई पूछता है कि पुराने शास्त्रों के संबंध में तुम्हारा क्या कहना है? जीसस कहते हैं, आई एम दि विटनेस। बड़ी मजे की बात कहते हैं। मैं हूं गवाह। जो मैं कहता हूं, उससे मिलान कर लेना। मेरे अनुभव से जो बात मेल खा जाए, समझना कि ठीक है। नहीं तो गलत है।
सदगुरु का मतलब हैः जो सत हो गया। जो अब शिक्षाएं नहीं दे रहा है, स्वयं शिक्षा है। गुरु एकशृंखला है, एक परंपरा है। गुरु एक काम कर रहा है। सदगुरु एक जीवन है।
इसलिए महावीर ने कहा हैः "सदगुरु अनुभवी वृद्धों की सेवा।"
बड़े मजे की बात है कि महावीर कहते हैं, सेवा के अतिरिक्त सत्संग नहीं है। क्योंकि सेवा से ही निकट आना होगा। सेवा से ही विनम्रता होगी। सेवा से ही चरणों में झुकना होगा। सेवा से आंतरिकता होगी। सेवा से धीरे-धीरे अहंकार गलेगा। और सदगुरु की उपस्थिति और शिष्य में अगर सेवा की वृत्ति हो, तो वह घटना घट जाएगी, जिसको हम आंतरिक जोड़ कहते हैं। सिर्फ बैठ कर सुनने से नहीं हो जाएगा।
महावीर कहते हैंः जिससे सीखो, जिसके जीवन को अपने भीतर ले लेना हो, उसकी सेवा में डूब जाना पड़ेगा।
इसलिए महावीर ने सेवा को बड़ा मूल्य दिया है। लेकिन यह सेवा, जिसको हम
आज सर्विस कहते हैं, जिसको हम सेवा कहते हैं, उससे बहुत भिन्न है। अभी हम भी सेवा की बात करते हैं। रोटरी-क्लब अपने सिंबल में लिखता है, सर्विस, सेवा। क्रिश्चियन मिशनरी सेवा कर रही है, सर्वोंदयवादी सेवा कर रहे हैं। गरीब की सेवा करो, दुखी की सेवा करो, यह सेवा सामाजिक घटना है। महावीर की सेवा एक साधना का अंग है। महावीर दुखी की सेवा के लिए नहीं कह रहे हैं, गरीब की सेवा के लिए नहीं कह रहे हैं।

महावीर कह रहे हैं, अनुभवी वृद्ध, सदगुरु की सेवा। इस सेवा में और रोटरी-क्लब वाली सेवा में फर्क है। दूसरी सेवा केवल एक सामाजिक बात है। अच्छी है, कोई करे, हर्जा नहीं है। लेकिन महावीर की सेवा का अर्थ दूसरा है। वह सेवा एक साधन का अंग है। उसकी सेवा, जो तुमसे सत्य की दिशा में आगे जा चुका है। क्योंकि जब तुम उसकी सेवा के लिए झुकोगे--और सेवा में झुकना पड़ता है--जब तुम उसकी सेवा के लिए झुकोगे तो उसकी ऊंचाईयों से जो वर्षा हो रही है, वह तुममें प्रवेश कर जाएगी। जब तुम उसके चरणों में सिर रखोगे तो जो उसमें प्रवाहित हो रहा है ओज, वह तुम्हें भी छुएगा और तुम्हारे रोएं-रोएं को स्नान करा जाएगा।
यह बड़ा सोचने जैसा मामला है। इस पर तो बहुत चिंतन करने जैसी बात है। क्योंकि जब भी आप किसी की सेवा कर रहे हैं तो आपको झुकना पड़ता है। और जिसकी आप सेवा कर रहे हैं, वह आपमें प्रवाहित हो सकता है।
यह खतरनाक भी है। क्योंकि अगर आप ऐसे आदमी की सेवा कर रहे हैं, जो आपसे चेतना की दृष्टि से नीचे है, तो आपको नुकसान होगा। अगर आपसे ऊंची चेतना के व्यक्ति से आपको लाभ होगा तो आपसे नीची चेतना के व्यक्ति से आपको नुकसान होगा। इसलिए हमने कहा है, वृद्ध जवानों की सेवा न करें। इसलिए हमने कहा है कि मां-बाप बेटे के पैर न छुएं। और बेटा छुए। इसके पीछे कुल एक ही कारण है कि श्रेष्ठतर प्रवाहित हो, कहीं निकृष्ट श्रेष्ठ के साथ संयुक्त न हो, उसे विकृत और अशुद्ध न करे।
इसलिए एक बहुत महत्वपूर्ण बात इस संदर्भ में आपको कहूं। यही कारण है
कि भारत ने ईसाइयत जैसी सेवा की धारणा विकसित नहीं की, क्योंकि भारत को सेवा के संबंध में आंतरिक गहरे अनुभव हैं। इसलिए पश्चिम में बहुत लोग हैरान होते हैं कि भारत के धर्म कैसे हैं; गरीब की सेवा की कोई बात ही नहीं है, बीमार की सेवा की कोई बात नहीं है; रुग्ण की, कोढ़ी की सेवा की कोई बात नहीं है। यह सेवा के लिए, इनके बाबत कोई नहीं इनके पास मामला, ये धर्म कैसे हैं?
गांधी जी बहुत प्रभावित थे ईसाइयत से, इसलिए उन्होंने कहा कि सेवा धर्म है। हमने कभी नहीं कहा इस मुल्क में, न महावीर ने, न बुद्ध ने; और ये सब सेवा को धर्म कहने वाले लोग महावीर के ऐसे वचनों को उठा कर गलत अर्थ निकालते हैं। महावीर जब सेवा शब्द का उपयोग कर रहे हैं तो उनका प्रयोजन ही अलग है। हमने जान कर यह बात नहीं कही है।
शूद्र को हमने नीचे रखा है, ब्राह्मण को ऊपर रखा है, इस आशा में कि शूद्र ब्राह्मण की सेवा करे, ब्राह्मण शूद्र की नहीं। बहुत अजीब लगता है, आज की चिंतन की हवा में बहुत अजीब लगता है कि यह क्या बात हुई? अगर ब्राह्मण सच्चा ब्राह्मण है, तो शूद्र की सेवा करे, क्योंकि सेवा से ही वह ब्राह्मण होगा। लेकिन हमारे लिए मूल्य शूद्र और ब्राह्मण का सामाजिक नहीं है, आत्मिक है। हम शूद्र उसको कहते हैं जो शरीर में जी रहा है, जिसका और कोई जीवन नहीं है। और ब्राह्मण हम उसको कहते हैं जो ब्रह्म में जी रहा है। जिसका और कोई जीवन नहीं है। तो जो ब्रह्म में जी रहा है, उसकी कोई भी सेवा करे तो उसे लाभ होगा।
सेवा का अर्थ हैः झुक जाना। और जो झुकता है, वह गड्ढा बन जाता हैं। और
जो गड्ढा बन जाता है, उसमें वर्षा संगृहीत हो जाती है।
तो महावीर कहते हैं, सदगुरु अनुभवी वृद्धों की सेवा। मूर्खों के संसर्ग से दूर रहना।
मगर मूर्खों का संसर्ग बड़ा प्रीतिकर होता है। एक तो फायदा होता है कि मूर्खों के बीच आप बुद्धिमान मालूम पड़ते हैं, इसलिए हर आदमी मूर्खों की तलाश करता है। जब तक आपको दो-चार मूर्ख न मिल जाएं, आप बुद्धिमान नहीं। और कोई उपाय भी तो नहीं बुद्धिमानी का, एक ही उपाय है कि दो चार मूर्ख इकट्ठे कर लो।
इसलिए कोई पति अपने से बुद्धिमान पत्नी पसंद नहीं करता। अपने से ज्यादा पढ़ी लिखी हो, ज्यादा समझदार हो तो पसंद नहीं करता। क्योंकि फिर पति को मजा नहीं आएगा बुद्धिमान होने का। मूर्ख पत्नी पसंद की जाती है। फिर

निश्चित, मूर्ख जो कर सकती है, वह करती है। वह सहा जा सकता है, लेकिन अहंकार को रस आता है।
हम सब ऐसी कोशिश करते हैं कि अपने से छोटे तल के लोग हमारे आसपास इकट्ठे हो जाएं। उसमें रस आता है। मजा आता है।
क्या मजा है उनके बीच? वह जो अकबर के सामने बीरबल ने किया था, एक लकीर खींच दी थी, छोटी लकीर के सामने एक बड़ी लकीर खींच दी थी। और अकबर ने कहा था कि इस लकीर को बिना छुए छोटा कर दो। तो बीरबल ने एक बड़ी लकीर नीचे खींच दी थी। दरबार में कोई भी उसे छोटा न कर सका, क्योंकि सभी ने कहा, बिना छुए कैसे छोटा कर दें? जब छोटा करना है तो छूना पड़ेगा। बीरबल ने कहा, छूने की कोई जरूरत नहीं। एक बड़ी लकीर खींच दी। लकीर छोटी हो गई।
हम सब होशियार हैं उतने, जितना बीरबल था।
अपने को बुद्धिमान कैसे करना, सीधा रास्ता है। अपने से छोटी लकीरें आसपास इकट्ठी कर लो, आप बड़ी लकीर हो गए।
महावीर कहते हैं, मूर्खों के संसर्ग से दूर रहना। क्योंकि वह संसर्ग मंहगा है। आपकी लकीर बड़ी भला दिखाई पड़े, लेकिन वह जो छोटी लकीरें इकट्ठी हो गई हैं, वे धीरे-धीरे आपकी लकीर को और छोटा करती जाएंगी। क्योंकि जिनके साथ आप रहते हैं, आप धीरे-धीरे उन जैसे होने लगते हैं। साथ संक्रामक है। जिनके साथ आप रहते हैं, धीरे-धीरे वे आपको बदलने लगते हैं। उनसे बचना मुश्किल है। इतना मुश्किल है बचना कि साथ जिनके रहते हैं, उनसे तो बचना मुश्किल है ही, जिनके आप दुश्मन हो जाते हैं उन तक से बचना मुश्किल है, क्योंकि उनका भी संग-साथ हो जाता है भीतर।
मोहम्मद अली जिन्ना गवर्नर जनरल हुए। तो उन्होंने, जैसा कि गवर्नर जनरल्स को करना चाहिए, एक अंग्रेज ए्रडी्रसी्र रखा। वह अंग्रेज ए्रडी्रसी्र जिन्ना को बहुत समझाया कि आपकी सुरक्षा का ठीक इंतजाम होना चाहिए, और आपके बंगले के चारों तरफ बड़ी दीवाल होनी चाहिए। जिन्ना ने कहा कि मैं कोई तुम्हारे गवर्नर जनरल जैसा गवर्नर जनरल नहीं हूं। मैं एक लोकप्रिय नेता हूं। मुझे कौन मारने वाला है? कोई जरूरत नहीं है बड़ी दीवाल की और सुरक्षा की। मेरा कोई दुश्मन नहीं है। मैं पाकिस्तान का जन्मदाता हूं। तुम्हारे गवर्नर जनरल को दीवाल की जरूरत थी, क्योंकि तुम हमारे दुश्मन थे, लेकिन मुझे कोई जरूरत नहीं है।
एड़ी.सी. बहुत समझाता रहा, लेकिन जिन्ना नहीं माना। जिस दिन गांधी की हत्या हुई और खबर पहुंची-जिन्ना अपने बगीचे में बैठा था। जैसे ही खबर मिली, जिन्ना चिंतित हो गए, परेशान हो गए। उठ कर उसने अपने एड़ी.सी. से कहा कि पूरी खबर का पता लगाओ, क्या हुआ है? और सीढ़ियां चढ़ते वक्त उसने लौटकर एड़ी.सी. से कहा, और ठीक है, वह जो दीवाल के संबंध में तुम कहते थे, उसका इंतजाम कर लो।
जिन्ना जीवन भर गांधी जो करें, उससे ही बंधा हुआ चलते रहे। चाहे हां करें, चाहे न। जिन्ना तब तक कोई उत्तर न देगा, जब तक गांधी क्या कहते हैं, यह पता न चल जाए। सारी पॉलिटिक्स इतनी थी जिन्ना की। वह गांधी की दुश्मनी से तय होती थी।
यह बड़े मजे की बात है, जिंदगी भर भी जिन्ना गांधी की दुश्मनी से तय हुआ। और गांधी की मौत से भी जिन्ना तय हुआ। उस दिन के बाद फिर जिन्ना कभी भी नहीं समझा कि मैं लोकप्रिय नेता हूं, सुरक्षा की कोई जरूरत नहीं। फिर दीवाल खड़ी हो गई और सारा इंतजाम कर लिया गया।
यह बड़ी हैरानी की बात है कि गांधी और जिन्ना में इतनी दुश्मनी! लेकिन
यह दुश्मनी भी एक दूसरे को तय करती है। मित्रता तो एक दूसरे को बनाती है, दुश्मनी तक बनाती होगी, दुश्मनी भी एक तरह की मित्रता है। जिनके साथ हम हैं, या जिनके विरोध में हम हैं, वे हमें निर्मित करते हैं।
इसलिए महावीर कहते हैंः "मूर्खों के संसर्ग से दूर रहना, एकाग्र चित्त से सत शास्त्रों का अभ्यास करना।
मूर्ख कौन है? क्या वे जो कुछ नहीं जानते? वे मूर्ख नहीं हैं, वे अज्ञानी हैं। उनको मूर्ख कहना उचित नहीं है। मूर्ख वे हैं, जो बहुत कुछ जानते हैं बिना कुछ जाने। उनसे बचना।

अब एक आदमी आपको बता रहा है कि ईश्वर है, और उसे कोई पता नहीं। उससे पहले पूछना कि तुझे पता है? उसे कुछ पता नहीं है। वह आपको बता रहा है कि ईश्वर है। एक आदमी बता रहा है, ईश्वर नहीं है। उससे पूछना, तूने पूरी-पूरी खोज कर ली है?
एक ईसाई पादरी अभी मुझे मिलने आए थे। उन्होंने कहा कि गॉड इ.ज इनडिफाइनेबल, ईश्वर अपरिभाष्य, अनंत, असीम, उसकी कोई थाह नहीं ले सकता। मैंने उनसे पूछाः यह तुम थाह लेकर कह रहे हो, कि बिना थाह लिए ही कह रहे हो? वह जरा मुश्किल में पड़ गए। मैंने कहा कि अगर तुमने पूरी थाह ले ली है, तब तुम कह रहे हो कि अथाह है, तब तुम्हारा वचन बिल्कुल गलत है। क्योंकि थाह तुम ले चुके। अगर तुम कहते हो कि मैं पूरी थाह नहीं ले पाया तो तुम इतना ही कहो कि मैं पूरी थाह नहीं ले पाया। पता नहीं, एक कदम आगे थाह हो! तुम अथाह कैसे कह रहे हो?
और तुम कहते हो कि ईश्वर की कोई परिभाषा नहीं हो सकती, यह परिभाषा हो गई। तुमने परिभाषा कर दी। तुमने ईश्वर का एक गुण बता दिया कि उसकी कोई परिभाषा नहीं हो सकती। यह तुम क्या कह रहे हो? तो वह फौरन उन्होंने कहा कि बाइबिल में ऐसा लिखा है। मैंने कहा, बाइबिल में लिखा होगा। तुम्हें पता है?
वहीं सारी बात अटकती है। दुनिया ज्ञानी मूर्खों से भरी है, लर्नेंड इडियट्स से। उनका कोई अंत ही नहीं है। पढ़े-लिखे गंवार, उनका कोई अंत ही नहीं है, उनसे दुनिया भरी है। और ध्यान रखना, गैर पढ़े-लिखे गंवार तो अपने आप कम होते जा रहे हैं, क्योंकि सब शिक्षित होते जा रहे हैं। अब गैर पढ़े- लिखे गंवार खोजना जरा मुश्किल मामला है। अब तो पढ़े-लिखे गंवार ही मिलेंगे। और एक खोजो, हजार मिलते हैं।
महावीर कहते हैंः "मूर्खों के संसर्ग से दूर रहना।"
जिनको कुछ पता नहीं है और जिनको यह वहम है कि पता है, वह तुम्हें नुकसान पहुंचा सकते हैं।
"एकाग्र चित्त से सत शास्त्रों का अभ्यास करना।"
शास्त्र, वह भी सत हो। सत का अर्थ इतना हैः शास्त्र जिसका रस पांडित्य में न हो, सत्य में हो, जिसका रस विवाद में न हो, साधना में हो। शास्त्र, जो आपको कोई सिद्धांत, कोई संप्रदाय देने में उत्सुक न हो, जीवन रूपांतरित करने का विज्ञान देने में उत्सुक हो। तो ऐसे शास्त्र हैं जिनसे आपको सिद्धांत मिल सकते हैं, और ऐसे शास्त्र हैं जिनसे आपको जीवन-रूपांतरण की विधि मिल सकती है। सत शास्त्र वही है जिससे आपको विधि मिलती है। असत शास्त्र वही है जिससे आपको बकवास मिलती है। और बकवास लोग सीख कर बैठ जाते हैं। और जब बकवास बिल्कुल मजबूत हो जाती है तो वह भूल ही जाते हैं कि हम क्या कर रहे हैं। यह जो खोपड़ी में भर लिया, यह कोई आत्मा का रूपांतरण नहीं होने वाला है।
महावीर का जोर है, सत शास्त्रों का अभ्यास करना एकाग्र चित्त से, क्यों? क्योंकि अगर कोई आदमी एक सत शास्त्र को पढ़ते वक्त पच्चीस सत शास्त्रों को सोचता रहे, तो चित्त एकाग्र नहीं होगा। जब पतंजलि को पढ़ना तो सारे जगत को भूल जाना। पतंजलि को ही पढ़ना। और जब महावीर को पढ़ना तो महावीर को ही पढ़ना फिर सारे जगत को, पतंजलि को बिल्कुल भूल जाना। लेकिन हमारी तकलीफ यही है कि जो हमने और जान लिया है, वह हमेशा बीच में खड़ा हो जाता है। चित्त कभी एकाग्र नहीं हो पाता, और शास्त्र से कोई संबंध न जुड़ेगा, अगर चित्त पूरी तरह एकाग्र न हो।
सारे जगत को भूल जाना। फिर यही समझना कि पतंजलि तो पतंजलि, बुद्ध तो बुद्ध और महावीर तो महावीर। फिर सब कुछ भी नहीं है और। फिर इसमें ही पूरे डूब जाना। इस डुबकी से ही संभव होगा कि जीवन बदले।
"गंभीर अर्थ का चिंतन करना।"
हम अर्थों का चिंतन नहीं करते। हम केवल अर्थों के साथ विवाद करते हैं। आपने अगर मुझे सुना तो आप इसकी फिकर नहीं करते कि जो मैंने कहा है, उसके क्या गम्भीर से गंभीर अर्थ हो सकते हैं। आप इसकी फिक्र नहीं करते। आप तो अर्थ अभी समझ गए। गंभीर का और कोई सवाल नहीं है। अब यह अर्थ ठीक है या

गलत, इसका आप विचार करते हैं। सत्य के संबंध में ठीक और गलत का विचार करने से कोई हल होने वाला नहीं है। क्या कहा है, उसमें कितने और गम्भीर उतरा जा सकता है, कितने गहरे जाया जा सकता है।
महावीर जैसे व्यक्तियों की वाणी एक पर्त नहीं होती, उसमें हजार पर्तें होती हैं। इसलिए हमने पाठ पर बहुत जोर दिया है। हम नहीं कहते कि पढ़ लेना और किताब रख देना। हम कहते हैं, फिर-फिर पढ़ना। फिर-फिर पढ़ने का क्या मतलब है? फिर-फिर पढ़ने का मतलब है कि कल मैंने एक अर्थ देखा था, आज फिर से पढूंगा। फिर खोजूंगा कि क्या और भी कोई अर्थ हो सकता है, और भी कोई गहरा अर्थ हो सकता है? और महावीर जैसे लोगों की वाणी में जीवन भर अर्थ निकलते आएंगे। आप जितने गहरे होते जाएंगे, उतने गहरे अर्थ आपको मिलते जाएंगे। जिस दिन आपको अपने भीतर आखिरी गहराई मिलेगी, उस दिन महावीर का आखिरी अर्थ आपको पता चलेगा। इसलिए भाषाकोश में अर्थ मत खोजना, अपने भीतर की गहराई में, एकाग्र ध्यान की गहराई में अर्थ को खोजना।
"चित्त में धृतिरूप अटल शांति और धैर्य रखना।"
जल्दी मत करना, क्योंकि यात्रा है लंबी। इसमें ऐसा मत करना कि आज पढ़ लिया और बात खत्म हो गई, आज सुन लिया और सब हो गया। यह यात्रा लम्बी, अनंत है यात्रा। तो बहुत धैर्यपूर्वक गति करना। प्रतीक्षा करना, शांति रखना। "यही निःश्रेयस का मार्ग है।"
मोक्ष का मार्ग यही है। छोड़ना, जो गलत है। खोजना, जो सही है और धैर्य रखना अनंत। श्रम, साधना, पर अत्यंत धैर्य से, अत्यंत शांति से।
यह मत सोचना कि अभी मिल जाएगा सत्य। अभी भी मिल सकता है। लेकिन अभी उन्हें मिल सकता है जो अनंत तक प्रतीक्षा करने को तैयार हैं। उन्हें अभी इसी क्षण भी मिल सकता है, क्योंकि उतने धैर्य की क्षमता अगर हो, कि अनंतकाल तक रुका रहूंगा, तो अभी भी मिल सकता है। वही धैर्य मिलने का कारण बन जाता है। लेकिन हम जल्दी में होते हैं।
मेरे पास लोग आते हैं और कहते हैं, दो दिन हो गए, ध्यान करते। अभी तक कुछ दर्शन हुआ नहीं। इनक्योरेबल। इनका कोई इलाज भी करना मुश्किल है। दो दिन! काफी समय हो गया! अगर बहुत उन्हें समझा ओ बुझाओ तो वे चार दिन कर लेंगे! कितने जन्मों की बीमारी है? कितना कचरा है इकट्ठा?
अभी म्युनिसिपल के कर्मचारी हड़ताल पर चले गए थे, तो दो-चार दिन में कितना कचरा इकट्ठा हो गया था? और आप कितने दिन से हड़ताल पर हैं, आपको पता है?
थोड़ा उसका ध्यान करें कि कितने दिन से हड़ताल पर हैं! आत्मा कचरा ही कचरा हो गई है।
थोड़ा धैर्य! थोड़ी शांति! लेकिन, जो भी गलत को छोड़ने को तैयार है और ठीक
को पकड़ने के लिए साहस रखता है; धैर्य, श्रम, प्रतीक्षा कर सकता है; उसकी प्रार्थना एक दिन निश्चित ही पूरी हो जाती है।

आज इतना ही।
पांच मिनट कीर्तन करेंगे।

महावीर-वाणी, भाग 2
आठवां प्रवचन

आप ही हैं अपने परम मित्र (आत्म-सूत्र: 1)

अप्पा कत्ता विकात्त य,
दुक्खाण य सुहाण य।
अप्पा मित्तममित्तं च,
दुप्पट्ठि सुपट्ठिओ।।
पंचिन्दियाणि कोहं,
माणं मायं तहेव लोहं च।
दुज्जयं चेव अप्पाणं,
सव्वमप्पे जिए जियं।।

आत्मा ही अपने सुख और दुख का कर्ता है तथा आत्मा ही अपने सुख और दुख का नाशक है। अच्छे मार्ग पर चलने वाला आत्मा मित्र है और बुरे मार्ग पर चलनेवाला आत्मा शत्रु।
पांच इद्रियां, क्रोध, मान, माया, और लोभ तथा सबसे अधिक दुर्जेय अपनी आत्मा को जीतना चाहिए। एक आत्मा को जीत लेने पर सब कुछ जीत लिया जाता है।

पहले कुछ प्रश्न।
एक मित्र ने पूछा है कि "संकल्प और समर्पण के मार्गों को न मिलाया जाए, तालमेल न बिठाया जाए, ऐसा आपने कहा। लेकिन, महावीर-वाणी की चर्चा जिससे शुरू हुई उस नमोकार मंत्र के शरण-सूत्र में समर्पण का स्थान है। और आप भी जिस भांति ध्यान के प्रयोग करवाते हैं, उसमें संकल्प से शुरुआत होती है और चौथे चरण में समर्पण पर समाप्ति। तो इन दोनों में कोई तालमेल है या नहीं?"

संकल्प और समर्पण में तो कोई तालमेल नहीं है साधना की पद्धतियों में; समर्पण की अपनी पूरी पद्धति है, संकल्प की अपनी पूरी पद्धति है। लेकिन मनुष्य के भीतर ताल-मेल है। इसे थोड़ा समझना पड़े।
ऐसा मनुष्य खोजना मुश्किल है जो पूरा संकल्पवान हो। ऐसा मनुष्य भी खोजना मुश्किल है, जो पूरा समर्पण की तैयारी में हो। मनुष्य तो दोनों का जोड़ है। एंफेसिस का फर्क हो सकता है। एक व्यक्ति में संकल्प ज्यादा है, समर्पण कम, एक व्यक्ति में समर्पण ज्यादा, संकल्प कम!
इसे हम ऐसा समझें।
जैसा मैंने कहा कि समर्पण स्त्रैण चित्त का लक्षण है, संकल्प पुरुष चित्त का। लेकिन मनस्विद कहते हैं कि कोई पुरुष पूरा पुरुष नहीं, कोई स्त्री पूरी स्त्री नहीं। आधुनिकतम खोजें कहती हैं कि हर मनुष्य के भीतर दोनों हैं। पुरुष के भीतर छिपी हुई स्त्री है, स्त्री के भीतर छिपा हुआ पुरुष है। जो फर्क है स्त्री और पुरुष में, वह प्रबलता का फर्क है, एंफेसिस का फर्क है। इसलिए पुरुष स्त्री में आकर्षित होता है, स्त्री पुरुष में आकर्षित होती है।
कार्ल गुस्ताव जुंग का महत्वपूर्ण दान इस सदी के विचार को है। उनकी अन्यतम खोजों में जो महत्वपूर्ण खोज है, वह है कि प्रत्येक पुरुष उस स्त्री को खोज रहा है, जो उसके भीतर ही छिपी है, और प्रत्येक स्त्री उस पुरुष को खोज रही है, जो उसके भीतर ही छिपा है। और इसलिए यह खोज कभी पूरी नहीं हो पाती।
जब आप किसी को पसंद करते हैं तो आपको पता नहीं कि पसंदगी का एक ही अर्थ होता है कि आपके भीतर जो स्त्री छिपी है या पुरुष छिपा है, उससे कोई पुरुष या स्त्री बाहर मेल खा रही है; इसलिए आप पसंद करते हैं। लेकिन वह मेल पूरा कभी नहीं हो पाता, क्योंकि आपके भीतर जो प्रतिमा छिपी है, वैसी प्रतिमा बाहर खोजनी असम्भव है। इसलिए कभी थोड़ा मेल बैठता है, लेकिन फिर मेल टूट जाता है। या कभी थोड़ा मेल बैठता है, थोड़ा नहीं भी बैठता है। इसी के बीच

बाहर सब चुनाव है। लेकिन चुनाव की विधि क्या है? हमारे भीतर एक प्रतिमा है, एक चित्र है, उसे हम खोज रहे हैं कि वह कहीं बाहर मिल जाए।
तो एक तो उपाय यह है कि हम उसे बाहर खोज लें, जो कि असफल ही होनेवाला है। और एक सुख है, जो मेरे भीतर की स्त्री से बाहर की स्त्री का मेल हो जाए तो मुझे मिलता है। वह क्षणभंगुर है। फिर एक और मिलन भी है कि मेरे भीतर का पुरुष मेरे भीतर की स्त्री से मिल जाए। वह मिलन शाश्वत है।
सांसारिक आदमी बाहर खोज रहा है, योगी उस मिलन को भीतर खोजने लगता है।
और जिस दिन भीतर की दोनों शक्तियां मिल जाती हैं, उस दिन पुरुष-पुरुष नहीं रह जाता, स्त्री-स्त्री नहीं रह जाती। उस दिन दोनों के पार चेतना हो जाती है। उस दिन व्यक्ति खंडित न होकर अखंड आत्मा हो जाता है।
तो जब हम कहते हैं कि संकल्प का मार्ग, तो इसका मतलब हुआ कि जो व्यक्ति बहुलता से पुरुष है, गौण रूप से स्त्रैण है, उसका मार्ग है। लेकिन उसके मार्ग पर भी थोड़ा सा संकल्प, संकल्प के पीछे थोड़ा सा समर्पण होगा, क्योंकि वह जो छाया की तरह उसकी स्त्री है, उसका भी अनुदान होगा। और जो व्यक्ति समर्पण के मार्ग पर चल रहा है, उसके भी भीतर छिपा हुआ पुरुष है, और छाया की तरह संकल्प भी होगा। इसका क्या--व्यक्ति के भीतर क्या तालमेल है? साधनाओं में कोई तालमेल नहीं है। इसे ऐसा समझें।
जब कोई व्यक्ति समर्पण के लिए तय करता है, तब यह तय करना तो संकल्प है। अगर आप तय करते हैं कि किसी के लिए सब कुछ समर्पित कर दें, तो अभी समर्पण का यह जो निर्णय आप ले रहे हैं, यह तो संकल्प है। इतने संकल्प के बिना तो समर्पण नहीं होगा। जो व्यक्ति तय करता है कि मैं संकल्प से ही जीऊंगा, जो निर्णय करता हूं, उसको ही श्रम से पूरा करूंगा, यह संकल्प से शुरुआत हो रही है। लेकिन जो निर्णय किया है वह निर्णय कुछ भी हो सकता है। उस निर्णय के प्रति पूरा समर्पण करना पड़ेगा।
जो संकल्प से शुरू करता है उसे भी समर्पण की जरूरत पड़ेगी। जो समर्पण
से शुरू करता है उसे भी संकल्प की जरूरत पड़ेगी, लेकिन वे गौण होंगे, छाया की तरह होंगे। व्यक्ति तो दोनों का जोड़ है, स्त्री-पुरुष का। इसलिए क्या महत्वपूर्ण है आपके भीतर, वह आपकी साधना-पद्धति होगी। लेकिन दोनों साधना पद्धतियां अलग होंगी। दोनों के मार्ग, व्यवस्थाएं, विधियां अलग होंगी। मैं जिस साधना पद्धति का प्रयोग करता हूं, वह संकल्प से शुरू होती है। लेकिन पद्धति वह समर्पण की है। लेकिन कोई भी समर्पण संकल्प से ही शुरू हो सकता है, लेकिन संकल्प सिर्फ शुरुआत का काम करता है। और धीरे-धीरे समर्पण में विलीन हो जाना होता है। लेकिन पद्धति वह समर्पण की है।
पूछा जा सकता है कि फिर जो लोग संकल्प की ही पद्धति पर जाने वाले हैं, उनका इस पद्धति में क्या होगा? संकल्प की पद्धति पर जानेवाले लोग कभी लाख में एकाध होता है, करोड़ में एकाध होता है। क्योंकि संकल्प की पद्धति में जाने का अर्थ है, अब किसी का कोई भी सहारा न लेना। संकल्प के मार्ग पर वस्तुतः गुरु की भी कोई आवश्यकता नहीं है, शास्त्र की भी कोई आवश्यकता नहीं है, विधि की भी कोई आवश्यकता नहीं है, इसलिए कभी करोड़ में एक आदमीऔर यह आदमी भी इसलिए संकल्प पर जा सकता है कि अनेक-अनेक जीवन में उसने समर्पण के मार्ग पर इतना काम कर लिया है कि अब बिना गुरु के, बिना विधि के, वह स्वयं ही आगे बढ़ सकता है।
इस सदी में कृष्णमूर्ति ने संकल्प के मार्ग की प्रबलता से बात की है। इसलिए वे गुरु को इनकार करते हैं, शास्त्र को इनकार करते हैं, विधि को इनकार करते हैं। कृष्णमूर्ति जो कहते हैं, बिल्कुल ही ठीक है, लेकिन जिन लोगों से कहते हैं, उनके बिल्कुल काम का नहीं है। और इसलिए खतरनाक है। कृष्णमूर्ति शायद ही किसी व्यक्ति को मार्ग दे सके हों। हां, बहुत लोग जो मार्ग पर थे, उनको वे विचलित जरूर कर सके हैं। होगा ही, अगर करोड़ में एक व्यक्ति संकल्प के मार्ग पर चल सकता है तो संकल्प की चर्चा खतरनाक है। क्योंकि वह जो करोड़ हैं, जो नहीं चल सकते, वे भी सुन लेंगे। और संकल्प के मार्ग का जो बड़ा खतरा यह है कि अहंकारियों को बड़ा प्रीतिकर लगता है कि ठीक है--न गुरु की जरूरत, न विधि की, न शास्त्र की--मैं काफी हूं। यह अहंकार को बहुत प्रीतिकर लगता है।

तो करोड़ लोग अगर सुनेंगे, उनमें से एक चल सकता है। और बड़े मजे की बात
यह है कि वह एक जो चल सकता है, शायद ही कृष्णमूर्ति को सुनने जाएगा। वह जाएगा ही क्यों? वह जो चल सकता है, वह जाएगा नहीं क्योंकि वह चल ही सकता है। और जो नहीं चल सकते हैं, वे ही जाएंगे। और सुन कर उन सबको यह भ्रम पैदा होगा कि हम अकेले ही चल सकते हैं। न किसी गुरु की जरूरत, न किसी शास्त्र की, न विधि की। वे केवल भटकेंगे और परेशान होंगे। क्योंकि अगर उन्हें गुरु की जरूरत न होती तो वे कृष्णमूर्ति के पास भी न आए होते। यह किसी की तलाश में उनका आना ही बताता है कि वे अपनी तलाश में अकेले नहीं जा सकते। लेकिन उनके अहंकार को भी तृप्ति मिलेगी क्योंकि गुरु बनाने में विनम्र होना जरूरी है। गुरु इनकार करने में कोई विनम्रता की आवश्यकता नहीं।
विधि स्वीकार करने में कुछ करना पड़ेगा। कोई विधि नहीं है तो कुछ करने
का सवाल ही समाप्त हो गया। काहिल, सुस्त, अहंकारी, कृष्णमूर्ति से प्रभावित हो जाएंगे। और वे बिल्कुल गलत लोग हैं। उनसे तो यह बात की ही नहीं जानी चाहिए। और बड़ा मजा यह है कि कृष्णमूर्ति भी जहां पहुंचे हैं, बिना गुरु के नहीं पहुंचे हैं। इस सदी में किसी व्यक्ति को अधिकतम गुरु मिले हों तो वह कृष्णमूर्ति हैं। एनीबीसेंट जैसा गुरु, लीडबीटर जैसा गुरु खोजना बहुत मुश्किल है। लेकिन एक उपद्रव हुआ, और वह उपद्रव यह था कि कृष्णमूर्ति ने इन गुरुओं को नहीं खोजा था, इन गुरुओं ने कृष्णमूर्ति को खोजा, यही उपद्रव हो गया। और ये गुरु इतनी तीव्रता में थे, इतनी जल्दी में थे किन्हीं कारणों से--एक बहुत उपद्रवी सदी की शुरुआत हो रही थी और धर्म का कोई निशान भी न बचे, इसका भी डर था। और लीडबीटर और एनीबीसेंट और उनके साथी इस कोशिश में थे कि धर्म की जो शुभ्रतम ज्योति है, वह कहीं से प्रगट हो सके। तो वे किसी की तलाश में थे कि कोई व्यक्ति पकड़ लिया जाए, जो इस काम के लिए आधार बन जाए, मीडियम बन जाए।
कृष्णमूर्ति को उन्होंने चुना। कृष्णमूर्ति पर वर्षों मेहनत की; कृष्णमूर्ति को निर्मित किया, कृष्णमूर्ति को बनाया, खड़ा किया। कृष्णमूर्ति जो कुछ भी हैं, उसमें निन्यानबे प्रतिशत उनका दान है। लेकिन खतरा यह हुआ कि कृष्णमूर्ति ने स्वयं चुना नहीं था, वे चुने गए थे। और अगर हम अच्छा भी किसी को बनाने की चेष्टा करें, और यह उसकी मर्जी न रही हो, यह स्वेच्छा से न चुना गया हो, तो वह आज नहीं कल अच्छे बनाने वालों के भी विपरीत हो जाएगा। उन्होंने इतनी चेष्टा की कृष्णमूर्ति को निर्मित करने की कि यही चेष्टा कृष्णमूर्ति के मन में प्रतिक्रिया बन गई। गुरु उनको बोझ की तरह मालूम पड़े, जिन्होंने जबरदस्ती उन्हें बदलने की कोशिश की, ऐसा उन्हें लगा। वह प्रतिक्रिया बन गई। वह आज भी उसका सूखा संस्कार उनके ऊपर रह गया। वह आज भी उन्हीं के खिलाफ बोले जाते हैं।
जब कृष्णमूर्ति गुरु के खिलाफ बोलते हैं तो आपको ख्याल में भी नहीं आता होगा कि वह लीड बीटर के खिलाफ बोल रहे हैं, एनीबीसेंट के खिलाफ बोल रहे हैं। बहुत देर हो गई उस बात को हुए। लेकिन वह बात जो गुरुओं ने उनके साथ की है, उनको बदलने की जो सतत अनुशासन देने की चेष्टा वह उनको गुलामी जैसी लगी, क्योंकि वह स्वेच्छा से चुनी नहीं गई थी। उसके खिलाफ उनका मन बना रहा।
वे कहते चले गए हैं। उनको सुनने वाला वर्ग है, और वह वर्ग चालीस साल में कहीं नहीं पहुंच रहा है। वह सिर्फ शब्दों में भटकता रहता है। क्योंकि जो सुनने आता है, वह गुरु की तलाश में है। और जो वह सुनता है वह यह है कि गुरु की कोई जरूरत नहीं है। वह मान लेता है कि गुरु की जरूरत नहीं है और फिर भी कृष्णमूर्ति को सुनने आता चला जाता है। वर्षों तक फिर सुनने की कोई जरूरत नहीं है, अगर गुरु की कोई भी जरूरत नहीं। और यह भी बड़े मजे की बात है कि यह भी एक गुरु से सीखी हुई बात है कि गुरु की कोई भी
जरूरत नहीं है। यह भी खुद की बुद्धि से आई हुई बात नहीं है। यह भी एक गुरु की शिक्षा है कि गुरु की कोई भी जरूरत नहीं है। इसको भी जो स्वीकार कर रहा है, उसने गुरु को स्वीकार कर लिया।
लेकिन करोड़ों में कभी एकाध आदमी जरूर ऐसा होता है, वह भी अनंत जन्मों
की यात्रा के बाद। उसे पता हो या न हो।

कल ही एक मित्र मलाया से मुझे मिलने आए। तो मलाया में एक महत्वपूर्ण घटना घटी है, सुबुह। और मुहम्मद सुबुह नाम के एक व्यक्ति पर अचानक, अनायास प्रभु की ऊर्जा का अवतरण हुआ। लेकिन मुसलमान मानते हैं कि एक ही जन्म है। इसलिए मोहम्मद सुबुह को भी लगा कि मुझ साधारण आदमी पर परमात्मा की कृपा हुई है। उनके मानने वाले भी यही मानते हैं कि यह सिर्फ एक संयोग की बात है कि मोहम्मद सुबुह चुना गया। मैंने उनसे कहाः हम ऐसा नहीं मान सकते। कोई आकस्मिक घटना नहीं होती। सिर्फ मुसलमान थियोलॉजी के कारण पाक सुबुह को लगता है कि अचानक मुझ पर प्रभु की कृपा हुई। लेकिन यह जन्मों-जन्मों की साधना का परिणाम है, नहीं तो यह हो नहीं सकता।
तो जब कभी कोई व्यक्ति अचानक भी संकल्प की स्थिति में आ जाता है, तब भी
वह यह न सोचे कि गुरुओं का हाथ नहीं है। हजारों-हजारों गुरुओं का हजारों- हजारों जन्मों में हाथ है।
पानी को कोई गरम करता है, सौ डिग्री पर भाप बनता है, निन्यानबे डिग्री
तक तो भाप नहीं बनता। लेकिन जिस अंगार ने निन्यानबे तक पहुंचाया है, उसके बिना सौवीं डिग्री भी नहीं आती। सौवीं डिग्री पर भाप बन कर उड़ता हुआ पानी सोच सकता है कि निन्यानबे डिग्री तक तो मैं कुछ भी नहीं था, सिर्फ पानी था। यह जो घटना घट रही है, अचानक घट रही है, लेकिन शून्य डिग्री से सौ डिग्री तक की जो लम्बी यात्रा है, उस यात्रा में न मालूम कितने ईंधन ने साथ दिया है। आखिरी घटना आकस्मिक घटती मालूम होती है; लेकिन इस जगत में कुछ आकस्मिक नहीं है। नहीं तो विज्ञान का कोई उपाय न रह जाएगा।
हिंदू चिंतन इसलिए बहुत गहरा गया है और उसने कहा कि इस जगत में कुछ भी आकस्मिक नहीं है। अगर कृष्णमूर्ति अचानक ज्ञान को उपलब्ध होते हैं तो यह भी अचानक हमें लगता है। या पाक सुबुह पर अचानक प्रभु की अनुकंपा मालूम होती है, तो यह भी हमें लगता है, अचानक हुआ। जन्मों-जन्मों की तैयारी है। निन्यानबे पॉइंट नौ तक भी पानी, पानी ही होता है। फिर एक पॉइंट और भाप
हो जाता है। तो पाक सुबुह को निन्यानबे पॉइंट नौ तक भी पता नहीं है कि भाप बनने का क्षण करीब आ गया। जब भाप बनेंगे, तभी पता चलेगा। तब एकदम आकस्मिक लगेगा, कि क्षणभर पहले मैं एक साधारण दुकानदार था, कि साधारण कर्मचारी था, एक साधारण आदमी था, बाल-बच्चे वाला, पत्नी वाला, कुछ पता नहीं था, अचानक यह क्या हो गया? यह भी अचानक नहीं है। पीछे कार्य-कारण की लंबीशृंखला है, और वह लंबी हैशृंखला, बहुत लंबी है।
तो हजारों जन्मों के बाद कभी कोई व्यक्ति इस हालत में भी आ जाता है कि स्वयं ही खोज ले। क्योंकि अब एक ही बिंदु की बात रह जाती है। सब तैयारी पूरी होती है। जरा सा संकल्प, और यात्रा शुरू हो जाती है। लेकिन यह पहुंचने में भी न मालूम कितने समर्पणों का हाथ है। जो व्यक्ति कभी-कभी अचानक समर्पण को उपलब्ध हो जाता है, उसके पीछे भी न मालूम कितने संकल्पों का हाथ है। जीवन दोनों का गहरे में जोड़ है। पद्धतियां अलग-अलग हैं, व्यक्ति अलग नहीं है।
आज एक व्यक्ति मेरे पास आता है, कहता है कि सब समर्पण करता हूं। लेकिन
सब समर्पण करना कितना बड़ा संकल्प है, इसका आपको पता है? इससे बड़ा कोई संकल्प क्या होगा? और यह इतना बड़ा संकल्प कर पाता है, इसका अर्थ हुआ है कि इसने बहुत छोटे-छोटे संकल्प साधे हैं, तभी इस योग्य हुआ है कि इस परम संकल्प को भी करने की तैयारी कर लेता है। पद्धतियों में कोई मेल नहीं है, लेकिन व्यक्ति तो एक है। बल का, एंफेसिस का फर्क हो सकता है। तो आपको जो खोजना है वह पद्धतियों में मेल नहीं खोजना है। आपको जो खोजना है वह अपनी दशा खोजनी है कि मेरे लिए संकल्प ज्यादा या समर्पण ज्यादा उपयोगी है, और मेरे प्राण किसमें ज्यादा सहजता से लीन हो सकेंगे।
मगर यह भी थोड़ा कठिन है, क्योंकि हम अपने को धोखा देने में कुशल हैं, इसलिए यह कठिन है। पर अगर कोई व्यक्ति आत्म-निरीक्षण में लगे, तो शीघ्र ही खोज लेगा कि क्या उसका मार्ग है। अब जो व्यक्ति चालीस साल से कृष्णमूर्ति को सुनने बार-बार जा रहा हो और फिर भी कहता हो, मुझे गुरु की जरूरत नहीं, वह खुद को धोखा दे रहा है। वह सिर्फ शब्दों का खेल कर रहा है। चुकता बातें कृष्णमूर्ति की दोहरा रहा है और कहता है कि गुरु की मुझे कोई जरूरत नहीं

है। गुरु की कोई जरूरत नहीं है तो यह सीखने कृष्णमूर्ति के पास जाने का कोई प्रयोजन नहीं है। अपने तईं एक पल खड़ा नहीं हो सकता। साफ है कि समर्पण इसका मार्ग होगा, मगर अपने को आत्मवंचना कर रहा है।
एक आदमी कहता है कि मैं तो समर्पण में उत्सुक हूं। एक मित्र ने मुझे आकर कहा कि मैंने तो मेहरबाबा को समर्पण कर दिया था, मगर अभी तक कुछ हुआ नहीं। तो यह समर्पण नहीं है, क्योंकि आखिर में तो यह अभी सोच ही रहा है, कि कुछ हुआ नहीं। अगर समर्पण कर ही दिया था, तो हो ही गया होता। क्योंकि समर्पण से होता है, मेहरबाबा से नहीं होता। इसमें मेहरबाबा से कुछ लेना- देना नहीं है। मेहरबाबा तो सिर्फ प्रतीक हैं। वह कोई भी प्रतीक काम देगा, राम, कृष्ण कोई भी काम दे देगा। उससे कोई मतलब नहीं है। राम न भी हुए हों, न भी हों तो भी काम दे देगा। महत्वपूर्ण प्रतीक नहीं है, महत्वपूर्ण समर्पण है।
यह आदमी कहता है, मैंने सब उन पर छोड़ दिया, लेकिन अभी कुछ हुआ नहीं। लेकिन की गुंजाइश समर्पण में नहीं है। छोड़ दिया, बात खत्म हो गई। हो, न हो, अब आप बीच में आने वाले नहीं हैं। तो यह धोखा दे रहा है अपने को। यह समर्पण किया नहीं है। लेकिन सोचता है कि समर्पण कर दिया और अभी हिसाब-किताब लगाने में लगा हुआ है। समर्पण में कोई हिसाब-किताब नहीं है।
अगर हिसाब-किताब ही करना है तो संकल्प; अगर हिसाब-किताब नहीं ही करना है, तो समर्पण।
और जब एक दिशा में आप लीन हो जाएं, तो वह जो दूसरा हिस्सा आपके भीतर रह जाएगा छाया की तरह, उसे भी उसी के उपयोग में लगा दें। इसे उसके विपरीत खड़ा न रखें।
इसे थोड़ा ठीक से समझ लें।
आपके भीतर थोड़ा सा संकल्प भी है, बड़ा समर्पण है। आप समर्पण में जा रहे हैं तो अपने संकल्प को समर्पण की सेवा में लगा दें। उसको विपरीत न रखें; नहीं तो वह कष्ट देगा। और आपकी सारी साधना को नष्ट कर देगा। अगर आप संकल्प की साधना में जा रहे हैं और समर्पण की वृत्ति भी भीतर है, जो कि होगी ही, क्योंकि अभी आप अखण्ड नहीं हैं, एक नहीं हैं, बंटे हुए हैं, टूटे हुए हैं। दूसरी बात भी भीतर होगी ही। तो आपके भीतर जो समर्पण है, उसको भी संकल्प की सेवा में लगा दें।
इसलिए महावीर ने शब्द प्रयोग किया है, आत्मशरण। महावीर कहते हैं; दूसरे की शरण मत जाओ, अपनी ही शरण आ जाओ। संकल्प का अर्थ हुआ कि मेरे भीतर जो समर्पण का भाव है, वह भी मैं अपने ही प्रति लगा दूं, अपने को ही समर्पित हो जाऊं। वह भी बचना नहीं चाहिए, वह सक्रिय काम में आ जाना चाहिए।
ध्यान रहे, हमारे भीतर जो बच रहता है बिना उपयोग का, वह घातक हो जाता है, डिस्ट्रिक्टिव हो जाता है। हमारे भीतर अगर कोई शक्ति ऐसी बच रहती है जिसका हम कोई उपयोग नहीं कर पाते, तो वह विपरीत चली जाती है। इसके पहले कि हमारी कोई शक्ति विपरीत जाए, उसे नियोजित कर लेना जरूरी है। नियोजित शक्तियां सृजनात्मक हैं, क्रिएटिव हैं। अनियोजित शक्तियां घातक हैं, डिस्ट्रिक्टिव हैं, विध्वंसक हैं।
तो जो संकल्प कर रहा है, उसे समर्पण को भी संकल्प के कार्य में लगा देना चाहिए। हजार मौके आएंगे जब संकल्प का उपयोग समर्पण के साथ हो सकता है। जैसे एक आदमी ने संकल्प किया कि मैं चौबीस घंटे खड़ा रहूंगा। तो अब संकल्प के प्रति पूरा समर्पित हो जाना चाहिए, अब चौबीस घंटे में एक बार भी सवाल नहीं उठाना चाहिए कि मैंने यह क्या किया, करना था कि नहीं करना था। अब पूरा समर्पित हो जाना चाहिए। अपने ही संकल्प के प्रति अपना पूरा समर्पण कर देना चाहिए। अब चौबीस घंटे यह सवाल नहीं है।
एक आदमी ने संकल्प किया कि किसी के चरण पकड़ लिए, यही आसरा है, तो फिर अब बीच-बीच में सवाल नहीं उठाने चाहिए संकल्प से कि मैंने ठीक किया कि नहीं ठीक किया, कि यह मैं क्या कर रहा हूं। अब सारे संकल्प को इसी समर्पण में डुबा देना चाहिए। तो मेरे भीतर कोई अनियोजित हिस्सा नहीं बचे, तो मैं साधक हूं। अगर अनियोजित हिस्सा बच जाए तो मैं संदेह से घिरा रहूंगा, और अपने को ही अपने ही हाथ से काटता रहूंगा। खुद की विपरीत जाती शक्ति व्यक्ति को दीन

कर देती है। खुद की सारी शक्तियां समाहित हो जाएं तो व्यक्ति को शक्तिशाली बना देती हैं।
तो जब मैंने कहा, संकल्प और समर्पण के मार्गों का तालमेल मत करना, तो मेरा मतलब यह नहीं है कि आप अपने भीतर की शक्तियों का ताल-मेल मत करना। संकल्प के मार्ग पर चलें तो समर्पण के मार्ग की जो विधियां हैं, उनका उपयोग मत करना। आपके भीतर जो समर्पण की क्षमता है, उसका तो जरूर उपयोग करना। जब समर्पण के मार्ग पर चलें तो संकल्प की जो विधियां हैं, वे फिर आपके लिए नहीं रहीं। लेकिन आपके भीतर जो संकल्प की क्षमता है, उसका पूरा उपयोग करना।
मैं समझता हूं, मेरी बात आपको साफ हुई होगी।
जैसे कि एक आदमी एलोपैथिक दवाएं लेता है, एक आदमी होम्योपैथिक दवाएं लेता है या एक आदमी नैचरोपैथी का इलाज करता है। पैथीज को मिलाना मत। ऐसा मत करना कि एलोपैथी की भी दवा ले रहे हैं, होम्योपैथी की भी दवा ले रहे हैं और नेचरोपैथी भी चला रहे हैं। इसमें बीमारी से शायद ही मरें, पैथीज से मर जाएंगे। बीमारी से बचना आसान है, लेकिन अगर कई पैथी का उपयोग कर रहे हैं तो मरना सुनिश्चित है। जब एलोपैथी ले रहे हों, तो फिर शुद्ध एलोपैथी लेना, फिर बीच में दूसरी चीजों को बाधा मत डालना। जब होम्योपैथी ले रहे हों तो पूरी होम्योपैथी लेना, दूसरी चीज को बाधा मत डालना।
लेकिन चाहे एलोपैथी लें, चाहे होम्योपैथी लें, चाहे नेचरोपैथी लें, भीतर वह जो क्षमता है ठीक होने की, उसका पूरा उपयोग करना। वह एलोपैथी के साथ जुड़े कि होम्योपैथी के साथ, कि नेचरोपैथी के साथ, यह अलग बात है, लेकिन भीतर वह जो ठीक होने की क्षमता है, उसका पूरा उपयोग करना।
आप कहेंगे, वह तो हम करते ही हैं। जरूरी नहीं है। कुछ लोग ऊपर से दवा लेते रहते हैं और भीतर बीमार रहना चाहते हैं, तब बड़ी मुश्किल हो जाती है। अगर बीमारी आपकी तरकीब है, तो दवा आपको ठीक नहीं कर पाएगी। आप कहेंगे, कौन आदमी बीमार रहना चाहता है? आप गलती में हैं। फिर आपको मनुष्य के मन का कोई भी पता नहीं है।
मनस्विद कहते हैं कि सौ में से पचास प्रतिशत बीमारियां बीमारों के आान हैं, वे उन्होंने बुलाई हैं। बचपन से बीमारी का सिखावन हो जाता है। बच्चा अगर स्वस्थ है, घर में कोई ध्यान नहीं देता है। बच्चा अगर बीमार है, सारे घर का केंद्र हो जाता है। बच्चा समझ लेता है एक बात कि जब भी केंद्र होना हो, बीमार हो जाना जरूरी है। और बच्चा ही नहीं सीख लेता, आपके भीतर छिपा है वह बच्चा। आपको भी ख्याल होगा, पत्नी पति को देख कर कूल्हने लगती है, पहले नहीं कूल्ह रही थी। पति पत्नी को देख कर एकदम सिर पर हाथ रख कर लेट जाता है। अभी बिल्कुल ठीक बैठा हुआ था।
क्या, मामला क्या है?
अगर सिर में दर्द था, तो कमरे में जब कोई नहीं था तब भी कूल्हना चाहिए था। अगर कूल्हना बीमारी से आ रहा है, तो किसी से क्या लेना-देना! लेकिन दूसरे को देखकर बीमारी एकदम कम-बढ़ क्यों होती है? रस है बीमारी में।
और मनस्विद कहते हैं कि स्त्रियों की तो अधिक बीमारियां उस रस से पैदा होती हैं, क्योंकि उनको और कोई उपाय दिखाई नहीं पड़ता कि कैसे वह पति का आकर्षण कायम रखें। पहले तो उन्होंने सौंदर्य से रख लिया, सजावट से रख लिया। थोड़े दिन में वह बासा हो जाता है, परिचित हो जाता है। तो अब पति का ध्यान किस तरह आकर्षित करना! तो स्त्रियां बीमार रहना शुरू कर देती हैं। उनको भी पता नहीं है कि वह क्यों बीमार हैं? तो वह दवा भी लेंगी, लेकिन बीमारी में रस भी जारी रहेगा। तो दवा भी जारी रहेगी और भीतर से उनका दवा के लिए सहयोग भी नहीं है। वह ठीक होना नहीं चाहतीं। क्योंकि ठीक होते ही, वह जो ध्यान पति दे रहा था, वह विलीन हो जाएगा। जब पत्नी बीमार है तो पति खाट के पास आकर बैठता भी है, सिर पर हाथ भी रखता है। जब वह ठीक है तब कोई हाथ नहीं रखता, कोई ध्यान भी नहीं देता।
अगर दुनिया में बीमारी कम करनी है तो बच्चों के साथ जब वे बीमार हों
तब बहुत ज्यादा प्रेम मत दिखाना। क्योंकि वह खतरनाक है। बीमारी और प्रेम का जुड़ना बहुत खतरनाक है। बीमारी से ज्यादा बड़ी बीमारी आप पैदा कर रहे

हैं। बच्चे जब स्वस्थ हों, तब उनके प्रति प्रेम प्रकट करना और ज्यादा ध्यान देना। जब बीमार हों, तब थोड़ी तटस्थता रखना। तब उतना प्रेम, उतना शोरगुल मत मचाना। लेकिन जब कोई बीमार होता है। तब हम एकदम वर्षा कर देते हैं। जब कोई ठीक होता है, तो हमें कोई मतलब नहीं।
हम भी सोचते हैं कि जब ठीक है, तब मतलब की बात क्या? लेकिन आपको पता नहीं, आपका यह ध्यान बीमारी का भोजन है। इसलिए बच्चा जब भी चाहेगा कि कोई ध्यान दे, चाहे वह कितना ही बड़ा हो जाए, तब वह बीमारी को निमंत्रण देगा। यह निमंत्रण भीतरी होगा। दवा ऊपर से लेगा और भीतर ठीक नहीं होना चाहेगा। तब उपद्रव हो जाएगा। तो चाहे एलोपैथी लें, चाहे कोई पैथी लें, एक काम सब में जरूरी होगा कि अपना पूरा भाव ठीक होने का जोड़ दें।
चाहे संकल्प के मार्ग पर चलें, चाहे समर्पण के मार्ग पर, जो भी आपकी ऊर्जा है वह सारी की सारी उस मार्ग पर जोड़ दें। दो मार्गों को नहीं जोड़ना है, साधक को भीतर अपनी दो ऊर्जाओं को जोड़ना है। ये दोनों ऊर्जाएं जुड़ कर किसी भी मार्ग पर चली जाएं तो यात्रा अन्त तक पहुंच जाएगी। भीतर तो ऊर्जाएं बंटी रहें और आदमी मार्गों को जोड़ने में लगा रहे तो कभी भी नहीं पहुंच पाएगा। पैथीज जुड़ कर जहर हो जाती हैं। अलग-अलग अमृत हैं। दो मार्ग जुड़ कर भटकाने वाले हो जाते हैं। अलग-अलग पहुंचाने वाले हैं।
एक मित्र ने पूछा है कि परमात्मा शब्द में नहीं, सत्य में है, ऐसा आपसे जाना। मैं भी इन शब्दों के जाल से छूटना चाहता हूं। लेकिन डर लगता है। डूबते को तिनके का सहारा है। गीता के पाठ से लगता है, सब ठीक चल रहा है। अगर छोड़ दूं तो आध्यात्मिक पतन न हो जाए। कहीं पापी न हो जाऊं।
यह भय स्वाभाविक है। लेकिन इसे समझ लें।
अगर मुझे सुन कर ही जाना कि शब्द में सत्य नहीं, अगर मुझे सुन कर ही जाना तो मुझसे तो शब्द ही सुने होंगे। तब खतरा है। तब गीता छूट सकती है, मैं पकड़ जाऊं। और गीता छोड़ कर मुझे पकड़ने में कोई सार नहीं है। फिर तो पुराने को ही पकड़े रहना बेहतर है। क्योंकि पकड़ का अभ्यास है। नाहक बदलने से क्या सार होगा।
मुझे सुनकर ही न जाना हो, मुझे सुन कर भीतर यह बोध जगा हो, मेरा सुनना केवल निमित्त रहा हो, मेरे सुनने से ही यह बात भीतर पैदा न हुई हो, मेरे सुनने का ही कुल जमा परिणाम न हो, मेरा सुनना केवल बाहर से निमित्त बना हो और भीतर एक बोध का जन्म हुआ
हो कि शब्द में कोई सत्य नहीं है। तब मेरे शब्द में भी सत्य नहीं है और गीता के शब्द में भी सत्य नहीं है। तब सत्य साधना में है, स्वयं के अनुभव में है। अगर ऐसा हुआ हो तो गीता को छोड़ने में कोई भी भय न लगेगा। क्या भय है? अगर भीतर ही यह बोध हो गया तो छोड़ने में जरा भी भय न लगेगा। बोध के लिए कोई भय नहीं है। भय का कारण यह है कि मेरा शब्द लग रहा है प्रीतिकर। तो अब गीता के शब्द को छोड़ना है। जगह खाली करनी है, तब मेरे शब्द को भीतर रख पाएंगे। इससे भय लग रहा है कि इतना पुराना शब्द, इसको छोड़ना और नये शब्द को पकड़ना।
पुराना तिनका छोड़ना और नये तिनके को पकड़ने में भय लगेगा। क्योंकि पुराना तिनका, तिनका नहीं मालूम पड़ता, नाव मालूम पड़ता है, इतने दिन से पकड़ा हुआ है। जब उसको छोड़ेंगे और नये तिनके को पकड़ेंगे तो नया तिनका अभी तिनका दिखाई पड़ेगा। धीरे-धीरे वह भी नाव बन जाएगा। जैसे-जैसे आंख बंद होने लगेगी, वह भी नाव मालूम पड़ने लगेगा। इसलिए पुराने को नये से बदलने में भय लगता है। क्योंकि पुराने के साथ तो सम्मोहन जुड़ जाता है। नये के साथ सम्मोहित होना पड़ेगा, वक्त लगेगा, समय लगेगा। जितनी देर समय लगेगा उतने दिन भीतर एक भय और घबड़ाहट रहेगी।
नहीं, कोई गीता के शब्द को मेरे शब्द से बदलने की जरूरत नहीं है। सब शब्द एक जैसे हैं। अगर बदलना ही है तो सत्य से शब्द को बदलना। लेकिन सत्य है आपके भीतर, न मेरे शब्द में है, न गीता के शब्द में है, न महावीर के शब्द में है। इनके शब्द भी आपके भीतर की तरफ इशारा हैं। वह जो मील का पत्थर कह रहा है, मंजिल आगे है, तीर बना हुआ है; उस मील के पत्थर में कोई मंजिल नहीं है। वह सिर्फ इशारा है। और सब इशारे छोड़ देने पड़ते हैं तो ही यात्रा होती

है। मील के पत्थर को छाती से लगाकर कोई बैठ जाए तो हम उसे पागल कहेंगे।
लेकिन गीता को कोई छाती से लगा कर बैठा हो तो हम उसको धार्मिक आदमी कहते हैं।
गीता मील का पत्थर है, कृष्ण के द्वारा लगाया गया पत्थर है, इशारा है।
मैं भी एक पत्थर लगा सकता हूं, वह भी इशारा बनेगा। आप एक पत्थर छोड़ कर दूसरा पत्थर पकड़ लें, इससे कोई हल नहीं है। थोड़ी राहत भी मिल सकती है। जैसा कि मरघट लोग ले जाते हैं अथ्रू को, तो एक कंधे से दूसरे पर रख लेते हैं। थोड़ी देर राहत मिलती है क्योंकि एक कंधा थक गया, दूसरे पर रख लिया। अगर कृष्ण से आप थक गए हैं तो मुझे रख सकते हैं। लेकिन थोड़ी देर में मुझसे थक जाएंगे। जब कृष्ण से ही थक गए तो मुझसे कितनी देर बचेंगे बिना थके। मुझसे भी थक जाएंगे, फिर कंधा बदलना पड़ेगा। कंधे तो बदलते-बदलते जन्म बीत गए। कितने कंधे आप बदल नहीं चुके। कंधे बदलने से कोई सार नहीं है।
इशारा! इशारा क्या है? इशारा इतना ही है कि जो कहा जाता है, वह केवल प्रतीक है। जो अनुभव किया जाता है, वही सत्य है। आपने प्रेम का अनुभव किया और कहा कि मैंने प्रेम जाना। लेकिन जो सुन रहा है आपके शब्द, वह आपके शब्द सुन कर प्रेम नहीं जान लेगा।
मैंने कहाः पानी मैंने पीया और प्यास बुझ गई। अब मेरे वचन को पकड़ कर आपकी प्यास नहीं बुझ जाएगी। पानी पीएंगे तो प्यास बुझ जाएगी। पानी शब्द में पानी बिल्कुल भी नहीं है। तो कितना ही पानी शब्द को पीते रहें, प्यास न बुझेगी। धोखा हो भी सकता है कि आदमी अपने को समझा ले कि इतना तो पानी पी रहे हैं-पानी शब्द, पानी शब्द सुबह से शाम तक दोहरा रहे हैं। कहां की प्यास? यह भी हो सकता है कि पानी शब्द में इतनी तल्लीनता बढ़ा लें कि प्यास का पता न चले, लेकिन प्यास बुझेगी नहीं। और जब भी पानी शब्द की रटन छोड़ेंगे, भीतर की प्यास का पता चलेगा, कि प्यास मौजूद है। पानी पीना पड़ेगा, पानी शब्द से कुछ हल नहीं है।
इसलिए भय लगेगा, अगर शब्द से शब्द को बदलना है। लेकिन कोई भय की जरूरत नहीं, अगर शब्द को सत्य से बदलना है। लेकिन सत्य कहीं बाहर से मिलने वाला नहीं है--न कृष्ण से, न महावीर से, न बुद्ध से। सत्य है छिपा आपके भीतर। ये सारे कृष्ण, बुद्ध, महावीर, एक ही काम कर रहे हैं कि जो भीतर छिपा है, उसकी तरफ इशारा कर रहे हैं। वे कह रहे हैं कि तुम हो सत्य।
रिन्झाई से किसी ने आकर पूछा, बुद्ध क्या हैं? रिन्झाई ने कहा, तुम कौन हो? कोई संगति नहीं मालूम पड़ती। बेचारा पूछ रहा है कि बुद्ध कौन हैं? बुद्ध क्या हैं? बुद्धत्व का क्या अर्थ है? और रिंझाई जो उत्तर दे रहा है, हमें भी लगेगा, क्या उत्तर दे रहा है। वह उत्तर नहीं दे रहा है, वह एक दूसरा सवाल पूछ रहा है। वह कह रहा है कि तुम कौन हो? लेकिन जवाब उसने दे दिया। वह यह कह रहा है कि बुद्ध कौन हैं, इसे तुम सब तक न जान पाओगे, जब तक तुम यह न जान लो कि तुम कौन हो। वह यह कह रहा है, तुम ही हो बुद्ध, और तुम्हीं पूछ रहे हो! तो रिन्झाई ने कह रखा था कि अगर कोई पूछेगा बुद्ध के बाबत तो ठीक नहीं होगा। क्योंकि बुद्ध ही बुद्ध के बाबत पूछे, यह उचित नहीं है।
रिन्झाई ने तो बड़ी हिम्मत की बात कही। सारी दुनिया में उसके वचन का कोई मुकाबला नहीं है। और कई धर्मशास्त्री और पंडित तो उसका वचन सुन कर बिल्कुल घबरा जाते हैं। ऐसा लगता है कि इससे ज्यादा अपवित्र बात और क्या होगी। खुद बुद्ध को मानने वाले लाखों लोग रिंझाई का वचन सुनने में समर्थ नहीं हैं। लेकिन अगर बुद्ध ने सुना होता तो बुद्ध नाच उठे होते।
रिंझाई अपने शिष्यों से कहता था, इफ एनी व्हेयर यू मीट दि बुद्धा, किल हिम इमीजिएटली--अगर कहीं बुद्ध मिल भी जाएं तो फौरन सफाया कर देना, खात्मा कर देना, एक मिनट बचने मत देना।
किसी ने रिंझाई से कहा कि क्या कह रहे हैं आप, खात्मा कर देना! तो रिंझाई ने कहाः जब तक तुम बाहर के बुद्ध का खात्मा न करोगे, तुम्हें अपने बुद्ध का पता नहीं चलेगा। और जब तक तुम्हें बाहर बुद्ध दिखाई पड़ रहा है, तब तक तुम भ्रांति में हो। जिस दिन तुम्हें भीतर दिखाई पड़ेगा उसी दिन। तो मिल जाएं अगर बुद्ध, तो तुम खात्मा कर देना, और मैं तुमसे कहता हूं।

रिंझाई ने कहाः मेरे वचन को याद रखना और खत्म करते वक्त बुद्ध से भी
कह देना कि रिंझाई ने ऐसा कहा है, और बुद्ध भी इसको पसंद करेंगे। रिन्झाई बड़े अधिकार से कह रहा है क्योंकि रिंझाई ठीक वहीं खड़ा है, जहां गौतम बुद्ध खड़े हैं। कोई फर्क नहीं है।
रिंझाई अपने शिष्यों से कहता था कि तुम्हारे मुंह में बुद्ध का नाम आ जाए तो कुल्ला कर लेना, सफा कर लेना, मुंह गंदा हो गया। शिष्य घबरा जाते थे, वे कहते थे, आपसे ऐसी बातें सुन कर मन बड़ा बेचैन है, यह आप क्या कहते हैं! वह कहता, जब तक तुम्हें लगता है कि बुद्ध के नाम-स्मरण से कुछ हो जाएगा, तब तक भीतर के बुद्ध की तुम खोज कैसे करोगे? और जब बुद्ध ही बुद्ध का नाम ले रहा है, तो इससे ज्यादा बुद्धूपन और क्या है?
नहीं, बुद्ध हों, कृष्ण हों, महावीर हों, उनके इशारे--पर हम हैं पागल।
हम इशारे पकड़ लेते हैं। और जिस तरफ इशारा है, वह जो भीतर छिपा है, उसकी कोई फिक्र नहीं करते।
कोई भय नहीं है, और जब पता ही चल गया कि तिनके को पकड़े हुए हैं, तो छोड़ने में डर क्या है? तिनके को पकड़े रहो, तो भी डूबोगे। शायद अकेले बच भी जाओ, क्योंकि आदमी को अगर कोई भी सहारा न हो तो तैर भी सके। और सोच रहा है कि तिनका सहारा है, तब पक्का डूबेगा। कोई तिनका तो बचा नहीं सकता। लेकिन तिनके की वजह से तैरेगा भी नहीं।
छोड़ो, जब पता चल गया कि तिनका है, तो अब पकड़ने में कोई सार नहीं है। जब
तक नाव मालूम होती थी, तभी तक पकड़ने में कोई सार था। छोड़ो, तैरो। बेसहारा होना एक लिहाज से अच्छा है। झूठे सहारे किसी काम के नहीं हैं।
लेकिन एक बहुत मजे की बात है, जो आदमी परमरूप से बेसहारा हो जाता है उसे परम सहारा मिल जाता है। वह तो भीतर ही छिपा है आपके, जिसके सहारे की जरूरत है। तिनके की कोई जरूरत नहीं है, वह जो भीतर छिपा है वही सहारा है। शब्द को छोड़ो, शास्त्र को छोड़ो। इसलिए नहीं कि शास्त्र कुछ बुरी बात है, बल्कि इसीलिए कि उसको पकड़ कर कहीं ऐसा न हो कि सब्स्टीट्यूट जो है, परिपूरकजो है, उससे ही तृप्ति हो जाए। कहीं ऐसा न हो कि शब्द से ही राजी हो जाएं।
खतरा है बड़ा शब्द के साथ। सत्य के साथ कोई खतरा नहीं है। लेकिन हमें सत्य के साथ खतरा मालूम होता है, शब्द के साथ कोई खतरा नहीं मालूम होता। क्या कारण है? एक ही कारण है कि शब्द के साथ चुपचाप जीने में सुविधा रहती है--कोई उपद्रव नहीं, कोई परिवर्तन नहीं, कोई क्रांति नहीं। पढ़ते रहो गीता रोज और करते रहो जो करना है। और मजे से करो, क्योंकि हम तो गीता पढ़ने वाले हैं। दिल खोल कर पाप करो, क्योंकि आखिर तीर्थ किसलिए हैं? नहीं तो तीर्थ क्या करेंगे, अगर आप पाप न करोगे। मंदिर किसलिए हैं, अगर पाप न करोगे, तो पूजा का क्या सार है, और फिर परमात्मा किसलिए है? दया के लिए ही, रहमान, दयालु। तो अगर आप पाप ही न करोगे तो परमात्मा का, वह रहमान होने का क्या होगा? रहीम होने का क्या होगा? वह दया किस पर करेगा? किस पर रहम खाएगा? उस पर कुछ दया करो और पाप करो, ताकि वह आप पर रहम खा सके!
इसलिए आदमी शब्दों में जीता रहता है। और जिन्दगी? जिंदगी वृत्तियों में, वासनाओं में विक्षिप्त दौड़ती रहती है। शब्द को छोड़ने का अर्थ केवल इतना ही है कि जिन्दगी को देखो, शब्दों में मत उलझे रहो और अगर चाहिए है किसी दिन स्वतंत्रता, मुक्ति, आनंद, तो जिंदगी को बदलो। शब्दों को बदलने से कुछ भी होनेवाला नहीं है।
अब सूत्र।
"आत्मा ही अपने सुख और दुख का कर्ता है तथा आत्मा ही अपने सुख और दुख
का नाशक भी। अच्छे मार्ग पर चलने वाला आत्मा मित्र है, और बुरे मार्ग पर चलनेवाला आत्मा शत्रु है।"
महत्वपूर्ण बात महावीर ने कही है कि आप ही अपने शत्रु हो, आप ही अपने मित्र। कोई दूसरा शत्रु नहीं है, और कोई दूसरा मित्र भी नहीं। दूसरे से छुटकारा हमारा हो जाए, इसकी चिन्ता ही महावीर को है। दूसरे पर हम जिम्मेवारियां रखना छोड़ दें, यह सारे उनके वचनों का सार है, और सारी जिम्मेवारी अपने ऊपर ले लें।

महावीर कहते हैं कि जब तुम ठीक मार्ग पर चलते हो, तो तुम अपने ही मित्र हो, और जब तुम गलत मार्ग पर चलते हो तो तुम अपने ही शत्रु हो।
इसे हम थोड़ा समझें।
अगर मैं किसी पर क्रोध करता हूं तो पता नहीं, उसे दुख पहुंचता है या नहीं। यह कोई पक्का नहीं है, लेकिन मुझे दुख मैं देता हूं, यह पक्का है। अगर मैं महावीर को गाली दूं तो महावीर को कोई दुख नहीं पहुंचता। लेकिन गाली देने में मैं तो पीड़ित होता ही हूं। क्योंकि गाली शांति से नहीं दी जा सकती। उसके लिए उबलना और जलना जरूरी है, रातें खराब करना जरूरी है, आगे पीछे दोनों तरफ चिंता, बेचैनी, जलन, क्योंकि तभी वह जलन और बेचैनी ही तो गाली बनेगी। वह जो मेरे भीतर पीड़ा होगी, वही जब इतनी भारी हो जाएगी कि उसे सम्हालना मुश्किल हो जाएगा, तभी तो मैं किसी को चोट पहुंचाऊंगा।
ध्यान रहे, जब मैं किसी को चोट पहुंचाता हूं तो खुद को चोट पहुंचाए बिना नहीं पहुंचा सकता। असल में जब भी मैं किसी को चोट पहुंचाता हूं, उसके पहले ही मैं अपने को चोट पहुंचा लेता हूं। मेरा घाव भीतर न हो तो मैं दूसरे को घाव करने जा नहीं सकता। घाव ही घाव करवाता है।
कभी सोचें कि आप बिल्कुल शांत, आनंदित, और अचानक किसी को गाली देने लगें तो आपको खुद हंसी आ जाएगी कि यह क्या हो रहा है, और दूसरे को भी गाली मजाक मालूम पड़ेगी, गाली नहीं मालूम पड़ेगी। गाली की तैयारी चाहिए, उसकी बड़ी साधना है। पहले साधना पड़ता है, पहले मन ही मन उसमें काफी पागलपन पैदा करना पड़ता है। पहले मन ही मन सारी योजना बनानी पड़ती है।
और जब आप इतने तैयार हो जाते हैं भीतर कि अब विस्फोट हो सकता है, तभी। कोई बम ऐसे ही नहीं फूटता, पीछे भीतर बारूद चाहिए। असल में बम फूटता ही इसलिए है कि भीतर विक्षिप्त बारूद मौजूद है। और जब आप भी फूटते हैं तो भीतर बारूद आपको निर्मित करनी पड़ती है।
जब एक आदमी किसी पर क्रोध करता है, तो अपने को दुख देता है, पीड़ा देता है, वह अपना शत्रु है। बुद्ध ने भी ठीक यही बात कही है कि बड़े पागल हैं लोग, दूसरों की भूलों के लिए अपने को सजा देते हैं। आपने गाली दी मुझे, यह भूल आपकी रही, और मैं अपने को सजा देता हूं क्रोधित होकर। क्रोधित होकर आपको सजा दे सकता हूं, यह कोई जरूरी नहीं है। अपने को सजा देता हूं। गलती थी आपकी, चोट अपने को पहुंचाता हूं--तब मैं अपना ही शत्रु हूं। अगर हम अपना जीवन खोजें तो हमें पता लगेगा कि हम चौबीस घंटे अपनी शत्रुता कर रहे हैं। दो तरह के शत्रु हैं जगत में। एक, वे जो भोग की दिशा में भूल करते हैं,
वे अपने को सजा दिए जा रहे हैं, अपने को सताए चले जा रहे हैं, अपने को काटे जा रहे हैं, मारे जा रहे हैं। फिर तो वे इतने आदी हो जाते हैं कि वे समझते भी हैं कि अब यह नहीं करना, फिर भी रुक नहीं पाते।
अभी मेरे पास एक युवक को लाया गया। एल. एस. डी. और मारीजुआना और सब तरह
के ड्रग्स ले-ले कर उसने ऐसी हालत कर ली है, अब तो वह दिन में दो दफा इंजेक्शन अपने हाथ से लगा ले, तभी जी पाता है, नहीं तो जिंदगी बेकार मालूम पड़ती है। सारे हाथों में छेद हो गए हैं, सारा खून खराब हो गया है, सारे शरीर पर फोड़े-फुंसियां, रोग फैल गए हैं। अब वह कहता है कि मैं रुकना चाहता हूं, लेकिन कोई उपाय नहीं। जब सुबह होती है तो जिंदगी बेकार मालूम पड़ती है, जब तक कि मैं एक इंजेक्शन और न लगा लूं।
आज यूरोप और अमरीका के अनेक-अनेक अस्पताल भरे हुए हैं ऐसे युवक-युवतियों से जो बिल्कुल पागल हो गए हैं, अपनी हत्या कर रहे हैं, रोज जहर डाल रहे हैं। लेकिन अब वे यह भी जानते हैं कि अब हम जो कर रहे हैं, यह करने योग्य नहीं है। अब हम मरेंगे इसमें, यह भी जानते हैं। लेकिन रुक भी नहीं सकते। जब सुबह आती है तो बस, नहीं लगाए बिना जिंदगी बेकार मालूम पड़ती है, लगाओ तो लगता है, अपनी हत्या कर रहे हैं।
क्या हो गया इनको?
लेकिन, यह जरा अतिशय रूप है। कर हम भी यही रहे हैं। जरा हमारे डो.ज हलके हैं, छोटे हैं। इनके डो.ज मजबूत हैं। हम भी रोज-रोज जहर लेते हैं, लेकिन होम्योपैथिक डो.ज हैं हमारे, इसलिए पता नहीं चलता। रोज लेते रहते हैं। उसके बिना हमारा भी नहीं चलता। कभी एक महिना बिना क्रोध किए देखें,

तब पता चलेगा कि चलता है इसके बिना कि नहीं। वह भी डो.ज है, क्योंकि क्रोध होने से शरीर में विषाक्त द्रव्य छूट जाते हैं और खून पागल हो जाता है। यह आपको करना पड़ता है बार-बार। यह आदमी बाहर से इंजेक्शन लेकर भीतर जहर डाल रहा है और आप भीतर की ग्रंथियों से जहर को ले रहे हैं, लेकिन फर्क कुछ भी नहीं है। दस-पांच दिन कामवासना से बच जाते हैं तो बुखार मालूम होने लगता है, भारी हो जाती है वासना ऊपर। किसी तरह शरीर की शक्ति को बाहर फेंका जाए तो ही हलकापन लगेगा, नहीं तो नहीं लगेगा। फेंक कर अनुभव होता है, कुछ सार पाया नहीं। लेकिन दो-चार दिन बाद फिर फेंके बिना कोई रास्ता नहीं मालूम पड़ता। क्या कर रहे हैं हम जिंदगी के साथ?
महावीर कहते हैं, हम अपने शत्रु हैं। भोग में भी हम शत्रुता कर रहे हैं, क्योंकि भोग से कभी आनंद पाया नहीं। एक बात को सूत्र समझ लें कि जहां से दुख ही मिलता हो, उस मार्ग का अर्थ है कि हम अपने साथ शत्रुता कर रहे हैं। जहां से आनंद कभी मिलता ही न हो, वहां से मित्रता का क्या अर्थ? जिंदगी में आपने दुख ही पाया है। सारी जिंदगी दुख से भरी हुई है। इस दुख से भरी जिंदगी का अर्थ क्या है? कि हम जिन भी रास्तों पर चल रहे हैं, जो भी कर रहे हैं जीवन में, वह सब अपने साथ शत्रुता है। लेकिन हम अपने को बचा लेते हैं। हम कहते हैं, दूसरे शत्रु हैं, इसलिए तकलीफ पा रहे हैं। यह बचाव है, यह पलायन है, यह होशियारी है आदमी की कि वह कहता है कि दूसरों की वजह से। इस तरह वह टाल देता है, असली कारण को छिपा लेता है और दुख भोगता चला जाता है। अगर मैं यह मानता हूं कि दूसरे मेरे शत्रु हैं, इसलिए मैं दुख पा रहा हूं, तो फिर मेरे दुख से छुटकारे का कोई उपाय नहीं है, किसी जगत में, किसी व्यवस्था में मुझे रहना हो, मैं दुखी रहूंगा। क्योंकि मैंने मौलिक कारण ही छोड़ दिया और एक झूठे कारण पर अपनी नजर बांध ली। लेकिन, एक और भी शत्रुता है, जो इस तरह के शत्रु कभी-कभी इससे ऊब जाते हैं तो करते हैं।
आदमी भोग में अपने को सताता है, यह सुनकर हैरानी होगी। हम तो सोचते हैं, भोग में आदमी बड़ा सुख पाता है। भोग में आदमी अपने को सताता है, फिर इससे ऊब जाता है तो फिर त्याग में अपने को सताता है। पहले खूब खा-खा कर अपने को सताया। आदमी ज्यादा खा-खाकर अपने को सता रहा है। फिर इससे ऊब गया, परेशान हो गया, तो फिर उपवास कर-कर के अपने को सताना शुरू कर देता है, लेकिन सताना जारी रखता है। पहले क्रोध कर-कर के अपने को सताया, दूसरों पर क्रोध कर-कर के, फिर अपने पर क्रोध करना शुरू कर देता है, फिर अपने को सताता है। तो जिनको हम त्यागी कहते हैं, अकसर वे शीर्षासन करते हुए भोगी होते हैं। उनमें कोई अंतर नहीं होता है, सिर्फ खोपड़ी वे नीचे कर लेते हैं, पैर ऊपर कर लेते हैं। वे भी आप ही जैसे लोग हैं, लेकिन खड़े होने का ढंग उन्होंने उलटा चुना है। पहले एक आदमी स्त्रियों के पीछे दौड़-दौड़ कर अपने को सताता है, फिर स्त्रियों से दूर भाग-भाग कर सताना शुरू कर देता है। लेकिन अपने को सताना जारी रखता है। और दोनों से दुख पाता है।
मैं ऐसे संन्यासी को नहीं मिल पाया खोज-खोज कर, जो कहे कि संन्यास लेकर मैं आनंदित हो गया हूं। इसका क्या मतलब हुआ फिर? संसारी दुखी हैं, यह समझ में आने वाली बात है। ये संन्यासी क्यों दुखी हैं? एक बड़े जैन मुनि से मेरी बात हो रही थी। बड़े आचार्य हैं, आनंद की कोई उन्हें खबर नहीं है। दुख ही दुख का पता है। तो संसारी दुखी है, छोड़ो, क्षमा योग्य है। सब छोड़ कर जो त्यागी खड़ा हो गया, यह भी दुखी है। संसारी की तरकीब है कि वह कहता है, मैं दुखी हूं दूसरों के कारण। और त्यागी की तरकीब यह है कि वह कहता है, दुखी हूं मैं पिछले जन्मों के कारण। मगर दोनों कुशल हैं, कहीं और टाल देते हैं। संसारी टाल देता है दूसरे लोगों पर, संन्यासी टाल देता है दूसरे जन्मों पर। संसारी भी मानता है, मैं जैसा हूं बिल्कुल ठीक हूं, दूसरे गलत हैं। यह त्यागी भी मानता है कि मैं तो अब बिल्कुल ठीक हूं, लेकिन पिछले जन्मों में जो किया है, वह दुख भोगना पड़ रहा है। दोनों का तर्क एक ही है, ये कहीं टाल रहे हैं।
यह बड़े मजे की बात है कि कोई अगर आपसे कहे कि आप अभी पापी हो, तो दुख होता है। और कहे कि पिछले जन्मों का पाप है, तो दुख नहीं होता। क्या मामला है? पिछले जन्म अपने मालूम ही कहां पड़ते हैं! इतना डिस्टेंस है, इतना

फासला है कि जैसे किसी और के हों। होगा, इसको तो छोड़ दें, आदमी का मन कैसा है, उसे समझें।
अगर मैं आपसे कहूं, आपने कल भी मुझे गीत सुनाया और आज भी मुझे गीत सुनाया और मैं कहूं कि कल का गीत बढ़िया था, तो आपको दुख होता है। क्योंकि कल से भी संबंध टूट गया। आज मैं आपका अपमान कर रहा हूं, मैं कह रहा हूं कि आज का गीत बढ़िया नहीं था, कल का गीत बढ़िया था। कल तो दूर हो गया। अगर मैं आपसे यह कहूं कि आज का गीत कल से भी बढ़िया है तो खुशी होती है, दोनों गीत आपके हैं। आज का गीत कल से बढ़िया है, खुशी होती है, और मैं कहता हूं, कल का गीत आज से बढ़िया था तो दुख होता है। क्यों? क्योंकि आप अभी के क्षण से अपने को जोड़ते हैं। कल के क्षण से अपने को तोड़ चुके हैं। वह तो जा चुका है।
तो जब कल इतना दूर हो जाता है, तो पिछला जन्म तो बहुर दूर है। हुआ कि नहीं हुआ, बराबर है; किसी और का। बड़े मजे से कह सकते हैं कि पिछले जन्म में पापी था। पाप किए, इसलिए दुख भोग रहा हूं। लेकिन अभी? अभी बिल्कुल ठीक हूं। फिर भी दुख भोग रहा हूं, दूसरों के कारण, दूसरे जन्मों के कारण; लेकिन दूसरा शब्द महत्वपूर्ण है। चाहे वह जन्म हों, चाहे लोग हों।
जो व्यक्ति इस भाषा में सोच रहा है वह महावीर के सूत्र को नहीं समझा अभी। महावीर कहते हैं, दुख भोग रहे हो तो तुम अभी अपने शत्रु हो। उसी शत्रुता के कारण हम दुख भोग रहे हैं। दुख लाक्षणिक है, तुम्हारी शत्रुता का अपने साथ।
कल एक मित्र आए थे, वे जैन संन्यासी साधुओं की तरफ से खबर लाए थे, कुछ साधुओं की तरफ से कि वह वहां से छूटना चाहते हैं, उस जंजाल से। मैंने कहा, जंजाल! वे छूटना चाहते हैं, लेकिन हिम्मत भी नहीं है छूटने की। क्योंकि जब संन्यास लिया था तो बड़ा स्वागत समारंभ हुआ था, और जब छोड़ेंगे तो अपमान होगा, निंदा होगी। लोग कहेंगे, पतन हो गया। इसलिए हिम्मत भी नहीं है, लेकिन वहां बड़ा दुख पा रहे हैं। तो उन्होंने आपके पास खबर भेजी है कि अगर आप कोई उनका इंतजाम करवा दें तो वहां से निकल आएं।
मैंने कहा, क्या इंतजाम चाहते हैं? इंतजाम के लिए ही वहां भी गए थे। अगर साधुता के लिए गए होते तो वहां भी साधुता खिल जाती। इंतजाम के लिए वहां भी गए थे। और इंतजाम साधु का बढ़िया है। संन्यासी का संसारी से ज्यादा अच्छा इंतजाम है। कुछ शर्तें उसको पूरी करना पड़ती हैं। तो हजार शर्तें, संसारी को भी पूरी करनी पड़ती हैं। लेकिन उसका इंतजाम बढ़िया है। और संसारी को तो हजार तरह की योग्यताएं होनी चाहिए, तब थोड़ा बहुत इंतजाम कर पाता है। साधु के लिए एक ही योग्यता काफी है कि उन्होंने संसार छोड़ दिया। बाकी सब तरह की अयोग्यता चलेगी।
मुझे साधु मिलते हैं, वे कहते हैं कि आपकी बात ठीक लगती है और हम इस उपद्रव को छोड़ना चाहते हैं; लेकिन अभी जो हमारे पैर छूते हैं, कल वे हमें चपरासी की भी नौकरी देने को तैयार न होंगे। और वे ठीक कहते हैं, ईमानदारी की बात है। देखें अपने साधुओं की तरफ, अगर कल ये साधारण कपड़े पहन कर आपके द्वार पर आ जाएं और कहें कि कोई काम वगैरह दे दें, तो आप उनको काम देने वाले नहीं हैं। पूछेंगे कि सर्टिफिकेट लाओ। पिछली जगह कहां काम करते थे, वहां से कैसे छोड़ा? पुलिस स्टेशन में तो नाम नहीं है! लेकिन इन्हीं साधु के चरण छूने जाते हैं तब इन सबकी इंक्वायरी की कोई जरूरत नहीं, क्योंकि चरण छूने का खर्चा ही नहीं, न कुछ आपको झंझट, न कुछ। पांव छूए, अपने रास्ते पर गए। कुछ लेना-देना नहीं है।
जो लोग संसार से भागते हैं बिना संसार को समझे वे भोग के विपरीत त्याग में पड़ जाते हैं। भोग के विपरीत जो त्याग है, वह त्याग नहीं है, वह भी शत्रुता है। भोग के ऊपर जो त्याग है--भोग के विपरीत नहीं, भोग के पार जो त्याग है, भोग को छोड़ना नहीं पड़ता और त्याग को ग्रहण नहीं करना पड़ता। भोग समझपूर्वक गिरता जाता है और त्याग खिलता जाता है--भोग के पार, बियांड। भोग के विपरीत, अपोजिट नहीं। उसी तल पर नहीं, उस तल के पार। भोग की समझ से जो त्याग निकलता है, भोग के दुख से जो त्याग निकलता है, इनमें फर्क है।

भोग के दुख से जो त्याग निकलता है वह फिर दुख हो जाता है। दुख से दुख
ही निकल सकता है। भोग की समझ--और भोग में क्यों दुख पाया? भोग के कारण नहीं, दूसरे के कारण दुख पाया, यह जब ख्याल आता है तो आदमी भोग के पार हो जाता है। महावीर कहते हैं, जो इस तरह का आदमी है वह अपना मित्र है। साधु को महावीर अपना मित्र कहते हैं, असाधु को शत्रु। लेकिन परीक्षण क्या है कि आप अपने मित्र हैं? मित्र का क्या परीक्षण है?
जिससे सुख मिले, वह मित्र है और जिससे दुख मिले वह शत्रु है। अगर आपको अपने से ही सुख नहीं मिल रहा है तो आप शत्रु हैं। अपने से ही आपको सुख मिलने लगे तो आप मित्र हैं। लेकिन आपको कोई ऐसी बात पता है, जब आपको अपने से सुख मिला हो? एकाध ऐसा क्षण आपको ख्याल है? जब आप अचानक अपने से सुखी हो गए हों?
नहीं, कभी कोई मकान सुख दिया, कभी कोई लाटरी सुख दी, कभी कोई स्त्री सुख दी, पुरुष सुख दिया, कभी कोई हीरा सुख दिया, कभी कोई आभूषण सुख दिया, कभी कोई कपड़ा सुख दिया।
कभी आपको ऐसा ख्याल है कि आपने भी अपने को सुख दिया हो? ऐसी कोई याद है? बड़ी हैरानी की बात है, हमने कभी अपने को आज तब सुख नहीं दिया। हमें पता ही नहीं कि खुद को सुख देने का क्या मतलब होता है। सुख का मतलब ही दूसरे से जुड़ा हुआ है। तब एक बड़ी मजेदार दुनिया बनती है। जिस दुनिया में कोई आदमी अपने को सुख नहीं दे पा रहा है, उस दुनिया में सब एक दूसरे को सुख दे रहे हैं। पत्नी पति को सुख दे रही है, पति पत्नी को सुख दे रहा है। न पति अपने को सुख दे पा रहे हैं, न पत्नी अपने को सुख दे पा रही है और जो आपके पास है ही नहीं, वह आप कैसे दूसरे को दे रहे हैं, बड़ा मजा है।
जो है ही नहीं, वह आप दूसरे को दे रहे हैं। इसलिए आप सोचते हैं, दे रहे हैं। दूसरे तक पहुंचता ही नहीं। पहुंचेगा कैसे? इसलिए पत्नी कहे चली जाती है कि तुम मुझे सुख नहीं दे रहे हो, पति कहे चला जाता है कि तू मुझे सुख नहीं दे रही है। मैं तुझे सुख दे रहा हूं, और तू मुझे सुख नहीं दे रही है। हम सब एक दूसरे से कह रहे हैं कि हम सुख दे रहे हैं और तुम सुख नहीं दे रहे हो। सारी शिकायत यही है जिंदगी की, सारा शिकवा यही तो है कि कोई सुख नहीं दे रहा है और हम इतना बांट रहे हैं। और आप अपने तक को दे नहीं पाते, और दूसरों को बांट रहे हैं।
थोड़ा अपने को दें। और ध्यान रहे, जो अपने को दे सकता है, उसे दूसरों को देना नहीं पड़ता। उसके आसपास की हवा में दूसरे सुखी हो सकते हैं, हो सकते हैं, हो नहीं जाते। वह भी उनकी मर्जी है। नहीं तो महावीर के पास खड़े होकर भी आप दुखी ही होंगे। लोग इतने कुशल है दुख पाने में, कहीं से भी दुख खोज लेंगे। उनको मोक्ष भी भेज दो तो घड़ी दो घड़ी में वे सब पता लगा लेंगे कि क्या-क्या दुख है। मोक्ष भी उनसे बच नहीं सकता। यह जो महावीर वगैरह कहते हैं मोक्ष में आनंद ही आनंद है, इनको पता नहीं आदमियों का। असली आदमी पहुंच जाएं तब पता चलेगा कि वहां दुख ही दुख बता देंगे कि इसमें क्या आनंद है।
महावीर ने मोक्ष की बात कही है कि "सिद्ध-शिला" पर शाश्वत आनंद है। बर्ट्रेंड रसल को इससे बहुत दुख हुआ। बर्ट्रेंड रसल ने लिखा है कि "शाश्वत!" सदा रहेगा! फिर कभी उससे छुटकारा न होगा! फिर बस आनंद ही आनंद में रहना पड़ेगा! फिर बदलाहट नहीं होगी! इससे मन बहुत घबड़ाता है। बर्ट्रेंड रसल ने कहा है कि इससे तो नरक बेहतर। कम से कम अदल-बदल तो कर सकते हैं। और यह क्या कि सिद्ध शिला पर बैठे हैं, न हिल सकते, न डुल सकते, और आनंद ही आनंद बरस रहा है। कब तक? कितनी देर बरदाश्त करिएगा? थोड़ा सोचें आप भी, आपको भी लगेगा कि प्रास्पेक्ट्स बहुत अच्छे नहीं हैं। इसमें से भी दुख दिखाई पड़ने लगेगा कि नहीं-कभी तो "जस्ट फार ए चेंज", कभी तो कुछ और उपद्रव भी होना चाहिए, बस आनंद ही आनंद! मिठास ज्यादा हो जाएगी। इतनी हम न झेल पाएंगे। हमें थोड़ा तिक्त, नमकीन भी चाहिए। थोड़ा कड़वा, तो उससे थोड़ा जीभ सुधर जाती है। और फिर स्वाद लेने के लिए तैयार हो जाती है।
हमें दुख भी चाहिए तो ही हम सुख को अनुभव कर पाएंगे। तो महावीर का जो परम आनंद है, वह बर्ट्रेंड रसल को भयदायी मालूम पड़ा, पड़ेगा। हमको भी

पड़ेगा। वह तो हम बिना समझे कहते रहते हैं कि हे भगवान, कब मोक्ष होगा? अभी पता नहीं कि मोक्ष का मतलब क्या है? अगर हो जाए मोक्ष तो बस एक ही प्रार्थना रहेगी, हे भगवान, मोक्ष के बाहर जाना कब हो?
आदमी अपना दुश्मन है, और जब तक उसकी यह दुश्मनी अपने से नहीं टूटती, उसके लिए कोई आनंद नहीं है। आदमी अपना मित्र हो सकता है। बड़ी स्वार्थ की बात मालूम पड़ेगी कि महावीर कहते हैं अपने मित्र हो जाओ। लेकिन, स्वार्थ की बात है नहीं, क्योंकि जो अपना ही मित्र नहीं है, वह किसी का भी मित्र नहीं हो सकता।
महावीर कहते हैं, खुद पहले आनंद को उपलब्ध हो जाओ, यह काफी है। खुद ज्योतिर्मय हो जाओ, प्रकाशित हो जाओ, तभी सोचना कि किसी दूसरे के घर में भी प्रकाश डाल दें। खुद का दीया बुझा हुआ, दूसरों के दीये जलाने चल पड़ते हैं। उस झगड़े में अक्सर ऐसा होता है कि दूसरे का भी जल रहा हो थोड़ा बहुत तो बुझा आते हैं। क्योंकि अपने बुझे दीये को जो जला हुआ मानता है, जब तक आपका न बुझा दे, तब तक उसको भी जला हुआ नहीं मानेगा। जब बुझ जाता है, तब वह कहता है, जला दिया। अब निश्चिंत हुए। हम सब एक दूसरे को बुझाने की कोशिश में लगे हैं। खुद बुझे हुए हैं। यही होगा, और कुछ हो भी नहीं सकता।
"पांच इंद्रियां, क्रोध, मान, माया और लोभ तथा सबसे अधिक दुर्जेय अपनी आत्मा को जीतना चाहिए। एक आत्मा को जीत लेने पर सब कुछ जीत लिया जाता है।" यह एक मित्र हो जाए, जो भीतर छिपा है मेरे। इस एक से ही तालमेल बन जाए,
इस एक से ही प्रेम हो जाए, यह एक ही मैं जीत लूं, तो महावीर कहते हैं; सब जीत लिया। इस एक को जीत लेने को महावीर कहते हैं--सब जीत लिया। सारा संसार जीत लिया मगर दुर्जेय है बहुत।
कहते हैं, क्रोध, मान, मोह, लोभ--ये कठिन हैं, इनको जीतना। लेकिन और भी कठिन है स्वयं को जीतना।
क्या कठिनाई होगी स्वयं को जीतने की?
स्वयं को जीतने की कठिनाई सूक्ष्म है। क्रोध को जीतने की कठिनाई स्थूल है, ग्रास है। हम भी समझते हैं कि क्रोध को जीतना चाहिए। जो क्रोधी है, वह भी मानता है कि क्रोध को जीतना चाहिए। जो लोभी है, वह भी मानता है कि लोभ को जीतना चाहिए, क्योंकि लोभ से दुख मिलता है, इसलिए कोई भी जीतना चाहता है। क्रोध से दुख मिलता है--क्रोधी को भी मिलता है। वह भी मानता है कि गलती है हमारी, कष्ट पाते हैं, और जीतना चाहिए, और महावीर ठीक कहते हैं। महावीर ठीक कहते हैं कि इसका कुल कारण इतना है कि वह क्रोध से दुख पाता है। क्रोध को जीतने में उसका जो रस है वह दुख को जीतने में है। लोभ से भी दुख पाता है, इसलिए कहता है कि ठीक कहते हैं महावीर। दुख जीतना चाहिए। लोभ में दुख है, लेकिन रस उसका दुख जीतने में है।
फिर यह स्वयं को जीतना अति कठिन क्यों है? महावीर कहते हैं, दुर्जय। क्योंकि आपको ख्याल ही नहीं है कि आपने स्वयं से कभी दुख पाया, यही सूक्ष्मता है। जिस-जिस से दुख पाया, उसको तो हम जीतना चाहते हैं। न जीत पाते हों, कमजोरी है। लेकिन आपको यह ख्याल में ही नहीं है, स्मरण ही नहीं है कि आपने अपने से दुख पाया है। हालांकि सब दुख आपने अपने से पाया। इसलिए स्वयं को जीतने का कोई सवाल ही नहीं उठता। हम सोचते हैं, स्वयं
से तो हमने कभी दुख पाया नहीं, दूसरे से दुख पाया है। दुश्मन को जीतना चाहिए; जो दुख देता हो, उसको सफाया कर देना चाहिए।
अपने से हमने कभी दुख पाया नहीं, यद्यपि पाया सदा अपने से है। तो फिर तरकीब है हमारे मन की एक कि दुख पाते हैं अपने से, आरोपित करते हैं सदा दूसरों पर। दूसरे को सदा शत्रु बना लेते हैं, ताकि खुद को शत्रु न बनाना पड़े। और दूसरे को मिटाने में लग जाते हैं। यह सारी दृष्टि बदले, तो ही व्यक्ति धार्मिक होता है। हटा लें दूसरों पर, जहां-जहां आपने फैलाव किया है, जहां-जहां आपने अड्डे बना रखे हैं दुखों के--हटा लें वहां से।
दुख का घाव भीतर है। वह आप ही हैं दुख। वहां लौट आएं। और जब भी दुख मिले, तो जिसने दुख दिया है उसको भूल जाएं। जिसको दुख मिलता है, उसी को देखें। जिसको दुख मिलता है, वही दुख का कारण है। जो दुख देता है, वह दुख का कारण नहीं है।

यह फैलेसी है, यह भ्रांति है। सदा भीतर लौट आएं। कोई गाली दे, तो हमारा ध्यान, पता है कहां जाता है? देने वाले पर जाता है। सदा जब कोई गाली दे तो ध्यान वहां जाए, जिसको गाली दी गई है। जब कोई क्रोध में आगबबूला हो, तो उस पर ध्यान न दें, उस क्रोध का जो परिणाम आप पर हो रहा है, भीतर जो क्रोध उबल रहा है, उस पर ध्यान दें।
जब भी कहीं कोई आपको लगे कि ध्यान का कारण बाहर है, तत्काल आंख बंद कर लें और ध्यान को भीतर ले जाएं, तो आपको अपने परम शत्रु से मिलन हो जाएगा। वह आप ही हैं। और जिस दिन आपको अपने परम शत्रु से मिलन होगा, उसी दिन आप जीतने की यात्रा पर निकलेंगे।
और मजा यह है कि स्वयं को न जानने से ही वह शत्रु है। और जैसे-जैसे ध्यान भीतर बढ़ने लगेगा, वैसे-वैसे स्वयं का जानना बढ़ने लगेगा। और जो शत्रु था, वह एक दिन मित्र हो जाएगा। जो जहर है, वह अमृत हो जाता है, सिर्फ ध्यान के जोड़ को बदलने की बात है। सारी कीमिया, सारी अल्केमी एक है। ट्रांसफर ऑफ अटेंशन, ध्यान का हटाना। गलत जगह ध्यान दे रहे हैं, और जहां देना चाहिए, वहां नहीं दे रहे हैं।
बस, इतना ही हो पाए कि मैं ध्यान ऑब्जेक्ट से हटा कर सब्जेक्ट पर बदल दूं, विषय से हटा लूं, विषयी पर चला जाऊं। जो कुछ भी हो रहा है, मेरा जगत मैं हूं, और सारे कारण मेरे भीतर हैं। अपमान हो, सुख हो, दुख हो, प्रीति हो, सम्मान हो, जो कुछ भी हो, तत्काल मौके को मत चूकें। फौरन ध्यान को भीतर ले जाएं और देखें, भीतर क्या हो रहा है। जल्दी ही भीतर का शत्रु मिल जाएगा। फिर ध्यान को बढ़ाए चले जाएं। उसी शत्रु के भीतर छिपा हुआ परम मित्र भी मिल जाएगा। उस परम मित्र को महावीर ने आत्मा कहा है। वह परम मित्र सबके भीतर छिपा है, लेकिन हमने उस पर कोई ध्यान नहीं दिया है।

आज इतना ही।
कीर्तन करें, और फिर जाएं।

महावीर-वाणी, भाग 2
नौवां प्रवचन

साधना का सूत्र: संयम (आत्म-सूत्र: 2)

जस्सेवमप्पा उ हवेज्ज निच्छिओ,
चइज्ज देहं न हु धम्मसासणं।।
तं तारिसं नो पइलेन्ति इन्दिया,
उविंतिवाया व सुदंसणं गिरिं।।
सरीरमाहु नाव त्ति,
जीवो वुच्चई नाविओ।
संसारो अण्णवो वुत्तो,
जं तरन्ति महेसिणो।।

जिस साधक की आत्मा इस प्रकार दृढ़-निश्चयी हो कि देह भले ही चली जाए, पर मैं अपना धर्म-शासन नहीं छोड़ सकता, उसे इंद्रियां कभी भी विचलित नहीं कर सकतीं। जैसे भीषण बवंडर सुमेरु पर्वत को विचलित नहीं कर सकता।
शरीर को नाव कहा गया है और जीव को नाविक तथा संसार को समुद्र। इसी संसार समुद्र को महर्षिजन पार कर जाते हैं।

सूत्र के पहले थोड़े से सूत्र।
एक मित्र ने पूछा है कि सदगुरु की खोज हम अज्ञानी जन कर ही कैसे सकते हैं?

यह थोड़ा जटिल सवाल है और समझने योग्य। निश्चय ही, शिष्य सदगुरु की खोज नहीं कर सकता है। कोई उपाय नहीं है आपके पास जांचने का कि कौन सदगुरु है। और संभावना इसकी है कि जिन बातों से प्रभावित होकर आप सदगुरु को खोजें, वे बातें ही गलत हों।
आप जिन बातों से आंदोलित होते हैं, आकर्षित होते हैं, सम्मोहित होते हैं, वे बातें आपके संबंध में बताती हैं, जिससे आप प्रभावित होते हैं उसके संबंध में कुछ भी नहीं बतातीं। यह भी हो सकता है, अक्सर होता है कि जो दावा करता हो कि मैं सदगुरु हूं, वह आपको प्रभावित कर ले। हम दावों से प्रभावित होते हैं और बड़ी कठिनाई निर्मित हो जाती है कि शायद ही जो सदगुरु है, वह दावा करे। और बिना दावे के तो हमारे पास कोई उपाय नहीं है पहचानने का।
हम चरित्र की सामान्य नैतिक धारणाओं से प्रभावित होते हैं, लेकिन सदगुरु हमारी चरित्र की सामान्य धारणाओं के पार होता है। और अकसर ऐसा होता है कि समाज की बंधी हुई धारणा जिसे नीति मानती है, सदगुरु उसे तोड़ देता है। क्योंकि समाज मान कर चलता है अतीत को और सदगुरु का अतीत से कोई संबंध नहीं होता। समाज मानकर चलता है सुविधाओं को और सदगुरु का सुविधाओं से कोई संबंध नहीं होता। समाज मानता है औपचारिकताओं को, फार्मेलिटीज को और सदगुरु का औपचारिकताओं से कोई संबंध नहीं।
तो यह भी हो जाता है कि जो आपकी नैतिक मान्यताओं में बैठ जाता है, उसे
आप सदगुरु मान लेते हैं। संभावना बहुत कम है कि सदगुरु आपकी नैतिक मान्यताओं में बैठे। क्योंकि महावीर नैतिक मान्यताओं में नहीं बैठ सके, उस जमाने की। बुद्ध नहीं बैठ सके, कृष्ण नहीं बैठ सके, क्राइस्ट नहीं बैठ सके। जो छोटे-छोटे तथाकथित साधु थे, वे बैठ सके। अब तक इस पृथ्वी पर जो भी श्रेष्ठजन पैदा हुए हैं, वे अपनी समाज भी मान्यताओं के अनुकूल नहीं बैठ सके। क्राइस्ट नहीं बैठ सके अनुकूल, लेकिन उस जमाने में बहुत से महात्मा थे, जो अनुकूल थे। लोगों ने महात्माओं को चुना, क्राइस्ट को नहीं। क्योंकि लोग जिन धारणाओं में पले हैं, उन्हीं धारणाओं के अनुसार चुन सकते हैं। सदगुरु का संबंध होता है सनातन सत्य से। साधुओं, तथाकथित साधुओं का संबंध होता है सामयिक सत्य से। समय का जो सत्य है, उससे एक बात है संबंधित होना; शाश्वत जो सत्य है उससे संबंधित होना बिल्कुल दूसरी बात है। समय के सत्य रोज बदल जाते हैं, रूढ़ियां रोज बदल जाती हैं, व्यवस्थाएं रोज बदल

जाती हैं। दस मील पर नीति में फर्क पड़ जाता है, लेकिन धर्म में कभी भी कोई फर्क नहीं पड़ता।
इसलिए अति कठिन है पहचान लेना कि कौन है सदगुरु। फिर हम सबकी अपने मन में बैठी व्याख्याएं हैं। जैसे अगर आप जैन घर में पैदा हुए हैं तो आप कृष्ण को सदगुरु कभी भी न मान सकेंगे। इसका यह कारण नहीं है कि कृष्ण सदगुरु नहीं हैं। इसका कारण यह है कि आप जिन मान्यताओं में पैदा हुए हैं, उन मान्यताओं से कृष्ण का कोई तालमेल नहीं बैठेगा। अगर आप जैन घर में पैदा हुए हैं तो राम को सदगुरु मानने में कठिनाई होगी। अगर आप कृष्ण की मान्यता में पैदा हुए हैं तो महावीर को सदगुरु मानने में कठिनाई होगी। और जिसने महावीर को सदगुरु माना है, वह मोहम्मद को सदगुरु कभी भी नहीं मान सकता। धारणाएं हमारी हैं, और कोई सदगुरु धारणाओं में बंधता नहीं। बंध नहीं सकता। फिर हम एक सदगुरु के आधार पर निर्णय कर लेते हैं कि सदगुरु कैसा होगा। सभी सदगुरु बेजोड़ होते हैं, अद्वितीय होते हैं, कोई दूसरे से कुछ लेना-देना नहीं होता। मोहम्मद के हाथ में तलवार है, महावीर के हाथ में तलवार हम सोच भी नहीं सकते। महावीर नग्न खड़े हैं, कृष्ण आभूषणों से लदे बांसुरी बजा रहे हैं। इनमें कहीं कोई मेल नहीं हो सकता। राम सीता के साथ पूजे जाते हैं। एक दम्पति का रूप है। कोई जैन तीर्थंकर पत्नी के साथ नहीं पूजा जा सकता। क्योंकि जब तक पत्नी है, तब तक वह तीर्थंकर कैसे हो सकेगा! तब तक वह गृही है, तब तक तो वह संन्यासी भी नहीं है। हम तो राम का नाम भी लेते हैं तो सीता-राम लेते हैं, पहले सीता को रख न डाले। तब डर लगेगा कि फिर कहीं ऐसे न असदगुरु हमें चुन लें। यहां जरा और बारीक बात है। जिस तरह मैंने कहा कि शिष्य का अहंकार होता है और इसलिए उसे ऐसा भास होना चाहिए कि मैंने चुना। उसी तरह असदगुरु का अहंकार होता है, उसे इसी में मजा आता है कि शिष्य ने उसे चुना। थोड़ा समझ लें।
असदगुरु को तभी मजा आता है, जब आपने उसे चुना हो। असदगुरु आपको नहीं चुनता। सदगुरु आपको चुनता है। असदगुरु कभी आपको नहीं चुनता। उसका तो रस ही यह है कि आपने उसे माना, आपने उसे चुना। इसलिए आप चुनने की बहुत फिकर न करें, खुलेपन की फिकर करें। संपर्क में आते रहें, लेकिन बाधा न डालें, खुले रहें।
इजिप्शियन साधक कहते हैं, व्हेन दि डिसाइपल इ.ज रेडी, दि मास्टर एपीयर्स। और आपकी रेडीनेस, आपकी तैयारी का एक ही मतलब है कि जब आप पूरे खुले हैं, तब आपके द्वार पर वह आदमी आ जाएगा, जिसकी जरूरत है। क्योंकि आपको पता नहीं है कि जीवन एक बहुत बड़ा संयोजन है। आपको पता नहीं है कि जीवन के भीतर बहुत कुछ चल रहा है पर्दे की ओट में। आपके भीतर बहुत कुछ चल रहा है पर्दे की ओट में।
जीसस को जिस व्यक्ति ने दीक्षा दी, वह था जान द बैप्टिस्ट, बप्तिस्मा वाला जान। बप्तिस्मा वाला जान एक बूढ़ा सदगुरु था, जो जोर्डन नदी के किनारे चालीस साल से निरंतर लोगों को दीक्षा दे रहा था। बहुत बूढ़ा और जर्जर हो गया था, और अनेक बार उसके शिष्यों ने कहा कि अब बस, अब आप श्रम न लें। लाखों लोग इकट्ठे होते थे उसके पास। हजारों लोग उससे दीक्षा लेते थे। जीसस के पूर्व बड़े से बड़े गुरुओं में वह एक था। लेकिन बप्तिस्मा वाला जान कहता है कि मैं उस आदमी के लिए रुका हूं, जिसे दीक्षा देकर मैं अपने काम से मुक्त हो जाऊंगा। जिस दिन वह आदमी आ जाएगा, उस दिन मैं विलीन हो जाऊंगा। जिस दिन वह आदमी आ जाएगा, उसके दूसरे दिन तुम मुझे नहीं पाओगे, और फिर एक दिन आकर जीसस ने दीक्षा ली, और उस दिन के बाद बप्तिस्मा वाला जान फिर कभी नहीं देखा गया। शिष्यों ने उसकी बहुत खोज की, उसका कोई पता न चला कि वह कहां गया। उसका क्या हुआ।
वह जीसस के लिए रुका हुआ था। इस आदमी को सौंप देना था। लेकिन इसकी प्रतीक्षा करनी पड़ेगी, जब यह आदमी आए। और इस आदमी के पास जान जा सकता था।
जीसस का गांव जोर्डन से बहुत दूर न था। वह जाकर भी दीक्षा दे सकता था, लेकिन तब भूल हो जाती। तब शायद जीसस उस दीक्षा को ऐसे ही न झेल पाते, जैसा कृष्णमूर्ति को मुसीबत हो गई।

पास ही था गांव, लेकिन जान वहां नहीं गया उसने प्रतीक्षा की कि जीसस आ जाए। जीसस को यह ख्याल तो होना चाहिए कि मैंने चुना है। बुनियादी अंतर पड़ जाते हैं। इतना ख्याल देने के लिए बूढ़ा आदमी श्रम करता रहा और प्रतीक्षा करता रहा। जीसस के आने पर तिरोहित हो गया।
एक आयोजन है जो भीतर चल रहा है, उसका आपको पता नहीं है। आपको पता हो भी नहीं सकता। आप सतह पर जीते हैं। कभी अपने भीतर नहीं गए तो जीवन के भीतरी तलों का आपको कोई अनुभव नहीं है। जब आप खिंचे चले जाते हैं; किसी आदमी की तरफ, तो आप इतना ही मत सोचना कि आप ही जा रहे हैं। कोई खींच भी रहा है। सच तो यह है कि जब चुंबक खींचता होगा लोहे के टुकड़े को तो लोहे का टुकड़ा नहीं जानता है कि चुम्बक ने खींचा। चुंबक का उसे पता भी नहीं है। लोहे का टुकड़ा अपने मन में कहता होगा, मैं जा रहा हूं। लोहा जाता है। चुंबक खींचता है, ऐसा लोहे के टुकड़े को पता नहीं चलता।
सदगुरु एक चुंबक है, आप खिंचे चले जाएंगे। आप अपने को खुला रखना। फिर
यह भी जरूरी नहीं है कि सब सदगुरु आपके काम के हों। असदगुरु तो काम का है ही नहीं। सभी सदगुरु भी काम के नहीं हैं, जिससे आपका तालमेल बैठ जाए, जिसके साथ आपकी भीतरी रुझान तालमेल खा जाए। तो आप खुले रहना।
जापान में झेन गुरु अपने शिष्यों को एक दूसरे के पास भी भेज देते हैं। यहां तक भी हो जाता है कभी कि एक सदगुरु जो दूसरे सदगुरु के बिल्कुल सैद्धांतिक रूप से विपरीत है, विरोध में है, जो उसका खंडन करता रहता है, वह भी कभी अपने किसी शिष्य को उसके पास भेज देता है। और कहता है कि अब तू वहां जा।
बोकोजू के गुरु ने उसे अपने विरोधी सदगुरु के पास भेज दिया। बोकोजू
ने कहा कि आप अपने शत्रु के पास भेज रहे हैं। और अब तक तो मैं यही सोचता था, कि वह आदमी गलत है। तो बोकोजू के गुरु ने कहाः हमारी पद्धतियां विपरीत हैं। कभी मैंने कहा नहीं कि वह गलत है। इतना ही कहा कि उसकी पद्धति गलत है। पद्धति उसकी भी गलत नहीं है, लेकिन मेरी पद्धति समझने के लिए उसकी पद्धति को जब मैं गलत कहता हूं तो तुम्हें आसानी होती है। और मेरी पद्धति जब वह गलत कहता है तो उसके पास जो लोग बैठे हैं, उन्हें समझने में आसानी होती है; कंट्रास्ट, विरोध से आसानी हो जाती है। जब हम कहते हैं, फलां चीज सही है और फलां चीज गलत है तो काले और सफेद की तरह दोनों चीजें साफ हो जाती हैं। लेकिन बोकोजू, तू वहां जा, क्योंकि तेरे लिए वही गुरु है। मेरी पद्धति तेरे काम की नहीं। लेकिन किसी को यह बताना मत। जाहिर दुनिया में हम दुश्मन हैं, और भीतरी दुनिया में हमारा भी एक सहयोग है।
बोकोजू दुश्मन गुरु के पास जाकर दीक्षित हुआ, ज्ञान को उपलब्ध हुआ। जिस दिन ज्ञान को उपलब्ध हुआ, उसके गुरु ने कहा, अपने पहले गुरु को जाकर धन्यवाद दे आ, क्योंकि उसने ही तुझे मार्ग दिखाया। मैं तो निमित्त हूं। उसने ही तुझे भेजा है। असली गुरु तेरा वही है। अगर वह असदगुरु होता तो तुझे रोक लेता। सदगुरु था इसलिए तुझे मेरे पास भेजा है। लेकिन किसी को कहना मत। जाहिर दुनिया में हम दुश्मन हैं। पर वह दुश्मनी भी हमारा शड्यंत्र है। उसके भीतर एक गहरी मैत्री है। मैं भी वहीं पहुंचा रहा हूं लोगों को, जहां वह पहुंचा रहा है। मगर यह किसी को बताने की बात नहीं है। हमारा जो खेल चल रहा है, उसको बिगाड़ने की कोई जरूरत नहीं है।
एक अन्तर्जगत है रहस्यों का, उसका आपको पता नहीं है। इतना ही आप कर सकते हैं कि आप खुले रहें। आपकी आंख बंद न हो। और आप इतने ग्राहक रहें कि जब कोई आपको चुनना चाहे, और कोई चुम्बक आपको खींचना चाहे तो आपसे कोई प्रतिरोध न पड़े। एक दिन आप सदगुरु के पास पहुंच जाएंगे। यह तैयारी अगर हुई तो आप पहुंच जाएंगे। थोड़ी बहुत भटकन बुरी नहीं है। और ऐसा मत सोचें कि भटकना बुरा ही है। भटकना भी एक अनुभव है। और भटकने से भी एक प्रौढ़ता, एक मैच्योरिटी आती है। जिन गुरुओं को आप व्यर्थ समझ कर छोड़ कर चले जाते हैं, उनसे भी आप बहुत कुछ सीखते हैं। जिनसे आप कुछ भी नहीं सीखते, उनसे भी कुछ सीखते हैं। जिनको आप व्यर्थ पाते हैं, अपने काम का नहीं पाते और हट जाते हैं, वे भी आपको निर्मित करते हैं।

जिंदगी बड़ी जटिल व्यवस्था है, और उसका सृजन का जो काम है, उसके बहु आयाम हैं। भूल भी ठीक की तरफ ले जाने का मार्ग है। इसलिए भूल करने से डरना नहीं चाहिए, नहीं तो कोई आदमी ठीक तक कभी पहुंचता नहीं। भूल करने से जो डरता है वह भूल में ही रह जाता है। वह कभी सही तक नहीं पहुंच पाता। खूब दिल खोल कर भूल करनी चाहिए। एक ही बात ध्यान रखनी चाहिए कि एक ही भूल दुबारा न हो। हर भूल इतना अनुभव दे जाए कि उस भूल को हम दुबारा नहीं करेंगे, तो फिर हम धन्यवाद दे सकते हैं उसको भी, जिससे भूल हुई, जिसके द्वारा हुई, जिसके कारण हुई, जिसके साथ हुई, जहां हुई; उसको भी हम धन्यवाद दे सकते हैं। लेकिन कुछ लोग जीवन की, सृजन की, जो बड़ी प्रक्रिया है उसको नहीं समझते। वे कहते हैं, आप तो सीधा-साधा ऐसा बता दें कि कौन है सदगुरु? हम वहां चले जाएं। आपको जाना पड़ेगा।
भूल, भटकन अनिवार्य हिस्सा है। थोड़ी सी भूलें कर लेने से आपकी गहराई बढ़ती है। और भूलें करके ही आपको पता चलता है कि ठीक क्या होगा। इसलिए असदगुरु का भी थोड़ा सा उपयोग है। वह भी बिल्कुल व्यर्थ नहीं है।
एक बात ध्यान रखें कि परमात्मा के इस विराट आयोजन में कुछ भी व्यर्थ नहीं है। यहां जो आपको व्यर्थ दिखाई पड़ता है, वह भी सार्थक की ओर इशारा है। और यहां अगर असदगुरु हैं, तो वे भी पृष्ठभूमि का काम करते हैं, जिनमें सदगुरु चमक कर दिखाई पड़ जाते हैं, नहीं तो वह भी दिखाई नहीं पड़े। जिंदगी विरोध से निर्मित है। सत्य की खोज असत्य के मार्ग से भी होती है। सही की खोज भूल के द्वार से भी होती है। इसलिए भयभीत न हों, अभय रखें और खुले रहें। भय की वजह से आदमी बंद हो जाता है। वह डरा ही रहता है कि ऐसा न हो कि किसी गलत आदमी से जोड़ हो जाए। इस भय से वह बंद ही रह जाते हैं। बंद आदमी का, गलत आदमी से तो जोड़ नहीं होता, सही आदमी से भी कभी जोड़ नहीं होता। खुले आदमी का गलत आदमी से जोड़ होता है, लेकिन जो खुला है, वह जल्दी ही गलत आदमी के पार चला जाता है। और खुले होने के कारण और गलत के पार होने के अनुभव से जल्दी ही सही के निकट होने लगता है।
इतना स्मरण रखें, सदगुरु आपको चुन ही लेगा। वह सदा मौजूद है। शायद आपके ठीक पड़ोस में हो।
एक दिन हसन ने परमात्मा से प्रार्थना की कि दुनिया में सबसे बुरा आदमी कौन है, बड़े से बड़ा पापी? रात उसे स्वप्न में संदेश आया, तेरा पड़ोसी इस समय दुनिया में सबसे बड़ा पापी है।
हसन बहुत हैरान हुआ। पड़ोसी बहुत सीधा-सच्चा आदमी था। साधारण आदमी था। कोई पाप ऐसी कोई खबर नहीं थी, कोई अफवाह भी न थी। बड़ा चकित हुआ कि पापी पास में है जगत का सबसे बड़ा, और मुझे अब तक कोई पता न चला।
उसने उस रात दूसरी प्रार्थना की कि एक प्रार्थना और मेरी पूरी कर। इस जगत में सबसे बड़ा पुण्यात्मा, सबसे बड़ा ज्ञानी, सबसे बड़ा संत पुरुष कौन है? एक तो तूने बता दिया, अब दूसरा भी बता दें। रात संदेश आया कि तेरा दूसरा पड़ोसी। एक तरफ बाईं तरफ वाला कल था, दाईं तरफ वाला आज है। वह दुनिया में सबसे बड़ा ज्ञानी और सबसे बड़ा रहस्यदर्शी है।
हसन तो हैरान हो गया। यह भी एक साधारण आदमी था। एक चमार था जो जूते बेचता था। यह पहलेवाले आदमी से भी साधारण था। हसन ने तीसरी रात फिर प्रार्थना की कि परमात्मा, तू मुझे और उलझनों में डाल रहा है। पहले हम ज्यादा सुलझे हुए थे, तेरे इन उत्तरों से हम और मुसीबत में पड़ गए। कैसे पता लगे कि कौन अच्छा है, कौन बुरा है?
तो तीसरे दिन संदेश आया कि जो बंद हैं, उन्हें कुछ भी पता नहीं चलता।
जो खुले हैं, उन्हें सब पता चल जाता है। तू एक बंद आदमी है, इसलिए दोनों तरफ तेरे पड़ोस में लोग मौजूद हैं, नरक और स्वर्ग तेरे पड़ोस में मौजूद हैं और तुझे पता नहीं चला। तू बंद आदमी है। तू खुला हो, तो तुझे पता चल जाएगा। खुला होना खोज है। आपका मस्तिष्क एक खुला मस्तिष्क हो, जिसमें कहीं कोई दरवाजे बंद नहीं, ताले नहीं डाल रखे हैं आपने, जहां से हवाएं गुजरती हैं ताजी, रोज। जहां सूरज की किरणें प्रवेश करती हैं, जहां चांद की चांदनी भी आती है। जहां वर्षा हो तो उसकी बूंदें भी पड़ती हैं। जहां धूप निकले तो

भीतर रोशनी पहुंचती है। बाहर अंधेरा हो तो अंधेरा भी भीतर प्रवेश करता है। मन आपका एक खुला आकाश हो, तो सदगुरु आपको चुन लेगा।
सदगुरु ही चुनता है।
एक दूसरे मित्र ने पूछा हैः जागृति की, होश की साधना में भय का जन्म हो जाता है, और हर समय डर लगता रहता है कि जीवन-चर्या अस्त-व्यस्त न हो जाए। फिर ऐसा भी लगता है कि क्रोध, काम आदि उठते हैं, तो कर लेने से पांच-सात मिनट में निपट जाते हैं। उनसे मुक्ति हो जाती मालूम पड़ती है। न करो तो दिनों तक उनकी प्रतिध्वनि, उनकी तरंगें भीतर गूंजती रहती हैं। और तब ऐसा लगता है कि इससे तो कर ही लिया होता तो निपट गए होते। तो क्या करें? ऐसी जागृति दमन नहीं है?
दो बातें हैं, एक तो, अगर, जागृति से क्रोध--जो पांच मिनट में निपट जाता है, दो दिन चल जाता है, तो समझना कि वह जागृति नहीं है, दमन ही है। क्योंकि दमन से ही चीजें फैल जाती हैं। भोग से भी ज्यादा उपद्रव खड़ा हो जाता है। अगर कामवासना उठती है और क्षण भर में निपट जाती है। और जागृति से दिनों सरकती है और सघन होने लगती है और मन पर बोझ बन जाती है, तो समझना कि जागृति नहीं है, दमन ही है।
हममें से बहुत से लोग ठीक से समझ नहीं पाते कि जागृति और दमन में क्या फर्क है? उसे समझ लें।
दमन का मतलब है, जो भीतर उठा है, उसे भीतर ही दबा देना, बाहर न निकलने देना। भोग का अर्थ है; उसे बाहर निकलने देना किसी पर।
फर्क समझ लें। दमन का अर्थ है, अपने पर दबा देना; भोग का अर्थ है, दूसरे
पर निकाल लेना। जागृति तीसरी बात है--शून्य में निकाल लेना, न अपने पर दबाना, न दूसरे पर निकालना। शून्य में निकाल लेना।
समझें। क्रोध उठा, द्वार बंद कर लें, एक तकिया अपने सामने रख लें और तकिए पर पूरी तरह क्रोध निकाल लें। जितनी आग उबल रही हो, जो-जो करने का मन हो रहा हो, घूंसा मारना हो, पीटना हो तकिए को, पीटें। उसके ऊपर गिरना हो, गिरें, चीड़ना-फाड़ना हो, चीड़ें-फाड़ें। काटना हो, काटें। जो भी करना हो, पूरी तरह कर लें। और यह करते वक्त पूरा होश रखें कि मैं क्या कर रहा हूं, मुझसे क्या-क्या हो रहा है।
इसको ठीक से समझ लें।
यह करते वक्त पूरा होश रखें कि मेरे दांत काटना चाह रहे हैं और मैं काट रहा हूं। मन कहेगा कि यह क्या बचकानी बात कर रहे हो, इसमें क्या सार है? यह वह मन बोल रहा है, जो कह रहा है, असली आदमी को काटो तो सार है, असली आदमी को मारो तो सार है। लेकिन आपको पता है कि घूंसा चाहे आप तकिए में मारें और चाहे असली आदमी में, भीतर की जो प्रक्रिया है, वह बराबर एकसी हो जाती है, उसमें कोई फर्क नहीं है।
शरीर में जो क्रोध के अणु फैल गए खून में, वह तकिए में मारने से भी उसी तरह निकल जाते हैं जैसा असली आदमी में मारने से निकलते हैं। हां असली आदमी में मारने से शृंखला शुरू होती है, क्योंकि अब उसका भी क्रोध जगेगा। अब वह भी आप पर निकालना चाहेगा। तकिया बड़ा ही संत है। वह आप पर कभी नहीं निकालेगा। वह पी जाएगा। अगर आप महावीर को मारने पहुंच जाते तो जिस तरह वे पी जाते, उसी तरह यह तकिया पी जाएगा। आपको दबाना भी न पड़ेगा, रोकना भी नहीं पड़ेगा और निकालने भी किसी पर नहीं जाना पड़ेगा।
इसको ठीक से समझ लें, तो कैथार्सिस, रेचन की प्रक्रिया समझ में आ जाएगी, रेचन में ही जागरण आसान है। यह है रेचन, निकालना। और आप सोचते होंगे कि हमसे नहीं निकलेगा तो आप गलत सोचते हैं। मैं सैकड़ों लोगों पर प्रयोग करके कह रहा हूं--आप ही जैसे लोगों पर, बहुत दिल खोल कर निकलता है। सच तो यह है कि दूसरे पर निकालने में थोड़ा दमन तो हो ही जाता है। पूरा नहीं निकल पाता। तो वह जो थोड़ा दमन हो जाता है, वह जहर की तरह घूमता रहता है। दूसरे पर दिल खोलकर कभी निकाला ही नहीं जा सकता, क्योंकि कितना ही बुरा आदमी हो, फिर भी दूसरे आदमी के साथ कितना निकाल सकता है।
एक युवक पर मैं प्रयोग कर रहा था, तो वह पहले तो हंसा। उसने कहा कि आप
भी कैसी मजाक करते हैं, तकिए पर! मैंने उससे कहा, मजाक ही सही, तुम शुरू तो

करो। पहले तो वह हंसा, थोड़ा उसने कहा कि यह तो एक्टिंग हो जाएगी, अभिनय हो जाएगा। मैंने कहा, होने दो। दो मिनट बाद गति आनी शुरू हो गई। पांच मिनट बाद वह पूरी तरह तल्लीन था।
पांच दिन के भीतर तो वह इतना आनंदित था उस तकिए के साथ, और उसने मुझे तीसरे दिन बताया कि यह चकित होनेवाली बात है। अब मेरा क्रोध मेरे पिता पर है, सारा क्रोध। और अब मैं तकिए में तकिए को नहीं देख पाता, मुझे पिता पूरी तरह अनुभव होने लगे। सातवें दिन वह एक छुरा लेकर आ गया। मैंने कहा, यह छुरा किसलिए ले आए हो? उसने कहा कि अब रोकें मत। जब कर ही रहा हूं तो अब पूरा ही कर लेने दें। जब इतना निकला है, और मैं इतना हल्का हो गया हूं, तो पिता की हत्या करने का मेरे मन में न मालूम कितनी दफे ख्याल आया। अपने को दबा लिया हूं कि यह तो बड़ी गलत बात है, पिता और हत्या!
वह लड़का अमरीका से हिंदुस्तान आया सिर्फ इसलिए कि पिता से इतनी दूर चला जाए कि कहीं हत्या न कर दे। फिर उसने पिता की हत्या कर दी सिंबालिक। छुरा लेकर उसने तकिए को चीर फाड़ डाला, हत्या कर डाली। उस युवक का चेहरा देखने लायक था। जब वह पिता की हत्या कर रहा था और जब मैंने उसे आवाज दी कि अब तू होशपूर्वक कर, तो वह दूसरा ही आदमी हो गया, तत्काल। इधर हत्या चलती रही बाहर, उधर भीतर एक होश का दीया भी जलने लगा। वह अपने को देख पाया। अपनी पूरी नग्नता में, अपनी पूरी पशुता में। और सात दिन के इस प्रयोग के बाद अब वह होश रख सकता है क्रोध में, अब तकिए पर मारने की जरूरत नहीं है। अब क्रोध आता है तो आंख बंद कर लेता है। अब वह क्रोध को देख सकता है सीधा। अब तकिए के माध्यम की कोई जरूरत न रही। क्योंकि असली माध्यम से नकली माध्यम चुन लिया। अब नकली माध्यम से गैर-माध्यम पर उतरा जा सकता है।
तो जिनको भी क्रोध का दमन करना हो, अगर वे जागृति का उपयोग कर रहे हों
तो उनको जागृति से कोई संबंध नहीं है। वह सिर्फ क्रोध को दबाना चाह रहे हैं। जिन्हें क्रोध का विसर्जन करना हो, उन्हें क्रोध का प्रयोग करना चाहिए, क्रोध पर ध्यान करना चाहिए। अकेले महावीर ने सारे जगत में दो ध्यानों की बात की है, जिसको किसी और ने कभी ध्यान नहीं कहा। महावीर ने चार ध्यान कहे हैं। दो ध्यान, जिनसे ऊपर उठना है, और दो ध्यान, जिनमें जाना है। दुनिया में ध्यान की बात करने वाले लाखों लोग हुए हैं, लेकिन महावीर ने जो बात कही है वह बिल्कुल उनकी है, वह किसी ने भी नहीं कही।
महावीर ने कहा है, दो ध्यान ऐसे, जिनके ऊपर जाना है, और दो ध्यान ऐसे, जिनमें जाना है। तो हम सोचते हैं, ध्यान हमेशा अच्छा होता है। महावीर ने कहा, दो बुरे ध्यान भी हैं। उनको महावीर कहते हैं, आर्त ध्यान और रौद्र ध्यान, दो बुरे ध्यान, यह ठीक संतुलन हो जाता है दो भले ध्यान का। भले ध्यान को महावीर कहते हैं-धर्म ध्यान और शुक्ल ध्यान। चार ध्यान हैं। रौद्र ध्यान का अर्थ है क्रोध, आर्त ध्यान का अर्थ है दुख।
जब आप दुख में होते हैं तब आपको पता है, चित्त एकाग्र हो जाता है। कोई
मर गया, उस वक्त आपका चित्त बिल्कुल एकाग्र हो जाता है। आपका प्रेमी मर गया। जितना जिंदे थे वे, तब उन पर कभी एकाग्र नहीं हुआ। अब मर गए तो उन पर चित्त एकाग्र हो जाता है। अगर जिंदे थे, तभी इतना चित्त एकाग्र कर लेते तो शायद उन्हें मरना भी न पड़ता इतनी जल्दी! लेकिन जिंदे में चित्त कहीं कोई एकाग्र होता है? मर गए, इतना धक्का लगता है कि सारा चित्त एकाग्र हो जाता है।
दुख में आदमी चित्त एकाग्र कर लेता है। क्रोध में भी आदमी का चित्त एकाग्र हो जाता है। क्रोधी आदमी को देखो, क्रोधी आदमी बड़े ध्यानी होते हैं। जिस पर उनका क्रोध है, सारी दुनिया मिट जाती है, बस वही एक बिंदु रह जाता है। और सारी शक्ति उसी एक बिंदु की तरफ दौड़ने लगती है। क्रोध में एकाग्रता आ जाती है। महावीर ने कहा है, ये भी दोनों ध्यान हैं। बुरे ध्यान हैं, पर ध्यान हैं। अशुभ ध्यान हैं, पर ध्यान हैं। इनसे ऊपर उठना हो तो इनको करके इनमें जाग कर ही ऊपर उठा जा सकता है।
जब दुख हो, द्वार बंद कर लें। दिल खोल कर रोएं, पीटें, छाती पीटें, जो
भी करना हो करें। किसी दूसरे पर न निकालें। हम दुख भी दूसरे पर निकालते हैं। इसलिए अगर लोगों की चर्चा सुनो तो लोग अपने दुख एक दूसरे को सुनाते

रहते हैं। यह निकालना है। लोगों की चर्चा का नब्बे प्रतिशत दुखों की कहानी है। अपनी बीमारियां, अपने दुख, अपनी तकलीफें, दूसरे पर निकाल रहे हैं।
मन--लोग कहते हैं, कह देने से हलका हो जाता है। आपका हो जाता होगा, दूसरे का क्या होता है, इसका भी तो सोचें। आप हलके होकर घर आ गए और उनको जिनको फंसा आए आप? इसलिए लोग दूसरे के दुख की बातें सुन कर भी अनसुनी करते हैं, क्योंकि वे अपना बचाव करते हैं। आप सुना रहे हैं, वे सुन रहे हैं, लेकिन सुनना नहीं चाहते।
जब आपको लगता है कि कोई आदमी बोर कर रहा है तो उसका कुल मतलब इतना ही होता है कि वह कुछ सुनाना चाह रहा है, निकालना चाह रहा है, हल्का होना चाह रहा है और आप भारी नहीं होना चाह रहे हैं। आप कह रहे हैं, क्षमा करो। या यह हो सकता है कि आप खुद ही उसको बोर करने का इंतजाम किए बैठे थे, वह आपको कर रहा है।
दुख भी दूसरे पर मत निकालें। दुख को भी एकांत ध्यान बना लें। क्रोध भी दूसरे पर मत निकालें, एकांत ध्यान बना लें। शून्य में होने दें विसर्जन और जागरूक रहें--होशपूर्वक। आप थोड़े ही दिन में पाएंगे कि एक नई जीवन दिशा मिलनी शुरू हो गई, एक नया आयाम खुल गया। दो आयाम थे अब तक--दबाओ या निकालो। अब एक तीसरा आयाम मिला, विसर्जन। यह तीसरा आयाम मिल जाए तो ही आपका होश सधेगा, और होश से अस्त-व्यस्तता न आएगी। और जीवन ज्यादा शांत, ज्यादा मौन, ज्यादा मधुर हो जाएगा।
अगर आपने दमन कर लिया होश के नाम पर, तो जीवन ज्यादा कड़वा, ज्यादा विषाक्त हो जाएगा। अगर मुझसे पूछते हो कि अगर भोग और दमन में ही चुनना हो तो मैं कहूंगा, भोग चुनना, दमन मत चुनना। क्योंकि दमन ज्यादा खतरनाक हैं। उससे तो भोग बेहतर। लेकिन मैं यह नहीं कह रहा हूं कि भोग चुनना। इन दोनों से भी बेहतर एक है विसर्जन। अगर विसर्जन चुन सकें, तो ही भोग छोड़ना। अगर विसर्जन न चुन सकें तो भोग ही कर लेना बेहतर है। तब वह मित्र ठीक कहते हैं कि पांच मिनट में क्रोध निकल जाता है। फिर देखेंगे जब दुबारा, जब दूसरा आदमी निकालेगा, देखा जाएगा। फिलहाल शांति हुई। लेकिन अगर दबा लें तो वह चौबीस घण्टे चलता है।
और ध्यान रखें, कोई भी दबाई हुई चीज की मात्रा उतनी ही नहीं रहती जितनी आप दबाते हैं। वह बढ़ती है, भीतर बढ़ती चली जाती है। जैसे आप पत्नी पर नाराज हो गए। अब आपने क्रोध दबा लिया। अब आप दफ्तर गए, अब चपरासी जरा सी भी बात कहेगा, जो कल बिल्कुल चोट नहीं खाती, आज चोट दे देगी। उसको भी दबा गए। आपने मात्रा बढ़ा ली। अब आपका मालिक बुलाता है और कुछ कहता है। वह कल आपको बिल्कुल नहीं अखरती थी उसकी बात, आज उसकी आंख अखरती है, उसका ढंग अखरता है। वह आपके भीतर जो इकट्ठा है, वह कलर दे रहा है आपकी आंखों को। रंग दे रहा है। अब उस रंग में सब उपद्रव दिखाई पड़ता है। यह आदमी दुश्मन मालूम पड़ता है। वह जो भी कहता है, उससे क्रोध और बढ़ता है। वह भी आपने इकट्ठा कर लिया।
वह सुबह आप लेकर पत्नी से चले गए थे दफ्तर, सांझ जब आप लौटते हैं तो जो बीज था, वह वृक्ष हो गया। सुबह ही निकाल लिया होता तो मात्रा कम होती, सांझ निकलेगा अब मात्रा काफी होगी। और यह अन्याययुक्त होगा। सुबह तो हो सकता था, न्यायपूर्ण भी होता। इसमें दूसरों पर भी जो क्रोध होता है, वह भी संयुक्त हो गया।
दबाएं मत, उससे तो भोग लेना बेहतर है। इसलिए जो लोग भोग लेते हैं, वे सरल लोग होते हैं। बच्चों को देखें, उनकी सरलता यही है। क्रोध आया, क्रोध कर लिया। खुशी आई खुशी कर ली, लेकिन खींचते नहीं। इसलिए जो बच्चा अभी नाराज हो रहा था कि दुनिया को मिटा देगा, ऐसा लग रहा था, थोड़ी देर बाद गीत गुनगुना रहा है। निकाल दिया जो था, अब गीत गुनगुनाना ही बचा। आप न दुनिया को मिटाने लायक उछल-कूद करते हैं और न कभी तितलियों जैसा उड़ सकते हैं और न पक्षियों जैसा गीत गा सकते हैं। आप अटके रहते हैं बीच में। धीरे-धीरे आप मिक्सचर, एक खिचड़ी हो जाते हैं सब चीजों की। जिसमें न कभी क्रोध निकलता शुद्ध, न कभी प्रेम निकलता शुद्ध, क्योंकि शुद्ध कुछ बचता ही नहीं। सब चीजें मिश्रित हो जाती हैं। और यह जो मिश्रित आदमी है, यह रुग्ण और बीमार

आदमी है, पैथालॉजिकल है। इसके प्रेम में भी क्रोध होता है। इसके क्रोध में भी प्रेम भर जाता है। यह अपने दुश्मन से भी प्रेम करने लगता है, अपने मित्र से भी घृणा करने लगता है। इसका सब एक दूसरे में घोल-मेल हो जाता है, इसमें कोई चीजें साफ नहीं होतीं। बच्चे साफ होते हैं। जो करते हैं, उसी वक्त कर लेते हैं। फिर दूसरी चीज में गति कर जाते हैं, फिर पीछे नहीं ले जाते। हम साफ नहीं होते। और जैसे-जैसे आदमी बूढ़ा होने लगता है वैसे-वैसे सब गड्ड-मड्ड हो जाता है। आत्मा नाम की कोई चीज उनके भीतर नहीं रहती है-एक गड्ड-मड्ड, कनफ्यूजन।
भोग चुन लें, अगर दमन करना हो तो। दमन तो कतई बेहतर नहीं है। लेकिन भोग दुख देगा। दमन दुख देगा। भोग कम देगा शायद, लम्बे अस॰ में देगा शायद, टुकड़े-टुकड़े में, खंड-खंड में, अलग-अलग मात्रा में देगा शायद। दमन इकट्ठा दे देगा, भारी कर देगा, लेकिन दोनों दुखदायी हैं। मार्ग तो तीसरा है, विसर्जन-न भोग, न दमन। यह जो विसर्जन है, यह है शून्य में वृत्तियों का रेचन, और जब आप शून्य में करते हैं तो जागना आसान है, जब आप किसी पर करते हैं तो जागना आसान नहीं है। जब आप किसी को घूंसा मारते हैं, तो आपको दूसरे पर ध्यान रखना पड़ता है, क्योंकि घूंसे का उत्तर आएगा। जब आप तकिए को घूंसा मारते हैं तो अपने पर पूरा ध्यान रख सकते हैं, क्योंकि तकिए से कोई घूंसा नहीं आ रहा।
अपने पर ध्यान रखें और रेचन हो जाने दें। धीरे-धीरे ध्यान बढ़ता जाएगा
और रेचन की कोई जरूरत न रह जाएगी। एक दिन आप पाएंगे, भीतर क्रोध उठता है, होश भी साथ में उठता है। होश के उठते ही क्रोध विसर्जित हो जाता है। अभी जिसे आप होश समझ रहे हैं वह होश नहीं है, दमन की ही एक प्रक्रिया है। रेचन के माध्यम से होश को साधें।
एक छोटा सा प्रश्न और।
एक बहन ने लिखा है कि जब भी मैं आंख बंद करके शून्य में खो जाना चाहती हूं, तभी थोड़ी देर शांति महसूस होती है और फिर भीतर घना अंधेरा छा जाता है। प्रकाश का कब अनुभव होगा? क्या कभी कोई प्रकाश की किरण दिखाई न पड़ेगी? थोड़ा समझ लें पहली तो बात यह, अंधेरा बुरा नहीं है। और ऐसी जिद्द मत करें कि प्रकाश का ही अनुभव होना चाहिए। आपकी कोई भी जिद्द, कि यह अनुभव होना चाहिए, बाधा है गहराई में जाने में। गहराई में जाना हो तो जो अनुभव हो, उसको पूरे आनंद से स्वीकार कर लेना चाहिए। अंधेरे को स्वीकार कर लें, अंधेरे का अपना आनंद है। किसने कहा कि अंधेरे में दुख है? अंधेरे की अपनी शांति है, अंधेरे का अपना मौन है, अंधेरे का अपना सौंदर्य है। किसने कहा? लेकिन हम जीते हैं धारणाओं में। अंधेरे से हम डरते हैं, क्योंकि अंधेरे में पता नहीं कोई छुरा मार दे, जेब काट ले। इसलिए बच्चे को हम अंधेरे से डराने लगते हैं। धीरे-धीरे बच्चे का मन निश्चित हो जाता है कि प्रकाश अच्छा है, अंधेरा बुरा है। क्योंकि प्रकाश में कम से कम दिखाई तो पड़ता है!
मैं एक प्रोफेसर के घर रुकता था। उनका लड़का नौ साल का हो गया। उन्होंने मुझसे कहा कि कुछ समझाएं इसको, इसको रात में भी पाखाना जाना हो-- पुराना ढंग का मकान, बीच में आंगन, उस तरफ पाखाना--तो इसके साथ जाना पड़ता है। इतना बड़ा हो गया, अब अकेला जाना चाहिए। रात में इसके पीछे कोई जाए और दरवाजे के बाहर खड़ा रहे तो ही यह जा सकता है। तो मैंने उस लड़के से कहा कि अगर तुझे अंधेरे का डर है तो लालटेन लेकर क्यों नहीं चला जाता? उस लड़के ने कहा, खूब कह रहे हैं आप। अंधेरे में तो मैं किसी तरह भूत-प्रेत से बच जाता हूं, लालटेन में तो वे सब मुझे देख ही लेंगे। अंधेरे में तो मैं ऐसा चकमा देकर, इधर-उधर से निकल जाता हूं।
धारणाएं बचपन से हम निर्मित करते जाते हैं, कुछ भी, चाहे भूत-प्रेत की, चाहे प्रकाश की, चाहे अंधेरे की। फिर वे धारणाएं हमारे मन में गहरी हो जाती हैं। फिर जब हम अध्यात्म की खोज में चलते हैं तब भी उन्हीं धारणाओं को लेकर चलते हैं। उससे भूल होती है। न तो परमात्मा के लिए अंधेरे से कोई विरोध है, न प्रकाश से कोई लगाव है। परमात्मा दोनों में एक सा मौजूद है। जिद्द मत करें कि हमें प्रकाश ही चाहिए। यह जिद्द बचकानी है।

यह जान कर आपको हैरानी होगी कि प्रकाश से ज्यादा शांति मिल सकती है अंधेरे में, क्योंकि प्रकाश में थोड़ी उत्तेजना है, अंधेरा बिल्कुल ही उत्तेजना शून्य है। और प्रकाश में तो थोड़ी चोट है, अंधेरा बिल्कुल ही अहिंसक है। अंधेरा कोई चोट नहीं करता। और प्रकाश की तो सीमा है, अंधेरा असीम है। और प्रकाश को तो कभी करो, फिर बुझ जाता है। अंधेरा सदा है, शाश्वत है। तो क्या घबड़ाहट अंधेरे से?
प्रकाश को जलाओ, बुझाओ, लेकिन अंधेरा न जलता, न बुझता, वह सदा है। थोड़ी देर प्रकाश जला लेते हैं, वह दिखाई नहीं पड़ता। फिर प्रकाश बुझा, अंधेरा अपनी जगह ही था। आप भ्रम में पड़ गए थे। बड़े-बड़े सूरज जलते हैं और बुझ जाते हैं, अंधेरे को मिटा नहीं पाते। वह है। फिर प्रकाश तो कहीं न कहीं सीमा बांधता है। अंधेरा असीम है, अनन्त है। क्या घबड़ाहट, अंधेरे से?
छोड़ दें अंधेरे में अपने को। अगर ध्यान में अंधेरा आ जाता है, लीन हो जाएं अंधेरे में। जो व्यक्ति अंधेरे में भी लीन होने को राजी है, उसे प्रकाश तो दिखाई नहीं पड़ेगा, लेकिन स्वयं का अनुभव होना शुरू हो जाएगा, वही प्रकाश है।
जो अंधेरे में भी लीन होने को राजी है, उसने परम समर्पण कर दिया। वह एक होने को राजी हो गया, अनंत के साथ। यह जो अनुभव है एक हो जाने का, उसको ही सिम्बालिक रूप से प्रकाश कहा है, ज्योति कहा है। इन शब्दों में मत पड़ें, इन शब्दों का कोई अर्थ नहीं है। ईसाई फकीर अकेले हुए हैं दुनिया में जिन्होंने अंधेरे को आदर दिया है, और उन्होंने कहा हैः डार्क नाइट ऑफ दि सोल। जब आदमी ध्यान में जाता है तो आत्मा की अंधेरी रात से गुजरता है। वह परम सुहावनी है। है भी। कोई भय न लें।
ध्यान में जो भी अनुभव आए, उस पर आप अपनी अपेक्षा न थोपें कि यह अनुभव होना चाहिए। जो अनुभव आए, उसे स्वीकार कर लें, और आगे बढ़ते जाएं। अंधेरे के साथ दुश्मनी छोड़ दें। जिसने अंधेरे के साथ दुश्मनी छोड़ दी, उसे प्रकाश मिल गया। और जिसने अंधेरे से दुश्मनी बांधी, वह झूठा, कल्पित प्रकाश बनाता रहेगा। लेकिन उसे असली प्रकाश कभी भी मिल नहीं सकता। क्यों? क्योंकि अंधेरा प्रकाश का ही एक रूप है। और प्रकाश भी अंधेरे का ही एक छोर है। ये दो चीजें नहीं हैं। इनको दो मान कर मत चलें। यह द्वैत छोड़ दें। परमात्मा अंधेरा दे रहा है तो अंधेरा सही, परमात्मा रोशनी दे रहा है तो रोशनी सही। हमारा कोई आग्रह नहीं। वह जो दे, हम उसके लिए राजी हैं। ऐसे राजीपन का नाम ही समर्पण है।
अब सूत्र।
"जिस साधक की आत्मा इस प्रकार दृढ़निश्चयी हो कि देह भले चली जाए, पर मैं अपना धर्म-शासन नहीं छोड़ सकता, उसे इंद्रियां कभी भी विचलित नहीं कर पातीं। जैसे भीषण बवंडर भी सुमेरु पर्वत को विचलित नहीं कर सकता।"
इस सूत्र के कारण बड़ी भ्रांतियां भी हुई हैं। ऐसे सूत्र कुरान में भी मौजूद हैं, ऐसे सूत्र गीता में भी मौजूद हैं, और उन सबने दुनिया में बड़ा उपद्रव पैदा किया है। उनका अर्थ नहीं समझा जा सका, और उनका अनर्थ समझा गया। इस तरह के सूत्रों की वजह से अनेक लोग सोचते हैं कि अगर कोई धर्म पर खतरा आ जाए धर्म पर-मतलब हिंदू धर्म पर, जैन धर्म पर--तो अपनी जान दे दो। क्योंकि महावीर ने कहा कि चाहे देह भले चली जाए, मैं अपना धर्म-शासन नहीं छोड़ सकता।
तो अनेक शहीद हो गए नासमझी में। वे यह सोचते हैं कि जैन धर्म छोड़ नहीं सकता, चाहे देह चली जाए। और मजा यह है कि जैन धर्म पकड़ा कभी है ही नहीं, छोड़ने से डर रहे हैं। सिर्फ जैन घर में पैदा हुए हैं, पकड़ा कब था जो आपसे छूट जाएगा? हिंदू धर्म नहीं छोड़ सकते, बस! जब छोड़ने का सवाल आता है, तभी पकड़ने का पता चलता है, और कभी पता नहीं चला। मस्जिद में नहीं जा सकते, क्योंकि हम मंदिर में जाने वाले हैं, लेकिन मंदिर में गए कब? मंदिर में जाने की कोई जरूरत नहीं, जब मस्जिद से झंझट हो तभी मंदिर का ख्याल आता है। इसलिए बड़ा मजा है। जब हिंदू-मुस्लिम दंगे होते हैं, तब ही पता चलता है
कि हिंदू कितने हिंदू, मुस्लिम कितने मुस्लिम। तभी पता चलता है कि सच्चे धार्मिक कौन हैं। वैसे कोई पता नहीं चलता।

मामला क्या है? जिस धर्म को आपने कभी पकड़ा ही नहीं, उसको छोड़ने का कहां सवाल उठता है? जन्म से कोई धर्म नहीं मिलता, क्योंकि जन्म की प्रक्रिया से धर्म का कोई संबंध ही नहीं है। जन्म की प्रक्रिया है बायोलॉजिकल, जैविक। उसका धर्म से कोई संबंध नहीं है। आपके बच्चे को मुसलमान के घर में बड़ा किया जाए, मुसलमान हो जाएगा, हिंदू के घर में बड़ा किया जाए हिंदू हो जाएगा। ईसाई के घर में बड़ा किया जाए ईसाई हो जाएगा। यह जो धर्म मिलता है, यह तो संस्कार है, शिक्षा है घर की। इसका जन्म से, खून से कोई लेना-देना नहीं है। ऐसा नहीं है कि आपके बच्चे को, पहले दिन पैदा हो और ईसाई घर में रख दिया जाए तो कभी वह पता लगा ले कि मेरा खून हिंदू का है। इस भूल में मत पड़ना।
लोग बड़ी भूलों में रहते हैं। माताएं कहती हैं लड़के से कि मेरा खून। और बच्चा पैदा हो, जैसे मैटरनिटी होम में बच्चे पैदा होते हैं, बीस बच्चे एक साथ रख दिए जाएं जो अभी पैदा हुए हैं और बीसों माताएं छोड़ दी जाएं, एक न खोज पाएगी कि कौन सा बच्चा उसका है। आंख बंद करके बच्चे पैदा करवा दिए जाएं, बीसों बच्चे रख दिए जाएं, बीसों माताओं को छोड़ दिया जाए, एक मां न खोज पाएगी कि कौन सा खून उसका है। कोई उपाय नहीं है।
खून का आपको कोई पता नहीं चलता, सिर्फ दिए गए शिक्षाओं और संस्कारों
का पता चलता है। खोपड़ी में होता है धर्म, खून में नहीं। तो जिसको मिला मौका आपकी खोपड़ी में डालने का धर्म, वही धर्म आपका हो जाता है। यह सिर्फ अवसर की बात है। लेकिन इससे कोई पकड़ भी पैदा नहीं होती, क्योंकि जो धर्म मु॰फत मिल जाता है, वह धर्म कभी गहरा नहीं होता। जो धर्म खोजा जाता है, और जिसमें जीवन रूपांतरित किया जाता है, और इंच-इंच श्रम किया जाता है, वह धर्म होता है।
तो महावीर कहते हैंः "दृढ़-निश्चयी की आत्मा ऐसी होती है कि देह भली चली जाए, धर्म-शासन नहीं छोड़ सकता।"
धर्म-शासन का अर्थ है कि वह जो अनुशासन, मैंने स्वीकार किया है। वह जो विचार, वह जो साधना, वह जो जीवन पद्धति मैंने अंगीकार की है, उसे मैं नहीं छोडूंगा। शरीर तो आज है, कल गिर जाएगा। लेकिन वह जो मैंने जीवन को रूपांतरित करने की कीमिया खोजी है, उसे मैं नहीं छोडूंगा।
बुद्ध को ध्यान हुआ, परम ज्ञान हुआ। उस दिन सुबह वे बैठ गए थे वृक्ष के तले और उन्होंने कहा था अपने मन में, सब हो चुका, कुछ होता नहीं। अब तो सिर्फ इस बात को लेकर बैठता हूं इस वृक्ष के नीचे कि अगर कुछ भी न हुआ तो अब उठूंगा भी नहीं यहां से। फिर सब करना छोड़ कर वे वहीं लेट गए। फिर उन्होंने कहा, अब उठूंगा नहीं, अब बात खत्म हो गई। अब सब यात्रा ही व्यर्थ हो गई तब इस शरीर को भी क्यों चलाए फिरना? कहीं कुछ मिलता भी नहीं, तो अब जाना कहां है? कुछ करने से कुछ होता भी नहीं, तो अब करने का भी क्या सार है? अब कुछ भी न करूंगा, मैं जिंदा ही मुर्दा हो गया। अब तो इस जगह से न हटूंगा। यह शरीर यहीं सड़ जाए, गल जाए, मिट्टी में मिल जाए। उसी रात ज्ञान की किरण जग गई। उसी रात दीया जल उठा। उसी रात उस महासूर्य का उदय हो गया। क्या हुआ मामला? पहली दफा, आखिरी चीज दांव पर लगा दी। आखिरी दांव लगाते ही घटना घट जाती है। हम दांव पर भी लगाते हैं तो बड़ी छोटी-मोटी चीजें लगाते हैं। कोई कहता
है कि आज उपवास करेंगे। क्या दांव पर लगा रहे हैं? इससे आपको लाभ ही होगा, दांव पर क्या लगा रहे हैं? क्योंकि गरीब आदमी तो उपवास वगैरह करते नहीं। ज्यादा जो खा जाते हैं, ओवर फैड, वे करते हैं। तो आपको थोड़ा लाभ ही होगा। डाक्टर कहेंगे, अच्छा ही हुआ, कर लिया। थोड़ा ब्लडप्रेशर कम होगा, उम्र थोड़ी बढ़ जाएगी।
यह बड़े मजे की बात है, जिन समाजों में ज्यादा भोजन उपलब्ध है, वे ही उपवास को धर्म मानते हैं। जैसे जैनी, वे उपवास को धर्म मानते हैं। इसका मतलब, ओवर फैड लोग हैं। ज्यादा खाने को मिल रहा है, इसलिए उपवास में धर्म दिखाई पड़ा है। गरीब आदमी का धर्म देखा? जिस दिन धर्म दिन होता है, उस दिन वह मालपुआ बनाता है। गरीब आदमी का धर्म का दिन होता है भोजन का उत्सव। अमीर आदमी के धर्म का दिन होता है, अनशन। ये दोनों ठीक हैं, बिल्कुल, लॉजिकल हैं। होना भी ऐसा ही चाहिए। होना भी यही चाहिए, क्योंकि साल भर तो मालपुआ गरीब आदमी खा नहीं सकता, धर्म के दिन ही खा सकता है। जो साल भर

मालपुआ खाते हैं इनके लिए धर्म के दिन ये क्या खाएंगे, कोई उपाय नहीं। उपवास कर सकते हैं। कुछ नया कर लेते हैं।
लोग कहीं उपवास करके दांव पर लगाते हैं। कोई टुच्ची चीजें छोड़ते रहता है। कोई कहता है, नमक छोड़ दिया। कोई कहता है, घी छोड़ दिया। इनसे कुछ भी न होगा। ये दांव दांव नहीं हैं, धोखे हैं। यह ऐसा है जैसा एक करोड़पति जुआ खेल रहा हो और एक कौड़ी दांव पर लगा दे, ऐसा। जुए का मजा ही नहीं आएगा। जुए का मजा ही तब है कि करोड़पति सब लगा दे। और एक क्षण को ऐसी जगह आ जाए कि अगर हारा तो भिखारी होता हूं। उस क्षण में जुआ भी ध्यान बन जाता है। उस क्षण में सब विचार रुक जाते हैं।
आपको जान कर हैरानी होगी, जुए का मजा ही यही है कि यह भी एक ध्यान है।
जब पूरा दांव पर कोई लगाता है, तो छाती की धड़कन रुक जाती है एक सेकेंड को कि अब क्या होता है; इस पार या उस पार, नरक या स्वर्ग, दोनों सामने होते हैं और आदमी बीच में हो जाते हैं। सस्पेंस हो जाता है, सारा विचार, चिंतन बंद हो जाता है। प्रतीक्षा भर रह जाती है कि अब क्या होता है। सब कंपन रुक जाता है, श्वास रुक जाती है कि कहीं श्वास के कारण कोई गड़बड़ न हो जाए। उस क्षण में, जो थोड़ी सी शांति मिलती है, वही जुए का मजा है। इसलिए जुए का इतना आकर्षण है।
और जब तक सारी दुनिया ध्यान को उपलब्ध नहीं होती, तब तक जुआ बंद नहीं
हो सकता क्योंकि जिनको ध्यान का कोई अनुभव नहीं, वह अलग-अलग तरकीबों से ध्यान की झलक लेते रहते हैं, जुए से भी मिलती है झलक। पर झलक काहे की? दांव की। धर्म भी एक बड़ा दांव है।
महावीर कहते हैं, शरीर चाहे चला जाए, लेकिन वह जो धर्म का अनुशासन मैंने स्वीकार किया है, उसे मैं नहीं छोडूंगा। ऐसा जो दृढ़ निश्चय कर लेता है, ऐसा जो संकल्प कर लेता है, उसे फिर इंद्रियां कभी भी विचलित नहीं कर पातीं, जैसे सुमेरु पर्वत को हवाओं के झोंके विचलित नहीं कर पाते।
शरीर को कहा है नाव, जीव को कहा नाविक, संसार को कहा है समुद्र। इस संसार-समुद्र को महर्षिजन पार कर जाते हैं।
शरीर को कहा है नाव।
इस वचन को समझ लेना ठीक से। क्योंकि महावीर को मानने वाले भूल गए मालूम होता है इस वचन को। अगर शरीर है नाव, तो नाव मजबूत होनी चाहिए, नहीं तो सागर पार नहीं होगा। देखो जैन-साधुओं के शरीर। कोई उनकी नाव मैं बैठने को तैयार भी न हो कि कहां डुबा दें, कुछ पता नहीं। डूबी हालत ही है उनकी। और शरीर का वह एक ही उपयोग कर रहे हैं जैसे कोई नाव का उपयोग कर रहा हो, उसमें और छेद करता चला जाए। इसको हम तपश्चर्या कहते हैं। महावीर नहीं कह सकते, क्योंकि महावीर कहते हैं, शरीर है नाव।
नाव तो स्वस्थ होनी चाहिए--अछिद्र। उसमें कोई छेद नहीं होना चाहिए। बीमारी छेद है। शरीर तो ऐसा स्वस्थ होना चाहिए कि उसपार तक ले जा सके। महावीर के पास ऐसा शरीर था। लेकिन कहीं कोई भूल हो गई है। उनका मानने वाला शरीर का दुश्मन हो गया है। वह समझता है गलाओ शरीर को, मिटाओ शरीर को। जितना मिटाए, उतना बड़ा आदमी है। अगर भक्तों को पता चल जाए कि थोड़ा ठीक से खाना खा रहे हैं उनके गुरु, तो प्रतिष्ठा चली जाती है। अगर भक्तों को पता चल जाए कि थोड़ा ठीक से विश्राम कर लेते हैं लेट कर, तो सब गड़बड़ हो जाता है। तो अगर जैन साधुओं को ठीक से लेटना भी हो, ठीक से भोजन भी करना हो, उसके लिए भी चोरी करनी पड़ती है। क्योंकि वह जो भक्त-गण हैं चारों तरफ, दुश्मन की तरह लगे हैं। वे पता लगा रहे हैं, क्या कर रहे हो, क्या नहीं कर रहे हो।
एक दिगंबर जैन मुनि एक गांव में ठहरे थे। तो दिगंबर जैन मुनि तो किसी चीज पर सो नहीं सकता-किसी वस्त्र पर, बिस्तर पर--किसी चीज पर सो नहीं सकता। सर्द रात्रि थी। तो क्या किया जाए, तो दरवाजा बंद कर दिया जाता है, थोड़ी- बहुत गर्मी हो जाए। और किस तरह के पागलपन चलते रहते हैं। घासफूस डाल दिया जाता है कमरे में, वह भी भक्त गण डालते हैं। क्योंकि अगर मुनि खुद कहे कि घास-फूस डाल दो, तो उसका मतलब हुआ, तुम शरीर के पीछे पड़े हो? तुम्हें शरीर का मोह है। जब आदमी आत्मा ही है, तो फिर क्या सर्दी और क्या गर्मी। तो पुआल

डाल देते हैं। लेकिन वह पुआल भी भक्त ही डालें। वह मुनि कह नहीं सकता कि तुम डाल दो। डली है, इसलिए मजबूरी में उस पर सो जाता है।
मैं उस गांव में था, मुझे पता चला कि रात में जिन भक्तों ने पुआल डाली थी, वे जाकर देख भी आते हैं कि पुआल ऊपर तो नहीं कर ली, नीचे डली रहे। ऐसे दुष्ट भक्त भी मिल जाते हैं कि वह पुआल कहीं ऊपर तो नहीं कर दी। नहीं की हो तो निश्चिंत लौट आते हैं कि ठीक आदमी है। अगर कर ली हो, तो सब भ्रष्ट हो जाता है।
ऐसा होता है कि पर-दुख का रस है। और पर-दुख का जिनको रस है वे वैसे आदमी
को आदर दे सकते हैं, जिसको स्व-दुख का रस हो। अगर इसको मनोविज्ञान की भाषा में कहें, तो दो तरह के लोग हैं दुनिया में, सैडिस्ट और मैसोचिस्ट। सैडिस्ट वे लोग हैं जो दूसरे को दुख देने में मजा लेते हैं, और मैसोचिस्ट वे लोग हैं जो खुद को दुख देने में मजा लेते हैं। ऐसा मालूम पड़ता है कि हिंदुस्तान में इन दोनों के बड़े तालमेल हो गए हैं। मैसोचिस्ट हो गए हैं गुरु और सैडिस्ट हो गए हैं शिष्य।
तो गुरु को कितनी तकलीफ--गुरु अपने हाथ सिर उठा रहा है, उतना शिष्य चर्चा करते हैं कि क्या तुम्हारा गुरु, हमारा गुरु तो कांटों पर सोया हुआ है। जैसे कि यह कोई सर्कस है। यहां कौन कहां सोया हुआ है, इसका सब निर्णय होनेवाला है। कौन खा रहा है, कौन नहीं खा रहा है, इसका निर्णय होनेवाला है। कौन पानी पी रहा है, कौन नहीं पी रहा है, इसका निर्णय होने वाला है। निर्णायक एक ही बात है कि शरीर की कौन कितनी बुरी तरह से हिंसा कर रहा है। महावीर का यह मतलब नहीं हो सकता। महावीर कहते हैं, शरीर को कहता हूं नाव। इससे ज्यादा आदर शरीर के लिए और क्या होगा? क्योंकि नाव के बिना नदी पार नहीं हो सकती। इसलिए शरीर मित्र है, शत्रु नहीं। शरीर साधन है, शत्रु नहीं। शरीर मार्ग है, शत्रु नहीं। शरीर उपकरण है, शत्रु नहीं। और उपकरण का जैसा उपयोग करना चाहिए वैसा शरीर का उपयोग करना चाहिए। कि कोई कहे कि कार से पार करनी है यात्रा और पेट्रोल हम देंगे न कार को। कोई कहे कि शरीर से करनी है यात्रा और भोजन डालेंगे न शरीर में, तो फिर वह शरीर के यंत्र को नहीं समझ पा रहा है।
महावीर ने कहा है कि किसी भी दिशा में असंतुलित न हो जाओ, न तो इतना भोजन डाल दो कि नाव भोजन से ही डूब जाए, और न इतना अनशन कर दो कि नाव के प्राण बीच नदी में ही निकल जाएं। सम्यक--इतना जितना पार होने में सहयोगी हो, बोझ न बने। इतना कम भी नहीं कि अशक्य हो जाए और बीच में डूब जाए। सम्यक भाव शरीर के प्रति हो, और शरीर का पूरा ध्यान रखना जरूरी है।
"जीव को नाविक और संसार को समुद्र।"
वह जो भीतर बैठी हुई आत्मा है, वह जो चेतना है, वह है यात्री। और सारा संसार है समुद्र, उससे पार होना है। वह बुरा है, ऐसा नहीं है। उसके साथ कोई दुर्भाव पैदा करना है, ऐसा भी नहीं। लेकिन वहां कोई किनारा नहीं है, वहां कोई विश्राम की जगह नहीं है। वहां अशांति रहेगी, तूफान रहेंगे, आंधियां रहेंगी। अगर आंधियों, अशांतियों और दुखों और पीड़ाओं से बचना हो तो इस संसार सागर को पार करके, तट पर पहुंच जाना चाहिए, जहां आंधियों और तूफानों का कोई प्रभाव नहीं है। और जब तक कोई सागर में है तब तक डूबने का डर बना ही रहेगा, कितनी ही अच्छी नाव हो। नाव पर ही डूबना, न डूबना निर्भर नहीं है, सागर की उत्ताल तरंगें भी हैं। भयंकर आघात होते हैं, तूफान हैं, आंधियां उठती हैं, वर्षा आती है। इससे जितनी जल्दी कोई पार हो सके।
अगर हम इस प्रतीक को ठीक से समझें और अपने चारों तरफ संसार को देखें
तो वहां क्रोध है, दुख है, पीड़ा है, संताप है, उपद्रव ही उपद्रव है। और हम उसके बीच में खड़े हैं। और यह एक शरीर ही मार्ग है जिससे हम उसके पार उठ सकें।
अगर संसार को कोई समुद्र की तरह देख पाए तो बराबर समुद्र की तरह दिखाई पड़ेगा। और महावीर के समय में तो छोटा-मोटा समुद्र था, अब तो बड़ा समुद्र दिखाई पड़ता है। महावीर के जमाने में भारत की आबादी भी दो करोड़ से ज्यादा नहीं थी। अब भारत दुनिया को मात किए दे रहा है, आबादी में। अब ऐसा समझो, जमीन हमने बचने नहीं दी, समुद्र ही समुद्र हुआ जा रहा है। सारी दुनिया की

आबादी साढ़े तीन अरब हो गई है। इस सदी के पूरे होते-होते भारत की ही आबादी एक अरब होगी। आदमियों का सागर है। और आदमियों के सागर में, आदमियों की वृत्तियों, इंद्रियों, क्रोध, रोष, मान, अपमान, इन सबका भयंकर झंझावात है। अगर महावीर इस सागर को देखें तो वे कहें, अब जरा नाव को और ठीक से संभालना। क्योंकि आदमी अकेला पैदा नहीं होता, अपने सारे पाप, अपने सारे रोग, अपनी सारी वृत्तियों को लेकर पैदा होता है। और हर आदमी इस पूरे सागर में तरंगें पैदा करता है। जैसे मैं सागर में एक पत्थर फेंक दूं, तो वह एक जगह गिरता है, लेकिन उसकी लहरें पूरे सागर को छूती हैं। जब एक बच्चा इस जगत में पैदा होता है तो एक पत्थर और गिरा। उसकी लहरें सारे जगत को छूती हैं। वह हिटलर बनेगा, कि मुसोलिनी बनेगा, कि तोजो बनेगा, कि क्या बनेगा, कुछ कहा नहीं जा सकता। उसकी लहरें सारे जगत को कंपाएंगी।
यह जो सागर है हमारा, इसको महर्षिजन पार कर जाते हैं। सांसारिक आदमी
और धार्मिक आदमी में एक ही है फर्क। सांसारिक आदमी वह है जो इस सागर में गोल-गोल चक्कर काटता रहता है। कभी आपने नाव देखी? उसमें दो डांड लगाने पड़ते हैं। एक डांड बंद कर दें और एक ही डांड चलाएं, तब आपको पता लगेगा कि सांसारिक आदमी कैसा होता है। एक ही डांड चलाएं तो नाव गोल-गोल चक्कर खाएगी। जगह वही रहेगी, यात्रा बहुत होगी। पहुंचेंगे कहीं भी नहीं, लेकिन पसीना काफी झरेगा। लगेगा कि पहुंच रहे हैं, और गोल-गोल चक्कर खाएंगे। आपकी जिंदगी गोल चक्कर तो नहीं है? एक व्हिशियस सर्कल तो नहीं है? क्या कर रहे हैं आप, गोल-गोल घूम रहे हैं? कल जो किया था, वही आज भी कर रहे हैं, वही परसों भी किया था, वही पूरी जिंदगी किया है रोज-रोज, वही और जिंदगियों में भी किया है। एक ही नाव का डांड मालूम पड़ती चल रही है और आप गोल-गोल घूम रहे हैं।
धार्मिक आदमी गोल नहीं घूमता, एक सीधी रेखा में तट की तरफ यात्रा करता है। दोनों डांड हाथ में होने चाहिए, दोनों पतवार। न तो बाएं झुकें, और न दाएं। ठीक से समझ लें, यही संयम का अर्थ है। अगर नाव को बिल्कुल ठीक चलाना हो तो दोनों साधने पड़ेंगे, न बाएं झुक जाए नाव, न दाएं। जरा दाएं झुके तो बाएं झुका लें, जरा बाएं झुके तो दाएं झुका लें और बीच सीधी रेखा में लीनियर, एक रेखा में यात्रा करें। तो आप किसी दिन तट पर पहुंच पाएंगे। संयम का इतना ही अर्थ है कि दोनों तरफ विषमताएं हैं। भोग की है, त्याग
की है, दोनों के बीच संयम है। नरक की, स्वर्ग की दोनों के बीच संयम। सुख की, दुख की, दोनों के बीच संयम। शत्रु भी झुकाते हैं। मित्र भी झुकाते हैं। दोनों के बीच संयम है। कोई न झुका पाए और आपकी नाव बीच में चल पाए। ऐसा अगर आप बीच में नाव को चला सकें सीधी रेखा में, तो किसी दिन आप तट पर पहुंच सकते हैं। लेकिन सीधी रेखा में चलने वाले आदमी के अनुभव बदल जाएंगे। उसके जीवन में पुनरुक्ति नहीं होनी चाहिए। जिसके जीवन में पुनरुक्ति हो रही है, वह आदमी गोल-गोल घूम रहा है। लेकिन इसका मतलब यह मत समझना आप कि रोज नया भोजन होगा तो पुनरुक्ति न होगी। कि रोज नये कपड़े पहन लेंगे तो पुनरुक्ति न होगी। कपड़े-भोजन का सवाल नहीं है, वृत्ति का सवाल है। आपकी वृत्तियां पुनरुक्ति में तो नहीं घूम रही हैं। सरकुलर तो नहीं है, इसका ध्यान रखना चाहिए।
कभी आपने ख्याल किया कि जब भी आप क्रोध करते हैं, फिर वैसे ही करते हैं जैसा पहले किया था। कुछ भी न सीखा जीवन से। जब फिर प्रेम में गिरते हैं तब फिर वैसे ही गिरते हैं जैसे पहले गिरे थे। फिर वही बातें करने लगते हैं जो पहले करके उपद्रव खड़ा कर चुके हैं। फिर वही मूढ़ता, फिर पुनरुक्ति कर रहे हैं आप। जिंदगी को थोड़ा जांचें, पीछे लौट कर एक नजर फेकें। जिंदगी पर एक सर्च लाइट फेंकना जरूरी है पीछे जिंदगी पर। उसमें देखें कि आप जिंदगी जी रहे हैं कि चक्कर में घूम रहे हैं। अगर आप चक्कर में घूम रहे हैं तो समझें कि यही संसार है।
हम संसार का अर्थ ही चक्कर करते हैं। इस मुल्क में हमने संसार शब्द को
ही इसलिए चुना है। संसार का मतलब होता हैः दि व्हील, चक्का। वह गोल-गोल घूमता रहता है। भ्रम होता है यात्रा का, मंजिल नहीं आती। जिसे भी मंजिल लानी है, उसे एक रेखा में चलने की कला सीखनी पड़ती है, वही धर्म है।

जो कल हो चुका, उससे सीखें और पार जाएं, दुहराएं मत। और जिंदगी में जिन रास्तों से गुजर गए उन पर से बार-बार गुजरने का मोह छोड़ दें। कोई सार नहीं है। जहां से गुजर गए, वहां से गुजर ही जाएं, उसको पकड़े मत रखें। कल किसी ने गाली दी थी, वह बात हो गई। उस रास्ते को छोड़ दें, आगे बढ़ें लेकिन वह गाली अटकी हुई है। जिसके मन में कल की गाली अटकी हुई है, वह वहीं रुक गया। उसने गाली को मील का पत्थर बना लिया। जमीन में गाड़ दिया खम्बा और उसने कहा, अब हम यहीं रहेंगे। अब हम आगे नहीं जाते।
अगर आपको कल अब भी सता रहा है, बीता हुआ कल, तो आप वहीं रुक गए हैं। अगर इसको हम सोचें तो हमें तो बड़ी हैरानी होगी कि हम कहां रुक गए। मनोवैज्ञानिक कहते हैं आमतौर से लोग बचपन में ही रुक जाते हैं। फिर शरीर ही बढ़ता रहता है। न बुद्धि बढ़ती है, न आत्मा बढ़ती है, कुछ नहीं बढ़ता है, वहीं रुक जाते हैं। इसलिए आपके बचपन को जरा में निकाला जा सकता है। अभी एक आदमी आप पर हमला बोल दे तो आप एकदम चीख मार कर नाचने-कूदने लगेंगे। आप भूल जाएंगे कि आप क्या कर रहे हैं। अगर आपका चित्र उतार लिया जाए, या आपको स्मरण दिलाया जाए तो यह शायद आप जब पांच साल के बच्चे थे, जो करते, वही आपने किया। मतलब, मनोवैज्ञानिक कहते हैं, आपका रिग्रेशन हो गया, आप पीछे लौट गए बचपन में। उस खूंटे पर पहुंच गए, जहां आप बंधे हैं।
इसलिए मनस्विद किसी भी व्यक्ति की मानसिक बीमारी दूर करना चाहते हैं
तो पहले उसके अतीत जीवन में उतरते हैं, खासकर उसके बचपन में उतरते हैं। वे कहते हैं, जब तक हम तुम्हारा बचपन न जान लें तब तक हम जान नहीं सकते, तुम कहां रुक गए हो। कहां रुक जाने से तुम्हारा सारा उपद्रव पैदा हो रहा है। हम सब रुके हुए लोग हैं। गति नहीं है जीवन में, यात्रा नहीं है।
महावीर कहते हैंः "महर्षिजन पार कर जाते हैं इस सागर को। पार करने का मार्ग है, संयम।"
अतियों से बच जाना। दो अतियों के बीच जो बच जाता है, वह तट पर पहुंच जाता है। लेकिन हम क्या करते हैं? हम घड़ी के पेंडुलम की तरह हैं।
घड़ी का पेंडुलम, पुरानी घड़ियों का-नई घड़ियों में ख्याल नहीं आता, कुछ पुरानी घड़ी पर जरा ध्यान करना चाहिए। दीवाल घड़ी का पेंडुलम जाता है बाएं, दाएं, घूमता रहता है। जब वह दाएं जाता है तब ऐसा लगता है कि अब बाएं कभी न आएगा। वहां भूल कर रहे हैं आप। जब वह दाएं जा रहा है तब वह बाएं आने की ताकत जुटा रहा है, मोमेंटम इकट्ठा कर रहा है। वह बाएं जा ही इसलिए रहा है कि दाएं जाने की ताकत इकट्ठी हो जाए। फिर वह दाएं जाएगा। जब वह दाएं जाता है तब वह फिर बाएं जाने की ताकत इकट्ठी करता है। और इसी तरह वह घूमता रहता है। हम भीहममें से एक आदमी कहता है कि उपवास करना है। ये अब बाएं जा रहे हैं। अब ये फिर भोजन जोर से करने की ताकत जुटाएंगे। एक आदमी कहता है, ऊब गए हम तो वासनाओं से, अब त्याग करना है, अब यह बाएं जा रहे हैं।
अतियों में डोलना बहुत आसान है। इसलिए एक बहुत बड़ी घटना घटती है दुनिया में। क्रोधी अगर चाहे तो एक क्षण में क्षमावान हो जाते हैं। दुष्ट अगर चाहें तो एक क्षण में शांति को धारण कर लेते हैं। भोगी अगर चाहें तो एक क्षण में त्यागी हो जाते हैं। देर नहीं लगती। क्योंकि एक अति से दूसरी अति पर लौट जाने में कोई अड़चन नहीं है। बीच में रुकना कठिन है। भोगी संयम पर आ जाए, यह कठिन है। त्याग पर जा सकता है। त्यागी भोग में आ जाएं, यह आसान है। संयम में आना कठिन है। एक उपद्रव से दूसरा उपद्रव चुनना आसान है, क्योंकि उपद्रव की हमारी आदत है, उपद्रव कोई भी हो, उसे हम चुन सकते हैं। बीच में रुक जाना, निरुपद्रवी हो जाना अति कठिन है।
महावीर संयम को सूत्र कहते हैं, धर्म का। यह शरीर है नाव। इसका उपकरण
की तरह उपयोग करें। यह आत्मा है यात्री, इसे वर्तुलों में मत घुमाएं, इसे एक रेखा में चलाएं। यह संसार है सागर, इसमें एक डांड की नाव मत बनें। इसमें दोनों पतवार हाथ में हों, और दोनों पतवार बीच में सधने में सहयोगी बनें, इस पर दृष्टि हो। तो एक दिन व्यक्ति जरूर ही संसार के पार हो जाता है।
संसार के पार होने का अर्थ हैः दुख के पार हो जाना, संताप के पार हो जाना।
संसार के पार होने का अर्थ हैः आनंद में प्रवेश।

जिसे हिंदुओं ने "सच्चिदानंद" कहा है, उसे महावीर ने "मोक्ष" कहा है। उसे ही बुद्ध ने "निर्वाण" कहा है। उसे जीसस ने "किंगडम ऑफ गॉड" कहा है, ईश्वर का राज्य कहा है। कोई भी हो नाम, जहां हम हैं उपद्रव में, वहां वह नहीं है। इस उपद्रव के पार कोई तट है, जहां कोई आंधी नहीं छूती, जहां कोई तूफान नहीं उठता, जहां सब शून्य और शांत है।

इतना ही।
अब हम कीर्तन करें।

महावीर-वाणी, भाग 2
दसवां प्रवचन

विकास की ओर गति है धर्म (लोकतत्व-सूत्रः 1)

धम्मो अहम्मो आगासं, कालो पुग्गल जन्तवो।
एस लोगो त्ति पण्णतो, जिणेहिं वरदंसिहि।।
गइलक्खणो उ धम्मो, अहम्मो ठाणलक्खणो।
भायणं सव्वदव्वाणं, नहं ओगाहलक्खणं।।
बत्तणालक्खणो कालो,
जीवो उवओगलक्खणो।
नाणेणं दंसणेणं च,
सुहेणं य दुहेण य।।

धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पुदगल और जीव--ये छह द्रव्य हैं। केवल दर्शन के धर्ता जिन भगवानों ने इन सबको लोक कहा है।
धर्म द्रव्य का लक्षण गति है; अधर्म द्रव्य का लक्षण स्थिति है, सब पदार्थों को अवकाश देना--आकाश का लक्षण है।
काल का लक्षण वर्तना (बरतना) है, और उपयोग अर्थात अनुभव जीव का लक्षण है। जीवात्मा ज्ञान से, दर्शन से, दुख से तथा सुख से जाना पहचाना जाता है।

ऐसा मनुष्य खोजना मुश्किल है जो जीवन के संबंध में प्रश्न न उठाता हो; जिसकी कोई जिज्ञासा न हो, जो पूछता न हो। मनुष्य और पशु में वही भेद भी है। पशु जीवन जैसा है, उसे स्वीकार कर लिया है। कोई प्रश्न पशु चेतना में नहीं उठता, कोई जिज्ञासा नहीं जगती। आदमी जैसा है, उतना होने से राजी नहीं है। आदमी जानना भी चाहता है कि "मैं क्या हूं, क्यों हूं, किसलिए हूं" प्रश्न मनुष्य का चिह्न है। इसलिए जिस मनुष्य ने प्रश्न नहीं उठाए, वह अभी पशु के जीवन से ऊपर नहीं उठा। और जिस मनुष्य के जीवन में जिज्ञासा का जन्म नहीं हुआ, अभी-अभी उस मनुष्य का मनुष्य की तरह जन्म भी नहीं हुआ है। इसलिए कठिन है खोजना ऐसा मनुष्य, जो प्रश्न न पूछ रहा हो, जिसके लिए जीवन एक जिज्ञासा न हो।
प्रश्न सभी पूछते हैं, लेकिन कुछ लोग दूसरों के उत्तर को अपना उत्तर मान लेते हैं और अटक जाते हैं, कुछ लोग जब तक अपना उत्तर नहीं खोज लेते, तब तक अथक श्रम करते हैं। जो दूसरों का उत्तर स्वीकार करके रुक जाते हैं, उनमें प्रश्न का जन्म तो हुआ, लेकिन प्रश्न की भ्रूण हत्या हो गई, एबार्शन हो गया। प्रश्न का बीज तो पैदा हुआ, लेकिन उन्होंने इसके पहले कि बीज अंकुरित होता और वृक्ष बनता, उसकी हत्या कर दी।
हत्या की विधि है: उधार उत्तर को स्वीकार कर लेना। ध्यान रहे, प्रश्न आपका है और जब तक आप अपना उत्तर न खोज लेंगे, तब तक हल न होगा। प्रश्न दूसरे का होता, तो दूसरे के उत्तर से हल भी हो जाता। प्रश्न आपका, उत्तर दूसरे के3 इन दोनों में कहीं कोई मिलन नहीं होता। इसलिए जब भी आप दूसरों के उत्तर स्वीकार कर लेते हैं, तो आपने जल्दी ही प्रश्न की गर्दन घोंट दी। आपने प्रश्न को पूरा काम न करने दिया। प्रश्न तो तभी पूरा काम कर पाता है, जब जीवन की खोज और प्यास बन जाता है; जब प्रश्न जीवन से भी ज्यादा महत्वपूर्ण हो जाता है। यह जानना कि "जीवन क्या है", जिस दिन जीवन से भी ज्यादा महत्वपूर्ण हो जाता है, उस दिन साधना का जन्म होता है। जिस दिन आप इस खोज के लिए जीवन को भी समर्पित करने को राजी हो जाते हैं, उस दिन आप जिज्ञासु न रहे, मुमुक्षु हो गए। उस दिन प्रश्न सिर्फ बौद्धिक न रहा, बल्कि आपके रोएं-रोएं का हो गया। आपके समग्र जीवन का हो गया और जिस दिन भी प्रश्न इतना गहन हो जाता है कि हमारी श्वास-श्वास पूछने लगती है, उस दिन उत्तर दूर नहीं है।
और ध्यान रहे, जिस भांति प्रश्न भीतर से आता है, उसी भांति उत्तर भी भीतर से ही आएगा। प्रश्न बाहर से नहीं आते। और बाहर से जो प्रश्न आते हैं, उनका कोई भी मूल्य नहीं है, उन्हें बाहर के ही उत्तरों से निपटाया जा सकता

है। लेकिन जो प्रश्न आपकी ही श्वासों से और आपके ही प्राण की गहनता से उठते हैं, जो आपकी ही अंतरात्मा से जगते हैं, उन प्रश्नों का उत्तर भी आपकी अंतरात्मा में ही छिपा है। और जहां से प्रश्न आया है, उसी गहराई में खोजने पर उत्तर भी उपलब्ध होगा। धर्म और दर्शन का यही फर्क है। दर्शन है-- प्रश्नों की बौद्धिक खोज। और धर्म है3 प्रश्नों की जीवंत खोज।
बौद्धिक खोज का अर्थ हैः आपकी बुद्धि संलग्न है, आप पूरे के पूरे संलग्न नहीं हैं। एक खरड जीवन का लगा है, लेकिन पूरा जीवन--पूरा जीवन दूर है।
धार्मिक खोज का अर्थ है कि बुद्धि ही नहीं, आपका हृदय भी-हृदय ही नहीं, आपकी देह भी--आपकी समग्र आत्मा, आप जो भी हैं अपनी पूर्णता में, वह पूरी की पूरी खोज में लग गई है। और जिस दिन खोज अखंड होती है, पूरी होती है, उस दिन उत्तर दूर नहीं है।
महावीर ने जो भी कहा है, ये एक दार्शनिक के वचन नहीं हैं, एक फिलासफर
के वचन नहीं हैं--प्लेटो या अरस्तू या कांट और हीगल के वचन नहीं हैं। महावीर ने जो भी कहा है, ये एक धार्मिक, अनुभूति को उपलब्ध व्यक्ति के वचन हैं। महावीर ने जो भी कहा है, सोच कर नहीं कहा, देख कर कहा है।
इस भेद को ठीक से समझ लें, क्योंकि यह बहुत मौलिक है। सोच कर बहुत सी बातें कही जा सकती हैं। लेकिन सोच कर जो कहा जाता है, वह कितना ही ठीक मालूम पड़े, ठीक नहीं हो सकता। कोई व्यक्ति प्रेम के संबंध में बहुत सी बातें सोच कर कह सकता है। शास्त्र उपलब्ध हैं, प्रेम पर लिखे हुए काव्य उपलब्ध हैं; प्रेम की कथाएं, विश्लेषण उपलब्ध हैं; जिन्होंने प्रेम को जाना है, उनके भी शब्द उपलब्ध हैं--ये सब पढ़े जा सकते हैं, और आप भी प्रेम के संबंध में कोई धारणा बना सकते हैं, वह बुद्धि की होगी। लेकिन अगर आपको प्रेम का अपना निजी अनुभव नहीं है, तो आप जो भी कहेंगे, वह कितना ही ठीक मालूम पड़े, ठीक हो नहीं सकता। उसका ठीक मालूम पड़ना बहुत ऊपरी होगा, तार्किक होगा, शब्दगत होगा। क्योंकि जिसने प्रेम नहीं जाना, वह प्रेम के संबंध में क्या कह सकता है?
प्रेम की कोई फिलासफी नहीं हो सकती, प्रेम का सिर्फ अनुभव हो सकता है। लेकिन, तब बड़ी कठिनाई है। क्योंकि जो जान ले प्रेम को, उसे कहना मुश्किल हो जाता है। जो प्रेम को न जाने, उसे कहना बहुत आसान है, क्योंकि उसे उस कठिनाई का पता ही नहीं है जो अनुभव से पैदा होती है। जिसने प्रेम को नहीं जाना, वह दूसरों के शब्द दोहरा सकता है, और सोचेगा बात पूरी हो गई। और जिसने प्रेम को जाना है, उसके सामने एक बड़ा कठिन, दुर्गम सवाल है, जो उसने जाना है, उसे कैसे शब्दों में प्रविष्ट करे। क्योंकि जो जाना है, वह विराट है, शब्द बहुत क्षुद्र हैं। जो जाना है, वह आकाश की भांति है, और शब्द छोटी मटकियों की भांति हैं, वह उनसे भी छोटे हैं। उस बड़े आकाश को उन मटकियों में भरना, उस सागर को गागर में डालना अति कठिन है, असंभव है।
महावीर जो भी कह रहे हैं, वह उनका जाना हुआ है। वह उन्होंने सोचा नहीं है, वह उन्हें ध्यान से उपलब्ध हुआ है, विचार से नहीं। और, विचार और ध्यान की प्रक्रियाएं विपरीत हैं।
महावीर इस बोध के पहले बारह वर्ष तक मौन में रहे। तब उन्होंने सब विचार करना छोड़ दिए। तब उन्होंने सारी बुद्धि को तिलांजलि दे दी। तब उन्होंने चिंतना एक तरफ हटा दी। वे सिर्फ मौन होते चले गए। बारह वर्ष लम्बा समय है। निश्चित ही, मौन होना कठिन है। और महावीर को बारह वर्ष लगते हैं, तो सोच सकते हो, साधारण व्यक्ति को जीवन लग जाएंगे।
चुप होना कठिन है, क्योंकि चुप होना एक तरह की मृत्यु है। आप जीते ही विचार में हैं। और जब विचार चलता होता है, तब आप को लगता है आप हैं; जब विचार खोने लगते हैं, तो आप भी खोने लगते हैं। विचार बिखरने लगते हैं, आप भी बिखरने लगते हैं। और जब विचार के सब बादल खो जाते हैं तो शून्य रह जाता है भीतर। वह शून्य महामृत्यु जैसा मालूम होता है। उस महामृत्यु के लिए जो तैयार होता है, वह ध्यान में प्रवेश पाता है। और ध्यान के बाद ही अनुभव है। विचार से कोई अनुभव नहीं होता। सच, विचार तो अनुभव में बाधा है। जब आप

सोचने लगते हैं, तब आप अनुभव से टूट जाते हैं। जब आप सोचते नहीं, केवल होते हैं, तब आप अनुभव से जुड़ते हैं।
तो महावीर बारह वर्ष तक अपने विचार को काटते हैं, छोड़ते हैं। एक-एक ग्रंथि, विचार की एक-एक गांठ खोलते हैं; और जब विचार की सब गांठें खुल जाती हैं, और सब बादल बिखर जाते हैं। सिर्फ खाली आकाश रह जाता है स्वयं का, तब अनुभव शुरू होता है। इस अनुभव से जो वाणी प्रगट हुई है, उस पर ही हम विचार करने जा रहे हैं। इसे सोचेंगे आप तो भूल में पड़ जाएंगे। इसे सोचना कम, हृदय को खोलना ज्यादा, ताकि यह ऐसे प्रवेश कर सके भीतर, जैसे बीज जमीन में प्रवेश कर जाता है। जमीन बीज के संबंध में कोई विचार करने लगे, कि पहले सोच लूं, समझ लूं, इस बीज को गर्भ देना है या नहीं देना, तो जमीन कुछ भी न सोच पाएगी। क्योंकि बीज में कोई फूल प्रकट नहीं है; बीज में कोई वृक्ष भी प्रकट नहीं है। होगा--वह संभावना है। अभी वास्तविक नहीं है। अभी सब भविष्य में छिपा है। लेकिन जमीन बीज को स्वीकार कर लेती है। बीज टूट जाता है भीतर जाकर। जमीन उसे पचा लेती है। बीज मिट जाता है, खो जाता है। और जब बीज खो जाता है बिल्कुल, कि जमीन को पता भी नहीं चलता कि मुझसे अलग कुछ है, तब अंकुरित होता है। तब एक नये जीवन का जन्म होता है और एक वृक्ष पैदा होता है।
महावीर के वचनों को अगर आप सोच-विचार में उलझा लेंगे, तो वे आपके भीतर
उस जगह तक नहीं पहुंच पाएंगे, जहां हृदय की भूमि है। आप सोचना मत। आप सिर्फ हृदय की ग्राहक भूमि में उनको स्वीकार कर लेना। अगर वे व्यर्थ हैं, अगर वे निर्जीव हैं, तो अंकुर पैदा न होगा, बीज यूं ही मर जायेगा। अगर वे सार्थक हैं, अगर अर्थपूर्ण हैं, अगर उनमें कोई छिपा जीवन है, अगर कोई विराट उनमें छिपी संभावना है, तो जिस दिन आप उन्हें भीतर पचा लेंगे, हृदय में जब वे मिल कर एक हो जाएंगे, और जब आपको याद भी न रहेगा कि यह विचार महावीर का है या मेरा, जब यह विचार आपका ही हो जाएगा, घुल जाएगा, पिघल जाएगा, एक हो जाएगा भीतर, तब आपको पता चलेगा, इस विचार का अर्थ क्या है। क्योंकि तभी आपके भीतर इस विचार के माध्यम से एक नये जीवन का जन्म होगा; एक नई सुगंध, एक नया अर्थ, एक नये क्षितिज का उदघाटन।
तो विचार के साथ हम दो तरह का व्यवहार कर सकते हैं: एक तो आलोचक का व्यवहार है कि वह सोचेगा, काटेगा, विषण करेगा, तर्क करेगा। आपको मना नहीं करता। अगर महावीर के साथ आपको आलोचक होना है आप हो सकते हैं। लेकिन आप महावीर जो दे सकते हैं, उससे वंचित रह जाएंगे। दूसरा ग्राहक का, प्रेमी का, भक्त का दृष्टिकोण--सोचता नहीं, सिर्फ रिसेप्टिविटी, सिर्फ संवेदनशील होता है, स्वीकार कर लेता है। हृदय में छिपा लेता है और प्रतीक्षा करता है उस दिन की, जिस दिन इस बीज में से अंकुर पैदा होगा। तभी, पूरा अर्थ प्रकट होगा।
यहां मैं आपको समझाने की कोशिश करूंगा कि महावीर का प्रयोजन क्या है। लेकिन उस कोशिश से आप अर्थ को न जान पाएंगे। उस कोशिश से तो इतना ही हो सकता है कि आप राजी हो जाएं और हृदय को खुला छोड़ दें। द्वार-दरवाजे खोल दें, ताकि यह किरण भीतर प्रवेश कर जाए। मेरी कोशिश आपके हृदय का दरवाजा खोलने की होगी, आपकी बुद्धि को समझाने की नहीं। अर्थ तो तभी प्रकट होगा, जब बीज आपके भीतर प्रविष्ट हो जाएंगे और आप उन्हें पचा लेंगे।
ध्यान रहे, किसी चीज का आहार कर लेना ही काफी नहीं है, उसका पचना जरूरी है। इसलिए महावीर को दो तरह के लोग अपने भीतर लेते हैं। पंडित भी अपने भीतर ले लेता है, लेकिन वह पचा नहीं पाता है। वह जो आहार कर लेता है, वह अनपचा रह जाता है। इसलिए पंडित का मस्तिष्क बोझिल होता चला जाता है उस अनपचे आहार से। उसका अहंकार प्रगाढ़ होता चला जाता है। उसकी आत्मा तो खाली बनी रहती है, लेकिन उसकी स्मृति भरती चली जाती है। ज्ञानी भी आहार करता है विचार का, लेकिन उसे पचाने की कोशिश करता है। और जब तक वह खून न बन जाए, अपना न हो जाए, जब तक बहने न लगे रग-रग में, जब तक अपने जीवन का एक भाग न हो जाए, तब तक चैन नहीं लेता।
अगर आपको पंडित बनना हो तो आलोचक की दृष्टि से सोचना और अगर आपको ज्ञानी की तरफ यात्रा करनी हो तो एक भक्त के भाव से सोचना।

जैसा हमारा जीवन है, वहां कोई चाहिए, जो हमें झकझोर दे। और हमारी यात्रा को पलट दे। जैसा हमारा जीवन है, वहां कोई चाहिए, जो हमें एक जोर का धक्का दे, एक शाक हमें लगे कि हमारी यात्रा की दिशा बदल जाए।
मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन शिकागो से एक संध्या एक ट्रेन में सवार हुआ। जिस डिब्बे में था, उस डिब्बे में एक और वृद्ध महिला भी थी। बस, वे दो ही थे। गाड़ी को छूटे पांच-सात मिनट हुए ही होंगे कि वृद्ध महिला को ख्याल आया कि जो यात्री साथ में है, वह रो रहा है। सोचा उसने किसी प्रियजन से बिछुड़ना हुआ होगा। बोलना उचित न समझा।
नसरुद्दीन अपने माथे को पैरों में झुकाए, हाथों में दबाए रोए चला जा रहा है। उसकी हिचकियां उसके पूरे शरीर को हिला रही हैं। रात हो गई, वृद्धा सो गई, लेकिन सुबह जब फिर जागी तो देखा कि वह अभी भी रोए चला जा रहा है। आंसू पोंछता है, फिर हिचकियां आ जाती हैं, फिर थोड़ी देर रुकता है, फिर रोने लगता है। फिर उसने सोचा मैं अजनबी हूं, और पता नहीं कितने दुख में है वह आदमी। मेरा बीच में बोलना, या कुछ कहना कहीं दुख को और न बढ़ा दे, कहीं घाव को और न छेड़ दे।
दूसरा दिन भी बीत गया, और तीसने दिन की सुबह होने लगी। तब तो वृद्धा को
भी सम्हालना मुश्किल हो गया अपने को। वह पास आई। उसने नसरुद्दीन के सिर पर हाथ रखा, थपथपाया और कहा कि क्या हो गया है? मुझे कुछ कहें, शायद कहने से भी भार हलका हो जाए। तो नसरुद्दीन ने कहा कि मत पूछें। सोच कर ही मन और दुखी होता है। नाउ इट इ.ज थ्री डेज दैट आई हैव बीन राइडिंग ऑन दि रांग ट्रेन--तीन दिन हो गए हैं और मैं गलत गाड़ी में सवार हूं।
इस गाड़ी से कभी भी उतरा जा सकता था!
नसरुद्दीन पर आपको हंसी आ सकती है, लेकिन उस हंसी में आप मत भूल जाना
कि करीब-करीब वैसी ही अवस्था आपकी है। तीन दिन ही नहीं, न मालूम कितने जन्मों से आप गलत गाड़ी में सवार हैं। रो भी रहे हैं, ऐसा भी नहीं कि नहीं रो रहे हैं। बुरी तरह रो रहे हैं, हिचकिंया बंधी हैं। आंखें गीली हैं, सुख कहीं दिखाई नहीं पड़ता, दुख ही दुख है, फिर भी गाड़ी में बैठे हुए हैं। और जिससे दुख हो रहा है, जिससे गलत दिशा में जा रहे हैं, उसको आपका पूरा सहयोग है।
इसे थोड़ा ठीक से अपनी तरफ देखेंगे तो ख्याल में आ जाएगा कि जहां-जहां
आप गलत जा रहे हैं, वहीं-वहीं आपकी ऊर्जा सहयोग कर रही है; जो-जो जीवन में गलत है, उसी-उसी के आप सहयोगी और साथी हैं। और जीवन में जो-जो श्रेष्ठ है, जहां से यात्रा का रुख बदल सकता है, पूरे जीवन का ढंग बदल सकता है, उस तरफ आपका कोई सहयोग नहीं है। उसे आप सुन भी लेते हैं, तो भी वह कभी आपके जीवन की मूलधारा नहीं बन पाता। मूलधारा तो आपकी गलत ही बनी रहती है। फिर इस गलत मूलधारा के बीच जो आप ठीक भी सुन लेते हैं, उसकी भी आप जो व्याख्या करते हैं, वह भी इस गलत को सहयोग देने वाली होती है। क्योंकि व्याख्या आप करेंगे।
इसलिए मैंने कहा कि आप सोचना-विचारना मत। महावीर की तरफ एक सहानुभूति, एक प्रेम के रुख की जरूरत है। क्योंकि जो भी आप सोचेंगे, वह "आप" सोचेंगे। और "आप" गलत हैं। आपके निर्णय के ठीक होने का कोई उपाय नहीं है। अगर आपके निर्णय ठीक हो सकते, तो आप खुद कभी के महावीर हो गए होते, महावीर को सुनने, समझने की कोई जरूरत नहीं थी। एक जिसको पश्चिम के सौंदर्यशास्त्री सिम्पेथेटिक पार्टिसिपेशन कहते हैं--एक सहानूभूतिपूर्ण मिलन, एक रेपर्ट--जहां आप लड़ नहीं रहे हैं, बल्कि उन्मुक्त हैं समझने को, जीने को, नये कोण को देखने को राजी हैं।
महावीर का मिजाज आपसे बिल्कुल अलग है। यह आदमी बिल्कुल और ढंग का है। इसकी यात्रा अलग है। यह किसी और ही ट्रेन में सवार है। इसकी दिशा भिन्न है। तो जैसे आप हैं, अगर वहीं से आप सोचेंगे, तो आप महावीर को चूक जाएंगे। जैसे महावीर हैं, अगर उनके रुख में आप झुकने को राजी होंगे, तो ही आप समझ पाएंगे।
इसलिए धर्मों ने श्रद्धा का बड़ा मूल्य माना है। नहीं कि संदेह व्यर्थ है। संदेह उपयोगी है; पर धर्म की दिशा में नहीं, विज्ञान की दिशा में

उपयोगी है। संदेह बहुमूल्य है अगर पदार्थ को समझना हो, क्योंकि पदार्थ के साथ किसी सहानुभूति की जरूरत नहीं है। सच तो यह है कि अगर पदार्थ को समझना हो, और सहानुभूति हो, तो आप समझ ही न पाएंगे। अगर एक वैज्ञानिक पदार्थ को समझने में सहानुभूति रखता हो, तो पदार्थ को समझ नहीं पाएगा, क्योंकि वह निरपेक्ष नहीं रह जाएगा। उसके पक्षपात जुड़ जाएंगे। उसे तो पूरी तरह निरपेक्ष, तटस्थ होना चाहिए--कोई सहानुभूति नहीं, जैसे वह है ही नहीं; उसे जरा भी प्रविष्ट नहीं होना चाहिए पदार्थ को समझने में। उसे तो सिर्फ एक निरीक्षक होना चाहिए। जिससे उसका कोई भी संबंध नहीं तो ही विज्ञान और वैज्ञानिक सफल हो पाता है।
ठीक उलटी है बात धर्म की। वहां अगर आप बहुत तटस्थ हैं, दूर खड़े हैं, सिर्फ निरीक्षक हैं, तो आप प्रवेश ही न कर पाएंगे। धर्म में तो प्रवेश हो पाएगा, अगर आप अति सहानुभूति से भरे हैं। जैसे मां अपने बच्चे को गोद में ले लेती है, अगर महावीर के वचनों को ऐसे ही आप अपने हृदय के पास ले सकेंगे, तो ही-तो ही संबंध जुड़ पाएगा। और एक बार संबंध जुड़ जाए, तो आपका मिजाज बदल जाता है, आपके होने का ढंग बदल जाता है। फिर महावीर की बातें समझ में आनी शुरू हो जाती हैं। क्योंकि आपकी आंखों की दिशा, आपकी आंखों का ढंग, आपके देखने का ढंग, आपके होने का ढंग, सब बदल जाता है। इसके पहले कि महावीर आपके साथी बन सकें, आपको उनका साथी बन जाना बहुत जरूरी है और इसके पहले कि वे आपकी समझ में आ सकें, आपकी समझ का पूरा ढंग बदल जाना जरूरी है।
जैसे आप हैं, वैसे ही महावीर को समझने का कोई उपाय नहीं है, इसलिए कोई महावीर को मानने वालों की कमी नहीं है, लेकिन समझने वाला मुश्किल से कोई दिखाई पड़ता है। जो माननेवाले हैं, वे भी सोचनेवाले हैं। उन्होंने भी महावीर की व्याख्या कर रखी है अपने हिसाब से। अपने को पोंछ कर, अपने को मिटा कर जो समझने चलेगा, वही केवल समझ पा सकता है।
अब हम सूत्र में प्रवेश करें।
ये सूत्र--प्राथमिक सूत्र थोड़े कठिन होंगे, क्योंकि महावीर अपने अनुभव को एक ढांचा दे रहे हैं, एक व्यवस्था दे रहे हैं। वह व्यवस्था समझ में आ जाए तो फिर बाद का प्रवेश बहुत आसान है।
"धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पुद्गल और जीव--ये छह द्रव्य हैं। केवलदर्शन
के धर्ता जिन भगवानों ने इन सबको लोक कहा है।"
पहली बात: महावीर और जैनों के बाकी तेईस तीर्थंकर किसी शास्त्र में विश्वास नहीं करते--किसी वेद, किसी कुरान, किसी बाइबिल में उनका विश्वास नहीं है। क्योंकि उनकी दृष्टि यह है कि अनुभव शब्द में संरक्षित नहीं किया जा सकता। इसलिए मूल-स्रोत सदा व्यक्ति है, शास्त्र नहीं।
जैसे हिंदू-धारणा है, वेद पर भरोसा है। मूल विश्वास वेद पर है-- शास्त्र पर। जो वेद कहता है, वह ठीक है। और अगर कोई व्यक्ति कुछ कहता हो, वह वेद के विपरीत जाता हो, तो व्यक्ति गलत होगा, वेद गलत नहीं होगा। लेकिन महावीर की दृष्टि बिल्कुल उलटी है।
महावीर कहते हैं, भरोसा व्यक्ति का है और अगर व्यक्ति कुछ कहता हो, और वेद विपरीत हो, तो वेद गलत हैं, व्यक्ति गलत नहीं है।
इस फर्क को ठीक से समझ लें।
शास्त्र मृत हैं, व्यक्ति जीवित है। मृत पर बहुत भरोसा उचित नहीं है।
और मृत का अगर कोई मूल्य भी है, तो भी इसीलिए है कि किसी जीवित व्यक्ति के वचन हैं वहां। लेकिन शास्त्र कितना ही प्राचीन हो, कितना ही मूल्यवान हो, किसी भी जीवित व्यक्ति के अनुभव को गलत करने के काम नहीं लाया जा सकता। महावीर व्यक्ति पर इतना भरोसा करते हैं, जितना पृथ्वी पर किसी दूसरे व्यक्ति ने नहीं किया है। व्यक्ति की चरम मूल्यवत्ता महावीर को स्वीकार है। तो वेद जैसे कीमती शास्त्र को भी महावीर कह देते हैं, छोड़ देना होगा, अगर व्यक्ति के अनुभव के अनुकूल न हो। जीवित व्यक्ति चरम-मूल्य है, अंतिम इकाई है।
यह बहुत बड़ी क्रांतिकारी धारणा है। मन को भी बड़ी चोट पहुंचाती है। और मजे की बात यह है कि जैन भी इस धारणा के अनुकूल नहीं चल पाए। जैन भी अब महावीर के वचन को सुनते हैं। अगर किसी व्यक्ति का अनुभव महावीर के वचन के

विपरीत जाता हो, तो वे कहेंगे कि यह व्यक्ति गलत है। फिर महावीर का वचन वेद बन गया है। इसलिए जैन हिंदू धर्म का एक हिस्सा होकर मर गए। उनका कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है--हो नहीं सकता। क्योंकि महावीर की मौलिक धारणा ही नष्ट हो गई। महावीर की धारणा यह है कि व्यक्ति का सत्य चरम है। और इसलिए निरंतर महावीर बार-बार कहते हैं कि जो मैं कह रहा हूं, यह उनका अनुभव है, जो "केवलज्ञान" को उपलब्ध हुए हैं। यह अनुभव है। किसी शास्त्र की गवाही महावीर नहीं देते। हमेशा गवाही व्यक्तियों की है।
"केवलदर्शन के धर्ता जिन भगवानों ने इस सबको लोक कहा है।"
और भी कुछ बातें इसमें ख्याल ले लेनी जरूरी हैं।
केवलदर्शन का अर्थ है, जो उस अवस्था को उपलब्ध हो गए जहां मात्र ज्ञान
रह आता है और जानने को कुछ भी नहीं। हम जब भी कुछ जानते हैं, तो कुछ जानते हैं--कोई ऑब्जेक्ट।
आप यहां बैठे हैं, मैं आपको देख रहा हूं, तो मैं आपको जान रहा हूं। लेकिन आपको जान रहा हूं, फिर आप यहां से हट जाएं और जानने को कुछ भी न बचे, सिर्फ मेरा जानने वाला रह जाए--सो न जाए, मूर्छित न हो जाए, होश में हो, जानने को कुछ भी न बचे और सिर्फ जानने वाला बच जाए; मन के पर्दे पर से सारी तस्वीरें खो जाएं, सिर्फ चेतना का प्रवाह बच जाए, उस अवस्था को महावीर "केवलज्ञान" कहते हैं, शुद्ध-ज्ञान--मात्र-ज्ञान। जो ऐसे मात्र-ज्ञान को उपलब्ध हो जाते हैं, उनको महावीर "जिन" कहते हैं। जिन का अर्थ है, जिन्होंने जीत लिया, जिन्होंने जीवन की परम विजय उपलब्ध कर ली, जिनको जीतने को अब कुछ भी न बचा। और ऐसे जिनों को महावीर "भगवान" कहते हैं।
यह भी समझ लेना जरूरी है कि महावीर के लिए "भगवान" का वही अर्थ नहीं है, जो हिंदुओं के लिए है, ईसाइयों के लिए है, मुसलमानों के लिए है। महावीर की "भगवान" की बड़ी अनूठी अवधारणा है।
तीन बातें ख्याल में ले लेनी जरूरी हैं:
एक तो महावीर कहते हैं, उतने ही भगवान हैं, जितनी आत्माएं हैं। भगवान
एक नहीं है। एक भगवान की धारणा बहुत डिक्टेटोरियल है, बहुत तानाशाहीपूर्ण है। महावीर कहते हैं, प्रत्येक आत्मा भगवान है। जिस दिन पता चल जाएगा, उस दिन प्रकट हो जाएगी। जब तक पता नहीं चला है, तब तक वृक्ष बीज में छिपा है। अनंत भगवानों की धारणा है महावीर की, अनंत--जितने जीव हैं। आप ऐसा नहीं सोचना कि आप ही हैं। चींटी में जो जीव है, वह भी छिपा हुआ भगवान है। आज नहीं कल, वह भी प्रकट होगा। वृक्ष में जो है, वह भी भगवान है। आज नहीं कल, वह भी प्रकट होगा। समय की भर देर है। एक घड़ी जो भी छिपा है, वह प्रकट हो जाएगा। अनंत भगवानों की धारणा दुनिया में कहीं भी नहीं है। और उस के पीछे भी व्यक्ति का मूल्य है। महावीर को यह ख्याल दुखद मालूम पड़ता है कि एक ब्रह्म है, जो सबका मालिक है। यह बात ही तानाशाही की मालूम पड़ती है। यह भी बात महावीर को उचित नहीं मालूम पड़ती कि "उस एक" में ही सब खो जाएंगे। यह भी बात उचित नहीं मालूम पड़ती कि "उस एक" ने सबको बनाया है, "वह एक" सृष्टा है। यह बात बेहूदी है।
क्योंकि महावीर कहते हैं कि अगर मनुष्य की आत्मा बनाई गई है तो वह आत्मा ही न रही, वस्तु हो गई। जो बनाई जा सकती है, वह क्या आत्मा है। महावीर कहते हैं, जो बनाई जा सकती है वह वस्तु है, आत्मा नहीं। इसलिए अगर किसी परमात्मा ने आत्माएं बनाई हैं, तो वे सब वस्तुएं हो गईं। फिर हम परमात्मा के हाथ की गुड्डियां हो गए, कोई मूल्य न रहा।
महावीर इसलिए सृष्टा की धारणा को अस्वीकार कर देते हैं। वे कहते हैं, कोई सृष्टा नहीं। क्योंकि अगर सृष्टा है तो आत्मा का मूल्य नष्ट हो जाता है। आत्मा का मूल्य ही यही है कि वह असृष्ट है, अनक्रिएटेड है। उसे बनाया नहीं जा सकता। जो भी चीज बनाई जा सकती है, वह वस्तु होगी, यंत्र होगी-कुछ भी होगी-लेकिन जीवंत चेतना नहीं हो सकती।
थोड़ा सोचें। जीवंत चेतना अगर बनाई जा सके, तो उसका मूल्य, उसकी गरिमा, उसकी महिमा-सब खो गई। इसलिए महावीर कहते हैं, कोई सृष्टा परमात्मा नहीं है। फिर महावीर कहते हैं, जो बनाई जा सकती है, वह नष्ट भी की जा सकती है।

ध्यान रहे, जो भी बनाया जा सकता है, वह मिटाया जा सकता है। अगर कोई परमात्मा है आकाश में, जिसने कहा बन जाओ और आत्माएं बन गइ॰, वह किसी भी दिन कह दे कि मिट जाओ और आत्माएं मिट जाएं, तो यह मजाक हो गया, जीवन के साथ व्यंग हो गया। इसलिए महावीर कहते हैं, न तो आत्मा बनाई जा सकती और न मिटाई जा सकती। जो न बनाया जा सकता, जो न मिटाया जा सकता, उसको महावीर "द्रव्य" कहते हैं--सब्सटेंस।
यह उनकी परिभाषा को समझ लेना आप। द्रव्य उसको कहते हैं, जो न बनाया जा सकता और न मिटाया जा सकता है--जो है। इसलिए महावीर कहते हैं, जगत में जो भी मूल द्रव्य हैं, वे हैं सदा से। उनको किसी ने बनाया नहीं है और उनको कभी कोई मिटा भी नहीं सकेगा।
आधुनिक विज्ञान महावीर से राजी है। जैनों की वजह से महावीर का विचार वैज्ञानिकों तक नहीं पहुंच पाता, अन्यथा आधुनिक विज्ञान जितना महावीर से राजी है, उतना किसी से भी राजी नहीं है। अगर आइंस्टीन को महावीर की समझ आ जाती तो आइंस्टीन महावीर की जितनी प्रशंसा कर सकता था, उतनी कोई भी नहीं कर सकता है। लेकिन जैनों के कारण बड़ी कठिनाई है।
एक मित्र मेरे पास आए थे। महावीर की पच्चीस-सौवीं वर्ष गांठ आती है।
वे मुझसे कहने लगे कि "किस भांति हम इसको मनाएं कि सारे जगत को महावीर के ज्ञान का प्रसार मिल जाए?" तो मैंने उनको कहा कि "आप जब तक हैं, तब तक बहुत मुश्किल है। आप ही उपद्रव हैं, आप ही बाधा हैं।"
महावीर विराट हो सकते हैं, लेकिन जैनों का बड़ा संकीर्ण घेरा है और जैनों की संकीर्ण बुद्धि के कारण महावीर की जो तस्वीर दुनिया के सामने आती है, वह बड़ी संकीर्ण हो जाती है। महावीर का खुल कर अध्ययन भी नहीं हो पाता। बंधी लकीरोंवाले लोग कुछ भी नहीं खोज सकते। महावीर की पुनः खोज की जरूरत है, लेकिन तब बंधी लकारें तोड़ देनी पड़ेंगी।
महावीर की यह धारणा कि "द्रव्य" उसको कहते हैं, महावीर जिसे आज विज्ञान "एलिमेंट" कहता है। वह कभी नष्ट नहीं होता और कभी बनाया भी नहीं जाता--रूपांतरित होता है, बनता है, बिगड़ता है। लेकिन बनना और बिगड़ना सिर्फ रूप का होता है, मूल तत्व न ही बनता और न बिगड़ता। इस तरह के छह द्रव्य महावीर ने कहे हैं।
पहला द्रव्य है धर्म, दूसरा अधर्म, तीसरा आकाश, चौथा काल, पांचवां पुदगल, छठवां जीव। परमात्मा की कोई जगह नहीं है, ये छह मूल द्रव्य हैं। ये छह सदा से हैं और सदा रहेंगे। और जो कुछ भी हमें बीच में दिखाई पड़ता है वह इन छह का मिलन और बिछुड़न है। इनका आपस में जुड़ना और अलग होना है। सारा संसार संयोग है, ये छह मूल द्रव्य हैं।
अनंत आत्माएं हैं और हर आत्मा परमात्मा होने की क्षमता रखती है, इसलिए महावीर की परमात्मा की धारणा को ठीक से समझ लें। महावीर कहते हैं, आत्मा की तीन अवस्थाएं हैं: एक अवस्था है आत्मा की--बहिर-आत्मा। जब चेतना बाहर की तरफ बहती रहती है। दूसरी अवस्था है आत्मा की--अंतरात्मा। जब चेतना भीतर की तरफ बहती है।
वासना में बहती है बाहर की तरफ, विचार में बहती है बाहर की तरफ तब आप बहिर आत्मा हैं--आत्मा की निम्नतम अवस्था। ध्यान में बहती है भीतर की तरफ, मौन में बहती है भीतर की तरफ, तब आप अंतरात्मा हैं-आत्मा की दूसरी अवस्था। और आत्मा की तीसरी अवस्था है, जब चेतना कहीं भी नहीं बहती--न बाहर की तरफ, न भीतर की तरफ, सिर्फ होती है। बहना बंद हो जाता है। कोई गति और कोई कंपन नहीं रह जाता--समाधि। उस तीसरी अवस्था में आत्मा का नाम परमात्मा है। बहिर आत्मा से अंतरात्मा, अंतरात्मा से परमात्मा। और अनंत आत्माएं हैं, इसलिए अनंत परमात्मा हैं। और कोई आत्मा किसी में लीन नहीं हो जाती, क्योंकि प्रत्येक आत्मा अपने में स्वतंत्र द्रव्य है। अंतिम अवस्था में कोई भेद नहीं रह जाता, दो आत्माओं में कोई भेद नहीं रह जाता, कोई दीवार नहीं रह जाती, कोई अंतर नहीं रह जाता, किसी तरह का विवाद-विरोध नहीं रह जाता लेकिन फिर भी प्रत्येक आत्मा निजी होती है, इनडिविजुअल होती है।
ये छह द्रव्य भी महावीर के बड़े अनूठे हैं, इनकी व्याख्या समझने जैसी है:

"धर्म द्रव्य का लक्षण है, गति।" बहुत अनूठी दृष्टि है। महावीर कहते हैं, जिससे भी गति होती है, वह धर्म है; और जिससे भी गति रुकती है, वह अधर्म है। जिससे भी विकास होता है, वह धर्म है; जिससे भी अभिव्यक्ति अपनी पूर्णता की तरफ पहुंचती है, वह धर्म है, और जिससे भी विकास रुकता है, वह अधर्म है।
अधर्म को महावीर कहते हैं, स्थिति का तत्व रोकने वाला; और धर्म को महावीर कहते हैं, गति का तत्व बढ़ाने वाला। दोनों हैं, आप पर निर्भर है कि आप किस तत्व के साथ अपने को जोड़ लेते हैं। अगर आप अधर्म के साथ अपने को जोड़ लेते हैं, तो आप रुक जाते हैं। जन्मों-जन्मों तक रुके रह सकते हैं। अगर आप धर्म के साथ अपने को जोड़ लेते हैं, तो बढ़ने शुरू हो जाते हैं।
एक मछली है, तैरने की क्षमता है उसमें, लेकिन वह भी पानी का सहारा न ले
तो तैर न पाएगी; क्षमता है--पानी का सहारा ले तो तैर पाएगी। आपकी क्षमता है, क्षमता है परमात्मा होने की, लेकिन धर्म का सहारा लें तो तैर पाएंगे, अधर्म का सहारा लें तो रुक जाएंगे। अगर आप बहिर-आत्मा होकर रह गए हैं तो उसका कारण है कि आपने कहीं अधर्म का सहारा ले लिया है।
यह बहुत सोचने जैसी बात है, महावीर बुराई को अधर्म नहीं कहते। जो भी रोक लेती है बात, वही अधर्म है। तो बुरे की व्याख्या भी नई हो जाती है। तब बुरे का अर्थ, अशुभ का अर्थ, पाप का अर्थ बड़ा नया हो जाता है। जीवन में जहां-जहां रोकने वाले तत्व हैं, उनके साथ आपका जो गठबंधन है, वही अधर्म है। धर्म खोलेगा, मुक्त करेगा, स्वतंत्र करेगा, बंधनों को काटेगा। नाव बंधी है किनारे से, उसे किनारे की खूंटियों से अलग करेगा और जैसे-जैसे किनारे की खूंटियां हटती जाएंगी, नाव मुक्त होती जाएगी गति करने को। कहां- कहां हम बंधे हैं?
जो-जो हमारी वासनाएं हैं, वे-वे हमारी खूंटियां हैं--नदी के किनारे जिनसे हमारी नाव बंधी है। और खूंटियों को हम मजबूत रखते हैं कि कहीं खूंटियां टूट न जाएं। खूंटियों को हम बल देते हैं, ताकि खूंटियां कमजोर न हो जाएं। हम अपने बंधनों को पोषण देते हैं। जो हमें बांध रहा है, जो हमारा कारागृह है, उसे ही हम जीवन समर्पित कर रहे हैं। जिससे हम अटक गए हैं, उसे हम सहारा समझ रहे हैं। और जब तक हमें यह दिखाई न पड़ जाए कि क्या सहारा है और क्या बाधा है-जब तक यह साफ न हो जाए, तब तक कोई गति नहीं हो सकती है।
अगर महावीर अपने राजमहल को छोड़कर चले जाते हैं, तो आप यह मत सोचना कि राजमहल में कुछ बुराई है, जिसकी वजह से छोड़कर चले जाते हैं। धन वैभव छोड़ देते हैं, तो आप यह मत सोचना कि धन, वैभव में कोई बुराई है। महावीर को दिखाई पड़ता है कि वे खूंटियां हैं, और जब तक उनके इर्द-गिर्द मैं हूं, तब तक धर्म के तत्व के साथ मेरा संबंध नहीं हो पाएगा। तो मैं गति नहीं कर पाऊंगा। अगर ठीक से समझें तो महावीर धन को नहीं छोड़ते, धन से अपने को छुड़ाते हैं। बुनियादी फर्क है। धन छोड़ना बहुत आसान है, धन से अपने को छुड़ाना बहुत कठिन है। क्योंकि धन छोड़ कर आप भाग सकते हैं, लेकिन तत्काल आप दूसरा धन पैदा कर लेंगे, जिसको आप पकड़ लेंगे। धन कुछ रुपयों-सिक्कों में बंद नहीं है, जहां भी सुरक्षा है, वहीं धन है, और जहां भी भविष्य का आश्वासन है, वहीं धन है।
धन का मतलब क्या है?
धन का मतलब है कि मेरे पास अगर एक हजार रुपये हैं, तो कल मेरा सुरक्षित है। कल मुझे भूखा नहीं मरना पड़ेगा। रहने को मकान होगा, भोजन होगा, कपड़े होंगे, मैं कल के लिए सुरक्षित हूं। धन की इतनी पकड़ भविष्य की सुरक्षा के लिए है। अगर आपको अचानक पता चल जाए कि कल सुबह दुनिया नष्ट हो जानेवाली है, धन पर आपकी पकड़ इसी वक्त छूट जाएगी; कंजूस से कंजूस आदमी धन लुटाता हुआ दिखाई पड़ेगा।
अगर दुनिया कल सुबह खत्म हो रही हो तो धन का मूल्य क्यों खतम होता है?
धन का मूल्य है भविष्य की सुरक्षा में, अगर भविष्य ही नहीं, तो धन का कोई मूल्य नहीं। आप धन छोड़ सकते हैं, लेकिन भविष्य की सुरक्षा आपके साथ अगर लगी है, तो आप नया धन पैदा कर लेंगे।

तो एक आदमी धन को छोड़ जाता है फिर पुण्य को पकड़ लेता है। फिर पुण्य धन
हो जाता है। फिर वह सोचता है कि पुण्य मेरे पास है तो स्वर्ग मुझे मिलेगा। आपके लिहाज से वह आदमी और भी बड़े भविष्य का इंतजाम कर रहा है। आप तो मरने तक भविष्य का उपयोग कर सकते हैं, वह मरने के बाद भी पुण्य का उपयोग कर सकता है। वह जिस करेंसी को इकट्ठा कर रहा है, वह जीवन के उस तरफ भी चलती है। आपके नोट उस तरफ नहीं चलेंगे। इसलिए साधु-संन्यासी गृहस्थियों को समझाते हैं कि "क्या धन को पकड़ रहे हो, क्षणभंगुर है! पुण्य को पकड़ो, जो कि सदा साथ रहेगा।"
लेकिन, यह बड़े मजे की बात है कि, "पकड़ो जरूर।" उनका कहना कुल इतना ही है
कि "तुम गलत धन को पकड़ रहे हो, ठीक धन को पकड़ो। तुम जिस धन को पकड़ रहे हो, यह मौत तक काम देगा, मौत के बाद तुम मुश्किल में पड़ोगे। हमने ठीक धन पकड़ा है। तुमने गलत बैंक का सहारा लिया है, हमने ठीक बैंक का सहारा लिया है।"लेकिन सहारा है!
धन को छोड़ना बहुत आसान है, क्योंकि आप नया धन पैदा कर लेंगे। जिस मन में असुरक्षा है, वह धन को पैदा कर ही लेगा। धन, असुरक्षित मन की संतान है। फिर वह धन कई तरह का हो सकता है।
लेकिन महावीर ने धन नहीं छोड़ा, धन से अपने को छुड़ाया। यह प्रक्रिया अलग है। धन पर ध्यान नहीं है, अपने पर ध्यान है, कि जो-जो चीज मुझे पकड़ती है, उसकी पकड़ मेरे ऊपर क्यों है। वह पकड़ मेरी न रह जाए।
फिर ध्यान रहे, धन आपको पकड़े हुए भी नहीं है, आप ही धन को पकड़े हुए हैं।
इसलिए असली सवाल धन छोड़ने का नहीं है, असली सवाल अपनी पकड़ छोड़ने का है। इसलिए यह भी हो सकता है कि कोई आदमी धन के बीच भी पकड़ छोड़ दे-हुआ है। और यह भी हो सकता है कि कोई आदमी धन छोड़ कर भी पकड़ न छोड़े--यह रोज हो रहा है।
बारीक है दोनों के बीच मार्ग। महावीर छुड़ा रहे हैं, अपनी पकड़। जहां- जहां पकड़ है, छोड़ रहे हैं। जहां-जहां सहारा है, छोड़ रहे हैं। क्योंकि अनुभव में आ रहा है कि सब सहारे बाधा बन गए हैं। उन्हीं की वजह से नाव रुकी है। धर्म है, गति का तत्व। विज्ञान को बड़ी कठिनाई थी सौ साल पहले, तो विज्ञान ने एक तत्व की कल्पना की थी "ईथर।" क्योंकि विज्ञान को कठिनाई थी कि सूर्य की किरणें आती हैं, यात्रा होती है, तो कोई न कोई तत्व चाहिए जिसमें यात्रा हो। तो ईथर परिकल्पित था, कि कोई न कोई तत्व होना चाहिए, नहीं तो किरण कैसे यात्रा करेगी। तो यह महाकाश जो शून्य है, इसमें कोई तत्व होना चाहिए। उस तत्व का कोई पता नहीं था। ईथर परिकल्पित था। क्योंकि यात्रा हो रही है इसलिए कोई तत्व चाहिये। अब ईथर की मान्यता क्षीण हो गई है। लेकिन, कहीं न कहीं चित्त में यह बात घूमती ही है विज्ञान के भी कि अगर कोई चीज यात्रा कर रही है, तो माध्यम जरूरी है। एक नदी बह रही है, तो दो किनारे जरूरी हैं। उन दो किनारों के माध्यम के बिना नदी नहीं बह पाएगी। डार्विन ने सिद्ध किया कि मनुष्य विकास कर रहा है, लेकिन डार्विन को ख्याल नहीं है, जो महावीर को ख्याल है। अगर मनुष्य विकास कर रहा है, तो गति हो रही है। तो गति की एक धारणा, और गति का एक मूल द्रव्य होना चाहिए, अन्यथा गति नहीं होगी। मनुष्य यात्रा कर रहा है। पशु से मनुष्य हो गया है, या बंदर से मनुष्य हो गया है। डार्विन के हिसाब से मछली की और यात्रा चल रही है। डार्विन के हिसाब से पहला जीवन का तत्व था, पहला नदियों के किनारे लगी पत्थर पर जो काई होती है, वह है। हरी काई, वह जीवन का पहला तत्व है। उस हरी काई से आप तक यात्रा हो गई। आप तक ही नहीं, महावीर तक भी यात्रा हो गई।
तो महावीर कहते हैं, यह जो इतना एवोल्यूशन हो रहा है, इतनी गति हो रही है, इस गति का एक तत्व चाहिए। उसे वे "धर्म" कहते हैं। और जो उस गति के तत्व को पहचान लेता है अपने जीवन में, और उसका संगी-साथी हो जाता है, उसमें अपने को छोड़ देता है, वह विकास की चरम अवस्था पर पहुंच जाता है। वह चरम अवस्था परमात्मा है। इसलिए धर्म वहां समाप्त हो जता है, जहां आप परमात्मा होते हैं। वहां यात्रा पूरी हो जाती है। मंजिल आ गई।
अगर एक पत्थर को आप रास्ते पर पड़ा देखते हैं तो आप कभी भी नहीं सोचते
कि वह रुका क्यों है? आपमें और पत्थर में फर्क क्या है? पत्थर के पास ही एक पौधा उग रहा है, उस पत्थर और पौधे में फर्क क्या है?

पौधा बढ़ रहा है, गतिमान है; पत्थर अगतिमान है, रुका है, ठहरा है। उसकी अगति के कारण ही उसकी चेतना कुंद है। वहां भी परमात्मा छिपा है, लेकिन अधर्म को बड़े जोर से पकड़ा है। इतने जोर से पकड़ा है कि कोई भी गति नहीं हो रही है।
गति के दो बिंदु हम ख्याल में ले लें। एक पत्थर-जैसी अवस्था, बंद, सब तरफ से कुछ प्रवेश नहीं करता, कोई प्रवाह नहीं है; सब ठहरा हुआ, फ्रोजन, जमा हुआ; और फिर एक तरल अवस्था महावीर की, जहां कुछ भी ठहरा हुआ नहीं, कुछ भी अटका हुआ नहीं, कुछ भी रुका हुआ नहीं; जीवंत प्रवाह है, मात्र प्रवाह है। "अधर्म और धर्म"--हम आमतौर से सोचते हैं अधर्म को अनीति की भाषा में, धर्म को नीति की भाषा में। महावीर सोचते हैं विज्ञान की भाषा में, नीति की भाषा में नहीं। इसलिए जो चीज भी आपको परमात्मा की तरफ ले जा रही है, वह धर्म है।
यह भी प्रत्येक व्यक्ति को सोचने जैसा है कि क्या उसे परमात्मा की तरफ ले जाएगा। जरूरी नहीं है कि दूसरा जिस ढंग से परमात्मा की तरफ जा रहा है, उसी ढंग से आप भी जा सकेंगे; क्योंकि दूसरा अलग बिंदु पर खड़ा है और आप अलग बिंदु पर खड़े हैं, दूसरा अलग स्थिति में खड़ा है, आप अलग स्थिति में खड़े हैं। और कभी-कभी दूसरे के पीछे चल कर आप उलझन में पड़ जाते हैं। और ऐसा भी नहीं है कि दूसरा गलत था, अपने लिए ठीक रहा हो। इसलिए धर्म बड़ी व्यक्तिगत खोज है।
सुना है मैंने कि मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन लंगड़ा-लंगड़ा कर चल रहा है रास्ते पर। एक मित्र मिल गया और मित्र ने कहा कि यही तकलीफ मुझे भी थी। दांत मैंने निकलवा दिए, तब से बिल्कुल चंगा हो गया।
नसरुद्दीन ने सोचा कि कोई हर्ज तो है नहीं। दांत निकलवाने में क्या हर्ज है। दांत निकलवा दिए। लंगड़ाना तो जारी रहा, मुंह और खराब हो गया! दूसरा मित्र मिल गया। मित्रों की कोई कमी तो है नहीं। उसने कहा कि क्या! दांत से कुछ होनेवाला नहीं। तकलीफ यही मुझे भी थी, अपेन्डिक्स निकलवा दी, तब से बिल्कुल चंगा हो गया हूं!
मुल्ला ने सोचा कि अपेंडिक्स का कोई उपयोग तो है नहीं, निकलवा दी। हालत और खराब हो गई, कमर और झुक गई। तीसरा मित्र मिल गया, उसने कहा कि क्या कर रहे हो? अपेंडिक्स और दांतों से कुछ होनेवाला नहीं--टांसिल्स असली तकलीफ है। मैंने निकलवा दिए, तब से बिल्कुल जवान हो गया।
मुल्ला ने टांसिल्स भी निकलवा दिए, कुछ लाभ न हुआ। लेकिन एक दिन पहला मित्र मिला, और देखा कि मुल्ला बिना लंगड़ाए शान से चल रहा है। उसने कहा कि अरे, मालूम होता है कि दांत निकलवा दिए, फायदा हो गया।
मुल्ला ने कहा कि दांत निकलवाने से भी नहीं हुआ, अपेंडिक्स निकलवाने
से भी नहीं हुआ, टांसिल्स निकलवाने से भी नहीं हुआ--जूते में एक कील थी, उसको निकलवाने से सब ठीक हो गया!
मित्रों से सावधान! गुरुओं से सावधान! हो सकता है उनको दांत निकलवाने
से लाभ हुआ हो। कोई उनकी गलती नहीं है। लाभ हो सकता है। तकलीफ क्या थी, इस पर निर्भर है।
आप अपनी तकलीफ पहचान लें, अपनी स्थिति, अपना बिंदु, वहीं से यात्रा होगी। आप, जहां से महावीर बोल रहे हैं, वहां से यात्रा नहीं कर सकते; जहां से मैं बोल रहा हूं, वहां से यात्रा नहीं कर सकते, जहां से कोई भी बोल रहा हो, वहां से यात्रा नहीं कर सकते; आप तो यात्रा वहीं से करेंगे, जहां आप खड़े हैं।
इसलिए अपने जीवन में एक सतत निरीक्षण चाहिए कि क्या है जो मुझे रोक रहा है? क्या है जिससे मैं कुंद हो गया, पत्थर हो गया? क्या है जिससे मैं जड़ हो गया हूं? और क्या है जो मुझे खोलेगा? और क्या मुझे खोलता है?
तब आपको किसी गुरु के पीछे चलने की जरूरत न होगी। आप अपने गुरु हो जाएंगे। और जब व्यक्ति अपना गुरु हो जाता है, और शांत निरीक्षण करता है अपनी जीवन स्थिति का, तो बहुत कठिन नहीं होता धर्म को जान लेना कि धर्म क्या है?

आप अगर खुद ही निरीक्षण करेंगे, तो आप पाएंगे क्रोध आपको बांधता है, रोकता है, जड़ कर देता है, मूर्च्छित करता है, होश खो जाता है, आप रुग्ण होते हैं, अस्थायी रूप से पागल हो जाते हैं। मनोवैज्ञानिक तो कहते हैं क्रोध, टेम्प्रेरी मैडनेस है। पागल जो स्थायी रूप से होता है क्रोध में, आप अस्थायी रूप से हो जाते हैं! बाकी आप हो वही जाते हैं।
आप नीचे गिर रहे हैं, बहिर-आत्मा हो रहे हैं। जब आप किसी के प्रति दया
और करुणा से देखते हैं, तो ठीक उल्टी घटना घटती है, क्रोध से उल्टी। आप खुलते हैं-बंधते नहीं, मुक्त होते हैं। खूंटी टूटती है, नाव खुलती है, आप बहते हैं।
जब भी आप करुणा के क्षण में होते हैं, तब आप पाते हैं शरीर का बोझ खो गया। जब आप क्रोध में होते हैं, तो पूरा ग्रेविटेशन, सारी जमीन आपको नीचे की तरफ खींचती है। जब आप क्रोध में होते हैं, तब आप वजनी हो जाते हैं। जब आप करुणा में होते हैं, तब आप हल्के हो जाते हैं।
अपने ही भीतर निरंतर कसना है और खोजना है कि क्या मुझे मुक्त करता है
और क्या मुझे बांधता है? क्या है अधर्म और क्या है धर्म? ये प्रत्येक व्यक्ति को रोज-रोज कस कर जानने की बातें है। इनके कोई बंधे सूत्र वेद में उपलब्ध नहीं हैं। यही महावीर का आग्रह है, कोई किताब नहीं है जो आपके लिए काम दे देगी। किसी किताब के सहारे चल कर आपके भटकने की संभावना है, बजाय पहुंचने की; क्योंकि हर किताब किसी व्यक्ति का निजी अनुभव है। और व्यक्ति भिन्न-भिन्न हैं। और धर्म का प्रत्येक व्यक्ति का अपना प्राथमिक अनुभव अलग-अलग होगा।
गुरजिएफ के पास लोग पहुंचते थे, तो गुरजिएफ कभी-कभी बड़ी हैरानी की बातें खड़ी कर देता था जो हम सोच भी नहीं सकते कि धर्म हो सकती हैं। एक आदमी गुरजिएफ के पास पहुंचता है जिसने कभी सिगरेट नहीं पी, और एक आदमी पहुंचता है जो सिगरेट का आदी है और सिगरेट नहीं छोड़ सकता। तो जो सिगरेट का आदी है, उसको गुरजिएफ कहेगा कि "सिगरेट बंद", और जिसने कभी नहीं पी, और जो दुश्मन है, जो कहता है कि "पी लूं तो मुझे उलटी हो जाए", उसको कहेगा कि "तू शुरू कर!" हम सोच भी नहीं सकते कि उसका क्या प्रयोजन है! आदत बांधती है। फिर चाहे वह सिगरेट पीने की हो और चाहे सिगरेट न पीने की हो। आदत अधर्म है।
तो गुरजिएफ बड़ी उलटी बात कह रहा है। वह जिसने कभी नहीं पी है, जो कहता
है "मैं, अगर कोई दूसरा भी पी रहा हो तो मेरे भीतर मतली खड़ी हो जाती है, उल्टी होने लगती है", उसे गुरजिएफ कहता है: तू पी, क्योंकि तू भी एक आदत में कुंद है, और यह भी एक आदत में कुंद है। इसको भी इसकी आदत के बाहर लाना है, तुझे भी तेरी आदत के बाहर लाना है। आदत अधर्म है।
गुरजिएफ को महावीर का कोई पता नहीं था, नहीं तो वह बड़ा खुश हुआ होता। लेकिन आपको पता है कि महावीर को मानने वालों को यह ख्याल है कि आदत अधर्म है? नहीं, वे कहते हैं कि अच्छी आदतें धर्म हैं, बुरी आदतें अधर्म है। अच्छी और बुरी आदत का बड़ा सवाल नहीं है। आदत आपको जड़ बनाती है, तरलता
खो जाती है। फिर आदत कुछ भी हो, चाहे रोज सुबह उठकर सामायिक करने की हो, या प्रार्थना करने की हो--अगर आदत है!
मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं, "आज ध्यान नहीं किया तो अच्छा नहीं
लग रहा।" और जो आदमी सिगरेट पीता है, अगर वह भी नहीं पीता है तो उसको भी अच्छा नहीं लगता, फर्क क्या है? मगर जो सिगरेट न पीए और अच्छा न लगे तो हम कहेंगे--हिम्मत रखो, डटे रहो, ध्यान वाले से हम कहेंगे नहीं, ध्यान करना चाहिए था! मगर यह भी एक आदत का गुलाम हो रहा है, एक आदत इसके आस-पास घेरा बांध रही है।
बड़े मजे की बात है, लोग मेरे पास आते हैं, वे कहते हैं, ध्यान से कुछ आनंद तो नहीं आता, लेकिन अगर न करो तो तकलीफ होती है। वही तो सिगरेट वाले की भी तकलीफ है। वह भी कहता है--सिगरेट पीने से कुछ मिल नहीं रहा है, लेकिन न पीओ तो बेचैनी होती है।
आदत का अर्थ यह है कि कुछ करने की एक यांत्रिक व्यवस्था बन गई है। उस यांत्रिकता में चलो तो ठीक लगता है, उस यांत्रिकता से हटो तो गलत लगता है।

अयांत्रिक होना, धार्मिक होना, नॉन-मेकेनिकल होना है। कोई आदत पकड़े न, कारागृह न बने। और आदत से चेतना सदा मुक्त रहे। चेतना कभी आदत के नीचे न दबे, सदा आदत के ऊपर हावी रहे, और हमारे हाथ में हो।
इसका यह मतलब नहीं है कि आप ध्यान न करें, इसका मतलब सिर्फ इतना है कि ध्यान भी आदत न हो। नहीं तो प्रेम भी आदत हो जाता है, ध्यान भी आदत हो जाता है।
मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी भाग गई थी तो वह छाती पीट-पीट कर रो रहा था। मित्रों ने सलाह दी कि ऐसा भी क्या है, छह महीने में सब घाव भर जाएगा, तुम फिर किसी के प्रेम में गिरोगे, फिर तुम शादी करोगे, ऐसा मत.जार-.जार होकर रोओ। सभी घाव भर जाते हैं, सिर्फ समय की बात है। मुल्ला ने कहाः छह महीने, और आज रात मैं क्या करूंगा?
वे पत्नी के लिए रो भी नहीं रहे हैं। एक आदत है।
तो सेक्स भी आदत हो जाती है, प्रेम भी आदत हो जाती है। अच्छी हैं, बुरी आदतें हैं, पर धर्म की फिकर इस बात की है कि आदत न हो, आप मुक्त हों। कोई भी चीज बांधती न हो, किसी चीज का व्यसन न हो। ऐसी मुक्ति आपको धर्म की दिशा में ले जाएगी। और व्यसन कुछ भी हों--धार्मिक व्यसन हों, कि रोज जाकर धर्म की चर्चा सुननी, कि रोज मंदिर जाना है, नहीं कह रहा हूं कि रोज मंदिर मत जाएं। लेकिन रोज मंदिर जाना आदत बन जाए, तो मुर्दा बात हो गई, आप यंत्र की भांति जाते हैं और आते हैं, कोई परिणाम नहीं है। मंदिर तो चेतना को मुक्त करे, ऐसा चाहिए।
महावीर का यह सूत्र बड़ा विचारणीय है: धर्म द्रव्य का लक्षण है, गति।
तो जहां-जहां आप गत्यात्मक हैं, डाइनैमिक हैं, वहां-वहां धर्म है। लेकिन जैन साधुओं को देखें, उनसे ज्यादा अगति में लोगों को पाना कठिन है। जैन साधु को कोई गत्यात्मक नहीं कह सकता, कि उसमें गति है। उसमें गति है ही नहीं। ढाई हजार साल पहले जो जैन साधु की लक्षणा थी, वही अब भी है। ढाई हजार साल में समय जैसे बहा ही नहीं, चीजें बदली ही नहीं। वह अभी भी वहीं जी रहा है, जहां वह ढाई हजार साल पहले था। सब कुछ बदल गया है, लेकिन वह अपनी आदतों से जकड़ा है, वह वहीं खड़ा है। फिर भी वह सूत्र रोज पढ़ता है कि धर्म का लक्षण है गति। अगर धर्म का लक्षण है गति, तो जैन साधु से ज्यादा क्रांतिकारी व्यक्तित्व दूसरा नहीं होना चाहिए। उसे तो रुकना ही नहीं चाहिए। उसे तो जीवन के प्रवाह में गतिमान होना चाहिए।
लेकिन वह ठहरा हुआ है जड़ की तरह, पत्थर की तरह। और जितना पथरीला हो, उतने अनुयायी कहते हैं कि तपस्वी है। और अगर उसमें जरा सी भी हलन-चलन दिखाई पड़े, जरा सा कुछ अंकुरित होता दिखाई पड़े, तो वह आदमी विद्रोही है, वह आदमी ठीक नहीं है, वह मार्ग से च्युत हो गया। अगर गति दिखाई पड़े तो मार्ग से च्युत है, अगर अगति दिखाई पड़े तो बिल्कुल ठीक है।
हम सब अगति के पूजक हैं, हम सब अधर्म के पूजक हैं, इसलिए हम सब आर्थाडाक्स हैं। ध्यान रहे, अगर महावीर की बात हमारे ख्याल में आ जाए तो आर्थाडाक्स धर्म जैसी कोई चीज नहीं हो सकती, या हो सकती है? जो भी आर्थाडाक्स होगा्र रूढ़ होगा, वह अधर्म होगा। धर्म तो सिर्फ क्रांतिकारी ही हो सकता है। धर्म का कोई रूप जड़ नहीं हो सकता। धर्म प्रवाहमान होगा, उसमें गति होगी।
मैं तो कहता हूं कि धर्म यानी क्रांति। और जिस दिन धर्म क्रांति नहीं रहता उस दिन संप्रदाय बन जाता है। और जैसे ही संप्रदाय बनता है, वैसे ही व्यर्थ बोझ और कारागृह हो जाता है।
धर्म का लक्षण है, गति। अधर्म का लक्षण है, स्थित, स्टेटिक, ठहरे होना।
आप अगर ठहरे हैं, तो अधार्मिक हैं; चाहे रोज मंदिर जा रहे हों, चाहे रोज पूजा कर रहे हों; अगर ठहरे हैं, तो अधार्मिक हैं। अगर गति कर रहे हैं, नदी की तरह बह रहे हैं, तालाब की तरह बन्द नहीं हैं- रोज सागर की तरफ जा रहे हैं, और भयभीत भी नहीं हैं कि कल क्या होगा, कल का आनंदपूर्ण स्वीकार है, स्वागत है, तो आप धार्मिक हैं। लेकिन हमारा मन स्थिति को पकड़ता है। इसे थोड़ा समझ लें।

हमारा मन सदा स्थिति को पकड़ता है, क्यों? क्योंकि मन के लिए सुविधापूर्ण है। जब भी कुछ नई बात होती है, तो मन को असुविधा होती है। क्योंकि मन को नई बात सीखनी पड़ती है। जब भी कोई नई घटना घटती है, तो मन को फिर से समायोजित होना पड़ता है, री-एडजस्टमेंट करना पड़ता है। इसलिए मन हमेशा आदतें पसंद करता है। क्योंकि आदतों के साथ कुछ नया नहीं है, सब पुराना है, इसलिए पुराने की धारा में आप बहे चले जाते हैं, नये से अड़चन होती है।
इसलिए मन नये को पसंद नहीं करता। जब आप कोई नई बात सुनते हैं, आप फौरन पाएंगे कि भीतर रेजिस्टेंस है, भीतर विरोध है। जब आप कोई पुरानी बात सुनते हैं, जो आप पहले से ही जानते हैं, और मानते हैं, आप बिल्कुल स्वीकार कर लेते हैं, कि बिल्कुल ठीक है, इसलिए नहीं कि बिल्कुल ठीक है बल्कि इसलिए कि आप आदी हैं, आपको पता है कि ऐसा है। मन को कुछ सीखना नहीं पड़ता। मन सीखने का दुश्मन है। सीखने में प्रवाह है। मन चाहता है, सीखो मत; जो है, वहीं ठहरे रहो।
पशुओं को देखें, पशु कुछ भी नहीं सीखते। सीखने की कोई संभावना ही नहीं पशु में। बामुश्किल, थोड़ा बहुत सर्कस के लिए उनको राजी किया जा सकता है। बाकी, वह भी बामुश्किल! बिल्कुल स्थित हैं।
अगर अधर्म का आप अर्थ समझते हों, तो पक्के अधार्मिक हैं; क्योंकि जहां उनके बापदादे थे, वहीं वे हैं, बापदादों के बापदादे थे, वहीं वे हैं। कहीं कोई फर्क नहीं हुआ है। बंदर दस लाख साल पहले का था, तो बंदर अभी भी ठीक वैसे ही है। बंदर बड़ा पक्का अनुयायी है अपने बापदादों का। प्राचीन का अनुयायी है। सनातन, वही उसकी धारणा है। वह कभी नहीं बदलता। कोई उपद्रव नहीं, कोई क्रांति नहीं, किसी तरह का कोई परिवर्तन नहीं।
आपके हिसाब से तो बंदर ही धार्मिक होना चाहिए। महावीर के हिसाब से वह अधर्म में जी रहा है। आदमी बदलता है। बदलता है, इसलिए आदमी गति करता है, सीखता है, नया अनुसंधान करता है, आविष्कार करता है, खोजता है। नये क्षितिज खोलता चला जाता है और आदमी हमेशा तैयार है, अपने पुराने को छोड़ने, काटने, बदलने को।
इसलिए मैं कहता हूं, महावीर की दृष्टि वैज्ञानिक है। विज्ञान कभी भी दावा नहीं करता कि जो हम जानते हैं, वह ठीक है। वह कहता है, अभी तक जो जानते हैं, उस हिसाब से ठीक है। कल जो हम जानेंगे, उस हिसाब से गलत भी हो सकता है। इसलिए महावीर कभी भी नहीं कहते कि यही ठीक है। वे कहते हैं कि इसके विपरीत भी ठीक हो सकता है, इससे भिन्न भी ठीक हो सकता है। यह एक दृष्टि है, और दृष्टियां भी हैं, उनसे ये चीज गलत भी हो सकती है।
एक प्रवाह है जीवन सीखने का, जानने का। हम ज्ञान को पकड़ते हैं, जानने
से बचना चाहते हैं। ज्ञान मुर्दा चीज है। मैंने आपसे कुछ कहा, आपने पकड़ लिया, कहा कि बिल्कुल ठीक है। लेकिन जानने की प्रक्रिया से आप नहीं गुजरे। ज्ञान को हम पकड़ लेते हैं, जानने से हम बचते हैं। क्योंकि जानना बड़ा कष्टपूर्ण है, जैसे कोई खाल उतारता हो। पुराना सब उतरता है, नये में प्रवेश करना पड़ता है।
इसलिए आप देखेंगे कि हमारे तथाकथित धर्मों में युवक उत्सुक नहीं होते, बूढ़े उत्सुक होते हैं। होना उलटा चाहिए। महावीर ने जब अपने जीवन का रूपांतरण किया, तब वे जवान थे। लेकिन मेरे पास जैन भी आते हैं, वे कहते हैं कि अभी तो काफी समय बाकी है, और ये बातें तो अंतिम समय की हैं। अभी कुछ संसार को देख लें, फिर आखिर में!
असल में मरता हुआ आदमी सीखने में बिल्कुल असमर्थ हो जाता है। तब सब जड़
हो जाता है, सब ठहर गया होता है। उस ठहराव में आदमी धार्मिक हो जाते हैं, क्योंकि जिसको हम धर्म कहते हैं, वह खुद एक ठहराव हो गया है।
अगर धर्म जीवित हो तो जवान उत्सुक होंगे, अगर धर्म मुर्दा हो तो बूढ़े उत्सुक होंगे। मंदिर में कौन इकट्ठे हैं, इससे पता चल जाएगा कि मंदिर जिंदा है या मर गया है। अगर मंदिर में बूढ़े इकट्ठे हैं तो मंदिर मर चुका है, बहुत पहले मर चुका है। बूढ़ों से मेल खाता है। अगर जवान इकट्ठे हैं तो मंदिर अभी जिंदा है। यह मतलब नहीं है कि बूढ़े मंदिर न जाएं। लेकिन अगर

मंदिर जवान हो तो बूढ़ों को जवान होना पड़ेगा, और अगर मंदिर बूढ़ा हो, और जवान उसमें जाएं तो उनको बूढ़ा होना पड़ेगा। तभी तालमेल बैठ सकता है।
महावीर का धर्म, युवा का धर्म है। एक बड़ी क्रांति महावीर ने की। हिंदू विचार था कि धर्म अंतिम बात है। चौथे चरण में जीवन के संन्यास, पहले पूरे संसार का अनुभव। ब्रह्मचर्य--शिक्षण का काल; फिर गृहस्थ--भोग का समय; फिर वानप्रस्थ--संन्यास की तैयारी का समय; और फिर पचहत्तर वर्ष की उम्र में, आखिरी पच्चीस वर्ष में संन्यास।
यह हिंदू धारणा थी। हिंदू धारणा दो चीजों पर टिकी थी--एक चार वर्ण: और चार आश्रम। महावीर ने दोनों तोड़ दिए। महावीर ने कहाः न तो कोई वर्ण है। जन्म से कोई वर्ण नहीं होता। जन्म से तो सभी शूद्र पैदा होते हैं। इन शूद्रों में से कभी-कभी कोई-कोई ब्राह्मण हो पाता है। वह ब्राह्मण होना उपलब्धि है। जन्म से कोई ब्राह्मण नहीं होता।
इसलिए जब हम महावीर की ब्राह्मण की परिभाषा पढ़ेंगे, बड़ी अनूठी है। महावीर किसको ब्राह्मण कहते हैं? जिसको ब्रह्म का अनुभव हो गया हो। तो जन्म से कोई कैसे ब्राह्मण हो सकता है, जन्म से सभी शूद्र होते हैं।
तो महावीर ने वर्ण की धारणा तोड़ दी थी, कि कोई ऊंचा-नीचा नहीं है जन्म से। और महावीर ने चार आश्रम की धारणा भी तोड़ दी, और कहा, ऐसी कोई बात नहीं है कि मरते समय धर्म। असल में ये तो बात ही गलत है। धर्म तो तब जब जीवन अपनी पूरी ऊर्जा पर है, युवा है। जब जीवन अपने पूरे शिखर पर है, जब कामवासना पूरे प्रवाह में है, तब उसको बदलने का जो मजा है, और जो रस है, वह रस बुढ़ापे में नहीं हो सकता। क्योंकि बुढ़ापे में तो सब चीजें अपने आप उदास होकर क्षीण हो गई हैं।
वृद्धावस्था में ब्रह्मचर्य का क्या अर्थ होता है? पचहत्तर वर्ष के बाद ब्रह्मचर्य का क्या अर्थ होगा? शरीर शिथिल हो गया, इंद्रियां काम नहीं करतीं, रुग्ण देह कुरूप हो गई, कोई आकर्षित भी नहीं होता, अब सब प्रतीक्षा कर रहे हैं कि कब आप विदा हों, तब अगर आप कहते हैं कि अब मैं ब्रह्मचर्य का व्रत लेता हूं तो आप भी बड़े गजब के आदमी हैं।
जब सारे शरीर का रोआं-रोआं वासना से भरा हो, और जब शरीर का एक-एक कोष्ठ मांग कर रहा हो, जब शरीर की सारी जीवन चेतना एक ही तरफ बहती हो, काम, तब कोई ठहर जाए, ट्रेन से उतर जाए, तब जो चरम अनुभव होता है, जीवन के प्रवाह को बदलने का, वह वृद्धावस्था में नहीं हो सकता। इसलिए महावीर ने युवकों को संन्यास दिया।
महावीर पर बहुत नाराज थे लोग। नाराजगी की बहुत-सी बातों में सबसे बड़ी नाराजगी यह थी कि युवक संन्यास लें। क्योंकि आपको पता नहीं, युवक के संन्यास का मतलब क्या होता है? युवक के संन्यास का मतलब होता है, सारी गृहस्थी का जाल अस्त-व्यस्त हो जाएगा। बाप बूढ़ा है, वह युवक पर निर्भर है; पत्नी नई घर में आई है, वह युवक पर निर्भर है। छोटे बच्चे हैं, वह युवक पर निर्भर हैं।
समाज का पूरा जाल चाहता है कि आप पचहत्तर साल के बाद संन्यास लें। समाज में इससे बड़ी बगावत नहीं हो सकती थी कि युवक संन्यासी हो जाए। क्योंकि इसका मतलब था कि समाज की पूरी व्यवस्था अराजक हो जाए। महावीर अनार्किस्ट हैं, अराजक हैं। लाखों युवक संन्यासी हुए, लाखों युवतियां संन्यासिनी हुईं। आप सोच सकते हैं, उस समय के समाज का पूरा जाल कैसा अस्त-व्यस्त हो गया होगा।
सब तरफ कठिनाई खड़ी हो गई होगी। सब तरफ अड़चन आ गई होगी। लेकिन महावीर
ने कहा कि यह अड़चन उठाने जैसी है। क्योंकि जब ऊर्जा अपने उद्दाम वेग में हो, तभी क्रांति हो सकती है, और तभी छलांग हो सकती है। जैसे-जैसे ऊर्जा शिथिल होती है, वैसे-वैसे छलांग मुश्किल होती जाती है। फिर आदमी मर सकता है, समाधिस्थ नहीं हो सकता। शिथिल होती हुई इंद्रियों के साथ कुछ भी नहीं हो सकता; क्योंकि शरीर ही तो यात्रा का रथ है।
इसलिए महावीर ने युवकों को संन्यास दिया, उसका भी कारण इसलिए है कि धर्म गति है, और युवक गतिमान हो सकता है। बूढ़ा गतिमान नहीं हो सकता। हिंदुओं ने एक समाज पैदा किया था, जो स्टेटिक है, जो ठहरा हुआ है तालाब की

तरह। हिंदुओं के इस समाज में कभी कोई लहर नहीं उठी, इसलिए हिंदू माफ नहीं कर पाए महावीर को। आप हैरान होंगे कि उनकी नाराजगी का सबसे बड़ा लक्षण यह है कि हिंदुओं ने महावीर के नाम का भी उल्लेख नहीं किया, अपने किसी शास्त्र में।
और ध्यान रहे, यह आखिरी बात है। अगर मैं आपसे प्रेम करूं, यह एक संबंध है। आपसे घृणा करूं, यह भी एक संबंध है। क्योंकि मेरा नाता जारी रहता है। लेकिन मैं आपसे न प्रेम करूं, न घृणा करूं, उपेक्षा करूं तो यह आखिरी बात है। क्योंकि जब भी हम किसी को घृणा करते हैं, तब भी मूल्य देते हैं।
महावीर के साथ हिंदुओं ने आखिरी उपाय किया। उनकी उपेक्षा की। उनके नाम की भी चर्चा नहीं उठाई। जैसे यह आदमी हुआ ही नहीं। इसे भूल ही जाओ। इसकी चर्चा भी खतरनाक है। इसकी चर्चा चलाए रखने का मतलब है कि वे बिंदु जो उसने उठाए थे, वह जारी रहेंगे।
महावीर की बिल्कुल, जैसे घटना घटी ही नहीं। अगर सिर्फ हिंदू-ग्रंथ उपलब्ध हों, तो महावीर गैर-ऐतिहासिक व्यक्ति हो जाएंगे। महावीर का कोई उल्लेख नहीं है। आदमी बड़ा खतरनाक रहा होगा, जिस वजह से इसकी इतनी उपेक्षा करनी पड़ी। इतना अराजक रहा होगा कि समाज ने इनका नाम भी संरक्षित करना उचित नहीं समझा।
बड़ी क्रांति यह थी कि युवक, ऊर्जा-प्रवाह में है, तभी धार्मिक हो सकता है। युवा चेतना धार्मिक हो सकती है, क्योंकि त्वरा चाहिए, वीर्य चाहिए, क्षमता चाहिए।
"सब पदार्थों को अवकाश देना आकाश का लक्षण है।" आकाश यानी अवकाश देने
की क्षमता; स्पेस। यह भी बहुत सोचने जैसा है। महावीर कहते हैं, सब पदार्थों को अवकाश देना आकाश है। आप जो भी करना चाहें, आकाश आपको अवकाश देता है करने को। आप चोरी करना चाहें, तो चोरी। आप पत्थर होना चाहें, तो पत्थर। आप परमात्मा होना चाहें, तो परमात्मा। आकाश आपको सभी तरह के अवकाश देता है।
यह जो हमारे चारों तरफ घिरी हुई स्पेस है, यह आपको कुछ भी बनाने के लिए जोर नहीं डालती। यह बिल्कुल तटस्थ है। यह आपसे कहती नहीं कि आप ऐसे हो जाएं। आप जैसे हो जाएं, इसे स्वीकार है। और यह आपको पूरा सहारा देती है। आकाश किसी का दुश्मन नहीं है, और किसी का मित्र नहीं है। सिर्फ अवकाश की क्षमता है।
तो आप जो भी हैं, अपने कारण हैं। ऐसा दबा नहीं रहा है, और कोई आपको बना नहीं रहा है। हिंदू-धारणा भिन्न थी। हिंदू-धारणा थी कि आप ऐसे हैं, क्योंकि परमात्मा, नियति, भाग्य! आपकी विधि में कुछ लिखा है, इसलिए आप ऐसे हैं, आप परतंत्र हैं। महावीर कहते हैं, आप पूर्ण स्वतंत्र हैं। और परमात्मा घेर रहा है सब को, हिंदू-धारणा में। महावीर की धारणा में आकाश घेर रहा है। आकाश आपको कुछ भी बनाने के लिए उत्सुक नहीं है। आप जो बनना चाहते हैं, आकाश राजी है। आपको वही जगह दे देगा।
एक बीज वृक्ष बनता है, बरगद का वृक्ष बन जाता है, तो आकाश बाधा नहीं देता। उसे जगह देता है। रिसेप्टिव है, ग्राहक है। एक गुलाब का पौधा है। आकाश उसे गुलाब होने की सुविधा देता है।
आकाश बिल्कुल तटस्थ सुविधा का नाम है। जो हमें घेरे हुए है, वह कोई परमात्मा नहीं है जिसकी अपनी कोई धारणा है कि हमें क्या बनाए? कोई भाग्य हमें घेरे हुए नहीं है। हमारे अतिरिक्त हमारा कोई भाग्य नहीं है। यह बड़ी कठिन बात है। यह स्वतंत्रता भी है, और एक महान जिम्मेवारी भी।
निश्चित ही, जहां भी स्वतंत्रता होगी, वहां रिस्पांसिबिलिटी, वहां उत्तरदायित्व हो जाएगा। परमात्मा के साथ एक खतरा है कि आप परतंत्र हैं, लेकिन एक लाभ है क्योंकि आप जिम्मेवार हैं; फिर आप पाप भी कर रहे हैं तो वही जिम्मेवार है। फिर आप नरक में भी पड़ते हैं, तो वही जिम्मेवार है; फिर जो भी हो रहा है, वही जिम्मेवार है। परतंत्र जरूर है, लेकिन परतंत्रता में एक लाभ है, एक सौदा है, वह यह कि आपकी कोई जिम्मेवारी नहीं, कोई चिंता नहीं। आप निश्चिंत हैं। उसकी जो मर्जी। उसकी बिना मर्जी के पत्ता भी नहीं हिलता।

महावीर परमात्मा की जगह आकाश की धारणा को स्थापित करते हैं। और वे कहते हैं, पत्ता अपनी ही मर्जी से हिलता है, और किसी की मजी से नहीं। आकाश की अपनी कोई मजी नहीं है आपको हिलाने-डुलाने की। आकाश सिर्फ अवकाश देता है। पत्ता हिलना चाहता है, तो अवकाश देता है, पत्ता ठहरना चाहता है, तो ठहरने के लिए सुविधा देता है।
निरपेक्ष अस्तित्व है चारों ओर। यह अस्तित्व आपको न तो खींच रहा है,
और न आपको धक्के दे रहा है। आप जो भी कर रहे हैं, आपके अतिरिक्त और कोई भी जिम्मेवार नहीं है। आप परम स्वतंत्र हैं। लेकिन तब चिंता पैदा हो जाती है। क्योंकि तब उसका अर्थ हुआ अगर गलत हो रहा है, तो मैं जिम्मेवार हूं, उसका अर्थ हुआ अगर मैं दुख पा रहा हूं तो मैं जिम्मेवार हूं। कोई ऊपर परमात्मा नहीं है।
इसलिए बहुत बड़ी संख्या में महावीर के अनुयायी नहीं बन सके; क्योंकि लोग चिंता छोड़ना चाहते हैं, चिंता पकड़ना नहीं चाहते। गुरु के पास लोग आते हैं कि मेरा बोझ आप ले लो। और ये महावीर खतरनाक आदमी हैं, ये सारे संसार का बोझ आप पर रखे दे रहे हैं। गुरु के पास आप जाते हैं, उसके चरणों में सिर रखते हैं कि सम्हालो! बस, अब आप ही हो। आपकी जो मर्जी, वैसा ही--कि आप एक आकाश में बैठे परमात्मा को समर्पण करते हैं।
समर्पण क्या करेंगे? आपके पास है क्या समर्पण करने को, सिवाय दुख और उपद्रव के? जब आप कहते हैं कि आपकी ही मज्रू, तो आप छोड़ क्या रहे हो? बीमारियां, उपाधियां, उपद्रव, पागलपन!
लेकिन एक लाभ है। हो परमात्मा या न हो, जब आप अनुभव करते हैं कि किसी
पर छोड़ा, तो आप निश्चिंत हो पाते हैं।
महावीर की प्रक्रिया बिल्कुल उलटी है। महावीर कहते हैं कि धार्मिक व्यक्ति अति चिंता से भर जाएगा। इसे समझ लें, क्योंकि बिल्कुल विपरीत है। समर्पण नहीं है महावीर की धारणा में--संकल्प है। महावीर कहते हैं, कि धार्मिक व्यक्ति ही चिंतित होगा, अधार्मिक व्यक्ति चिंतित होता ही नहीं। और यह बात सच है। धार्मिक चिंता से बड़ी चिंता और नहीं हो सकती; क्योंकि धार्मिक चिंता का अर्थ है कि मैं जो भी हूं, मैं जिम्मेवार हूं। और कल मैं जो भी होऊंगा, मैं ही जिम्मेवार होऊंगा। इसलिए एक-एक कदम फूंक-फूंक कर रखना है; और किसी दूसरे पर दायित्व नहीं डाला जा सकता; और किसी के कंधों पर बोझ नहीं रखा जा सकता; और दोष दूसरों को नहीं दिए जा सकते। सब दोष मेरे हैं।
खतरा है। भारी चिंता का बोझ सिर पर हो जाएगा। अकेला हो जाऊंगा मैं, कोई सहारा नहीं। इसलिए महावीर कहते हैं, असहाय है, असहाय है आदमी। हिंदू भी कहते हैं, आदमी असहाय है। लेकिन हिंदू कहते हैं, आदमी असहाय है, इसलिए परमात्मा का सहारा खोजो। महावीर कहते हैं, आदमी असहाय है और कोई सहारा है नहीं, इसलिए अपने ही सहारे खड़े होने की चेष्टा करो।
निश्चित ही महाचिंता घेरेगी सिर पर। पर ध्यान रहे, इस चिंता झेलने को
जो राजी है, उसके आनंद का मुकाबला कोई भी नहीं कर सकता। क्योंकि इसी चिंता से विकास है। इसी चिंता और संघर्ष से निखार है। इसी चिंता से फौलाद जन्मेगा, इसी आग से। कोई सहारा नहीं। इस असहाय अवस्था में ही खड़े रहने की हिम्मत साहस है जो आत्मा का जन्म बनेगी और एक ऐसी घड़ी आएगी कि जब किसी सहारे की कोई जरूरत भी नहीं रह जाएगी, आकांक्षा भी नहीं रह जाएगी। आदमी अपने ही पैरों पर पूरी तरह खड़ा हो जाएगा।
महावीर कहते हैं, जब भी कोई आत्मा अपनी अवस्था में पूरी तरह खड़ी हो जाती है, जब बाहर के सहारे की कोई जरूरत नहीं होती, तब सिद्ध की अवस्था है। जब तक बाहर का सहारा चाहिए, तब तक संसार है। इसलिए महावीर की धारणा में भक्ति की कोई गुंजाइश नहीं है। मगर जैन बड़े अदभुत लोग हैं। वे महावीर के सामने हाथ जोड़े खड़े हैं। वे उन्हीं की पूजा-प्रार्थना कर रहे हैं। जबकि महावीर कहते हैं, भक्ति का कोई उपाय नहीं है।
और महावीर से कोई सहारा नहीं मिल सकता। अगर सहारा चाहिए तो दूसरी जगह जाना पड़ेगा। कृष्ण के पास जाना पड़ेगा। कृष्ण कहते हैं, अर्जुन, छोड़ सब,

मेरी शरण में आ। वह अलग मार्ग है, अलग पद्धति है। महावीर कहते हैं, छोड़ मुझे, और अपने पैरों पर खड़ा हो।
महावीर कभी कृष्ण की बात नहीं कह सकते। और जैनों ने कृष्ण को अगर नरक में डाल रखा है तो उसका कारण है। इसलिए महावीर की दृष्टि बिल्कुल विपरीत है। महावीर कहेंगे यह बात ही उपद्रव की है कि कोई किसी की शरण जाए। यह तो खतरा है। यह तो इस आदमी की आत्मा का हनन है। अगर कहीं अर्जुन महावीर के पास गया होता तो वे कहते, तू भी किस के चक्कर में पड़ गया है! और कृष्ण कह रहे हैं, सर्वधर्मान परित्यज्य, मामेकं शरणंव्रज। सब धर्म-वर्म छोड़ मेरी शरण आ। महावीर कहते कि सब शरण छोड़, निज शरण बन। महावीर का शब्द है, अशरण बन। और जब तू अशरण बन जाएगा, तभी तू सिद्ध हो सकता है।
इसका अर्थ यह नहीं है कि कृष्ण के मार्ग से लोग नहीं पहुंच पाते। उस मार्ग से भी पहुंचते हैं। ज्यादा लोग उसी मार्ग से पहुंचते हैं। लेकिन महावीर का मार्ग अनूठा है। जिसमें साहस है, उनके लिए चुनौती है। जिनमें थोड़ी हिम्मत है, जिनमें थोड़ा पुरुषार्थ है, उनके लिए महावीर का मार्ग है। कृष्ण का मार्ग स्त्रैण है, स्त्री-चित्त के लिए है, समर्पण। महावीर
का मार्ग पौरुषेय है। पुरुष का है, संकल्प। लेकिन पुरुष बहुत कम हैं, स्त्रियां बहुत ज्यादा हैं। पुरुषों में भी स्त्री-चित्त ज्यादा हैं; क्योंकि आदमी इतना कमजोर और भयभीत है कि उसके मन की आकांक्षा है, कोई सहारा मिल जाए, कोई कह दे!
इसलिए तो इतने गुरु पैदा हो जाते हैं दुनिया में। कितने गुरु हैं? कोई उपाय नहीं है। ये गुरु हैं, ये आपकी खोज है किसी सहारे की। इसलिए एक गधे को भी खड़ा कर दो, शिष्य मिल जाएंगे। इसमें गधे की कोई खूबी नहीं है, ये आपके सहारे की खोज हैं। तो उसको भी शिष्य मिल जाएंगे। एक पत्थर को भी रख दो, उस पर भी सिंदूर लगा दो, थोड़ी देर बाद आप देखोगे, कोई आदमी फूल रख कर उसके सामने सिर झुका रहा है। सिर झुकाने की जरूरत है किसी को। यह पत्थर मूल्यवान नहीं है, यह पत्थर जरूरत की पूर्ति है।
महावीर का मार्ग निर्जन है, अकेले का है--एकाकी का। जिनमें साहस है, केवल उनके लिए है। जिनमें हिम्मत है अकेले होने की, उनके लिए है।
"आकाश का लक्षण है, अवकाश देना। काल का लक्षण है, वर्तना।"
समय--समय का अर्थ हैः चलना, वर्तन होना। समय पर कोई दोष मत दें कभी। लोग समय को दोष देते रहते हैं। लोग कहते हैं, समय बुरा है। जैसे आकाश जगह देता है आपको दिशाओं में, वैसे ही समय भी आपको जगह देता है भविष्य और अतीत की दिशा में। आइंस्टीन ने तो अभी सिद्ध किया कि समय भी आकाश का ही एक अंग है, वह भी एक दिशा है। चार दिशाएं आकाश की हैं। ये दो दिशाएं भी आकाश की हैं। फर्क इतना है कि इनमें आगे-पीछे की यात्रा है।
समय भी आपको अवकाश देता है। समय भी आपके ऊपर जोर नहीं डालता। लेकिन इधर मैं सुनता हूं, जैन भी कहते हुए सुने जाते हैं कि यह पंचम-काल है। इसमें कोई तीर्थंकर नहीं हो सकता। इसमें कोई सिद्ध नहीं हो सकता। इसमें कोई केवलज्ञान को उपलब्ध नहीं हो सकता। यह काल ही खराब है।
समय खराब नहीं होता, समय तो सिर्फ शुद्ध परिवर्तन है। आप समय पर बोझ डालते हैं और खुद निश्चिंत हो जाते हैं। आप निश्चिंत होना चाहते हैं तीर्थंकर होने की चिंता से। क्योंकि तीर्थंकर अगर हुआ जा सकता था, तो आपको भी बेचैनी होगी कि मैं क्यों नहीं हो रहा हूं। अगर कोई आदमी घोषणा कर दे कि वह तीर्थंकर है, तो आप सब मिल कर सिद्ध करने की कोशिश करेंगे कि नहीं तुम, तीर्थंकर नहीं हो सकते, यह काल ही तीर्थंकर होने का नहीं है। यह बात ही गलत है।
आप असल में किस बात से लड़ रहे हैं, आपको पता नहीं है। मन बड़ा चालाक है।
आप इस बात से लड़ रहे हैं कि अगर तीर्थंकर हुआ जा सकता है, तो फिर मैं तीर्थंकर क्यों नहीं हो सकता? वह अड़चन है।
नीत्से ने लिखा है कि अगर कहीं कोई ईश्वर है, तो फिर मुझे बड़ी अड़चन हो जाएगी कि फिर मैं ईश्वर क्यों नहीं हूं? इसलिए दो ही उपाय हैं: एक उपाय नीत्से का है। वह कहता है, ईश्वर है ही नहीं, और निश्चिंत हो जाता है। दूसरा उपाय महावीर का है। तर्क दोनों का एक है। महावीर ईश्वर होने की

कोशिश में लग जाते हैं, और ईश्वर हो जाते हैं। चिंता एक ही है। नीत्शे कहता है, इफ देयर इ.ज गॉड, देन हाउ आई कैन रिमेन विदाउट बीइंग ए गॉड। देअरफोर देअर इ.ज नो गॉड--अगर ईश्वर है, तो मैं ईश्वर हुए बिना कैसे रुक सकता हूं। इसलिए कोई ईश्वर नहीं है। महावीर भी कहते हैं कि अगर ईश्वर है तो मैं ईश्वर हुए बिना कैसे रुक सकता हूं, इसलिए ईश्वर होकर रहते हैं, ईश्वर हो जाते हैं।
तो एक चिंता पैदा होती है। हम कह देते हैं कि यह तो काल खराब है, कलयुग है, पंचम काल है, समय खराब है। खुद खराब होने के लिए सुविधा चाहते हैं, इसलिए कहते हैं, समय खराब है। सुविधा मिल जाती है। क्योंकि समय सुविधा देता है। आप खराब होना चाहते हैं, समय खराब होने की सुविधा देता है। आप महावीर होना चाहें, समय आपको वह भी सुविधा देता है। समय पर कोई पक्षपात नहीं है। समय जीवन प्रवाह की शुद्ध धारा है। ये सारे तत्व निष्पक्ष हैं। "और उपयोग अर्थात अनुभव जीव का लक्षण है। जीवात्मा ज्ञान से, दर्शन से, सुख से तथा दुख से पहचाना जाता है।"
अंतिम तत्व है, जीवात्मा। जैसे आकाश का लक्षण है--अवकाश, और काल का लक्षण--वर्तन, और धर्म का लक्षण--गति, और अधर्म का लक्षण--अगति, वैसे जीव का लक्षण--अनुभव।
जैसे-जैसे आपके अनुभव की क्षमता प्रगाढ़ होती है, वैसे-वैसे आप आत्मा बनने लगते हैं। जितनी आपके अनुभव की क्षमता कम होती है, उतने आप पदार्थ के करीब होते हैं और आत्मा से दूर होते हैं। और अंतिम अनुभव है, शुद्ध अनुभव, जब अनुभव करने को कुछ भी नहीं बचता, सिर्फ अनुभोक्ता रह जाता है, दि एक्सपीरियंसर। सब खो जाता है, सिर्फ शुद्ध ज्ञाता, अनुभोक्ता बचता है। वह अंतिम क्षमता है।
एक पत्थर में और आप में फर्क क्या है?
सुबह होगी, सूरज निकलेगा, पत्थर खिल नहीं जाएगा, और नहीं कहेगा कि कितनी सुंदर सुबह है। आप खिल सकते हैं। जरूरी नहीं कि आप खिलेंगे, सौ में से निन्यानबे आदमी भी नहीं खिलते। सूरज उगता रहे, उन्हें मतलब ही नहीं कब उगता है, कब डूबता है। फूल खिलते रहें, उन्हें मतलब नहीं, कब वसंत आती है, कब पतझड़। उन्हें कोई प्रयोजन नहीं है। वे भी अपने में बंद एक पत्थर की तरह जी रहे हैं।
चेतना का लक्षण है, अनुभव, सूरज सुबह उगता है, आपके भीतर भी कुछ उगता है। एक अनुभव प्रगाढ़ हो जाता है। आप जानते हैं, कुछ हो रहा है। फूल खिलता है, आपके भीतर भी कुछ खिलता है। पत्थर पड़ा रहता है, जैसे कुछ भी नहीं हुआ। सुख है, दुख है, ज्ञान है, बोध है--सब जीवन के लक्षण हैं। जिस मात्रा में बढ़ते चले जाएं, उतनी जीवन की गहराई बढ़ती चली जाती है। जीवन उस दिन परम गहराई पर होता है, जब हम पूरे जीवन का अनुभव उसके शुद्धतम रूप में कर लेते हैं। उसे ही महावीर सत्य कहते हैं। वह जीवन का परम अनुभव है। सुख, दुख प्राथमिक अनुभव हैं, आनंद परम अनुभव है। इसे हम आगे विस्तार से समझने की कोशिश करेंगे।

आज इतना ही।

महावीर-वाणी, भाग 2
ग्यारहवां प्रवचन

आत्मा का लक्षण है ज्ञान (लोकतत्व-सूत्रः 2)

नाणं च दंसणं चेव, चरित्तं च तवो तहा।
वीरियं उवओगो य, एयं जीवस्स लक्खणं।।
सद्दंधयार उज्जोओ, पहा छायातवे इ वा।।
वण्ण-रस-गंध-फासा, पुग्गलाण तु लक्खणं।।
जीवाजीवा य बन्धो य पुण्णं पावासवा तहा।
संवरो निज्जरा मोक्खो, सन्तेए तहिया नव।।
तहियाणं तु भावाणं,
सव्भावे उवस्सणं।
भावेणं सद्दहन्तस्स,
सम्मत्तं तं वियाहियं।।

ज्ञान, दर्शन, चारिष्य, तप, वीर्य और उपयोग अर्थात अनुभव--ये सब जीव के लक्षण हैं।
शब्द, अंधकार, प्रकाश, प्रभा, छाया, आतप (धूप), वर्ण, रस, गंध और स्पर्श--
ये सब पुदगल के लक्षण हैं।
जीव, अजीव, बंध, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा और मोक्ष--ये नौ सत्यतत्व हैं।
जीवादिक सत्य पदार्थों के अस्तित्व में सदगुरु के उपदेश से, अथवा स्वयं ही अपने भाव से श्रद्धान करना, सम्यकत्व कहा गया है।

चेतना का लक्षण है, उपयोग या अनुभव। अनुभव को थोड़ा समझ लेना जरूरी है। अस्तित्व तो पदार्थ का भी है। राह पर पड़े हुए पत्थर का भी अस्तित्व है, एक्झिस्टेंस है, लेकिन उस पत्थर को अपने अस्तित्व का कोई बोध नहीं है, कुछ पता नहीं है, कुछ पता नहीं कि "मैं हूं।" अनुभव नहीं है।
अस्तित्व के बोध का नाम "अनुभव" है--और वही चैतन्य में और अजीव में, आत्मा में और पदार्थ में भेद है। अस्तित्व दोनों का है--पदार्थ का भी और आत्मा का भी, लेकिन आत्मा के साथ एक नये तत्व का उदभावन है। एक नया आयाम खुलता है कि आत्मा को यह पता भी है कि "मैं हूं।"
होने में कोई फर्क नहीं है। पत्थर भी है, आत्मा भी है, पर आत्मा को यह
भी पता है कि "मैं हूं।" और यह बहुत बड़ी घटना है। इस घटना के इर्द-गिर्द ही जीवन की सारी साधना, जीवन की सारी यात्रा है। यह तो पता है कि "मैं हूं", और जिस दिन यह भी पता चल जाता है कि "मैं क्या हूं", उस दिन यात्रा पूरी हो जाती है।
पदार्थ है, उसे, पता नहीं है कि वह है। आत्मा है, उसे यह भी है, पता है
कि "मैं हूं" लेकिन यह पता नही है कि "मैं कौन हूं"। और परमात्मा उस अवस्था का नाम है, जहां तीसरी घटना भी घट जाती है, जहां यह भी पता है कि "मैं कौन हूं"।
तो अस्तित्व की तीन स्थितियां हुईंः एक कोरा अस्तित्व--बोधहीन; दूसरा भरा हुआ अस्तित्व--अनुभव से; और तीसरा परिपूर्ण विकसित अस्तित्व--जहां यह भी अनुभव हो गया कि मैं कौन हूं, मैं क्या हूं।
और ऐसा नहीं कि ये अवस्थाएं पत्थर की, आदमी की और परमात्मा की हैं, आप
इन तीनों अवस्थाओं में भी बराबर रूपांतरित रहते हैं। किसी क्षण में आप पत्थर की तरह होते हैं, जहां आप होते हैं और आपको अपने होने का पता नहीं होता। किसी क्षण में आप आदमी की तरह होते हैं, जहां आपको अपने होने का भी बोध है। और किसी क्षण में आप परमात्मा को भी छू लेते हैं, जहां आपको यह भी पता होता है कि "हम कौन हैं।"
तो ये तीन पदार्थ--अस्तित्व की ही अवस्थाएं नहीं हैं--चेतना, इन तीनों में निरंतर डोलती रहती है। किसी-किसी क्षण में आप बिल्कुल परमात्मा के

करीब होते हैं। कुछ क्षणों में आप मनुष्य होते हैं। बहुत अधिक क्षणों में आप पत्थर ही होते हैं।
मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन अपने बाल बनवाने एक नाई की दूकान
पर गया है। दाढ़ी पर साबुन लगा दी गई है, गले में कपड़ा बांध दिया गया है--और नाई बिल्कुल तैयार ही है काम शुरू करने को कि एक लड़का भागा हुआ आया और उसने कहाः शेख, तुम्हारे घर में आग लगी है। नसरुद्दीन ने कपड़ा फेंका, भूल गया अपना कोट उठाना भी, चेहरे पर लगी हुई साबुन, और उस लड़के के पीछे भागा घबड़ा कर। लेकिन पचास कदम के बाद अचानक ठहर गया, और कहा कि मैं भी कैसा पागल हूं! क्योंकि पहले तो मेरा नाम शेख नहीं, मेरा नाम मुल्ला नसरुद्दीन है; और दूसरा, मेरा कोई मकान नहीं जिसमें आग लग जाए!
ऐसे क्षण आपके जीवन में भी हैं। आपको भी न तो अपने नाम का पता है और न अपने घर का पता है। न तो आपको पता है कि आप कौन हैं और न आपको पता है कि आप कहां से आते हैं और कहां जाते हैं। न आप अपने मूलस्रोत से परिचित हैं और न अपने अंतिम पड़ाव से और नाम जो आप जानते हैं कि आपका है, वह बिल्कुल कामचलाऊ है, दिया हुआ है। राम की जगह कृष्ण भी दिया जाता, तो भी चल जाता काम। कृष्ण की जगह मोहम्मद दिया जाता, तो भी चल जाता काम। नाम दिया हुआ है, नाम कोई अस्तित्व नहीं है। लेकिन इस झूठे नाम को हम मान कर जी लेते हैं कि मैं हूं। और एक घर बना लेते हैं, जो कि घर नहीं है। क्योंकि जो छूट जाए, उसे घर कहना व्यर्थ है। और जिसे बनाना पड़े, वह मिटेगा भी। उस घर की तलाश ही धर्म की खोज है, जो हमारा बनाया हुआ नहीं है और जो मिटेगा भी नहीं। और जब तक हम उस घर में प्रविष्ट न हो जाएं--जिसे महावीर "मोक्ष" कहते हैं; जिसे शंकर "ब्रह्म" कहते हैं; जिसे जीसस ने "किंगडम ऑफ गॉड" कहा है--जब तक उस घर में हम प्रविष्ट न हो जाएं तब तक जीवन एक बेचैनी और एक दुख की एक यात्रा रहेगी। महावीर जीव का पहला लक्षण कहते हैं, अनुभव--यह बोध कि "मैं हूं"। लेकिन
यह पहला लक्षण है, यह यात्रा की शुरुआत है। यह भी अनुभव में आ जाए कि "मैं कौन हूं?" तो यात्रा पूरी हो गई; वह यात्रा का अंत है।
"ज्ञान, दर्शन, चारित्रय, तप, वीर्य और उपयोग--ये सब जीव के लक्षण हैं।" थोड़ा-थोड़ा इन लक्षणों के संबंध में समझ लें, क्योंकि आगे हम विस्तार
से इनकी बात कर पाएंगे।
ज्ञान से महावीर का अर्थ है, जानने की क्षमता--सामग्री नहीं, क्षमता; इनफर्मेशन नहीं, सूचनाओं का संग्रह नहीं, क्योंकि सूचनाओं का संग्रह तो यंत्र भी कर सकता है। आप के मस्तिष्क में जो-जो सूचनाएं इकट्ठी हैं, वे तो टेप-रिकॉर्डर पर भी इकट्ठी की जा सकती हैं। और वैज्ञानिक कहते हैं, आपका मस्तिष्क टेपरिकार्ड से कुछ भिन्न नहीं है! इसलिए आपके मस्तिष्क को अगर चोट पहुंचाई जाए, तो आपकी स्मृति खो जाएगी। आपके मस्तिष्क से कुछ स्मृतियां बाहर भी निकाली जा सकती हैं, जिनका आपको फिर कभी भी पता नहीं चलेगा। और आपके मस्तिष्क में ऐसी स्मृतियां भी डाली जा सकती हैं, जिनका आपको कभी कोई अनुभव नहीं हुआ।
नवीनतम खोजें कहती हैं कि मेमोरी ट्रांसप्लांट भी की जा सकती है। आइंस्टीन मरता है तो आइंस्टीन के साथ उसकी स्मृतियों का पूरा का पूरा संग्रह भी नष्ट हो जाता है। यह बड़ा भारी नुकसान है। अब विज्ञान कहता है कि दस-बीस वर्ष के भीतर हम इस जगह पहुंच जाएंगे--प्राथमिक प्रयोग सफल हुए हैं--जहां मरते हुए आइंस्टीन को तो मरने देंगे, लेकिन उसकी स्मृति को बचा लेंगे; उसके मस्तिष्क में जो उसकी स्मृतियों का तानाबाना है, उसे बचा लेंगे और एक नवजात बच्चे के ऊपर ट्रांसप्लांट कर देंगे। एक नये बच्चे को उन स्मृतियों के साथ जोड़ देंगे। वह बच्चा स्मृतियों के साथ ही बड़ा होगा। और जो उसने कभी नहीं जाना, वह भी उसे लगेगा कि मैं जानता हूं। अगर आइंस्टीन की पत्नी सामने आ जाए तो वह कहेगा, यह मेरी पत्नी है; जिसे उसने कभी देखा भी नहीं। क्योंकि अब स्मृति आइंस्टीन की काम करेगी।
छोटे प्रयोग इसमें सफल हो गए हैं, पशुओं पर प्रयोग सफल हो गए हैं। इसलिए आदमी पर प्रयोग बहुत दूर नहीं हैं। यह जान कर आपको हैरानी होगी कि महावीर पहले व्यक्ति हैं मनुष्य जाति के इतिहास में जिन्होंने स्मृति को पदार्थ कहा, जिन्होंने स्मृति को चेतना नहीं कहा; जिन्होंने कहा, स्मृति

भी सूक्ष्म पदार्थ है। आपके मस्तिष्क को खास जगह अगर इलेक्ट्रिकली स्टिम्युलेट किया जाए, विद्युत से उत्तेजित किया जाए, तो खास स्मृतियां पैदा होनी शुरू हो जाती हैं। जैसे आपके मस्तिष्क में बचपन की स्मृतियां किसी कोने में पड़ी हैं, उनको विद्युत से जगाया जाए, तो आप तत्काल बचपन में वापस चले जाएंगे और सारी स्मृतियां सजीव हो उठेंगी। उत्तेजन बंद कर दिया जाए, स्मृति बंद हो जाएगी। फिर से उत्तेजित किया जाए, फिर से वही स्मृति वापस लौटेगी, फिर से वही कथा वापस होगी। जैसे टेप-रिकॉर्डर पर आप एक ही बात को कितनी ही बार सुन सकते हैं, हजार बार उसी जगह को उत्तेजित करने पर वही स्मृति फिर लौटने लगेगी।
मस्तिष्क शरीर का हिस्सा है, इसलिए स्मृति भी शरीर की ही प्रक्रिया है--आणविक पदार्थ।
ज्ञान का अर्थ स्मृति नहीं है। ज्ञान का अर्थ, स्मृति को भी जानने वाला जो तत्व है भीतर, उससे है। इसे ठीक से समझ लें, अन्यथा भूल होनी आसान है। आप जो जानते हैं, उससे ज्ञान का संबंध नहीं है। अगर आप अपने जानने को भी जानने में समर्थ हो जाएं, तो ज्ञान का संबंध शुरू होगा।
आपके मन में एक विचार चल रहा है। आप चाहें तो दूर खड़े होकर इस विचार को चलते हुए भी देख सकते हैं। अगर यह संभव न होता, तो ध्यान का कोई उपाय भी न था। ध्यान इसीलिए संभव है कि आप अपने विचार को भी देख सकते हैं। और जिसको आप देख रहे हैं, वह पराया हो गया, वह देखने वाला आप हो गए।
तो महावीर का ज्ञान से अर्थ है--जानने की क्षमता; संग्रह नहीं जानने का, ज्ञान का संग्रह नहीं--ज्ञान की प्रक्रिया के पीछे साक्षी का भाव। वहीं चेतना का पता चलेगा। अन्यथा अगर स्मृति ही मनुष्य की चेतना हो, तो बहुत जल्दी मनुष्य को पैदा किया जा सकेगा। कोई कठिनाई नहीं है। स्मृति तो पैदा की जा सकती है। कंप्यूटर हैं, उनकी स्मृति आदमी से ज्यादा प्रगाढ़ है। और आदमी से भूल भी हो जाए, कंप्यूटर से भूल होने की भी कोई संभावना नहीं है।
आज नहीं कल, हम मनुष्य से भी बेहतर मस्तिष्क विकसित कर लेंगे। कर ही लिया है। लेकिन, फिर भी एक कमी रह जाएगी, इस बात की कोई संभावना नहीं है कि कंप्यूटर ध्यान कर सके। कंप्यूटर विचार कर सकता है--और आप से अच्छा विचार कर सकता है, नवीनतम कंप्यूटर उस जगह पहुंच गए हैं। मैं एक आंकड़ा पढ़ रहा था कि अगर दुनिया के सारे बड़े गणितज्ञ--समझ लें दस हजार गणितज्ञ--एक सवाल को हल करने में लगें, तो जिस सवाल को दस हजार गणितज्ञ दस हजार वर्ष में हल कर पाएंगे, उसे कंप्यूटर एक सेकेंड में हल कर दे सकता है।
स्मृति की क्षमता तो बहुत विकसित हो गई है यंत्र के पास। आदमी की स्मृति का यंत्र तो आउट ऑफ डेट है। उसका कोई बहुत मूल्य नहीं रह गया। लेकिन, इतना सब करने के बाद भी, दस हजार आइंस्टीन का काम, दस हजार वर्ष में जो हो पाता, वह कंप्यूटर एक सेकेंड में कर देगा, लेकिन एक महावीर का काम जरा भी नहीं कर सकता। क्योंकि महावीर का काम स्मृति से संबंधित नहीं, स्मृति के पीछे जो साक्षी है, वह जो विटनेस है, जो स्मृति को भी देखता है, उससे संबंधित है। कंप्यूटर साक्षी नहीं हो सकता। वह अपने को बांट नहीं सकता, कि खुद खड़े होकर देख सके भीतर कि क्या चल रहा है। हम बांट सकते हैं। वह जो बांटने की कला है, उससे ही ज्ञान का जन्म होता है।
तो महावीर कहते हैं, आत्मा का लक्षण है--ज्ञान, दर्शन। जो पहली झलक है स्वयं की, उसका नाम ज्ञान है। और जब हम उस झलक को सारे जगत और अस्तित्व के साथ संयुक्त करके देखने में समर्थ हो जाते हैं, गेस्टाल्ट पैदा हो जाता है, अपनी झलक के साथ जब सारे जगत की झलक का भी हमें बोध हो जाता है।
ध्यान रहे, जो भी मैं अपने संबंध में जानता हूं, उससे ज्यादा मैं किसी
के संबंध में नहीं जान सकता। मेरा ज्ञान ही, अपने संबंध में फैल कर जगत के संबंध में ज्ञान बनता है। अगर आप कहते हैं कि कहीं कोई परमात्मा नहीं है, तो उसका अर्थ यही हुआ कि आपको अपनी आत्मा का कोई अनुभव नहीं है। अगर आपको अपनी आत्मा का अनुभव हो, तो पहला ज्ञान तो यही होगा कि आत्मा है। दर्शन यह होगा कि सभी तरफ आत्मा है। जिस क्षण अपने भीतर जाने हुए तत्व को आप फैला कर काज्मिक, जागतिक कर लेंगे, उस क्षण दर्शन की स्थिति निर्मित हो जाएगी।

किसी पशु के पास दर्शन नहीं है, क्योंकि ज्ञान भी नहीं है। पशु अपने
से पीछे खड़ा नहीं हो सकता। स्मृति तो पशु के पास है। आप का कुत्ता आपको पहचानता है। आपकी गाय आपको पहचानती है। स्मृति तो पशु के पास है, वृक्षों के पास भी स्मृति है!
अभी वैज्ञानिक प्रयोग करते हैं कि अगर आप वृक्ष के पास रोज प्रीतिपूर्ण ढंग से जाएं, तो वृक्ष का रिस्पांस, उसका उत्तर भिन्न होता है। अगर आप क्रोध से जाएं, घृणा से जाएं, तो भिन्न होता है। जब आप प्रेम से वृक्ष के पास खड़े होते हैं, तो वृक्ष खुलता है। अब इसके वैज्ञानिक प्रमाण उपलब्ध हैं और जब प्रेम से कोई वृक्ष को थपथपाता है, तो वृक्ष भीतर संवेदित होता है। वृक्ष भी अपने मित्र को और अपने शत्रु को पहचानता है। शत्रु करीब आता है तो वृक्ष सिकुड़ता है, जैसे आप सिकुड़ जाएंगे। कोई छुरा लेकर आपके पास आए तो आप भीतर सिकुड़ जाएंगे बचने की आकांक्षा में। वृक्ष भी सिकुड़ता है। और जब कोई मित्र करीब आता है तो वृक्ष भी फैलता है।
अब जाना गया है कि वृक्ष के पास भी स्मृति है। लेकिन, ध्यान सिर्फ मनुष्य के पास है। और इसलिए जब तक कोई ध्यान को उपलब्ध न हो जाए, तब तक मनुष्य होने की पूरी गरिमा को उपलब्ध नहीं होता। सिर्फ मनुष्य के शरीर में जन्म ले लेने से कोई मनुष्य नहीं हो जाता। सिर्फ संभावना है कि मनुष्य हो सकता है। द्वार खुला है, लेकिन यात्रा करनी पड़ेगी। मनुष्य कोई जन्म के साथ पैदा नहीं होता। मनुष्यता एक उपलब्धि है, एक अर्जन है। और इस अर्जन की जो दिशा है, वह ज्ञान और दर्शन है।
महावीर के इस सूत्र को ठीक से समझें।
ज्ञान का अर्थ है, पहली बार उसकी झलक पाना जो सबसे गहराई में मेरे भीतर साक्षी की तरह छिपा है। फिर उस झलक को जागतिक संबंध में जोड़ना और जो भीतर देखा है उसे बाहर देख लेना दर्शन है। और फिर जो भीतर देखा है, उसे जीवन में उतर जाने देना, चारिष्य है। वह जो भीतर देखा है और बाहर पहचाना है, वह जीवन भी बन जाए, सिर्फ बौद्धिक झलक न रहे। क्योंकि आप कह सकते हैं कि मैं आत्मा हूं, ऐसी मुझे झलक मिल गई है, लेकिन आपका आचरण कहेगा कि आप शरीर हैं, आपका व्यवहार कहेगा कि आप शरीर हैं; आपका ढंग, उठना, बैठना कहेगा कि आप शरीर हैं; आपकी आंखें, आपकी नाक, आपकी इंद्रियां खबर देंगी कि आप शरीर हैं। तो आपकी सिर्फ बौद्धिक झलक से कुछ भी न होगा। यह आपका आचरण हो जाए--हो ही जाएगा, अगर आपका ज्ञान वास्तविक हो, और ज्ञान दर्शन बने, तो आचरण अनिवार्य है। उसे महावीर "चारिष्य" कहते हैं।
किसी पशु के पास चरित्र नहीं है--हो नहीं सकता, क्योंकि ज्ञान के बिना दर्शन नहीं, दर्शन के बिना चरित्र नहीं।
मनुष्य की क्षमता है कि वह जैसा देखे, वैसा ही जी भी सके। और ध्यान रहे, इस जीने में चेष्टा नहीं करनी पड़ती। यह जरा जटिल है। जैन साधुओं ने पूरी स्थिति को उलटा कर दिया है, पहले चरित्र। महावीर पहले चरित्र का उपयोग नहीं करते, महावीर कहते हैं--ज्ञान, दर्शन, चरित्र। जैन साधु से पूछें, वह कहता है चरित्र पहले। जब चरित्र पहले होगा--ज्ञान के पहले होगा, दर्शन के पहले होगा, तो झूठा और पाखंडी होगा। क्योंकि जो मैंने जाना नहीं है, उसे मैं जी कैसे सकता हूं? जो मैंने देखा नहीं है, वह वस्तुतः मेरा आचरण कैसे बन सकता है? थोप सकता हूं, जबरदस्ती कर सकता हूं अपने साथ। आदमी हिंसा करने में कुशल है--दूसरों के साथ भी, अपने साथ भी। आप चाहें
तो आप अहिंसक हो सकते हैं, मगर वह अहिंसा झूठी होगी और भीतर हिंसा उबलती होगी। आप चाहें तो आप ब्रह्मचर्य को उपलब्ध हो सकते हैं, वह थोथा होगा, भीतर कामवासना भरी होगी।
लेकिन महावीर जिस ढंग से चल रहे हैं, वह बिल्कुल वैज्ञानिक है बात। पहली झलक ज्ञान--अपने होने की--फिर दर्शन। अपने होने और दूसरों के होने के बीच का पूरा तारतम्य ख्याल में आ जाए, क्योंकि मैं तभी अहिंसक हो सकता हूं, अगर मुझे पता चले कि मैं तो आत्मा हूं और पता चले कि आप आत्मा नहीं हैं, तो अहिंसक होने की कोई जरूरत नहीं है। जिस दिन मुझे लगता है कि जैसा मेरे भीतर है, वैसा ही आपके भीतर भी है, जिस दिन मेरा भीतर और आपका भीतर एक होने लगते हैं, जिस दिन मैं आपमें अपने को ही देख पाता हूं और मुझे लगता है कि आप

को पहुंचाई गई चोट खुद को ही पहुंचाई गई चोट होगी, उस दिन अहिंसा का जन्म हो सकता है।
महावीर चींटी पर भी पैर रखने में हिचकिचाते हैं, सम्हल कर चलते हैं, इसलिए नहीं कि चींटी को दुख हो जाएगा, चींटी का दुख महावीर का अपना ही दुख होगा। कोई चींटी की फिकर नहीं कर सकता इस जगत में, सब अपनी ही फिकर करते हैं। लेकिन जिस दिन अपना इतना फैलाव हो जाता है कि चींटी भी उसमें समाहित हो जाती है--इसे "दर्शन" कहेंगे। महावीर को लगा कि जो मैं हूं, वही सब और सबके भीतर है। यह प्रतीति जब प्रगाढ़ हो जाती है, तब आचरण में उतरनी शुरू हो जाती है। उतरेगी ही।
तो ध्यान रहे, जब आचरण को जबरदस्ती लाना पड़ता है, तब आप व्यर्थ की चेष्टा में लगे हैं। तब ज्यादा से ज्यादा हिपोक्रेट, एक पाखंडी आदमी पैदा हो जाएगा जो बाहर कुछ होगा भीतर कुछ होगा--ठीक उलटा होगा, और बड़ी बेचैनी में होगा; क्योंकि उसके जीवन की व्यवस्था सहज नहीं हो सकती; उसके भीतर से कुछ बह नहीं रहा है; अहिंसा भीतर से नहीं आ रही है, ऊपर से थोपी जा रही है। तो एक बड़े मजे की घटना घटेगी, एक तरफ अहिंसा थोप लेगा तो हिंसा दूसरी तरफ से शुरू हो जाएगी। क्योंकि हिंसा भीतर है तो उसे बहाव चाहिए। किसी झरने को हम रोक दें पत्थर से, तो झरना दूसरी तरफ से फूटना शुरू हो जाएगा। बहुत पत्थर लगा देंगे तो झरना रिस-रिस कर बूंद-बूंद बहुत जगह से फूटने लगेगा। झरना नहीं रह जाएगा, बूंद-बूंद झरने लगेगा।
जो लोग आचरण को ऊपर से थोप लेते हैं, उनका दुराचरण बूंद-बूंद होकर झरने लगता है। और ऐसे ढंग से झरता है कि वे खुद भी नहीं पहचान पाते। मवाद हो जाती है भीतर, सब सड़ जाता है, सिर्फ ऊपर शुभ्र आवरण होता है।
महावीर चारिष्य उसे कहते हैं, जो ज्ञान और दर्शन के बाद घटता है। उसके पहले घट नहीं सकता। मनुष्य को बदलना हो तो वह क्या करता है, उसे बदलने से शुरू नहीं किया जा सकता। वह क्या है, उसकी ही बदलाहट से ज्ञान बदलता है तो कर्म अनिवार्यरूपेण बदल जाता है। वह उसकी छाया है।
तो महावीर कहते हैंः "ज्ञान, दर्शन, चारित्रय, तप, वीर्य और अनुभव--ये जीव के लक्षण हैं।"
"तप" भी महावीर का समझने जैसा शब्द है। हम आमतौर से तप का अर्थ समझते हैं--अपने को सताना; तपाना। इससे बड़ी कोई भ्रांति नहीं हो सकती, भ्रान्ति पुरानी है, लेकिन परंपरागत है। और जैन साधु निरंतर अपने को सताने और तपाने में गौरव अनुभव करते हैं। लेकिन तप एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है-- अल्केमिकल।
मनुष्य की जीवन-ऊर्जा एक तरह की अग्नि है। और अगर हम ठीक से समझें तो जिन लोगों ने भी जीवन को समझने की कोशिश की है, वे मानते हैं कि जीवन एक प्रगाढ़ अग्नि का नाम है। हेराक्लतु ने यूनान में यही बात कही--करीब-करीब महावीर के समय में--कि अग्नि जीवन का मौलिक तत्व है। और अब विज्ञान कहता है कि "विद्युत" जीवन का मौलिक तत्व है। लेकिन "विद्युत" अग्नि का ही एक रूप है, या "अग्नि" विद्युत का एक रूप है।
आपके शरीर में प्रतिपल अग्नि पैदा हो रही है। आप एक दीया हैं। जैसे दीया जलता है, वैसे ही आपका जीवन जलता है। और ठीक वैज्ञानिक हिसाब से भी जो कुछ दीये में घटता है, वही आप में घटता है।
दीया जल रहा है, वह क्या कर रहा है? आस-पास जो आक्सीजन है, प्राणवायु है, उसको अवशोषित कर रहा है। वह प्राणवायु ही दीये में जल रही है। इसलिए कभी ऐसा हो सकता है कि तूफान आ रहा हो और आप सोचें कि दीया बुझ न जाए, तो उसे बर्तन से ढंक दें। हो सकता था तूफान दीये को न बुझा पाता, लेकिन आपका बर्तन दीये को बुझा देगा। क्योंकि बर्तन के भीतर की आक्सीजन थोड़ी ही देर में समाप्त हो जाएगी। और जैसे ही आक्सीजन समाप्त हुई कि दीया बुझ जाएगा। आक्सीजन के बिना अग्नि नहीं हो सकती। आप भी यही कर रहे हैं। श्वास लेकर, जीवन के दीये को आक्सीजन दे रहे हैं। आपकी श्वास बंद हुई कि आप भी बुझ जाएंगे। तो वैज्ञानिक तो कहते हैं कि जीवन आक्सीडाइजेशन है। विज्ञान की भाषा में ठीक कहते हैं। सारा जीवन आक्सीजन पर निर्भर है। आप आक्सीजन को जला रहे हैं। और जब जल जाती है आक्सीजन, तो कार्बन-डाइआक्साइड को बाहर

फेंक रहे हैं। एक क्षण को भी हवा से आक्सीजन तिरोहित हो जाए, जीवन पृथ्वी से तिरोहित हो जाएगा।
आक्सीजन जब भीतर जलती है, तो जीवन की ज्योति पैदा होती है।
यह जो जीवन की ज्योति है, इसके दो उपयोग हो सकते हैं। एक उपयोग है, कामवासना में इस जीवन की ज्योति को बाहर निष्कासित करना।
और ध्यान रहे, जीवन जब भर जाता है भीतर, अगर आप उसका कोई भी उपयोग न करें तो बोझिल हो जाएंगे, परेशान हो जाएंगे। प्रवाह रुक जाए तो बेचैनी हो जाएगी।
कामवासना का इसीलिए इतना आकर्षण है। क्योंकि कामवासना जीवन की बढ़ी हुई शक्ति को फेंकने का उपाय है। आप फिर खाली हो जाते हैं, फिर श्वास लेकर जीवन को भरने लगते हैं। फिर जीवन इकट्ठा हो जाता है। फिर आप खाली हो जाते हैं।
"तप" ठीक इसी से संबंधित दूसरी प्रक्रिया है। वह जो जीवन की अधिक ऊर्जा भीतर इकट्ठी होती है, उस ऊर्जा को काम वासना में न बहने देने का नाम "तप" है। उस गर्मी को, उस अग्नि को बाहर न जाने देना और भीतर की तरफ ऊर्ध्वगामी करने का नाम तप है। वह जो जीवन की ज्योति है, वह भीतर की तरफ बहने लगे--बाहर की तरफ नहीं, दूसरे की तरफ नहीं।
कामवासना का अर्थ हैः दूसरे की तरफ, साधना का अर्थ हैः अपनी ही तरफ। अंतर्यात्रा पर जीवन ऊर्जा बहने लगे, वह जो अग्नि जीवन की पैदा हो रही है, वह बाहर न जाए, बल्कि भीतर उसकी यात्रा शुरू हो जाए। अग्नि की अंतर्यात्रा का नाम तप है। उसके वैज्ञानिक उपाय हैं कि वह कैसे भीतर बहना शुरू हो सकती है।
ध्यान रहे, जो चीज भी बाहर बह सकती है, वह भीतर भी बह सकती है। जो चीज
भी बह सकती है, उसकी दिशा बदली जा सकती है। अगर बहाव है पूरब की तरफ, तो पश्चिम की तरफ भी हो सकता है। प्रक्रिया का पता होना चाहिए कि वह पश्चिम की तरफ कैसे हो जाए। हमारी सारी जीवनऊर्जा बाहर बह रही है।
मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन मरने के करीब था। उसकी पत्नी ने कहा
कि नसरुद्दीन, अगर तुम पहले मर जाओ तो मरने के बाद संपर्क साधने की कोशिश करना। मैं जानना चाहती हूं कि ये हिंदू जो कहते हैं कि आत्मा फिर से जन्म लेती है, यह सच है या नहीं? अगर मैं मरूं तुमसे पहले तो मैं कोशिश करूंगी तुमसे संपर्क साधने की।
नसरुद्दीन मरा पहले। साल भर तक उसकी विधवा पत्नी राह देखती रही। कुछ हुआ नहीं। कोई खबर न मिली। फिर धीरे-धीरे बात ही भूल गई। एक दिन अचानक सांझ को चाय बनाती थी चौके में और नसरुद्दीन की आवाज आई--फातिमा! घबड़ा गई। आवाज वैसी ही थी जैसे नसरुद्दीन रोज सांझ को जब जीवित था और बाजार से, दुकान से वापस लौटता था और--नसरुद्दीन ने कहाः घबड़ा मत, वायदे के अनुसार तुझे खबर करने आया हूं। मेरा जन्म हो गया है। और दूसरे खेत में देख, एक खूबसूरत गाय खड़ी है। सफेद काला रंग है।
पत्नी को थोड़ी हैरानी हुई कि गाय की चर्चा उठाने की क्या जरूरत है? पर उसने बात टाली। उसने कहाः कुछ और अपने संबंध में कहो--प्रसन्न तो हो, आनंदित तो हो? नसरुद्दीन ने कहाः बहुत आनंदित हूं, थोड़ा मुझे गाय के संबंध में और बताने दे। बड़ी प्यारी और आकर्षक गाय है, उसकी चमड़ी बड़ी चिकनी और कोमल है। पत्नी ने कहा कि छोड़ो भी गाय की बकवास, गाय से क्या लेना-देना है। मैं तुम्हारे संबंध में जानने को आतुर हूं, और तुम एक मूर्ख गाय के संबंध में कहे चले जा रहे हो। नसरुद्दीन ने कहाः क्षमा कर, इट सीम्स आई फारगेट टु टैल यू दैट नाउ आई एम ए बुल इन पंजाब--मैं भूल गया बताना कि मैं एक बैल हो गया हूं, सांड हो गया हूं पंजाब में।" सांड की उत्सुकता गाय में ही हो सकती है।
जीवन कामवासना है, जैसा जीवन हम जानते हैं। पुरुष उत्सुक है स्त्री में, स्त्री उत्सुक है पुरुष में। तप का अर्थ हैः यह उत्सुकता अपने में आ जाए, दूसरे से हट जाए। जब तक यह उत्सुकता दूसरे में है--महावीर कहते हैं-- संसार है। जिस दिन यह सारी उत्सुकता अपने में लौट कर वर्तुल बन जाती है, तप शुरू हुआ। तप कहना उचित है, क्योंकि अति कठिन है यह बात--दूसरे से उत्सुकता

अपने में ले आना। होनी तो नहीं चाहिए, कठिन होनी तो नहीं चाहिए क्योंकि दूसरे में भी हम उत्सुक अपने लिए ही होते हैं। गहरे में तो उत्सुकता अपने ही लिए है। दूसरे के द्वारा घूमकर, अपने में लौटते हैं।
उपनिषद कहते हैं कोई पति, पत्नी को प्रेम नहीं करता, पत्नी के द्वारा अपने को ही प्रेम करता है। कोई मां बेटे को प्रेम नहीं करती, बेटे के द्वारा अपने को ही प्रेम करती है। प्रेम तो हम अपने को ही करते हैं, लेकिन हमारा प्रेम वाया--किसी से होकर आता है। जब हमारा प्रेम किसी से होकर आता है, तो उसका नाम अब्रह्मचर्य है। और जब हमारा प्रेम किसी से होकर नहीं आता है, सीधा अपने में ठहर जाता है--तपश्चर्या है, ब्रह्मचर्य है।
तप शब्द चुनना जरूरी था, क्योंकि जब कोई व्यक्ति अपनी ऊर्जा को बाहर जाने से रोकता है, तो उत्तप्त होता है; सारा जीवन एक नई अग्नि से भर जाता है। वह अग्नि बड़े अदभुत काम करती है, जीवन की पूरी कीमिया को बदल देती है। जीवन का एक-एक कोष्ठ उस अग्नि के प्रवाह में बदल जाता है। अलकेमिस्ट कहते हैं कि लोहा सोना हो जाता है, अगर अग्नि पास हो। तप उसी अग्नि का नाम है, जिसमें आपकी साधारण धातु लोहा स्वर्ण बन जाएगी। जो कचरा है वह जल जाएगा। उपनिषदों ने नचिकेत--अग्नि की बात कही है। वह इसी अग्नि की चर्चा है। कठोपनिषद में नचिकेता पूछता है यम से कि किस भांति उस परम तत्व को पाया जा सकता है, जो मृत्यु के पार है। तो नचिकेता को यम ने कहा है कि तीन तरह की अग्नियों से गुजरना जरूरी है, और चूंकि तू पहला पूछने वाला है, इसलिए वे अग्नियां तेरे ही नाम से पहचानी जाएंगी; नचिकेत--अग्नि कही जाएंगी। वे तीन अग्नियां--महावीर उन्हीं तीन अग्नियों की प्रक्रिया को तप कहते हैं। दूसरे से अपने पर लौटना पहली अग्नि है। दूसरे से अपने पर लौटना, दूसरे
को खोना, छोड़ना--पहली अग्नि है। दूसरी अग्नि में स्वयं को भी छोड़ना है। पहली अग्नि में दूसरा जल जाएगा, सिर्फ मैं बचूंगा। लेकिन मैं का कोई उपयोग नहीं है, जब तू खो जाए। वह तू का ही संदर्भ है, उसका ही अटका हुआ हिस्सा है। दूसरी अग्नि में मुझे भी जल जाना है; मैं भी न बचूं, शून्य रह जाए। और तीसरी अग्नि में शून्य का भाव भी न रह जाए; इतनी शून्यता हो जाए कि यह भी भाव न रहे कि अब मैं शून्य हो गया, कि अब मैं निर-अहंकारी हो गया।
इन तीन अग्नियों का नाम तप है। और इस तप से जो गुजरता है वह उस परम अवस्था को उपलब्ध हो जाता है, जिसे महावीर ने "मुक्ति" कहा है; परम स्वतंत्रता, "मोक्ष" कहा है।
"वीर्य और उपयोग--ये सब जीव के लक्षण हैं।"
वीर्य का अर्थ हैः पुरुषार्थ। और वीर्य का अर्थ काम-ऊर्जा भी है। काम-ऊर्जा के संबंध में एक बात ख्याल में ले लें कि काम-ऊर्जा के दो हिस्से हैं। एक तो शारीरिक हिस्सा है, जिसे हम वीर्य कहते हैं। महावीर उसे वीर्य नहीं कह रहे। एक उस शारीरिक हिस्से वीर्य के साथ, सीमेन के साथ जुड़ा हुआ आंतरिक हिस्सा है, जैसे शरीर और आत्मा है, वैसे ही प्रत्येक वीर्यकण भी शरीर और आत्मा है। इसीलिए तो वीर्यकण जाकर नये बच्चे का जन्म हो जाता है। प्रत्येक वीर्यकण दो हिस्से लिए हुए हैं। एक तो उसकी खोल है, जो शरीर का हिस्सा है। और दूसरा उसके भीतर छिपा हुआ जीव है, वह उसकी आत्मा है।
इस भीतर छिपे हुए जीव के दो उपयोग हो सकते हैंः एक उपयोग है नये शरीर
को जन्म देना, और एक उपयोग है कि यह वीर्य की खोल तो पड़ी रह जाए और भीतर की जीवन-धारा है, वह ऊर्ध्वमुखी हो जाए स्वयं के भीतर। तो स्वयं का नया जन्म हो जाता है, स्वयं का नया जीवन हो जाता है।
मनुष्य दो तरह के जन्म दे सकता हैः एक तो बच्चों को जन्म दे सकता है,
जो उसके शरीर की ही यात्रा है; और एक अपने को जन्म दे सकता है, जो उसकी आत्मा की यात्रा है। अपने को जन्म देना हो तो वीर्य में छिपी हुई ऊर्जा जो उसको मुक्त करना है, देह से और ऊर्ध्वमुखी करना है।
महावीर ने, उसके बड़े अदभुत सूत्र खोजे हैं, कैसे वह वीर्य-ऊर्जा मुक्त
हो सकती है; खोल पड़ी रह जाएगी शरीर में, उसके भीतर छिपी हुई शक्ति अन्तर्मुखी हो जाएगी। इसलिए जोर इस बात पर नहीं है कि कोई वीर्य का संग्रह करे, जोर इस बात पर है कि वीर्य से शक्ति को मुक्त करे।

महावीर उसमें सफल हो पाए, इसलिए हमने उन्हें "महावीर" कहा। उनका नाम इसी कारण "महावीर" पड़ा। नाम तो वर्धमान था उनका, लेकिन जब वे वीर्य की ऊर्जा को मुक्त करने में सफल हो गए, तो यह इतने बड़े संघर्ष और इतनी बड़ी विजय की बात थी कि हमने उन्हें "महावीर" कहा। वर्धमान नाम को तो लोग धीरे- धीरे भूल ही गए, महावीर ही नाम रह गया।
महावीर ने कहा है कि मनुष्य के जीवन में सबसे बड़ा विजय का क्षण उस समय होता है, जब वह अपने जीवन को ही अपने नये जन्म का आधार बना लेता है; अपने को ही पुनर्जीवित करने के लिए अपने जीवन की प्रक्रिया को मोड़ दे देता है और अपनी जीवन शक्ति का मालिक हो जाता है।
उसे महावीर "पुरुषार्थ" कहते हैं। और अनुभव यह जीव के लक्षण हैं।
"शब्द, अंधकार, प्रकाश, प्रभा, छाया, आतप, वर्ण, रस, गंध और स्पर्श--ये पुदगल के लक्षण हैं।"
महावीर अति वैज्ञानिक हैं अपने दृष्टिकोण में। उनका दृष्टिकोण दार्शनिक का नहीं, वैज्ञानिक का है। इसलिए शंकर से वे राजी नहीं होंगे कि जगत माया है, कि जगत असत्य है। इसलिए वे उन लोगों से भी राजी नहीं होंगे जो कहते हैं एक ही ब्रह्म है और सब स्वप्न है। क्योंकि महावीर कहते हैं कि तुम्हारा सिद्धांत सवाल नहीं है; जीवन को परखो, सिद्धांत को जीवन पर थोपो मत। जीवन ही निर्णायक है, तुम्हारा सिद्धांत निर्णायक नहीं है। तो महावीर कहते हैं कि जीवन को देखकर तो साफ पता चलता है कि जीवन दो हिस्सों में बंटा हैः एक चैतन्य और एक अचैतन्य, एक आत्मा और एक पदार्थ। तुम्हारे सिद्धांतों का सवाल नहीं है।
महावीर सिद्धांतवादी नहीं हैं, ठीक प्रयोगवादी हैं। वे कहते हैं, जीवन को देखो, तर्क का सवाल नहीं है। और तर्क से भी आदमी पहुंचता कहां है? शंकर बड़ी कोशिश करते हैं कि जगत असत्य है, लेकिन कुछ असत्य हो नहीं पाता। शंकर से भी पूछा जा सकता है कि अगर जगत असत्य है तो इतनी चेष्टा भी क्या करनी उसको असत्य सिद्ध करने की? जो है ही नहीं उसकी चर्चा भी क्यों चलानी? इतना तो शंकर को भी मानना पड़ेगा कि है जरूर, भले ही असत्य हो। पदार्थ की सत्ता है, उसे इनकार नहीं किया जा सकता। और महावीर का एक और दृष्टिकोण समझ लेने जैसा है।
महावीर कहते हैं दुनिया में दो तरह के लोग हैं। एक, जिनको हम ब्रह्मवादी कहते हैं, जो कहते हैं--ब्रह्म है, पदार्थ नहीं है। दूसरे, जो बिल्कुल इनका ही शीर्षासन करता हुआ रूप हैं, वे कहते हैं--ब्रह्म नहीं है, पदार्थ है। पर दोनों ही मोनिस्ट हैं, दोनों ही एकवादी हैं। एक तरफ मार्क्स, दिदरो, एपीकुरस, चार्वाक जैसे लोग हैं--जो कहते हैं कि सिर्फ पदार्थ है, ब्रह्म नहीं है; ब्रह्म मनुष्य की कल्पना है। ठीक इनके विपरीत खड़े हुए शंकर और अद्वैतवादी हैं, बर्कले और-और लोग हैं जो कहते हैं कि पदार्थ असत्य है, ब्रह्म सत्य है। लेकिन दोनों में एक बात की सहमति है कि एक ही सत्य हो सकता है। और महावीर कहते हैं कि दोनों ही यथार्थ से दूर हैं, दोनों अपनी मान्यता को थोपने की कोशिश में लगे हैं। और दोनों सहमत हैं, दोनों में भेद ज्यादा नहीं है। भेद इतना ही है कि उस एक तत्व को शंकर कहते हैं "ब्रह्म" और मार्क्स कहता है "पदार्थ"--"मैटर।" और कोई भेद नहीं है। लेकिन पदार्थ एक ही होना चाहिए।
महावीर कहते हैं, मेरा कोई सिद्धांत नहीं है थोपने को। मैं जीवन को देखता हूं तो पाता हूं कि वहां दो हैंः वहां "पदार्थ" है और "चैतन्य" है। शरीर में भी झांकता हूं तो पाता हूं कि दो हैंः पदार्थ है और चैतन्य है। और दोनों में कोई भी एकता नहीं है; और दोनों में कोई समता नहीं है; और दोनों में कोई तालमेल नहीं है। दोनों बिल्कुल विपरीत हैं, क्योंकि पदार्थ का लक्षण है, "अचेतना"; और जीव का लक्षण है, "चेतना।" ये चैतन्य एक भेद हैं--जो महावीर कहते हैं, इतने स्पष्ट हैं कि इसे झुठलाने की सारी चेष्टा निरर्थक है। इसलिए महावीर दोनों को स्वीकार करते हैं।
पर महावीर पदार्थ को जो नाम देते हैं, वह बड़ा अदभुत है, वैसा नाम दुनिया की किसी दूसरी भाषा में नहीं है। और दुनिया के किसी भी तत्वचिंतक ने पदार्थ को पुदगल नहीं कहा है--पदार्थ कहा है, मैटर कहा है, और हजार नाम

दिए हैं। लेकिन पुदगल अनूठा है, इसका अनुवाद नहीं हो सकता किसी भी भाषा में।
पदार्थ का अर्थ हैः जो है। मैटर का भी अर्थ हैः मैटीरियल--जो है, जिसका अस्तित्व है। पुदगल बड़ा अनूठा शब्द है। पुदगल का अर्थ हैः जो है, नहीं होने की क्षमता रखता है; और नहीं होकर भी नहीं, नहीं होता। पुदगल का अर्थ हैः प्रवाह। महावीर कहते हैं--पदार्थ कोई स्थिति नहीं है, बल्कि एक प्रवाह है।
पुदगल में जो शब्द है "गल", वह महत्वपूर्ण है--जो गल रहा है। आप देखते हैं पत्थर को, पत्थर लग रहा है--है, लेकिन महावीर कहते हैं--गल रहा है। क्योंकि यह भी कल मिट कर रेत हो जाएगा। गलन चल रहा है, परिवर्तन चल रहा है। है नहीं पत्थर, पत्थर भी हो रहा है। नदी की तरह बह रहा है। पहाड़ भी हो रहे हैं।
जगत में कोई चीज ठहरी हुई नहीं है। पुदगल गत्यात्मक शब्द है। पुदगल
का अर्थ हैः मैटर इन प्रोसेस, गतिमान पदार्थ। महावीर कहते हैं, कोई भी चीज ठहरी हुई नहीं है, बह रही हैं चीजें। पदार्थ न तो कभी पूरी तरह मिटता है, और न पूरी तरह कभी होता है। सिर्फ बीच में है, प्रवाह में है।
आप देखें अपने शरीर कोः बच्चा था, जवान हो गया, बूढ़ा हो गया। एक दफा आप कहते हैं--बच्चा है शरीर, एक दफा कहते हैं--जवान है, एक दफा कहते हैं--बूढ़ा है, लेकिन बहुत गौर से देखें, शरीर कभी भी "है" की स्थिति में नहीं है--सदा हो रहा है। जब बच्चा है, तब भी "है" नहीं, तब वह जवान हो रहा है। जब जवान है, तब भी "है" नहीं, तब वह बूढ़ा हो रहा है। शरीर हो रहा है, एक नदी की तरह बह रहा है।
पुदगल का अर्थ है, प्रवाह। पदार्थ एक प्रवाह है। न तो कभी पूरी तरह होता है कि आप कह सकें, "है" और न पूरी तरह कभी मिटता है कि कह सकें, "नहीं है", दोनों के बीच में सधा है--है भी, नहीं भी है। बड़ी गहरी दृष्टि है, क्योंकि विज्ञान राजी है अब महावीर से। क्योंकि विज्ञान कहता है, पदार्थ भी जहां हमें ठहरा हुआ दिखाई पड़ता है, वहां भी ठहरा नहीं है।
आप जिस कुर्सी पर बैठे हैं, वह भी गतिमान है, उसके भी इलेक्ट्रांस घूम रहे हैं। बड़ी तेजी से घूम रहे हैं। इतनी तेजी से घूम रहे हैं कि आप गिर नहीं पाते हैं, संभले हुए हैं। जैसे बिजली का पंखा अगर बहुत तेजी से घूमे, तो आपको उसकी तीन पंखुड़ियां दिखाई नहीं पड़तीं। पंखा इतनी तेजी से घूम रहा है कि बीच की खाली जगह दिखाई नहीं पड़ती। इसके पहले कि खाली जगह दिखाई पड़े, पंखुड़ी आ जाती है और आपको पूरा एक गोला, घूमता हुआ वर्तुल दिखाई पड़ता है। अगर बिजली का पंखा उतनी गति से घुमाया जा सके, जितनी गति से आपकी कुर्सीं के इलेक्ट्रांस घूम रहे हैं, तो आप बिजली के पंखे पर बड़े मजे से बैठ सकते हैं--जैसे कुर्सीं पर बैठे हैं। आपको पता भी नहीं चलेगा कि नीचे कोई चीज घूम रही है। क्योंकि गति इतनी तेज होगी कि आपको पता चलने के पहले पंखुड़ी आपके नीचे आ जाएगी। बीच के खड्डे में आप गिर न पाएंगे। क्योंकि गिरने में जितना समय लगता है, उससे कम समय पंखुड़ी के आने में लगेगा। आप संभले रहेंगे।
अब विज्ञान कहता है कि हर चीज घूम रही है, हर चीज गतिमान है। वह जो पत्थर का टुकड़ा है, वह भी ठहरा हुआ नहीं है, वह भी बह रहा है। अपने भीतर ही बह रहा है। महावीर का शब्द बड़ा सोचने जैसा है। आज से पच्चीस सौ साल पहले महावीर का पुदगल कहना, कि पदार्थ गतिमान है, गत्यात्मक है; जगत में कोई चीज ठहरी हुई नहीं है। बहुत बाद में एडिंग्टन ने कहा, अभी तीस साल पहले कि मनुष्य की भाषा में एक शब्द गलत है, और वह है--रेस्टः कोई चीज ठहरी हुई नहीं है; सब चीजें चल रही हैं। महावीर ने पच्चीस सौ साल पहले, पदार्थ के लिए जो शब्द दिया, वह है--पुदगल। और पुदगल का अर्थ है--रेस्टलेसनेस।
इसलिए एक और बात समझ लेनी जरूरी हैः जब तक आप शरीर से जुड़े हैं, रेस्ट इ.ज नॉट पॉसिबल। जब तक आप शरीर से जुड़े हैं, तब तक रेस्टलेसनेस है। तब तक बेचैनी रहेगी ही। इसलिए महावीर कहते हैं, शरीर से मुक्त होकर ही कोई शांत हो सकता है। क्योंकि शरीर का स्वभाव परिवर्तन है। इसके पहले कि आप ठहरें, शरीर बदल जाता है। अभी स्वस्थ है, अभी बीमार है। अभी ठीक है, अभी गलत है।

शरीर बदल रहा है। अगर ठीक से कहें तो शरीर स्वस्थ कभी भी नहीं होता। जिसको आप स्वास्थ्य कहते हैं वह भी स्वास्थ्य नहीं होता। शरीर स्वस्थ हो ही नहीं सकता, ठीक अर्थों में, सिर्फ आत्मा ही स्वस्थ हो सकती है। इसलिए हमने जो शब्द दिया है स्वास्थ्य के लिए वह बड़ा समझने जैसा है। उसका अर्थ है, स्वयं में स्थित हो जाना--स्वस्थ। शरीर कभी स्वयं में स्थित नहीं हो सकता वह हमेशा बह रहा है। और उसे हमेशा पर की जरूरत है--भोजन चाहिए, श्वास चाहिए, वह "पर" पर निर्भर है, वह कभी स्वस्थ नहीं हो सकता, सिर्फ आत्मा ही स्वस्थ हो सकती है।
यह जो महावीर का शब्द है पुदगल, यह पूरे जगत में चेतना को छोड़ कर सभी
पर लागू है। सिर्फ चेतना पुदगल नहीं है। बुद्ध ने चेतना के लिए भी पुदगल शब्द का प्रयोग किया है। क्योंकि बुद्ध कहते हैं कि वह भी बदल रही है। यहां बुद्ध और महावीर का बुनियादी भेद है। महावीर ने पदार्थ को पुदगल कहा है, बुद्ध ने आत्मा को भी पुदगल कहा है। क्योंकि बुद्ध कहते हैं कि पदार्थ ही नहीं बदल रहा है, आत्मा भी बदल रही है। आत्मा के लिए अपवाद करने की क्या जरूरत है? सब चीजें बदल रही हैं। जैसे सांझ को हम दीया जलाते हैं और सुबह दीये को बुझाते हैं, तो हम सुबह कहते हैं उसी दीये को बुझा रहे हैं, पर बुद्ध कहते हैं कि नहीं, क्योंकि वह दीया तो रात भर बदलता रहा--ज्योति बदलती रही, धुआं बनती रही, नई ज्योति आती रही; दीये की ज्योति तो प्रवाह थी। तो तुमने जो दीया जलाया था, उसे तुम बुझा नहीं सकते। वह तो न मालूम कब का बुझ गया, उसकी संतति बची है, उसकी संतान बची है, उसकी धारा बची है। वह किसी दूसरी ज्योति को जन्म दे गया है। तो सुबह तुम उसकी संतान को बुझा रहे हो, उसको नहीं बुझा रहे, बुद्ध कहते हैं चेतना भी ऐसे ही दीये की लौ की तरह जल रही है।
बुद्ध कहते हैं, जगत में कुछ भी ठहरा हुआ नहीं है, सभी पुदगल है। लेकिन महावीर की बात ज्यादा वैज्ञानिक मालूम पड़ती है--कारण है। और कारण यह है कि जगत में हर चीज विपरीत से बनी है। अगर सभी कुछ परिवर्तन है, तो परिवर्तन को नापने और जानने का भी कोई उपाय नहीं है। अगर परिवर्तन पता चलता है तो जरूर कोई तत्व होना चाहिए जो परिवर्तित नहीं होता। नहीं तो परिवर्तन का पता किसको चलेगा? परिवर्तन से विपरीत कुछ होना जरूरी है।
जगत में विपरीत के बिना कोई उपाय नहीं है। अगर सिर्फ अंधेरा हो तो आपको अंधेरे का पता नहीं चल सकता, या कि चल सकता है? क्योंकि प्रकाश के बिना कैसे अंधेरे का पता चलेगा? विपरीत चाहिए। अगर सिर्फ जीवन हो मृत्यु न हो, तो आपको जीवन का पता नहीं चलेगा। जीवन का पता मृत्यु के साथ ही चल सकता है। सिर्फ प्रेम हो, घृणा न हो, तो आपको प्रेम का पता नहीं चलेगा। सिर्फ मित्रता हो, शत्रुता न हो, तो आपको मित्रता का पता नहीं चलेगा। द्वंद्व है जीवन।
अगर पता चलता है--तो महावीर कहेंगे कि अगर किसी को पता चल रहा है कि सब प्रवाह है, तो एक बात पक्की है कि वह खुद प्रवाह नहीं हो सकता क्योंकि प्रवाह से बाहर किसी का खड़ा होना जरूरी है। लगता है, नदी बह रही है, क्योंकि आप खड़े हैं। तो नदी बहती हुई नहीं मालूम पड़ेगी, अगर आप भी बह रहे हों!
इसे ऐसा समझेंः
आइंस्टीन कहा करता था कि दो ट्रेनें शून्य आकाश में चलाई जाएं, दोनों
एक ही गति से चल रही हों, तो क्या पता चलेगा कि चल रही हैं? दो ट्रेन, एक साथ समानांतर, शून्य आकाश में जहां आस-पास कुछ भी नहीं है--क्योंकि वृक्ष हों तो पता चल जाएगा कि चल रही हैं, वे खड़े हैं--शून्य आकाश में दो ट्रेनें साथ चल रही हों एक समानांतर, दोनों बराबर एक गति से चल रही हों, तो दोनों ट्रेनों के यात्रियों को पता नहीं चल सकता कि आप खिड़की के बाहर मुंह निकालिए, तो उस तरफ जो आदमी था, वह सदा वही है, वही खिड़की, वही नंबर। आप कभी पता नहीं लगा सकते कि चल रही हैं, क्योंकि चलने का पता कोई चीज ठहरी हो तो चलता है। इसलिए जब एक ट्रेन खड़ी रहती है और एक ट्रेन चलती है, तो कभी-कभी खड़ी ट्रेन वालों तक को शक हो जाता है कि उनकी ट्रेन चल पड़ी है। और जब एक ट्रेन खड़ी होती है और एक ट्रेन चलती है--समझें कि एक ट्रेन खड़ी है, और दूसरी

ट्रेन उसके पास से गुजरती है, पचास मील की रफ्तार से तो अभी उसकी गति पचास मील प्रति घंटा है। दूसरी कल्पना करें कि पहली ट्रेन भी पचास मील की रफ्तार से विपरीत दिशा में जा रही है और फिर एक ट्रेन उसके करीब से गुजरती है जो पचास मील की रफ्तार से दूसरी दिशा में जा रही है, तो जब वे दोनों करीब होती हैं, तो उनकी रफ्तार सौ मील होती है--एक-दूसरे की तुलना में। इसलिए जब एक ट्रेन आपके करीब से गुजरती है, तो आपको लगता है कि आपकी ट्रेन--अगर चल रही है, तो बहुत तेजी से चलने लगी है। क्योंकि दूसरी ट्रेन पचास मील रफ्तार से पीछे जा रही है, आपकी पचास मील की रफ्तार से आगे जा रही है। दोनों ट्रेनें एक-दूसरे की तुलना में सौ मील की रफ्तार से चल रही हैं। वृक्ष खड़े हैं किनारे पर, उनकी वजह से आपको पता चलता है कि आपकी ट्रेन
चल रही है। किसी दिन वृक्ष तय कर लें और साथ चल पड़ें तो जिस ट्रेन से आप चल रहे हैं, थोड़ी देर में आप समझ जाएंगे कि ट्रेन चल नहीं रही है, स्टेशन के साथ ही चली जा रही है।
गति की प्रतीति हो रही है, क्योंकि कहीं कोई गति से विपरीत है। जीवन
की सब प्रतीतियां विपरीत पर निर्भर हैं। पुरुष को अनुभव होता है, क्योंकि स्त्री है; स्त्री को अनुभव होता है, क्योंकि पुरुष है--सारा विपरीत, दि पोलर अपोजिट!
ध्रुवीय विपरीतता है, अभी तो विज्ञान भी इस नतीजे पर पहुंचा है। अभी विज्ञान साफ नहीं हो पा रहा है, लेकिन विज्ञान में एक नई धारणा पैदा हुई है। वह है, एंटी-मैटर--वह कहते हैं कि पदार्थ है, तो विपरीत--पदार्थ भी चाहिए। और बहुत अनूठी बात अभी पैदा हुई है, और इस आदमी को नोबल प्राइज भी मिला जिसने यह अनूठी बात कही है कि एंटी-मैटर होना चाहिए। और उसने एक और अजीब बात कही कि समय बह रहा है, अतीत से भविष्य की तरफ, तो समय की एक विपरीत धारा भी चाहिए, जो भविष्य से अतीत की तरफ बह रही हो। नहीं तो समय बह नहीं सकता।
यह बहुत अजीब धारणा है, और इसकी कल्पना करना बहुत घबड़ाने वाली है। इसका मतलब यह है--हेजनबर्ग का कहना है कि कहीं न कहीं कोई जगत होगा, इसी जगत के किनारे, जहां समय उलटा बह रहा होगा। जहां बूढ़ा आदमी पैदा होगा, फिर जवान होगा, फिर बच्चा होगा, और फिर गर्भ में चला जाएगा। और हेजनबर्ग को नोबल प्राइज भी मिली है, क्योंकि उसकी बात तात्विक है।
जगत में विपरीतता होगी ही, यह एक शाश्वत नियम है। इसलिए बुद्ध की बात किसी और अर्थ में अर्थपूर्ण हो, लेकिन वैज्ञानिक अर्थों में महत्वपूर्ण नहीं है। महावीर ठीक कह रहे हैं कि विपरीतता है; वहां पुदगल है और यहां भीतर अपुदगल, एंटी-मैटर है। वहां सब चीजें बाहर बह रही हैं--पदार्थ में, यहां कुछ भी नहीं बह रहा है, सब कुछ खड़ा है, सब ठहरा हुआ है।
इस ठहरी हुई स्थिति का अनुभव "मुक्ति" है। और इस बहते हुए के साथ जुड़े रहना "संसार" है। संसार का अर्थ है, बहाव। पदार्थ के लक्षण महावीर ने कहे, "शब्द, अंधकार, प्रकाश, प्रभा, छाया, आतप, वर्ण, रस, गंध, स्पर्श--ये सब पदार्थ के लक्षण हैं।"
"जीव, अजीव, बंध, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा और मोक्ष--ये नौ सत्य-तत्व हैं।"
पहले छह महातत्व कहे हैं महावीर ने। वे महातत्व मैटाफिजिकल हैं। जगत, जागतिक रूप से इन छह तत्वों में समा गया है। अब जिन नौ तत्वों की बात वे कर रहे हैं, वे नौ तत्व--साधक, साधक के आयाम, और साधक के मार्ग के संबंध में हैं। जगत की बात छह तत्वों में पूरी हो गयी, फिर एक-एक साधक एक-एक जगत है अपने भीतर। विराट है जगत, फिर वह विराट एक-एक मनुष्य में छिपा है। उस मनुष्य को साधना की दृष्टि से जिन तत्वों में विभक्त करना चाहिए, वे नौ तत्व हैं।
"जीव", "अजीव"--यह पहला विभाजन है। अजीव पुदगल है, जीव चैतन्य जिसे अनुभव की क्षमता है। यह जो अनुभव की क्षमता है, यह सात स्थितियों से गुजर सकती है। उन सात स्थितियों का इतना मूल्य है, इसलिए महावीर ने उनको भी "तत्व" कहा है--वे तत्व हैं नहीं। वे सात स्थितियां हैं--बंध, पुण्य, पाप,

आस्रव, संवर, निर्जरा और मोक्ष। इनको एक-एक को बारीकी से समझना जरूरी है, क्योंकि महावीर का पूरा का पूरा साधना-पथ इन सात की समझ पर निर्भर होगा। "जीव" और "अजीव" दो विभाजन हुए जीवन केः पदार्थ और परमात्मा। पदार्थ
से परमात्मा तक जाने का, पदार्थ से परमात्मा तक मुक्त होने की सात सीढ़ियां हैं, या परमात्मा से पदार्थ तक उतरने की भी सात सीढ़ियां हैं। ये सात सीढ़ियां--महावीर के हिसाब से बड़ी अनूठी इनकी व्याख्या है।
"बंध"ः महावीर कहते हैं, बंध भी एक तत्व है--बांडेज, परतंत्रता। किसी
ने भी परतंत्रता को तत्व नहीं कहा है। महावीर कहते हैं, परतंत्रता भी एक तत्व है। इसे समझें, क्या अर्थ है? आप वस्तुतः स्वतंत्र होना चाहते हैं? सभी कहेंगे, "हां", लेकिन थोड़ा गौर से सोचेंगे तो कहना पड़ेगा, "नहीं"। एरिफ फ्रोम ने अभी एक किताब लिखी है, किताब का नाम है--फियर ऑफ फ्रीडम; स्वतंत्रता का भय। लोग कहते जरूर हैं कि हम स्वतंत्र होना चाहते हैं, लेकिन कोई भी स्वतंत्र होना नहीं चाहता। थोड़ा सोचें, सच में आप स्वतंत्र होना चाहते हैं? खोजते तो रोज परतंत्रता हैं--और जब तक परतंत्रता न मिल जाए तब तक आश्वस्त नहीं होते। रोज खोजते हैं--कोई सहारा, कोई आसरा, कोई शरण, कोई सुरक्षा। खोजते तो परतंत्रता हैं।
एक आदमी धन इकट्ठा कर रहा है। वह सोचता है कि धन होगा, तो मैं स्वतंत्र
हो जाऊंगा। क्योंकि जितना धन होगा, उतनी शक्ति होगी। लेकिन होता यह है कि जितना धन हो जाता है, उतना वह परतंत्र होता है। अमीर आदमी से गरीब आदमी खोजने बहुत मुश्किल हैं। उनका ख्याल होता है कि पैसों की मालकियत उनके पास है, लेकिन पैसा मालिक हो जाता है। एक कौड़ी भी छोड़ना मुश्किल हो जाता है, एक पैसा भी छोड़ना मुश्किल हो जाता है।
राकफेलर लंदन आया तो एक होटल में ठहरा और उसने आते ही पूछा कि सबसे सस्ता कमरा कौन सा है? अखबारों में फोटो उसका निकला था। मैनेजर पहचान गया। उसने कहा कि आप राकफेलर मालूम होते हैं, और आप सस्ता कमरा खोजते हैं? और आपके बेटे यहां आते हैं तो सबसे कीमती कमरा खोजते हैं। तो राकफेलर ने ठंडी श्वास भर कर कहा कि दे आर मोर फार्चुनेट, दे हैव ए रिच फादर, आई एम नॉट सो-- मैं इतना भाग्यशाली नहीं हूं, मैं एक गरीब बाप का बेटा हूं। वे मौज कर रहे हैं, उड़ा रहे हैं, वे एक अमीर बाप के बेटे हैं।
धन स्वतंत्रता देता होगा, ऐसा हमारा ख्याल है--देता नहीं, परतंत्रता देता है। सम्राट को लगता होगा कि वह स्वतंत्र है, क्योंकि इतनी शक्ति उसके पास है। लेकिन जितनी शक्ति इकट्ठी होती है, उतना परतंत्र हो जाता है, उतना घिर जाता है, उतना मुश्किल में पड़ जाता है।
प्रेम में हमें लगता है कि प्रेम से स्वतंत्रता मिलेगी--मिलनी चाहिए, लेकिन मिलती नहीं। जिसके भी प्रेम में आप पड़ते हैं, परतंत्रता शुरू हो जाती है। पत्नी पति को बांधने की कोशिश में लगी है, पति पत्नी को बांधने की कोशिश में लगा है। दोनों के हाथ एक दूसरे की गर्दन पर हैं। दोनों कोशिश में लगे हैं कि दूसरे को किस भांति बिल्कुल वस्तु की तरह, पदार्थ की तरह कर दें। और दोनों सफल हो जाते हैं, एक दूसरे को गुलाम बना लेते हैं। इसलिए बहादुर से बहादुर पति जब घर की तरफ आता है, तब देखें, तब उसके हाथ-पैर कंपने लगते हैं। तब वह तैयारी करने लगता है कि अब क्या करें। क्योंकि जिससे भी हम प्रेम करते हैं, वहीं परतंत्रता शुरू हो जाती है।
प्रेम का मतलब हुआ कि हमने अपने को जरा भी शिथिल छोड़ा कि दूसरे ने हम
पर कब्जा किया। हमने जरा ही अपने अस्त्र-शस्त्र हटा कर रखे कि दूसरा हम पर हावी हुआ। और आप भी उसी कोशिश में लगे हैं कि आप हावी हो जाएं। बाप बेटे पर हावी होने की कोशिश में लगा है, बेटे बाप पर हावी होने की कोशिश में लगे हैं।
हमारे पूरे जीवन की चेष्टा यही है कि हम मालिक हो जाएं। लेकिन आखिरी परिणाम यह होता है कि हम न मालूम कितने लोगों के गुलाम हो जाते हैं। निश्चित ही, कहीं गहरे में हम स्वतंत्रता से डरते हैं। थोड़ी देर सोचें कि अगर आप अकेले रह जाएं पृथ्वी पर तो क्या आप पूरे स्वतंत्र होंगे क्योंकि कोई परतंत्र करने वाला नहीं होगा, तो कोई उपाय ही नहीं होगा। लेकिन क्या आप अकेले होने पसंद करेंगे पृथ्वी पर? सब भोजन की सुविधा हो--सब हो, लेकिन

आप अकेले हों, सारा जीवन का रस चला जाएगा। पूरी तरह स्वतंत्र होंगे, लेकिन रस बिल्कुल खो जाएगा।
स्वतंत्रता में हमारा रस ही नहीं है, इसलिए लोग मोक्ष की बात सुनते हैं, लेकिन मोक्ष को खोजने नहीं जाते। महावीर कहते हैं कि बंध, परतंत्रता हमारे जीवन का एक तथ्य है। हम बंधन चाहते हैं--कोई बांध ले। फिर बड़े मजे की बात है कि कोई न बांधे, तो हमें बुरा लगता है, और कोई बांधे, तो बुरा लगता है।
एक फिल्म अभिनेता से उसका एक मित्र पूछ रहा था कि "तुम जरूर थक जाते होओगे, क्योंकि जहां भी तुम जाते हो, वहीं इतनी भीड़ घेर लेती है, लोग हस्ताक्षर मांगते हैं, धक्कम-धुक्की होती है--तुम जरूर थक जाते होओगे? तुम जरूर ऊब गए होओगे?" तो उसने कहा कि "बिल्कुल ऊब गया हूं, लेकिन इससे भी एक बुरी चीज है, और वह यह है कि कोई न घेरे और कोई हस्ताक्षर न मांगे--उससे यह बेहतर है।"
मैं एक कालेज में शिक्षक था। और एक युवती ने मुझसे आकर कहा कि एक युवक उसे कभी चिट्ठियां फेंकता है लिख कर, कभी कंकड़ मारता है। वह बहुत नाराज थी। मैंने उससे कहाः तू बैठ, और तू इस तरह सोच कि तू छह साल कालेज में रहे, कोई कंकड़ न मारे, कोई चिट्ठी न फेंके, फिर क्या हो? वह थोड़ी बेचैन हो गई। उसने कहा कि आप किस तरह की बातें करते हैं, वह ज्यादा दुखद होगा। तो मैंने कहाः फिर फेंकने दे चिट्ठी। और तू जो यहां कहने आई है उसमें सिर्फ तेरा क्रोध ही नहीं, तेरा गौरव और गरिमा भी मालूम हो रही है, तेरे चेहरे पर शान भी है कि कोई पत्थर मारता है, कोई चिट्ठी फेंकता है। तू फिर से सोच कर, इस पर ध्यान करके आना कि तू इसका रस भी ले रही है या नहीं ले रही है? क्योंकि मैं उन लड़कियों को भी जानता हूं, जिनकी तरफ कोई नहीं देख रहा है, तो वे परेशान हैं।
सुना है मैंने कि एक स्त्री ने--जो पचास साल की हो गई और विवाह नहीं कर पाई, क्योंकि कोई बांधने नहीं आया, कोई बंधने नहीं आया--एक दिन सुबह-सुबह फायर ब्रिगेड को फोन किया, बड़ी घबड़ाहट में कि दो जवान आदमी मेरी खिड़की में घुसने की कोशिश कर रहे हैं, शीघ्रता करें। तो फायर ब्रिगेड के लोगों ने कहा कि क्षमा करें, आपसे भूल हो गई, यह तो फायर डिपार्टमेंट है, आप पुलिस स्टेशन को खबर करें।" उस स्त्री ने कहा कि, "पुलिस स्टेशन से मुझे मतलब नहीं, मुझे फायर डिपार्टमेंट से ही मतलब है। तो उन्होंने पूछा कि क्या मतलब है? हम क्या कर सकते हैं? उस स्त्री ने कहा कि बड़ी सीढ़ी ले आएं, वे लोग छोटी सीढ़ी से घुसने की कोशिश कर रहे हैं। बड़ी सीढ़ी की जरूरत है।
पचास साल जिसे किसी ने कंकड़ न मारा हो, चिट्ठी न लिखी हो, उसकी हालत ऐसी हो ही जाएगी।
आदमी बंधने के लिए आतुर है। न बंधे तो मुसीबत में पड़ता है। लगता है मैं बेकार हूं, मेरे जीवन का कोई अर्थ नहीं है। बांध ले कोई तो लगता है कि बंधन हो गया, कैसे छुटकारा हो? आदमी एक उलझन है, और उलझन का कारण यह है कि वह चीजों को साफ-साफ नहीं समझ पाता कि क्या, क्या है?
पहली बात समझ लेनी जरूरी है कि बंध हमारे भीतर एक तत्व है, हम बंधना चाहते हैं। और जब तक हम बंधना चाहते हैं तब तक दुनिया में कोई भी हमें मुक्त नहीं कर सकता।
मजे की बात यह है कि हम अगर बंधना चाहते हैं, तो जो हमें मुक्त करने आएगा, हम उसी से बंध जाएंगे; महावीर से बंधे हुए लोग हैं। वह बंध-तत्व काम कर रहा है। वे कह रहे हैं कि हम जैन हैं। आपके जैन होने का क्या मतलब है? महावीर को मरे पच्चीस सौ साल हो गए, आप क्यों पीछा कर रहे हैं?
इधर मैं देखता हूं, जब मैं महावीर पर बोलता हूं तो दूसरी शक्लें दिखाई पड़ती हैं, जब मैं लाओत्सु पर बोलता हूं, दूसरी शक्लें दिखाई पड़ती हैं। लाओत्सु से आपका कोई बंधन नहीं है, बंध-तत्व महावीर से लगता है। तब आप दिखाई नहीं पड़ते, आपका कोई रस नहीं है लाओत्से में। आप वहीं दिखाई पड़ते हैं, जहां आपका बंध है। जहां आपकी गर्दन बंधी है, वहां आप चले जाते हैं।
गुलाम हैं।

महावीर आपको मुक्त करना चाहते हैं, लेकिन इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है। महावीर क्या करेंगे, आप बंधना चाहते हैं। महावीर कहते हैं, अपने पैर पर खड़े हो जाओ। आप कहते हैं, आप ही हमारी शरण हैं"। महावीर कहते हैं, कोई किसी का सहारा नहीं, कोई किसी का आसरा नहीं, आप कहते हैं कि आपके बिना यह भवसागर से कैसे पार हों? और वे कह रहे हैं कि हमारे ही कारण डूब रहे हो भवसागर में।
दूसरे के कारण आदमी डूबता है, अपने कारण उबरता है। कोई गुरु उबार नहीं सकता। लेकिन आपने डूबना पक्का कर रखा है। आपकी पूरी चेष्टा यही है कि किसी तरह डूब जाएं।
इस भीतर के तत्व को ठीक से समझ लेना जरूरी है। और जब तक बंध की वृत्ति काम कर रही है, तब तक मोक्ष से आपका कोई संपर्क नहीं हो सकता, मुक्ति की हवा भी आपको नहीं लग सकती। आप पहचानें इस मानसिक बात को कि आप जहां भी जाते हैं, वहां जल्दी से बंधने को आतुर हो जाते हैं। स्वतंत्र रहना कष्टपूर्ण मालूम पड़ता है, मुक्त रहना कष्टपूर्ण मालूम पड़ता है, क्यों?
क्योंकि अकेले रहना कष्टपूर्ण मालूम पड़ता है। अकेले में आप बैठ नहीं पाते--अखबार खोल लेते हैं, किताब खोल लेते हैं, रेडिओ खोल लेते हैं, टेलिविजन--कोई नहीं मिलता, होटल, क्लब, रोटरी, लायंस; सब इंतजाम हैं, वहां भागे जाते हैं, क्यों? थोड़ी देर अकेले होने में इतनी अड़चन क्या है? अपने साथ होने में इतना दुख क्या है? दूसरे का साथ क्यों इतना जरूरी है?
अकेले में डर लगता है, भय लगता है। अकेले में जीवन की सारी समस्या सामने खड़ी हो जाती है। अगर ज्यादा देर अकेले रहेंगे तो सवाल उठेगा, मैं कौन हूं? भीड़ में रहते हैं तो पता रहता है कि मैं, कौन हूं, क्योंकि भीड़ याद दिलाती रहती है--आपका नाम, आपका गांव, आपका घर, आपका पेशा--भीड़ याद दिलाती रहती है। अकेले में भीड़ याद नहीं दिलाती।
और भीड़ के दिए हुए जितने लेबल हैं, वे भीड़ के साथ ही छूट जाते हैं। इसलिए महावीर कहते हैं, जो व्यक्ति बंधन से मुक्त होना चाहता है, उसे एकांत में रस लेना चाहिए, अकेले में रस लेना चाहिए, अपने में रस लेना चाहिए। धीरे-धीरे दूसरे की निर्भरता छोड़नी चाहिए। उस जगह आ जाना चाहिए, जहां अगर मैं अकेला हूं तो पर्याप्त हूं।
अगर कोई व्यक्ति अकेले में पर्याप्त है, तो बंधन का तत्व गिर गया। अगर कोई अकेले में पर्याप्त नहीं है, वह बंधेगा ही, वह खोजेगा ही कुछ न कुछ। उसे कोई न कोई डूबने के लिए सहारा चाहिए। तब एक सुविधा है कि जब दूसरा हमें डुबाता है, तो हम दोष दूसरे को दे सकते हैं, दूसरे में दोष दिखाई पड़ते हैं। लेकिन हम दूसरे की तलाश क्यों करते हैं? और जब आप एक गलत आदमी से मैत्री बना लेते हैं, या विवाह कर लेते हैं एक गलत स्त्री से, तो आप सोचते हैं-- गलती हो गई, गलत स्त्री से विवाह कर लिया। आपको पता नहीं है कि आप गलत स्त्री से ही विवाह कर सकते हैं। ठीक स्त्री की आप तलाश ही मत करना। मैंने सुना है कि एक आदमी एक बार ठीक स्त्री की तलाश करते-करते अविवाहित मरा। उसने पक्का ही कर लिया था कि जब तक पूर्ण स्त्री न मिले, तब तक मैं विवाह न करूंगा। फिर जब वह बूढ़ा हो गया, नब्बे साल का हो गया, तब किसी ने पूछा कि आप जीवन भर तलाश कर रहे हैं पूर्ण स्त्री की, क्या पूर्ण स्त्री मिली ही नहीं इतनी बड़ी पृथ्वी पर? उसने कहाः पहले तो बहुत मुश्किल था, मिली नहीं, फिर मिली भी।
तो उस आदमी ने पूछाः आपने विवाह क्यों नहीं कर लिया? तो उस आदमी ने कहा
कि "वह भी पूर्ण पुरुष की तलाश कर रही थी। तब हमको पता चला कि यह असंभव है मामला। यह नहीं होनेवाला
वह भी अविवाहित ही मरी होगी, उसका कुछ पता नहीं है।
हम जो हैं, उसी को हम खोजते हैं। वही हमें मिल भी सकता है। तो जो भी आपको मिल जाए, वह आपकी ही खोज है, और आपके ही चित्त का दर्शन है उसमें। अगर आपने गलत स्त्री खोज ली है, तो आप गलत स्त्री खोजने में बड़े कुशल हैं। और आप दूसरी भी खोजेंगे तो ऐसी ही गलत स्त्री खोजेंगे। आप अन्यथा नहीं खोज सकते, क्योंकि आप ही खोजेंगे।

हम जो भी कर रहे हैं अपने चारों तरफ--दुख, चिंता, पीड़ा--वे सब हमारे ही उपाय हैं। और आप चकित होंगे जान कर कि अगर आपके दुख आपसे छीन लिए जाएं, तो आप राजी नहीं होंगे। क्योंकि वे आपने खड़े किए हैं। उनका कुछ कारण है। मेरे पास लोग आते हैं, वे ऐसी चिंताएं बताते हैं। मैं उनसे कहता हूं
कि आप कहते तो जरूर हैं, लेकिन आप चिंताएं बताते वक्त ऐसे लगते हैं, जैसे कि बड़ा भारी काम कर रहे हैं, कि कोई बड़ी उपलब्धि कर ली है आपने!
आप चिंताओं में रस लेते हैं। लोग अपने दुख को कितने रस से सुनाते हैं।
आप ऊबते हैं, वे नहीं ऊबते। उनकी दुख कथा आप सुनो, कितना रस लेते हैं। पश्चिम में तो पूरा धंधा खड़ा हो गया है साइकोएनालिसिस का। वह पूरा धंधा इस बात पर निर्भर है कि लोग अपना दुख सुनाने में रस लेते हैं। और अब कोई राजी नहीं है सुनने को, किसी के पास समय नहीं है। तो प्रोफेशनल सुनने वाला चाहिए। यह जो साइकोएनालिस्ट है, वह प्रोफेशनल सुनने वाला है, वह पैसा लेता है। उसको कोई मतलब नहीं है। वह बड़े गौर से सुनता है। लेकिन पता नहीं कि वह गौर और उसका ध्यान, सिर्फ दिखावा भी हो सकता है।
मैंने सुना है कि एक दिन फ्रायड को उसके एक युवक शिष्य ने पूछा कि मैं
तो थक जाता हूं, दो-चार-पांच मरीजों को सुनने के बाद, और आप शाम को भी ताजे दिखाई पड़ते हैं। फ्रायड ने कहाः सुनता ही कौन है? सिर्फ चेहरे का ढंग होता है कि हां, सुन रहे हैं। मगर वह आदमी हलका होकर ठीक भी हो जाता है।
दुख की चर्चा करने में रस आता है, उससे लगता है कि आप महत्वपूर्ण हैं, कुछ आपकी जिंदगी में भी हो रहा है।
मैंने सुना है कि एक स्त्री एक डाक्टर के पास गई। और उसने कहा कि कोई न कोई आपरेशन कर ही दें। डाक्टर ने कहाः लेकिन तुझे कोई जरूरत ही नहीं है, तू बिल्कुल स्वस्थ है। उसने कहाः वह तो सब ठीक है, लेकिन जब भी स्त्रियां मिलती हैं--कोई कहती है किसी का अपेंडिक्स का आपरेशन हो गया है, किसी का टांसिल का हो गया है, मेरा कुछ भी नहीं हुआ है। तो जिंदगी बेकार ही जा रही है--कुछ भी कर दें, चर्चा के लिए ही सही।
आदमी अपनी बीमारी में, अपने दुख में, अपनी पीड़ा में, अपनी चिंता में रस
ले रहा है। महावीर उस रस को ही बंध कहते हैं।
"पुण्य", "पाप"--महावीर के हिसाब से पुण्य-पाप की बड़ी अलग धारणा है। महावीर पुण्य, पाप को भी पौदगलिक कहते हैं, मैटीरियल कहते हैं। वे कहते हैं, जब आप पाप करते हैं तब आप की चेतना के पास खास तरह के परमाणु इकट्ठे हो जाते हैं, जब आप पुण्य करते हैं तब खास तरह के परमाणु इकट्ठे हो जाते हैं। इसलिए महावीर कहते हैं, पुण्य करने से कोई मुक्त नहीं होगा, क्योंकि पुण्य भी परमाणुओं को इकट्ठा करता है। पुण्य करने से अच्छा शरीर मिल सकता है, पुण्य के परमाणु होंगे। और पाप करने से बुरा शरीर मिल सकता है, बुरे परमाणु होंगे।
महावीर कहते हैं, पाप है, जैसे लोहे की हथकड़ियां और पुण्य है, जैसे सोने की हथकड़ियां। लेकिन सोने की हथकड़ियों को हथकड़ियां नहीं कहते, उनको आभूषण कहते हैं। जब आपको किसी स्त्री को बांधना हो, तो लोहे की हथकड़ी भेंट मत करना--सोने की, उनको लोग आभूषण कहते हैं। सोना जिस तरह बांध लेता है, उतना लोहा कभी भी नहीं बांध सकता, क्योंकि लोहे में कोई रस पैदा होता नहीं मालूम होता। इसलिए महावीर कहते हैं, पुण्य भी बांधता है।
बुरे कर्म तो बांधते ही हैं, अच्छे कर्म भी बांध लेते हैं। और हर कर्म पौदगलिक है--यह बड़ी क्रांतिकारी धारणा है। महावीर कहते हैं जब तुम शुभ कर्म करते हो तो तुम्हारे पास शुभ परमाणु इकट्ठे होते हैं, वस्तुतः। तुम्हारी चेतना के आस-पास अच्छे तत्व इकट्ठे हो जाते हैं। इसलिए तुम्हें अच्छा लगता है। जैसे चारों तरफ फूल खिले हों और किसी को अच्छा लगे, ऐसा ही पुण्य करते वक्त अच्छा लगता है। पाप करते वक्त बुरा लगता है, जैसे कोई दुर्गंध के बीच बैठा हो।
तो जब आप चोरी करते हैं तो मन को बुरा लगता है, झूठ बोलते हैं तो मन को बुरा लगता है, क्रोध करते हैं तो मन को बुरा लगता है; उस बुरे लगने का कारण है कि आप गलत, विकृत, दुर्गंधयुक्त परमाणुओं को अपने पास बुला रहे हैं, निमंत्रण दे रहे हैं। और जब आप किसी पर दया करते हैं, किसी पर करुणा प्रकट

करते हैं, किसी गिरे को उठने का सहारा दे देते हैं--कोई छोटा सा कृत्य भी-- कि एक बूढ़े आदमी को देख कर मुस्कुरा देते हैं, जिसको देख कर अब कोई नहीं मुस्कुराता, तो आपके भीतर एक हलकापन छा जाता है; आप उड़ने लगते हैं, पंख निकल आते हैं।
यह जो आपको उड़ने का हलकापन मालूम होता है, यह जो ग्रेवीटेशन कम हो जाता है, कशिश कम हो जाती है जमीन की, यह जो प्रसादयुक्त अवस्था है, इसको महावीर "पुण्य" कहते हैं।
महावीर के हिसाब से जो करके भी आपको हलकापन मालूम होता हो, प्रसन्नता मालूम होती हो, खिलते हों आप, फूल की तरह बनते हों, वह पुण्य है। और जिससे भी आप भारी होते हों, पथरीले होते हों, डूबते हों नीचे, और जिससे बोझिलता बढ़ती हो--वह पाप है। जो नीचे लाता हो, डुबाता हो, वजन देता हो, वह पाप है; और जो ऊपर ले जाता हो, हलका करता हो, आकाश में खोलता हो, वह पुण्य है।
इसका अर्थ अगर ख्याल में आ जाए तो आप बहुत हैरान होंगे। अगर आपका धर्म
भी आपको भारी करता है, सीरियस करता है, तो पाप है। अगर आपका धर्म आपको उत्सव देता है, आनंद देता है, नृत्य देता है, तो ही पुण्य है। पुण्य का लक्षण है कि आप हलके हो जाएंगे, बच्चे की तरह नाचने लगेंगे; पाप का अर्थ है, आप भारी हो जाएंगे, बैठ जाएंगे पत्थर की तरह।
अपने साधु संन्यासियों को जाकर गौर से देखें, क्या उनके जीवन में उत्सव है? और जिनके जीवन में उत्सव ही नहीं है, उनके जीवन में मोक्ष तो बहुत दूर है। अभी पुण्य भी जीवन में नहीं है। क्या आपका साधु हंस सकता है? बच्चे की तरह किलकारी ले सकता है? नाच सकता है? प्रफुल्लित हो सकता है? नहीं, वह भारी है। और न केवल खुद भारी है, अगर आप हंसते हुए उसके पास पहुंच जाएं, तो अपमान अनुभव करेगा। वह आपको भी भारी करता है। तो जब आप मंदिर में पहुंचते हैं, तो आप जूते ही बाहर नहीं उतारते, सब हल्कापन भी बाहर रख देते हैं। एकदम गंभीर होकर, रीढ़ को सीधी करके, आंखें भारी करके, नीची करके आप अंदर प्रवेश करते हैं।
मंदिर में जिंदा आदमी के लिए कोई जगह नहीं मालूम होती, मरे-मराए लोग, इसलिए अगर मंदिर में बच्चे आ जाएं, तो सबको लगता है कि डिस्टब॰न्स कर रहे हैं। सच्चाई उलटी है। बच्चे मंदिर में पुण्य ला रहे हैं। और अगर आप भी बच्चों की तरह कूद सकें, और नाच सकें, और गीत गा सकें, तो ही, तो ही मंदिर पुण्य के तत्व देगा।
मैं निरंतर कहता हूं कि कभी एक बगीचे में भी पुण्य के तत्व हो सकते हैं, कभी एक नदी के किनारे भी, कभी एक पहाड़ के एकांत में भी। जरूरी नहीं है कि मंदिर में ही हों। क्योंकि मंदिर पर गंभीर लोगों ने बड़े पुराने दिनों से कब्जा कर रखा है। गंभीर लोग एक लिहाज से खतरनाक हैं, क्योंकि जहां भी गंभीर लोग हों, वे हलके-फुलके लोगों को निकाल कर बाहर कर देते हैं। इकॉनामिक्स का एक नियम है कि जब भी बुरे सिक्के हों तो अच्छे सिक्के चलन के बाहर हो जाते हैं। रद्दी नोट अगर आपके खीसे में पड़ा हो, तो पहले आप रद्दी को चलाएंगे कि असली को? रद्दी पहले चलेगा, असली को आप छिपा कर रखेंगे। रद्दी हमेशा असली को चलन के बाहर कर देता है।
गंभीर लोग प्रफुल्लता को सदा बाहर कर देते हैं। और उन्होंने ऐसी हालत पैदा कर दी है कि प्रफुल्लता पाप मालूम होने लगी है। अगर आप हंसते हैं, तो आप पापी हैं। आपको एक रोती हुई लम्बी शक्ल चाहिए, तब आप पुण्यात्मा मालूम होंगे।
महावीर कहते हैं, पुण्य का तत्व प्रफुल्ल करने वाला तत्व है। और यह निश्चित सही है। और इससे ज्यादा सही कोई और बात नहीं हो सकती। अगर आपने जीवन में कभी भी कोई हल्कापन अनुभव किया है, तो आप समझ लेना कि वहां पुण्य का तत्व आपने आकर्षित किया था। अगर आपको भारीपन अनुभव होता है, बोझिलता अनुभव होती है, तो उसका मतलब है कि शरीर वजनी हो रहा है, आत्मा ताकत खो रही है, शरीर ज्यादा भारी होकर छा रहा है।
प्रफुल्लता की तलाश, पुण्य की तलाश है। और ध्यान रहे, जो खुद प्रफुल्लित रहना चाहता है, वह दूसरे को प्रफुल्लित करेगा; क्योंकि प्रफुल्लता संक्रामक है। अगर यहां इतने लोग रो रहे हों, तो आप प्रफुल्लित

नहीं हो सकते अकेले। आप दब जाएंगे। तो जो आदमी आनंदित होना चाहता है, वह दूसरे को दुख नहीं देना चाहेगा; क्योंकि आनंदित होने की बुनियादी शर्त ही यह है कि आनंद चारों तरफ हो, तो ही आप आनंदित हो पाएंगे। और जो आदमी दुखी होना चाहता है, वह अपने चारों तरफ दुखी चेहरे पैदा करेगा; क्योंकि दुख के बीच ही दुखी हुआ जा सकता है।
जब धर्म जन्म लेता है, तो नाचता हुआ होता है, और जब धर्म संप्रदाय बनता
है तो मुर्दा हो जाता है, लाश हो जाता है--गंभीर। और उसके आस-पास बैठे हुए लोग वैसे ही हो जाते हैं, जब घर में कोई मर जाता है तो पड़ोस के लोग आकर आस-पास बैठ जाते हैं। मंदिरों में, मस्जिदों में, गिरजाघरों में, गुरुद्वारों में बैठे हैं लोग--जैसे लाश के आस-पास।
महावीर के पास जो प्रफुल्लता रही होगी, वह महावीर की मूर्ति के पास नहीं बची। जरा महावीर का चेहरा देखें, जाकर अपने ही मंदिर की मूर्ति में जरा गौर से देखें। यह चेहरा बिल्कुल हलका है, इस चेहरे पर लेशमात्र भी बोझ नहीं है; यह छोटे बच्चे की भांति निर्दोष है; इस पर कोई भार नहीं, कोई चिंता नहीं। महावीर इसीलिए नग्न भी खड़े हो गए। छोटा बच्चा ही नग्न खड़ा हो सकता है।
नहीं कि आप नग्न खड़े हो जाएं तो छोटे बच्चे हो जाएंगे। कुछ पागल भी नग्न खड़े हो जाते हैं। लेकिन अगर आप नग्न खड़े हैं और आपको पता है कि आप नग्न खड़े हैं तो आप छोटे बच्चे नहीं हैं।
महावीर इतने हल्के हो गए, कि नग्न खड़े हो गए। उन्हें पता भी नहीं चला होगा कि वे नग्न हैं। और उनकी नग्नता का दूसरों को भी पता नहीं चलता कि वे नग्न हैं। एक निर्दोष, एक इनोसेंस, एक कुंआरापन भीतर आ गया, जहां सब बोझ गिर गए।
महावीर कहते हैंः पुण्य हलका करने वाला तत्व है, पाप बोझिल करने वाला तत्व है। लेकिन ध्यान रहे, पुण्य से ही कोई मुक्त नहीं हो जाएगा। पुण्य पाप से मुक्त करेगा। और आखिरी घड़ी आती है, जब आदमी को पुण्य से भी मुक्त हो जाना पड़ता है, क्योंकि वह कितना ही हलका करता हो, फिर भी थोड़ा तो भारी होगा ही। तत्व है तो उसका थोड़ा तो बोझ होगा ही। आपने कितना ही पतला कपड़ा पहन रखा हो, मलमल पहन रखी हो ढाका की, तो भी थोड़ा सा बोझ देगी। उतना बोझ भी मोक्ष के लिए बाधा है।
तो महावीर कहते हैंः पहला पड़ाव है पाप से मुक्ति, पाप के तत्वों से छुटकारा; और दूसरा पड़ाव है पुण्य से मुक्ति, और तीसरा पड़ाव नहीं है, मंजिल है आखिरी, क्योंकि वहां फिर कुछ भी नहीं बचता जिससे छूटना है।
"आस्रव" का अर्थ हैः बुलाना, निमंत्रण, आने देना। आप खुले होते हैं कुछ चीजों के लिए। एक सूबसूरत स्त्री पास से निकलती है, आपके भीतर एक दरवाजा खुल जाता है। साथ में पत्नी हो तो बात अलग है। तो आप दरवाजे को पकड़े रखते हैं, खुलने नहीं देते। पत्नी न हो तो दरवाजा एकदम खुल जाता है। "आस्रव" का अर्थ हैः आपकी वृत्ति खुलने की, पाप की तरफ। जहां-जहां गलत है, आप एकदम से खुल जाते हैं। शराब की दुकान है, भीतर कोई कहने लगता है, चलो।
"आस्रव" का अर्थ हैः खुलने की वृत्ति पाप की तरफ। वह हमारे भीतर है।
हम सब आस्रव में जी रहे हैं। यह हो सकता है कि सबके आस्रव की अपनी-अपनी शर्तें है।
मैंने सुना है, एक साधु अपनी आजीविका के लिए एक छोटी सी नाव चलाता था,
इस किनारे से उस किनारे तक नदी के। एक दिन एक स्मगलर ने उससे कहा कि यह सोने का इतना पाट है, इसको ले चलो, मैं सौ रुपये दूंगा। उसने कहा कि भूल कर ऐसी बात मत करना।

मैं किसी पाप में नहीं उतर सकता। मैं सिर्फ आजीविका के लिए, दो पैसे कमाने के लिए नाव चलाता हूं।"
स्मगलर नाव में चढ़ आया और उसने कहा कि "मैं हजार रुपये दूंगा।" साधु
ने कहा कि "छोड़ रुपयों की बात ही छोड़। तू रुपयों से मुझे प्रलोभित न कर पाएंगा।" उसने कहा कि "मैं तुझे दस हजार दूंगा।"

जैसे ही उसने कहा, दस हजार दूंगा, साधु ने उसे जोर से धक्का दिया और नीचे गिरा दिया। उस आदमी ने कहाः सीधी तरह बात क्यों नहीं करते? साधु ने कहा कि तू बिल्कुल मेरे करीब आया जा रहा है, मेरे आस्त्रव के करीब आया जा रहा है। दस हजार... ! मेरा दरवाजा खुला जा रहा है। तू हट, भाग यहां से।
हर एक की सीमा है। हम सबने सीमाएं बांध रखी हैं। कोई पांच रुपये पर प्रलोभित हो जाता है, कोई पचास रुपये पर, कोई पांच सौ पर, कोई लाख पर। पर इससे कोई फर्क नहीं पड़ता, इसका--क्योंकि मतलब इतना ही है कि आपके आस्त्रव का दरवाजा अपनी एक शर्त रखे हुए है। और जब भी आप बेचैन होते हैं, तो उसका मतलब है दरवाजा खुलने के करीब है। बहुत सी स्त्रियों के पास से आप बिल्कुल शांत गुजर जाते हैं। उसका मतलब है कि उनकी स्थिति आपका दरवाजा खोलने के लिए काफी दस्तक नहीं है। जिस स्त्री के पास आप बेचैन होने लगते हैं, उसका अर्थ है कि दरवाजा खुलना चाहता है। बेचैनी का मतलब है कि भीतर अब कुछ खुलना चाहता है और बाहर से भीतर कुछ प्रवेश करना चाहता है।
हम किस चीज के प्रति खुले हैं, इसका निरंतर ध्यान रखना जरूरी है। अगर
हम पाप के प्रति खुले हैं तो पाप इकट्ठा होता चला जाएंगा; अगर हम पुण्य के प्रति खुले हैं तो पुण्य इकट्ठा होता चला जाएंगा। जिस तरफ आप खुले हैं, उसकी आप तलाश करते हैं। हर आदमी अपने ही आश्रव के लिए खोज कर रहा है। अगर आप चोर हैं, तो बहुत जल्दी आप चोरों से मिल जुल जाएंगे, अगर आप धार्मिक हैं तो बहुत जल्दी आप धार्मिक लोगों की तलाश कर लेंगे, अगर आपके जीवन में साधुता की तरफ खुलाव है, तो आप किसी साधु को खोज लेंगे, सत्संग करने लगेंगे, अगर आप बेईमान हैं, तो आपके आस-पास बेईमान इकट्ठे हो जाएंगे।
आप जो भी भीतर से हैं, आप उसी तरफ सरक रहे हैं। हर आदमी अपना जगत खोज लेता है। जरूरी नहीं कि आप महावीर के गांव में होते, तो महावीर के पास जाते। बहुत से नहीं गए। महावीर अपना जगत खोज लेता है। जरूरी नहीं कि आप महावीर के गांव में होते, तो महावीर के पास जाते। बहुत से लोग नहीं गए। महावीर से कुछ लेना देना नहीं मालूम पड़ा।
मैं एक मकान में रहता था आठ वर्ष तक। मेरे मकान के ऊपर ही एक प्रोफेसर रहते थे। आठ वर्ष! जब वे चलते थे, तो ठीक उनके पैर की आवाज मुझे सुनाई पड़ती थी। नीचे हम बात करते थे, तो उसकी आवाज उन तक जाती होगी। लेकिन कभी नमस्कार भी होने का कोई संबंध नहीं बना। फिर उनका ट्रांसफर हो गया। वे कहीं होकर चले गए। कोई दो वर्ष बाद उनके कालेज मेंैं बोलने गया, नये गांव में। वे एकदम रोने लगे मुझे सुनकर। कहने लगे, कि "क्या हुआ, आठ वर्ष तक ठीक मैं आपके सिर पर बैठा हुआ था... !"
संबंध बनता है तब, जब भीतर कुछ खुलता है। आप किस तरफ खुले हैं, इसे ध्यान रखना। महावीर आस्त्रव को एक तत्व कहते हैं--खुलेपन को। अगर पाप की तरफ खुले हैं, तो जीव नीचे उतरता चला चाएगा। और लक्षण यह होगा कि आप भारी होते जाएंगे, दुखी होते जाएंगे, चिंतित होते जाएंगे, विक्षिप्त होते चले जाएंगे; अगर पुण्य की तरफ खुले हैं, तो जीवन हलका होता जाएंगा, आप प्रफुल्लित होने लगेंगे, जीवन एक गीत बन जाएंगा, अनजाने फूल खिलने लगेंगे और अनूठी सुगंध आपको घेर लेगी। "संवर"ः महावीर कहते हैं आस्त्रव है आने देना, संवर है रोकना। बाहर से भीतर आने देना एक बात है, और भीतर से बाहर जाने देना दूसरी बात है। बहुत सी ऊर्जा आपकी निरंतर बाहर जा रही है, अकारण सिर्फ अज्ञान में। उसे संवरित कर लेना, उसे रोक लेना वह भी एक तत्व है।
आप रास्ते पर चले जा रहे हैं। जो भी आस-पास विज्ञापन लगे हैं, पढ़ते चले
जा रहे हैं--किसलिए? लेकिन जो भी आप पढ़ते हैं, वह आपको अछूता नहीं छोड़ेगा। वह आपके भीतर जा रहा है, तो आस्रव हो रहा है। कुछ भी कचरा भीतर जा रहा है।
"पनामा सरस सिगरेट छे"--उसको भी पढ़े जा रहे हैं। उसको भीतर लिए जा रहे हैं।
वह भरता जा रहा है। वह काम करेगा, क्योंकि आस्रव हो रहा है। और जब आप पढ़ रहे हैं, तो आपकी ऊर्जा बाहर जा रही है, आपकी चेतना बाहर जा रही है, आपकी शक्ति बाहर जा रही है।
छोटे से कृत्य में भी शक्ति का अपव्यय हो रहा है। इसलिए महावीर कहते हैं कि जमीन पर चार कदम देखकर साधु चले। ज्यादा देखने की जरूरत नहीं है, चार कदम काफी है। जब चार कदम चल लेंगे, तो आंखें चार कदम और देख लेगीं। पर

जमीन पर देख कर चलें, कई कारणों सेः जमीन पर जब आप देख कर चलते हैं, आप हैरान होंगे आपकी आंखें थकेंगी नहीं। और कहीं भी आप देख कर चलेंगे तो आंखें थकेंगी, क्योंकि जमीन हमारी जीवन-दात्री है, वहां से हम पैदा हुए हैं। शरीर भी एक वृक्ष है, जो जमीन से पैदा हुआ है। मिट्टी इसके कण-कण में है।
जब आप जमीन पर देखकर चलते हैं, तो जो ऊर्जा जमीन पर जा रही है, वह वापस लौट आती है, द्विगुणित होकर वापस लौट आती है। जब आप घास पर देख कर चलते हैं; तो ऊर्जा वापस लौट आती है। आदमी के कृत्यों को देख कर मत चलें, और आदमी को मत देखें। आदमी से थोड़ा बचें। आदमी खतरनाक है। उसकी छोटी-छोटी बात भी आपको बाहर ले जा रही है।
लेकिन हम ऊर्जा नष्ट करने में लगे हैं। हमें संवरित करने का ख्याल ही नहीं है। संवर का सुख हमें पता नहीं है। महावीर कहते हैं कि संवर का एक सुख है। शुद्ध ऊर्जा जब भीतर होती है, आप कुछ उसका उपयोग नहीं करते, सिर्फ ऊर्जा होती है, ऊर्जा उबलती है, ऊर्जा नाचती है, कोई उपयोग नहीं करते, सिर्फ शक्ति का शुद्ध आनंद-संवर है। और जो व्यक्ति आस्रव से बचे और संवर करे अपनी ऊर्जा का--वह शक्तिशाली होता चला जाएगा। उसके पास वीर्य होगा; उसके पास पुरुषार्थ होगा; उसके पास साहस होगा। अगर वह आदमी आपकी आंख में आंख डाल देगा, तो आपके भीतर कुछ हिल जाएगा। लेकिन आपकी आंख तो खर्च हो चुकी है। वह वैसे ही है, जैसे चला हुआ कारतूस होता है। उससे आप किसी को देखें भी, तो कहीं उसके भीतर कुछ नहीं होता।
आप एक प्रयोग करें। एक सात दिन तक सिर्फ जमीन पर देख कर चलें और सात दिन बाद जरा किसी की तरफ देखें। अनूठा अनुभव होगा। अगर सात दिन आप जमीन पर देख कर चलते रहे हैं और फिर कोई आदमी जा रहा हो आपके सामने, तो सिर्फ उसके सिर के पीछे दोनों आंखें गड़ा कर कहें कि पीछे लौट कर देख, तो वह आदमी उसी वक्त लौट कर देखेगा। अब आपके पास शक्ति है। करने की जरूरत नहीं है, एकाध ऐसा प्रयोग करके देख लेना। करने की जरूरत नहीं है क्योंकि उसमें भी शक्ति--ऊर्जा नष्ट हो रही है।
अगर महावीर जैसे व्यक्तियों के पास लोग जाकर सम्मोहित हो जाते हैं,
तो ऐसा नहीं है कि महावीर सम्मोहित कर रहे हैं। महावीर का क्या प्रयोजन हो सकता है? लेकिन महावीर इतनी ऊर्जा से भरे हैं कि स्वभावतः उस विराट ऊर्जा की तरफ आप चुंबक की तरह खिंचे आते हैं। आपको भला लगेगा कि आप सम्मोहित हो गए, हिप्नोटाइज हो गए, महावीर ने कुछ खींच लिया, महावीर खींच नहीं रहे हैं। लेकिन संवरित ऊर्जा आकर्षित करती है, मैग्नेटिक हो जाती है।
"निर्जरा" और "मोक्ष"।
निर्जरा महावीर का विशेष शब्द है और बड़ा बहुमूल्य शब्द है। निर्जरा
का अर्थ हैः वे जो हमने जन्मों-जन्मों में कर्म इकट्ठे किए हैं, वे जो हमने जन्मों-जन्मों में बंध किए हैं, पाप किए हैं, पुण्य किए हैं, वे हमारे चारों तरफ इकट्ठे हैं, जैसे धूल--कोई यात्री चले रास्ते पर और धूल इकट्ठी हो जाए वस्त्रों पर। वस्त्रों से धूल को झाड़ दें, उस धूल के झड़ जाने का नाम निर्जरा है।
निर्जरा का अर्थ है, वह जो हमने जन्मों-जन्मों में इकट्ठा किया है, वह
सब झड़ जाए, हम फिर से खाली हो जाएं, शून्य हो जाएं। निर्जरा का अर्थ है, हमने जो संग्रह किया है, वह सब झड़ जाए। बड़े सूक्ष्म संग्रह हैं हमारेः हमारा ज्ञान, हमारी स्मृति, हमारे कर्म, हमारे जन्मों-जन्मों के संस्कार, वे सब इकट्ठे हैं। निर्जरा में वे गिरने शुरू हो जाते हैं। निर्जरा की प्रक्रिया ही महावीर का योग है, कि वे कैसे गिरें?
आस्रव बदलें। गलत के द्वार को खुला न रखें, शक्ति को व्यर्थ मत जाने दें; जब जरूरी हो तभी जाने दें; संवर करें। और भी बहुत इकट्ठा है, पुराना इकट्ठा है। नया इकट्ठा होना बंद हो जाएगा, अगर आस्रव और संवर का ध्यान रहे। लेकिन जो पुराना रखा है, उसके प्रति साक्षी का भाव रखें; उसे सिर्फ देखें, उसे शक्ति मत दें।
एक आदमी आपको गाली देता है। जैसे ही वह गाली देता है, आपको भी गाली देने की इच्छा होती है। इस इच्छा को देखें; यह इच्छा पुरानी आदत है। यह

पुराना संस्कार है। जब जब आपको गाली दी गई है, आपने भी गाली दी है। यह सिर्फ उसकी लकीर है। इसे देखें, इसे काम मत करने दें। क्योंकि अगर आप गाली दे रहे हैं, तो आप ऊर्जा भी बाहर भेज रहे हैं। फिर नया संस्कार बन रहा है, फिर नया कर्म बन रहा है।
महावीर एक जंगल में खड़े हैं। एक ग्वाला आया और उसने कहा कि मैं जरा जल्दी में हूं, मेरी गाएं यह बैठी हैं यहां, तुम जरा ध्यान रखना। उस ग्वाले को यह पता नहीं है कि वे मौन में हैं। और उन्होंने सुना भी नहीं, उन्होंने "हां-हूं" कुछ भी नहीं कहा। ग्वाला जल्दी में था, जल्दी चला गया। सांझ को लौट कर जब वह आया, तो महावीर वहीं मौन खड़े थे। उन्होंने "हां-ना" कुछ भी नहीं कहा। उन्होंने "हां-ना" कहना तो बंद कर दिया था। उन्होंने तो बाहर के सब संबंध शिथिल कर दिए थे, सब सेतु तोड़ डाले थे। गाएं अपने आप उठ कर जंगल की तरफ चली गई थीं। वह ग्वाला आया और उसने देखा कि गाएं वहां नहीं हैं। उसने पूछाः कहां हैं मेरी गाएं? महावीर को चुपचाप खड़ा देख कर उसने समझा कि आदमी चालबाज है। बताता क्यों नहीं है कि मेरी गाएं कहां हैं? जब महावीर चुपचाप ही खड़े रहे, तो उसने सोचा कि हो सकता है, यह आदमी पागल हो! किस तरह का आदमी है? न आंख खोलता है, न बोलता है! मैंने गलत आदमी से कह दिया। तो वह गया जंगल में अपनी गायों को खोजने। वह जब गायों को जंगल में खोज रहा था, तब गाएं जंगल से चर कर सांझ हो जाने के कारण वापस लौट आई थीं। जब वह आदमी लौट कर आया, तो उसने देखा कि गाएं महावीर के पास इकट्ठी हैं। उसने सोचा कि यह आदमी तो गायों को लेकर भागने का इरादा रखता है। इसने पहले गाएं छिपा दी थीं और अब गाएं निकाल ली हैं। अब अंधेरा हुआ, अब यह गाएं लेकर भाग जाता। तो उसने उनकी अच्छी पिटाई की, और उनको बोलते-सुनते न देख कर उसने कहाः क्या तुम बहरे हो? उसे इतना गुस्सा आया कि उसने दो लकड़ियां उठाकर उनके कान में ठोक दीं। महावीर सब देखते रहे। वह आदमी चला गया।
बड़ी प्यारी कथा है कि इंद्र को पीड़ा हुई। शुभ को पीड़ा होगी ही, इतना ही मतलब है। दिव्य जो है, उसको पीड़ा होगी ही, किसी को अकारण सताए जाने पर। तो कथा है कि इंद्र आया, और उसने महावीर के अंतस्तल में, क्योंकि ऊपर से तो वे चुप थे, कहा कि दुख होता है, अकारण आपको सताया गया। महावीर ने भीतर कहा कि अकारण कुछ भी नहीं होता है, मैंने कभी न कभी कुछ किया होगा, यह उसका फल है। अच्छा हुआ, निर्जरा हो गई; एक संबंध छूटा, एक झंझट मिटी। उस आदमी को जो करना था, वह कर गया। इंद्र ने कहा कि हमें कुछ कहें, हम कुछ इंतजाम करें, कोई प्रतिबंध करें। तो महावीर ने कहाः तुम कुछ मत करो। क्योंकि मैं तुमसे कुछ भी करने को कहूं, तो वह कहना एक नया बंध हो जाएगा--एक नया कर्म। फिर मुझे उससे भी निबटना पड़ेगा। तुम मुझे छोड़ो। पुराना लेन-देन चुक जाए, इतना काफी है। मुझे कोई नया लेन-देन शुरू नहीं करना है; मैं व्यापार सिकोड़ रहा हूं, समेट रहा हूं।
निर्जरा का अर्थ हैः वह जो पुराना लेन-देन है, वह चुक जाए। जब कोई गाली दे, तो उसे देख लेना। ताकि जो पुराना लेन-देन है, वह चुक जाए। धीरे-धीरे एक क्षण आता है, जब सब संस्कार झर जाते हैं। ऐसी निर्जरा की अवस्था के पूरे होने पर जो बच रहता है वह मोक्ष है, वह मुक्त अवस्था है--जहां चेतना पर कोई भी बंधन नहीं, कोई भी बोझ नहीं, कोई कंडिशनिंग नहीं, कोई संस्कार नहीं। ये नौ सत्य तत्व हैं। ऐसे सत्य तत्वों के संबंध में सदगुरु के उपदेश से या स्वयं अपने ही भाव से श्रद्धान करना (श्रद्धा करना) सम्यकत्व कहा गया है। सम्यकत्व का अर्थ हैः सम्यसंतुलित हो जाना--टोटली बैलेंस्ड। यह घटना
दो तरह से घट सकती हैः सदगुरु के उपदेश से, या अपने ही प्रयास से।
सदगुरु के उपदेश का क्या अर्थ है? सदगुरु का मतलब है कि जिसने स्वयं जाना हो। पंडित के उपदेश से यह घटना नहीं घट सकती। जिसने स्वयं जाना हो, उसके उपदेश से घट सकती है। लेकिन सदगुरु के उपदेश से भी नहीं घटेगी, अगर आप उपदेश लें ही न, अगर कुछ आप में प्रवेश ही न करे। तो वर्षा के पानी की तरह आपके शरीर पर गिर कर उपदेश विदा हो जाएगा, धूल में खो जाएगा।
वर्षा का पानी गिरता है। अगर आप उसे आकाश से सीधे ही ले लें अपने मुंह में, तो वह शुद्ध होता है। और अगर जमीन पर गिर जाए, तो अशुद्ध हो जाता है। पंडितों से सुनना, जमीन पर गिरे हुए पानी को इकट्ठा करना है; और महावीर

जैसे व्यक्ति से सुनना, सीधे आकाश से गिरी शुद्ध बूंद को मुंह में ले लेना है।
सदगुरु का अर्थ हैः जिसने स्वयं जाना है, जो दूसरों के जाने हुए को नहीं कह रहा है, जिसकी अपनी प्रतीति, अपना दर्शन है; जिसका अपना साक्षात्कार है--उसके उपदेश से यह घटना घटती है। लेकिन उसके उपदेश को लेने की तैयारी हो, मन खुला हो, हृदय के द्वार उन्मुक्त हों, तो ही श्रद्धा घटित होती है। सुनकर ही घटित हो जाती है, अगर सुनने वाला तैयार हो। इसलिए महावीर ने सुनने वालों को अलग ही नाम दिया। उन्होंने सुनने वालों को "श्रावक" कहा है।
सभी सुनने वाले श्रावक नहीं होते हैं। यहां इतने लोग सुन रहे हैं, सभी श्रावक नहीं हैं। जो श्रावक है, वह सुन कर ही श्रद्धा को उपलब्ध हो जाएगा। श्रावक का अर्थ हैः जो इतना हार्दिक रूप से सुन रहा है, इतनी सहानुभूति से सुन रहा है, इतने प्रेम से सुन रहा है कि भीतर कोई भी विरोध, कोई रेसिस्टेंस नहीं है, कोई बचाव नहीं है। वह सब तरह से बह जाने को राजी है। गुरु जहां ले जाए उस धारा में बह जाने को राजी है। गुरु चाहे मौत में ही क्यों न ले जाए, तो भी वह जाने को राजी है। ऐसे सरल भाव से सुनी गई बात से श्रद्धा का जन्म होता है। और या फिर अपने ही प्रयास से।
सौ में से एक व्यक्ति अपने प्रयास से भी कर सकता है। लेकिन उसका अपना प्रयास भी इसलिए सफल होता है कि पिछले जन्मों में सदगुरु के पास कुछ जाना है; उसे कुछ झलक मिल गई है, कोई संपर्क मिल चुका है।
जैसे जन्म अपने ही द्वारा नहीं मिलता, मां-बाप से मिलता है; वैसे ही श्रद्धा भी वस्तुतः अपने ही द्वारा नहीं मिलती, वह भी सदगुरु से ही मिलती है। कोई आदमी जैसे अपने को ही जन्म देने की कोशिश करे कि मैं अपना ही मां- बाप भी बन जाऊं, तो बहुत मुसीबत होगी, बहुत झंझट होगी। शायद यह हो भी नहीं सकता है। वैसे ही ज्ञान का जन्म भी, जहां ज्ञान घटा हो, उस आदमी के निकट आसानी से हो जाता है।
यह इसलिए नहीं कि गुरु आपको ज्ञान दे देता है। ज्ञान कुछ दी जाने वाली चीज नहीं है। पर गुरु कैटेलिटिक एजेंट है, गुरु उत्प्रेरक तत्व है। उसकी मौजूदगी में घटना घट जाती है। घटना तो आपके भीतर ही घटती है, घटना आपसे ही घटती है, पर उसकी मौजूदगी आपको हिम्मत और साहस दे देती है। उसकी मौजूदगी में आप निर्दोष हो पाते हैं। उसकी मौजूदगी में उसका संगीत आपको शांत कर पाता है। उसकी उपस्थिति आपको उठा लेती है उन ऊंचाइयों पर, जिन पर आप अपने ही बल नहीं उठ सकते। उन ऊंचाइयों पर सत्य का दर्शन हो जाता है। उस सत्य के दर्शन की स्थिति को "सम्यकत्व" कहा है।
ऐसा व्यक्ति संतुलित हो जाता है, सम्यक हो जाता है। और जो व्यक्ति सम्यकत्व को उपलब्ध हो गया, उसके जीवन की सबसे बड़ी कठिनाई हट गई; दिशा बदल गई, यात्रा का रुख बदल गया। संसार की तरफ उसने पीठ कर ली, और मोक्ष की तरफ उसका मुंह हो गया।

आज इतना ही।

महावीर-वाणी, भाग 2
बारहवां प्रवचन

मुमुक्षा के चार बीज (लोकतत्व-सूत्रः 3)

नाणेण जाणइ भावे,
दंसणेण य सद्दहे।
चरित्तेण निगिण्हाइ,
तवेण परिसुज्झइ।।

नाणं च दंसणं चेव,
चरित्तं च तवो तहा।
एयं मग्गमणुप्पत्ता,
जीवा गच्छंति सोग्गइं।।

मुमुक्षु-आत्मा ज्ञान से जीवादिक पदार्थों को जानता है, दर्शन से श्रद्धान करता है, चारिष्य से भोग-वासनाओं का निग्रह करता है, और तप से कर्ममलरहित होकर पूर्णतया शुद्ध हो जाता है।
ज्ञान, दर्शन, चारिष्य और तप--इस चतुष्टय अध्यात्म मार्ग को प्राप्त होकर मुमुक्षु जीव मोक्षरूप सदगति पाते हैं।

ज्ञान का कोई शिक्षण संभव नहीं है। शिक्षण सूचनाओं का हो सकता है। ज्ञान का उदभावन होता है, आविर्भाव होता है। ज्ञान कोई ऐसी वस्तु नहीं है, जो बाहर से भीतर डाली जा सके। ज्ञान जीवन की उस धारा का नाम है, जो भीतर से बाहर की ओर आती है। सूचनाएं बाहर से भीतर की ओर आती हैं, ज्ञान भीतर से बाहर की ओर आता है। इसलिए कोई विद्यालय, कोई विद्यापीठ ज्ञान नहीं दे सकता; सूचनाएं दे सकता है, इनफर्मेशंस दे सकता है। कोई शास्त्र, कोई गुरु ज्ञान नहीं दे सकता, सूचनाएं दे सकता है। जो ज्ञान दिया जा सकता है, वह ज्ञान नहीं होगा, इस मौलिक बात को ठीक से ख्याल में ले लें।
ज्ञान आत्मा का स्वभाव है। उसे लेकर ही आप पैदा हुए हैं, जैसे बीज में वृक्ष छिपा हो--वैसे ज्ञान आपमें छिपा है। इसलिए ज्ञान को पाने के लिए कुछ और नहीं करना, सिर्फ बीज को तोड़ना है। बीज मिट्टी में खो जाए, मिट जाए, तो ज्ञान का अंकुरण शुरू हो जाएगा।
ज्ञान को हम लेकर ही पैदा होते हैं। ज्ञान हमारे होने की आंतरिक स्थिति है। जो बीज की खोल है, वह बाधा है। इसलिए ज्ञान को पाने की प्रक्रिया नकारात्मक है, निगेटिव है। कुछ तोड़ना है, कुछ पाना नहीं है; कुछ मिटाना है, कुछ बनाना नहीं है, कुछ गिराना है, कुछ निर्मित नहीं करना है। अस्मिता टूट जाए, "मैं" का भाव टूट जाए, ज्ञान का जन्म हो जाता है।
इसलिए महावीर ने कहा हैः अहंकार के अतिरिक्त और कोई अज्ञान नहीं। और जिस ज्ञान को हम बाहर से भीतर ले जाते हैं, वह भी हमारे अहंकार को ही मजबूत करता है। अहंकार टूटना चाहिए; उलटा मजबूत होता है। जितना हम जानने लगते हैं, जितना हमें ख्याल आता है कि मैं जान गया, उतना ही "मैं" मजबूत हो जाता है। जिसे हम ज्ञान कहते हैं, वह हमारे अहंकार का भोजन बन जाता है। महावीर जिसे ज्ञान कहते हैं, वह अहंकार की मृत्यु पर घटित होता है। इस फर्क को ठीक-से समझ लेना जरूरी है। और हमारे "मैं" की कोई सीमा नहीं है। हम कहते हैं कि "परमात्मा असीम है", हम कहते हैं कि "आत्मा असीम है," हम कहते हैं, "सत्य असीम है", लेकिन वे सब सुने हुए शब्द हैं। हमारी अपनी अनुभव की तो बात इतनी ही है कि "अहंकार असीम है" और अहंकार असत्य है।
मैंने सुना है, जनरल दीगाल एक रात अपने बिस्तर पर सोए हैं। मैडम दीगाल
ने आधी रात कहाः माई गॉड, इट इ.ज सो कोल्ड--हे भगवान, रात बहुत सर्द है। दीगाल ने करवट बदली और कहाः मैडम, इन बेड यू कैन काल मी चार्ल्स--रात बिस्तर में तुम मुझे चार्ल्स कह कर बुला सकती हो।
पत्नी कह रही है, "हे भगवान, रात बड़ी सर्द है", और दीगाल ने समझा कि "हे भगवान" पत्नी उनसे कह रही है!

अहंकार असीम है।
मैंने सुना है यह भी कि जनरल दीगाल ने एक बार अमरीका के प्रेसिडेंट जान्सन को कहा कि फ्रांस को बचाने के लिए परमात्मा से मुझे सीधे आदेश प्राप्त हुए थे; आई रिसिव्ड डाइरेक्ट आर्डर फ्रॉम दि डिवाइन टु सेव फ्रांस।" जान्सन ने कहाः स्ट्रेंज, बिका.ज आई डोंट रिमेंबर टु हैव गिवन एनी आर्डर्स टु यू! मैंने कभी कोई आज्ञाएं तुम्हें भेजी नहीं!
हर आदमी अपने अहंकार में बड़ा विस्तीर्ण है, बड़ा असीम है। एक ही असीम तत्व हम जानते हैं; वह है अस्मिता, वह है अहंकार, और उससे बड़ा झूठ कुछ भी नहीं है; क्योंकि मनुष्य के जो होने की जो शुद्धता है, वहां "मैं" का कभी कोई अनुभव नहीं होता। जितना अशुद्ध होता है मनुष्य, उतना ही "मैं" का अनुभव होता है। जैसे-जैसे शुद्ध होता जाता है, वैसे-वैसे "मैं" तिरोहित होता चला जाता है। परम शुद्धि की अवस्था में "मैं" बिल्कुल भी नहीं बचता। जैसे सोने से कचरा जल जाता है अग्नि में, वैसा ही जीवन से अहंकार जल जाता है। अहंकार की खोल है बीज के चारों तरफ, अकुंर भीतर छिपा है।
इसका यह मतलब नहीं कि अहंकार व्यर्थ ही है; बीज की खोल भी सार्थक है। क्योंकि वह जो भीतर अंकुर छिपा है; वह, अगर बीज की खोल न हो तो हो भी नहीं सकता। इसलिए बीज की खोल जरूरी है एक सीमा तक, क्योंकि रक्षा करती है, बचाती है। और एक सीमा तक जो रक्षा करती है, वही फिर बाधा बन जाती है। फिर अगर खोल इनकार कर दे टूटने से, मिटने से तो भी बीज मर जाएगा।
तो अहंकार बिल्कुल जरूरी है जीवन के बचाव के लिए, सुरक्षा के लिए। जो बच्चा बिना अहंकार के पैदा हो जाए, वह बच नहीं सकेगा, क्योंकि जीवन संघर्ष है। उस संघर्ष में "मैं" का भाव चाहिए। अगर "मैं" का कोई भाव न हो तो वह मिट जाएगा। उसे दूसरे "मैं" मिटा देंगे। उसे "मैं" चाहिए, यह प्राथमिक जरूरत है। लेकिन एक सीमा पर यह "मैं" इतना मजबूत हो जाए, कि जब इसे छोड़ने का क्षण आए तब भी हम छोड़ न सकें, तो खतरा हो गया। फिर जो सीढ़ी थी, वह बाधा बन गई, फिर जिसका सहारा लिया था, वह गुलामी हो गई।
अहंकार जरूरी है प्राथमिक चरण में, और अंतिम चरण में टूट जाना जरूरी है। इसलिए जैसे ही बच्चा पैदा होगा, हम उसे अहंकार सिखाना शुरू करते हैं। लेकिन अगर कोई मरते वक्त भी अहंकार में ही मर जाए, तो बीज खोल में ही मर गया, अंकुरित नहीं हो पाया, और न उस अंकुर ने--उसने आकाश जाना ही न सूर्य का प्रकाश जाना। वह अंकुर छिपा-छिपा अंधा अंधेरे में ही मर गया। वह अवसर खो गया।
जन्म के साथ तो अहंकार जरूरी है, मृत्यु के पहले खो जाना जरूरी है। और जिस व्यक्ति का अहंकार मृत्यु के पहले खो जाता है, उस की मृत्यु, महावीर कहते हैं, मोक्ष बन जाती है।
मरते हम सब हैं। अगर अहंकार के साथ मरते हैं, तो नये जीवन में फिर प्रवेश करना होगा, क्योंकि जीवन से अभी परिचय ही नहीं हो पाया। फिर नया जीवन, ताकि जीवन से हम परिचित हो सकें। अगर अहंकार के साथ ही हम मर गए, खोल के साथ ही मर गए तो फिर हमें बीज में जन्म लेना पड़ेगा। अगर खोल टूट गई और खुला आकाश मोक्ष, मुक्ति का हमें अनुभव हो गया, और जीवन खोल से मुक्त होकर आकाश की तरफ उड़ने लगा, तो फिर दूसरे जन्म की कोई जरूरत न रह जाएगी। शिक्षण पूरा हो गया; अवसर का लाभ उठा लिया गया; जो हम हो सकते थे, हो गए; जो होना हमारी नियति थी, वह पूर्ण हो गई; अर्थ, अभिप्राय, सिद्धि उपलब्ध हो गई। फिर दूसरे जन्म की कोई भी जरूरत नहीं।
अहंकार मर जाए मृत्यु के पहले, तो मोक्ष उपलब्ध हो जाता है।
अब हम सूत्र को लें।
क्योंकि महावीर कहते हैंः "मुमुक्षु-आत्मा ज्ञान से जीवादिक पदार्थों को जानता है।"
दो बातेंः तो एक "मुमुक्षु-आत्मा" को समझ लेना जरूरी है। दो तरह के लोग हैंः एक जो कोरी जिज्ञासा करते रहते हैं। उस जिज्ञासा के पीछे कोई प्राण नहीं होता। वे कुछ करना नहीं चाहते, वे सिर्फ पूछते रहते हैं। पूछ कर जान भी लें तो उनके जीवन में कोई अंतर नहीं आता, सिर्फ जानकारी बढ़ जाती है। वे जो भी इकट्ठा करते हैं, स्मृति में इकट्ठा करते हैं। उनका जीवन

उससे रूपांतरित नहीं होता। ऐसी आत्माओं को महावीर ने जिज्ञासु आत्माएं कहा है।
जिज्ञासा शुभ है, बुरी नहीं है। लेकिन सिर्फ जिज्ञासा आत्मघातक है।
एक आदमी पूछता ही रहे, पूछता ही रहे और इकट्ठा करता रहे जन्मों-जन्मों तक, तो भी कोई रूपांतरण नहीं होगा। और आनंद का कोई अनुभव जानकारी इकट्ठी करने से नहीं होता। हां, जानकारी से सिर्फ इतना ही हो सकता है कि वह आदमी जानकारी के अहंकार से और भी मूर्च्छित हो जाए। इसलिए पंडित अज्ञानियों से भी ज्यादा गहन अंधकार में भटक जाते हैं। ज्ञान का अहंकार, इस जगत में बड़े से बड़ा अहंकार है; धन का अहंकार भी उतना बड़ा नहीं है। इसलिए ज्ञान का अहंकार बचाने के लिए आदमी धन भी छोड़ सकता है, यश भी छोड़ सकता है, पद भी छोड़ सकता है। सब छोड़ सकता है, लेकिन ज्ञान का अहंकार अगर बच जाए तो सब छोड़ने को राजी है।
इस मुल्क में ब्राह्मणों के साथ ऐसा हुआ है। ब्राह्मण के पास न तो धन
था और न पद था, लेकिन सम्राट भी उसके पैर छूते थे। ज्ञान का अहंकार मजबूत था। धनी भी उसके पैर छूते थे। धनी भी अनुभव करते थे कि हम ब्राह्मण के सामने निर्धन हैं, और सम्राट भी अनुभव करते थे कि हम ब्राह्मण के सामने शक्तिहीन हैं। तो ब्राह्मण गरीब रह कर भी प्रसन्न था; दीन रह कर भी प्रसन्न था; झोपड़े में रह कर भी प्रसन्न था। इसलिए भारत में कोई क्रांति नहीं हो सकी। क्योंकि क्रांति हमेशा ब्राह्मणों के द्वारा होती है। भारत के ब्राह्मण बड़े संतुष्ट थे। कोई क्रांति का उपाय नहीं था। शूद्र क्रांति नहीं करते, क्योंकि क्रांति का ख्याल ही उनको आता है, जिनके पास बड़ी बौद्धिक बेचैनी होती है।
मार्क्स ब्राह्मण है, लेनिन ब्राह्मण है, ट्राटस्की ब्राह्मण है, माओ ब्राह्मण है। ये सब इंटेलेक्चुअल्स हैं। ये सब बुद्धिवादी लोग हैं। भारत में माओ और मार्क्स और लेनिन और ट्राटस्की पैदा नहीं हो सके, क्योंकि भारत का सम्राट और धनी भी ब्राह्मण के चरण छू रहा था। व्यवस्था इतनी प्रीतिकर थी, ब्राह्मण के अहंकार को इतनी पोषक थी कि क्रांति का कोई सवाल ही नहीं था। रूस में भी क्रांति होनी बहुत मुश्किल है, क्योंकि जो भारत ने किया था वही रूस कर रहा है। रूस में बुद्धिजीवी का बहुत आदर है। यूनीवर्सिटी का प्रोफेसर, लेखक, कवि, संगीतज्ञ परम आदृत हैं। उनके आदर की कोई कमी नहीं है। और जब तक वह आदृत हैं, तब तक कोई उपद्रव नहीं हो सकता।
ज्ञान का अहंकार सूक्ष्मतम है। और महावीर के हिसाब से जिज्ञासा, मात्र कोरी जिज्ञासा, सिर्फ आपको अहंकार से भर देगी, इसलिए मुमुक्षा चाहिए। जिज्ञासा काफी नहीं है। मुमुक्षा का अर्थ है कि मैं जानने में उत्सुक नहीं हूं। और अगर मैं जानना भी चाहता हूं, तो अपने को रूपांतरित करने के लिए जानना चाहता हूं। जानना मेरे लिए उपाय है, लक्ष्य नहीं। जान कर ही मैं राजी नहीं हो जाऊंगा, जान कर मैं अपने को बदलना चाहूंगा। जीवन में मुझे रूपांतरण करना है, वह मेरा लक्ष्य है। जीवन की शुद्धि लानी है, मुक्ति लानी है, वह मेरा लक्ष्य है। जीवन में कहीं कोई कलुष न रह जाए, कोई कषाय न रह जाए, जीवन में कोई बंधन न रह जाए, जीवन में कुछ दुख का कांटा न रह जाए, वह मेरा लक्ष्य है। और जानना चाहता हूं तो सिर्फ इसलिए जानना चाहता हूं कि कैसे यह हो सके। ज्ञान साधना है। जिज्ञासु के लिए ज्ञान साध्य है; मुमुक्षु के लिए ज्ञान साधन है, मुक्ति लक्ष्य है।
बुद्ध का उल्लेख कीमती है। बुद्ध निरंतर कहते थे, एक आदमी को तीर लगा
और वह गिर पड़ा। और वह बेहोश होने के करीब है। और गांव के लोग इकट्ठे हो गए। वे उसका तीर खींचना चाहते हैं। बुद्ध भी उस गांव से गुजरते हैं। वे भी वहां पहुंच गए। लेकिन वह आदमी कहता है, "पहले तीर निकालने के पहले मुझे यह तो पता हो जाए कि तीर किसने मारा? तीर निकालने के पहले मुझे यह तो
पता हो जाए कि तीर किस दिशा से आया? तीर निकालने के पहले मुझे यह तो पता हो जाए कि तीर विषाक्त है या नहीं?" बुद्ध ने कहाः "पागल, तीर को पहले निकल जाने दे, फिर तू सब जिज्ञासाएं कर लेना। क्योंकि तेरी जिज्ञासाएं इतनी लंबी हैं कि अगर उनको तृप्त करने की कोशिश की जाए तो हो सकता है, इसके पहले कि जिज्ञासाएं पूरी हों, तेरे जीवन का दिया बुझ जाए!"

फिर तो बुद्ध ने इस घटना को अपना आधार बना लिया। फिर तो वे लोगों से कहते थे, "मत पूछो कि ईश्वर क्या है? मत पूछो कि आत्मा क्या है? सिर्फ इतना ही पूछो कि दुख से कैसे निवृत्ति हो, तीर से कैसे छुटकारा हो?" जीवन बिंधा है तीरों से, जीवन जल रहा है प्रतिपल, और हम जिज्ञासाएं कर रहे हैं बचकानी! लगती हैं बड़ी तात्विक; परमात्मा की बातें बड़ी तात्विक लगती हैं, लेकिन बुद्ध कहते हैं, जरा भी तात्विक नहीं हैं। तत्व की बात तो इतनी है कि तुम दुखी हो। तुम क्यों दुखी हो, और कैसे दुख का निवारण हो जाए, तत्व की बात तो इतनी है कि तुम कारागृह में पड़े हो। कहां है द्वार, कहां है चाबी, कि तुम कारागृह के बाहर हो जाओ। कैसे जीवन मुक्त हो सकें उस उपद्रव से, जिसमें हम घिरे हैं, जिस पीड़ा और संताप में हम पड़े हैं, कैसे इस गर्त अंधेरे से जीवन प्रकाश में आ सके, वही बात तात्विक है।
तो मुमुक्षु और जिज्ञासु में एक बुनियादी फर्क है, और वह कीमती है। क्योंकि अगर जिज्ञासा के रास्ते पर कोई चलता रहे तो दर्शन में प्रवेश कर जाएगा--फिलासफी में। अगर मुमुक्षा के रास्ते पर कोई चले तो धर्म में प्रवेश करेगा, फिलासफी में नहीं। धर्म बहुत व्यावहारिक है, वास्तविक है, वैज्ञानिक है। जो वास्तविक है उसे कैसे बदला जाए? व्यर्थ की बकवास से धर्म का कोई संबंध नहीं है।
लेकिन मुमुक्षा होनी चाहिए। आपके प्रश्न बुद्धि से न उठें, जीवन के अनुभव से उठें, तो मुमुक्षा बन जाते हैं। कोई मेरे पास आता है, वह पूछता है, "ईश्वर है या नहीं?" मैं उससे पूछता हूं कि "तुम्हारे जीवन के किस अनुभव से प्रश्न उठ रहा है। अगर ईश्वर है तो तुम क्या करोगे, अगर नहीं है तो तुम क्या करोगे?" वह आदमी कहता है, "मैं बस जानना चाहता हूं, है या नहीं।"
है, तो भी यह आदमी ऐसा ही रहेगा, जैसा है। नहीं है, तो भी यह ऐसा ही रहेगा, जैसा है।
क्या फर्क पड़ता है, एक आदमी जैन दर्शन में विश्वास करता है, एक आदमी हिंदू दर्शन में विश्वास करता है; एक आदमी इस्लाम म, एक आदमी ईसाई, उनके दर्शन अलग-अलग हैं, फिलासफी अलग-अलग हैं, लेकिन ये आदमी बिल्कुल एक जैसे हैं। किसी को भी गाली दो, वह क्रोध करेगा, भला ईश्वर हो उसके दर्शन में या न हो, भला वह मानता हो कि आत्मा बचती है मृत्यु के बाद या न मानता हो, भला वह मानता हो कि पुनर्जन्म होता है या नहीं होता। गाली से परीक्षा हो जाएगी कि ये चारों आदमी एक जैसे हैं।
क्या फर्क है हिंदू, मुसलमान, ईसाई, जैन में?
फर्क बातचीत में होगा, अंतस्तल में जरा भी फर्क नहीं है। आदमी को भीतर खोदो, बिल्कुल एक जैसा है। बस, ऊपर चमड़ी-चमड़ी के फर्क हैं।
मुमुक्षा का अर्थ है कि जो मैं जानना चाहता हूं, उससे मैं जीवन को बदलने का काम लूंगा; वह मेरे लिए एक उपकरण होगा, उससे मैं नया आदमी बनूंगा। अन्यथा ज्ञान भी मूर्छा बन जाएगा, शराब की तरह हो जाएगा। बहुत लोग ज्ञान का उपयोग शराब की तरह ही करते हैं। उसमें अपने को भुलाए रखते हैं। शराब का मतलब ही इतना है, जिसमें हम अपने को भुला सकें, और जिसमें भुला कर अकड़ पैदा हो जाए। तो पंडितों की अकड़ आप देखते हैं! ब्राह्मण जैसी अकड़ दुनिया में कहीं देखी नहीं जा सकती। और अकड़ इतनी स्वाभाविक हो गई है, खून में मिल गई है कि उसे पता भी नहीं चलता कि अकड़ है।
जितने हम मूर्च्छित होते हैं, उतना अहंकार मजबूत होता है।
सुना है मैंने, एक दिन मुल्ला नसरुद्दीन गया शराबघर में। एक गिलास शराब उसने बुलाई, लोग चकित हुए देख कर कि वह क्या कर रहा है। थोड़ी सी शराब उसने अपने कोट के खीसे में डाल ली और बाकी पी गया। फिर दूसरा गिलास, तब लोग और चौंक कर देखने लगे कि वह क्या कर रहा है। फिर उसने थोड़ी सी शराब खीसे में डाली गिलास से और बाकी पी गया।
ऐसे पांच गिलास, और हर बार!
सभी उत्सुक हो गए कि वह कर क्या रहा है? पांच गिलास पी जाने के बाद उसकी रीढ़ सीधी हो गई और अकड़ कर खड़े होकर उसने कहाः "नाउ आई कैन डिफीट एनीबडी इन दिस प्लेस--अब किसी को भी मैं चारों खाने चित्त कर सकता हूं, कोई है?"

दुबला-पतला नसरुद्दीन, किसी को भी चित्त वहां कर नहीं सकता। लेकिन बेहोशी अहंकार को मजबूत कर देती है। और तभी चमत्कार की घटना घटी कि उसके खीसे से एक चूहा बाहर निकला, और उसने कहाः दि सेम गोज फार एनी राटन कैट टू-- कोई भी सड़ी बिल्ली हो, उसके लिए भी यही चुनौती है।
आदमी ही नहीं, चूहा भी, होश में हो तो बिल्ली से डरता है। अपनी अवस्था जानता है। बेहोश हो जाए, तो बिल्ली को भी चुनौती देता है।
अहंकार मूर्छा के साथ घना होता है, जागृति के साथ पिघलता है। जितना जागा हुआ व्यक्ति, उतना निरहंकारी हो जाएगा; जितना सोया हुआ व्यक्ति होगा, उतना अहंकार से भर जाएगा।
मुमुक्षु की खोज अहंकार को भरने की नहीं है। ज्ञान उसके लिए शराब नहीं है; ज्ञान उसके लिए जीवन रूपांतरण की प्रक्रिया है। वह उतना ही जानना चाहेगा, जितने से जीवन बदल जाए। वह उतने में ही उत्सुक होगा, जिसको व्यवहार में लाया जा सके।
इसलिए महावीर कहते हैंः "मुमुक्षु-आत्मा ज्ञान से तत्वों को जानता है।"
जिन तत्वों की हमने बात की। छह महातत्व, फिर नौ तत्व, मुमुक्षु-आत्मा
इन तत्वों को समझने की कोशिश करता है। सिर्फ इसलिए कि इनके द्वारा कैसे मैं अपने जीवन को नया कर सकूं, कैसे मेरा नया जन्म हो सके?
यह ध्यान में बना रहे, तो ज्ञान आपके लिए मूर्च्छा नहीं बनेगा, मुक्ति
बन जाएगा। अगर यह ध्यान से उतर जाए, तो आप ज्ञान का अंबार लगाए जा सकते हैं, जैसे कोई धन का अंबार लगाता है। फिर तिजोरी जितनी बड़ी होने लगती है, उस आदमी की अकड़ बढ़ने लगती है। आपका ज्ञान बढ़ने लगेगा, आपकी अकड़ बढ़ने लगेगी। ज्ञान अकड़ न बने, यह ध्यान रखना जरूरी है। इसलिए हमने इस देश में ज्ञान का मौलिक लक्षण किया कि जिससे विनम्रता बढ़ती जाए, वही ज्ञान है। नहीं तो उसे ज्ञान कहना व्यर्थ है; वह ज्ञान के नाम पर शराब है। और जब कोई व्यक्ति मुमुक्षा की दृष्टि से, अपने को बदलने की दृष्टि से ज्ञान की खोज करता है तो शीघ्र ही उसे दर्शन होना शुरू हो जाता है। उसे चीजें दिखाई पड़ने लगती हैं। वह जो-जो अनुभव करता है, जो-जो समझता है, जिस-जिस बात की अंडरस्टैंडिंग पैदा हो जाती है; वह-वह उसकी प्रतीति भी बनने लगती है। होना ही चाहिए। क्योंकि जिस बात को मैं ठीक-से समझ लूं, वह मेरे अनुभव में आ जानी चाहिए।
आपने कितनी बार सुना है कि क्रोध पाप है, क्रोध बुरा है, क्रोध जहर है, क्रोध पागलपन है। यह आपने सुना है, लेकिन यह आपका दर्शन नहीं बन पाया। क्योंकि क्रोध तो आप किए ही चले जाते हैं। यह सुना है, यह ज्ञान बन गया। अगर दूसरे को समझाना हो, तो आप समझा सकते हैं। पांडित्य दूसरे के लिए है, अपने लिए नहीं। आप तो अभी भी क्रोध किए चले जाएंगे। तो यह समझ दर्शन नहीं बन पाई, समझ ही नहीं है। सिर्फ कचरे की तरह आपने मस्तिष्क में शब्द भर लिए हैं। उनको आप दोहरा सकते हैं। आप ग्रामोफोन के रिकॉर्ड हो गए लेकिन आपका अंतस्तल बिल्कुल अछूता है।
अगर सच में ही आपने अनुभव किया हो कि क्रोध जहर है। इसका आपकी प्रतीति
और आपका ज्ञान सघन हुआ हो; आपने इसे जीवन के अनुभव में परखा हो, निरीक्षण किया हो, क्रोध करके देखा हो; आंख बंद करके ध्यान किया हो कि जहर फैल रहा है शरीर में, मन में धुआं उठ रहा है--मैं उसी हालत में हूं जिसमें मैं पहले था, या कि बेहोश हूं? मेरा मन धुंधला है या प्रखर और साफ है? मेरे भीतर धुआं घिर गया है, सब चीजें अस्त-व्यस्त हो गई हैं, या चीजें सम्यक रूप से अपनी जगह पर हैं और मैं सुव्यवस्थित हूं? मैं सम्यक हूं या असम्यक हो गया? क्रोध करके क्रोध को अनुभव में--वह जो जाना है, अगर इसकी प्रतीति हो जाए, तो दर्शन शुरू हो जाता है। तब आप ऐसा नहीं कहेंगे कि शास्त्र कहते हैं कि क्रोध जहर है। आप कहेंगे कि मैं जानता हूं कि क्रोध जहर है, और जिस क्षण आप जानते हैं कि क्रोध जहर है उसी क्षण क्रोध करना असंभव होने लगेगा क्योंकि कौन जहर को जान कर पीता है? कौन पत्थर को पत्थर जान कर रोटी की तरह खाता है? ज्ञान क्रांति बन जाता है। लेकिन ज्ञान तभी क्रांति बनता है, जब समझ दर्शन में रूपांतरित होने लगे। तो जो सुना है सदगुरु से, जैसा महावीर ने

कहा है कि सदगुरु के उपदेश से, जिस व्यक्ति में आपको लगा है कि कोई क्रांति घटी है, उसके पास जो सुना है, उसे अपने जीवन के अनुभव के साथ जोड़ने का नाम "साधना" है।
सुना, और वह सुना हुआ ही रह गया, कान का हिस्सा रह गया, व्यर्थ चला गया। व्यर्थ ही नहीं चला गया, हानिकर भी हो गया। क्योंकि अब आप बकवासी हो जाएंगे, आप उसको बोलने लगेंगे, आप दूसरों से कहने लगेंगे।
हमारी हालत ऐसी ही है, जैसे कोई हमें बताए कि यहां हीरे की खदान है और
हम चले जाएं बाजार में और लोगों को समझाएं कि जाओ, वहां हीरे की खदान है, और खुद भिक्षा मांगें।
क्या कोई आपका भरोसा करेगा कि आपको हीरे की खदान का पता है? और आप भिक्षा मांग रहे हैं और जो आपको दो पैसे दान दे देता है, उसको आप समझा रहे हैं कि तू जा, हीरे की खदान फलां जगह है, करोड़ों के हीरे वहां पड़े हैं।
अगर आपको हीरे की खदान पता चलेगी, तो पहला काम यह करेंगे आप, कि किसी
और को पता न चल जाए। पहली जरूरत यह हो जाएगी मन में कि यह किसी और को तो पता नहीं। और इसके पहले कि किसी और को पता चले, यह खदान खाली कर ली जाए न कि आप बाजार में लोगों को समझाते फिरेंगे?
मुमुक्षु और जिज्ञासु में यही फर्क है। मुमुक्षु को जैसे ही पता चलता
है कि यहां हीरा है, वह खोदने में लग जाता है। और जिस दिन हीरा उसके पास होता है और हीरे की चमक उसके जीवन में आ जाती है, उस दिन लोग उससे खुद ही पूछने लगते हैं कि क्या हो गया, क्या मिल गया? कौन-सा रस, कौन-सा नया द्वार, कौन-सा संगीत तुम्हारे जीवन में आ गया, जिसकी सुगंध, जिसकी ध्वनि दूसरे को भी छूती है।
"मुमुक्षु-आत्मा ज्ञान से पदार्थों को जानता है, दर्शन से श्रद्धान करता है।"
और अनुभव जब तक न हो, तब तक श्रद्धा नहीं होती। लोग कहे जाते हैं, "श्रद्धा करो", लेकिन श्रद्धा कैसे हो सकती है जब तक अपना अनुभव न हो। कोई कहता है कि "शक्कर मीठी है", सुन कर कैसे श्रद्धा हो? और जान कर कैसे अश्रद्धा होगी? जिस दिन शक्कर कोई मुंह में रख देगा और मीठे का अनुभव होगा, श्रद्धा हो जाएगी। मुंह में मीठे का अनुभव हो रहा हो, तो फिर आपसे कोई नहीं कहेगा कि "श्रद्धा करो" कि "शक्कर मीठी है"।
समझ दर्शन बने, अनुभव बने, तो अनुभव श्रद्धा बन जाती है।
दुनिया में श्रद्धा की कमी नहीं है, दुनिया में मुमुक्षा की कमी है। लोग जिज्ञासु हैं। और इस जिज्ञासा को बढ़ाने में शिक्षा ने बड़ा साथ दिया है, क्योंकि हमारा पूरा शिक्षाशास्त्र जिज्ञासा पर खड़ा है, मुमुक्षा पर नहीं। यही पूरब और पश्चिम की शिक्षा व्यवस्था का भेद है।
हमारी शिक्षा मुमुक्षा के आधार पर खड़ी थीः "वह सीखो, जिससे जीवन बदलता हो।" आज की शिक्षा इस आधार पर खड़ी है कि "वह सीख लो, जिससे आजीविका चलती हो।" जीवन बदलने का कोई सवाल नहीं है, जीवन चल जाए, इतना भर काफी है। सुविधा मिल जाए, धन मिल जाए, जीवन चल जाए। आजीविका आधार है, जीवन नहीं।
पूरी चेष्टा थी हमारी पूरब में कि बच्चा जब पहले दिन गुरुकुल जाए, तो मुमुक्षा के भाव से जाए। वहां से बदल कर लौटने का ख्याल हो। वहां से नया आदमी होकर लौटे, वहां से द्विज होकर लौटे। गुरु के पास जा रहा है, वहां से नया होकर लौटे। वहां से कुछ बातें सीख कर आ जाए, यह मूल्यवान नहीं है। मूल्यवान यह है कि वहां से बीइंग, वहां से अस्तित्व का नया अनुभव लेकर आ जाए। वह अनुभव ही उसके जीवन की आधारशिला बनेगा, उस आधारशिला पर कभी मोक्ष तक भी उठा जा सकता है।
मुमुक्षा से ज्ञान, ज्ञान से दर्शन, दर्शन से श्रद्धा का जन्म है। आपसे महावीर नहीं कहते कि आप मान लो कि मोक्ष है। वे आपसे नहीं कहते कि संसार दुख है, यह मान लो। वे कहते हैं, इसे अनुभव करो। और सभी अनुभोक्ताओं का अनुभव एक ही निष्कर्ष पर ले आता है। सभी अनुभव करनेवालों का सार सदा एक होगा। बातचीत करने वालों का कभी भी कोई तालमेल नहीं हो सकता, यह जरा सोचने जैसी बात है।

दुनिया में हजारों तरह की फिलासफीज हैं, लेकिन विज्ञान एक तरह का है। आखिर क्या कारण है कि फिलासफीज इतनी हों, और विज्ञान एक हो? कारण सीधा है-- क्योंकि फिलासफीज अक्सर बातचीत है, कहीं कोई अनुभव नहीं है जहां कि दो व्यक्ति मिल सकें। विज्ञान अनुभव है, प्रयोग है--मिलना ही पड़ेगा। तो दुनिया में कहीं भी विज्ञान की खोज हो, सारी दुनिया के वैज्ञानिक, आज नहीं कल, उससे राजी हो जाएंगे--होना ही पड़ेगा। अगर सत्य है, तो राजी होना ही पड़ेगा। और कसौटी अनुभव है। आप इनकार कर नहीं सकते, आप यह नहीं कह सकते कि मैं मुसलमान हूं, मेरे घर में पानी सौ डिग्री पर भाप नहीं बनता; तुम हिंदू हो, तुम्हारे घर में बनता होगा, हमारे दर्शन अलग हैं, मेरे घर में पानी डेढ़ सौ डिग्री पर भाप बनता है।
मुसलमान हो कि हिंदू, कि तिब्बत में हों कि इंग्लैंड में, कोई फर्क नहीं पड़ेगा-पानी तो सौ डिग्री पर ही भाप बनेगा। लेकिन यह प्रयोग है, इससे राजी होना पड़ेगा। इसे चार आदमी कर सकते हैं। और उनके अनुभव में जब एक ही बात आएगी, तो कोई उपाय नहीं है लेकिन कोई आदमी कहता है कि ईश्वर के चार हाथ हैं और कोई आदमी कहता है, चार नहीं, अनंत हाथ हैं, और कोई कहता है, सिर्फ दो हाथ हैं, और कोई कहता है कि ईश्वर के हाथ हैं ही नहीं, वह निराकार है--तो इसमें कोई उपाय नहीं है। क्योंकि जिसकी बात की जा रही है, उसको अनुभवगत बनाना असंभव है, कल्पनाजन्य है, विचारजन्य है।
महावीर बहुत ही एम्पिरिकल हैं, व्यावहारिक हैं। वे कहते हैं जो अनुभवगम्य हो सके, वही श्रद्धा बन सकेगी। इसलिए ऊंची आकाश की बातों में मत भटको, जीवन के आधार से चलना शुरू करो। आधार हैः मुमुक्षा, मुक्ति की खोज। मुक्ति की खोज उसी को होगी, जिसको बंधन अनुभव हो रहा है।
गुरजिएफ कहा करता थाः अगर किसी कारागृह में लोग बंद हों, और भूल गए हों कि यह कारागृह है, तो स्वभावतः वे निकलने की कोई चेष्टा नहीं करेंगे कि जेल से बाहर निकल जाएं, क्योंकि जेल है ही कहां? कारागृह में रहने वाले लोग अगर समझ रहे हों कि यही घर है, तो उनकी चेष्टा यही होगी कि इस घर को कैसे सुंदर बनाएं? कैसे इसकी दीवालों पर रंग रोगन करें, कैसा फर्नीचर जमाएं? कैसा सजाएं इस घर को? और अगर कोई उनसे कहे कि बाहर आ जाओ, तो वे नाराज होंगे। कोई उनसे कहे, बाहर खुला आकाश भी है, इन अंधेरी कोठरियों में मत रहो, तो वे प्रसन्न नहीं होंगे। क्योंकि जिन्हें तुम अंधेरी कोठरियां कह रहे हो, वह उनके जीवन का सार-सर्वस्व है, वह उनका घर है।
मुमुक्षा का अर्थ हैः आपको यह अनुभव होना शुरू हो गया कि जीवन बंधन है, पीड़ा है, संताप है, दुख है। इससे दो यात्राएं शुरू हो सकती हैं। अनुभव हो जाए कि जीवन दुख है, तो आप अपने को बेहोश करने की कोशिश कर सकते हैं, ताकि दुख भूल जाए। सभी लोग यही कर रहे हैं। कोई कामवासना में डूब रहा है, कोई शराब में डूब रहा है; कोई संगीत में, कोई फिल्म में, कोई कहीं और, कोई कहीं और; कोई जुआ खेल रहा है, कोई रेस में जाकर दांव लगा रहा है। वे भूलने के लिए उपाय हैं, कहीं, जहां मुझे अपनी याद न रहे।
बड़े मजे की बात है। घोड़ों की दौड़ में आदमी कितने उत्सुक रहते हैं, कोई घोड़ा आदमी की दौड़ में इतना उत्सुक नहीं है! घोड़ों को आदमी की दौड़ में कोई भी रस नहीं है। एक धेला भी देने को घोड़े राजी नहीं होगें। आदमी इतना घोड़े की दौड़ में रस ले रहा है, जरूर कहीं आदमी में कोई विकृति है। वह कहीं भी अपने को भुलाने की कोशिश कर रहा है। कहीं कोई उत्तेजना, जहां थोड़ी देर को अपनी याद न रहे। घोड़ों की दौड़ हो, तो वह रीढ़ को सीधा करके बैठ जाए और देखने लगे। घोड़ा इतना ज्यादा ध्यान में हो जाए कि अपना विस्मरण हो जाए, फारगेटफुलनेस हो जाए। उत्तेजना, किसी भी तरह की उत्तेजना चाहिए।
आदमी ने हजार-हजार तरह की उत्तेजनाएं खोजीं हैं। यूनान में शेरों के सामने, सिंहों के सामने आदमियों को फेंक देते थे, और जब सिंह आदमियों को चीड़ेंगे, फाड़ेंगे, तो लाखों लोग बैठ कर देखेंगे, आनंद लेंगे। क्या रस रहा होगा? फर्क नहीं पड़ा है आदमी में बुहत अभी भी जब दो पहलवान लड़ते हैं और आप गौर से देखते हैं, तो क्या देख रहे हैं? या फिल्म में जब कोई खून, हत्या और भाग-दौड़ होती है, तो आप क्यों इतने उत्सुक हो जाते हैं? या दुनिया में जब युद्ध चलता है, तो आपकी प्रसन्नता क्यों बढ़ जाती है? घटनी चाहिए युद्ध के

चलने से, पर आप प्रसन्न हो जाते हैं! सुबह जल्दी ब्रह्ममुहूर्त में उठने लगते हैं। क्या हो रहा है? कुछ हो रहा है चारों तरफ।
उत्तेजना आपको अपने में आने से रोकती है, बाहर ले जाती है। उत्तेजना में आप दूसरे में डूब जाते हैं, खुद को भूल जाते हैं। कोई न कोई उत्तेजना चाहिए। ऐसा भी हो सकता है कि आप उत्तेजना में प्रसन्न न होते हों, दुखी होते हों। समझ लें कि आपके सामने सिंह किसी को फाड़ कर खा रहा हो और आपकी आंखों से आंसू झर रहे हों, लेकिन तब भी, आप--वह भी आपका भूलना ही है। उस आंसू गिरने में भी वह सिंह और आदमी प्रमुख हो गए हैं, आप अपने को भूल गए हैं। मैंने सुना है कि एक यहूदी बुढ़िया को उसका बेटा पहली दफा फिल्म दिखाने ले गया। वह फिल्म एक पुरानी रोमन कथा पर आधारित थी। और उसमें वह अनिवार्य दृश्य आया, जिसमें ईसाइयों को रोमन सम्राट फेंक रहे हैं सिंहों के सामने, बुढ़िया की आंखों से आंसू बहने लगे। उसके मुंह से चीत्कार निकलने को थी कि उसके बेटे ने कहाः इतना क्यों परेशान हो रही हो? उसने कहा कि देखो, बेचारे आदमियों को सिंह किस तरह फाड़ कर खा रहे हैं।" तो उसने कहा कि "वे आदमी नहीं हैं, ईसाई हैं।
यहूदी थी बुढ़िया। वे आदमी नहीं हैं, ईसाई हैं--बुढ़िया ने कहाः अच्छा।
तब उसने अपने आंसू पोंछ लिए। वह प्रसन्नता से देखने लगी। लेकिन दो ही मिनट बाद फिर उसके आंसू बहने लगे। फिर जब चीत्कार निकलने को थी तो उसके लड़के ने कहा कि अब क्या मामला है? उसने कहा कि देखो, एक बेचारा सिंह खड़ा है और उसको एक भी आदमी नहीं मिला। पहले वे बेचारे आदमी थे जिनको सिंह खा रहा था, लेकिन अब वे ईसाई हैं, अब एक बेचारा सिंह अकेला खड़ा है, उसको कोई आदमी नहीं मिला। अब वह उसके लिए रो रही है!
आदमी चाहे रोए और चाहे हंसे, जब तक दूसरे पर ध्यान है, तब तक अपना विस्मरण है। इसीलिए ट्रैजिडि का भी उतना रस है। बड़े मजे की बात है कि दुनिया में इतनी ट्रैजिडि है, इतना दुख है, फिर भी आप दुखांत नाटक देखने जाते हैं!
और ध्यान रहे, दुखांत नाटक ज्यादा चलते हैं सुखांत नाटक के बजाय। यह बड़ी अजीब बात है। दुनिया में काफी दुख है। अभी आपको दुख का अनुभव नहीं हुआ है कि आप दुखांत नाटक देखने जा रहे हैं? लेकिन अगर कहानी में दुख न हो और दुख पर कहानी का अंत न हो, तो उतनी उत्तेजना पैदा नहीं होती, क्यों?
अगर कहानी बिल्कुल सुखांत हो तो उसमें रस ज्यादा नहीं आएगा, क्योंकि सुख दूसरे को मिल रहा हो तो हमें कोई रस नहीं आता। दुख दूसरे को मिल रहा हो, तो ही हमें रस आता है। इसलिए दुनिया में नब्बे प्रतिशत कहानियां दुखांत लिखी जाती हैं, केवल दस प्रतिशत सुखांत लिखी जाती हैं। और वह दस प्रतिशत भी बाजार में टिक नहीं पाती हैं, दुखांत कहानियों के मुकाबले।
आदमी अजीब है। अगर दुख का अनुभव हो तो वह उसे भूलने की कोशिश करता है। जीवन के ढंग को बदलने की नहीं, ताकि दुख से ऊपर उठ जाए, और वे कारण मिट जाएं जिनसे दुख पैदा होता है। जब कोई व्यक्ति दुख को मिटाने की तैयारी करता है, भुलाने की नहीं तो मुमुक्षा का जन्म होता है, तो मोक्ष की खोज शुरू हो जाती है।
दर्शन से श्रद्धा और चारिष्य श्रद्धा से। श्रद्धावान ही चारिष्य को उपलब्ध होता है। जब अपना अनुभव बता देता है कि क्या सही है और क्या गलत है, और जब अपने अनुभव पर भरोसा प्रगाढ़ हो जाता है, तो चरित्र बदलना शुरू हो जाता है। जो सही है, उस दिशा में चरित्र अपने आप बहने लगता है। वैसे ही, जैसे पानी ढाल की तरफ बहता है। जो गलत है, उस तरफ से जीवन अपने आप मुड़ना शुरू हो जाता है। गलत की तरफ से मुड़ना पड़ता है हमें, क्योंकि हमारे जीवन में कोई श्रद्धा और कोई अनुभव नहीं है। सही को लाने की कोशिश करनी पड़ती है, क्योंकि हमारे जीवन में कोई श्रद्धा नहीं है।
मुमुक्षा हो, ज्ञान हो, दर्शन हो, श्रद्धा हो तो चारिष्य ऐसे आता है, जैसे छाया आपके पीछे आती है। उसको लाना नहीं पड़ता। आप रुक-रुक कर पीछे देखते नहीं कि छाया आ रही है, कि नहीं आ रही है--आती है। श्रद्धा की छाया है चारिष्य।

अश्रद्धावान दुष्चरित्र हो जाता है, श्रद्धावान चरित्र को उपलब्ध हो जाता है। लेकिन श्रद्धा का आप अर्थ समझ लेना, महावीर का अर्थ श्रद्धा का क्या है? श्रद्धा कोई ऐसी बात नहीं है कि आपने मेरी बात मान ली तो श्रद्धा हो गई। जब तक आपके अनुभव से मेल न खा जाए, तब तक श्रद्धा न होगी। तो महावीर की बात आप सुन रहे हैं, उसे थोड़ा जीवन में प्रयोग करना। जहां-जहां लगेगा कि महावीर जो कहते हैं, वह जीवन से मेल खाता है, वहीं-वहीं श्रद्धा का जन्म होगा। जहां-जहां श्रद्धा का जन्म होगा, वहीं-वहीं चरित्र की छाया पीछे चलने लगेगी।
ठीक के विपरीत जाना असंभव है, लेकिन सभी लोग ठीक के विपरीत चले गए हैं। यूनान में बहुत पुराना विवाद था, सुकरात ने उठाया। सुकरात ने कहा कि ठीक के विपरीत जाना असंभव है। सैंकड़ों वर्ष तक विवाद चला, और सैकड़ों दार्शनिकों ने कहा कि सुकरात की बात ठीक नहीं है, क्योंकि हमें पता है कि ठीक क्या है? फिर भी हम विपरीत जाते हैं। अनुभव तो यही कहता है बाहर का, जगत का कि लोगों को मालूम है कि ठीक क्या है। आपको मालूम नहीं है कि ठीक क्या है? आपको बिल्कुल मालूम है कि ठीक क्या है, फिर भी आप विपरीत जाते हैं। लेकिन ये सुकरात, महावीर, बुद्ध, कृष्ण--ये बड़ी उलटी बातें कहते हैं। ये कहते हैं कि ठीक के विपरीत जाना असंभव है।
ज्ञान चरित्र है। तब जरूर कहीं न कहीं कोई भूल-चूक हो रही है, हमारे शब्दों में कहीं कोई अड़चन हो रही है। हम जिसको ठीक का ज्ञान कहते हैं, वह ज्ञान ही नहीं है, सिर्फ जानकारी है। वही अड़चन हो रही है। आपको भी पता है कि सत्य बोलना चाहिए। आपको इसका बोध है। लेकिन यह सुना हुआ बोध है। किसी ने आपको कहा है; पिता ने कहा है, गुरु ने कहा है, शास्त्र से पढ़ा है, हवा है चारों तरफ कि सत्य बोलना चाहिए, लेकिन जब कठिनाई आती है तो आप जानते हैं कि झूठ बोल कर बचा जा सकता है। वह अनुभव आपका वही है कि सत्य बोल कर फंसेंगे, झूठ बोल कर बचेंगे। और सभी बचना चाहते हैं। वह बचाव--असल में आपका ज्ञान यही है कि झूठ बोल कर बचा जा सकता है।
सभी शास्त्र और सभी तीर्थंकर कहते रहें, इससे क्या फर्क पड़ता है। सभी तीर्थंकर जगत के मिल कर भी आपके छोटे से अनुभव के मुकाबले कमजोर हैं, आपका अनुभव सच है। आपको पता है कि झूठ बोल कर बचूंगा। पहले भी झूठ बोल कर बचे हैं, पहले भी सच बोल कर फंसे हैं। अनुभव आपका यही है; यही आपका ज्ञान है। आपके वास्तविक शास्त्र में लिखा है कि "झूठ ही धर्म है", क्योंकि वही बचाव है। लेकिन आपकी अवास्तविक बुद्धि में लिखा है, "सत्य धर्म है", वही परम श्रेय है। इन दोनों में कोई तालमेल नहीं है। अपने ही शास्त्र से आप चलते हैं। आपका आचरण आपके ही ज्ञान की छाया की तरह चलता है। महावीर का आचरण महावीर के ज्ञान की छाया है। महावीर का ज्ञान आप में छाया पैदा नहीं कर सकता। महावीर की छाया आपके पीछे कैसे चल सकती है? उनके ही पीछे चलेगी।
यह ठीक से समझ लेना जरूरी है कि हम जिसे ठीक जानना कहते हैं, वह जानना
ही नहीं है, ठीक तो बहुत दूर। हमारी सारी कठिनाई इस बात में है कि हमारे मस्तिष्क सुशिक्षित कर दिए गए हैं, और हमारी चेतना अशिक्षित रह गई है। तो एक अर्थ में हमें सभी कुछ मालूम है और एक अर्थ में हमें कुछ भी नहीं मालूम। इसलिए जिस व्यक्ति को मोक्ष के मार्ग पर जाना हो, पहले तो उसे अपने इस ज्ञान के झूठे ख्याल से मुक्ति पानी जरूरी है। उसे एक दफा अज्ञानी हो जाना जरूरी है। उसे ठीक-ठीक साफ कर लेना चाहिए कि मेरा ज्ञान क्या कहता है, नहीं तो धोखा हो रहा है।
महावीर का ज्ञान आप अपना ज्ञान समझ रहे हैं तो धोखा हो रहा है--आप भटकेंगे। आपका ज्ञान क्या है? अपने पास एक छोटा अपना शास्त्र, निजी शास्त्र, प्रत्येक को बनाना चाहिए। उसमें अपना ज्ञान लिखना चाहिए, शुद्ध मेरा ज्ञान यह है कि "झूठ धर्म है।" क्योंकि धर्म वही है जो रक्षा करे। झूठ रक्षा करता है। अपना छोटा सा शास्त्र, निजी, और तब आप पाएंगे कि आपका चरित्र हमेशा आपके शास्त्र की छाया है। तब आपको कभी कोई भूल-चूक नहीं मिलेगी। जो आपके शास्त्र में लिखा है, वही आपका जीवन होगा। लेकिन शास्त्र आपके पास महावीर का है और चरित्र अपना है। इसमें बड़ी अड़चन है। और आप बड़े

धोखे में पड़े हैं। और तब प्रश्न उठता है कि जानने से क्या होगा? जान तो लिया, लेकिन जीवन तो बदलता नहीं। तो महावीर की बात समझ में नहीं आएगी। अगर जानने से जीवन न बदलता हो, उसका एक ही अर्थ हुआ कि जाना नहीं है।
उस जानने को छोड़ें और जानने की कोशिश में लगें। जानने की कोशिश में वही लगेगा, जिसे अज्ञान का बोध हो रहा है। आप सब ज्ञानी हैं, अज्ञान का बोध होता ही नहीं, तो जानने का कोई सवाल ही नहीं उठता। और जब तक सम्यक ज्ञान न हो, तब तक सम्यक चरित्र नहीं हो सकता है।
चरित्र एक कड़ी है, जिसके पहले कुछ अनिवार्य कड़ियां गुजर जानी चाहिए।
जब तक वे अनिवार्य कड़ियां न गुजर जाएं, चरित्र की कड़ी हाथ में नहीं आती। लेकिन आप झूठा कागजी चरित्र पैदा कर सकते हैं, आप आवरण बना सकते हैं, आप पाखंडी हो सकते हैं, आप चेहरे ओढ़ सकते हैं। और चेहरे कभी-कभी इतने गहरे हो जाते हैं, कि इतने पुराने हो जाते हैं कि लगता है, कि आपका यही असली चेहरा है।
रिलके ने, एक कवि ने अपने बचपन का एक संस्मरण लिखा है। उसने लिखा है कि मैं छोटा था और मेरे पिता को बड़ी सांस्कृतिक गतिविधियों में बड़ी रुचि थी। नाटक, कविता, संगीत--और घर में निरंतर कलाकार ठहरते थे। एक बार एक नाटक मंडली घर में ठहरी। उन दिनों अभिनेता चेहरे ओढ़ कर अभिनय करता था--नाटक में मास्क--तो उनके पास बड़े अजीब-अजीब चेहरे थे।
और घर में ही वह ठहरे थे। तो यह छोटा बच्चा रिलके एक दिन उनके कमरे में घुस गया, जब कि सब लोग खाना खाने में लगे थे। वह उनके सजावट के कमरे में पहुंच गया। उसने भी सोचा कि मैं भी एक चेहरा ओढ़ कर देखूं। तो उसने एक भयंकर--बच्चों को बड़ा रस होता है भयंकर में--एक राक्षस का चेहरा लगा लिया, उसे ठीक से बांध लिया। उसके ऊपर एक पगड़ी बांध ली, ताकि उसकी कोरें ढंक जाएं। वह चेहरा उसके चेहरे पर बिल्कुल आ गया। फिर वह राक्षस की तरह चलना उसने शुरू किया कमरे में, एक तलवार उठा ली नकली, और छोटे बच्चे--उनकी कल्पना प्रगाढ़ होती है--और वह बिल्कुल भूल गया, जोश में आ गया। जोश इतना आ गया कि उसने तलवार चला दी। तलवार चलाने से पास की टेबल पर रखी हुई शीशियां गिर गई, उनका रंग नीचे बिखर गया, कोई सामान टूट गया तो वह घबड़ा गया सामान इकट्ठा करने में कि कोई आ न जाए। शीशियां जमाने में वह बिल्कुल भूल ही गया कि "मैं कौन हूं?" और जब सब जमा कर, सब ठीक हो गया तो वहां से भागा कि इसके पहले कि मैं पकड़ जाऊं; लेकिन अपना चेहरा उतारना भूल गया। जब अपने कमरे में जाकर पहुंचा और आईने में उसे खुद का चेहरा दिखाई पड़ा, तो उसने चीख मार दी। वह घबड़ा गया कि यह क्या हो गया? बेहोश होकर गिर पड़ा। लोग दौड़े हुए आए। परिवार के लोग इकट्ठे हो गए। परिवार के लोग हंसने लगे, देख कर सब उसका नाटक।
लेकिन रिलके ने लिखा है, मेरी पीड़ा को कोई भी नहीं समझा। उनकी हंसी देख कर मैं और घबड़ाने लगा। उनकी हंसी देख कर मुझे और भरोसा आने लगा कि कुछ गड़बड़ हो ही गई है; अब इस चेहरे से कोई छुटकारा नहीं दिखाई पड़ता। यह स्मरण ही न रहा कि मैं अलग हूं और यह चेहरा अलग है।
और सभी की जिंदगी में उपद्रव बचपन से ही शुरू होता है, क्योंकि बचपन
से ही बच्चों को चेहरे ओढ़ने पड़ते हैं। बाप कहता है, कब हंसो, इसकी भी आज्ञा बाप देता है। इसकी भी आज्ञा मां देती है कि कब हंसो, कब मत हंसो। तो जब बच्चे को हंसी आती है, तब वह उसको रोक लेता है। तब उसको दूसरा चेहरा ओढ़ना पड़ता है, जो हंसी का नहीं है।
और बच्चे की हंसी के वक्त अलग होंगे आपकी हंसी से, क्योंकि आपके सोचने
के ढंग और उसके सोचने के ढंग बिल्कुल अलग हैं। वह बूढ़ा नहीं है। वह किन्हीं और चीजों पर हंसता है, जिन पर आप हंस ही नहीं सकते। और आप जिन चीजों पर हंसते हैं, उसकी समझ में भी नहीं आ सकता है कि उसमें हंसी की क्या बात है?
एक छोटे बच्चे को उसकी मां ने कहा कि एक मेहमान घर में आ रहा है, ध्यान रखना, उनकी नाक की बात मत उठाना क्योंकि नाक उन मेहमान की थी नहीं, आपरेशन हो गया था। मां परेशान थी कि यह बच्चा एकदम पूछ न ले कि नाक का क्या हुआ? तो मेहमान कहीं अड़चन में न पड़े।

तो मां ने समझा दिया कि नाक की बिल्कुल बात ही मत उठाना। ध्यान रखना,
सब कुछ कहना, नाक की भर बात मत उठाना।
अब बच्चा और भी उत्सुक होकर बैठ गया कि मामला क्या है? अब तक ऐसा कभी नहीं हुआ है। और जब वह आदमी आया तो उस बच्चे ने कहा कि मां, नाक तो है ही नहीं, चर्चा किस बात की करनी, नाक होती तो चर्चा भी हो सकती थी! नाक तो है ही नहीं!
बच्चे का जगत अलग है, उसके सोचने का गणित अलग है। हम उसको बता रहे हैं,
कब हंसो, कब रोओ, कब उठो, कैसे बैठो; क्या करो, क्या न करो। हम उसको झूठ सिखा रहे हैं। उसको चेहरे दे रहे हैं। मजबूरी है, वह कमजोर है, उसे हमारी बात माननी ही पड़ेगी। वह हम पर निर्भर है। चेहरे जितने ओढ़ने लगेगा, हम कहेंगे बच्चा सुंसस्कृत है, मैनरली है। उतना बच्चा शिष्ट होने लगा, जितना चेहरे ओढ़ने लगा। वर्षों के बाद उसे याद भी नहीं रहेगा कि उसका असली चेहरा कहां है? यही चेहरे उसकी जिंदगी हो जाएंगे। वह हंसेगा, वह हंसी झूठी ऊपर से, चिपकाई हुई होगी। वह रोएगा, उस रोने में कहीं कोई रुदन नहीं होगा। वह कहेगा, आप को देखकर बड़ी प्रसन्नता हो रही है, और उसे कोई प्रसन्नता नहीं हो रही होगी।
सब झूठा हो जाएगा।
हम सब इसी झूठ में खड़े हैं, समाज एक महा-असत्य है। लेकिन इतने बचपन में इतने चेहरे ओढ़ाए जाते हैं कि हमें भूल ही जाता है कि हमारा कोई असली चेहरा था। आइने में सदा यही चेहरे देखे हैं, इन्हीं से हमारी पहचान हो गई है।
आप जान कर हैरान होंगे कि अगर किसी व्यक्ति को तीन महीने गहन ध्यान कराया जाए और आइना न देखने दिया जाए, तो तीन महीने बाद आइने में देख कर वह खुद को पहचानने में कठिनाई अनुभव करेगा कि यह चेहरा मेरा है। क्योंकि सब पर्तें उतर जाएंगी और एक नये ही चेहरे का आविर्भाव होगा।
जापान में तो वे कहते ही हैं साधक को--जो भी साधक गुरु के पास आता है,
वे उससे कहते हैं कि फाइंड आउट योअर ओरिजिनल फेस--अपना मूल चेहरा खोजो। बस, यही ध्यान है।
महावीर कहते हैं कि जब ज्ञान श्रद्धा बन जाता है, अनुभव श्रद्धा बन जाता है तो चरित्र अपने आप पीछे आता है। अगर आपके ज्ञान के पीछे आपका चरित्र न आ रहा हो, तो आप चरित्र को दोष देना बंद करो, आप ज्ञान को दोष देना शुरू करो।
लेकिन आपके साधु-संन्यासी आपको समझा रहे हैं कि चरित्र आपका खराब है, ज्ञान तो बिल्कुल ठीक है। यहीं बुनियादी भूल हो रही है। मनुष्य के मन को समझने में इससे बड़ी भूल नहीं हो सकती। साधु-संन्यासी समझा रहे हैं कि चरित्र ठीक करो, ज्ञान तो तुम्हारा ठीक है। क्योंकि तुम्हें कंठस्थ हैं शास्त्र। चरित्र ठीक करो। साधु-संन्यासी भी अपना चरित्र ठीक करने में लगे हैं। ज्ञान उनका भी ठीक है।
चरित्र को ठीक करना ही नहीं पड़ता, सिर्फ ज्ञान को ठीक करना पड़ता है।
जब ज्ञान ठीक हो जाता है, चरित्र एकदम से ठीक होने लगता है। चरित्र का ठीक होना सिर्फ लक्षण है, ज्ञान के ठीक हो जाने का।
जीवन की क्रांति ज्ञान पर निर्भर है, चरित्र पर निर्भर नहीं है।
इसीलिए दुनिया इतनी चरित्रहीन है, क्योंकि सभी लोग चरित्र को ठीक करने में लगे हैं। जिस दिन दुनिया ज्ञान को ठीक करने में लगेगी, चरित्र अपने आप आ जाएगा।
महावीर ज्ञानी हैं, नैतिक चरित्र के उपदेशक नहीं। लेकिन बड़ी भ्रांति है। पश्चिम में, पूरब में, सब तरफ भ्रांति है। एक तो महावीर को लोग बहुत कम जानते हैं, क्योंकि उनके आस-पास जो लोग उन्हें घेरे हैं, उन्होंने महावीर की प्रतिष्ठा ऐसी कर दी है कि वह जानने योग्य मालूम ही नहीं पड़ते। जैन साधुओं को देखकर कौन महावीर को जानना चाहेगा? इनको देख कर ऐसा लगता है कि परमात्मा न करे कि ऐसा कभी अपने जीवन में हो जाए--ऐसी रुग्णता, ऐसी उदासी, ऐसी कठोरता, ऐसा सब जड़-भाव, और जिंदगी से ऐसी लड़ाई। अहोभाव का खो जाना, उत्सव का बिल्कुल विनष्ट हो जाना, मुर्दे की तरह जीना, लाश की तरह तैरना-- कोई देख कर जैन साधुओं को, जैनियों को छोड़ कर, क्योंकि उनको तो कुछ भी

दिखाई नहीं पड़ रहा है, उनके पास एक चश्मा है, दुनिया में किसी को भी जैन साधु को दिखाओ--उसको लगेगा कि पैथालॉजिकल है, कुछ रुग्ण है। कहीं न कहीं कोई गड़बड़ हो गई है। शरीर भी खराब है, मन भी ठीक नहीं है। और दुष्ट है, जिसका हमें ख्याल भी नहीं आ सकता।
जिसका हमें ख्याल भी नहीं आ सकता--जैन को ख्याल नहीं आ सकता कि जैन साधु दुष्ट है। हिंसा का एक रस है--वह चाहे दूसरे को सताने में लो, चाहे ख्रुद को सताने में, उसमें कोई फर्क नहीं पड़ता। सताने का मजा है--कुछ लोग दूसरे को सताते हैं, कुछ लोग अपने को सताते हैं।
ध्यान रहे, अक्सर ताकतवर दूसरों को सताते हैं, कमजोर अपने को सताने लगते हैं। क्योंकि दूसरे को सताने में खतरा है। दूसरे को सताने जाइएगा तो झंझट है, क्योंकि दूसरा भी बैठा नहीं रहेगा। इसलिए जो कमजोर हैं, कायर हैं, नपुसंक हैं, वे दूसरों को सताने का मजा तो ले नहीं सकते, उनके लिए सिर्फ एक ही रास्ता है कि अपने को सताओ, भूखा रखो, नंगा रखो, बीमार रखो, सब तरह से अपने को सताओ और मजा लो।
कठोरता, क्रूरता, हिंसा छिपी हुई दिखाई पड़ेगी। लेकिन उसमें जैन को अहिंसा दिखाई पड़ रही है। उसका कारण कुल चश्मा है।
किसी मनस्विद से पूछो, दुनिया भर के सारे मनस्विद भी इकट्ठे हो जाएं,
तो मैं जो कह रहा हूं, यही गवाही देंगे कि यह आदमी रुग्ण है, बीमार है, पैथालॉजिकल है। यह अपने को सता रहा है, मैसोचिस्ट है।
दो तरह की वृत्तियां हैं हिंसा कीः दूसरे को सताने की और अपने को सताने की। अहिंसक वही है, जो किसी को भी नहीं सता रहा है, न दूसरों को, न अपने को। सताने की धारणा ही जिसकी गिर गई। लेकिन वह आपको साधु ही नहीं मालूम पड़ेगा, जो अपने को नहीं सता रहा है। क्योंकि साधु कैसा है? यह आराम से बैठा है, अपने को भी नहीं सता रहा है।
तपश्चर्या करो कुछ, कुछ उपवास करो, कुछ भूखे रहो, कुछ मर कर दिखाओ तो
ही साधु मालूम पड़ेगा, कि आपको लगे कि साधु आराम से शांत बैठा है, प्रसन्न है, आनंदित है--आपको शक हो जाएगा कि यह आदमी साधु नहीं है। क्योंकि हमने कठोरता और हिंसा को साधुता का अंग बना लिया है।
महावीर की बात बिल्कुल अन्यथा है। महावीर के शरीर को देख कर कोई भी नहीं कह सकता कि पैथालॉजिकल है, बीमार है। महावीर के चेहरे की प्रसन्नता को देख कर कोई नहीं कह सकता है कि इन्होंने अपने को सताया है, वह तो चेहरा मुरझा जाता है। सताए हुए का चेहरा नहीं दिखता महावीर का। उस प्रफुल्लित व्यक्ति का चेहरा दिखता है जो सताना भूल ही गया, न किसी और को, न अपने को। मगर महावीर की यह धारणा और महावीर की यह प्रतिमा दुनिया के सामने प्रगट नहीं हो पा रही है। कारण दिखाई पड़ता है और कारण यही है कि महावीर ने जो बातें कहीं, महावीर ने जो विचार दिया, उस विचार की बड़ी ही भ्रांत व्याख्या हो गई। होने की संभावना थी; उसमें बीज थे। महावीर नग्न खड़े हो गए।
तो पश्चिम में मनस्विद कहते हैं कि कुछ लोगों को नग्न खड़े होने में सुख मालूम पड़ता है, कोई उनको नंगा देख ले। ये वे ही लोग हैं जिनकी कामवासना ठीक नहीं है, विकृत हो गई है। इनको इतने में ही रस आ जाता है कि कोई इनको नग्न देख ले। तो ऐसे आदमी को महावीर में रस आ जाएगा। वह कहेगा कि यह तो बिल्कुल ठीक है। धर्म की आड़ मिलती है और मैं नग्न खड़ा हो जाऊं तो लोग उलटे पूजा करते हैं।
आदमी को अपने को सताने में विजय का रस मिलता है, कि मैं जीत रहा हूं, मैं मालिक हूं। आखिर दूसरे को सताने में आपको क्या रस मिलता है? यही रस न कि वह आपसे बदला नहीं ले सकता, और आप मालिक हैं; वह कमजोर और आप ताकतवर हैं? आदमी जब अपने को सताता है, तब भी उसके अहंकार को मजा आता है कि "मैं ताकतवर हूं। देखो, पंद्रह दिन से भूखा हूं, उपवास किया है; और सारा शरीर ताकत लगा रहा था, कि भूख लगी है, लेकिन मैंने एक न सुनी।"
यह कौन है, जो एक नहीं सुन रहा है? यह दुष्ट अहंकार है। नहीं तो शरीर
जब कह रहा है, भूख लगी है, तो चाहे दूसरे का शरीर कह रहा हो, चाहे अपना शरीर कह रहा हो, फर्क क्या है? एक दूसरा आदमी बैठा हो, उसको भूख लगेगी--आप कहते

हैं, नहीं खाना खाने देंगे, और आपका शरीर कह रहा है कि भूख लगी है, और आप कहते हैं, कि नहीं खाना खाने देंगे, क्योंकि मैंने व्रत लिया है। यह व्रत कौन ले रहा है?
सब व्रत अहंकार के हिस्से हैं। क्योंकि व्रत से मजा आ रहा है कि मैं पंद्रह दिन करके दिखा दूंगा। इस शरीर को दिखा दूंगा करके। यह शरीर है कौन? यह आपका यंत्रभर है। आप वैसा ही पागलपन कर रहे हैं, जैसे कोई गाड़ी को चलाता रहे और कहे कि पेट्रोल नहीं दूंगा। चखा दूंगा मजा बिना पेट्रोल के चलाकर। बिल्कुल पागलपन की बात कर रहे हैं। गाड़ी को पेट्रोल नहीं देने से गाड़ी क्या चखेगी मजा, मजा आप ही चख रहे हैं। लेकिन कोई भी आदमी अगर गाड़ी के साथ ऐसा व्यवहार करेगा खड़े होकर तो आप कहेंगे यह पागल है। लेकिन शरीर के साथ इस तरह के व्यवहार करने वाले लोग पूज्य हो जाते हैं, महात्मा हो जाते हैं। आप भी उनके पागलपन में सहभागी हैं। एक पार्टनरशिप चल रही है, साझेदारी चल रही है।
महावीर का चरित्र तो श्रद्धा का अपरिहार्य परिणाम है। और श्रद्धा, अनुभव की अनुसंगी है। अनुभव ज्ञान से उत्पन्न होता है। ज्ञान मुमुक्षा के बीज से जन्मता है।
"चारिष्य से भोग-वासनाओं का निग्रह हो जाता है, और तप से कर्मफलरहित होकर पूर्णतया शुद्ध हो जाता है।"
बड़े मजे की बात है। महावीर तप को चरित्र के बाद रखते हैं। सब से पहले मुमुक्षा, ज्ञान, अनुभव, श्रद्धा, फिर चरित्र, और फिर तप। जब व्यक्ति के जीवन से वासनाएं क्षीण हो जाती हैं, चरित्र का जन्म होता है। जब गलत की ओर जाने की बात रुक जाती है, जब गलत तरफ जाती हुई ऊर्जा ठहर जाती है, तभी तप का जन्म हो सकता है। क्योंकि तप महा-ऊर्जा में पैदा होता है। वह अग्नि जो आपको जला कर निखार दे, उस अग्नि के इकट्ठे होने के पहले चरित्र का पैदा हो जाना जरूरी है। क्योंकि जिनके पास ऊर्जा ही नहीं है, जिनके पास ईंधन नहीं है, वे भीतर की अग्नि को जला नहीं पाएंगे।
असल में चरित्रहीन पापी नहीं है, सिर्फ मूढ़ है; चरित्रहीन सिर्फ नासमझ है। वह उस ऊर्जा को नष्ट कर रहा है, जिस ऊर्जा से महातप पैदा हो सकता है, और जिससे वह निखर कर नये जन्म को पा सकता है। अमृत जिससे झर सकता है, उसको वह व्यर्थ खो रहा है। वह सिर्फ मूढ़ है।
इसलिए महावीर कहते हैं, कि वह सिर्फ अज्ञानी है। पापी पर दया करो, वह सिर्फ अज्ञानी है। उसको दंड देने की व्यवस्था मत करो, क्योंकि वह सिर्फ भूल कर रहा है। दोष है उसकी समझ में, वह लुटा रहा है चीजें, जिनसे वह बहुमूल्य को खरीद सकता था। अमूल्य को खरीद सकता था, उनको वह क्षुद्र चीजों में लुटा रहा है। लेकिन हमें दिखाई नहीं पड़ता।
चरित्र कोई नैतिक लक्ष्य नहीं है महावीर के लिए, आध्यात्मिक रूपांतरण
का अनिवार्य अंग है। और चरित्र, इसलिए मूल्यवान है कि वह आपकी शक्तियों को संवरित कर देगा। आपकी शक्तियां बच रहेंगी, संगृहीत हो जाएंगी। और एक सीमा पर जब संग्रह आता है तो जैसा विज्ञान का नियम है कि क्वांटिटी, क्वालिटेटिव परिवर्तन बन जाती है। जब एक जगह मात्रा आती है तो गुण का रूपांतरण होता है।
यह थोड़ा समझ लेना चाहिए, यह जैसा विज्ञान का सिद्धांत है, वैसा ही अध्यात्म का भी--आप पानी को गरम करते हैं, निन्यानबे डिग्री तक गर्म किया पानी भाप नहीं बनता, सौ डिग्री सीमा आई, एवोपरेटिंग पॉइंट आया। सौ डिग्री पर फर्क क्या पड़ रहा है? सिर्फ एक डिग्री गर्मी बढ़ रही है, और कुछ नहीं हो रहा है। लेकिन सौ डिग्री पर गर्मी आते ही पानी अचानक भाप बनना शुरू हो जाता है, क्रांति शुरू हो गई। पानी ने अपना रूप छोड़ दिया पुराना, और नया रूप लेने लगा।
गर्मी की एक खास मात्रा पर पानी भाप बनता है। गर्मी की एक खास मात्रा
पर हर चीज बदलती है। हर चीज गर्मी को नीचे गिराते जाएं, एक सीमा पर पानी बर्फ बन जाएगा। लोहा भी भाप बन कर उड़ता है, गर्मी की एक सीमा पर। गर्मी की एक सीमा पर हर चीज बदलती है। इसका मतलब यह हुआ कि सारी बदलाहट के पीछे गर्मी है, अग्नि है।

ऐसी कोई भी बदलाहट नहीं है, जो बिना गर्मी के हो जाए। आपको ख्याल है, ऐसी कोई भी बदलाहट जो बिना गर्मी के हो जाए--चाहे पदार्थ की, चाहे जीव की। जब आप प्रेम से भरते हैं, तो आपको पता है खास तरह की गर्मी से भर जाते हैं? इसलिए हम प्रेम को उष्ण कहते हैं, वार्म कहते हैं। और जब कोई आदमी ठंडा होता है, जिसमें प्रेम बिल्कुल नहीं, तब हम उसको कोल्ड कहते हैं, ठंडा कहते हैं। एक तरह की गर्मी है जो प्रेम में आपको परिव्याप्त कर लेती है। संभोग के क्षण में आप उत्तप्त हो जाते हैं पूरी तरह से। आप इतने उत्तप्त हो जाते हैं, तभी एक नये व्यक्ति का जन्म आपसे हो पाता है।
अभी तो पश्चिम के एक विचारक ने बड़ी महत्वपूर्ण प्रस्तावना की है। और उसने कहा कि शायद स्वीकृत हो जाए, क्योंकि बात कीमती और वैज्ञानिक और प्रयोगसिद्ध मालूम होती है। बहुत पुराने शास्त्र दुनिया के कहते, कि गर्भ के समय में स्त्री के साथ संभोग न किया जाए। लेकिन अब तक उसके लिए कोई वैज्ञानिक आधार नहीं था। लेकिन अभी पश्चिम के वैज्ञानिक ने आधार दिया है। और उसका कहना है कि संभोग के क्षण में इतना उत्ताप पैदा होता है, वह उत्ताप बच्चे के कोमल मस्तिष्क तंतुओं को नष्ट कर देता है। इसलिए संभोग अगर गर्भ की अवस्था में किया जाए तो बच्चे विकलांग पैदा होते हैं, और मस्तिष्क उनका क्षीण होता है।
दो कारणों सेः एक तो उत्ताप बढ़ जाता है स्त्री के शरीर में और बच्चे
के अभी जन्म तो हुए स्मरण तंतु इतने कोमल हैं कि जरा सी गर्मी और वे जल जाते हैं। और स्त्री के शरीर में आक्सीजन की कमी हो जाती है। इसलिए संभोग के क्षण में आप जोर से श्वास लेते हैं, जैसे दौड़ रहे हों। क्योंकि भीतर गर्मी मिले तो आक्सीजन जलने लगती है। आक्सीजन जलती है तो आपको जोर से श्वास लेनी पड़ती है। स्त्री बड़े जोर से श्वास लेती है। उसका पूरा खून उत्तप्त हो जाता है। उस उत्तप्त खून के क्षण में बच्चे के स्नायु भी जलते हैं और आक्सीजन की कमी की स्थिति में उसका आई. क्यू., उसका बुद्धिमाप नीचे गिर जाता है।
इस वैज्ञानिक के हिसाब से दुनिया में जो बढ़ती जाती मानसिक बीमारी का कारण है, उनमें एक बुनियादी कारण है कि सारी दुनिया में अब सारे धर्मों के हिसाब को छोड़ कर, लोग गर्भ के समय भी संभोग कर रहे हैं।
यह बड़े मजे की बात है कि कोई पशु गर्भ के समय संभोग नहीं करता, सिर्फ आदमी को छोड़ कर। कोई पशु पूरी पृथ्वी पर गर्भ के समय संभोग नहीं करता, सिर्फ मनुष्य करता है। तो मनुष्य से ज्यादा विकृत कोई पशु पैदा भी नहीं होता। यह बात ध्यान में रख लेनी जरूरी है कि कोई भी रूपांतरण ऊर्जा का, गर्मी का, फायर का, अग्नि का रूपांतरण है।
तप अंतिम रूपांतरण है, जहां व्यक्ति शरीर से अपने सारे संबंध छोड़ देता है, जहां आत्मा सब तरह के कर्मफल से अलग हो जाती है। एक महागर्मी की जरूरत है। उस गर्मी के पहले चरित्र की घटना घट जानी चाहिए। क्योंकि दुश्चरित्र का मतलब है, लीकेज। उसके जीवन से ऊर्जा इधर-उधर भटक रही है, जैसे नाव में छेद हो, या बाल्टी में छेद हो और आप पानी भर रहे हैं--जब पानी में होती है बाल्टी, बिल्कुल भरी मालूम पड़ती है। जैसे ऊपर उठाने लगते हैं, पानी बहने लगता है। जब तक ऊपर उठ कर आती है, पानी बूंद भी नहीं बचता। सब पानी छेदों से बह जाता है।
मरने के समय में आपकी बाल्टी बिल्कुल खाली होती है। दुख मृत्यु का नहीं है, दुख खाली जीवन का है, जो मरने के क्षण में हाथ आता है। होना उलटा चाहिए। अगर जीवन में चरित्र की आधारशिला निर्मित की होती, तो मृत्यु के समय में आप सबसे ज्यादा भरे हुए होते। और जो व्यक्ति भरा हुआ मर सकता है, उसका फिर कोई जन्म नहीं है। जो खाली मरता है, वह फिर भरने की आकांक्षा से मरता है, फिर नया जन्म शुरू हो जाता है।
जब आपकी खाली बाल्टी आ जाएगी कुएं के पाट पर, स्वभावतः आप फिर से बाल्टी को पानी में डालेंगे। क्योंकि भरने के लिए तो सारी चेष्टा थी। लेकिन उसी बाल्टी को पानी में डाल रहे हैं, जिसके छिद्रों ने पानी को बहा दिया। फिर, फिर वही होगा। बाल्टी के छेद "दुश्चरित्रता" है। बाल्टी के छेदों का भर जाना, रुक जाना, बंद हो जाना "चरित्र" है।

यह बहुत मजे की बात है कि जितना भी चरित्रवान व्यक्ति हो, वह ऊर्जा नहीं खोता। चरित्र से ऊर्जा बढ़ती है, और दुश्चरित्रता से ऊर्जा खोती है। तो जिस काम को भी करके आपको लगता हो कि आप और भी शक्तिशाली हो गए, उस काम को आप चरित्र समझना; जिस काम को लगता हो करके कि आप थक गए और टूट गए, आप अपने को दुश्चरित्र समझना।
मोटी धारणाओं में मत पड़ना; क्योंकि मोटी धारणाएं तो सभी समाजों में अलग होती हैं। कहीं कोई चीज चरित्र समझी जाती है, कहीं कोई चीज दुश्चरित्र समझी जाती है। एक बात यहां चरित्र हो सकती है भारत में, और पाकिस्तान में दुश्चरित्र हो सकती है। इतनी दूर जाने की जरूरत नहीं है। आपके घर में जो बात चरित्र हो, पड़ोसी के घर में दुष्चरित्र हो सकती है।
इससे कोई संबंध नहीं है महावीर का। महावीर का संबंध है, उस चरित्र से
जो ऊर्जा को बचाता है। तो आप कहीं भी हों दुनिया में एक ही बात ख्याल में रखने की हैकि मेरी जीवन-ऊर्जा व्यर्थ तो नहीं खोती है? मैं उसका व्यर्थ अपव्यय तो नहीं करता हूं?
पर यह बोध भी क्रमशः ही कड़ी-कड़ी पैदा होगा।
और तप से कर्मफलरहित होकर पूर्णतया शुद्ध हो जाता है।
और जब ऊर्जा पूरी इकट्ठी होती है, तो सिर्फ ऊर्जा का इकट्ठा होते ही
एक बिंदु आता है, एक एवोरेटिंग पाइंट आता है, जहां इतनी गर्मी पैदा हो जाती है कि जो व्यर्थ है, वह जल जाता है। संसार जल जाता है और सिर्फ शुद्धतम शेष रह जाता है। उस अग्नि से गुजर कर जो बच रहता है, वही मुक्ति है, वही मोक्ष है।
ज्ञान, दर्शन, चारिष्य और तप--इस चतुष्टय आध्यात्म मार्ग को प्राप्त होकर मुमुक्ष जीवन मोक्षरूप सदगति को पाते हैं।
मुक्त हो जाना ही एकमात्र--एकमात्र लक्ष्य है सारे जीवन की दौड़ का, ऊहापोह का। लेकिन मोक्ष का यह विज्ञान हैः मुमुक्षा से शुरू करें, ज्ञान को अनुभव बनाएं, श्रद्धा बनेगी, श्रद्धा से चारिष्य का जन्म होगा, चरित्र से जन्म पर ऊर्जा इकट्ठी होनी शुरू होगी। आप एक झील बन जाएंगे शक्ति की। एक मात्रा पर, उस मात्रा का कोई माप नहीं है, क्योंकि किसी वैज्ञानिक ने कभी अब तक उसे मापने की कोशिश नहीं की कि अंतर-ऊर्जा किसी बिंदू पर मोत्र में प्रवेश करा देती है। लेकिन मैं समझता हूं कि आज नहीं कल, हम उसको भभ माप सकेंगे।
विज्ञान विकसित हो रहा है और धीरे-धीरे गहरा हो रहा है। अब तक विज्ञान बहुत सी चीजें नहीं माप पाता था, अब उसने मापना शुरू कर दिया है। अब आपकी रात नींद मापी जा सकती है कि कब गहरी और कह हलकी है, कब स्वप्न चल रहा है, कब नहीं चल रहा है। क्योंकि मस्तिष्क की तरंगें बदल जाती हैं। जब स्वप्न चलता है, तरंगें और होती हैं; जब नहीं चलता, तब और होती हैं। जब गहरी, प्रगाढ़ निद्रा होती है, तो तरंगें और होती हैं। तो पूरी रात ग्राफ बनता रहता है। कि आपने कब स्वप्न लिया। अब तो इस बात की भी पकड़ आ गई है, कब आपके भीतर कामवासना से भरा हुआ स्वप्न चल रहा है। वह भी ग्राफ पर--क्योंकि जब कामवासना भीतर होती है, तो गर्मी बदल जाती है।
आपने छोटे बच्चों को देखा होगा, रात सोते कई बार उननी जननेंद्रिय सक्रिय हो जाती है? पुरुषों की भी होती हा, मरते दम तक होती है। रात नींद में कम से कम दस बार, सामान्य स्वस्थ व्यक्त्ति की जननेंद्रिय सक्रिय हो जाती है। जब भी सक्रिय होती है, तभी उसके शरीर का सारा का सारा गर्मी का तल बदल जाता है। उसकी श्वास बदल जाती है। वह सब ग्राफ पर आ जाता है। इस बात की संभावना बढ़ती जाती है कि हम चरित्र के भी ग्राफ ले सकेंगे। क्योंकि जैसे- जैसे ऊर्जा भीतर इकट्ठी होगी, भीतर रासायनिक परिवर्तन हो रहे हैं, उन परिवर्तनों का कोई न कोई उपाय खोजा जा सकता है, मापा जा सकता है। और तब एक घड़ी भी तय की जा सकती है कि इस घड़ी पर ऊर्जा के पहुंच जाने पर व्यक्ति की चेतना पदार्थ से छूट जाती है, मुक्त हो जाती है।
गर्मी एक खास डिग्री, और व्यक्ति शरीर और संसार से अलग हो जाता है। उस अलग होने की घटना का नाम मोक्ष है।

महावीर-वाणी, भाग 2
तेरहवां प्रवचन

पांच ज्ञान और आठ कर्म (लोकतत्व-सूत्र: 4)

तत्थ पंचविहं नाणं, सुयं आभिनिबोहियं।
ओहिनाणं तु तइयं, मणनाणं च केवलं।।
नाणस्सावरणिज्जं, दंसणावरणं तहा।
वेयणिज्जं तहा मोहं, आउकम्मं तहेव च।।
नामकम्मं च गोत्तं च,
अंतरायं तहेव च।
एवमेयाइं कम्माइं,
अट्ठेव उ समासओ।।

श्रुत, मति, अवधि, मन-पर्याय और कैवल्य--इस भांति ज्ञान पांच प्रकार का है।
ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अंतराय--इस प्रकार संक्षेप में ये आठ कर्म बतलाए हैं।

मनुष्य-जाति के इतिहास में महावीर ने ज्ञान का पहला विभाजन किया है। ज्ञान के कितने आयाम हो सकते हैं, कितनी दिशाएं हो सकती हैं। ज्ञान कितने प्रकार का हो सकता है, या होता है--महावीर का वर्गीकरण प्रथम है। अभी पश्चिम में इस दिशा में काफी काम हुआ है। महावीर ने पांच प्रकार के ज्ञान बताए हैं। इस सदी के प्रथम चरण तक सारी मनुष्यता मानकर चलती थी कि ज्ञान एक ही प्रकार का है। वैज्ञानिक ज्ञान का एक ही रूप स्वीकार करते थे। लेकिन अब वैज्ञानिकों ने भी महावीर के पहले तीन ज्ञान स्वीकार कर लिए हैं। और वह दिन ज्यादा दूर नहीं है, जब बाद के दो ज्ञान भी स्वीकार करने पड़ेंगे। ज्ञान के इस वर्गीकरण को ठीक से समझ लेना जरूरी है। मनुष्य की चेतना
का यह पहला वैज्ञानिक निरूपण है। पहले तीन ज्ञान सामान्य मनुष्य में भी हो सकते है, होते हैं। अंतिम दो ज्ञान साधक के जीवन में प्रवेश करते हैं, और अंतिम, पांचवां ज्ञान केवल सिद्ध के जीवन में होता है। इसलिए पश्चिम के मनोवैज्ञानिक पहले तीन ज्ञानों को स्वीकार करने लगे हैं; क्योंकि उनकी झलक सामान्य मनुष्य के जीवन में भी मिल सकती है। साधक की चेतना में क्या घटित होता है, और सिद्ध की चेतना में क्या घटित होता है, अभी देर है कि उस संबंध में जानकारी साफ हो सके; लेकिन महावीर की दृष्टि बहुत साफ है।
पहला ज्ञान, महावीर कहते हैं, "श्रुत", दूसरा "मति", तीसरा "अवधि।" "श्रुत" ज्ञानः जो सुन कर होता है, जिसका स्वयं कोई अनुभव नहीं है। हमारा अधिक ज्ञान, श्रुत-ज्ञान है। न तो हमारी अंतरात्मा को उसकी कोई प्रतीति है, और न हमारी इंद्रियों को उसका कोई अनुभव है। हमने सुना है, सुन कर वह हमारी स्मृति का हिस्सा हो गया है। इसे ही जो ज्ञान मान कर रुक जाता है, वह ज्ञान के पहले चरण पर ही रुक गया। यह तो ज्ञान की शुरुआत ही थी। जो सुना है, जब तक देखा न जा सके; जो सुना है, जब तक जीवन न बन जाए; जो सुना है, जब तक जीवन की धारा में प्रविष्ट न हो जाए, तब तक उसे ज्ञान कहना औपचारिक रूप से ही है। हमारा अधिक ज्ञान इसी कोटि में समाप्त हो जाता है। और मजा यह है कि हम इसी ज्ञान को समझ लेते हैं; पूर्णता हो गई!
श्रुत-ज्ञान को ही जिसने पूरा ज्ञान समझ लिया, वह पंडित हो जाता है, ज्ञानी कभी भी नहीं हो पाता। स्कूल हैं, कालेज हैं, गुरु हैं, शास्त्र हैं- इनसे जो भी हमें मिलता है, वह श्रुति-ज्ञान ही हो पाता है। वह श्रुत है। और कान आपका पूरा अस्तित्व नहीं है; और कान से जो स्मृति में चला गया, वह जीवन का एक बहुत क्षुद्र हिस्सा है, वह सिर्फ रिकार्डिंग है। सुना आपने कि "ईश्वर है", ये शब्द कान में चले गए, स्मृति के हिस्से बन गए; बार-बार सुना तो स्मृति प्रगाढ़ होती चली गई; इतनी बार सुना कि आप यह भूल ही गए कि यह सुना हुआ है।

एडोल्फ हिटलर कहा करता था: किसी भी असत्य को बार-बार दुहराते चले जाओ, सुनने वाले की फिकर मत करो, सुनाए चले जाओ, तो आज नहीं कल सुननेवाला भूल जाएगा कि जो कहा जा रहा है, वह असत्य है।
जिन्हें हम सत्य मान कर जानते हैं, उनमें बहुत से इसी तरह के असत्य हैं, जो इतनी बार कहे गए हैं कि आपको ख्याल भी नहीं रहा कि वे असत्य हो सकते हैं। और असत्य से कोई अड़चन भी बहुत नहीं आती। सच तो यह है, सत्य से अड़चन आनी शुरू होती है। असत्य बड़ा कनविनिएंट, सुविधापूर्ण है।
फ्रेड्रिक नीत्शे ने तो बड़ी अनूठी बात कही है। उसने कहा यह है कि जैसे-जैसे मनुष्य के जीवन में सत्य आएगा, वैसे-वैसे मनुष्य को जीवन में कठिनाई होगी; क्योंकि मनुष्य जीता ही असत्य के सहारे है। वह उसका पोषण है। नीत्शे ने यह भी कहा हैः इसलिए किसी के असत्य मत तोड़ो। उसको बेचैनी मत दो; उसको कष्ट मत दो। और अगर तुमने तोड़ भी दिए उसके असत्य, तो वह नये असत्य गढ़ लेगा। और नये असत्यों की बजाय पुराने असत्य ज्यादा सुविधापूर्ण होते हैं, क्योंकि उन्हें गढ़ना नहीं पड़ता। और वे हमें वसीयत में मिलते हैं, सुनकर मिलते हैं। उन पर भरोसा मजबूत होता है।
आज दुनिया में जो बेचैनी है, नीत्शे का कहना यही है कि यह बेचैनी इसी कारण है कि पुराने सत्य सब असत्य मालूम होने लगे हैं, जैसे कि वे थे। सब असत्य प्रकट हो गए, और नये असत्य खोजना बड़ा कठिन हो रहा है। और आदमी बड़ी दुविधा में पड़ गया है। नीत्शे की बात में थोड़ी सचाई है। जैसा आदमी है- रुग्ण, विक्षिप्त, वह असत्य के सहारे ही जीता है। लेकिन अगर उसे पता चल जाए कि यह असत्य है, तो कठिनाई शुरू हो जाती है। असत्य के सहारे वह जीता है तभी तक, जब तक उसे लगता है, ये असत्य सत्य हैं--तब तक बड़ी शांति होती है।
ध्यान रहे, अगर आप संतोष की खोज कर रहे हैं, सिर्फ बेचैनी से बचना चाहते हैं, तो असत्य भी काम दे सकते हैं। लेकिन अगर आप मुक्ति की खोज कर रहे हैं, तो असत्य काम नहीं दे सकते। चाहे फिर सत्य कितना ही पीड़ादायी हो, उसके अनुभव को उपलब्ध होना ही पड़ेगा।
श्रुत-ज्ञान निन्यानबे प्रतिशत असत्य है; क्योंकि जिनसे हम सुनते हैं, उनका जीवन असत्य है। लेकिन परखा हुआ है वह असत्य ज्ञान। हजारों साल से काम दे रहा है!
इसे हम ऐसा समझेंः
आप एक स्त्री के प्रेम में पड़ जाते हैं। तो आप उस स्त्री को कहते हैं
कि "बस तेरे अतिरिक्त इस जगत में न तो कोई सुंदर है, न कोई प्रेम का पात्र है। बस, तेरे अतिरिक्त मेरे लिए कोई भी नहीं है।" क्योंकि यही बात आप पहले दूसरी स्त्रियों से भी कह चुके हैं। और आप भी जानते हैं कि यह सत्य नहीं है। और यह भी आप जानते हैं, अगर थोड़ी खोज करेंगे तो यही बात आप और स्त्रियों से भी कहेंगे, क्योंकि अभी जीवन का अंत नहीं हो गया है। लेकिन यह असत्य बड़ा मधुर है, और कहने में बड़ा उपयोगी है। और वह स्त्री भी जानती है कि यह बात बिल्कुल सही तो नहीं हो सकती, लेकिन फिर भी इस पर भरोसा करती है; क्योंकि सुनने में यह प्रीतिकर है। और इस असत्य के सहारे आपका प्रेम खड़ा होता है।
यह प्रेम कितनी देर चल सकता है?
और जब यह प्रेम टूटता है, तो आप यह नहीं देखते कि हमने एक असत्य के सहारे इसको खड़ा किया था। आप समझते हैं कि जो पात्र हमने चुना था, वह ही गलत था। बात तो हमने जो कही थी, वह ठीक थी, लेकिन व्यक्ति जो हमने चुना वह गलत था। हम अब दूसरे व्यक्ति को चुन कर वही ठीक बात फिर से कहेंगे।
आप दूसरे से भी कहेंगे, और तीसरे से भी कहेंगे। और हर बार यह बात कारगर होगी। क्योंकि मन असत्य में पला है। अगर प्रेमी अपनी प्रेयसी से कहे कि तू मुझे सुंदर मालूम पड़ती है तुलनात्मक रूप से: जितनी स्त्रियों को मैं जानता हूं, उनमें तू सबसे सुंदर मालूम पड़ती है, लेकिन और स्त्रियां भी सुंदर हो सकती हैं, जिन्हें मैं जानता नहीं हूं! तो कविता नष्ट हो जाएगी। तो प्रेम खड़ा ही नहीं हो पाएगा। वह स्त्री कहेगी कि आप कोई गणित का हिसाब कर रहे हैं--रिलेटिव, सापेक्ष? कल हो सकता है, तुझसे अच्छी स्त्री मिल जाए, तो मैं उससे प्रेम करूंगा, तो प्रेम खड़ा ही नहीं होगा।

सत्य के आधार पर प्रेम को खड़ा करना बड़ा मुश्किल है; असत्य के आधार पर प्रेम खड़ा हो जाता है, फिर टूटता है--टूटेगा ही। आप रेत के भवन बना सकते हैं, लेकिन उन्हें गिरने से नहीं बचा सकते। आप ताश के महल खड़े कर सकते हैं, लेकिन हवा का छोटा सा झोंका उन्हें गिरा जाएगा।
पर हमारी पूरी जिंदगी ऐसे असत्यों पर खड़ी है। मां सोचती है कि उसका बेटा उसे सदा प्रेम करेगा। बाप सोचता है, बेटा उसकी सदा मानेगा। लेकिन इस बाप ने भी अपने बाप की कभी नहीं मानी। इसे इसका ख्याल ही नहीं कि सत्य क्या है? एक घड़ी आएगी ही, जब बेटे को अपने बाप को इनकार करना पड़ेगा। और जो बेटा अपने बाप को इनकार न कर सके, वह ठीक अर्थों में जीवित ही नहीं हो सकेगा। जैसे मां के गर्भ से अलग होना ही पड़ेगा बेटे को, वैसे ही बाप की आज्ञा के गर्भ के भी बाहर जाना पड़ेगा।
मैंने सुना है कि एक बहुत प्रसिद्ध यहूदी फकीर जोसुआ मरा। वह बड़ा सात्विक, शीलवान, शुद्धतम व्यक्ति जैसे हों, वैसा व्यक्ति था। स्वर्ग में उसके स्वागत का आयोजन हुआ। बड़े बैंड-बाजे, बड़ा नृत्य, बड़ा संगीत, बड़ी सुगंध, बड़ी फुलझड़ियां, पटाखे--लेकिन वह स्वागत में सम्मिलित नहीं होना चाहा। उसने अपनी आंखें छुपा लीं, जैसे कोई बड़ी गहरी पीड़ा उसे हो। और वह रोने लगा। बहुत समझाया, लेकिन वह राजी नहीं हुआ। तो फिर उसे ईश्वर के सामने ले जाया गया। और ईश्वर ने उससे कहा: "जोसुआ, यह स्वागत तेरे योग्य है। तूने जीवन ऐसा जिया है--पवित्र, कि स्वर्ग के द्वार पर तेरा स्वागत हो--यह जरूरी है, तू इतना चिंतित और बेचैन क्यों है? तेरी जिंदगी में कहीं कोई कलुष नहीं, कहीं कोई दाग नहीं; तेरे जैसा शुद्ध व्यक्ति मुश्किल से कभी पृथ्वी से स्वर्ग में आता है। इसलिए स्वर्ग प्रसन्न है; उस प्रसन्नता में सम्मिलित होओ।"
जोसुआ ने कहा, "और तो सब ठीक है, लेकिन एक पीड़ा मेरे मन में है। जरूर मेरे जीवन में कोई पाप रहा होगा, अन्यथा यह नहीं होता, मेरा बेटा! जोसुआ यहूदी है--मेरा बेटा मेरी सारी चेष्टा के बावजूद, मेरे उदाहरण के बावजूद, मेरे जीवन के बावजूद ईसाई हो गया। वह पीड़ा मेरे मन में है।"
ईश्वर ने कहा कि तू मत भयभीत हो, मत चिंतित हो, मैं तुझे समझ सकता हूं--
आई कैन अंडरस्टैंड यू, बिकाज दि सेम वा.ज डन विथ माई ओन सन, जीसस--वह मेरा बेटा जो जीसस है, वही उपद्रव उसने भी किया, वह भी ईसाई हो गया।
लेकिन बेटे एक सीमा पर बाप से पृथक हो जाएंगे--अनिवार्य है। लेकिन न बेटा इस सत्य को स्वीकार करने को राजी है, न बाप इस सत्य को स्वीकार करने को राजी है। मां सोचती है, बेटा उसे सदा प्रेम करता रहेगा। अगर बेटा मां को सदा प्रेम करता रहे, जैसा उसने बचपन में किया था, तो बेटे का जीवन ही व्यर्थ हो जाएगा। एक सीमा पर मां के घेरे के बाहर उसे जाना पड़ेगा। वह किसी स्त्री को चुनेगा, मां फीकी पड़ती जाएगी, संबंध औपचारिक रह जाएगा। क्योंकि जीवन की धारा आगे की तरफ है, पीछे की तरफ नहीं।
अगर बेटा मां को प्रेम करता चला जाए, तो धारा उल्टी हो जाएगी। मां बेटे को प्रेम करेगी, यह बेटा भी अपने बेटे को प्रेम करेगा; लेकिन प्रेम की धारा पीछे की तरफ नहीं है। पीछे की तरफ तो मधुर संबंध बाकी रह जाएं, इतना काफी है। वह भी नहीं हो पाता। लेकिन हर मां यही भरोसा करेगी, इसलिए हर मां दुखी होगी। हर बाप पीड़ित होगा। पीड़ा का कारण बेटा नहीं है, पीड़ा का कारण एक असत्य का आधार है। और ऐसा नहीं कि बुरे बेटे का बाप दुखी है, भले बेटे का बाप भी दुखी होता है।
महावीर के पिता अगर जिंदा होते तो दुखी होते। महावीर के पिता से महावीर ने कहा कि "मैं संन्यस्त हो जाना चाहता हूं।" तो उन्होंने कहा, "बस, यह बात अब दोबारा मत उठाना। जब तक मैं जिंदा हूं, तब तक यह बात अब दोबारा मत उठाना। मेरी मौत पर ही तू संन्यासी हो सकता है।"
सोचें, अगर महावीर न मानते और संन्यासी हो जाते, तो बाप छाती पीटकर रोते। बुद्ध के बाप रोए। बुद्ध घर से जब चले गए, तो पीड़ित हुए--दुखी! बुद्ध ज्ञान को भी उपलब्ध हो गए, महासूर्य प्रकट हो गया लेकिन बाप अपनी ही पीड़ा से परेशान है। और जब बुद्ध वापस लौटे तो बाप ने कहा कि "देख, बाप का हृदय है यह, मैं तुझे अभी भी क्षमा कर सकता हूं, तू वापस लौट आ! छोड़ यह भिखारीपन,

हमारे कुल में कभी कोई भिखारी नहीं हुआ। शर्म आती है, तेरी खबरें सुनता हूं कि तू भीख मांगता है तो सिर झुक जाता है। क्या है कमी, जो तू भीख मांगे? और हमारे कुल में कभी किसी ने भीख नहीं मांगी, तू कुल को डुबानेवाला है।" तो ऐसा नहीं कि आप का बेटा दुष्ट हो जाए, पापी, हत्यारा हो जाए, तो आप दुखी होंगे। बुद्ध हो जाए, तो भी दुखी होंगे। बाप और बेटे के बीच एक फासला निर्मित होगा ही। बेटा बाप की आकांक्षाओं के पार जाएगा। लेकिन इस सत्य पर हम जीवन को खड़ा नहीं करते, हम असत्य पर खड़ा करते हैं। और असत्य सुविधापूर्ण मालूम पड़ते हैं। अंत में कष्ट लाते हैं, लेकिन सुविधापूर्ण मालूम पड़ते हैं। अगर आप अपने ज्ञान की जांच करेंगे, तो पाएंगे उसमें निन्यानबे प्रतिशत असत्य के आधार हैं। वे सुने हुए हैं।
हमारा ज्ञान करीब-करीब अज्ञान है। महावीर इस ज्ञान को श्रुत-ज्ञान कहते हैं, कि सुनकर सीख लिया है दूसरों से, उधार। यह बहुत मूल्यवान नहीं है; यह संसार के लिए उपयोगी है। बाजार में इसकी जरूरत है, क्योंकि बाजार झूठ पर खड़ा है। वहां आप सच्चे होने लगेंगे, तो आप असुविधा में पड़ जाएंगे, और बाजार के बाहर फेंक दिए जाएंगे।
लेकिन, इस ज्ञान को ही हम धर्म के जगत में भी ले जाना चाहते हैं। किसी
ने वेद पढ़ा, किसी ने गीता, किसी ने कुरान, किसी ने महावीर के वचन। वह पढ़ते ही समझ लेता है कि सब हो गया। यह तो पहला चरण भी नहीं है। और इसे जो ज्ञान समझ लेता है, उसके आगे के चरण उठने असंभव हो जाएंगे।
दूसरे ज्ञान को महावीर कहते हैं, "मति।" और आप जान कर हैरान होंगे कि सुने हुए ज्ञान को वह पहला कहते हैं। मति का अर्थ है, इंद्रियों से जाना हुआ। इसको वे श्रुत से ऊपर रखते हैं। यह जरा चिंता की बात मालूम होगी। मन से सुना हुआ नीचे रखते हैं, इंद्रियों से जाने हुए को ऊपर रखते हैं। क्योंकि, आखिर अंततः इंद्रियों से जाना हुआ, सिर्फ सुने हुए से ज्यादा बहुमूल्य, ज्यादा जीवंत है। आंखें देखती हैं, हाथ छूते हैं, जीभ स्वाद लेती है-इनसे जो जाना हुआ है, वह ज्यादा वास्तविक है। लेकिन, हम इंद्रियों को भी अशुद्ध कर लिए हैं अपने सुने हुए ज्ञान के कारण। वह उसमें भी बाधा डालता है। आप जो देखते हैं, वह आप वही नहीं देखते हैं, जो मौजूद है। आप उसकी भी व्याख्या कर लेते हैं।
हमारी इंद्रियों का ज्ञान भी हमने अशुद्ध कर लिया है। आप व्याख्या कर लेते हैं। आप वही नहीं देखते, जो है; आप वही देखते हैं, जो आप देखना चाहते हैं; वही छूते हैं, जो आप छूना चाहते हैं। वही आपकी समझ में इंद्रियां भी पकड़ती हैं।
इंद्रियों के संबंध में भी चुनाव करते हैं, वह भी परिशुद्ध नहीं है। जैसे कि आप बाजार में गए हैं, अगर आप भूखे हैं तो आपको होटल और रेस्टॉरेंट दिखाई पड़ेंगे; भूखे नहीं हैं तो बिल्कुल दिखाई नहीं पड़ेंगे, आप उनके बोर्ड नहीं पढ़ेंगे। तो जो दिखाई पड़ रहा है, वही सवाल नहीं है, आप क्या देखना चाहते हैं, वही आपको दिखाई पड़ेगा। एक स्त्री बाजार में निकलती है, तो उसे आभूषणों की दुकानें, हीरे-जवाहरात की दुकानें दिखाई पड़ती हैं।
मैंने सुना है, एक पुलिस स्टेशन पर एक आदमी को पकड़ कर लाया गया, जो बुर्का ओढ़ कर रास्ते पर चल रहा था। वह किसी दूसरे रा॰षटर का जासूस था। लेकिन उसने बुर्का ऐसा बनाया था और कपड़े उसने पूरे स्त्रियों के पहन रखे थे कि पुलिस आफिसर ने जो आदमी उसे पकड़कर लाया था, उससे कहा कि तुम पहचाने कैसे कि यह आदमी स्त्री नहीं है? उसने कहा कि यह रास्ते से चला जा रहा था, हीरे-जवाहरात की दुकानें थी, उन पर इसने नजर भी नहीं डाली! शक हो गया कि यह स्त्री नहीं हो सकती, यह बुर्का ही है, अंदर कोई और है।
नसरुद्दीन घर में सफाई कर रहा था। मक्खियां घर में काफी थीं। पत्नी
और वह दोनों मक्खियां मार रहे थे। उसने चार मक्खियां मारीं और आकर कहा कि "दो स्त्रियां हैं और दो पुरुष।" उसकी स्त्री ने कहा कि तुम भी गजब के खोजी हो गए। तुम मक्खियों को पहचाने कैसे कि कौन नर, कौन मादा? उसने कहा कि दो आइने पर बैठी थीं, वे स्त्रियां होनी चाहिए।
आप क्या देखते हैं, क्या सुनते हैं, क्या छूते हैं--वह भी चुनाव है। गहरे में आप व्याख्या कर रहे हैं। इसलिए आप एक ही किताब को अगर हर वर्ष

बार-बार पढ़ें तो आप अलग-अलग अर्थ निकालेंगे, क्योंकि अर्थ निकालने वाला बदल जाएगा। किताब वही है।
इसलिए हमने इस देश में यह तय किया था कि गीता या उपनिषद जैसी किताबें सिर्फ पढ़कर रख न दी जाएं, जैसा कोई उपन्यास पढ़कर रख देता है, उनका पाठ किया जाए--बार-बार पाठ किया जाए। क्योंकि जो अर्थ आपको दिखाई पड़ेगा, वह गीता का नहीं है। वह, आपकी समझ उस समय जैसी होगी!
इसलिए एक व्यक्ति अगर गीता को दस वर्ष बार-बार पढ़े और विकासमान व्यक्ति हो, तो हर बार नये अर्थ खोज लेगा, अर्थ की गहराई बढ़ती चली जाएगी। अनंत जन्मों में पढ़ने के बाद ही कृष्ण का अर्थ पकड़ में आ सकता है, जब अपनी खुद की गहराई उतनी हो जाए। उसके पहले पकड़ में नहीं आ सकता।
लेकिन महावीर इंद्रिय, शुद्ध इंद्रिय ज्ञान को ऊंचाई पर रखते हैं। पंडित से ऊंचाई पर रखते हैं बच्चे को, क्योंकि बच्चे का इंद्रिय ज्ञान ज्यादा शुद्ध है। वह चीजों को सफाई से देखता है। अभी उसके पास कोई बुद्धि नहीं है कि जल्दी से व्याख्या करे कि क्या गलत, क्या ठीक? देखता है। एक छोटे बच्चे की आंख चाहिए, तो आपके ज्ञान में एक वास्तविकता आ जाएगी। ध्यान रहे, सब धर्म आमतौर से "श्रुत" से उलझे हुए हैं, विज्ञान "मति"
पर चला गया है। विज्ञान इंद्रिय पर भरोसा करता है, शब्दों पर नहीं। इसलिए वैज्ञानिक कहता है: जो दिखाई पड़ता है, वह भरोसे योग्य है; जो अनुभव में आता है, वह भरोसे योग्य है।
चार्वाक की पूरी परम्परा का जोर यही था कि जो प्रत्यक्ष है, वह भरोसे योग्य है। इस सुने हुए से क्या अर्थ कि वेद में लिखा है कि परमात्मा है! परमात्मा को प्रत्यक्ष करके बताओ; अगर वह सामने है, तो ही माना जा सकता है छुआ जा सके, देखा जा सके!
चार्वाक के कहने में भी अर्थ है। उनका जोर दूसरे ज्ञान पर है। और पहले ज्ञान से दूसरा ज्ञान जरूर कीमती है। इसलिए पश्चिम में विज्ञान का जन्म हुआ, क्योंकि वे इंद्रियवादी हैं। पूरब में विज्ञान का जन्म नहीं हो सका, क्योंकि हम श्रुत से अटके रह गए। हमने इंद्रिय के ज्ञान की कोई फिकर नहीं की कि इंद्रिय के ज्ञान को प्रगाढ़ किया जाए, शुद्ध किया जाए; और इंद्रिय से जो जाना जाता है, उसको सत्य के करीब लाया जाए। विज्ञान की सारी कोशिश यही है कि चीजें ठीक से देखी जा सकें। सारे प्रयोग--सारी प्रयोगशालाएं एक ही काम कर रही हैं कि जो इंद्रियां जानती हैं, उसको और शुद्धता से कैसे जाना जा सके।
महावीर "मति" को दूसरे नंबर पर रखते हैं। अभी पश्चिम में एक नया आंदोलन चलता है, एनकाउंटर ग्रुप्स, सेंसिटिविटी ट्रेनिंग--संवेदनशीलता का प्रशिक्षण कि लोग संवेदनशीलता को बढ़ाएं। अगर महावीर को पता चले तो वे कहेंगे कि अच्छा है; "श्रुत" से "मति" बेहतर है। पश्चिम में सैकड़ों प्रयोगशालाएं काम कर रही हैं, जहां लोग जाते हैं, और अपनी इंद्रियों की संवेदना को बढ़ाते हैं। आपको पता भी नहीं कि इंद्रियों की संवेदना आपकी मर चुकी है। जब आप किसी को छूते हैं-सच में छूते हैं? जब किसी का हाथ, हाथ में लेते हैं तो मुर्दे की तरह, आपकी जीवन-ऊर्जा आपके हाथ से बहती है! उस व्यक्ति को प्रवेश करती है; उसको छूती है-या बस, हाथ हाथ में ले लेते हैं? अगर आप पचास लोगों के हाथ हाथ में लें, तो आप अलग-अलग अनुभव करेंगे। अगर आप सचेत हैं तो कोई हाथ बिल्कुल मुर्दा मालूम पड़ेगा कि वह आदमी मिलना नहीं चाहता था। हाथ तो उसने हाथ में दे दिया है, लेकिन ख्रुद को पीछे खींच लिया है। तो सिर्फ हाथ है वहां, आत्मा नहीं है। कोई आदमी तटस्थ मालूम पड़ेगा, कि ठीक है वह हाथ तक आया है, लेकिन आप में प्रवेश नहीं करेगा, वहीं हाथ पर खड़ा रहेगा। जैसे दो व्यक्ति अपनी-अपनी सीमाओं पर, अपने-अपने घर के घेरे में खड़े हैं। कोई व्यक्ति को लगेगा कि उसके हाथ से ऊर्जा ने एक छलांग ली है और वह आप में प्रवेश कर गया है। उसने हाथ ही नहीं छुआ, आपके हृदय तक अपने हाथ को फैलाया।
अलग-अलग हाथ अलग-अलग स्पर्श देगा। लेकिन यह भी उसको ही देगा, जिसको स्पर्श बोध की क्षमता है। वह हमारा मर गया है। हमें किसी चीज में कुछ पता

ही नहीं चलता। हमें ख्याल ही नहीं आता कि हम चारों तरफ प्रतिक्षण अनंत संवेदनाओं से घिरे हैं, लेकिन उनका हम अनुभव नहीं कर रहे।
कभी आराम से कुर्सी पर बैठ कर ही अनुभव करें कि कितनी संवेदनाएं घट रही हैं: कुस्रू पर आपके शरीर का दबाव, कुस्रू का आपको स्पर्श; जमीन पर रखे आपके पैर; हवा का झोंका जो आपको छू रहा है; फूल की गंध जो खिड़की से भीतर आ गई है; चौके में बर्तनों की आवाज, बनते हुए भोजन की गंध जो आपके नासापुटों को छू रही है; छोटे बच्चे की किलकारी जो आपको छूती है और आह्लादित कर जाती है; किसी का चीत्कार, किसी का रोना जो आपको भीतर कंपित कर जाता है।
अगर रोज पंद्रह मिनट कोई चुप बैठ कर अपने चारों तरफ की संवेदनाओं का
ही अनुभव करे तो भी बड़े गहरे ध्यान को उपलब्ध होने लगेगा।
इंद्रियां द्वार हैं--अदभुत द्वार हैं, और उनसे हम जीवन में प्रवेश करते हैं। लेकिन हमारी इंद्रियां बिल्कुल मुर्दा हो गई हैं। द्वार बंद है, हम उनको खोलते ही नहीं। एक हैरानी की बात है कि हमारी इंद्रियां पशुओं से कमजोर हो गई हैं। कुत्ता आपसे ज्यादा सूंघता है, आश्चर्य की बात है! घोड़ा मीलों दूर से गंध ले लेता है, हम नहीं ले पाते! ध्वनि, पशु हमसे ज्यादा गहराई से सुनते हैं।
सांप को आपने नाचते देखा? मदारी बजा रहा है अपनी बांसुरी या तुरही और सांप नाच रहा है। और वैज्ञानिक कहते हैं, सांप को कान नहीं हैं तो सांप सुन नहीं सकता। यह बड़ी मुश्किल की बात है। लेकिन हजारों साल की धारणा है कि सांप संगीत से आंदोलित होता है। और वैज्ञानिक कहते हैं, सांप को कान हैं ही नहीं, इसलिए सवाल ही नहीं उठता आंदोलित होने का। लेकिन वैज्ञानिक भी देखते हैं कि सांप बांसुरी की आवाज सुन कर नाचता है, तो मामला क्या है? खोज से पता चला कि, सांप पूरे शरीर से सुनता है। कान नहीं है। उसका रोआं-रोआं ध्वनि से आंदोलित होता है। उसके रोएं-रोएं से ध्वनि प्रवेश करती है। इसलिए उसके नाच की जो मस्ती है, वह आपके पास कितने ही अच्छे कान हों, तो भी नहीं है। लेकिन आप भी रोएं-रोएं से सुन सकते हैं; क्योंकि रोएं-रोएं से वायु प्रवेश करती है, और वायु के साथ ध्वनि प्रवेश करती है।
आश्चर्य न होगा कि किसी आदि समय में मनुष्य पूरे शरीर से सुनता रहा हो; क्योंकि आप सिर्फ नाक से ही श्वास नहीं लेते हैं, आप पूरे शरीर से श्वास लेते हैं। और अगर आपकी नाक खुली छोड़ दी जाए, और पूरे शरीर को लीप-पोत कर बंद कर दिया जाए, तो आप तीन घंटे में मर जाएंगे, कितनी ही श्वास लें। क्योंकि हवा ध्वनि को ले जानेवाली है, सिर्फ कान में ही ध्वनि नहीं जा रही, पूरे शरीर में ध्वनि जा रही है। पूरे शरीर से श्वास जा रही है भीतर। और अगर हवा पूरे शरीर से भीतर जा रही है, तो ध्वनि भी भीतर जा रही है।
थोड़ी कल्पना करें, अगर आपके पूरे शरीर से ध्वनि का अनुभव हो, तो संगीत
का जो आनंद आप ले पाएंगे, और जो अनुभव, और जो ज्ञान होगा, वह अभी आपको नहीं हो सकता। लेकिन थोड़ा आपको भी ख्याल होता है कि जब भी आप संगीत सुनते हैं तो आपका पैर नाचने लगता है, हाथ थपकी देने लगता है, उसका मतलब इतना है कि हाथ भी सुन रहा है, पैर भी पकड़ रहा है। अगर कोई व्यक्ति संगीत को सुनकर नाचने लगे, उसका रोआं-रोआं नाचने लगे, तो उसे पूरा अनुभव होगा ध्वनि का। नहीं तो उसे पूरा ध्वनि का अनुभव नहीं होगा।
मति-ज्ञान का अर्थ हैः हमारी इंद्रियां परिशुद्ध हों, द्वार उन्मुक्त हों, और जीवन को भीतर लेने की हमारी तैयारी हो। और हमारी तैयारी जीवन में बाहर जाने की भी हो।
आप स्नान करते हैं, लेकिन आप व्यर्थ कर लेते हैं। मैं जैसा कहूं, ऐसा स्नान करें: फव्वारे के नीचे खड़े हो जाएं, सब विचार छोड़ दें, दुनिया को भूल जाएं। जो मंदिर में नहीं हो सकता, वह आपके स्नान-गृह में हो सकता है। लेकिन सिर्फ पानी के स्पर्श को, जो आपके सिर पर गिर रहा है और शरीर पर जिसकी धाराएं बही जा रही है, उसके सिर्फ स्पर्श का पीछा करें। पूरे शरीर से उसके स्पर्श को पीएं। रोएं-रोएं से पानी की ताजगी को भीतर जाने दें।
आप पचहत्तर प्रतिशत पानी हैं--आपका शरीर। तो जब पानी आपको बाहर से स्पर्श करता है, अगर आपका पूरा शरीर संवेदनशील हो तो भीतर का पानी भी आंदोलित होने लगेगा। आप पानी ही हैं, पचहत्तर प्रतिशत। इसलिए चांद की जब

पूरी रात होती है तो आपको बहुत आनंद मालूम होता है। वह आपको मालूम नहीं हो रहा, वह आपके भीतर का पचहत्तर प्रतिशत पानी सागर की तरह आंदोलित होने लगता है। पूरे चांद की रात, आपको जो अच्छा लगता है, वह अच्छा इसलिए लगता है कि आपके भीतर का पानी अभी भी सागर का हिस्सा है। आप जान कर हैरान होंगे कि आपके शरीर के पानी में उतने ही तत्व हैं, जितने सागर के पानी में हैं। वैसा ही नमक, वैसे ही केमिकल्स--ठीक उसी अनुपात में। क्योंकि वैज्ञानिक कहते हैं, आदमी का पहला जन्म मछली की तरह हुआ, वह पहली यात्रा है। अब भी आप बहुत विकसित हो गए हैं; लेकिन भीतर आपका जीवन अभी भी सागर की ही जरूरत मानता है। वहां अब भी सागर है।
जब आप सागर के किनारे बैठे हैं, तो सागर के आंदोलन को गौर से देखें और इतने लीन हो जाएं कि आपके भीतर का सागर एक छलांग लगाकर बाहर के सागर से मिलने लगे तो आपको इंद्रिय ज्ञान होगा।
महावीर उसे "मति" कहते हैं। छोटे बच्चों को होता है। जैसे-जैसे आप बड़े होते जाते हैं, वैसे-वैसे भूलता जाता है। फिर तो उन्हीं को होता है, जो ध्यान में प्रवेश करते हैं, जो फिर छोटे बच्चों की तरह हो जाते हैं। तब हवा का हलका झोंका भी स्वर्ग की खबर देता है; जब फूल का छोटा सा स्पंदन भी जीवन का नृत्य बन जाता है; दीये की लपटती-भागती लौ सारे प्राण की ऊर्जा का अनुभव बन जाती है, तब आपको मति ज्ञान होना शुरू होता है।
पश्चिम में चल रही ट्रेनिंग कि लोग अपनी इंद्रियों को फिर सजग कर लें, हमें बहुत बचकानी मालूम पड़ेगी; क्योंकि हमारे ख्याल में नहीं है। तीन सप्ताह, चार सप्ताह के लिए लोग इकट्ठे होते हैं किसी केंद्र पर--सब तरह से जीवन को अनुभव करने की कोशिश करते हैं। समुद्र की रेत में आंख बंद करके लेटते हैं, ताकि रेत का स्पर्श अनुभव हो सके; पानी के झरने में सिर झुका कर बैठते हैं, ताकि पानी का अनुभव हो सके, आंख बंद करके एक-दूसरे को स्पर्श करते हैं, ताकि एक-दूसरे के शरीर के स्पर्श की प्रतीति हो सके।
दो प्रेमी भी एक-दूसरे के शरीर से बड़े आर्थाडाक्स, बंधे-बंधाए ढंग से परिचित होते हैं। कभी आपने अपनी प्रेयसी को अपनी पीठ और उसकी पीठ को भी मिलाकर देखा है कि दोनों कैसा अनुभव करते हैं? बड़ा भिन्न अनुभव होगा, अगर आप अपनी प्रेयसी की पीठ
के साथ अपनी पीठ मिलाकर, आंख बंद करके खड़े हो जाएं। तो आपको पहली दफा
एक नये व्यक्ति का अनुभव होगा, क्योंकि पीठ की तरफ से प्रेयसी बिल्कुल भिन्न है।
लेकिन सब चीजें बंधी, रुटीन हो गई हैं। कभी आप अपने बच्चे को पास लेकर, उसके गाल को अपने गाल से लगा कर थोड़ी देर शांत बैठे हैं? क्योंकि बच्चा अभी शुद्ध है, अभी उसकी जीवन-ऊर्जा प्रवाहित हो रही है। अगर आप बैठ जाएं अपने बच्चे के पास उसके गाल को गाल से लगा कर, और अनुभव कर सकें, तो आपका बच्चा आपको भी जीवनदायी सिद्ध होगा, आपकी उम्र थोड़ी ज्यादा हो जाएगी।
यह अनुभव हुआ है कि कभी-कभी वृद्ध उम्र के लोग जब नई उम्र की लड़कियों
से विवाह कर लेते हैं तो उनकी उम्र बढ़ जाती है। क्योंकि नई उम्र की लड़की के साथ उनको भी अपनी उम्र नीचे लानी पड़ती है। उससे मिलने को, उससे संबंध बनाने को उन्हें नीचे उतरना पड़ता है; उनके शरीर की जो जड़ता है, उसको उन्हें नीचे लाना पड़ता है।
यह कुछ आश्चर्य न होगा कि बर्ट्रेंड रसल जैसा व्यक्ति अपने मरते हुए, आखिरी नब्बे वर्ष की उम्र तक भी युवा रहा। क्योंकि अस्सी वर्ष की उम्र तक वह नए विवाह करता चला गया। अस्सी वर्ष की उम्र में बर्ट्रेंड रसल ने शादी की एक बीस वर्ष की लड़की से। वह जो युवापन है, वह जो ताजगी है इंद्रियों की, वह बनी रही होगी।
रसल इंद्रियवादी था। वह मानता था कि इंद्रिय की जितनी शुद्धता हो जीवन में और इंद्रियों का जितना प्रगाढ़ अनुभव हो, उतना ही जीवन चरम पर पहुंचता है। महावीर ऐसा नहीं मानते। वे मानते हैं, और जीवन के आयाम हैं आगे।
लेकिन, हम तो "श्रुत" पर अटक जाते हैं। हम "मति" तक भी नहीं पहुंच पाते। पशुओं जैसी शुद्ध इंद्रियां चाहिए साधक के पास, तभी वह सिद्ध हो

पाएगा। नहीं तो नहीं हो पाएगा। मगर हमारा तो उल्टा चल रहा है सारा हिसाब। हम साधक उसको कहते हैं, जो इंद्रियों को मार रहा है, जो इंद्रियों को दबा रहा है। अगर आपका साधु संगीत सुन रहा हो, तो आपको शक हो जाए कि बात क्या है? अगर आपका साधु बहुत रस से भोजन कर रहा हो, तो आपको शक हो जाए कि मामला गड़बड़ है! लेकिन साधु की कोशिश यह है हमारी कि वह स्वाद दे नहीं इंद्रिय को, जिव्हा को बिल्कुल मार दे कि उसमें कुछ पता ही न चले।
लेकिन, ध्यान रहे उसका मति-ज्ञान कुंद हो जाएगा; उसके जानने की इंद्रिय-क्षमता कम हो जाएगी। और जितनी ही यह क्षमता कम होगी, उतना ही उसके जीवन का विस्तार सिकुड़ जाएगा, संकुचित हो जाएगा।
इसलिए साधु संकुचित हो जाता है, सिकुड़ जाता है। इसलिए साधु का जीवन आमतौर से आत्मघाती मालूम पड़ता है। वह सब तरफ से अपने को सिकोड़ता जाता है, सिकोड़ता जाता है--कुंद होता जाता है; खुलता नहीं, मुक्त आकाश नहीं बनता। महावीर की बात समझने जैसी है। महावीर कहते हैं, पहला ज्ञान "श्रुत", दूसरा ज्ञान "मति", तीसरा ज्ञान "अवधि", लेकिन तीसरा ज्ञान उसी में होगा, जिसका मति-ज्ञान काफी प्रगाढ़ हो। क्योंकि मनुष्य की प्रत्येक इंद्रिय के पीछे छिपी एक सूक्ष्म इंद्रिय भी है। अवधि-ज्ञान उस सूक्ष्म इंद्रिय का ज्ञान है--जैसे आप घटनाएं सुनते हैं!
हरकोस पश्चिम में बहुत प्रसिद्ध है--पीटर हरकोस। वह दूसरे महायुद्ध में गिर पड़ा। साधारण आदमी था; गिरने से बेहोश हो गया। सिर में चोट लगी, अस्पताल में भरती किया गया। जब अड़तालीस घंटे बाद होश में आया तो वह बड़ा चकित हुआ। उसे खुद भी भरोसा न आया कि उसकी कोई अंतर-इंद्रिय खुल गई है इस चोट में आकस्मिक, एक्सीडेंटल! वह जो नर्स पास खड़ी थी, उसे उस नर्स के भीतर क्या हो रहा है, वह समझ में आने लगा। वह थोड़ा बेचैन भी हुआ। उसने नर्स से पूछा कि "क्या तुम अपने किसी प्रेमी से मिलने का विचार कर रही हो?" उस नर्स ने कहा कि "क्या मतलब?" वह भी चौंक गई, क्योंकि भीतर जल्दी इस मरीज को निबटाकर उसका
प्रेमी बाहर खड़ा उसकी प्रतीक्षा कर रहा है--उससे भागी जाने को, मिलने
को है। इस मरीज को तो वह निबटा रही है सोए-सोए। उसका मन तो प्रेमी के पास चला गया है।
हरकोस को लोग कोई उसके पास आए तो उसके भीतर की बात अनुभव में आने लगी। किसी की चीज, किसी का रूमाल उसे दे दें, तो वह रूमाल का ख्याल करके उस आदमी का वर्णन करने लगा है। दस साल तक तो वह परेशान रहा इससे। क्योंकि बड़ी परेशानी की बात है। हर आदमी रास्ते पर निकले और आपको उसके भीतर का थोड़ा सा ख्याल आ जाए, कि आप अपनी पत्नी को प्रेम कर रहे हों और आपको ख्याल आ जाए कि वह अपने किसी प्रेमी का विचार कर रही है? अक्सर करते हैं। अकसर पति-पत्नी किसी और का सोचते रहते हैं, लेकिन पकड़ में नहीं आता। क्योंकि सूक्ष्म इंद्रियां हमारी जड़ हैं। हमारी स्थूल इंद्रियां जड़ हैं, तो सूक्ष्म तो जड़ होंगी ही।
जब स्थूल इंद्रियां संवेदनशील हो जाती हैं तो उनके पीछे छिपी हुई सूक्ष्म इंद्रियां गतिमान होती हैं। उन सूक्ष्म इंद्रियां का जो अनुभव है, उसको महावीर अवधि-ज्ञान कहते हैं। टेलिपैथी, क्लेरव्हायंस सब अवधि- ज्ञान हैं।
पश्चिम में साइकिक साइंस अवधि-ज्ञान पर काम कर ही रही है बड़े जोर से,
और हजारों आयाम खुल गए हैं। अनेक तरह के प्रामाणिक प्रयोग हो गए हैं, जिनसे पता चलता है कि आदमी के पास कुछ सूक्ष्म इंद्रियां भी हैं, जिनसे वह बिना देखे देख लेता है, बिना सुने सुन लेता है। आपको भी कभी-कभी इसकी झलक मिलती है, लेकिन आप उसको टाल देते हैं, आप उसका हिसाब नहीं रखते।
कभी आप बैठे हैं घर में अचानक आपको ख्याल अपने मित्र का आता है, और आप देखते हैं कि वह मित्र भीतर चला आ रहा है। ख्याल पहले आ जाता है, मित्र दरवाजे से बाद में भीतर आता है। आप सोचते हैं, संयोग की बात है। संयोग की बात नहीं है।

इस जगत में संयोग जैसी बात होती ही नहीं। इस जगत में सब वैज्ञानिक है,
सब कार्य-कारण से बंधा है। उस मित्र का दरवाजे पर आना आपकी सूक्ष्म इंद्रिय ने पहले पकड़ लिया, आपकी स्थूल इंद्रिय बाद में पकड़ी।
कभी आपका कोई प्रियजन मर रहा हो, बहुत दूर हो--हजारों मील दूर--तो भी आपके भीतर कुछ पीड़ा शुरू हो जाती है। आप पकड़ नहीं पाते, क्योंकि आपको साफ नहीं है। अगर साफ हो जाए, और आप उस दिशा में काम करने लगें, तो आपकी पकड़ में आना शुरू हो जाएगा।
इसको अनुभव किया गया है कि जुड़वां बच्चे एक साथ बीमार पड़े हैं, चाहे हजारों मील दूर हों। एक ही अंडे से पैदा हुए जुड़वां बच्चे एक साथ बीमार पड़े हैं। यहां एक बच्चे को सर्दी हो, और दूसरा बच्चा पेकिंग में हो, तो उसको वहां सर्दी हो जाएगी। बड़ी हैरानी की बात है, क्योंकि मौसम अलग है, देश अलग है, हवा अलग है। अगर इसको इनफेक्शन हुआ है, तो उसी दिन उसको इनफेक्शन होने का कोई कारण नहीं है। यहां फ्लू चल रहा है, वहां फ्लू नहीं चल रहा है; लेकिन दोनों को एक साथ सर्दी पकड़ जाएगी!
वैज्ञानिक बड़े चिंतित थे कि यह कैसे होता है? लेकिन अब साइकिक खोज कहती है कि दोनों बच्चे इतने एक साथ पैदा हुए हैं, इतने एक जैसे हैं कि उनकी सूक्ष्म-इंद्रियां इतनी संयुक्त हैं कि एक में जरा सा स्पंदन हो तो दूसरे को खबर मिल जाती है। एक बच्चे को सर्दी पकड़े तो दूसरे की सूक्ष्म इंद्रियां अनुभव करने लगती हैं कि सर्दी हो गई। उस कारण दूसरे को भी सर्दी हो जाती है। वह मानसिक सर्दी है, लेकिन हो जाएगी।
एक अंडे से पैदा हुए बच्चे करीब-करीब साथ-साथ मरते हैं। ज्यादा से ज्यादा फर्क तीन महीने का होता है। क्योंकि मृत्यु जब एक की घट जाती है, तो दूसरे की सूक्ष्म इंद्रियों पर चोट पहुंच जाती है, वह मरने के करीब हो जाता है। आप कभी छोटे-छोटे प्रयोग करें, तो आपको अपनी सूक्ष्म इंद्रियों का ख्याल आ सके।
सभी व्यक्तियों को तीन ज्ञान संभव हैं आसानी सेः श्रुत, मति, अवधि। इन तीन में कोई विशेषता नहीं है। इसलिए तीसरा ज्ञान देख कर जब आप चमत्कृत होते हैं, तो आप नासमझ हैं। तीसरे ज्ञान के कारण लोग महात्मा हो जाते हैं। लेकिन तीसरे ज्ञान से कोई जीवन की स्थिति ऊपर नहीं उठती।
आप गए किसी महात्मा के पास, और उसने जाने से ही बता दिया आपका नाम क्या है, आप कहां से आते हैं, आपका घर कैसा है, घर के सामने एक वृक्ष है--बस, आप गए! अब आपने कहा कि मिल गए गुरु, सदगुरु से मिलना हो गया!
इस आदमी ने थोड़ा सा सूक्ष्म इंद्रियों का प्रयोग किया है, जो कि सभी
के पास है। आप प्रयोग न करें, यह बात और है। आपके पास भी रेडियो है, आप न ट्यून करें और न स्टेशन लगाएं, तो लटकाए घूमते रहें! इस आदमी ने ट्यून कर लिया, इसमें कोई बड़ी कला नहीं है। मगर इसके रेडियो से आवाज आनी शुरू हो गई, और आप रेडियो लटकाए घूम रहे हैं।
अवधि ज्ञान तक तीनों बातें बिल्कुल सामान्य हैं, उसमें कुछ भी असाधारण नहीं है। लेकिन तीसरा ज्ञान हमें बहुत प्रभावित करता है। कभी आपने ख्याल किया कि तीसरा ज्ञान अक्सर अशिक्षित लोगों में ज्यादा होता है--ग्रामीण, गंवार, गांव के, उनमें ज्यादा होगा। आदिवासी, उनमें ज्यादा होगा। क्योंकि आप भूल ही गए हैं कि सूक्ष्म इंद्रियां होती हैं। आप तो सिर्फ बुद्धि से जी रहे हैं--श्रुत आपकी सारी युनिवर्सिटीज श्रुत-ज्ञान पर आधारित हैं। अभी कोई विश्वविद्यालय नहीं जो आपको मति ज्ञान दे। जंगल में जो आदमी है, उसको कोई बुद्धि की ट्रेनिंग तो होती नहीं; और जंगल में कोई सुविधा भी नहीं है उसके पास कि बुद्धि से ज्यादा जी सके। उसको जीना पड़ता है सूक्ष्म से। शेर हमला करे--तो हमला कर दे, तब बुद्धि काम कर सकती है कि अब क्या करना है, लेकिन हमला कर देने के बाद करने को कुछ बचता नहीं। वह जो जंगल में आदमी रह रहा है उसको इंद्रियों से ही सजग नहीं रहना पड़ता, उसको सूक्ष्म इंद्रियों से भी सजग रहना पड़ता है कि कोई शेर की आहट भी न मिल जाए। शेर हमला करे इसके पहले उसे पता होना चाहिए, तो ही बचाव हो सकता है, नहीं तो बचाव नहीं हो सकता है।

आस्ट्रेलिया में छोटा सा एक कबीला है, जिसका वैज्ञानिक अध्ययन हो रहा है। वह सबसे चमत्कारी कबीला है। उस कबीले का हर आदमी आपको महात्मा मालूम पड़ेगा, मगर वह कबीला बिल्कुल साधारण है। सिर्फ बहुत पुराना है; और सभ्यता से उसका संबंध नहीं है। बड़ी अजीब घटना उस कबीले में घटती है। एक वैज्ञानिक वहां ठहरा हुआ था अध्ययन करने के लिए कि क्या मामला है?
ज्यादा वैज्ञानिक अध्ययन करने जाएंगे तो ये अध्ययन कर पाएंगे कि नहीं, यह तो शक है, लेकिन उनको जरूर बिगाड़ आएंगे। क्योंकि उनमें भी शक पैदा कर आते हैं। और शक जहां आ गया, वहां अवधि से आदमी नीचे उतर जाता है। अवधि आस्था का तत्व है, भरोसे का।
उस कबीले में कोई आदमी चिट्ठी नहीं लिखता। चिट्ठी लिखना वे जानते नहीं। भाषा, लिपि उनके पास नहीं। पोस्टमैन भी नहीं है, पोस्ट-आफिस भी नहीं है। लेकिन कभी-कभी मित्रों को, प्रियजनों को खबर भेजने की जरूरत पड़ती है। तो हर उस गांव के कबीले में एक छोटा--सा पौधा होता है--गांव के बीच। उस पौधे का उपयोग करते हैं वे। अगर मां का बेटा दस मील दूर है और वह चाहती है कि जल्दी वापस आ जाए, तो वह पौधे के पास जाएगी। और वहां जाकर अपने बेटे से बात करेगी, जैसा आप फोन के पास करते हैं। वह अपने बेटे से कहेगी कि सुन, मेरी तबियत खराब है, तू जल्दी वापस आ जा, सांझ होते-होते तू वापस आ जाना। और बेटा सांझ होते-होते वापस आ जाएगा। और बेटे से अगर आप पूछें तो वह कहेगा कि "दोपहर में मुझे मेरी मां की आवाज सुनाई पड़ी कि मां कह रही है कि जल्दी घर आ जा, मेरी तबियत खराब है।"
इसका वैज्ञानिक अध्ययन हो रहा है, और वैज्ञानिक चकित हुए कि यह क्या मामला है?
मामला कुछ भी नहीं है। ये लोग सीधे-साधे पशुओं जैसे लोग हैं।
मनुष्य की सूक्ष्म इंद्रियां बड़ी शक्तिशाली हैं, बड़ी दूरगामी हैं; समय और स्थान की कोई बाधा नहीं है। अगर हम इसे ऐसा समझाएं कि प्राचीन समय में भी विज्ञान विकसित हुआ था, लेकिन सारा विज्ञान सूक्ष्म इंद्रियों के आधार पर था। आधुनिक विज्ञान स्थूल इंद्रियों के आधार पर है। तो प्राचीन समय के आदमी ने भी दूर-संवाद की कला खोज ली थी। हमने भी खोज ली है, लेकिन हमारा बाह्य इंद्रियों के आधार पर है। तो हमारे पास टेलीफोन है, रेडियो है, टेलीविजन है--ये सब बाह्य इंद्रियों का विस्तार है। प्राचीन आदमी ने अंतर-इंद्रिय का विस्तार किया था, और उनके आधार पर उसने बहुत से काम कर लिए थे, जो हमारी पकड़ के बाहर हैं। जैसा कि हमारे यंत्र उनकी पकड़ के बाहर हैं। मनुष्य की हर इंद्रिय के पीछे सूक्ष्म इंद्रिय है। आंख के पीछे एक सूक्ष्म आंख है, जो आपके भीतर छिपी है। उसे विकसित किया जा सकता है। आप थोड़े-से प्रयोग करें तो आपको ख्याल में आ जाए। और हर सौ आदमी में से कम से कम तीस आदमी आसानी से सफल हो जाएंगे। इतने लोग यहां मौजूद हैं, इनमें से अनेक लोग सफल हो जाएंगे। सौ में से तीस आदमियों की अवधि--स्थिति अभी भी बिगड़ी नहीं है।
आप एक छोटा सा प्रयोग करें। ताश के पत्ते हाथ में ले लें, आंख बंद कर लें। गड्डी में से एक पत्ता निकालें, और सोचें मत--देखें कि यह पत्ता क्या है? राजा है कि रानी, कि जोकर, कि क्या? सोचें मत, सोचने से तो बिगड़ जाएगा मामला। क्योंकि सोचने में तो आप अनुमान लगाने लगेंगे कि शायद राजा हो। तब आप दुविधा में पड़ जाएंगे, बेचैनी में। नहीं, आप सिर्फ आंख बंद करके देखें। आंख बंद करके देखें--क्या है? और सोचें मत। और जो चीज पहली दफा आए, उसका भरोसा करें, दूसरे का ध्यान मत करें। पहले आए कि जोकर, आंख खोलें और देखें। एक दो-चार दिन प्रयोग करें। आप चकित हो जाएंगे कि आप आंख बंद करके ताश
की गड्डी में से देख पाते हैं कि क्या है?
यह सिर्फ इसलिए कह रहा हूं, ताकि आपको ख्याल आ जाए कि सूक्ष्म इंद्रिय हैं। ख्याल आ जाए तो भरोसा हो जाए, भरोसा हो जाए तो काम शुरू हो जाए।
तय कर लें अपने किसी मित्र से कि रोज रात को ठीक आठ बजे, वह कलकत्ते से आपको संदेश भेजेगा; सिर्फ आंख बंद करके बैठ जाएगा और एक वाक्य का संदेश भेजेगा। और ठीक आठ बजे आप रिसेप्टिव होकर बैठ जाएंगे कि कोई संदेश आए तो उसे पकड़ लें। सोचें नहीं, जो भी वचन पहला आ जाए, वह कितना ही एब्सर्ड और

व्यर्थ मालूम पड़े, उसे नोट कर लें। और एक तीन महीने इस प्रयोग को करें। आप चकित हो जाएंगे कि तीन महीने के भीतर आपकी सूक्ष्म पकड़ने की क्षमता, ग्रहण की क्षमता बढ़ गई है। और एक इंद्रिय के साथ सभी इंद्रियां इसी तरह से जुड़ी हुई हैं। आप हैरान हो जाएंगे कि इस पर काफी काम होता है।
गुरजिएफ के साथ अनेक स्त्रियों को अनुभव होता था, कि जब गुरजिएफ से वे मिलें तो उन्हें एकदम लगता था कि उनके सेक्स-सेंटर पर कोई चोट की गई। कई स्त्रियां घबड़ा जाती थीं कि यह क्या मामला है? यह आदमी कुछ शैतान मालूम होता है। लेकिन कुल मामला इतना था कि जैसे हर इंद्रिय के पीछे सूक्ष्म इंद्रिय है, वैसी जननेंद्रिय के पीछे भी सूक्ष्म इंद्रिय है। उससे चोट की जा सकती है। और गुरजिएफ सिर्फ इतना कर रहा है कि वह सूक्ष्म इंद्रियों पर काम कर रहा है। उससे चोट की जा सकती है।
कई बार अनजाने भी चोट हो जाती है, जब आपको पता भी नहीं होता। कोई स्त्री पास से गुजरती है, आप अचानक कामातुर हो जाते हैं; या कोई पुरुष पास से गुजरता है और स्त्री अचानक संकुचित हो जाती है। लगता है, कुछ हो रहा है। कोई कुछ न भी कर रहा होता, कभी अचानक भी होता है; क्योंकि अचानक कभी सूक्ष्म इंद्रिय सक्रिय हो जाती है। वस्तुतः जिसे हम प्रेम कहते हैं, वह अवधि-ज्ञान की भाषा में सूक्ष्म इंद्रियों का सक्रिय हो जाना है।
आप एक स्त्री से बिल्कुल मोहित हो जाते हैं। जब आप मोहित हो जाते हैं
तो सारी दुनिया आपको पागल कहेगी। लोग कहेंगे कि, क्या देखते हो उस स्त्री में? पर उस आदमी को कुछ दिखाई पड़ रहा है, जो किसी को दिखाई नहीं पड़ रहा। उसको क्या दिखाई पड़ रहा है? उसकी कोई सूक्ष्म इंद्रिय उस स्त्री के संपर्क में सक्रिय हो जाती है। उस संघात में कोई सूक्ष्म इंद्रिय सक्रिय हो जाती है। वह उस स्त्री को, जो वह ऊपर से दिखाई पड़ती है, वैसा नहीं देख रहा है; बल्कि वह जैसी भीतर से है, वैसा आपको प्रतीत होने लगा है।
प्रेम की घटना अवधि ज्ञान की घटना है। महावीर कहते हैं, ये तीन ज्ञान सामान्य हैं। सारे चमत्कार तीसरे ज्ञान में आ जाते हैं। आप बीमार हैं और एक महात्मा के पास जाते हैं चमत्कारी! और वह कहता है, जाओ, तीन दिन में ठीक हो जाओगे।" आप सोचते हैं कि उसने तीन दिन में ठीक हो जाओगे कहा, इसलिए मैं तीन दिन में ठीक हो रहा हूं। बात बिल्कुल दूसरी है। उसकी सूक्ष्म इंद्रियां सक्रिय हैं, और वह देखता है कि तीन दिन बाद तुम ठीक होने वाले हो, इसलिए वह कहता है, तीन दिन में ठीक हो जाओगे। और जब तुम तीन दिन में ठीक हो जाते हो, तो तुम सोचते हो कि चमत्कार हो गया, उस महात्मा ने ठीक कर दिया। उस महात्मा को सिर्फ इतना बोध हुआ कि तीन दिन में तुम ठीक हो जाओगे। यह बोध आज नहीं कल, वैज्ञानिक यंत्रों से भी हो सकेगा।
रूस में ऐसे कैमरे विकसित किए जा रहे हैं, जो बीमारी कितने दिन में समाप्त हो जाएगी, इसका चित्र ले सकें। वे ठीक एक्सरे जैसे हैं। बीमारी है, इसका पता चल सके; और बीमारी कितनी देर में ठीक हो जाएगी, इसका पता चल सके; और बीमारी कितने दिन बाद शुरू होने वाली है, इसका पहले से पता चल सके--इन तीनों दिशाओं पर रूस में काफी काम हो रहा है। और सफलतापूर्वक काम हो रहा है। कोई भी बीमारी आपके जीवन में आए, उसके छह महीने पहले उसके फोटोग्राफ लिए जा सकते हैं। और अगर छह महीने पहले बीमारी का चित्र लिया जा सके, तो आने के पहले ही आपका इलाज किया जा सकता है।
जो-जो मन भीतर से कर सकता है, वह-वह विज्ञान यंत्र के सहारे से बाहर से
कर सकता है।
चौथे ज्ञान को महावीर कहते हैं, "मन-पर्याय।" यहां से साधक, योगी की यात्रा शुरू होती है। "मन-पर्याय" का अर्थ है: स्वयं के मन के भीतर जो पर्याय हैं, जो रूप हैं, उनका साक्षी-दर्शन। और जब कोई व्यक्ति अपने मन की पर्यायों का साक्षी-दर्शन करने में समर्थ हो जाता है, तो वह दूसरों के मन-पर्यायों का भी साक्षी-दर्शन करने में समर्थ हो जाता है। जब कोई व्यक्ति अपने मन की पूरी पर्तों को देखने में समर्थ हो जाता है, तो उसको अपने पूरे पिछले जन्म दिखाई पड़ने शुरू हो जाते हैं; क्योंकि वे सब मन की पर्तों में मौजूद हैं। कोई भी स्मृति खोती नहीं, सब संग्रहीत होती चली जाती है। उन सबको फिर से खोला जा सकता है, देखा जा सकता है।

मन की पर्यायों का जिसको अनुभव होने लगे आपने गाली दी, तो मन-पर्यायवाला व्यक्ति आपकी गाली की फिकर नहीं करेगा, न आपकी फिकर करेगा, वह भीतर देखेगा कि आपकी गाली से मेरे मन में कैसे रूप, कैसे फार्मस पैदा होते हैं? मेरे भीतर क्या होता है? क्योंकि असली सवाल मैं हूं, असली सवाल आप नहीं हैं। आपसे क्या लेना-देना है? आपने गाली दी, मैंने आंख बंद की और देखा कि मेरे भीतर क्या होता है?
इस साक्षी--दर्शन से धीरे-धीरे बाहर से दृष्टि भीतर की तरफ मुड़ती है;
हम मन के पीछे सरकते हैं। और जो व्यक्ति मन के पीछे सरकता है, उसे आत्मा का अनुभव शुरू होता है। तो "मन-पर्याय" की अवस्था में आत्मा की पहली झलक मिलनी शुरू होती है। "मैं कौन हूं"? और तब मन ऐसा ही लगता है, जैसे आकाश में घिरे बादल हों, और मैं सूर्य हूं, जो छिप गया हूं। इन बादलों के साथ हमारा इतना तादात्म्य है कि हम भूल ही जाते हैं कि हम इनसे अलग हैं। हम इनके साथ एक हो जाते हैं।
जब आप क्रोध से भरते हैं तो आपका क्रोध अलग नहीं रहता, आप क्रोध के साथ बिल्कुल एक हो जाते हैं; आप क्रोधी हो जाते हैं। जब आप भूख से भरते हैं, तो आप भूखे हो जाते हैं। लेकिन मन-पर्यायवाला व्यक्ति जानेगा कि शरीर को भूख लगी है और मैं जान रहा हूं। यह स्पष्ट भेद होगा। आपने गाली दी है, मन उद्विग्न हो गया, मैं जान रहा हूं। मन की उद्विग्नता मेरी उद्विग्नता नहीं है; मन की बेचैनी मेरी बेचैनी नहीं है। मन एक यंत्र है। मन परेशान है, मैं परेशान नहीं हूं।
लेकिन इस मन के घेरे के बाहर उतरना बड़ा साहस है, बड़े से बड़ा साहस है; क्योंकि हमारा पूरा जीवन ही मन का जीवन है। जो भी हम जानते हैं अपने बाबत, वह मन ही है। जो व्यक्ति मन के बाहर उतरता है, उसे लगता है कि मैं मरने की अवस्था में जा रहा हूं।
ध्यान मृत्यु का प्रयोग है। ध्यान से मन-पर्याय पैदा होता है। लेकिन
हम तो डरते हैं थोड़ा सा भी बाहर निकलने में, क्योंकि मन के बाहर निकलने का मतलब कि मैं खोया। मेरा सारा होना ही मन है। कभी-कभी एकाध कदम भी रखते हैं तो घबड़ा कर फिर पीछे रख लेते हैं।
सुना है मैंने कि मुल्ला नसरुद्दीन के घर कुछ बदमाशों ने हमला किया। दरवाजे उन्होंने सब बंद कर दिए। मुल्ला को हाथ-पैर बांध कर खड़ा कर दिया और उसके चारों तरफ चाक से एक लकीर खींच दी, और कहा कि इस घेरे के बाहर निकले कि समझना कि हत्या हो जाएगी। इस घेरे के बाहर भर मत निकलना। उसकी पत्नी को घसीट कर दूसरे कमरे में ले गए। घंटे भर बाद वे सब--मुल्ला खड़ा था अपने घेरे में--घर छोड़ कर चले गए। पत्नी भीतर से अत्यंत दयनीय अवस्था में--कपड़े फटे हुए, खून के दाग--बाहर भागी हुई आई, और उसने नसरुद्दीन से कहाः यू मिजरेबल कावर्ड, डू यू नो वॉट दे वेअर डूइंग टु मी इन दैट रूम? क्या कर रहे थे वे लोग उस कमरे में मेरे साथ? तुम अत्यंत कायर हो।
नसरुद्दीन ने कहाः कायर, यू काल मी ए कावर्ड, एण्ड यू नो वॉट आई डिड, व्हेन दे वेअर विद यू इन दि रूम? आन थ्री सेपरेट आकेजंस, आई स्टेप्ड आउट ऑफ दि सर्कल! तुम्हें पता है कि मैंने क्या किया, जब वे तुम्हारे साथ कमरे में थे? तीन अलग-अलग मौकों पर घेरे के बाहर मैंने कदम रखा, और तुम मुझे कावर्ड, मुझे कायर कहती हो।"
बस, ऐसे ही हम भी कभी-कभी मन के घेरे के बाहर जरा सा कदम रखते हैं, बड़ी बहादुरी समझते हैं, फिर भीतर खींच लेते हैं। वे आदमी तो जा चुके हैं, नसरुद्दीन अभी भी घेरे में खड़ा था। और बहादुर भी अपने को समझ लेते हैं। डर है! डर क्या था नसरुद्दीन को--कि मौत न हो जाए, कि हत्या न कर दें वे लोग? ध्यान में भी वही डर है। और गुरु से बड़ा हत्यारा खोजना मुश्किल है। इसलिए हमने तो उपनिषदों में गुरु को मृत्यु ही कहा है। और जब कठोपनिषद में नचिकेता का बाप उससे कहता है नाराज होकर क्योंकि नचिकेता के पिता ने एक उत्सव किया है और वह दान कर रहा है। तो जैसा कि लोग दान करते हैं, मरी, मुर्दा चीजें-गाएं, जिनका कि दूध सूख चुका है, वह दान कर रहा है; घोड़े, जो अब बोझ नहीं ढो सकते; रथ, जो अब चल नहीं सकता--जैसे कि लोग दान करते हैं--दानी। जो आपके काम नहीं आता, लोग उसको दान कर देते हैं।

क्वेकर समाज में एक नियम है कि दान उसी चीज का करना जो तुम्हें सबसे ज्यादा पसंद हो, नहीं तो मत करना। नहीं तो उसका कोई मूल्य नहीं है। दान का मतलब ही है, जो तुम्हें सबसे ज्यादा प्यारी चीज हो, उसका दान करना, तो ही किसी मूल्य का है।
मैं मानता हूं कि क्वेकर की समझ जो दान के संबंध में है, वैसी समझ दुनिया में किसी धर्म में पैदा नहीं हुई। वे कहते हैं; हर सप्ताह एक चीज दान करना, लेकिन वही चीज जो तुम्हें सबसे ज्यादा प्यारी हो। तो उससे क्रान्ति घटित होगी।
हम भी दान करते हैं! वह जो कचरा-कूड़ा इकट्ठा हो जाता है, उसको हम दान कर देते हैं! और अक्सर दान की चीजें दूसरे लोग भी दूसरों को दान करते चले जाते हैं। क्योंकि किसी के काम की नहीं होती।
नचिकेता का पिता दान कर रहा है, नचिकेता पास में बैठा देख रहा है। उसे बड़ी हैरानी होती है। वह पूछता है कि "ए गाएं, जिनमें दूध नहीं है, इनसे क्या फायदा है दान करने से?" बाप नाराज होता चला जाता है।
बेटे सरल होते हैं। स्वभावतः क्योंकि अभी उनकी उम्र क्या है? अभी नचिकेता भोलाभाला है। उसे चीजें साफ दिखाई पड़ती हैं। बाप समझ रहा है कि वह दान कर रहा है--उसको दिखाई पड़ रहा है, बेटे को, कि कैसा दान? यह गाय तो दूध दे ही नहीं सकती, उलटे जिसको तुम दे रहे हो उस पर बोझ हो जाएगी। उसको और घास का इंतजाम करना पड़ेगा, पानी पिलाना पड़ेगा। यह बूढ़ी गाय देने से क्या फायदा है? पर बाप उसको कहता है कि तू चुप रह, तू क्या जानता है? लेकिन उससे भी चुप रहा नहीं जाता। आखिर में वह पूछता है कि आप सभी-कुछ दान कर दोगे? बाप कहता है, हां, सभी कुछ। तो वह कहता है, मुझे किसको दान करोगे? क्योंकि मैं भी तो आपका बेटा हूं। बाप नाराजगी में कहता है कि तुझे मौत को दे दूंगा, यम को दे दूंगा।
लेकिन बड़ी मीठी कथा है कठोपनिषद में कि नचिकेता फिर मृत्यु को दे दिया जाता है। और मृत्यु से नचिकेता जीवन के गहरे से गहरे सवाल पूछता है, और जीवन की परम गुह्य साधना को लेकर वापस लौटता है। गहरा प्रतीक यह है कि बाप जब कहता है, तुझे मृत्यु को दे दूंगा, तब वह कहता है तुझे गुरु को दे दूंगा। क्योंकि गुरु का अर्थ ही मृत्यु है। गुरु से गुजर कर तू नया होकर लौट आएगा! नचिकेता नया होकर लौटता है। अमृत का तत्व सीख कर लौटता है। हमारा डर यही है। ध्यान? समाधि? कि हम मर तो नहीं जाएंगे, मिट तो नहीं जाएंगे। हम अपने को बचा कर ध्यान करना चाहते हैं। ध्यान नहीं हो सकता। हमें अपने को छोड़ना ही पड़ेगा, तोड़ना ही पड़ेगा, हटना ही पड़ेगा। मन-पर्याय केवल उन्हीं लोगों के जीवन में उतरेगा, जो मन से दूर हट जाते हैं।
क्या करें?
मन के साथ जहां-जहां तादात्म्य हो, वहां-वहां तादात्म्य न होने दें। क्रोध उठे--पूरा प्राण आपका कहेगा कि क्रोधी हो जाओ--उस समय भीतर शांत बने रहें। क्रोध को घूमने दें चारों तरफ, दबाने की कोई जरूरत नहीं है। हाथ पैर फड़कें, फड़कने दें; मुट्ठियां बंधें, बंध जाने दें। क्रोध शरीर के खून को उत्तप्त कर दे; श्वास तेज चलने लगे, चलने दें। लेकिन भीतर केंद्र पर अलग खड़े देखते रहें कि क्रोध घट रहा है मेरे शरीर और मन में, लेकिन मैं पृथक हूं, मैं अन्य हूं, मैं अलग हूं। मैं सिर्फ देखने वाला हूं। जैसे यह किसी और को घट रहा है।
कामवासना पकड़े, ऐसे ही दूर खड़े हो जाएं, लोभ पकड़े, ऐसे ही दूर खड़े हो जाएं, विचारों का झंझावात पकड़ ले, दूर खड़े हो जाएं। रात पड़े हैं बिस्तर पर, नींद नहीं आ रही है! विचार पकड़े हुए हैं। विचारों के कारण नींद में बाधा नहीं पड़ती; आप विचारों के साथ तादात्म्य जोड़ लेते हैं, इससे बाधा पड़ती है। अब दोबारा जब ऐसा हो रात नींद न आए और विचार पकड़े हो, तब कुछ न करें, सिर्फ आंख बंद किए इतना ही अनुभव करें कि मैं अन्य हूं, ये विचार अन्य हैं। जैसे आकाश में बदलियां चल रही हैं, ऐसे मन में विचार चल रहे हैं; जैसे रास्ते पर कारें चल रही हैं, ऐसे मन में विचार चल रहे हैं, मैं अपने घर में बैठा देख रहा हूं--सिर्फ देखते रहें। थोड़ी ही देर में आप पाएंगे, विचार खो गए, आप गहरी निद्रा में प्रवेश कर गए।

ध्यान की प्रक्रिया भी यही है कि विचार से अपने को तोड़ लेना। विचार से टूटते ही व्यक्ति को "मन-पर्याय" की अवस्था शुरू हो जाती है। महावीर मन-पर्याय को चौथा ज्ञान कहते हैं। चौथा ज्ञान साधक को उपलब्ध होता है। और पांचवें ज्ञान को महावीर कहते हैं, "कैवल्य।" सिर्फ--मात्र ज्ञान, जहां कुछ भी जानने को नहीं रह जाता। क्योंकि चौथे ज्ञान में मन जानने को रहता है। मन की पर्याय जानते-जानते, साक्षी होते-होते मन की पर्याएं गिर जाती हैं, रूपान्तरण गिर जाते हैं, मन खो जाता है; आकाश खाली हो जाता है। उस खालीपन में सिर्फ सूर्य का प्रकाश रह जाता है, सिर्फ सूर्य रह जाता है। वह सिद्ध की अवस्था है--कैवल्य। ये पांच ज्ञान हैं। उस सिद्ध की अवस्था में जो जाना जाता है, वही सत्य है।
इस बात को ठीक-से समझ लें। महावीर का जोर बड़ा अनूठा है। वे कहते हैं:
आप जैसे हैं, वैसी अवस्था में सत्य नहीं जाना जा सकता। इसलिए सत्य की खोज छोड़ो, अपनी अवस्था बदलो। आप जैसे हैं, इसमें तो असत्य ही जाना जा सकता है। आप असत्य को आकर्षित करते हैं।
"श्रुत" की अवस्था में असत्य ही जाना जा सकता है। "मति" की अवस्था में इंद्रिय-सत्य जाना जा सकता है-वस्तुओं का सत्य। मन "अवधि" की अवस्था में सूक्ष्म इंद्रियों का सत्य जाना जा सकता है। "मन-पर्याय" की अवस्था में, मन के जो पार है, उसकी झलक और मन के सब रूपांतरणों का सत्य जाना जा सकता है। और "कैवल्य"--शुद्ध सत्य जाना जा सकता है, जो है--अस्तित्व, मात्र अस्तित्व। उसे हम परमात्मा कहें, या जो भी नाम देना चाहेंः निर्वाण कहें, मोक्ष कहें।
महावीर ने ये पांच ज्ञान कहे हैं। और मेरे जाने, किसी दूसरे व्यक्ति
ने ज्ञान का इतना सूक्ष्म वैज्ञानिक विषण नहीं किया है। और इसकी कोई संभावना नहीं है कि इन पांच के अतिरिक्त छठवां ज्ञान हो सकता है। इसकी कोई संभावना नहीं है। विज्ञान तीन तक पहुंच गया है, चौथे पर चरण रख रहा है। ध्यान पर पश्चिम में बड़े प्रयोग हो रहे हैं; चौथे पर चरण रखने की कोशिश की जा रही है। आज नहीं कल, पांचवें का भी स्मरण आना शुरू हो जाएगा। महावीर इस सदी के पूरे होते-होते, मन के संबंध में बड़े से बड़े वैज्ञानिक सिद्ध हो सकते हैं।
"ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अंतराय--इस प्रकार संक्षेप में ये आठ कर्म बतलाए हैं।"
ये पांच ज्ञान और इन पांच ज्ञानों को ढंक लेने वाले; इस कैवल्य को ढंक लेने वाले, इस शुद्ध ज्ञान को ढंक लेने वाले आठ कर्मों के रूप हैं। महावीर की पकड़ ठीक विषक, वैज्ञानिक की पकड़ है। जैसे कि कोई निदान करता
है मरीज का कि क्या बीमारी है, क्या कारण है, क्या उपाय है--ऐसे एक-एक चीज का निदान करते हैं। महावीर कवि नहीं हैं। इसलिए उपनिषद में जो काव्य है, वह महावीर की भाषा में नहीं हैं। महावीर बिल्कुल शुद्ध गणित और वैज्ञानिक बुद्धि के व्यक्ति हैं। शायद इसलिए महावीर का प्रभाव जितना पड़ना था उतना नहीं पड़ा; क्योंकि लोग गणित से कम प्रभावित होते हैं, काव्य से ज्यादा प्रभावित होते हैं, क्योंकि लोग कल्पना से ज्यादा प्रभावित होते हैं, सत्य से कम प्रभावित होते हैं। महावीर के कम प्रभाव पड़ने का एक कारण यह भी है--बुनियादी कारणों में से एक कारण। कि वे बिल्कुल गणित की तरह चलते हैं। सीधा हिसाब है।
लेकिन जिसको साधना के पथ पर जाना है, कविता काम नहीं देगी। जिसे घर में बैठकर आंखें बंद करके सपने देखने हैं, बात अलग है। लेकिन जिसे यात्रा तय करनी है, उसे तो नक्शे चाहिए साफ। खतरों का पता चाहिए--खाई खड्डे कहां हैं, भटकाने वाले मार्ग कहां हैं? और क्या-क्या कारण हैं, जिनके कारण मैं संसार में खड़ा हूं; और एक-एक कारण को कैसे अलग किया जा सके, ताकि मैं संसार के बाहर हो जाऊं।
महावीर एक शुद्ध चिकित्सक की तरह व्यवहार कर रहे हैं, जीवन की विचारणा में। आठ, वे कहते हैं, मनुष्य की शुद्धता को रोक लेने वाले कर्म-फल हैं। इनको, एक-एक को हम ख्याल में लें, समझ में आ जाएंगे।

ज्ञान को आवृत्त करने वाला, पहला--कौन सी चीज आपके ज्ञान को आवृत्त करती है, वही "ज्ञानावरणीय" है। जो-जो चीजें आपके ज्ञान को रोकती हैं, ढांकती हैं और आपके अज्ञान को परिपुष्ट करती हैं, वे सभी ज्ञान पर आवरण हैं।
कौन सी चीजें आपके अज्ञान को परिपुष्ट करती हैं?
पहली तो बात यही कि आप अपने को अज्ञानी मानने को राजी नहीं होते। आप ज्ञानी हैं, यह आवरण हो गया--खोज बंद हो गई। यह बीमारी हो गई। यह ऐसा ही है, जैसे कि कोई बीमार आदमी कहे कि मैं स्वस्थ हूं, कौन कहता है कि मैं बीमार हूं? अगर बीमार आदमी भी इसको एक तरह का आक्रमण समझ ले कि उसको कोई बीमार कहे, तो वह लड़ने लगे कि कौन कहता है कि मैं बीमार हूं? मैं बिल्कुल स्वस्थ हूं; शर्म नहीं आती मुझे बीमार कहते हुए! तो फिर उसके इलाज का कोई उपाय न रहा।
अज्ञानी यही कर रहा है। वह कहता है, "कौन कहता है, मैं अज्ञानी हूं?" अगर कोई आपकी बात को गलत सिद्ध करे, तो आप लड़ने को तैयार हो जाएंगे। गलत सिद्ध करने में क्या खतरा है? वह आपको सिद्ध कर रहा है कि आप अज्ञानी हैं, यही खतरा है।
दुनिया में लोग सत्य के लिए नहीं लड़ते--मेरी बात सच है, इसलिए लड़ते हैं। ये इतने जो संप्रदाय दिखाई पड़ते हैं, इतने अड्डे दिखाई पड़ते हैं; इनका झगड़ा कोई सत्य का झगड़ा नहीं है। सत्य के लिए क्या झगड़ा हो सकता है? झगड़ा इस बात का है कि जो मैं कहता हूं, वही सत्य है, और कोई सत्य नहीं हो सकता।
मैंने सुना है कि एक फकीर मरा--एक सूफी फकीर मरा। स्वर्ग पहुंचा, तो उसने परमात्मा से पहली प्रार्थना की, कि सबसे पहले तो मैं यह जानना चाहता हूं कि स्वर्ग का पूरा विस्तार कितना है? और मैं पूरे स्वर्ग में एक भ्रमण करना चाहता हूं, इसके पहले कि कहीं निवास बनाऊं।
परमात्मा ने कहा कि यह उचित नहीं है, नियम विपरीत है। तुम सूफी हो, तुम्हारी जगह तय है। स्वर्ग का वह हिस्सा, जहां सूफी बसते हैं, तुम वहां चले आओ।
पर उस सूफी ने जिद बांध ली। उसने कहा कि चाहे मुझे नर्क भेज दें, लेकिन इसके पहले कि मैं अपनी जगह चुनूं, मैं पूरे स्वर्ग को जितना है, देख लेना चाहता हूं।
पर परमात्मा ने कहाः जिद्द क्या यह? कोई ऐसी जिद्द नहीं करता; क्योंकि सभी मानते हैं कि उनका स्वर्ग ही बस स्वर्ग है। जैनी आते हैं, वे अपने स्वर्ग में चले जाते हैं, हिंदू आते हैं, वे अपने स्वर्ग में चले जाते हैं; मुसलमान। और सभी यही मानते हैं कि उनका स्वर्ग ही मात्र स्वर्ग है, बाकी कोई स्वर्ग है नहीं। तू कैसा आदमी है? यह बात ही ठीक नहीं, नियम विपरीत है! लेकिन तू नहीं मानता और मुझे प्यारा है, इसलिए तुझे मौका देता हूं। लेकिन किसी को बताना मत।
तो एक देवदूत साथ कर दिया गया फकीर के। और वह देवदूत उसे ले गया, उसने दिखाया मुसलमानों का स्वर्ग-करोड़ों करोड़ों मुसलमान! यहूदी, ईसाइयों के स्वर्ग--सब दिखाता चला गया। लेकिन सब जगह वह बिल्कुल फुस-फुसा फुस-फुसा कर बात करता था। आखिर में उस आदमी से--सूफी से न रहा गया, उसने कहाः यह तो ठीक है, लेकिन इतना फुस-फुसा कर क्यों बात करते हो?
उसने कहा कि इन लोगों को पता नहीं चलना चाहिए। यही केवल स्वर्ग में हैं। ये सब हर एक की यही मान्यता है कि मैं ही स्वर्ग में हूं। अगर मुसलमान को पता चल जाए कि ईसाई भी स्वर्ग में है, तो वह उदास हो जाएगा। सब मजा ही चला गया। ईसाई सब नरक में पड़े हैं। जैन को पता चल जाए कि हिंदू भी चले आ रहे हैं स्वर्ग में तो उसकी सारी भूमि खिसक जाएगी। इनका मजा ही यही है। ये जो इतने आनंदित दिखाई पड़ रहे हैं, इनका मजा ही यह है कि ये समझते हैं कि ये ही केवल स्वर्ग में हैं, बाकी सब नरक में हैं।
हर आदमी अपने सत्य को सत्य की सीमा समझता है। सोचता है, जो वह मानता है वही ठीक है। और सारी दुनिया उसको मान लेगी, उसकी चेष्टा होती है। ऐसा व्यक्ति मतवादी होता है, और ऐसा व्यक्ति सदा अज्ञान में घिरा रह जाता है।

ज्ञान की तरफ जानेवाले व्यक्ति को इस तरह के कर्म-मल को अपने आसपास इकट्ठा नहीं करना चाहिए। उसे सदा विनम्र, मुक्त, राजी होना चाहिए कि सत्य कहीं से भी आता हो, मैं खुला हूं। सत्य कहां से आता है, इसका कोई सवाल नहीं। मैं प्यासा हूं, पानी गंगा का है कि यमुना का, इससे कोई सवाल नहीं है-पानी चाहिए। पानी किन हाथों से आया, इसका भी कोई सवाल है?
लेकिन, कुछ नासमझ, वे आम खाने जाते हैं लेकिन गुठलियां गिन कर जीवन बिता देते हैं। आम खाने का मौका ही नहीं आ पाता, गुठलियां काफी हैं। महावीर कहते हैं, ज्ञानावरणीय उन सारी वृत्तियों को, जो आपके ज्ञान
के प्रस्फुटन में बाधा हैं: आपका अहंकार, आपका मतवाद, आपके पक्षपात, आपका यह आग्रह कि यही ठीक है।
अनाग्रह-चित्त चाहिए। इसलिए महावीर ने पूरे अनाग्रह-चित्त का दर्शन विकसित किया, जिसको वे "स्यातवाद" कहते हैं। वे कहते हैं, कोई भी चीज को ऐसा मत कहो कि यही ठीक है, क्योंकि जगत बहुत बड़ा है। और भी स्वर्ग हैं। दूसरा भी ठीक हो सकता है। विपरीत बात भी ठीक हो सकती है; क्योंकि जीवन बड़ा जटिल है। यहां एक आदमी जो भी कहता है, वह आंशिक ही होगा, पूर्ण नहीं होगा। जो भी कहा जा सकता है, वह आंशिक होगा।
इसलिए भी महावीर का प्रभाव बहुत नहीं पड़ा, क्योंकि महावीर का विचार संप्रदाय बनाने वाला विचार नहीं है। जिन्होंने बना लिया उनके पीछे, वे चमत्कारी लोग हैं। महावीर के पीछे संप्रदाय बन नहीं सकता, बनना नहीं चाहिए। क्योंकि महावीर, संप्रदाय की जो मूल भित्ति है, मैं ही ठीक हूं, उसको तोड़ रहे हैं।
कोई संप्रदाय, जो कहे कि आप भी ठीक हैं, वह कैसे बन सकता है? मंदिर कहे
कि मस्जिद भी ठीक है, कोई हर्जा नहीं, वहां भी चले गए तो चलेगा, मंदिर का धंधा टूट जाएगा। मंदिर को तो कहना ही चाहिए कि सब गलत हैं। और जितनी ताकत से मंदिर कहे कि मस्जिद गलत है, चर्च गलत और जितना सुननेवाले को भरोसा दिला दे कि सिर्फ मंदिर सही है, उसका संदेह मिटा दे, तो ही कोई आने वाला है। ये सब दुकान की ही बात है। अगर दुकानदार कहने लगे कि जो माल मेरी दुकान पर है, वही सब दुकानों पर है; जो दाम मेरे, वही सबके, कहीं से भी ले लो, सब एक है--यह दुकान खो जाएगी। ये दुकान नहीं बच सकती। दुकानदार को कहना ही चाहिए कि माल तो सिर्फ यहीं है, बाकी सब नकल है।
महावीर अजीब दुकानदार हैं! वे कहते हैं कि दूसरा भी ठीक हो सकता है।
वे किसी को गलत कहते ही नहीं। उनकी चेष्टा यही है, कहीं कोई कितना ही गलत हो, उसमें भी थोड़ा सच जरूर होगा। उस सच को चुन लो। क्योंकि कोई बिल्कुल झूठी बात टिक नहीं सकती, खड़ी नहीं हो सकती। खड़े होने के लिए थोड़ा-सा सच का सहारा चाहिए। इसलिए जब तुम किसी असत्य को भी चलते देखो, तो महावीर कहते हैं, खोज करना, क्योंकि वह चल रहा है तो उसके पीछे जरूर कहीं कुछ सत्य होगा। क्योंकि सत्य के बिना प्राण नहीं, असत्य चल नहीं सकता। असत्य को भी सत्य के ही पैर चाहिए, तो ही चल सकता है। उस सत्य को पकड़ लो, असत्य की तुम फिकर छोड़ो। असत्य पर जोर ही क्यों देते हो, तुम उस सत्य को पकड़ लो।
महावीर से कोई आकर कहता है कि निर्वाण है या नहीं? महावीर कहते हैं, है; नहीं भी है। संप्रदाय मुश्किल है। क्योंकि वह आदमी एक कोई पक्की बात ही नहीं कह रहा--कभी कुछ, कभी कुछ। यह आदमी कभी कहता "है", कभी कहता "नहीं है"। वह आदमी पूछता है, क्या मतलब आपका। या तो "है", कहो "है।" या कहो, "नहीं", "नहीं है"।
संप्रदाय बनाने के लिए साफ बातें चाहिए। ऐसा नहीं कि महावीर की बातें गैर-साफ हैं। लेकिन बातें इतनी साफ हैं कि हम जैसे अंधों को उनमें सफाई नहीं दिखाई पड़ सकती। हमारी आदतें हैं बंधी हुई चीजों को देखने की। महावीर का सत्य आकाश की तरह बड़ा है,
हम आंगन की तरह छोटे-छोटे सत्य वाले लोग हैं।
तो महावीर कहते हैं कि निर्वाण है उसके लिए, जो "कैवल्य" में पहुंच गया। निर्वाण नहीं है उसके लिए, जो अभी श्रुत में पड़ा है। संसार में जो खड़ा है, उसके लिए निर्वाण नहीं है। कहां है? क्योंकि जो मेरा अनुभव नहीं है, उसके होने का क्या अर्थ है?

महावीर से कोई पूछता है, क्या संसार माया है? क्योंकि मायावादी हैं,
वे कहते हैं, संसार माया है। महावीर कहते हैं, "है" भी, "नहीं" भी। क्योंकि जो संसार में खड़ा है, उसके लिए संसार माया नहीं है, और जो संसार के पार उठ गया, उसके लिए संसार माया है। वहां कुछ भी नहीं बचा, स्वप्न छूट गया। इंद्रधनुष दूर से देखे जाने पर है, पास से देखे जाने पर नहीं है।
तो महावीर कहते हैं: सभी सत्य जो हम कहते हैं, आंशिक हैं, और उनसे विपरीत भी सच हो सकता है। ऐसा व्यक्ति अपने ज्ञान के आवृत करनेवाले कर्मों को काट देता है। मताग्रह बंधन है--अनाग्रह चित्त!
महावीर बड़े अदभुत हैं। अभी महात्मा गांधी ने एक शब्द चलाया-- सत्याग्रह। महावीर उसको भी राजी नहीं हैं। कहते हैं, सत्य का भी आग्रह नहीं; क्योंकि जहां आग्रह आया, वहां असत्य आ जाता है। महावीर कहते हैं-- अनाग्रह।
हम तो असत्य का भी आग्रह करते हैं। क्योंकि मेरा असत्य आपके सत्य से मुझे ज्यादा प्रीतिकर मालूम पड़ता है। क्योंकि "मेरा" है। मेरे असत्य के लिए मैं लडूंगा, मैं कहूंगा, यही सत्य है। क्यों? इतनी लड़ाई क्या है? कारण है। अगर यह असत्य टूटता है, तो मैं टूटता हूं। इसके सहारे मैं खड़ा हूं। अगर मेरी सारी धारणाएं गलत हो जाएं, तो मैं गलत हो गया।
लेकिन जो व्यक्ति ज्ञान की खोज में चला है, वह तैयार है पूरी तरह गलत होने को। जो पूरी तरह गलत होने के लिए तैयार है, वह पूरी तरह सही हो जाएगा।
उसकी यात्रा शुरू हो गई।
महावीर कहते हैं, दूसरा है दर्शन को आवृत्त करने वाला--कर्मों का जाल।
आपकी आंखों पर, आपके दर्शन पर भी पर्दा है। आप जो देखते हैं उसमें आपकी व्याख्या प्रविष्ट हो जाती है। समझिए।
मैंने सुना है, अमरीका का एक करोड़पति पिकासो के चित्र को खरीद कर ले गया। लाखों रुपये पिकासो के चित्र के दाम हैं। उसने लाखों रुपये खर्च किए, पिकासो का चित्र ले गया। उसने अपने बैठकखाने में उस चित्र को लगाया। वह उस की बड़ी प्रशंसा करता था। जो भी आता, उसे दिखाता कि कितने रुपये खर्च किए, कैसा अदभुत चित्र है।
फिर एक दिन पता चला खोज बीन से कि वह पिकासो का चित्र नकली है; पिकासो
का बनाया हुआ नहीं, किसी ने नकल की है। बात खत्म हो गई। वह जो सुंदर चित्र था बहुमूल्य, उसका सौंदर्य खो गया, मूल्य खो गया। वह चित्र उसने उठा कर कबाड़खाने में डाल दिया।
इस आदमी को सच में सौंदर्य दिखाई पड़ता था या सिर्फ ख्याल था? अगर इसने अपनी आंखों से चित्र का सौंदर्य देखा होता तो यह कहता, क्या फर्क पड़ता है कि किसने बनाया? चित्र सुंदर है और बैठक में रहेगा। और लाखों रुपये का है, चाहे नकल ही क्यों न की गई हो। उससे फर्क पड़ता है? यह चित्र अपने आप में सुंदर है, और जिसने नकल की है, वह पिकासो से बड़ा कलाकार है; क्योंकि पिकासो की नकल कर सका। शायद पिकासो भी अपने चित्र की नकल न कर सके। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता।
लेकिन चित्र उठा कर फेंक दिया गया, क्योंकि असली सवाल चित्र से नहीं था। पिकासो का है, इससे था। लेकिन कुछ महीने बाद पता चला कि वह धारणा गलत थी, चित्र पिकासो का ही है। चित्र उठा कर वापस बैठकखाने में लगा दिया गया। झाड़-पोंछ की गई उसकी फिर से, क्योंकि कचरा-कूड़ा उस पर जम गया था। और वह फिर से कहने लगा कि कैसा अदभुत चित्र है!" आपकी आंखें हैं या क्या--आप भी यही कर रहे हैं।
अगर कोई बांसुरी बजा रहा है आपको भी पता है कि ऐसे ही कोई ऐरा-गैरा बजा रहा है, तो आप कहेंगे कि क्यों सिर खा रहे हो? , और अगर आपको पता चले कि कोई महान कलाकार है, तो आप बिल्कुल रीढ़ सीधी करके बैठ जाएंगे कि क्या गजब का संगीत है!
लोग शास्त्रीय संगीत सुनते रहते हैं! उनको बिल्कुल पता नहीं कि क्या
हो रहा है? लेकिन शास्त्रीय हो रहा है, तो शास्त्रीय सुनने से वे भी सुसंस्कृत मालूम होते हैं। वे भी सिर हिलाते हैं! "दर्शनावरणीय!"

आपके पास अपनी आंखें नहीं, अपने कान नहीं, अपने हाथ नहीं--एक्सपर्ट बता रहा है कि "यह कीमती है, यह सुंदर है, यह बहुमूल्य हैं!"
आपके हाथ में हीरा रख दिया जाए और बताया न जाए कि हीरा है, और कह दिया जाए कि एक चमकदार कंकड़ है, आप उसे बच्चों को खेलने को दे देंगे। और एक दिन आपको पता चले कि एक्सपर्टस कह रहे हैं कि "कोहिनूर है"--छीन लेंगे बच्चे से, तिजोड़ी में बंद करके रख लेंगे।
आपके पास अपनी कोई भी प्रतीति नहीं है; आपका दर्शन विशुद्ध नहीं है-- अशुद्ध है, उधार है। आंखें अपनी और आंखों पर पर्दे किन्हीं और के हैं। सब चीजें ऐसी हैं। सब चीजें ही ऐसी हैं! मैं रोज देखता हूं। आप रोज अनुभव करते होंगे, चारों तरफ यह घट रहा है।
मैं एक मित्र को एक मूर्ति दिखाने ले गया। मूर्ति महावीर की है, लेकिन कुछ अनआर्थाडाक्स है। जैसी होनी चाहिए महावीर की, वैसी नहीं है, कुछ भिन्न है। तो वे खड़े रहे। मैंने कहा कि झुको, नमस्कार करो। उन्होंने कहाः क्या झुकने का है? मैंने कहाः जरा नीचे देखो गौर से, महावीर का चिह्न बना हुआ है। नीचे गौर से देखा, साष्टांग सिर रख कर लेट गए!
आखिर आपके भीतर से अपना कुछ उदभावन होता है या नहीं होता? सब दूसरों
से संचालित है?
तो जिसकी दृष्टि अपनी नहीं है, निज की नहीं है, उसको महावीर कहते हैं, उसके दर्शन पर आवरण है।
अपनी आंखें खोजें। और अगर आपको एक पत्थर प्रीतिकर लगता हो, तो हीरे की तरह उसे अपनी तिजोड़ी में सम्हाल कर रखें, और अगर एक हीरा आपको साधारण लगता हो तो कचरे में फेंक दें!
इतनी हिम्मत चाहिए। इतनी हिम्मत न हो तो आदमी कभी भी दर्शन की क्षमता
को उपलब्ध नहीं होता। और जिसके पास आंख अपनी नहीं है, वह क्या अपने परमात्मा को खोज सकेगा! कोई उपाय नहीं है।
निजता मूल्यवान है।
तीसरी कर्म की एक प्रक्रिया है जो हमें चारों तरफ से घेरे है, उसे महावीर "वेदनीय" कहते हैं। दुख के परमाणु हमारे चारों तरफ हैं। उनके कारण हम निरंतर दुखी होते रहते हैं। कुछ लोग, आप जानते होंगे--कुछ क्या, अधिक लोग, जिनको आप सुखी कर ही नहीं सकते। आप कुछ भी करें, वे उसमें से दुख निकाल लेंगे।
मुल्ला नसरुद्दीन हर साल रोता था कि फसल खराब गई, फसल खराब गई, इस साल वर्षा आ गई, इस साल ज्यादा धूप हो गई, इस साल जानवर चर गए, इस साल पक्षी आ गए। लेकिन, एक साल ऐसा हुआ अनहोना कि न पक्षी आए, न कीड़े लगे, न ज्यादा धूप पड़ी, न ज्यादा वर्षा हुई, न कम वर्षा हुई। फसल ऐसी अदभुत हुई कि लोग कहने लगे कि हजारों वर्ष में ऐसा शायद ही हुआ हो। बूढ़े से बूढ़े गांव के लोग कहने लगे, बड़ी अदभुत फसल हुई, कुछ भी सड़ा नहीं, कुछ भी गला नहीं, कुछ भी खराब नहीं हुआ। लेकिन मुल्ला है कि अपने दरवाजे पर सिर लटकाए दुखी बैठा है। उसके पड़ोस के लोगों ने कहा कि नसरुद्दीन, अब तो खुश हो जाओ, अब तो कुछ भी उदासी का कारण नहीं है। उसने कहा कि कारण क्यों नहीं है, कुछ भी सड़ा-गला नहीं है, जानवरों को क्या खिलाएंगे?
"वेदनीय"--दुख खोज ही लेंगे! ऐसा हो ही नहीं सकता कि कहीं दुख न हो।
हम सबके पास जन्मों-जन्मों से ऐसे वेदनीय परमाणु हैं, जो हमें उकसाते हैं कि खोजो दुख, दुख खोजो। और ऐसा असंभव है कि आदमी को कहीं खोजने से दुख न मिल जाएं। जीवन में दुख हैं-काफी हैं, और आप खोजने को उत्सुक हैं, तब तो कहना ही क्या!
हमारी हालत वैसी ही है, जैसे कभी आपको होता होगा कि पैर में चोट लग गई,
तो फिर दिन भर उसी में चोट लगती है। आप सोचते होंगे, कैसा अजीब मामला है, दुनिया का नियम कैसा बेहूदा है कि जब चोट नहीं थी तो इसमें चोट नहीं लगती थी, अब चोट लगी है, एक घाव है, तो दिन भर चोट लग रही है?
आप गलती में हैं। दुनिया आपके घाव की कोई फिकर नहीं करती। और न दरवाजे
को कोई मतलब है कि आपके घाव में लगे; न कुर्सी को मतलब है, न टेबल को मतलब है। न बच्चे को मतलब है कि आपके घाव पर खड़ा हो जाए। किसी को कोई मतलब नहीं

है आपके घाव से। लेकिन जब आपके पास घाव होता है, तो वेदनीय कर्म आपके घाव के आसपास होते हैं। सारे दुख तब हर चीज छूती है, और बहुत दुखद मालूम होती है। कल भी हर चीज छूती थी, लेकिन आपके पास दुख को पकड़ने की क्षमता नहीं थी, घाव नहीं था। कल भी लड़के ने पैर वहीं रख दिया था, लेकिन कुछ पता नहीं चला था। आज भी वहीं रख दिया है, लेकिन आज पता चलता है; क्योंकि आज घाव है। ध्यान रहे, आपके दुख कोई आपको दे नहीं रहा है, आप ले रहे हैं। दुनिया में कोई किसी को दुख दे नहीं सकता। यह हमें कठिन लगेगा। इससे उलटा समझ लें तो आसानी हो जाएगी। क्या दुनिया में कोई किसी को सुख दे सकता है? पत्नी पति को सुख देने की कोशिश कर रही है, पति पत्नी को सुख देने की कोशिश कर रहा है। और दोनों दुखी हैं, नरक में मरे जा रहे हैं। कोई किसी को सुख नहीं दे सकता है तो कोई किसी को दुख भी कैसे दे सकता है?
मां-बाप कोशिश कर रहे हैं बेटे को सुख देने की, और बेटा सोच रहा है: कब इनसे छुटकारा हो, कैसे छूटें इनके जाल से। क्या मामला है?
कोई किसी को सुख दे नहीं सकता, न कोई किसी को दुख दे सकता है। इस जगत में दुख लिया जा सकता है, सुख लिया जा सकता है-दिया नहीं जा सकता। यह एक मौलिक सिद्धांत है, आधारभूत। इसलिए अगर आप दुख में जी रहे हों, तो समझना कि आप दुख लेने में बड़े कुशल हैं। उस कुशलता का नाम वेदनीय कर्म है।
आप कुशल हैंः आप सदा दुख लेने को उत्सुक हैं। एक आदमी आपकी दिनभर सेवा करे, आपको ख्याल भी नहीं आएगा। और जरा आपकी आज्ञा का उल्लंघन कर दे कि बस, सब नष्ट हो गया। एक पत्नी आपकी जीवन भर सेवा करती रहे, पैर दबाती रहे, कुछ पता नहीं चलता। कोई ख्याल भी नहीं, धन्यवाद भी आप कभी नहीं देते। और एक दिन कह दे कि नहीं, आज चाय मुझे नहीं बनानी, आप बना लें, सब जीवन नष्ट हो गया, सब गृहस्थी बर्बाद हो गई। मन में तलाक के विचार आने लगते हैं।
नसरुद्दीन खड़ा था अदालत में जाकर और कह रहा था कि अब बस हो गया, अब बहुत हो गया, अब तो तलाक चाहिए। उससे मजिस्ट्रेट ने पूछा कि बात क्या है? नसरुद्दीन ने कहा कि बात हद से ज्यादा आगे बढ़ गई है। एक ही कमरा है रहने का और उसमें पत्नी ने तीन बकरियां पाल रखी हैं। इतनी गंदगी हो रही है और इतनी बास आ रही है कि अब मर जाएंगे, या फिर तलाक। इन दोनों के अतिरिक्त अब और कोई उपाय नहीं है। जज ने कहा कि बात तो समझ में आती है; हालत तो बुरी है, लेकिन खिड़कियां क्यों नहीं खोल देते कि बास जरा बाहर निकल जाए। नसरुद्दीन ने कहाः क्या कहा, खिड़कियां? और मेरे पांच सौ कबूतर उड़ जाएं!
खिड़कियां खोल नहीं सकते, क्योंकि पांच सौ कबूतर खुद रखे हुए हैं-- वेदनीय-कर्म! आदमी दुख को खोज रहा है। नहीं मिलता, तो भी तकलीफ होती है। अगर दिन भर कोई न मिले जो आपको क्रोध दिलाए, तो भी ऐसा लगता है कि कुछ खाली- खाली गया। कोई न मिले, जो आपको दुख दे, तो भी ऐसा लगता है कि आज कुछ हुआ नहीं। सब बेरौनक मालूम पड़ता है। आदमी सुख भी झेल नहीं सकता, उसमें भी दुख बना लेगा!
आपके जीवन में जो घटता है, वह आपकी ग्राहकता है। महावीर का जोर इस बात
पर है कि आपके पास वेदनीय कर्म हैं। आपने जन्मों-जन्मों में दुख पाया है, इकट्ठा किया है, उसके कारण आप दुखी होते चले जाते हैं। इस सिलसिले को तोड़ें। यह तभी टूटेगा, जब आप दूसरे को जिम्मा देना बंद कर दें। यह कहना बंद कर दें कि दूसरा मुझे दुख दे रहा है। यह तभी टूटेगा, जब आप समझेंगे कि मैं दुख चुन रहा हूं। तो जब भी आप दुखी हों, तत्काल निरीक्षण करें कि आपने कैसे चुना, दुख कैसे चुना? और उस चुनाव को बंद करें। धीरे-धीरे चुनाव बंद होता जाएगा, सेतु टूट जाएंगे। और तब आप दूसरी प्रक्रिया भी सीख सकते हैं, कि सुख चुनें।
जो आदमी दुख छोड़ने की प्रक्रिया सीख जाता है, वह सुख चुनने लगता है।
वह गलत से गलत स्थिति में से भी सुख को निचोड़ लेगा। उसी को जीवन की कला आती है, वही जीवन का रस पी पाता है। वही जीवन को भोग पाता है, उसमें से सुख चुन लेता है गलत से गलत स्थिति में से भी सुख चुन लेता है।
मेरे एक मित्र बीमार पड़े थे--बड़े परेशान। मैंने उनको कहा कि अच्छा ही हुआ कि महीने भर के लिए फुरसत मिली! वैसे तो शायद फुरसत कभी मिलती नहीं। परमात्मा की अनुकंपा है कि उसने बीमार किया, कि तुम बिस्तर पर पड़े हो! अब

बिस्तर का आनंद लो! अब क्यों परेशान हो रहे हो? जा सकते नहीं दुकान पर, उठ सकते नहीं, कुछ कर सकते नहीं। और काफी कर लिया, पचास साल से कर ही रहे हो, कुछ पाया भी नहीं। एक महीना बिस्तर में पड़े रहो शांति से तो क्या हर्ज है? लोग इसी की तो आशा रखते हैं मोक्ष में कि पड़े हैं, कोई काम नहीं, कोई झंझट नहीं! मोक्ष नहीं चाहिए? महीना भर के लिए मिला है, कंप्लसरी मिला है--लो! कुछ पढ़ो, कुछ संगीत सुनो, कुछ ध्यान करो। बहुत से काम आपा-धापी में नहीं कर पाए हो, छूट गए हैं। फिजूल काम हैं--बच्चों से बात करनी हैं, पत्नी के पास बैठ जाना है। कुछ करो, आनंद लो इतने दिन का--एक महीना मिल गया है अवकाश का! वह बोले कि नहीं, अभी कहां अवकाश। अभी बड़े काम उलझे हैं। पर मैं उनको
कह रहा हूं कि काम उलझे हैं, तो उलझे हैं, तुम जा सकते नहीं, कोई उपाय है नहीं। मगर वे पड़े हैं अपने बिस्तर पर और दुकान की चिंता खींच रही है, आफिस की चिंता खींच रही है!
अगर आपको कोई अनिवार्य रूप से भी मोक्ष भेज दे, आप वापस आ जाएंगे--"काम बहुत बाकी हैं, अभी हम जा नहीं सकते!"
चौथे कर्म को महावीर कहते हैं, "मोहनीय कर्म।" जब आप किसी से आकर्षित होते हैं, तो आपकी धारणा होती है कि आकर्षण का विषय आपको आकर्षित कर रहा है। महावीर कहते हैं, नहीं। सारे जीवन की प्रक्रिया आपसे पैदा होती है। आप आकर्षित हो रहे हैं, कोई आकर्षित कर नहीं रहा है।
कहा जाता है कि लैला कुरूप थी, सुंदर नहीं थी, और मजनू आकर्षित था। कहा जाता है कि गांव में सबसे कुरूप लड़की लैला थी और मजनू दीवाने थे। मजनू की दीवानगी इतनी ज्यादा थी कि अब जब भी कोई दीवाना होता है, तो लोग उसको मजनू कहते हैं। सम्राट ने बुलाया मजनू को और कहा कि तेरी दीनता, तेरा दुख, तेरा रुदन देख कर दया आती है। पागल, उस लड़की में कुछ भी नहीं है, तू नाहक परेशान हो रहा है। और तुझ पर मुझे इतनी दया आने लगी है कि रात तुझे रोता हुआ निकलता देखता हूं सड़कों से चिल्लाता--लैला, लैला, कि मैंने गांव की सब सुंदर लड़कियां बुलाई हैं। लड़कियां खड़ी हैं, इनमें से तू चुन ले। मजनू ने कहाः लैला तो इनमें कहीं भी नहीं है। सम्राट ने कहाः लैला बिल्कुल साधारण है। तो मजनू ने कहाः लेकिन आप कैसे पहचानेंगे? लैला को देखने के लिए मजनू की आंख चाहिए। वह असाधारण है। निश्चित ही, मजनू के लिए लैला असाधारण है। लैला का सवाल नहीं है, मजनू की आंख का सवाल है। आपको क्या चीज आकर्षित करती है, उसका सवाल है।
एक दिन नसरुद्दीन निकल रहा है सड़क से। पत्नी जरा पीछे रह गई। नसरुद्दीन ने सड़क से झुक कर कुछ उठाया, फिर क्रोध से फेंका। पत्नी तब तक पास आ गई थी। नसरुद्दीन ने कहा कि अगर यह आदमी मुझे मिल जाए, तो इसकी गर्दन उतार लूं। तो उसकी पत्नी ने पूछाः मामला क्या है? कौन आदमी? यहां तो कोई है नहीं! उसने कहाः वह आदमी जो इस तरह थूकता है, जैसी अठन्नी मालूम पड़े अगर मुझे मिल जाए, तो उसकी गर्दन उतार लूं!
अठन्नी से कुछ लेना-देना नहीं है। अपना ही "मोहनीय-कर्म" आपके भीतर का आकर्षण, मोह, लोभ--वह आपको पकड़े हुए है।
पांचवें को महावीर कहते हैं, "आयु।" महावीर कहते हैं, आयु जो उपलब्ध होती है, वह कर्मों के अनुसार उपलब्ध होती है। इसलिए उसे कम-ज्यादा करने की चेष्टा व्यर्थ है। और उसे ज्यादा करने की जो चेष्टा करता है, उससे उसकी उम्र ज्यादा नहीं हो पाती, नया जन्म निर्मित होता है।
महावीर कहते हैं, हर आदमी अपने कर्मों के अनसार उम्र लेकर पैदा होता है। एक आदमी को सत्तर साल जीना है, लेकिन कोई आदमी सत्तर साल जीना नहीं चाहता। सात सौ साल भी कम मालूम पड़ते हैं। सात हजार साल भी कोई कहे, तो भी आप कहेंगे: "क्या कुछ और नहीं बढ़ सकती?" यह जो बढ़ने की आकांक्षा है, इससे उम्र नहीं बढ़ती, महावीर कहते हैं, लेकिन नया जन्म बढ़ जाता है। यह शरीर तो सत्तर साल में गिरेगा, लेकिन अगर आप सात सौ साल जीना चाहते हैं, तो आपको और पंद्रह-बीस जन्म लेने पड़ेंगे। क्योंकि आपकी वासना आपको जन्म दिलाती है। आयु कर्म से उपलब्ध होती है। इसलिए आयु जितनी हो, उसकी स्वीकृति चाहिए, तो नये जन्म की दौड़ बंद हो जाती है। महावीर कहते हैं, न तो फिकर करनी

चाहिए कि ज्यादा जियूं, न फिकर करनी चाहिए कि कम जीऊं। दोनों हालत में गलती हो रही है।
कुछ लोग जीवन से उदास हो जाते हैं। घर जल जाए, बैंक डूब जाए, या दिवाला निकल जाए--कुछ हो जाए तो वे कहते हैं, "मर जाएंगे।" वे अपनी उम्र कम करना चाहते हैं। लेकिन कर्मों से जितनी उम्र मिली है, वह भोगनी ही पड़ेगी। अगर किसी आदमी को सत्तर साल जीना हो और वह चालीस में मर जाए, तो वह जो बीस सालों का कर्म बाकी रह जाएगा, वह उसे नये जन्म में ले जाएगा। किसी आदमी को सत्तर साल जीना है, और सात सौ की कामना रखता है, तो वह कामना उसे अगले जन्मों में ले जाएगी।
महावीर कहते हैं कि आयु मिलती है पिछले जन्मों के कर्मों से। इसलिए जितनी आयु मिली है, उसको उतना स्वीकार कर लेना चाहिए। न अपने मरने की चेष्टा करनी चाहिए, और न जिलाने की। साक्षीभाव से जितनी है, वह हमारा पिछला ऋण है--चुक जाए। और सब शांत हो जाए। जीवेषणा अगर बनी रहे, तो आदमी को खींचती चली जाती है। उस जीवेषणा के कारण अनंत भव का भटकाव हो जाता है।
यह जो आयु है, यह आपके हाथ में नहीं है, यह आपके पिछले कर्मों पर निर्भर है। यह बात बहुत दूर तक सही है, वैज्ञानिक रूप से भी सही है। हालांकि वैज्ञानिक राजी नहीं होंगे इस बात से। वे कहेंगे अगर हम आदमी को ठीक सुविधा दें, स्वस्थ रखने की व्यवस्था दें, इलाज दें, तो वह सत्तर साल जी सकता है। और उसको खाने-पीने न दें, इलाज न दें, तो चालीस साल में मर सकता है। महावीर कहते हैं, चालीस साल में वह मर सकता है, चालीस साल क्या, चार दिन में मर सकता है, अगर गोली मार दें, जहर दे दें, लेकिन इससे उसका आयु-कर्म कम नहीं किया जा सकता। वह नये जन्म में उतने आयु-कर्म को पूरा करेगा। उससे फर्क नहीं पड़ता है। वह जो उसका कर्म है, जितना उसने इकट्ठा किया है; जीने की जितनी वासना उसने इकट्ठी की है, उतनी वासना उसे पूरी करनी पड़ेगी। वह मोमेंटम है, वह पूरा करना पड़ेगा।
महावीर कहते हैं कि जीवन चलता है कार्य-कारण के नियम से। यहां जो भी इकट्ठा हो गया है, उसका प्रतिफल पूरा करना होगा। इसलिए उसे सहज स्वीकृति से जो जी लेता है, वह मुक्त हो जाता है।
"नाम"--महावीर कहते हैं कि नाम, अहंकार, यश, पद, कुल, प्रतिष्ठा ये सब भी कर्म हैं। एक आदमी ब्राह्मण के घर पैदा होता है, अच्छे घर में पैदा होता है, जहां ज्ञान का वातावरण है, शुभ मौजूद है। वह वहां इसलिए पैदा होता है कि पिछले जन्मों में, महावीर कहते हैं, वह विनम्र रहा होगा, शांत रहा होगा। लेकिन ब्राह्मण का बेटा होकर वह अकड़ जाता है कि मैं ब्राह्मण हूं, शूद्र से ऊंचा हूं--अब वह ऐसा इंतजाम कर रहा है कि अगले जन्म में शूद्र हो जाए। नाम, कुल, आकार--मूर्त पर जोर न दें, अमूर्त को ध्यान में रखें तो कर्म कटते हैं। मूर्त पर बहुत जोर दें तो कर्म बढ़ते हैं। तो महावीर कहते हैं कि कुल की, नाम की, पद की, प्रतिष्ठा की चर्चा ही उठानी उचित नहीं है। इसलिए महावीर किसी से भी नहीं पूछते, जब उनके पास कोई दीक्षा लेने आता है, संन्यस्त होता है तो वे उससे नहीं पूछते: तू जाति से क्या है? कुल से क्या है? तेरा नाम क्या है? धन कितना था परिवार में? कुलीन घर से आता है कि अकुलीन घर से आता है? नहीं, उसके मूर्त जीवन के संबंध में वे कुछ भी नहीं पूछते। झांकते हैं उसके अमूर्त जीवन में।
तो आप अपने आसपास जो आकार हैं, उस पर जोर न दें; क्योंकि आकार पर जोर देंगे तो आकार निर्मित होते चले जाएंगे। निराकार जो भीतर छिपा है, उस पर जोर दें। वह, आकारों की जो प्रक्रिया है, उसको काटने का उपाय है। "गोत्र"--गोत्र से महावीर का अर्थ है, वैषम्य का भाव कि मैं ऊंचा हूं, तुम नीचे हो। महावीर ने ऊंच-नीच के भाव को तोड़ने की बड़ी चेष्टा की, क्योंकि वे कहते हैं कि यह बहुत सूक्ष्म है अहंकार कि "मैं ऊंचा हूं।"
लेकिन उस धारणा में हम सभी जीते हैं। आपको कोई ऊंचा लगता है, कोई नीचा लगता है; किसी को आप देखते हैं कि वह नीचे है, किसी को आप देखते हैं कि वह ऊपर है। और खुद को ऊपर होना चाहिए, इसकी चेष्टा में लगे रहे हैं, महावीर कहते हैं जो खुद ऊपर होने की चेष्टा में लगा है, प्रतिस्पर्धा में लगा है, वह अपने ही हाथों नीचे डूबता जा रहा है। जो बिल्कुल सहज खड़ा हो जाता है और

ऊंचे-नीचे के भाव को छोड़ देता है, गोत्र का भाव छोड़ देता है, वही केवल इस चक्कर से मुक्त हो पाता है।
लेकिन, आसान है अपने को ऊंचा समझना। इससे उल्टा भी आसान है, अपने को नीचा समझना भी आसान है।
एडलर ने पश्चिम में खोज की है कि मनुष्य में दो वृत्तियां हैं, एक सुपिरियारिटी काम्पलेक्स और इनफिरिआरिटी काम्पलेक्स--एक ऊंचे की भावना और एक नीचे की भावना। इन दोनों में से कोई भी आप पकड़ लेंगे। या तो अपने को ऊंचा समझेंगे या अपने को नीचा समझेंगे। कुछ लोग सदा अपने को ऊंचा समझते रहते हैं, कुछ लोग सदा अपने को नीचा समझते रहते हैं। इसी वजह से वे डरे रहते हैं, सिकुड़े रहते हैं, हमेशा भयभीत रहते हैं।
महावीर कहते हैं, दोनों ही कर्म-फल हैं, दोनों भाव छोड़ दें। सिर्फ जानें अपने को कि मैं हूं--न ऊंचा, न नीचा। किसी तुलना में अपने को न रखें, और किसी से अपने को तौलें भी नहीं, क्योंकि किसी से तौलने की जरूरत नहीं है, कम्पेरिजन का कोई सवाल नहीं है। आप आप हैं, और आप जैसा कोई भी नहीं जगत में। इसलिए तौलने का कोई उपाय नहीं है, तौल तो वहां हो सकती है, जहां आप जैसा कोई और हो।
तो कोई आपसे नीचा भी नहीं हो सकता, ऊंचा भी नहीं हो सकता। आप कह सकते हैं क्या, कि आम जो है, इमली से नीचा है? वैसा कहना पागलपन की बात है। हां, आप यह कह सकते हैं कि यह राजा आम है, ये साधारण आम से ऊंचा है। दो आमों में तुलना हो सकती है, एक आम और एक इमली में तुलना नहीं हो सकती।
महावीर कहते हैं, प्रत्येक व्यक्ति अद्वितीय परमात्मा है--यूनीक, बेजोड़। उसकी कोई तुलना नहीं है। इसलिए महावीर ने जब वर्ण का विरोध किया तो वह कोई सामाजिक क्रांति नहीं थी, वह आध्यात्मिक विचारणा थी। गांधी भी विरोध करते थे वर्ण का, केशवचंद्र सेन भी विरोध करते थे, राममोहन राय भी विरोध करते थे, लेकिन उनका विरोध सामाजिक धारणा थी। महावीर का विरोध बहुत आंतरिक और गहरा है। वे यह कह रहे हैं कि हर मनुष्य अद्वितीय है, कि तुलना का कोई उपाय नहीं है। और जब आप अपने को तौलते हैं, तो नाहक ही अपने को कर्म के जाल में डालते हैं। न तो अपने को ऊंचा, न तो अपने को नीचा--दूसरे से तौलें ही मत, तो गौत्र का कर्म नष्ट होता है।
और अंतिम आठवां है, "अंतराय।" अंतराय बड़ा काम कर रहा है आपके जीवन में।
एक मित्र मेरे पास आए, कहने लगे कि आप इम्पाला में क्यों चलते हैं? मैंने कहाः किसी भक्त ने अभी तक राल्स रायस दी ही नहीं, और तो कोई कारण नहीं है इम्पाला में चलने का। उन्होंने कहा कि नहीं, और तो आपकी बात सब मुझे समझ में आती है, बस ये इम्पाला में चलना!
अब यह "अंतराय" हो गया। इम्पाला में आपको चलने को कह नहीं रहा, इम्पाला आपको मिल जाए तो मत चलना! मेरे इम्पाला में चलने से उनको!
मेरी सब बात ठीक लगती है, लेकिन इम्पाला की वजह से सब गड़बड़ हुआ जा रहा है। इम्पाला अंतराय बन रही है। अंतराय का मतलब बीच में व्यवधान बन रही है, और ऐसा नहीं कि इम्पाला ही बनती रही है, अजीब-अजीब चीजें बन जाती हैं।
मैं जबलपुर था, तो एक वकील हाईकोर्ट के, बड़े वकील, एक दिन मुझसे मिलने आए, और आकर उन्होंने कहा कि "और सब तो ठीक है, आपकी बात सब समझ में आती है, लेकिन आप इतनी लंबी बांह का कुर्ता क्यों पहनते हैं?
मेरा कुर्ता आपको? मेरी बांह है!
तो उन्होंने कहा कि इससे मुझे बड़ी अड़चन होती है। आपको मैं सुनने भी आता हूं, तो मेरा ध्यान आपके कुत॰ पर ही लगा रहता है कि आप इतना लम्बा कुर्ता क्यों पहनते हैं? कई दफा तो मैं आपका सुनना ही चूक जाता हूं। अंतराय का अर्थ होता है: कोई व्यर्थ की चीज जो सार्थक में बाधा बन जाए। और आप सब इस तरह ही जीते हैं। जीवन को जिन्हें खोजना है, उन्हें अंतराय तोड़ने चाहिए। उन्हें जो ठीक लगे, उतना चुन लेना चाहिए; जो गलत लगे, उसकी बात ही क्या उठानी? उससे आपका लेना-देना क्या है? उससे आपको प्रयोजन क्या है?

एक मित्र मेरे पास आए। किसी सदगुरु के पास हैं। और निश्चित ही, जिस गुरु के पास हैं, वह कीमती आदमी हैं। वे कहने लगे, बस एक बात सब खराब कर देती है। वे कभी-कभी गाली दे देते हैं। ज्ञानी को गाली तो नहीं देना चाहिए?
मैंने कहा कि तुम्हें क्या पता कि ज्ञानी को गाली देनी चाहिए कि नहीं?
सब ज्ञानियों का हिसाब लगाओ, फिर पता लगाओ कि कितने ज्ञानियों ने दी है गाली, कितनों ने नहीं दी। रामकृष्ण देते थे। किताब में नहीं लिखा है, क्योंकि किताब में लिखना मुश्किल मालूम पड़ता है। ठीक से गाली देते थे, अच्छी तरह देते थे! लेकिन किताब में यह बात नहीं लिखी है, क्योंकि किताब में कौन लिखे?
कहने लगे, रामकृष्ण गाली देते थे? हद हो गई! मैं तो उनकी किताबें अब तक पढ़ता रहा!
अंतराय खड़ा हो गया। अब वह देते थे कि नहीं देते थे, यह भी सवाल नहीं है! अभी तक किताब बड़े मजे से पढ़ रहे थे!
उनकी गाली से तुम्हें क्या लेना-देना? रामकृष्ण गाली देकर नरक जाएंगे
तो वह जाएंगे। इम्पाला में बैठ कर कोई नरक जाएगा तो वह जाएगा। इससे तुम्हें क्या लेना-देना है? तुम अपने जीवन की चिंता करो!
तुम्हें वह चुन लेना चाहिए जो तुम्हारे लिए सार्थक मालूम पड़ता है। लेकिन बड़े अंतराय भीतर हैं। अब ध्यान रहे, जो आदमी कहता है, इम्पाला परेशान कर रही है, वह जरूर इम्पाला में बैठना चाहता होगा। और तो परेशानी का कोई कारण नहीं हो सकता। कहीं न कहीं भीतर कोई रस इम्पाला में बैठने का अवश्य मौजूद होगा। उसे रस मेरी बात से ज्यादा गाड़ी में हो, तो समझ में आता है कि मामला क्या है? लेकिन उसे यह दिखाई नहीं पड़ेगा कि उसका रस उसे बाधा दे रहा है, उसे दिखाई पड़ेगा कि मेरा बैठना बाधा दे रहा है।"
मैंने उस वकील को कहा कि ऐसा करें, आपके मन में कोई वासना लम्बी बांह
का कुर्ता पहनने की है, उसे पूरा कर लें। उन्होंने कहा कि क्या बात करते हैं आप? कभी नहीं! मैंने कहा कि आप इतने जोश में आते हैं, इतने जोर से इनकार करते हैं, उसका मतलब ही यह होता है कि है। नहीं तो इतने जोश में आने की क्या बात है? हंस भी सकते थे। आपके मन में कोई वासना है, लेकिन उसे पूरा करने की हिम्मत नहीं है।
वे थोड़े चिंतित हुए, हलके हुए। कहने लगे, हो सकता है, क्योंकि मेरे बाप मुझे कुर्ता नहीं पहनने देते थे। बाप भी वकील थे, वे कहते थे कि टाई बांधो। आपने शायद ठीक नब्ज पकड़ ली है। मेरे बाप ने मुझे कभी कुर्ता नहीं पहनने दिया। फिर हाईकोर्ट का वकील हो गया तो हाईकोर्ट के ढंग से जाना चाहिए, नियम से जाना चाहिए। शायद कुर्ता पहनने की कोई वासना भीतर रह गई है।
तो मैंने कहा कि तुम उसकी फिकर करो। मेरे कुर्ते से तुम्हें क्यों? तुम्हें मेरा कुर्ता चाहिए तो ले जाओ। और क्या कर सकता हूं?
आदमी हमेशा बाहर सोचता रहता है, लेकिन सब सोचने के मूल कारण भीतर होते हैं। ये अंतराय बड़ा कष्ट देते हैं बड़ा कष्ट देते हैं, जिनसे कोई प्रयोजन नहीं है।
अब एक मित्र अफ्रीका से आए। वह कहने लगे कि वहां एक महात्मा आए थे। और
तो सब ठीक था, लेकिन बीच में बोलते-बोलते वह कान खुजलाते थे।
तुम्हें क्या मतलब उनके कान खुजलाने से?
नहीं, जरा शिष्टाचारपूर्ण मालूम नहीं होता। अब अगर इस व्यक्ति का मनोविश्लेषण किया जाए तो कान खुजलाने से कहीं न कहीं कोई दबी बात पकड़ में आ जाएगी। कहीं कोई अड़चन इसे होनी चाहिए।
अब यह महात्मा पर छोड़ो! महात्मा को कम से कम इतनी स्वतंत्रता तो दो कि अपना कान खुजलाए तो कोई बाधा न दे! मगर वह भी नहीं, वह भी नहीं कर सकते आप। अंतराय से महावीर का अभिप्राय है, जिन व्यर्थ की बातों के कारण सार्थक तक पहुंचने में बाधा आ जाती है।
ये आठ कर्म हैं। और इन आठ के प्रति जो सचेत होकर इनका त्याग करने लगता
है, वह धीरे-धीरे केवल-ज्ञान की तरफ उठने लगता है।

महावीर के पास अनेक लोग इसलिए आने से रुक गए कि वे नग्न थे। वह अंतराय
हो गया। मेरे शिविर में कई लोग आने से घबड़ाते हैं कि वहां कोई नग्न हो जाता है।
कोई नग्न होता है! आपको करे तो दिक्कत भी है। होनी तो तब भी नहीं चाहिए; क्योंकि कपड़ा ही तो छुड़ा कर ले गया। लेकिन कोई आपको करे तो भी आपकी स्वतंत्रता पर बाधा है, कोई खुद अपने कपड़े उतार कर रखे तो भी आपको बेचैनी होती है।
जरूर नग्नता के साथ आपका कोई आंतरिक उपद्रव है। या तो आप नग्न होना चाहते हैं और हो नहीं पाते, और या फिर दूसरों को नग्न देख कर आपके मन में कुछ बातें उठती हैं, जो आप चाहते हैं न उठें, लेकिन आंतरिक घटना ही है पीछे कारण।
एक नग्न स्त्री जा रही हो, तो आपको बेचैनी इसलिए नहीं होती है कि वह नग्न है, बेचैनी इसलिए होती है कि वह नग्न है, कहीं मैं कुछ कर न गुजरूं। आपको अपने पर भरोसा नहीं है, इसलिए नग्न स्त्री से आपको घबड़ाहट होती है कि कहीं मैं कुछ कर न गुजरूं। कहीं इतना पागल न हो जाऊं नग्न देख कर उसे कि मुझे कुछ हो जाए। तो आप बजाय अपनी इस वृत्ति को समझने के, कानून बनाते हैं कि कोई नग्न नहीं हो सकता। और आपको कानून बनाने में लोग सहयोगी मिल जाएंगे, क्योंकि उनका भी रोग यही है। बराबर मिल जाएंगे। वे कहेंगे, आप बिल्कुल ठीक कह रहे हैं, कोई नग्न नहीं हो सकता।
मैं एक छोटी सी कहानी पढ़ रहा था। एक छोटे बच्चे को लेकर उसकी चाची समुद्र के किनारे घूमने गई है। वहां एक भिखमंगा अधंनगा बैठा है खुली धूप में। चाची उस भिखमंगे को एकदम देख कर घबड़ा गई, वह लड़के को खींचने लगी। लड़का कहने लगा, रुको भी तो, यह भिखमंगा कितनी मस्ती से बैठा है! वह बोली, वहां देख ही मत। तो वह लड़का, जब उसको रोका गया, तो उसका और देखने का मन हुआ कि मामला क्या है? इस तरह से पहले चाची ने कभी उसे खींचा नहीं! लेकिन चाची उसे बदहवास खींच रही है, और वह लौट-लौट कर पीछे देख रहा है। चाची कह रही है कि तू शैतान है बिल्कुल। लड़का कहता है, मगर वह कितनी मस्ती से बैठा हुआ है-- झाड़ के नीचे, अधनंगा!
फिर वे घर आ जाते हैं। चाची मां से बात करती है, दोनों परेशान हो जाती हैं। पुलिस को फोन करती हैं, पुलिस आ जाती है। वह लड़का बड़ा हैरान है कि उस आदमी ने किसी का कुछ बिगाड़ा नहीं, कुछ बोला भी नहीं, अपनी मस्ती में बैठा हुआ है--लेकिन यह क्या हो रहा है? उसने कुछ भी तो नहीं किया है करने के नाम पर!
तो वह छत पर चला जाता है और देखता है कि पुलिस उस भिखमंगे को मार रही
है डंडों से। उसकी जननेंद्रिय पर जूते से चोट कर रही है। वह लड़का चीखता है, रोता है, लेकिन उसकी समझ से बाहर है मामला। शाम को वह अपने बाप से पूछता है कि बात क्या है? उस आदमी को क्यों सताया गया? तो बाप कहता है कि वह बहुत बुरा आदमी है। वह लड़का कहता है कि उसने कुछ किया ही नहीं तो बुरा कैसे हो सकता है? तो बाप कहता है कि तू अभी नहीं समझेगा, बाद में समझेगा। यह बात समझाने की नहीं है; उसने बहुत बुरा काम किया है। उस लड़के ने कहाः पर उसने कुछ किया ही नहीं! मैं मौजूद था, और चाची झूठ बोल रही है!"
उस आदमी ने कुछ भी नहीं किया है, कुछ चाची को हुआ है। मगर यह लड़का कैसे समझ सकता है, क्योंकि यह अभी इतना बीमार नहीं हुआ। अभी यह नया है इन पागलों की जमात में। अभी इसकी दीक्षा नहीं हुई। अभी इसकी समझ के बाहर है।
तो बाप कहता है कि वह बहुत बुरी बात थी और इसकी तू चर्चा मत उठाना, इसे बिल्कुल भूल जा। तो वह कहता है, पुलिस का मारना उस गरीब आदमी को निश्चित ही बुरा था। तो बाप कहता है, पुलिस का मारना बुरा नहीं था नालायक, वह आदमी जो कर रहा था!
और वह कर कुछ भी नहीं रहा था, सिर्फ अधनंगा बैठा था! हमारे भीतर कुछ होता रहता है, उसको तो हम दबा लेते हैं और बाहर दोष खड़ा कर देते हैं। अंतराय पर जिसका ध्यान चला जाए, वह व्यक्ति धीरे-धीरे हलका होने लगता
है और उसका बोझ, उस की जंजीरें गिरने लगती हैं। जंजीर आपने पकड़ रखी है, छोड़ दें। मुक्ति आपका स्वभाव है।

महावीर-वाणी, भाग 2
चौदहवां प्रवचन

छह लेश्याएं: चेतना में उठी लहरें (लोकतत्व-सूत्रः 5)

किण्हा नीला य काऊ य, तेऊ पम्हा तहेव य।
सुक्कलेसा य छट्ठा य, नामाइं तु जहक्कमं।।
किण्हा नीला काऊ, तिण्णि वि एयाओ अहम्मलेसाओ।
एयाहि तिहि वि जीवो, दुग्गइं उववज्जई।।
तेऊ पम्हा सुक्का,
तिन्नि वि एयाओ धम्मलेसाओ।
एयाहि तिहि वि जीवो,
सुग्गइं उववज्जई।।

कृष्ण, नील, कापोत, तेज, पदम और शुक्ल--ये लेश्याओं के क्रमशः छह नाम हैं।
कृष्ण, नील, कापोत--ये तीन अधर्म-लेश्याएं हैं। इन तीनों से युक्त जीव दुर्गति में उत्पन्न होता है।
तेज, पदम और शुक्ल--ये तीन धर्म-लेश्याएं हैं। इन तीनों से युक्त जीव सदगति में उत्पन्न होता है।

महावीर की उत्सुकता न तो काव्य में है, और न तर्क में। उनकी उत्सुकता
है जीवन के तथ्य, जीवन की वैज्ञानिक खोज, आविष्कार में। इसलिए महावीर ने समाधि के कोई गीत नहीं गाए। और न ही महावीर ने जो कहा है उसके लिए कोई तर्क उपस्थित किए हैं। तर्क उपस्थित किए जा सकते हैं, हर बात के लिए। और ऐसी कोई भी बात नहीं, जिसके पक्ष में या विपक्ष में तर्क उपस्थित न किए जा सकें। तर्क दुधारी तलवार है। तर्क मंडन भी कर सकता है, खंडन भी। लेकिन तर्क से कोई सत्य की निष्पत्ति नहीं होती।
काव्य अभिव्यक्ति है। जो अनुभव हुआ है, उसके आनंद की झलक उसमें मिल सकती है। लेकिन आनंद कैसे अनुभव हुआ है, उसका विज्ञान उससे निर्मित नहीं होता। अधिक शास्त्र तार्किक हैं, जिनको बुद्धि की खुजली है, उनके लिए उनमें रस हो सकता है। शेष शास्त्र काव्यात्मक हैं, जिन्हें अनुभव हुआ है, उन्हें उन शास्त्रों में अपनी अभिव्यक्ति मिल सकती है। बहुत थोड़े से शास्त्र वैज्ञानिक हैं; उनके लिए जिन्हें न तो बुद्धि की खुजली की बीमारी है, और न जो पहुंच गए हैं। जो जीवन में उलझे हैं और मार्ग की तलाश कर रहे हैं।
महावीर उस तीसरे कोण से ही बोल रहे हैं।
मैंने सुना है, एक यहूदी पंडित की मृत्यु हुई। वह ईश्वर के सामने उपस्थित किया गया। ईश्वर ने उससे पूछा कि पृथ्वी पर तुम क्या कर रहे थे पूरे जीवन? तो उस पंडित ने कहाः मैं धर्म का, शास्त्र का, शास्त्र को सिद्ध करने वाले तर्कों का अध्ययन कर रहा था। ईश्वर ने कहाः मैं खुश हूं, मेरे आनंद के लिए तुम कोई तर्क, "ईश्वर है", इसके प्रमाण में उपस्थित करो। पंडित ने जीवन भर तर्क किए थे, लेकिन ईश्वर को सामने पाकर उसकी बुद्धि अड़चन में पड़ गई। क्या तर्क उपस्थित करे ईश्वर के होने का? दो क्षण तो वह सोचता रहा, फिर कुछ सूझा नहीं, बुद्धि खाली मालूम पड़ी, तो उसने कहा कि बड़ी मुश्किल है--आपको बातों के योग्य मैं कुछ कह सकूं, ऐसा खोज नहीं पाया, अच्छा तो यह हो कि खुद ही कोई तर्क उपस्थित करें--यू परफार्म सम पॉइंट, एण्ड आई विल शो यू हाउ टु रिफ्यूट इट--आप ही कोई तर्क उपस्थित कर दें और मैं तरकीब बताऊंगा कि उसका खंडन कैसे किया जा सकता है।
ठीक से समझें तो तर्क सदा खंडनात्मक है, निषेधात्मक है। वस्तुतः बुद्धि का स्वभाव नकार है। इसे समझ लें, ठीक से। बुद्धि का स्वभाव निगेटिव है, नकारात्मक है। जब बुद्धि कहती है नहीं--तभी होती है। और जब आप कहते हैं हां, तब बुद्धि विसर्जित हो जाती है, हृदय होता है। जब भी आपके भीतर "हां" होती है, "यस" होता है, तब हृदय होता है। और जब "नहीं" होती है, "नो" होता है,

तब बुद्धि होती है। इसलिए जो व्यक्ति जीवन को पूरी तरह "हां" कह सकता है, वह आस्तिक है; और जो व्यक्ति "नहीं" पर जोर दिए चला जाता है, वह नास्तिक है। नास्तिक होने से कोई संबंध नहीं कि वह ईश्वर को अस्वीकार करता है या नहीं करता। नास्तिक होने का अर्थ है कि "नहीं" उसके जीवन की व्यवस्था है; "न" कहना उसका सुख है, "हां" कहने में उसे अड़चन है, कठिनाई है।
इसलिए आप देखते हैं, जैसे ही बच्चे में बुद्धि आनी शुरू होती है वह इंकार करना शुरू कर देता है। जैसे ही बच्चा जवान होने लगता है, उसकी अपनी बुद्धि चलने लगती है, उसे "न" कहने में रस आने लगता है, "हां" कहना मजबूरी मालूम पड़ती है।
बुद्धि का स्वभाव संदेह है, हृदय का स्वभाव श्रद्धा है। तो कुछ लोग हैं जिनको तर्क की ही कुल जमा बेचैनी है, पक्ष में या विपक्ष में। और कोई अंतर नहीं पड़ता, जो तर्क पक्ष में है वही विपक्ष में हो सकता है। तर्क वेश्या है। वह कोई गृहिणी नहीं है, कोई पत्नी नहीं है; किसी एक पति से उसका संबंध नहीं है। जो उसे पैसे दे, उसी के साथ है।
मैंने सुना है, एक बहुत बड़े वकील डाक्टर हरिसिंह गौर, जिन्होंने सागर विश्वविद्यालय की स्थापना की, प्रिवी कौंसिल में एक मुकदमा लड़ रहे थे। भुलक्कड़ स्वभाव के आदमी थे। तो जो उनका सहयोगी वकील था, वही उनको सब सूचनाएं दे देता था रास्ते में कि अदालत में क्या-क्या, किस-किस संबंध में उनको विवाद करना है। उस दिन सहयोगी वकील बीमार था और हरिसिंह गौर भूल गए कि वे किसके पक्ष में हैं और किसके विपक्ष में। प्रिवी कौंसिल में जाकर उन्होंने बोलना शुरू कर दिया।
न्यायाधीश भी चकित हुए, विरोधी वकील भी हैरान हुआ; क्योंकि वे अपने ही मुवक्किल के खिलाफ बोल रहे थे, और ऐसे तर्क दे रहे थे कि अब कोई उपाय ही न रहा। विरोधी वकील हैरान हुआ कि अब मैं क्या कहूंगा? उसको कहने को कुछ बचा ही नहीं। तभी असिस्टेंट को ख्याल आया कि वह तो बीमार पड़ा है, लेकिन कुछ गड़बड़ न हो जाए, तो वह भागा हुआ आया। तब तक वे फैसला ही कर चुके थे अपने मुवक्किल का पूरी तरह से। आकर उसने उनका कोट हिलाया और कान में कहा कि आप क्या कर रहे हैं? यह अपना मुवक्किल है! तो उन्होंने कहा कि कोई फिकर न करो। उन्होंने कहाः न्यायाधीश महोदय! अब तक मैंने वे दलीलें दीं, जो मेरा विरोधी पक्ष का वकील देना चाहेगा, अब मैं उनका खंडन शुरू करता हूं। और उन्होंने खंडन किया। और जितनी प्रबलता से समर्थन किया था, उतनी ही प्रबलता से खंडन भी किया।
वकील और वेश्या में बड़ा संबंध है। वेश्या अपना शरीर बेचती है, वकील अपनी बुद्धि बेचता है। उसके पास अपना कोई पक्ष नहीं है। जो भी पक्ष खरीद सकता है, वही उसका पक्ष है।
तर्क वेश्या है। इसलिए महावीर, बुद्ध या कृष्ण जैसे लोगों की उत्सुकता तर्क में नहीं है, और मैंने कहा कि उनकी उत्सुकता काव्य में भी नहीं है; क्योंकि काव्य तो आखिरी फूल है। जब कोई व्यक्ति समाधि को उपलब्ध होता है, तो उसके जो गीत की स्फुरणा होती है, वह जो संगीत उससे बहने लगता है, उसके उठने-बैठने में काव्य आ जाता है, वह अंतिम चीज है। उसका रस लिया जा सकता है। लेकिन उसका रस वे ही ले सकते हैं जो उस जगह तक पहुंच गए हैं। साधक के लिए उसका कोई मूल्य नहीं है। खतरा भी है।
सोलोमन के गीत हैं बाइबिल में। वे समाधिस्थ व्यक्ति के गीत हैं। लेकिन बड़ा खतरा हुआ है। क्योंकि सोलोमन ने अपनी उस परम समाधि को स्त्री- पुरुष के प्रतीक से प्रकट किया है। क्योंकि उससे बेहतर कोई प्रतीक हो भी नहीं सकता। जीवन में मिलन का जो आत्यंतिक अनुभव हो सकता है साधारण मनुष्य को, वह दो प्रेमियों का मिलन है। इसलिए सोलोमन ने अपने समाधि की पूरी व्यवस्था को, पूरी अनुभूति को स्त्री और पुरुष के प्रेम से प्रकट किया है। लेकिन खुद बाइबिल पर भक्ति रखने वाले लोग भी सोलोमन के गीतों से डरते हैं; क्योंकि लगता है कि वे गीत तो अत्यन्त पार्थिव हैं। लेकिन मजबूरी है। उस परम तत्व को भी अगर गीत में प्रकट करना हो तो इस जगत में गीत की जो भाषा है--"प्रेम", उसी में प्रकट करना पड़ेगा। इसलिए अनेकों को मीरा के गीत में कामवासना की झलक मिल सकती है। क्योंकि मीरा कह रही है कि आओ, मेरी सेज पर

सोओ। मैं तैयार बैठी हूं, तुम कहां हो? मैंने फूल बिछा दिए हैं, सेज तैयार है; दिया जला लिया है, मैं तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही हूं। और जब तक तुम आकर मेरी सेज पर मेरे साथ न सो जाओ, तब तक मुझे चैन नहीं आएगा।
यह भाषा प्रेमियों की है। इसलिए अगर फ्रायड को मानने वाले लोग मीरा
का अध्ययन करें तो उन्हें लगेगा कि जरूर कोई कामवासना भीतर दबी रह गई है। गीत में अगर प्रकट करना हो उस परम सत्य को तो भाषा प्रेम की ही चुननी पड़ेगी, और कोई उपाय नहीं। क्योंकि इस पृथ्वी पर निकटतम--उस परम तत्व के करीब, प्रेम ही आता है।
लेकिन तब खतरा है। और डर यह है कि पढ़नेवाले लोग समाधि की तरफ तो न झुकें, संभोग की तरफ झुक जाएं। और डर यह है कि उनके मन में इससे उस परम का विचार तो पैदा न हो, लेकिन क्षुद्र वासना का जन्म हो जाए।
महावीर तर्क की चिंता नहीं करते। महावीर गीत की भी चिंता नहीं करते। महावीर आत्मिक जीवन का शुद्ध विज्ञान उपस्थित करना चाहते हैं। वह दिशा बिल्कुल अलग है। क्या अनुभव हुआ है, उसे प्रकट करना व्यर्थ है, उन लोगों के सामने जिन्हें कोई अनुभव नहीं हुआ। कैसे अनुभव हो सकता है, उसकी प्रक्रिया ही प्रकट करनी आवश्यक है। और अनुभव के मार्ग पर क्या-क्या घटित होगा, उसका नक्शा देना जरूरी है। क्योंकि अनंत है यात्रा और कहीं से भी भटकाव हो सकता है। अनंत हैं पहेलियां, अनंत हैं मोड़, अनंत पगडंडियों का जाल है, उसमें अगर नक्शा साफ न हो तो आप एक भूलभुलैया में भटक जाएंगे। इसलिए महावीर की पूरी चेष्टा है, एक स्प्रिचुअल मैप, एक आध्यात्मिक नक्शा निर्मित करने की: कि आपके हाथ में एक ठीक गाइड हो और आप एक-एक कदम जांच कर सकें; और एक-एक पड़ाव को पहचान सकें कि यात्रा ठीक चल रही है, दिशा ठीक है। और जिस तरफ मैं जा रहा हूं वहां अंततः मुक्ति उपलब्ध हो पाएगी। यह दृष्टि ख्याल में रहे तो महावीर को समझना बहुत आसान हो जाएगा। अब उनका हम सूत्र लें।
"कृष्ण, नील, कापोत, तेज, पदम और शुक्ल--ये लेश्याओं के क्रमशः छह नाम हैं।"
यह किताब ऐसी मालूम पड़ती है, महावीर के वचनों की--जैसे फिजिक्स की हो, केमिस्ट्री की हो, गणित की हो। इसलिए बहुत कम लोग इसमें रस ले पाएंगे। गीता का पाठ किया जा सकता है, एक महाकाव्य छिपा है। महावीर की बातें सीधी गणित की हैं, जैसे कि यूक्लिड थ्योरम लिख रहा हो, ज्यामिती की।
"कृष्ण, नील, कापोत, तेज, पदम और शुक्ल--ये लेश्याओं के क्रमशः छह नाम हैं।"
तो पहले तो समझ लें कि "लेश्या" क्या है? महावीर के कुछ खास परिभाषिक शब्दों में लेश्या भी एक है।
ऐसा समझें कि सागर शांत है, कोई लहर नहीं है। फिर हवा का एक झोंका आता है, लहरें उठनी शुरू हो जाती हैं, तरंगें उठती हैं, सागर डांवाडोल हो जाता है, छाती अस्त-व्यस्त हो जाती है, सब अराजक हो जाता है। महावीर कहते हैं, शुद्ध आत्मा तो शांत सागर की तरह है, अशुद्ध आत्मा अशांत सागर की तरह है, जिस पर लहरें ही लहरें भर गई हैं। उन लहरों का नाम "लेश्या" है। मनुष्य की चेतना में जो लहरें हैं, उनका नाम लेश्या है। और जब सब लेश्याएं शांत हो जाती हैं, तब शुद्ध आत्मा की प्रतीति होती है। इन लेश्याओं में भी छह तरह की लेश्याओं का महावीर ने विभाजन किया है। तो लेश्या का अर्थ हुआ चित्त की वृत्तियां।
जिसको पतंजलि ने "चित्त-वृत्ति" कहा है, उसको महावीर "लेश्या" कहते हैं। चित्त की वृत्तियां, चित्त के विचार, वासनाएं, कामनाएं, लोभ, अपेक्षाएं, ये सब लेश्याएं हैं। अनंत लेश्याओं से आदमी घिरा है। प्रतिपल कोई न कोई तरंग पकड़े हुए है।
और ध्यान रहे, जब सागर में तरंगें होती हैं तो आपको तरंगें ही दिखाई पड़ती हैं, सागर तो बिल्कुल छिप जाता है। जब तरंगें नहीं होतीं, तभी सागर होता है, तभी सागर दिखाई पड़ता है। तो जितनी ज्यादा तरंगें होंगी चित्त की, उतना ही ज्यादा भीतर का जो गहन सागर है, वह अनुभव में नहीं आएगा। और हम

चित्त की तरंगों से ही उलझे रह जाते हैं, अटके रह जाते हैं, अंतर्यात्रा नहीं हो पाती।
अनंत हैं ये लेश्याएं, अनंत हैं ये तरंगें लेकिन महावीर कहते हैं, उनके छह रूप हैं। और छह रूप बड़े वैज्ञानिक हैं। और अब विज्ञान भी सिद्ध कर रहा है कि महावीर ने जिस ढंग से इन लेश्याओं का वग्रूकरण किया है, शायद वही एक मात्र आधार है वग्रूकरण करने का, और कोई आधार नहीं हो सकता।
महावीर ने रंग के आधार पर वर्गीकरण किया है। कलर--पश्चिम में रंग के ऊपर बड़ा गहन अध्ययन चल रहा है। और रंग के आधार पर कई चीजें पैदा हो रही हैं। कलर थेरेपी पैदा हुई है। रंग के द्वारा मनुष्य के चित्त की चिकित्सा, शरीर की चिकित्सा है, और अदभुत परिणाम उपलब्ध होते हैं। ऐसा मालूम पड़ता है कि आदमी के अंतर-जगत में रंग की कोई बड़ी बहुमूल्य स्थिति है। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि अगर आपके कमरे को सब तरफ से लाल रंग दिया जाए, खून के रंग में-सब चीजें लाल हों, प्रकाश लाल हो, फर्श लाल हो, दीवालें लाल हों तो आप तीन घंटों में विक्षिप्त हो जाएंगे। क्योंकि लाल आपको उद्विग्न करेगा; रक्त को उत्तेजित करेगा, हृदय की धड़कन बढ़ जाएगी; ब्लड-प्रेशर बढ़ जाएगा और मस्तिष्क पर बुरे परिणाम होंगे।
हरे को जब आप देखते हैं, मन शांत हो जाता है। इसलिए जंगल में जाकर आपको लगता है, "कैसी शांति है।" उस शांति में ज्यादा हिस्सा हरे रंग का है। हरियाली मन को एक शीतलता से भर जाती है। लाल रंग उत्तेजना दे सकता है।
इसलिए कोई आश्चर्य नहीं कि कम्युनिस्टों ने और क्रांतिकारियों ने लाल झंडा चुना है। वह खून का, उपद्रव का प्रतीक है।
आकस्मिक नहीं है, आकस्मिक इस जगत में कुछ भी नहीं होता। जिनका भरोसा खून पर, हत्या पर है, स्वाभाविक है कि वह लाल रंग को प्रतीक की तरह चुनें। इस्लाम ने हरा रंग चुना है अपने झंडे के लिए, उसका कारण है, "इस्लाम" शब्द का अर्थ ही "शांति" होता है। इसलिए शांति को ख्याल में रख कर हरे रंग को चुना। यह दूसरी बात है कि मुसलमानों ने न हरे रंग के सबूत दिए और न शांति के। लेकिन इसमें मोहम्मद का कसूर नहीं है। इस्लाम शब्द का अर्थ होता है शांति और इसलिए हरे रंग को चुना, क्योंकि हरा रंग गहरे रूप से शांतिदायी है।
रंग आपको चालित करते हैं, उत्तेजित करते हैं। पश्चिम में एडवरटाइजमेंट की सलाह देने वाले लोग इसकी भी सलाह देते हैं कि आप अपनी चीजें बेचें तो किस रंग के डिब्बे में बेचें; क्योंकि सभी रंगों के डिब्बे एक से नहीं दिखते; क्योंकि सभी रंग अलग-अलग तरह से पकड़ते हैं। आप चकित होंगे कि बहुत बार ऐसा हुआ है कि कोई एक ही चीज, जैसे कोई साबुन, पीले रंग के डिब्बे में बिक रही थी और उसकी बिक्री बाजार में कम थी। और फिर सलाहकारों ने सलाह दी कि रंग का उपद्रव हो रहा है; साबुन तो ठीक है लेकिन डिब्बे का रंग गलत है, इतना आकर्षक नहीं है कि लोगों को पकड़ ले। और जहां हजारों साबुन के डिब्बे रखे हों दुकान पर, वहां रंग ऐसा होना चाहिए जो आकर्षित कर ले, पकड़ ले, सम्मोहित कर ले--कि नौ सौ निन्यानबे डिब्बे पीछे छूट जाएं और एक डिब्बे पर हाथ पहुंच जाए।
तो डिब्बे का रंग बदल देने से साबुन की बिक्री बढ़ गई। किताबों के कवर
का रंग बदल देने से बिक्री बढ़ जाती हैं, घट जाती है। एक्सपर्ट जाकर बाजारों में जांच करते रहते हैं कि स्त्रियां जो खरीदने आती हैं, सुपरमार्केट में, वे किस रंग से आंदोलित होती हैं। किस उम्र की स्त्री किस रंग से आंदोलित होती है। तो जिस उम्र की स्त्री को बेचना हो चीज को, उसके रंग का ख्याल रखना जरूरी है।
आप जैसे कपड़े पहनते हैं, वे भी आपके चित्त की लेश्या की खबर देते हैं। ढीले कपड़े--कामुक आदमी एक तरह के कपड़े पहनेगा, कामवासना से हटता हुआ आदमी दूसरे तरह के कपड़े पहनेगा। रंग बदल जाएंगे, कपड़े के ढंग बदल जाएंगे। कामुक आदमी चुस्त कपड़े पहनेगा, गैर-कामुक आदमी ढीले कपड़े पहनना शुरू कर देगा।
क्योंकि चुस्त कपड़ा शरीर को वासना देता है, हिंसा देता है।
सैनिक को हम ढीले कपड़े नहीं पहना सकते। ढीले कपड़े पहन कर सैनिक लड़ने जाएगा तो हार कर वापस लौटेगा। साधु को चुस्त कपड़े पहनाना बिल्कुल नासमझी

की बात है, क्योंकि चुस्त कपड़े का काम नहीं साधु के लिए, इसलिए साधु निरंतर ढीले कपड़े चुनेगा, जो शरीर को छूते भर हैं, बांधते नहीं।
आपको ख्याल में नहीं होगा कि बहुत छोटी-छोटी बातें आपके जीवन को संचालित करती हैं; क्योंकि चित्त क्षुद्र चीजों से ही बना हुआ है। अगर आप चुस्त कपड़े पहने हुए हैं तो आप दो-दो सीढ़ियां चढ़ने लगते हैं, एक साथ। अगर आप ढीले कपड़े पहने हुए हैं तो आपकी चाल शाही होती है, एक सीढ़ी भी आप मुश्किल से एक दफे में चढ़ते हैं। चुस्त कपड़े पहन कर आप में गति आ जाती है; ढीले कपड़े पहन कर एक सौम्यता आ जाती है, गति खो जाती है।
आप जो रंग चुनते हैं, वह भी खबर देता है आपके चित्त की। क्योंकि चुनाव अकारण नहीं है, चित्त चुन रहा है।
महावीर ने रंग के आधार पर चित्त की तरगों के छह विभाजन किए हैं। तीन
को महावीर कहते हैं, "अधर्म-लेश्याएं", जिनसे मनुष्य पतित होता है। और तीन को महावीर कहते हैं, "धर्म-लेश्याएं", जिनसे मनुष्य शुद्ध होता है, पवित्र होता है।
पहली लेश्या को महावीर कहते हैं, "कृष्ण"--काली। दूसरी लेश्या को "नील"--नीली। तीसरी लेश्या को "कापोत"--कबूतर के कंठ के रंग की। चौथी लेश्या को "तेज"--अग्नि के रंग की, सुर्ख लाल। पांचवीं को "पदम"--पीत, पीली। छठवीं को "शुक्ल"--शुभ्र, सफेद। ये छह लेश्याएं हैं। इनमें प्रथम तीन अधर्म-लेश्याएं हैं और अंतिम तीन धर्म-लेश्याएं हैं।
रंग से चुनने का कारण यह है कि जब आपके चित्त में एक वृत्ति होती है तो आपके चेहरे के आसपास एक ऑरा, एक प्रभामंडल निर्मित होता है। इस प्रभामंडल के अब तो चित्र भी लिए जा सकते हैं। आपके प्रभामंडल का चित्र भी कह सकता है कि आपके भीतर क्या चल रहा है? कारण हैं, क्योंकि आपका पूरा शरीर विद्युत का एक प्रवाह है। आपको शायद ख्याल न हो कि पूरा शरीर वैद्युतिक यंत्र है। स्केंडेनेविया में ऐसा हुआ, कोई छह-सात वर्ष पहले, कि एक स्त्री छत से गिर पड़ी और उसके शरीर की वैद्युतिक-व्यवस्था गड़बड़ हो गई, शार्ट-सर्किट हो गई। तो वह स्त्री जिसको छुए उसे शाक लगने लगे। उसके पति ने अदालत में तलाक के लिए अज्रू दी, क्योंकि उस स्त्री के पास ही जाना कठिन हो गया। उसको छूते से ही शाक लगेगा। और जब उस स्त्री के वैज्ञानिक परीक्षण किए गए तो बड़ी आश्चर्य की बात हुई, उस स्त्री के हाथ में पांच कैंडल का बल्ब रख कर जलाया जा सकता था।
जो विद्युत वर्तुल की तरह घूमती है शरीर में, वह वर्तुल टूट गया, शार्ट-सर्किट हो गया कहीं। कहीं तार अस्त-व्यस्त हो गए और विद्युत शरीर के बाहर जाने लगी। ऐसे भी विद्युत शरीर के बाहर जाती है, लेकिन उसकी मात्रा बड़ी धीमी होती है।
आप पूरे जीवन विद्युत से जी रहे हैं। सारे जगत का जो मूल आधार है, वह विद्युत-कण है, इलेक्ट्रान है। शरीर भी उसी पदार्थ से बना है। और सारे शरीर की यात्रा विद्युत की यात्रा है।
अभी स्त्रियों के संबंध में एक खोज पूरी हुई है। उस खोज ने स्त्रियों
के मन के संबंध में बड़ी गहरी बातें साफ कर दी हैं, जो अब तक साफ नहीं थी। लेकिन खोज विद्युत की है। मनोवैज्ञानिक जिसे साफ नहीं कर पाता था। हजारों साल से स्त्री एक समस्या रही है। वह किस तरह का व्यवहार करेगी किस क्षण में, अनिश्चित है। स्त्री अनप्रिडिक्टेबल है, उसकी कोई भविष्यवाणी नहीं हो सकती। ज्योतिषी उससे बुरी तरह हार चुके हैं। अभी क्षण भर को प्रसन्न दिखाई पड़ रही थी, क्षण भर बाद एकदम अप्रसन्न हो जाएगी और पुरुष के तर्क में बिल्कुल नहीं आता कि कोई कारण उपस्थित नहीं हुआ, वह क्षण भर पहले बड़ी भली चंगी, आनंदित थी, और क्षण भर बाद दुखी हो गई! और आंसू बहने लगे, छाती पीट कर रोने लगी! बड़ी बेबूझ मालूम होती है!
फ्रायड ने चालीस साल अध्ययन के बाद कहा कि स्त्री के संबंध में कुछ कहने की संभावना नहीं है। और जिन लोगों ने कुछ कहा भी है, उनका कहा हुआ भी पक्षपातपूर्ण मालूम पड़ता है। वह उनकी दृष्टि है, उससे स्त्री की बात जाहिर नहीं होती।

बड़ी प्रसिद्ध घटना है: चेखव ने खुद लिखा कि चेखव खुद, टालस्टाय और गोर्की--रूस के तीन महालेखक, एक पार्क की बेंच पर बैठ कर बात कर रहे हैं। बात स्त्री पर पहुंच गई। पुरुषों की बात अकसर ही स्त्री पर पहुंच जाएगी, और बात करने को कुछ है भी नहीं। टाल्सटाय बिल्कुल बूढ़ा हो चुका था, लेकिन तब तक उसने स्त्रियों के बाबत कोई वक्तव्य नहीं दिया था। तो चेखव और गोर्की ने उससे कहा कि तुम कुछ कहो। उसने कहा कि मैं कहूंगा, लेकिन जब मेरा एक पैर कब्र में हो और एक बाहर, तब मैं कह कर एकदम से कब्र में चला जाऊंगा! क्योंकि अगर मैं सत्य कहूं तो अभी भी स्त्रियों से मैं जुड़ा हूं, वे मेरी जान ले लेंगी, और असत्य मैं कहना नहीं चाहता!
लेकिन बायो-एनर्जी की खोज से एक नई बात पता चली है, और वह यह कि जैसे ही स्त्री की माहवारी शुरू होती है, उसके शरीर का विद्युत-प्रवाह प्रति दस मिनट में सिकुड़ता है, कांटेक्ट होता है। और यह चलता है तब तक, जब तक कि माहवारी बंद नहीं हो जाती, पैंतालीस-पचास साल तक। प्रति दस मिनिट में स्त्री को भी पता नहीं चलता कि उसके पूरे शरीर की विद्युत सिकुड़ती है, फिर फैलती है, फिर सिकुड़ती है, फिर फैलती है। इस हर दस मिनट के परिवर्तन के कारण उसका चित्त हर दस मिनट में परिवर्तित होता है।
और यह जो संकुचन है, फैलाव है, यह बच्चे के लिए जरूरी है। बच्चे के विकास के लिए जरूरी है। जब बच्चा उनके गर्भ में होता है तो यह संकुचित होना, फैलना बच्चे को एक तरह का आंतरिक व्यायाम देता है। एक एक्सरसाइज देता है, इससे बच्चा बढ़ता है। इसलिए माहवारी शुरू होने और माहवारी अंत होने के बीच, तीस साल-पैंतीस साल, स्त्री का शरीर दस मिनट में एक झंझावात से गुजरता है। और यह झंझावात उसके चित्त को प्रभावित करता है। इसलिए जब स्त्री बहुत परेशान हो तो आप परेशान न हों; थोड़ी देर रुकें, थोड़ी देर प्रतीक्षा करें; वह झंझावात वैद्युतिक है। और स्त्री को भी अगर ख्याल में आ जाए, तो वह उस झंझावात से परेशान न होकर उसकी साक्षी हो सकती है।
पुरुष के शरीर में ऐसा कोई झंझावात नहीं है। इसलिए पुरुष ज्यादा तर्कयुक्त मालूम होता है। एक सीमा होती है उसकी बंधी हुई। उसके बाबत भविष्यवाणी हो सकती है कि वह क्या करेगा। उसके भीतर कोई झंझावात नहीं चल रहा है। विद्युत की एक सीधी धारा है। इस विद्युत की सीधी धारा के कारण उसके चित्त की लेश्याओं का ढंग सीधा-साफ है। स्त्री की चित्त की लेश्याएं ज्यादा बड़ी तरंगें लेंगी, क्योंकि विद्युत सिकुड़ेगी, फैलेगी, सिकुड़ेगी, फैलेगी यह संकोच और फैलाव स्त्री को प्रतिपल झंझावात में और तरंगों में रखता है।
महावीर ने रंग के आधार पर विषण किया, शायद वही एकमात्र रास्ता हो सकता है। जब भी चित्त में कोई वृत्ति होती है तो उसके चेहरे के आस-पास उसके रंग-आभा आ जाती है। आपको दिखाई नहीं पड़ती। छोटे बच्चों को ज्यादा प्रतीत होती है। आपको भी दिखाई पड़ सकती है, अगर आप थोड़े सरल हो जाएं। जब कोई व्यक्ति सच में साधु-चित्त हो जाता है, तो वह आपकी आभा से ही आपको नापता है; आप क्या कहते हैं, उससे नहीं। वह आपको नहीं देखता, आपकी आभा को देखता है।
अब एक आदमी आ रहा है। उसके आस-पास कृष्ण-आभा है, काला रूप है चारों तरफ; उसके चेहरे के आस-पास एक पर्त है काली, तो वह कितनी ही शुभ्रता की बातें करे, वे व्यर्थ हैं, क्योंकि वह काली पर्त असली खबर दे रही है। अब तो सूक्ष्म कैमरे विकसित हो गए हैं, जिनसे उसका चित्र भी लिया जा सकता है। वह चित्र बताएगा कि आपकी क्या भीतरी अवस्था चल रही है। और यह आभा प्रतिपल बदलती रहती है।
महावीर, बुद्ध, कृष्ण और राम, और क्राइस्ट के आस-पास, सारी दुनिया के संतों के आस-पास हमने उनके चेहरे के आसपास एक प्रभामंडल बनाया है। हमारे कितने ही भेद हों--ईसाई में, मुसलमान में, हिंदू में, जैन में, बौद्ध में-- एक मामले में हमारा भेद नहीं है कि इन सभी ने अपने जाग्रत महापुरुषों के चहरों के आस-पास प्रभामंडल बनाया है। वह प्रभामंडल खबर देता है उस अंतिम की घड़ी की, जहां, जब चेहरे के आस-पास श्वेत आभा प्रकट होती है, शुभ्र आभा प्रकट होती है।

हमारे चेहरे के आस-पास सामान्यतया काली आभा होती है, और या फिर बीच की आभाएं होती हैं। प्रत्येक आभा भीतर की अवस्था की खबर देती है। अगर आपके आस-पास काला आभा-मंडल है, ऑरा है, तो आपके भीतर भयंकर हिंसा, क्रोध, भयंकर कामवासना होगी। आप उस अवस्था में होंगे, जहां आपको खुद भी नुकसान हो तो कोई हर्ज नहीं, दूसरे को नुकसान हो तो आपको आनंद मिलेगा। खुद को नुकसान पहुंचा कर भी अगर दूसरे को नुकसान पहुंचा सकें तो आप प्रसन्न होंगे। कृष्ण-लेश्या की अवस्था का आदमी ऐसा होगा।
मैंने सुना है कि एक आदमी मरा, तो उसने अपने बेटों को पास बुलाया और उनसे कहा कि मेरी आखिरी मज्रू पूरी कर देना। लेकिन बड़े बेटे तो सब समझदार थे, बाप को भलीभांति जानते थे कि वह उपद्रवी है। और आखिरी मर्जी कुछ ऐसी न उलझा जाए कि हम फंस जाएं जिंदगी भर को तो, वे तो दूर ही बैठे रहे। छोटा बेटा नासमझ था; उसे कुछ पता नहीं था बाप की हरकतों का। वह पास आ गया और मरता बाप! उसने कहाः पहले वचन दे कि मेरी बात तू पूरी करेगा। उसने कहा कि मरते हुए पिता की बात पूरी नहीं करूंगा तो क्या करूंगा? आप कहें। तो उसने कहा कि तू ही मेरा असली बेटा है। उसके कान में कहाः एक काम करना, जब मैं मर जाऊं तो मेरी लाश के टुकड़े करके मोहल्ले के लोगों के घरों में फेंक देना, और पुलिस में रिपोर्ट कर देना कि इन लोगों ने मार डाला। मेरी आत्मा को इतनी प्रसन्नता होगी, जब मैं देखूंगा कि चले हैं हथकड़ियों में बंधे सब!
यह कृष्ण-लेश्या का आदमी है। इसको अपनी फिकर नहीं है।
पंचतंत्र में बड़ी पुरानी कथा है कि एक आदमी भक्त था शिव का, और बड़े दिनों से प्रार्थना, बड़े दिनों से पूजा कर रहा था। आखिर शिव ने कहा कि "भाई, तू क्यों पीछे पड़ा है, क्या चाहता है?"
आखिर आपकी प्रार्थना-पूजा से निश्चित घबड़ा जाते होंगे!
शिव के संबंध में एक और कथा है, कि भक्त इतनी ज्यादा पूजा-प्रार्थना करने लगे कि उन्होंने नाराज होकर कहा कि तुम जाओ, सब कबूतर हो जाओ। वह जो शिव की पिंडी के आस-पास कबूतर घूमते हैं, वे भक्त हैं पुराने।
इस आदमी ने जब बहुत परेशान कर दिया तो शिव ने पूछाः तू आखिर चाहता क्या है? उसने कहा कि बस, एक कि जो भी मैं मांगू, वह सदा पूरा किया जाए। तो शिव ने एक बड़ी उलटी शर्त रख दी। उन्होंने कहा कि होगा पूरा, लेकिन जो भी तू मांगेगा, वह तेरे लिए तो पूरा होगा ही, उससे दोगुना तेरे पड़ोसियों के लिए होगा।
उस आदमी ने कहाः मार डाला! मतलब ही खत्म हो गया! मैं मांगूं महल, पड़ोसी
को मिल जाएं दो महल। मैं मांगूं हीरा, पड़ोसियों को, सबको मिल जाएं दो-दो हीरे। मतलब ही खो गया; बेकार कर दी सारी बात!
बड़ा चिंतित रहा। कई दिन तक कुछ भी नहीं मांगा। फिर सोचा कि किसी वकील
से सलाह ले लूं, कुछ तो रास्ता हो ही सकता है। हर कानून से कोई न कोई रास्ता तो निकल ही आता है। वकील ने कहा कि इसमें घबड़ाने की क्या बात है? तू ऐसी चीजें मांग कि पड़ोसी मुश्किल में पड़ जाएं। तू कह कि मेरी एक आंख फोड़ दे भगवान, उनकी दोनों फूट जाएंगी।
वह आदमी नाचता हुआ घर लौटा। उसने कहा, गजब हो गया! यह ख्याल ही नहीं आया। फिर तो सूत्र हाथ लग गया। फिर तो उसने कहा कि मेरी एक आंख फोड़ दे। उसकी एक आंख फूटी, पड़ोसियों की दोनों फूट गईं। इतने से मन न भरा--उसने कहा कि मेरे घर के सामने एक कुआं खोद दे। उसके घर के सामने एक कुआं खुदा, पड़ोसियों के सामने दो कुएं खुद गए। अब जब लोग गिरने लगे कुओं में--अंधे सारे पड़ोसी--तब उसके आनंद की सीमा न रही। कृष्ण-लेश्या अपनी आंख फोड़ सकती है, अगर दूसरे की दो फूटती हों। अपने लाभ का कोई सवाल नहीं है, दूसरे की हानि ही जीवन का ल॰य है। ऐसे व्यक्ति के आस-पास काला वर्तुल होगा।
महावीर कहते हैं, यह निम्नतम दशा है, जहां दूसरे का दुख ही एकमात्र सुख मालूम पड़ता है। ऐसा आदमी सुखी हो नहीं सकता, सिर्फ वहम में जीता है। क्योंकि हमें मिलता वही है जो हम दूसरों को देते हैं--वही लौट आता है। जगत एक प्रतिध्वनि है।
इसलिए हमने यम को, मृत्यु को काले रंग में चित्रित किया है; क्योंकि उसका कुल रस इतना है कि कब आप मरें, कब आपको ले जाया जाए। आपकी मृत्यु ही

उसके जीवन का आधार है, इसीलिए काले रंग में हमने यम को पोता है। आपकी मृत्यु उसके जीवन का आधार है--कुल काम इतना है कि आप कब मरें, प्रतीक्षा इतनी है।
यह जो काला रंग है, इसकी कुछ खूबियां, वैज्ञानिक खूबियां समझ लेनी जरूरी हैं। काला रंग गहन भोग का प्रतीक है। काले रंग का वैज्ञानिक अर्थ होता है जब सूर्य की किरण आप तक आती है, तो उसमें सभी रंग होते हैं। इसलिए सूर्य की किरण सफेद है, शुभ्र है। सफेद सभी रंगों का जोड़ है, एक अर्थ में अगर आपकी आंख पर सभी रंग एक साथ पड़ें तो सफेद बन जाएंगे। छोटे बच्चों को स्कूल में एक सभी रंगों का वर्तुल दे दिया जाता है, जब उस वर्तुल को जोर से घुमाया जाता है, तो सभी रंग गड्ड-मड्ड हो जाते हैं और सफेद बन जाता है। सफेद सभी रंगों का जोड़ है। जीवन का समग्र स्वीकार सफेद में है, कुछ अस्वीकार नहीं है, कुछ निषेध नहीं है। काला सभी रंगों का अभाव है, वहां कोई रंग नहीं है। जीवन में रंग होते हैं, मौत में कोई रंग नहींवहां कोई रंग नहीं है। जीवन रंगीन है, मौत रंग-विहीन है।
काले का अर्थ हैकाला कोई रंग नहीं है, काला रंग का अभाव है। सभी रंगों
के अभाव का नाम है, काला। और सभी रंगों के भाव का नाम है सफेद। और इन दोनों के बीच में बाकी रंगों की सीढ़ियां हैं, वैज्ञानिक अर्थों में। पर पुराने प्रतीक बड़े कीमती मालूम पड़ते हैं। मृत्यु को हमने काला रंग दिया है, क्योंकि वहां जीवन की सब रंगीनी समाप्त हो जाती है। वहां कोई रंग नहीं बचता।
दुख का रंग काला है। कोई मर जाता है तो हम काले कपड़े पहनते हैं। सब जीवन का रंग शून्य हो जाता है। जब आप काले कपड़े पहनते हैं तो वैज्ञानिक रूप से क्या घटता है? सूर्य की किरणें जब काले कपड़े पर पड़ती हैं तो कोई भी किरण वापस नहीं लौटती। काले कपड़े में सभी किरणें डूब जाती हैं। जब आपकी आंख देख रही है, उसका मतलब यह कि काला कपड़ा दिखाई पड़ रहा है। उसका मतलब यह कि उस कपड़े से आपकी आंख तक कोई भी किरण का हिस्सा नहीं आ रहा। काले कपड़े में सभी किरणें डूब गई हैं; आप तक कोई भी किरण नहीं आ रही है, इसलिए कपड़ा काला दिखाई पड़ रहा है।
ध्यान रहे, रंग आपको दिखाई पड़ते हैं उन किरणों से जो आपकी आंखों तक आती हैं। अगर आपको लाल साड़ी दिखाई पड़ रही है, तो उसका मतलब है कि उस कपड़े से लाल किरण वापस आ रही है। प्रकाश पड़ रहा है और लाल किरण कपड़े से वापस लौट कर आपकी आंख पर आ रही है। लाल कपड़े का मतलब है कि उसने सब रंग पी लिए, सिर्फ लाल को नहीं पीया--वह लाल वापस लौट आया। पीले कपड़े का अर्थ है कि सब रंग पी लिए, पीला रंग नहीं पीया--पीला वापस लौट आया।
तो जो आपको दिखाई पड़ता है लाल, वह सब रंग पी गया, सिर्फ लाल को उसने छोड़ दिया है--तो लाल किरण आपकी आंख पर आ रही है। सफेद कपड़े का अर्थ है, उसने सभी किरणें वापस लौटा दीं, कुछ भी नहीं पीया--इसलिए आपको सफेद दिखाई पड़ रहा है। तो एक अर्थ में काला सभी रंगों का अभाव है, क्योंकि आंख तक कोई भी किरण नहीं आती। आंख के लिए सभी रंगों का अभाव हो गया काला। और सफेद सभी रंगों का भाव है, क्योंकि आंख तक सब किरणें आती हैं--एक अर्थ में। दूसरे अर्थ में सफेद कपड़े का अर्थ हैः उसने सभी त्याग दिया, सभी किरणें वापस लौटा दीं, कुछ भी लिया नहीं।
इसलिए महावीर ने सफेद को त्याग का प्रतीक कहा है और काले को भोग का प्रतीक कहा है। उसने सभी पी लिया, कुछ भी छोड़ा नहीं--सभी किरणों को पी गया। तो जितना भोगी आदमी होगा, उतनी कृष्ण-लेश्या में डूबा हुआ होगा। जितना त्यागी व्यक्ति होगा, उतना ही कृष्ण-लेश्या से दूर उठने लगेगा।
दान और त्याग की इतनी महिमा लेश्याओं को बदलने का एक प्रयोग है। जब आप कुछ देते हैं किसी को, आपकी लेश्या तत्क्षण बदलती है। लेकिन जैसा मैंने कहा कि अगर आप व्यर्थ चीज देते हैं तो लेश्या नहीं बदल सकती। कुछ सार्थक, जो प्रतिकर है, जो आपके हित का था और काम का था, और दूसरे के भी काम पड़ेगा-- जब भी आप ऐसा कुछ देते हैं, आपकी लेश्या तत्क्षण परिवर्तित होती है। क्योंकि आप शुभ्र की तरफ बढ़ रहे हैं, कुछ छोड़ रहे हैं।

महावीर ने अंत में वस्त्र भी छोड़ दिए, सब छोड़ दिया। उस सब छोड़ने का केवल अर्थ इतना ही है कि कोई पकड़ न रही। और जब कोई पकड़ नहीं रहती तो श्वेत, शुक्ल, शुभ्र-लेश्या का जन्म होता है। वह अंतिम लेश्या है; उसके पार लेश्याएं नहीं हैं।
यह सघनतम लेश्या है, काली। तो काली निम्नतम स्थिति है, और शुभ्र श्रेष्ठतम स्थिति है।
कृष्ण-लेश्या पहली लेश्या।
"नील" दूसरी लेश्या है। जो व्यक्ति अपने को भी हानि पहुंचा कर दूसरे
को हानि पहुंचाने में रस लेता है, वह कृष्ण-लेश्या में डूबा है। जो व्यक्ति अपने को हानि न पहुंचा कर दूसरे को हानि पहुंचाने की चेष्टा करता है, वह नील-लेश्या में डूबा है। जो व्यक्ति अपने को हानि न पहुंचाए, खुद को हानि पहुंचने लगे तो रुक जाए, लेकिन दूसरे को हानि पहुंचाने की चेष्टा करे, वैसा व्यक्ति नील-लेश्या में है।
नील-लेश्या कृष्ण लेश्या से बेहतर है। थोड़ा हलका हुआ कालापन, थोड़ा नीला हुआ। जो लोग निहित स्वार्थ में जीते हैं यह जो पहला आदमी--जिसके बारे में मैंने कहा कि मेरी एक आंख फूट जाए--यह तो स्वाथ्रू नहीं है, यह तो स्वार्थ से भी नीचे गिर गया है। इसको अपनी आंख की फिकर ही नहीं है। इसको दूसरे की दो फोड़ने का रस है। यह तो स्वार्थ से भी नीचे खड़ा है।
नील-लेश्या वाला आदमी वह है, जिसको हम सेलफिश कहते हैं, जो सदा अपनी चिंता करता है। अगर उसको लाभ होता हो तो आपको हानि पहुंचा सकता है। लेकिन खुद हानि होती हो तो वह आपको हानि पहुंचाएगा। ऐसे ही आदमी को, नील-लेश्या के आदमी को हम दंड देकर रोक पाते हैं। पहले आदमी को दंड देकर नहीं रोका जा सकता। जो कृष्ण-लेश्या वाला आदमी है, उसको कोई दंड नहीं रोक सकते पाप से क्योंकि उसे फिकर ही नहीं कि मुझे क्या होता है। दूसरे को क्या होता है उसका रस उसको नुकसान पहुंचाना। लेकिन नील-लेश्या वाले आदमी को पनिशमेंट से रोका जा सकता है। अदालत, पुलिस, भयकि पकड़ जाऊं, सजा हो जाए तो वह दूसरे को हानि करने से रुक सकता है।
तो ध्यान रहे, जो अपराधी इतने अदालत-कानून के बाद भी अपराध करते हैं उनके पास निश्चित ही कृष्ण-लेश्या पाई जाएगी। और आप अगर डरते हैं अपराध करने से कि नुकसान न पहुंच जाए। और आप देख लेते हैं कि पुलिसवाला रास्ते पर खड़ा है, तो रुक जाते हैं लाल लाइट देख कर। कोई पुलिसवाला नहीं है--नील लेश्या--कोई डर नहीं है, कोई नुकसान हो नहीं सकता है। निकल जाओ, एक सेकेंड की बात है।
मैंने सुना है, एक दिन मुल्ला नसरुद्दीन अपने मित्र के साथ कार से जा रहा था। मित्र कार को भगाए लिए जा रहा है। आखिर मोटर साइकिल पर चढ़ा हुआ एक पुलिस का आदमी पीछा कर रहा है। जोर से साइरन बजा रहा है, लेकिन वह आदमी सुनता नहीं है।
दस मिनट के बाद मुश्किल से वह पुलिस का आदमी जाकर पकड़ पाया और उसने कहा कि मैं गिरफ्तार करता हूं चार कारणों से। बीच बस्ती में पचास-साठ मील की रफ्तार से तुम गाड़ी चला रहे हो। तुम्हें प्रकाश की कोई फिकर नहीं है। रेड लाइट है तो भी तुम चलाए जा रहे हो। जिस रास्ते से तुम जा रहे हो, यह वन-वे है और इसमें जाना निषिद्ध है। और मैं दस मिनट से साइरन बजा रहा हूं, लेकिन तुम सुनने को राजी नहीं हो।
नसरुद्दीन, जो बगल में बैठा था मित्र के, खिड़की से झुका और उसने कहाः
यू मस्ट नाट माइंड हिम आफिसर, ही इ.ज डेड ड्रंक। वह पांचवा कारण बता रहे हैं। इस पर ख्याल मत करिए, वह बिल्कुल बेहोश है, शराब में धुत है, माफ करने योग्य है।
जब भी आप कुछ गलत करते हैं तब आप शराब में धुत होते ही हैं। क्योंकि गलत हो ही नहीं सकता मूर्छा के बिना। लेकिन मूर्च्छा भी इतना ख्याल रखती है कि खुद को नुकसान न पहुंचे, इतनी सुरक्षा रखती है। हममें से अधिक लोग कृष्ण-लेश्या में नहीं जीते। कभी-कभी कृष्ण लेश्या में उतरते हैं। वह हमारे जीवन का रोजमर्रा का ढंग नहीं है। लेकिन कभी-कभी हम कृष्ण-लेश्या में उतर जाते हैं।

कोई क्रोध आ जाए, तो हम उतर जाते हैं और इसीलिए क्रोध के बाद हम पछताते हैं। और हम कहते हैं, जो मुझे नहीं करना था वह मैंने किया। जो मैं नहीं करना चाहता था, वह मैंने किया। बहुत बार हम कहते हैं, "मेरे बावजूद यह हो गया।" यह आप कैसे कह पाते हैं? क्योंकि यह आपने ही किया। आप एक सीढ़ी नीचे उतर गए। जो आपके जीवन का ढांचा था; जिस सीढ़ी पर आप सदा जीते हैं--नील लेश्या--उससे जब आप नीचे उतरते हैं तो ऐसा लगता है कि किसी और ने आप से करवा लिया। क्योंकि उस लेश्या से आप अपरिचित हैं। नील-लेश्या शुद्ध स्वार्थ है, लेकिन कृष्ण लेश्या से बेहतर।
तीसरी लेश्या को महावीर ने "कापोत" कहा है--कबूतर के कंठ के रंग की। नीला रंग और भी फीका हो गया, आकाशी रंग हो गया। ऐसा व्यक्ति खुद को थोड़ी हानि भी पहुंच जाए, तो भी दूसरे को हानि नहीं पहुंचाएगा। खुद को थोड़ा नुकसान भी होता हो तो सह लेगा, लेकिन इस कारण दूसरे को नुकसान नहीं पहुंचाएगा। ऐसा व्यक्ति पराथ्रू होने लगेगा। उसके जीवन में दूसरे की चिंतना और दूसरे का ध्यान आना शुरू हो जाएगा।
ध्यान रहे, पहली दो लेश्याओं वाले लोग प्रेम नहीं कर सकते। कृष्ण-लेश्या वाला तो सिर्फ घृणा कर सकता है। नील-लेश्या वाला व्यक्ति सिर्फ स्वार्थ के संबंध बना सकता है। कापोत-लेश्या वाला व्यक्ति प्रेम कर सकता है, प्रेम का पहला चरण उठा सकता है; क्योंकि प्रेम का अर्थ ही है कि दूसरा मुझसे ज्यादा मूल्यवान है। जब तक आप ही मूल्यवान हैं और दूसरा कम मूल्यवान है, तब तक प्रेम नहीं है। तब तक आप शोषण कर रहे हैं। तब तक दूसरे का उपयोग कर रहे हैं। तब तक दूसरा एक वस्तु है, व्यक्ति नहीं। जिस दिन दूसरा भी मूल्यवान है, और कभी आपसे भी ज्यादा मूल्यवान है, कि वक्त आ जाए तो आप हानि सह लेंगे लेकिन उसे हानि न सहने देंगे। तो आपके जीवन में एक नई दिशा का उदभव हुआ।
यह तीसरी लेश्या अधर्म की धर्म-लेश्या के बिल्कुल करीब है, यहीं से द्वार खुलेगा। परार्थ, प्रेम, दया, करुणा की छोटी सी झलक इस लेश्या में प्रवेश होगी, लेकिन बस छोटी सी झलक।
आप दूसरे पर ध्यान देते हैं, लेकिन वह भी गहरे में अपने ही लिए। आपकी पत्नी है, अगर कोई हमला कर दे तो आप बचाएंगे उसको--यह कापोत-लेश्या है। आप बचाएंगे उसको--लेकिन आप बचा इसलिए रहे हैं कि वह आपकी पत्नी है। किसी और की पत्नी पर हमला कर रहा हो तो आप खड़े देखते रहेंगे!
"मेरे" का विस्तार हुआ, लेकिन "मेरा" मौजूद है। और अगर आपको यह भी पता
चल जाए कि यह पत्नी धोखेबाज है, तो आप हट जाएंगे। आपको पता चल जाए कि इस पत्नी का लगाव किसी और से भी है, तो सारी करुणा, सारा प्रेम, सारी दया खो जाएगी। इस प्रेम में भी एक गहरा स्वार्थ है कि पत्नी मेरी है, और पत्नी के बिना मेरा जीवन कष्टपूर्ण होगा; पत्नी जरूरी है, आवश्यक है। उस पर ध्यान गया है, उस को मूल्य दिया है, लेकिन मूल्य मेरे लिए ही है।
कापोत-लेश्या अधर्म की पतली से पतली कम से कम भारी लेश्या है। लेकिन, अधर्म वहां है। हममें से मुश्किल से कुछ लोग ही इस लेश्या तक उठ पाते हैं कि दूसरा मूल्यवान हो जाए। लेकिन इतना भी जो कर पाते हैं, वह भी काफी बड़ी घटना है। अधर्म के द्वार पर आप आ गए, जहां से दूसरे जगत में प्रवेश हो सकता है। लेकिन आमतौर से हमारे संबंध इतने भी ऊंचे नहीं होते। नील-लेश्या पर ही होते हैं। और कुछ के तो प्रेम के संबंध भी कृष्ण-लेश्या पर होते हैं। आपने "दि सादे" का नाम सुना होगा। फ्रांस का एक बहुत बड़ा लेखक, जिसके नाम का पूरा एक रोग पैदा हो गया--सैडिज्म। दि सादे जब भी किसी स्त्री को प्रेम करता था, तो पहले उसे मारेगा, पीटेगा, कोड़े लगाएगा, नाखून चुभाएगा, कीलें लगाएगा, लहूलुहान कर देगा--तभी उससे संभोग कर सकेगा, उससे प्रेम कर सकेगा। दि सादे का कहना था कि जब तक सताओ न, तब तक दूसरा व्यक्ति जगता ही नहीं। तो पहले उसे जगाओ, जब उसको कोड़े मारो, उसका खून तेजी से बहने लगे और उत्तेजित हो जाए और विक्षिप्त हो जाए, तब जो रस है संभोग का, वह साधारणतया चुपचाप संभोग कर लेने में नहीं हो सकता। यह आदमी कृष्ण-लेश्या का आदमी है। इसका प्रेम भी हिंसा से आता है। और जब तक हिंसा तीव्र न हो जाए तब तक इसके प्रेम में उत्तेजना नहीं मालूम होगी। जैसे आप भोजन करते हैं तो मिर्च के

बिना स्वाद नहीं आता, ऐसा दि सादे को जब तक मार-पीट न कर ले तब तक कोई रस नहीं आता।
लेकिन दूसरी तरह के लोग भी हैं। एक दूसरा लेखक हुआ, मैसोच, वह उलटा था।
वह जब तक अपने को न पीट ले, खुद को न मार ले, तब तक वह प्रेम में नहीं उतर सकता था। तो प्रेमिका खड़ी देखेगी, वह खुद को मारेगा और प्रेमिका से भी कहेगा कि वह सहायता करे। मारे, पीटे, लहूलुहान कर दे, तब।
दो तरह के लोग हैं कृष्ण-लेश्या में: मैसोचिस्ट और सैडिस्ट, मैसोचिवादी और सादेवादी। अगर इन दोनों का मिलन हो जाए तो विवाह बड़ा सुखद होता है। एक स्वयं को दुख देने वाला--स्व-पीड़क, और पर-पीड़क। अगर ये पति- पत्नि हो जाएं तो इनसे अच्छा जोड़ा खोजना मुश्किल है। क्योंकि पति मारे तो पत्नी रस ले, या पत्नी पीटे तो पति रस ले। इसको कहते हैं, राम मिलाई जोड़ी। इनमें बिल्कुल तालमेल है। दोनों कृष्ण-लेश्या पर एक-दूसरे के परिपूरक हैं।
कभी-कभी सौभाग्य से ऐसी जोड़ी भी बन जाती है, लेकिन कभी-कभी। अक्सर तो ऐसा नहीं हो पाता, क्योंकि हम इस विचार से सोचते नहीं विवाह करते वक्त। हम और सब चीजें सोचते हैं, यह कभी नहीं सोचते कि इन दोनों में एक पीड़ा देने वाला और एक पीड़ा लेने वाला होना चाहिए, नहीं तो जिंदगी कैसे चलेगी।
अगर मनौवैज्ञानिक के हाथ में हमने दिया कि वह तय करे कि कौन सा जोड़ा ठीक होगा, तो वह इस जोड़े को पहले तय करेगा कि यह जोड़ा बिल्कुल ठीक रहेगा। इसमें कभी कलह नहीं होगी। कलह का कोई कारण नहीं है।
यह जो कृष्ण-लेश्या है इसमें प्रेम का भी जन्म हो तो वह भी हिंसा के ही माध्यम से होगा। ऐसे प्रेमियों की अदालतों में कथाएं हैं, जिन्होंने अपनी प्रेयसी को मार डाला सुहागरात में ही! और बड़े प्रेम से विवाह किया था। थोड़ी-बहुत तो आप में भी, सब में यह वृत्ति होती है--दबाने की, नाखून चुभाने की। वात्स्यायन ने अपने काम-सूत्रों में इसको भी प्रेम का हिस्सा कहा है: दांत से काटो। इसको उसने जो प्रेम की जो प्रक्रिया बताई है: कैसे प्रेम करें? उसने दांत से काटना भी कहा है। नाखून चुभाओ, शरीर पर निशान छूट जाएं--इनको लव मार्क्स, प्रेम के चिह्न कहा है।
वात्स्यायन अनुभवी आदमी था, बड़ी गहरी उसकी दृष्टि रही होगी; क्योंकि
वह जानता है कि कृष्ण-लेश्या वाले लोग हैं, ये जब तक सताएंगे नहीं, तब तक इनको रस ही नहीं आ सकता। जब तक ये एक-दूसरे को परेशान नहीं करेंगे, मरोड़ेंगे-तोड़ेंगे नहीं, तब तक इनको रस नहीं आ सकता। इनका रस ही पीड़ा है। छोटे बच्चे में भी जग जाता है, कोई बड़ों में ही जगता है, ऐसा नहीं। छोटा बच्चा भी, कीड़ा दिख जाए, फौरन मसल देगा उसको पैर से। तितली दिख जाए-- पंख तोड़ कर देखेगा, क्या हो रहा है? मेढक को पत्थर मार कर देखेगा, क्या हो रहा है, कुत्ते की पूंछ में डिब्बा बांध देगा छोटा बच्चा! वह भी पीड़ा में रस ले रहा है।
छोटा बच्चा भी आपका ही छोटा रूप हैबड़ा हो रहा है। आप कुत्ते की पूंछ में डिब्बा नहीं बांधते, आप आदमियों की पूंछ में डिब्बा बांधते हैं--रस लेते हैं, फिर क्या हो रहा है? कुछ लोग उसको राजनीति कहते हैं, कुछ लोग उसको व्यवसाय कहते हैं, कुछ लोग जीवन की प्रतिस्पर्धा कहते हैं; लेकिन दूसरे को सताने में बड़ा रस आता है। जब दूसरे को बिल्कुल चारों खाने चित्त कर देते हैं, तब आपको बड़ी प्रसन्नता होती है कि जीवन में कोई परम गुह्य की उपलब्धि हो गई।
नील-लेश्या वाला व्यक्ति आमतौर से, जिसको हम विवाह कहते हैं, वह नील-लेश्या वाले व्यक्ति का लक्षण है--दूसरे से कोई मतलब नहीं है, प्रेम की कोई घटना नहीं है। इसलिए भारतीयों ने अगर विवाह पर इतना जोर दिया और प्रेम-विवाह पर बिल्कुल जोर नहीं दिया, तो उसका बड़ा कारण यही है कि सौ में से निन्यानबे लोग नील-लेश्या में जीते हैं। प्रेम उनके जीवन में है ही नहीं, इसलिए प्रेम को कोई जगह देने का कारण नहीं। उनको जीवन में कुल एक स्त्री चाहिए, जिसका वे उपयोग कर सकें--एक उपकरण।
मुल्ला नसरुद्दीन का विवाह होने को था। लड़की दिखाई नहीं गई थी। पुराने जमाने की बात थी। फिर जिस दिन सगाई का मुहूर्त होने को था, उस दिन

बाप और गांव के कुछ लोग नसरुद्दीन को सजा-धजा कर लड़की वालों के गांव ले गए। पास ही गांव था। तब तक लड़की देखी नहीं गई थी, न लड़की वालों का घर देखा गया था, न परिवार के लोग देखे गए थे। वहां लड़की भी सज-धज कर तैयार थी, उसकी सखियां भी सज-धज कर सब तैयार थीं। कोई पंद्रह-बीस युवतियां स्वागत के लिए थीं।
नसरुद्दीन के बाप ने ऐसे ही नसरुद्दीन से पूछा, वह जानता तो था कि यह लड़का कुछ तिरछा-तिरछा है, ऐसे ही पूछा कि क्या तू बता सकता है, नसरुद्दीन, कि इनमें से, बीस लड़कियों में से कौन सी लड़की तेरी पत्नी होने वाली है? नसरुद्दीन ने कहाः निश्चित! उसने एक नजर डाली और कहा कि यह लड़की।
बाप हैरान हो गया। वह लड़की ठीक वही लड़की थी, जिससे शादी होने वाली थी। उसने कहा कि हद कर दी, नसरुद्दीन! तूने कैसे पहचाना? क्योंकि तूने कभी देखा नहीं। तो नसरुद्दीन ने कहाः इसका कारण है, अभी उसको देख कर मुझे घबड़ाहट हो रही है। यही मेरी पत्नी होने वाली है, इसमें कोई शक नहीं है। अभी से मेरा डर हृदय कंपित हो रहा है।
कोई प्रेम का संबंध नहीं है, कोई प्रेम की बात नहीं है, उपकरण चाहिए। इसलिए विवाह एक लंबी कलह है, जिसमें पति पत्नी का उपयोग कर रहा है, पत्नी पति का उपयोग कर रही है। बस दोनों साथ-साथ जी लेते हैं, इतना ही काफी है कि साथ-साथ चल लेते हैं। साथ-साथ रह कर दोनों अकेले ही रहते हैं--अलोन टुगेदर। कोई मेल नहीं हो पाता, क्योंकि मेल तो सिर्फ प्रेम से ही हो सकता है। "कापोत" आकाशी रंग की जो लेश्या है, उसमें प्रेम की पहली किरण उतरती है। इसलिए अधर्म के जगत में प्रेम सबसे ऊंची घटना है। ज्यादा से ज्यादा धर्म की घटना है। और अगर आपके जीवन में प्रेम मूल्यवान है, तो उसका अर्थ है कि दूसरा व्यक्ति मूल्यवान हुआ। यद्यपि वह भी अभी आपके लिए ही है। इतना मूल्यवान नहीं है कि आप कह सकें कि मेरा न हो तो भी मूल्यवान है। अगर मेरी पत्नी किसी और के भी प्रेम में पड़ जाए तो भी मैं खुश होऊंगा--खुश होऊंगा, क्योंकि वह खुश है। वह इतनी मूल्यवान नहीं है; उसके व्यक्तित्व का कोई इतना मूल्य नहीं है कि मेरे सुख के अलावा किसी और का सुख उससे निर्मित होता हो, तो भी मैं सुखी रहूं।
फिर तीन लेश्याएं हैं: "तेज", "पदम" और "शुक्ल।" तेज का अर्थ है, अग्नि
की तरह सुर्ख लाल। जैसे ही व्यक्ति तेज-लेश्या में प्रवेश करता है, वैसे ही प्रेम गहन प्रगाढ़ हो जाता है। अब यह प्रेम दूसरे व्यक्ति का उपयोग करने के लिए नहीं है। अब यह प्रेम लेना नहीं है, अब यह प्रेम सिर्फ देना है, यह सिर्फ दान है। और इस व्यक्ति का जीवन प्रेम के इर्द-गिर्द निर्मित होता है।
यह जो लाल रंग है, इसके संबंध में कुछ बातें समझ लेनी चाहिए; क्योंकि धर्म की यात्रा पर यह पहला रंग हुआ। आकाशी, अधर्म की यात्रा पर संन्यासी रंग था। लाल, धर्म की यात्रा पर पहला रंग हुआ। इसलिए हिंदुओं ने लाल को, गैरिक को संन्यासी का रंग चुना; क्योंकि धर्म के पथ पर वह पहला रंग है। हिंदुओं ने साधु के लिए गैरिक रंग चुना है, क्योंकि उसके शरीर की पूरी आभा लाल से भर जाए। उसका आभामंडल लाल होगा, उसके वस्त्र भी उसमें तालमेल बन जाएं, एक हो जाएं। तो शरीर और उसकी आत्मा में, उसके वस्त्रों और आभा में किसी तरह का विरोध न रहे; एक तारतम्य, एक संगीत पैदा हो जाए।
हिंदुओं ने गैरिक को, लाल को संन्यासी का रंग चुना, क्योंकि वहां से मंजिल शुरू होती है। जैनों ने "शुभ्र" को, सफेद को संन्यासी का रंग चुना, क्योंकि वहां मंजिल अंत होती है, वहां मंजिल पूरी होती है।
दोनों सही और गलत हो सकते हैं, हिंदू कह सकते हैं कि जो अभी हुआ नहीं,
उस रंग को चुनना ठीक नहीं, प्रथम को ही चुनना ठीक है; क्योंकि साधक अभी यात्रा शुरू कर रहा है, अभी मंजिल मिली नहीं। और जैन कह सकते हैं कि मंजिल को ही ध्यान में रखना उचित है। जो आज है वह मूल्यवान नहीं है, जो वस्तुतः कल होगा; अंत में, वही मूल्यवान है। उसी पर नजर होनी चाहिए।
दोनों सही हो सकते हैं, दोनों गलत हो सकते हैं। लेकिन दोनों मूल्यवान हैं।

हिंदुओं ने लाल रंग चुना है संन्यासियों के लिए। जैनों ने सफेद रंग चुना है। बौद्धों ने पीला रंग चुना है--दोनों के बीच। बुद्ध हमेशा मध्य-मार्ग के पक्षपाती थे, हर चीज में।
ये तीन धर्म के रंग हैं--तेज, पदम, शुक्ल। "तेज" हिंदुओं ने चुना है। "शुक्ल" जैनों ने चुना है। "पदम"--पीला, पीत-वस्त्र बुद्ध ने अपने भिक्षुओं के लिए चुने हैं; क्योंकि बुद्ध कहते हैं कि जो है वह मूल्यवान नहीं, क्योंकि उसे छोड़ना है, और जो अभी हुआ नहीं वह भी बहुत मूल्यवान नहीं, क्योंकि उसे अभी होना है--दोनों के बीच में साधक है।
लाल यात्रा का प्रथम चरण है, शुभ्र यात्रा का अंतिम चरण है--पूरी यात्रा तो पीत की है। इसलिए बुद्ध ने भिक्षुओं के लिए पीला रंग चुना है। तीनों चुनाव अपने आप में मूल्यवान हैं; कीमती, बहुमूल्य हैं।
यह जो लाल रंग है, यह आपके आस-पास तभी प्रकट होना शुरू होता है, जब आपके जीवन से स्वार्थ बिल्कुल शून्य हो जाता है, अहंकार बिल्कुल टूट जाता है। यह लाल आपके अहंकार को जला देता है। यह अग्नि आपके अहंकार को बिल्कुल जला देती है। जिस दिन आप ऐसे जीने लगते हैं जैसे "मैं नहीं हूं", उस दिन धर्म की तरंगें उठनी शुरू हो जाती हैं। जितना आपको लगता है कि "मैं हूं", उतनी ही अधर्म की तरंगें उठती हैं। क्योंकि "मैं" का भाव ही दूसरे को हानि पहुंचाने का भाव है। मैं हो ही तभी सकता हूं, जब मैं आपको दबाऊं। जितना आपको दबाऊं, उतना ज्यादा मेरा "मैं" मजबूत होता है। सारी दुनिया को दबा दूं पैरों के नीचे, तभी मुझे लगेगा कि "मैं हूं।"
अहंकार दूसरे का विनाश है। धर्म शुरू होता है वहां से, जहां से हम अहंकार को छोड़ते हैं। जहां से मैं कहता हूं कि अब मेरे अहंकार की अभीप्सा, वह जो अहंकार की महत्वाकांक्षा थी, वह मैं छोड़ता हूं। प्रतिस्पर्धा छोड़ता हूं, संघर्ष छोड़ता हूं, दूसरे को हराना, दूसरे को मिटाना, दूसरे को दबाने का भाव छोड़ता हूं। अब मेरे प्रथम होने की दौड़ बंद होती है। अब मैं अंतिम भी खड़ा हूं, तो भी प्रसन्न हूं।
संन्यासी का अर्थ ही यही है कि जो अंतिम खड़े होने को राजी हो गया। जीसस ने कहा है, मेरे प्रभु के राज्य में वे प्रथम होंगे, जो यहां पृथ्वी के राज्य में अंतिम खड़े होने को राजी हैं।
ध्यान रहे, "अंतिम खड़े हैं", ऐसा नहीं कहा है--"अंतिम खड़े हैं, लेकिन वे अंतिम खड़े होने को राजी हैं।" अंतिम तो बहुत लोग खड़े नहीं रहना चाहते हैं वहां। मजबूरी है कि क्यू में कोई आगे जाने ही नहीं देता, ज्यादा ताकतवर लोग आगे खड़े हैं। क्यू से निकल नहीं पाते हैं, लेकिन इच्छा तो निकलने की है। दिल तो क्यू में आगे ही खड़े होने का है। लेकिन खड़े पीछे हैं, यह मजबूरी है। इस मजबूरीवाले को प्रभु के राज्य में प्रथम मौका मिल जाएगा, ऐसा नहीं है।
जीसस कहते हैं--जो अंतिम खड़ा होने को राजी है। जो पहले की तलाश ही नहीं करता, जो चुपचाप पीछे खड़ा है, और पीछे है, संतुष्ट है। और हैरान है कि आगे होने की इतनी दौड़ क्यों चल रही है? क्या होगा? आगे होकर क्या होगा? संन्यासी का अर्थ है: जिसने महत्वाकांक्षा छोड़ दी, जिसने संघर्ष छोड़ दिया; जिसने दूसरे अहंकारों से लड़ने की वृत्ति छोड़ दी। इस घड़ी में चेहरे के आस-पास लाल, गैरिक रंग का उदय होता है। जैसे सुबह का सूरज जब उगता है, जैसा रंग उस पर होता है, वैसा रंग पैदा होता है। इसलिए संन्यासी अगर सच में संन्यासी हो, तो उसके चेहरे पर जो रक्ताभ, जो लाली होगी, जो सूर्य के उदय के क्षण की ताजगी होगी, वही खबर दे देगी।
"पदम"... महावीर कहते हैं, दूसरी धर्म-लेश्या हैः "पीत।" इस लाली के बाद
जब जल जाएगा अहंकार... स्वभावतः अग्नि की तभी तक जरूरत है जब तक अहंकार जल न जाए। जैसे ही अहंकार जल जाएगा, तो लाली पीत होने लगेगी। जैसे, सुबह का सूरज जैसे-जैसे ऊपर उठने लगेगा, वैसा लाल नहीं रह जाएगा, पीला हो जाएगा। स्वर्ण का पीत रंग प्रकट होने लगेगा। जब स्पर्धा छूट जाती है, संघर्ष छूट जाता है, दूसरों से तुलना छूट जाती है और व्यक्ति अपने साथ राजी हो जाता है--अपने में ही जीने लगता है--जैसे संसार हो या न हो कोई फर्क नहीं पड़ता--यह ध्यान की अवस्था है।

लाल रंग की अवस्था में व्यक्ति पूरी तरह प्रेम से भरा होगा, खुद मिट जाएगा, दूसरे महत्वपूर्ण हो जाएंगे। पीत की अवस्था में न खुँद रहेगा, न दूसरे रहेंगे, सब शांत हो जाएगा। पीत ध्यान की अवस्था है--जब व्यक्ति अपने में होता है, दूसरे का पता ही नहीं चलता कि दूसरा है भी। जिस क्षण मुझे भूल जाता है कि "मैं हूं", उसी क्षण यह भी भूल जाएगा कि दूसरा भी है।
पीत, बड़ा शांत, बड़ा मौन, अनउद्विग्न रंग है। स्वर्ण की तरह शुद्ध, लेकिन कोई उत्तेजना नहीं। लाल रंग में उत्तेजना है, वह धर्म का पहला चरण है।
इसलिए, ध्यान रहे, जो लोग धर्म के पहले चरण में होते हैं, बड़े उत्तेजित होते हैं। धर्म उनके लिए खींचता है--जोर से--धर्म के प्रति बड़े आब्सेज्ड होते हैं। धर्म भी उनके लिए एक ज्वर की तरह होता है। लेकिन, जैसे-जैसे धर्म में गति होती जाती है, वैसे-वैसे सब शांत हो जाता है।
पश्चिम के धर्म हैं--ईसाइयत, वह लाल रंग को अभी भी पार नहीं कर पाई; क्योंकि अभी भी दूसरे को कन्वर्ट करने की आकांक्षा है। इस्लाम लाल रंग को पार नहीं कर पाया। गहन दूसरे पर ध्यान है, कि दूसरों को बदल देना है, किसी भी तरह बदल देना है उसकी वजह से एक मतांधता है।
आप जान कर हैरान होंगे कि दुनिया के दो पुराने धर्म--हिंदू और यहूदी, दोनों पीत अवस्था में हैं। हिंदुओं और यहूदियों ने कभी किसी को बदलने की कोशिश नहीं की। बल्कि, कोई आ भी जाए तो बड़ा मुश्किल है उसको भीतर लेना। द्वार जैसे बंद हैं, सब शांत है। दूसरे में कोई उत्सुकता नहीं है। संख्या कितनी है, इसकी कोई फिकर नहीं है।
व्यक्ति जब पहली दफा धार्मिक होना शुरू होता है, तो बड़ा धार्मिक जोश खरोश होता है। यही लोग उपद्रव का कारण भी हो जाते
हैं, क्योंकि उनमें इतना जोश-खरोश होता है कि वे फेनेटिक हो जाते हैं;
वे अपने को ठीक मानते हैं, सबको गलत मानते हैं। और सबको ठीक करने की चेष्टा में लग जाते हैं दयावश! लेकिन वह दया भी कठोर हो सकती है।
जैसे ही ध्यान पैदा होता है, प्रेम शांत होता है। क्योंकि प्रेम में दूसरे पर नजर होती है, ध्यान में अपने पर नजर आ जाती है। पीत-लेश्या--पदम-लेश्या ध्यानी की अवस्था है। बारह वर्ष तक महावीर उसी अवस्था में थे। और पीला भी जब और बिखरता जाता है, विलीन होता जाता है तो शुभ्र का जन्म होता है। जैसे सांझ जब सूरज डूब जाता है--रात नहीं आई और सूरज डूब गया, और संध्या फैल जाती है--शुभ्र, कोई उत्तेजना नहीं, वह समाधि की अवस्था है। उस क्षण में सभी लेश्याएं शांत हो गयीं, सभी लेश्याएं सफेद बन गईं--शुभ्र बच रहा है। वह अंतिम अवस्था है चित्त की तरफ से।
ये छह चित्त की लेश्याएं हैं। "शुभ्र" चित्त की आखिरी अवस्था है। झीने से झीना पर्दा बचा है, वह भी खो जाएगा। तो सातवीं को महावीर ने नहीं गिनाया; क्योंकि सातवीं फिर चित्त की अवस्था नहीं, आत्मा का स्वभाव है। वहां सफेद भी नहीं बचता। उतनी उत्तेजना भी नहीं रह जाती, सब रंग खो जाते हैं।
मृत्यु में जैसे खोते हैं, वैसे नहीं, जैसा काले में खोते हैं, वैसे नहीं--मुक्ति में जैसे खोते हैं। काले में तो सारे रंग इसलिए खो जाते हैं कि काला सभी रंगों को हजम कर जाता है, पी जाता है, भोग लेता है। मुक्ति में सभी रंग इसलिए खो जाते हैं कि किसी रंग पर पकड़ नहीं रह जाती; जीवन की कोई वासना, जीवन की कोई आकांक्षा, जीवेषणा नहीं रह जाती--सभी रंग खो जाते हैं। इसलिए सफेद के बाद जो अंतिम छलांग है, वह भी रंग-विहीन है।
और ध्यान रहे, मृत्यु और मोक्ष बड़े एक जैसे हैं और बड़े विपरीत भी; दोनों में इसलिए रंग खो जाते हैं। एक में रंग खो जाते हैं कि जीवन खो जाता है, दूसरे में इसलिए रंग खो जाते हैं कि जीवन पूर्ण हो जाता है, और अब रंगों की कोई इच्छा नहीं रह जाती।
मोक्ष मृत्यु जैसा है, इसलिए मुक्त होने से हम डरते हैं। जो जीवन को पकड़ता है, वही मुक्त हो सकता है। जो जीवन को पकड़ता है, वह बंधन में बना रहता है। "जीवेषणा", जिसको बुद्ध ने कहा है, लस्ट फॉर लाइफ, वही इन रंगों का फैलाव है। और अगर जीवेषणा बहुत ज्यादा हो तो दूसरे की मृत्यु बन जाती है--

वह कृष्ण-लेश्या है। अगर जीवेषणा तरल होती जाए, कम होती जाए, फीकी होती जाए, तो दूसरे का जीवन बन जाती है--वह प्रेम है।
ये महावीर ने छह लेश्याएं कही हैं। अभी पश्चिम में इस पर खोज चलती है
तो अनुभव में आता है कि ये छह रंग करीब-करीब वैज्ञानिक सिद्ध होंगे। और मनुष्य के चित्त को नापने की इससे कुशल कुंजी दूसरी नहीं हो सकती, क्योंकि यह बाहर से नापा जा सकता है, भीतर जाने की कोई जरूरत नहीं। जैसे एक्सरे लेकर कहा जा सकता है, कि भीतर कौन सी बीमारी है वैसे आपके चेहरे का ऑरा पकड़ा जाए तो उस ऑरे से पता चल सकता है कि चित्त किस तहर से रुग्ण है, कहां अटका है। और तब मार्ग खोजे जा सकते हैं कि क्या किया जाए कि चित्त इस लेश्या से ऊपर उठे।
अंतिम घड़ी में लक्ष्य तो वही है, जहां कोई लेश्या न रह जाए। लेश्या का अर्थ: जो बांधती है, जिससे हम बंधन में होते हैं, जो रस्सी की तरह हमें चारों तरफ से घेरे रहती है। जब सारी लेश्याएं गिर जाती हैं तो जीवन की परम ऊर्जा मुक्त हो जाती है। उस मुक्ति के क्षण को हिंदुओं ने "ब्रह्म" कहा है--बुद्ध ने "निर्वाण" कहा है--महावीर ने "कैवल्य" कहा है।
"कृष्ण, नील, कापोत--ये तीन अधर्म-लेश्याएं हैं। इन तीनों से युक्त जीव दुर्गति में उत्पन्न होता है।"
"तेज, पदम और शुक्ल--ये तीन धर्म-लेश्याएं हैं। इन तीनों से युक्त जीव सदगति में उत्पन्न होता है।"
ध्यान रहे, शुभ्र-लेश्या के पैदा हो जाने पर भी जन्म होगा। अच्छी गति होगी, सदगति होगी, साधु का जीवन होगा। लेकिन जन्म होगा क्योंकि लेश्या अभी भी बाकी है, थोड़ा सा बंधन शुभ्र का बाकी है। इसलिए पूरा विज्ञान विकसित हुआ था प्राचीन समय में--मरते हुए आदमी के पास ध्यान रखा जाता था कि उसकी कौन सी लेश्या मरते क्षण में है, क्योंकि जो उसकी लेश्या मरते क्षण में है, उससे अंदाज लगाया जा सकता है कि वह कहां जाएगा, उसकी कैसी गति होगी।
सभी लोगों के मरने पर लोग रोते नहीं थे, लेश्या देख कर अगर कृष्ण-लेश्या हो तो ही रोने का कोई अर्थ है। अगर कोई अधर्म-लेश्या हो तो रोने का अर्थ है, क्योंकि यह व्यक्ति फिर दुर्गति में जा रहा है, दुख में जा रहा है, नरक में भटकने जा रहा है।
तिब्बत में बारदो पूरा विज्ञान है, और पूरी कोशिश की जाती थी कि मरते क्षण में भी इसकी लेश्या बदल जाए, तो भी काम का है। मरते क्षण में भी इसकी लेश्या काली से नील हो जाए, तो भी इसके जीवन का तल बदल जाएगा। क्योंकि जिस क्षण में हम मरते हैं--जिस ढंग से, जिस अवस्था में--उसी में हम जन्मते हैं। ठीक वैसे, जैसे रात आप सोते हैं, तो जो विचार आपका अंतिम होगा, सुबह वही विचार आपका प्रथम होगा।
इसे आप प्रयोग करके देखें। बिल्कुल आखिरी विचार रात सोते समय जो आपके चित्त में होगा, जिसके बाद आप खो जाएंगे अंधेरे में नींद के--सुबह जैसे ही जागेंगे, वही विचार पहला होगा। क्योंकि रातभर सब स्थगित रहा, तो जो रात अंतिम था वही पहले सुबह प्रथम बनेगा। बीच में तो गैप है, अंधकार है, सब खाली है। इसलिए हमने मृत्यु को महानिद्रा कहा है। इधर मृत्यु के आखिरी क्षण में जो लेश्या होगी, जन्म के समय में वही पहली लेश्या होगी।
इसलिए मरते समय जाना जा सकता है कि व्यक्ति कहां जा रहा है। मरते समय जाना जा सकता है कि व्यक्ति जाएगा कहीं या नहीं जाएगा और महाशून्य के साथ एक हो जाएगा। जन्म के समय भी जाना जा सकता है। ज्यातिष बहुत भटक गया, और कचरे में भटक गया। अन्यथा जन्म के समय सारी खोज इस बात की थी कि व्यक्ति किस लेश्या को लेकर जन्म रहा है। क्योंकि उसके पूरे जीवन का ढंग और ढांचा वही होगा।
बुद्ध पैदा हुए। और जब भी कोई व्यक्ति श्वेत-लेश्या के साथ मरता है,
तो जो लोग भी धर्म-लेश्याओं में जीते हैं, पीत या लाल में, उन लोगों को अनुभव होता है; क्योंकि यह घटना जागतिक है। और जब भी कोई व्यक्ति शुभ्र लेश्या में जन्म लेता है तो जो लोग भी लाल और पीत लेश्याओं के करीब होते हैं, या शुभ्र लेश्या में होते हैं, उनको अनुभव होता है कि कहां कौन पैदा हो रहा है।

जीसस के जन्म पर पूरब से तीन व्यक्ति जीसस की खोज में निकले। जीसस का जन्म हुआ बेथलहम की एक घुड़साल में, जहां जानवर बांधे जाते हैं, उस पशुशाला में गरीब बढ़ई के घर। और पूरब के तीन मनीषी यात्रा पर निकले कि कहीं कोई शुभ्र-लेश्या का व्यक्ति जन्मा है। इन तीन की वजह से हेरोत को पता चला, सम्राट को पता चला, क्योंकि ये तीन पहले हेरोत के पास पहुंचे। इन्हें क्या पता? इन्होंने कहा, सम्राट खुश होगा। इन्होंने जाकर हेरोत को कहा कि तुम्हारे राज्य में कोई व्यक्ति पैदा हुआ है, क्योंकि हम तीनों को संकेत मिले हैं। और हम तीनों ने ध्यान में यह जाना है। हम तीनों को यात्रा कराता हुआ आकाश में एक शुभ्र तारा चला है, और वह तारा बेथलहम पर आकर रुक गया है, तुम्हारे राज्य में। इस गांव में जरूर कोई व्यक्ति जन्मा है जो सच में सम्राट है।
यह बात हेरोत को अखर गई--सच में सम्राट! तो उसने कहा कि तुम जाओ और उसका पता लगाओ, और लौटते में मुझे खबर करते जाना। हेरोत ने तय कर लिया कि हत्या कर देगा इस बच्चे की। क्योंकि सच में कोई सम्राट जन्म जाए तो मेरा क्या होगा? अहंकार, प्रतिस्पर्धा!
वे तीनों व्यक्ति खोज करते हुए उस जगह पहुंचे। उस पशुशाला में जहां जीसस का जन्म हुआ था--घुड़साल में, उन्होंने जीसस की मां को भेंटें दीं, जीसस के चरण छुए। और उसी रात उनको स्वप्न आया कि तुम लौट कर हेरोत के पास मत जाओ, तुम भाग जाओ यहां से। और जीसस की मां को कह दो कि वह बच्चे को लेकर जितनी जल्दी हो सके बेथलहम छोड़ दे। उसी रात वे तीनों मनीषी राज्य को छोड़ कर चले गए, और जीसस की मां और पिता को लेकर इजिप्त चले गए।
बुद्ध का जन्म हुआ तो हिमालय से एक महर्षि भागा हुआ बुद्ध की राजधानी में आया। उस वृद्ध तपस्वी को देख कर बुद्ध के पिता बड़े हैरान हुए। उन्होंने कहा कि तुम्हें पता कैसे चला? तो उसने कहा कि "पता चल गया; क्योंकि जिस लेश्या में मैं हूं, जिस क्षण में मैं हूं, वहां से दिखाई पड़ सकता है। अगर कोई इतना शुभ्र तारा जमीन पर पैदा हो। तुम्हारा बच्चा तीर्थंकर होने को है, बुद्ध होने को है।"
बच्चे को लाया गया। बुद्ध के पिता तो बहुत हैरान हुए! उनको तो भरोसा न आया कि यह आदमी पागल तो नहीं है, क्योंकि उसने बच्चे के चरणों में सिर रख दिया। अभी कुछ ही दिन का बच्चा, और वह मनीषी रोने लगा.जार-.जार! बुद्ध के पिता डरे, और उन्होंने कहा कि क्या कुछ अशुभ होने को है? तुम रोते क्यों हो?
तो उसने कहा कि नहीं, मैं इसलिए नहीं रोता हूं कि कुछ अशुभ होने को है। इसलिए रोता हूं कि मेरी मृत्यु करीब है; और जिस क्षण यह व्यक्ति बुद्धत्व को उपलब्ध होगा, उस समय मैं इसका सान्निध्य न पा सकूंगा। और ऐसी घड़ी को उपलब्ध होने की घटना कभी-कभी हजारों वर्षों में घटती है। तो मैं अपने लिए रो रहा हूं, इसके लिए नहीं रो रहा हूं। इसका तो यह आखिरी जीवन का शिखर है। श्वेत-लेश्या लेकर जो व्यक्ति पैदा होता है, वह निर्वाण को उपलब्ध हो सकता है इसी जन्म में। क्योंकि धर्म की अंतिम सीमा पर पहुंच गया, अब धर्म के भी पार जा सकता है।
निर्वाण, ब्रह्म, मोक्ष-अधर्म के तो पार हैं ही, धर्म के भी पार हैं।

पांच मिनट रुकें। कीर्तन करें, फिर जाएं।

महावीर-वाणी, भाग 2
पंद्रहवां प्रवचन

पांच समितियां और तीन गुप्तियां (लोकतत्व-सूत्रः 6)

अट्ठ पवयणमायाओ, समिई गुत्ती तहेव य।
पंचेव य समिईओ, तओ गुत्तीओ आहिया।।
इरियाभासेसणादाणे, उच्चारे समिई इय।
मणगुत्ती वयगुत्ती कायगुत्ती य अट्ठमा।।
एयाओ पंच समिईओ, चरणस्स य पवत्तणे।
गुत्ती नियत्तणे बुत्ता, असुभत्थेसु सव्वसो।।
एसा पवयणमाया, जे सम्मं आयरे मुणी।
से खिप्पं सव्वसंसारा, विप्पमुच्चइ पंडिए।।

पांच समिति और तीन गुप्ति--इस प्रकार आठ प्रवचन-माताएं कहलाती हैं।
ईर्या, भाषा, एषणा, आदान-निक्षेप और उच्चार या उत्सर्ग--ये पांच समितियां हैं। तथा मनोगुप्ति, वचनगुप्ति और कायगुप्ति--ये तीन गुप्तियां हैं। इस प्रकार दोनों मिलकर आठ प्रवचन-माताएं हैं।
पांच समितियां चारिष्य की दया आदि प्रवृत्तियों में काम आती हैं, और तीन गुप्तियां सब प्रकार के अशुभ व्यापारों से निवृत्त होने में सहायक होती हैं।
जो विद्वान मुनि उक्त आठ प्रवचन-माताओं का अच्छी तरह आचरण करता है, वह शीघ्र ही अखिल संसार से सदा के लिए मुक्त हो जाता है।

साधना के आठ सूत्र महावीर ने इन वचनों में कहे हैं। जीवन के दो पहलू हैं। एक उसका विधायक रूप है--सक्रिय, एक उसका निषेधक रूप है--निष्क्रिय। जीवन में जो हम करते हैं, जीवन में जो हम होते हैं, उसमें दोनों का हाथ होता है। पुण्य भी किया जा सकता है सक्रिय होकर, और पुण्य किया जा सकता है निष्क्रिय होकर भी। पाप भी किया जा सकता है सक्रिय होकर, और पाप किया जा सकता है निष्क्रिय होकर भी।
साधारणतः हम सोचते हैं कि पाप या पुण्य सक्रिय होकर ही किए जा सकते हैं। एक व्यक्ति लूटा जा रहा है। जो लूट रहा है वह पाप कर रहा है, लेकिन आप खड़े होकर देख रहे हैं, कुछ भी नहीं कर रहे हैं, तो भी महावीर कहते हैं पाप हो गया; आप नकारात्मक रूप से सहयोगी हैं। आप रोक सकते थे, नहीं रोक रहे हैं; आप पाप कर नहीं रहे हैं; लेकिन पाप होने दे रहे हैं। वह होने देना भी आपकी जिम्मेवारी है।
तो जो आप पाप करते हैं, वे तो आपके पाप हैं ही--जो पाप दूसरे करते हैं,
और आप होने देते हैं--उनकी जिम्मेवारी भी आपके ऊपर है।
इस पृथ्वी पर कहीं भी कोई पाप हो रहा है, तो हम सब भागीदार हो गए, क्योंकि हम चाहते तो उसे रोक सकते थे--निष्क्रिय भागीदार। वे जो पाप करनेवाले लोग हैं, इसीलिए पाप कर पा रहे हैं--इसलिए नहीं कि दुनिया में बहुत पापी हैं--बल्कि इसलिए कि दुनिया में बहुत नकारात्मक पापी हैं; वे जो पाप को होने देंगे।
दुनिया में बुरे लोग ज्यादा नहीं हैं, यह सुन कर हैरानी होगी। निश्चित ही दुनिया में बुरे लोग ज्यादा नहीं हैं, लेकिन दुनिया में निष्क्रिय बुरे लोग ज्यादा हैं, जो बुरा करते नहीं, लेकिन बुरा होने देते हैं--जो बुरे को होने से रोकने की तत्परता नहीं दिखाते।
महावीर इन सूत्रों में दो हिस्से कर रहे हैं साधना के, एक विधायक और निषेधक। पांच विधायक तत्व हैं साधक के लिए, और तीन निषेधक तत्व हैं। इन आठ के बीच जो जीने की कला सीख लेता है, उसे धर्म का स्वरूप उपलब्ध हो जाता है। और जिसे धर्म की स्वयं की अनुभूति हुई हो, वही धर्म के संबंध में कुछ बोल सकता है। इसलिए महावीर ने इन्हें "प्रवचन-माताएं" कहा है। इन आठ को जो उपलब्ध नहीं है, उसके बोलने का कोई भी मूल्य नहीं है। खतरा भी हो सकता है; क्योंकि जो हम नहीं जानते उस संबंध में कुछ भी कहना खतरनाक है।

जीवन बड़ी सूक्ष्म और जटिल बात है। अनजाने, बिना जाने अज्ञान में दी गई सलाह जहर हो जाती है। शुभ इच्छा से भी दी गई सलाह जहर हो जाती है, अगर आपको ठीक-ठीक सत्य का पता न हो। दुनिया में अधर्म कम हो सकता है, यदि वे लोग जिन्हें धर्म का स्वयं अनुभव नहीं है, बोलना बंद कर दें, लेकिन वे बोले चले जाते हैं।
बोलना बहुत कारणों से पैदा हो सकता है। अक्सर तो अहंकार को रस मिलता है। जब कोई बोलता है और कोई सुनता है, तो बड़ी अनूठी घटना घट रही है। बोलने वाला बिना जाने भी बोल सकता है, क्योंकि और भी रस हैं। जब कोई बोलता है और कोई सुनता है, तो जो बोलता है वह मालिक हो गया और सुनने वाला गुलाम हो गया; जो बोलता है वह ऊपर हो गया, जो सुनने वाला है वह नीचे हो गया; जो बोलता है वह हिंसक हो गया और सुनने वाला हिंसा का शिकार हो गया।
जब कोई बोल रहा है तो आप पर हमला कर रहा है, आप पर हावी हो रहा है, आपके मस्तिष्क पर सवार हो रहा है। इसमें रस है। गुरु होने में बड़ा मजा है। उस मजे के कारण बिना इसकी चिंता किए कि मैं जानता हूं या नहीं जानता--लोग बोले चले जाते हैं, लिखे चले जाते हैं, समझाए चले जाते हैं।
सलाह की कोई कमी नहीं, मार्ग-निर्देशक सब जगह खड़े हैं। जिनका खुद का
भी कोई मार्ग नहीं है, वे भी मार्ग-निर्देश कर सकते हैं; क्योंकि निर्देश करने में अहंकार को बड़ी तृप्ति है। खुद अपनी तरफ सोचें तो आपको ख्याल आएगा। कोई आपसे पूछे--सलाह बिना पूछे आप देते हैं--कोई पूछे तब तो रुकना बहुत मुश्किल है! तब तो टेम्पटेशन, तब तो उत्तेजना बहुत हो जाती है, फिर आप सलाह देते ही हैं!
कभी आपने सोचा है कि जो सलाह आप दे रहे हैं, वह आपका निश्चित अपना अनुभव है, या सिर्फ एक आदमी की मजबूरी का लाभ उठा रहे हैं! क्योंकि वह परेशानी में है, आप सलाहकार बन सकते हैं! इसलिए दुनिया में सलाह मुफ्त मिलती है, जरूरत से ज्यादा मिलती है, हालांकि कोई उसे मानता नहीं।
दुनिया में शिष्यों की बजाय गुरु सदा ज्यादा हैं। और वह जो शिष्य है,
वह भी शायद इसीलिए शिष्य है कि गुरु होने की तैयारी कर रहा है। और गुरु को भी सलाह दिए बिना आप बचते नहीं! उसको भी आप सलाह देंगे ही!
आदमी का अहंकार तृप्त होता है इस प्रतीति से कि मैं जानता हूं, दूसरा नहीं जानता है। दूसरे को अज्ञानी सिद्ध करने में बड़ा मजा है। यह बड़ा सूक्ष्म संघर्ष है। एक सूक्ष्म पहलवानी है, जिसमें दूसरे को गलत सिद्ध करके अपने को सही सिद्ध करने का अहंकार पुष्ट होता है।
महावीर ने कहा हैः जो इन आठ सूत्रों की साधना से न गुजर जाए उसे बोलने
का हक भी नहीं है। महावीर खुद बारह वर्ष तक मौन रह गए। बहुत मौके आए जब सलाह देने की तीव्र वासना उठी होगी, लेकिन उसे उन्होंने रोक लिया। एक ही बात सदा ध्यान रखी कि जब तक मैं पूरा मौन नहीं हो जाता, तब तक शब्द पर मेरा कोई अधिकार नहीं है।
यह बड़ा उल्टा दिखाई पड़ेगा। जो मौन हो जाता है, वही शब्द का अधिकारी है;
जो शून्य हो जाता है, वही प्रवचन का हकदार है। जो भीतर शब्दों से भरा है, वह जो भी बोल रहा है, वह बोलना वमन है, उलटी है। वह इतना भरा है कि उसे निकालने की उसे जरूरत है। आप सिर्फ एक पात्र हैं, जिसमें वह वमन कर देता है। लेकिन आपकी जरूरत का सवाल नहीं है कि आपको क्या चाहिए, असली जरूरत बोलने वाले की है कि उसे क्या अपने से निकालना है।
आप खुद भी जानते हैं कि अगर कुछ आप पढ़ लें सुबह अखबार में, तो बेचैनी शुरू हो जाती है कि जल्दी किसी को जाकर कहें। कोई कुछ खबर दे दे, किसी की अफवाह सुना दे, किसी की बदनामी कर दे, किसी की निंदा कर दे--तो फिर आपसे रुका नहीं जाता, जल्दी ही इस संवाद को, इस सुखद समाचार को आप दूसरे को देना चाहते हैं। और निश्चित ही देते वक्त आप थोड़ी कल्पना का भी उपयोग करते हैं। आप भी थोड़े कवि हैं, आप उसमें कुछ जोड़ते हैं; उसको सजाते हैं; संवारते हैं। सुबह की अफवाह शाम अगर उसी आदमी के पास वापस लौट आए, जिसने शुरू की थी, तो वह पहचान नहीं सकेगा कि यह बात मैंने ही कही थी। इतने लोगों के हाथ से निखर जाएगी। सुबह पांच रुपये की चोरी हुई हो तो सांझ तक पांच लाख की हो जाना कुछ अड़चन की बात नहीं है।

मन में कुछ आया कि आप जल्दी उसे देना चाहते हैं; क्यों? क्योंकि फिर आप हल्के हो जाएंगे; जब तक नहीं देते, तब तक मन पर बोझ बना रहता है। इसलिए किसी बात को गुप्त रखना बड़ा कठिन है। और जो लोग किसी बात को गुप्त रख सकते हैं, बड़ी गहरी क्षमता है उनकी। और जब आप शब्द तक को गुप्त नहीं रख सकते, तो और क्या गुप्त रखेंगे। इसलिए गुरुमंत्र का नियम हैः मंत्र में कुछ भी न हो, लेकिन उसे गुप्त रखना है। गुप्त रखने में ही सारी साधना है, मंत्र उतना मूल्यवान नहीं है। क्योंकि कहने का मन इतना नैसर्गिक है, इतना स्वाभाविक है कि किसी चीज को रोकना बिल्कुल अस्वाभाविक मालूम होता है। आप किसी न किसी भांति किसी न किसी से कह देना चाहते हैं।
मुल्ला नसरुद्दीन के पास कोई आया, और आकर उसने कहाः मैंने सुना है कि तुम्हें जीवन के रहस्य की कुंजी मिल गई है, वह कुंजी तुम मुझे दे दो। नसरुद्दीन ने कहा कि वह बड़ी गुप्त बात है, बड़ा सीक्रेट है। उस आदमी ने कहा कि मैं भी उसे गुप्त रखने की कोशिश करूंगा। नसरुद्दीन ने कहा कि तू पक्की कसम खा कि उसे गुप्त रखेगा। उस आदमी ने कसम खाई; उसने कहाः मैं गुप्त रखूंगा। नसरुद्दीन ने कसम सुनने के बाद कहाः अब जा। पर उसने कहाः अभी आपने मुझे वह कुंजी बताई नहीं। नसरुद्दीन ने कहा कि जब तू गुप्त रख सकता है तो मैं गुप्त नहीं रख सकता? और जब मैं ही न रख सकूंगा तो तेरा क्या भरोसा? कठिन है, अति अप्राकृतिक है कि कोई बात आपके मन में चली जाए और आप उसे
न कहें। एक ही उपाय है कि वह बात शब्द न रह जाए, खून बन जाए, हड्डी हो जाए, पच जाए, मांस-मज्जा हो जाए, तो ही गुप्त रह सकती है। इसलिए गुप्त रखने की एक कला है। उस कला के माध्यम से जो शब्द आपके भीतर जाते हैं, उनको आप बाहर नहीं फेंकते, ताकि वे पच जाएं--वे समय लेंगे। आप बाहर फेंक देते हैं, इसलिए मैंने कहा--वमन, उलटी, कय हो गई। जो आपने खाया था, वह वापस मुंह से फेंक दिया गया। वह पच नहीं पाया। मौन पचाएगा--और तभी बोलेगा, जब इतनी शांति गहन हो जाएगी भीतर कि अब कोई अशांति नहीं है, जिसे किसी पर फेंकना है; अब किसी को शिकार नहीं बनाना है।
मौन व्यक्ति ही सहयोगी हो सकता है, मार्ग-निर्देशक हो सकता है। हिंदुओं ने अपने संन्यासी को "स्वामी" कहा, इस अर्थ में कि वह अपना मालिक हो गया। बुद्ध ने अपने संन्यासी को "भिक्षु" कहा, इस अर्थ में कि इस दुनिया में सभी अपने को मालिक समझ रहे हैं--और गलत। कोई अपने को भिक्षु नहीं समझता, कोई अपने को अंतिम नहीं समझता। मेरा संन्यासी अपने को अंतिम समझेगा, भिखारी समझेगा, ताकि महत्वाकांक्षा की दौड़ से टूट जाए।
महावीर ने अपने साधु को "मुनि" कहा। इस कारण से मुनि कहा कि महावीर का मौन पर सर्वाधिक जोर है। और महावीर कहते हैं, जो मौन को उपलब्ध नहीं हो जाता, मुनि नहीं हो जाता, उससे सत्य की कोई किरण प्रकट नहीं हो सकती।
ये आठ सूत्र बड़े अनूठे हैं। इनमें, एक-एक सूत्र पर हम क्रमशः विचार करें।
"पांच समिति और तीन गुप्ति--इस प्रकार आठ प्रवचन-माताएं हैं।" जो आपको बोलने के योग्य बना सकेंगी। बोलते तो आप हैं, लेकिन बोलने की कोई योग्यता नहीं है। बोलना आपकी एक बीमारी है, एक रोग है। इसलिए बोलकर आप अपने को हलका अनुभव करते हैं, बोझ उतर जाता है। दूसरे से प्रयोजन नहीं है--अगर आपको कोई बोलने को न मिले तो आप अकेले में भी बोलेंगे। अगर आपको बंद कर दिया जाए एक कोठरी में, और कोई न मिले, तो थोड़ी ही देर में आप अकेले बोलना शुरू कर देंगे।
अभी भी रास्ते पर अगर आप खड़े हो जाएं तो कई लोग आपको दिखाई पड़ेंगे, जो अपने से बातचीत करते चले जा रहे हैं। कोई हाथ हिला रहा है, कोई जवाब दे रहा है--किसी को जो मौजूद नहीं है। उसके ओंठ हिल रहे हैं, उसकी आंखें कंप रही हैं--वह किसी के साथ है। पागलखाने में जाकर देखें, लोग अपने से बातें कर रहे हैं।
आप में भी बहुत फर्क नहीं है। जब आप दूसरे से बात कर रहे हैं तो दूसरा
तो केवल बहाना है, बात आप अपने से ही कर रहे हैं। इसलिए दो लोगों की बातचीत सुनें, शांत मौन होकर, तो आप हैरान होंगे कि वे एक-दूसरे से बातचीत नहीं कर रहे--दोनों अपना-अपना बोझ फेंक रहे हैं। न उसको प्रयोजन है, न इसको प्रयोजन

है। दूसरे से कोई संबंध नहीं है, दूसरा खूंटी की तरह है। आप आए अपना कोट खूंटी पर टांग दिया। कोई खूंटी से मतलब नहीं है, कोट टांगने से मतलब है। कोई भी खूंटी काम दे देगी। तो जो भी मिल जाए, जो भी अभागा आपके हाथ में पड़ जाए, उस पर आप फेंक रहे हैं!
महावीर कहते हैंः बोलने का अधिकार उसको ही है, जो न बोलने की कला को उपलब्ध हो गया। लेकिन न बोलने की कला एक गहन प्रक्रिया है। पूरे जीवन की धारणा, दृष्टि, आधार बदलने पड़ेंगे। उन आधार को बदलने वाली ये आठ वैज्ञानिक प्रक्रियाएं हैंः पांच समिति और तीन गुप्ति।
समितियां है विधायक--पाजिटिव, और गुप्तियां हैं निगेटिव--नकारात्मक। समिति में ख्याल रखना है उसका जो आप करते हैं, और गुप्ति में ख्याल रखना है उसका जो आप नहीं करते हैं। और, विधायक और नकार दोनों सम्हल जाएं तो आप दोनों के पार हो जाते हैं।
"ईर्या, भाषा, एषणा, आदान और उच्चार--ये पांच समितियां हैं।"
"ईर्या" का अर्थ हैः साधक जो भी प्रवृत्ति करे, उसमें सावधानी रखे। महावीर ने कहा हैः उठो, बैठो, चलो--होशपूर्वक, अवेयरनेस। कोई भी प्रवृत्ति करो, वह बेहोशी से न हो, इसका नाम "ईर्या-समिति" है।
हम जो भी कर रहे हैं, बेहोशी में कर रहे हैं। चलते हैं, लेकिन चलने से कोई मतलब नहीं, मन कुछ और करता रहता है। और जब मन कुछ और करता रहता है, तो चलने में हम बेहोश हो जाते हैं। भोजन करते हैं, मन कुछ और करता रहता है--तो भोजन करने में बेहोश हो जाते हैं। किसी से बात भी आप कर रहे हैं तो भी बात ऊपर चल रही है, भीतर आपका मन कुछ और कर रहा है--तो आप बात में भी बेहोश हो जाते हैं।
महावीर ने कहा है कि साधक का प्राथमिक चरण है, उसकी सारी क्रियाएं होशपूर्वक हो जाएं। जिसको गुरजिएफ ने "सेल्फ-रिमेंबरिंग" कहा है, और जिस पर गुरजिएफ ने अपने पूरे साधना का आधार रखा है, या जिसको कृष्णमूर्ति "अवेयरनेस" कहते हैं, उसे महावीर ने "ईर्या-समिति" कहा है। वह उनका पहला तत्व है, अभी सात तत्व और हैं। लेकिन पहला इतना अदभुत है कि अगर उसे कोई पूरा साधने लगे तो सात के बिना भी सत्य तक पहुंच सकता है।
जो भी आप कर रहे हैं, करते वक्त क्रिया के साथ आपकी चेतना संयुक्त होनी चाहिए। कठिन है, क्योंकि चौबीस घंटे आप कुछ न कुछ कर रहे हैं। हजार तरह की क्रियाएं हो रही हैं। उन सारी क्रियाओं में अगर आप बोध रखें तो आप चकित हो जाएंगे, एक सेकेंड भी बोध रखना मुश्किल मालूम पड़ेगा। तब आपको पहली दफे पता चलेगा कि आप अब तक बेहोशी में जी रहे थे। एक सेकेंड भी आप चलने का ख्याल रख कर चलें कि आपकी चेतना पूरी चलने की क्रिया पर अटकी रहे। बायां पैर उठा तो उसके साथ चेतना उठे, बायां पैर नीचे गया और दायां उठा तो उसके साथ चेतना उठे। आप पाएंगे, एकाध सेकेंड मुश्किल से यह हो पाता है-कि चेतना खो गई, पैर अपने आप उठने लगे, मन कहीं और चला गया, कुछ और सोचने लगा। तब आपको फिर ख्याल आएगा--मैं सो गया!
महावीर ने कहा हैः मैं उसी को साधु कहता हूं, जो जागा हुआ है; असाधु उसको कहता हूं, जो सोया हुआ है। सुत्ता अमुनि, असुत्ता मुनि--जो जागा हुआ है, असोया हुआ है वह "मुनि", जो सोया हुआ है वह "अमुनि।"
तो आप क्या करते हैं, यह बड़ा सवाल नहीं है। कैसे करते हैं? होशपूर्वक
या बेहोशी में। यह भी हो सकता है कि दान करनेवाला असाधु हो, अगर बेहोशी से कर रहा है; और चोरी करने वाला साधु हो जाए, अगर होशपूर्वक कर रहा है।
मैं यह नहीं कह रहा हूं कि आप जाकर होशपूर्वक चोरी करें। मैं यह कह रहा हूं इतनी दूर तक संभावना है होश की, कि अगर होशपूर्वक कोई चोरी करे तो भी साधु होगा, और बेहोशी से कोई दान दे तो भी असाधु होगा। सचाई तो यह है कि होशपूर्वक चोरी हो नहीं सकती और न बेहोशी में दान हो सकता है। बेहोशी का दान झूठा है, उसके प्रयोजन दूसरे हैं। होश में चोरी असंभव है, क्योंकि चोरी के लिए बेहोशी अनिवार्य तत्व है। जो भी बुरा है जीवन में, उसके लिए मूर्छा चाहिए।
इसलिए जब भी आप बुरा करते हैं, तब आप मूर्च्छित होते हैं। जब भी आप मूर्च्छित हो जाते हैं, बुरा करने की संभावना प्रगाढ़ हो जाती है। हिंसा

में, हत्या में, झूठ में, चोरी में, पाप में, वासना में आप होश में नहीं होते, आप बेहोश हो जाते हैं। कुछ भीतर आपके सो जाता है। आप पछताते हैं बहुत बार, जब जागते हैं, जब क्षणभर को होश वापस लौटता है, तो ख्याल आता है--"यह मैंने क्या किया? यह मुझे नहीं करना था! और यह मैं जानता था कि यह नहीं करना है! न मालूम कितनी बार निर्णय किया था कि नहीं करूंगा, फिर भी हो गया!" कैसे हुआ आपसे यह? निश्चित ही बीच में किसी धुएं ने घेर लिया, आपका चित्त खो गया निद्रा में।
महावीर कहते हैं--साधु ईर्ष्या से चले, उठे-बैठे, प्रवृत्ति करे। जो
भी करे, क्षुद्रतम प्रवृत्ति भी होशपूर्वक हो। क्यों? क्योंकि प्रवृत्ति दूसरे से जोड़ती है। बेहोश आदमी के संबंध हिंसात्मक होंगे। वह दूसरे को चोट पहुंचा देगा। जैसे कोई आदमी नशे में यहां से चले और आपके पैर पर पैर रख दे, तो आप क्या कहेंगे? कहेंगे कि यह आदमी नशे में है। लेकिन हम ऐसे ही जीवन में चल रहे हैं--नशे में।
नशे बहुत तरह के हैं, तरह-तरह के हैं। हर आदमी का अपना-अपना नशा है। कोई आदमी धन के नशे में चल रहा है। देखें--जब किसी के पास धन होता है, तो उसकी चाल अलग होती है। आपके खीसे में भी जब पैसे ज्यादा होते हैं तो आपकी चाल वही नहीं होती। आप अनुभव करना। जब खीसे में पैसा नहीं होता तो आप और ढंग से चलते हैं। नशा ही नहीं है। चाल में जान नहीं मालूम पड़ती। जब खीसे में पैसे होते हैं, तब रीढ़ सीधी हो जाती है! कुंडलिनी जागृत हो जाती है! आप बहुत अकड़कर चलते हैं।
राजनीतिज्ञ जब पद पर होता है, तब उसकी चाल देखें; जैसे कपड़े पर नया-नया कलफ किया गया हो! और जब पद से उतर जाता है, तब उसकी चाल देखें; जैसे रात भर उन्हीं कपड़ों को पहन कर सोया हो! सब अस्त-व्यस्त हो जाता है। सब चमक चली जाती है। सब शान चली जाती है। धनी निर्धन हो जाए तो देखें। स्वस्थ आदमी बीमार हो जाए तो देखें।
नशे हैं। कोई ज्ञान के नशे में है--तब ज्ञान की अकड़ होती है कि मैं जानता हूं। हजार तरह के नशे हैं। नशा उसको कहते हैं, जिससे आप अकड़ते हैं, और बेहोश होते हैं, और होशपूर्वक नहीं चल पाते।
साधना का अर्थ ही है कि नशों को तोड़ना। जहां-जहां चीजें हमें बेहोश करती हैं, उन-उन से संबंध विच्छिन्न करना, और एक ऐसी सरल स्थिति में आ जाना जहां सिर्फ चेतना हो और किसी तरह की बेहोशी के तत्व से संबंध न रहा हो।
धन में खतरा नहीं है। धन से जो नशे से भर जाते हैं, उसमें खतरा है। तो निर्धन होने से काम न चलेगा; क्योंकि आदमी इतना चालाक है कि निर्धन होने का भी नशा हो सकता है।
सुकरात से मिलने एक फकीर आया। उस फकीर ने चीथड़े पहन रखे थे, जिनमें छेद थे। उस फकीर का नियम था कि अगर कोई नया कपड़ा भी उसको दे दे तो वह नया कपड़ा नहीं पहनता था। फकीर--वह पहले उसमें छेद कर लेता, कपड़े को गंदा करता, फाड़ता--तब पहनता! गुदड़ी बना लेता, तब कपड़े का उपयोग करता!
फटे-पुराने, गंदे कपड़े पहने हुए फकीर आया सुकरात से मिलने। सुकरात ने उससे कहा कि तुम कितने ही फटे कपड़े पहनो, तुम्हारे छिद्रों से तुम्हारा अहंकार ही झांकता है। तुम्हारे छिद्र भी तुम्हारे अहंकार का हिस्सा हैं; वे भी तुम्हें भर रहे हैं। तुम जिस अकड़ से चल रहे हो, सम्राट भी नहीं चलता! क्योंकि वह आदमी, समझ रहा है, मैं फकीर हूं, त्यागी हूं! त्यागियों को देखें! उनकी अकड़ देखें! जैसे सब क्षुद्र हो गए हैं उनके सामने। भोगी को वे ऐसे देखते हैं, जैसे कीड़ा-मकोड़ा-पाप में गिरा हुआ, पाप की गर्द में गिरा हुआ। उनके ऊपर बोझ है कि आपको पाप से उठाएं। अब नरक आपका निश्चित है। जब भी वे आपको देखते हैं तो उनको लगता है--बेचारा! नरक में सड़ेगा! लेकिन उन्हें ख्याल नहीं आता कि नरक में सड़ाने का यह ख्याल बड़े गहरे अहंकार का ख्याल है।
त्याग नशा दे रहा है। तो त्यागी और ढंग से उठता है, और ढंग से बैठता है। उसकी अकड़--उसकी अकड़ मजेदार है। वह कहता है, मैंने रुपयों पर लात मार दी, तिजोरी को ठुकरा दिया; पत्नी सुंदर थी, आंख फेर ली! तुम अभी तक पाप में पड़े

हो! वह अपनी हर प्रक्रिया से--मैं कुछ ज्यादा हूं, कुछ महत्वपूर्ण हूं, कुछ खास हूं, इसकी कोशिश कर रहा है।
और आदमी ने खास होने की इतनी कोशिशें की हैं कि जिसका हिसाब नहीं। आदमी कोई भी नालायकी कर सकता है, अगर खास होने का मौका मिले। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि अधिक लोग अपराध की तरफ इसलिए प्रवृत्त हो जाते हैं कि अपराधी होकर वे खास हो जाते हैं। हजारों अपराधियों का अध्ययन करके इस नतीजे पर पहुंचा गया है कि अगर उनके अहंकार को तृप्त करने का कोई और रास्ता खोजा गया होता तो उन्होंने अपराध न किए होते। अनेक हत्यारों ने वक्तव्य दिए हैं, और वक्तव्य बड़े गहरे हैं कि वे सिर्फ अखबार में अपना नाम छपा एक दफा देखना चाहते थे। जब उन्होंने किसी की हत्या कर दी तो अखबार में सुर्खियों में नाम छप गया।
हमारे अखबार भी हत्याओं में सहयोगी हैं। आप किसी को बचा लें, कोई अखबार में कोई खबर न छापेगा; किसी को मार डालें, अखबार में खबर छप जाएगी। ऐसा लगता है कि बुरा करना प्रसिद्ध होने के लिए बिल्कुल आवश्यक है। शुभ की कोई चर्चा नहीं होती। शुभ जैसे प्रयोजन ही नहीं है!
मनसविद कहते हैं कि जब तक हम अशुभ को मूल्य देंगे, तब तक कुछ लोग अशुभ
से अपने अहंकार को भरते रहेंगे।
खास होने का मजा है। राबर्ट रिप्ले ने लिखा है कि वह जवान था, और प्रसिद्ध होना चाहता था। जवानी में सभी प्रसिद्ध होना चाहते हैं-- स्वाभाविक है, जवानी इतनी पागल है, इतनी बेहोश है। चिंता तो तब होती है, जब बुढ़ापे में कोई उसी पागलपन में पड़ा रहता है।
तो रिप्ले प्रसिद्ध होना चाहता था, लेकिन कोई उसे उपाय नहीं सूझता था, कैसे प्रसिद्ध हो जाए।
दुनिया इतनी बड़ी है अब, और इतनी करीब आ गई है कि प्रसिद्धि के मौके कम
हो गए हैं। दुनिया में, मनस्विद कहते हैं कि मानसिक रोग बढ़ते जाते हैं, क्योंकि प्रसिद्धि के मौके कम होते जाते हैं। पुरानी दुनिया में हर गांव अपने में एक दुनिया था। गांव का कवि "महान-कवि" था, क्योंकि दूसरे गांव से कोई तुलना नहीं थी। गांव का चमार भी "महान-चमार" था, क्योंकि उस जैसे जूते बनाने वाला कोई भी नहीं था। गांव में सैकड़ों लोगों का अहंकार तृप्त हो रहा था। अब पूरे मुल्क में जब तक आप "राष्ट्रीय-चमार" न हो जाएं, "राष्ट्र-कवि" न हो जाएं, तब तक आपकी कोई कीमत नहीं है। हजारों कवि हैं, हजारों चमार हैं, हजारों दुकानदार हैं, हजारों कोई पूछनेवाला नहीं है इस संख्या में। और दुनिया सिकुड़ती जाती है। जब तक विश्व-कवि न हो जाएं, तब तक बहुत मजा नहीं, जब तक नोबल प्राइज न मिल जाए तब तक कुछ मजा नहीं। कठिन होता जाता है; अधिक लोगों के अहंकार तृप्त नहीं हो पाते। अधिक लोगों की मूर्च्छा तृप्त नहीं हो पाती तो बीमार हो जाते हैं, रुग्ण हो जाते हैं।
रिप्ले जवान था और प्रसिद्ध होना चाहता था। तो जब उसे कुछ नहीं सूझा
तो उसने एक आदमी से सलाह ली। जिससे सलाह ली वह एक सर्कस का मालिक था। उसने कहाः यह भी कोई खास बात है, बिल्कुल सरल बात है। तू आधी खोपड़ी के बाल काट दे, आधी दाढ़ी काट दे, आधी मूंछ काट दे--और सड़क से सिर्फ गुजर, कुछ मत बोल किसी से। लोगों को देखने दे, कोई कुछ पूछे तो मुस्कुरा।
रिप्ले ने कहाः इससे क्या होगा? उसने कहा कि तीन दिन के बाद तू आना।
तीन दिन बाद आने की जरूरत न रही, सारे अखबारों में खबरें छप गईं। जगह-जगह लोग खड़े होकर देखने लगे। नाम व पता उसने अपनी छाती पर लिख रखा था। लोग उससे पूछते कि आप कौन हैं? तो वह सिर्फ मुस्कुराता। सड़कों पर सिर्फ घूमता रहता। तीन दिन में वह न्यूयार्क में प्रसिद्ध हो गया। तीन महीने के भीतर पूरी अमेरिका उसको जानती थी। तीन साल के भीतर दुनिया में बहुत कम लोग थे जो उसको नहीं जानते थे। फिर तो उसने जिंदगी भर इस तरह के काम किए। और इस जमीन पर कम ही लोग इतने प्रसिद्ध होते हैं, जैसा राबर्ट रिप्ले हुआ। फिर तो वह इसी तरह के उलटे-सीधे काम में लग गया।
मगर प्रसिद्धि मिलती है, अहंकार तृप्त होता है, अगर आप सिर्फ खोपड़ी
के बाल काट लें आधे तो। जिसको आप साधु कहते हैं, वह जो साधु नाम का जीव है, उनमें से सौ में से निन्यानबे लोग खोपड़ी के आधे बाल काटे हुए हैं! मगर उससे

प्रसिद्धि मिलती है, सम्मान मिलता है, आदर मिलता है, मूर्च्छा तृप्त होती है।
मूर्च्छा के लिए अहंकार भोजन है। अहंकार के लिए मूर्च्छा सहयोगिनी है।
महावीर कहते हैं, "ईर्या-समिति" पहली समिति है। व्यक्ति जो भी करे, होशपूर्वक करे। करने की फिकर छोड़ दे कि वह क्या कर रहा है, इसकी फिकर करे कि मैं होशपूर्वक कर रहा हूं कि नहीं।
हम सब की चिंता होती है कि "हम क्या कर रहे हैं?"--गलत तो नहीं कर रहे हैं, सही तो कर रहे हैं। चोरी तो नहीं कर रहे हैं, दान कर रहे हैं। हिंसा तो नहीं कर रहे, अहिंसा कर रहे हैं।
"क्या कर रहे हैं"--इस पर हमारा जोर है। महावीर का सारा जोर इस पर है कि
वह जो कर रहा है, वह जागकर कर रहा है या सोकर कर रहा है?
तो आप अहिंसा कर सकते हैं--सोए-सोए, और दूसरी तरफ हिंसा जारी रहेगी। कलकत्ते में, एक घर में मैं मेहमान था। बहुत बड़े धनपति हैं। सांझ को मैंने देखा कि बाहर कुछ खाटें लगा रखी हैं। तो पूछा कि "यह क्या मामला है?" उन्होंने कहा कि "अहिंसा के कारण। खटमल पैदा हो गए हैं खाट में, मार तो सकते नहीं, लेकिन उनको धूप में डाल देंगे तो वे मर ही जाएंगे। तो रात को नौकरों को उन पर सुला देते हैं। नौकरों को दो रुपये रात दे देते हैं सोने के लिए।"
अब यह बड़ा मजेदार मामला हुआ। अहिंसक होने की कोशिश चल रही है--"खटमल न
मर जाए!" लेकिन दो रुपये देकर जिस आदमी को सुलाया है, उसको रातभर खटमल खा रहे हैं! पर उसको दो रुपये मैंने दे दिए हैं, इसलिए कोई अड़चन नहीं मालूम होती! सब मामला साफ हो गया, सुथरा हो गया!
एक तरफ अहिंसा करो, अहिंसा करने की कोशिश होगी, दूसरी तरफ हिंसा होती चली जाएगी। क्योंकि भीतर से चेतना तो बदल नहीं रही, सिर्फ कृत्य का रूप बदल रहा है; भीतर से आदमी तो बदल नहीं रहा, सिर्फ उसका व्यवहार बदल रहा है। जो व्यवहार को बदलने की कोशिश करेंगे वे पाएंगे कि जो चीज उन्होंने बदली है, वह दूसरी तरफ से भीतर प्रवेश कर गई।
बड़े आश्चर्य की बात है कि शिकारी, जिनको हम शुद्धतम हिंसक कहें, हमेशा मिलनसार और अच्छे लोग होते हैं। अगर आपको किसी शिकारी से दोस्ती है, तो आप चकित होंगे कि वह कितना मिलनसार है--है हत्यारा! लेकिन अहिंसा की चेष्टा करने वाला व्यक्ति, जिसने अपनी चेतना को नहीं बदला, अकसर मिलनसार नहीं होगा--दुष्ट मालूम पड़ेगा, कठोर मालूम पड़ेगा। उसे आप झुका नहीं सकते। वह झुकेगा भी नहीं, मिलने आएगा भी नहीं।
क्या कारण है कि शिकारी इतने मिलनसार होते हैं, जो हिंसा कर रहे हैं! उनकी हिंसा शिकार में निकल जाती है, आदमी की तरफ निकलने की कोई जरूरत नहीं रह जाती। जो सब तरफ से हिंसा को रोक लेता है, उसकी हिंसा आदमी की तरफ निकलनी शुरू हो जाती है। अगर अहिंसा को माननेवाले जैनों ने इस देश में किसी भी दूसरे समाज के मुकाबले ज्यादा पैसा इकट्ठा किया है, तो उसका कारण है। क्योंकि हिंसा का सारा रुख बाकी तरफ से तो बच गया, हिंसा और कहीं तो निकल न सकी, सिर्फ धन की खोज में, धन को खींचने में निकल सकी।
यह एक वैज्ञानिक तथ्य है, जो मैं कह रहा हूं कि आपकी वृत्तियां अगर एक तरफ से रोक दी जाएं तो दूसरी तरफ से निकलती हैं। आप जान कर हैरान होंगे कि अगर कोई दौड़ने वाला, तेज दौड़ने वाला प्रतियोगी पंद्रह दिन दौड़ने के पहले संभोग न करे तो उसकी दौड़ की गति ज्यादा होती है, अगर संभोग कर ले तो कम हो जाती है। अगर परीक्षार्थी सुबह परीक्षा दे और रात संभोग कर ले, तो उसकी बुद्धि की तीक्ष्णता कम हो जाती है; अगर परीक्षा के समय में संभोग न करे तो उसकी बुद्धि की तीक्ष्णता ज्यादा होती है। सैनिकों को पत्नियां नहीं ले जाने दिया जाता, क्योंकि अगर वे संभोग कर लें तो उनकी लड़ने की क्षमता कम हो जाती है। उनको वासना से दूर रखा जाता है, ताकि वासना इतनी इकट्ठी हो जाए कि छुरे में प्रवेश कर जाए। जब वे किसी की हत्या करें तो हत्या कामवासना का कृत्य बन जाए।

यह जानकर आप चकित होंगे कि जब भी कोई समाज समृद्ध हो जाता है तो उसके हार के दिन करीब आ जाते हैं, क्योंकि उसके सैनिक भी आराम से रहने लगते हैं। जब कोई समाज दीन-दरिद्र होता है तो उसके हारने के दिन नहीं होते। कभी भी अत्यंत दरिद्र समाज अगर समृद्ध समाज से टक्कर में पड़ जाए, तो समृद्ध को हारना पड़ता है। यह भारत इस अनुभव से गुजर चुका है। तीन हजार साल निरंतर भारत पर हमले होते रहे। और जो भी हमलावर था इस मुल्क पर--वह हमेशा गरीब था, दीन था, दुखी था, परेशान था। लेकिन उसकी परेशानी इतनी ज्यादा थी कि हिंसा बन गई। हम यहां बिल्कुल सुखी थे, खाते-पीते थे, प्रसन्न थे, आनंदित थे, हमारी कुछ इतनी वासना इकट्ठी नहीं थी कि हिंसा बन जाए।
आप देखें, अगर आप दो-चार दिन ब्रह्मचर्य का साधन करें, तो आप पाएंगे, आपका क्रोध बढ़ गया है। बड़े मजे की बात है। क्रोध बढ़ना नहीं चाहिए ब्रह्मचर्य के साधने से, घटना चाहिए। लेकिन आप अगर पंद्रह दिन ब्रह्मचर्य का साधन करें, आपका क्रोध बढ़ जाएगा; क्योंकि जो शक्ति इकट्ठी हो रही है, अब वह दूसरा मार्ग खोजेगी। जब तक आपको ध्यान का मार्ग न मिल जाए, तब तक ब्रह्मचर्य खतरनाक है; क्योंकि ब्रह्मचारी आदमी दुष्ट हो जाएगा। आप दो- चार दिन उपवास करके देखें, आप बंद ही हो जाएंगे, क्रोधी हो जाएंगे।
सभी को अनुभव है कि घर में एकाध आदमी धार्मिक हो जाए तो पूरे घर में उपद्रव हो जाता है; क्योंकि वह धार्मिक आदमी सबको सताने की तरकीबें खोजने लगता है। उसकी तरकीबें भली होती हैं, इसलिए उनसे बचना भी मुश्किल है। वह तरकीबें भी ऐसी करता है कि आप यह भी नहीं कह सकते कि "तुम गलत हो।" क्योंकि वह इतना अच्छा है, उपवास करता है, ब्रह्मचर्य साधता है, सुबह से उठ कर योगासन करता है--बुराई तो उसमें आप खोज ही नहीं सकते। न सिगरेट पीता है, न शराब पीता है, न होटल में जाता है, न सिनेमा देखता है; घर में ही बैठ कर गीता, रामायण पढ़ता रहता है। मगर वह जितना इकट्ठा कर रहा है उतना निकालेगा, चिड़चिड़ा हो जाएगा। बहुत मुश्किल है धार्मिक आदमी पाना, जो चिड़चिड़ा न हो। जब धार्मिक आदमी चिड़चिड़ा न हो तो समझना कि ठीक धार्मिक आदमी है। लेकिन धार्मिक आदमी चिड़चिड़ा होगा, सौ में निन्यानबे मौके पर; क्योंकि जो उसने रोका है, वह कहीं से निकलेगा। वह चिड़चिड़ाहट बन जाएगा उपद्रव!
आप अहिंसा को थोप सकते हैं, फिर हिंसा नई तरफ से बहने लगेगी।
यह जानकर आप चकित होंगे कि पूरा जीवन एक इकॉनामिक्स है, शक्ति का एक अर्थशास्त्र है। आप इस अर्थशास्त्र को सीधा नहीं बदल सकते, जब तक कि भीतर का मालिक न बदल जाए तब तक एक तरफ से झरने को रोकते हैं, दूसरी तरफ से बहना शुरू हो जाता है।
महावीर का जोर कृत्य पर नहीं है, कर्ता पर है। आप क्या करते हैं, यह बात बहुत विचारणीय नहीं है। आप होशपूर्वक करें, बस इतना ही विचारणीय है। और मजे की बात यह है कि होशपूर्वक करने पर जो बुरा है, वह होता ही नहीं; क्योंकि बुरे की अनिवार्य शर्त है, बेहोशी। यह गणित है। होशपूर्वक करने पर वही होता है, जो शुभ है, जो ठीक है; क्योंकि होश से गैर-ठीक निकलता ही नहीं। इसलिए महावीर ने "ईर्या" पहली समिति कही--होशपूर्वक प्रवृत्ति। "भाषा"--होशपूर्वक भाषा का व्यवहार, संयमपूर्वक भाषा का व्यवहार। यह संयम उस सीमा तक जाना चाहिए, जहां भाषा मौन हो जाए।
"ईर्या" जागरूकता बन जाए, इतना होश हो जाए कि उसका होश न रखना पड़े--कि उसकी अलग से चेष्टा न करनी पड़े कि होश रखूं। होश सहज हो जाए तो "ईर्या" पूरी हुई। भाषा की पूर्णता या भाषा का बोध और भाषा की समिति तब पूरी होती है, जब मौन सहज हो जाए। भाषा का उपयोग तभी हो जब अत्यंत जरूरी संवाद हो, आवश्यक हो कि बोलना जरुरी है। और जब बोलें तब भाषा का उपयोग हो, जब न बोलें तब भीतर भाषा न चलती रहे। अभी आप नहीं भी बोलते तो भी भीतर भाषा चलती रहती है; भीतर तो आप बोलते ही रहते हैं। बाहर कभी-कभी चुप रहते हैं, भीतर तो कभी चुप नहीं रहते। सपने तक में चर्चा चलती रहती है।
यह जो भीतर चलने वाली भाषा है, यह जीवन की ऊर्जा को पीए जा रही है, सोखे
जा रही है। आपका मस्तिष्क विक्षिप्त है--ऐसा ही, जैसे कि आप बैठे हैं और पैर चला रहे हैं। कुछ लोग बैठ कर चलाते रहते हैं। चलते वक्त पैर का चलाना ठीक है, क्योंकि पैर के चलने की जरूरत है। लेकिन कुर्सी पर बैठ कर पैर

क्यों हिला रहे हैं? अनावश्यक है। लेकिन आमतौर से अगर कोई कहेगा कि व्यर्थ है तो आपको ख्याल में आ जाएगा। जब आप बोल रहे हैं तब भाषा की जरूरत है, जब आप चुप बैठे हैं तब भीतर भाषा क्यों चल रही है? पैर का हिलना क्यों चल रहा है?
महावीर भी बारह वर्ष तक निरंतर मौन में डूबे रहे, सिर्फ भाषा-समिति को उपलब्ध होने को--कि मालिक हो जाएं शब्द के, शब्द मालिक न रहे।
अभी शब्द आपका मालिक है। आप चाहें भी कि भाषा को बंद करें, वह नहीं होती, वह चलती ही जाती है। आप कहें भी अपने मन से कि चुप हो जा, वह आपकी सुनता नहीं। आप कितना ही कसते रहें, पर वह बोले ही चला जाता है। अंततः आप थक जाते हैं, और कहते हैं कि "ठीक है, चलने दो।" धीरे-धीरे आप भूल ही जाते हैं कि आप गुलाम हो गए हैं, और मन मालिक हो गया है। मन की मालकियत तोड़ने का उपाय मौन है, और कोई उपाय नहीं है।
मन की मालकियत तोड़ने का एक ही ढंग है कि आप भीतर चलते शब्दों से अपना सहयोग हटा लें, को-आपरेशन अलग कर लें। भीतर शब्द चलता भी हो तो भी आप उसमें रस न लें। भीतर शब्द चलता भी हो तो आप ऐसा ही समझें कि कहीं और दूर चल रहा है, मेरा कोई प्रयोजन नहीं है--तटस्थ हो जाएं। जब धीरे-धीरे आप रस लेना बंद कर देंगे, भाषा गिरने लगेगी, बीच में अंतराल आने लगेंगे, कभी-कभी मौन आकाश आ जाएगा। और मौन--आकाश इतना अदभुत अनुभव है कि जीवन की पहली झलक तभी मिलती है।
दूसरे से बात करने के लिए भाषा, अपने से बात करने के लिए मौन। दूसरे से जुड़ने के लिए भाषा का सेतु चाहिए, और अपने से जुड़ने के लिए भाषा का सेतु खत्म हो जाना चाहिए। मौन की धारा पैदा हो जानी चाहिए। खुद से जुड़ने के लिए बोलने की क्या जरूरत है? लेकिन बोलना इतना रुग्ण हो गया है कि आप खुद को दो हिस्सों में तोड़ लेते हैं।
मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन पर एक मुकदमा था। वकीलों से परेशान
आ गया था तो उसने अदालत से कहा कि मैं अपनी वकालत खुद ही करना चाहता हूं। चोरी का मामला था, चोरी का इल्जाम था; कानून में कोई बाधा नहीं थी। मजिस्ट्रेट ने कहा कि ठीक है, अगर तुम खुद ही कर सकते हो तो खुद ही करो। तो मुल्ला खड़ा होता कटघरे में, कटघरे से बाहर निकलता, वकील की तरह खड़ा होता। एक काला कोट ले आया था, काला कोट पहनकर बाहर खड़े होकर कटघरे की तरफ देखता और पूछता--नसरुद्दीन, तेरह तारीख की रात तुम कहां थे? क्या तुमने चोरी की? क्या तुम उस घर में घुसे? फिर कोट उतार कर, भाग कर कटघरे में जाकर खड़ा होता और कहता--क्या मतलब, तेरह तारीख की रात? मुझे तो कुछ पता ही नहीं! किसकी चोरी हुई? क्या हुआ? वह जवाब-सवाल कर रहा है!
आप चौबीस घंटे यही कर रहे हैं। अपने को बांट लेते हैं ताकि बातचीत आसान हो जाए। बेटा अपनी तरफ से भी बोल रहा है, बाप की तरफ से भी बोल रहा है जवाब भी दे रहा है! पत्नी अपनी तरफ से भी बोल रही है; पति क्या कहेगा, वह भी बोल रही है--जवाब-सवाल भीतर चल रहे हैं!
भीतर आप खंड कर लिए हैं; खंड किए बिना बोलना बहुत मुश्किल हो जाएगा, पागलपन मालूम पड़ेगा। जरा भीतर देखें कि कैसा द्वंद्व आपने खड़ा कर लिया है। महावीर कहते हैं, मौन होगा तो द्वंद्व विसर्जित होगा। जब मौन होंगे तो आप एक हो जाएंगे। जब तक बोलेंगे, तब तक बटे रहेंगे। यह बंटाव हटना चाहिए। भाषा-समिति का अर्थ हैः जब दूसरे से बोलना हो, तभी बोलना--पहली बात। जब दूसरे से न बोलना हो तो बोलना ही बंद कर देना, भीतर चुप हो जाना। दूसरी बात--दूसरे से भी बोलना हो, तो दूसरे के हित को ध्यान में रख कर बोलना, मुझे बोलना है, इसलिए मत बोलना। दूसरा फंस गया है, सुनेगा ही--इसलिए मत बोलना। तीसरी बात--जो मैं बोल रहा हूं वह सत्य ही है, ऐसा पक्का हो तो ही बोलना, अन्यथा मत बोलना। क्योंकि जो बोला जा रहा है, वह दूसरे में प्रवेश कर रहा है और दूसरे के जीवन को प्रभावित करेगा--अनंत जन्मों तक प्रभावित करेगा। इसलिए खतरनाक बात है। दूसरे के जीवन को गलत मार्ग दे देना, उसे भटका देना पाप है।
इसलिए महावीर कहते हैंः जो पूर्णनिश्चय से स्वयं का अनुभव हो, वही बोलना। दूसरे के हित में हो तो ही बोलना। क्योंकि पूर्ण अनुभव भी हो आपको

सत्य का, और दूसरे को उसकी जरूरत ही न हो, अभी वह घड़ी न आई हो जब वह सत्य को सुन सके, अभी वह समय न आया हो जब वह सत्य को समझ सके, अभी उसके ऊपर यह बोझ हो जाए और उसके जीवन को बोझिल कर दे--तो मत बोलना। और उतने शब्दों में बोलना, जिसमें एक भी शब्द ज्यादा न हो--टेलिग्राफिक बोलना। जो काम पांच शब्दों में हो सके वह पांच में ही करना, पचास में मत करना।
अगर भाषा पर कोई व्यक्ति इतना होश साध ले, तो ध्यान अपने आप घटित होना शुरू हो जाए। भाषा की विक्षिप्तता ध्यान में बाधा है। और अगर आप भाषा से पीछे हट सकें तो आप बच्चे की तरह सरल हो जाएंगे। जैसे आप जन्मे थे--बिना भाषा के, बिना शब्दों के थे लेकिन कोई भी आवरण न था विचार का--वैसे ही आप फिर हल्के, ताजे, शुद्ध और नये हो जाएंगे।
ध्यानी पुनः बचपन को उपलब्ध हो जाता है, उसी निर्दोषता को। तीसरी समिति है--"एषणा।"
महावीर कहते हैं, जब तक शरीर है तब तक शरीर को सम्हालने की जरूरत होगी--सम्हालने की! सजाने की जरूरत नहीं है! लेकिन सम्हालने की जरूरत होगी। भोजन चाहिए, देना पड़ेगा; पानी चाहिए, देना पड़ेगा। वस्त्र चाहिए, देने पड़ सकते हैं। कहीं छाया की जरूरत होगी।
तो महावीर एषणा-समिति में कहते हैं कि जीवन को चलाने के लिए जो अत्यंत जरूरी हो उसका होशपूर्वक विचार करके, अत्यंत होश से उतना ही स्वीकार करना।
एषणा को, वासना को सीमित कर लेना अत्यंत आखिरी तल पर। अगर एक बार भोजन
से जीवन पर्याप्त चल जाता हो, तो दो बार का भोजन व्यर्थ होगा, वासना हो जाएगी। अगर चार घंटे सोने से नींद पूरी हो जाती हो, शरीर ताजा हो जाता हो, जीवन चल जाता हो तो आठ घंटे की नींद भोग होगी; रोग पैदा करेगी। जितने से चल जाता हो, जीवन!
इस फर्क को समझ लें, हम जीवन को चलाने के लिए नहीं जीते, जीवन को चलाने
के लिए नहीं भोगते--बल्कि भोगने के लिए ही जीते हैं। कितना भोग लें, कितना ज्यादा भोग लें उसके लिए ही जीते हैं। जीवन का जैसे लक्ष्य ही एक है कि इंद्रियों को कितना भर लें।
महावीर कहते हैं, ऐसा व्यक्ति अपने ही हाथों अपनी ही वासनाओं में डूब
कर नष्ट हो जाता है, अपनी ही दौड़-धूप में नष्ट हो जाता है। ऐसा नहीं कि उसे कोई सुख भी मिल पाता हो, कोई सुख नहीं मिल पाता। स्वस्थ भी नहीं हो पाता, सुख होना तो बहुत दूर है। जितना इन वासनाओं की दौड़ बढ़ती है, उतना टूटता जाता है, उतना बोझ से भरता जाता है।
यह बड़े मजे की बात है कि गरीब आदमी को तो शायद भोजन में रस भी आता हो; अमीर आदमी को भोजन में कुछ रस नहीं आता, सिर्फ और नई बीमारियों के दर्शन होते हैं। चिकित्सक कहते हैं कि दुनिया में भूख से कम लोग मरते हैं, भोजन से ज्यादा लोग मरते हैं। पचास प्रतिशत बीमारी तो ज्यादा भोजन से ही पैदा होती है। जितना आप खाते हैं, उस से आधे से आपका पेट भरता है, आधे से आपके डाक्टर का पेट भरता है। इससे कोई सुख तो उपलब्ध नहीं होता, स्वास्थ्य भी खो जाता है।
मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन एक गांव की सबसे गरीब गली में दज्रू का काम करता था। इतना कमा पाता था मुश्किल से कि रोटी-रोजी का काम चल जाए, बच्चे पल जाएं। मगर एक व्यसन था उसे कि हर रविवार को एक रुपया जरूर सात दिन में बचा लेता था लाटरी का टिकट खरीदने के लिए। ऐसा बारह साल तक करता रहा, न कभी लाटरी मिली, न कभी उसने सोचा कि मिलेगी। बस, यह एक आदत हो गई थी कि हर रविवार को जाकर लाटरी की एक टिकट खरीद लेनी है। लेकिन एक रात आठ-नौ बजे, जब वह अपने काम में व्यस्त था, काट रहा था कपड़े कि दरवाजे पर एक कार आकर रुकी। उस गली में तो कार कभी आती भी नहीं थी; बड़ी गाड़ी थी। कोई उतरा दो बड़े सम्मानित व्यक्तियों ने दरवाजे पर दस्तक दी। नसरुद्दीन ने दरवाजा खोला; उन्होंने पीठ ठोकी नसरुद्दीन की और कहा कि "तुम सौभाग्यशाली हो, लाटरी मिल गई, दस लाख रुपये की!"
नसरुद्दीन तो होश ही खो बैठा! कैंची वहीं फेंकी, कपड़ों को लात मारी! बाहर निकला, दरवाजे पर ताला लगाकर चाबी कुएं में फेंकी! सालभर उस गांव में

ऐसी कोई वेश्या न थी जो नसरुद्दीन के भवन में न आई हो; ऐसी कोई शराब न थी जो उसने न पी हो; ऐसा कोई दुष्कर्म न था जो उसने न किया हो। सालभर में दस लाख रुपये उसने बर्बाद कर दिए। और साथ ही, जिसका उसे कभी ख्याल ही नहीं था, जो जिंदगी से उसके साथ था स्वास्थ्य--वह भी बर्बाद कर दिया। क्योंकि रात सोने का मौका ही न मिले--रात भर नाच-गान, शराब। साल भर बाद जब पैसा हाथ में न रहा, तब उसे ख्याल आया कि मैं भी कैसे नरक में जी रहा था।
वापस लौटा; कुएं में उतर कर अपनी चाबी खोजी। दरवाजा खोला; दुकान फिर शुरू कर दी। लेकिन पुरानी आदतवश वह रविवार को एक रुपये की टिकट खरीदता रहा। दो साल बाद फिर कार आकर रुकी; कोई दरवाजे पर उतरा--वही लोग। उन्होंने आकर फिर पीठ ठोकी और कहाः इतिहास में ऐसा कभी नहीं हुआ, दुबारा तुझे लाटरी का पुरस्कार मिल गया, दस लाख रुपये का! नसरुद्दीन ने माथा पीट लिया। उसने कहाः माई गॉड हेव आई टु गो दैट हैल--थ्रो दैट, आल दैट हैल अगेन; क्या उस नरक से फिर मुझे गुजरना पड़ेगा?
गुजरना पड़ा होगा, क्योंकि दस लाख हाथ में आ जाएं तो करोगे भी क्या? लेकिन उसे अनुभव है कि वह एक वर्ष नरक हो गया।
धन स्वर्ग तो नहीं लाता, नरक के सब द्वार खुले छोड़ देता है। और जिनमें जरा भी उत्सुकता है, वे नरक के द्वार में प्रविष्ट हो जाते हैं।
एषणा का अर्थ हैः लस्ट फॉर लाइफ, जीवन की एषणा। और जीवन की एषणा वासना
बन जाती है।
महावीर कहते हैं कि जिन्हें परम जीवन जानना है, उन्हें अपनी ऊर्जा को खींच लेना होगा व्यर्थ की वासनाओं से। मिनिमम, जो न्यूनतम जीवन के लिए जरूरी है--उतना ही। उतना ही, जितने जीवन से साधना हो सके; उतना ही, जितना जीवन ध्यान बन सके। उतना ही, जितने से जीवन की ऊर्जा प्रवाहित रह सके और मोक्ष की तरफ बह सके।
महावीर यह नहीं कहते कि जीवन की धारा को तोड़ देना, लेकिन शुद्धतम कर लेना। अत्यंत अनिवार्य पर ले आना ही त्याग है। एषणा का अर्थ हुआ--उतना ही मांगना, उतना ही लेना, उतना ही साथ रखना जिससे रत्तीभर ज्यादा जरूरी न हो। संग्रह मत करना।
जीसस ने कहा है, अपने शिष्यों से--देखो पक्षियों की तरफ, वे कोई संग्रह नहीं करते; देखो लिली के फूलों की तरफ, उन्हें कल की कोई चिंता नहीं है। जिस दिन तुम भी पक्षियों की तरह संग्रह नहीं करोगे और फूलों की तरह कल की चिंता से मुक्त हो जाओगे, उस दिन तुम्हारे और परमात्मा के राज्य में कोई भी फासला नहीं होगा।
कल की चिंता वासनाग्रस्त व्यक्ति को करनी ही पड़ेगी, क्योंकि वासना के लिए भविष्य चाहिए। ध्यान करना हो तो अभी हो सकता है, भोग करना हो तो कल ही हो सकता है। भोग के लिए विस्तार चाहिए; समय चाहिए; तैयारी चाहिए; साधन चाहिए। किसी दूसरे को खोजना पड़ेगा, भोग अकेले नहीं हो सकता। ध्यान अभी हो सकता है।
लेकिन बड़ी अदभुत दुनिया है। लोग कहते हैं--ध्यान कल करेंगे, भोग अभी
कर लें। भोग तो भविष्य में ही हो सकता है। जिन्होंने जीवन का परम सत्य जाना है, उनका कहना है कि समय की खोज ही वासना के कारण हुई है; वासना ही समय का फैलाव है। यह जो इतना भविष्य दिखलाई पड़ता है, यह हमारी वासना का फैलाव है; क्योंकि हमें इतने में पूरा होता नहीं दिखाई पड़ता। और कुछ लोग कहते हैं, और ठीक ही कहते हैं!
बुद्ध ने कहा है कि लोग अगले जन्म में भी इसलिए विश्वास करते हैं, क्योंकि उन्हें पक्का पता है कि वासनाएं इतनी ज्यादा हैं कि इसी जन्म में पूरी नहीं हो पाएंगी। अगला जम्न चाहिए। है या नहीं यह सवाल नहीं है, लेकिन अगला जन्म चाहिए।
जब कोई दो व्यक्ति प्रेम में पड़ जाते हैं तो अक्सर प्रेमी पुनर्जन्म में विश्वास करने लगते हैं। प्रेमी और पुनर्जन्म में विश्वास न करें, यह जरा मुश्किल है! मुसलमान प्रेमी भी, ईसाई प्रेमी भी, पुनर्जन्म में विश्वास करने लगते हैं। क्योंकि उसे लगता है कि प्रेम इतने से जीवन में पूरा कैसे हो सकता है; और जीवन चाहिए।

कुछ मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि पुनर्जन्म का सिद्धांत प्रेमियों
ने खोजा होगा; क्योंकि उनके लिए जीवन छोटा मालूम पड़ता है और वासना बड़ी मालूम पड़ती है। इतनी बड़ी वासना के लिए इतना छोटा जीवन तर्कहीन मालूम होता है, संगत नहीं मालूम होता। अगर दुनिया में कोई भी व्यवस्था है, तो जितनी वासना उतना ही जीवन चाहिए। इसलिए अनंत फैलाव है।
महावीर कहते हैंः तुम रुक जाना क्षण पर, कल की भी चिंता आज मत लेना, नहीं तो संसार निर्मित होता है। आज की चिंता आज काफी है। और आज की चिंता, चिंता नहीं होती।
तो महावीर तो, सुबह उठ कर अपने पेट को देखेंगे कि भूख लगी है तो ही गांव में भिक्षा के लिए जाएंगे। ऐसा भी नहीं है कि आदतवश रोज भिक्षा के लिए जाना है ग्यारह बजे, तो रोज भिक्षा के लिए चले जाएंगे। महावीर के बारह वर्षों के साधना काल में कहा जाता है कि कुल तीन सौ पैंसठ दिन उन्होंने भिक्षा मांगी। मतलब बारह साल में एक साल भिक्षा मांगी। कभी महीना भीख मांगने नहीं गए, कभी दो महीना नहीं गए, कभी दस दिन, कभी आठ दिन, कभी चार दिन। कोई नियम नहीं था, कोई कसम भी नहीं थी, कोई व्रत भी नहीं लिया था। यह समझने जैसी बात है--यह नहीं तय किया था कि दस दिन खाना नहीं खाऊंगा; क्योंकि वह दूसरी तरफ की ज्यादती है। महावीर प्रतीक्षा करेंगे, जब शरीर ही कहेगा कि अब भोजन चाहिए, तो वे उठेंगे। और उन्होंने एक और अदभुत सूत्र निकाला था, जो सिर्फ महावीर का है। जो दुनिया में किसी दूसरे सिद्ध पुरुष ने जिसकी बात नहीं कही। वह बहुत ही अनूठा है।
महावीर ने एक सूत्र निकाला था कि जब पेट में भूख लगती तो वे सोचते कि भूख लगती है, देखते, साक्षी बनते--भूख इतनी है कि भोजन की जरूरत है, तो भिक्षा मांगने जाते। लेकिन वे कहते; तय कर लेते वे सुबह ही कि ऐसी-ऐसी स्थिति में भिक्षा मिलेगी तो ही समझूंगा कि मेरे भाग्य में है, नहीं तो नहीं लूंगा।
जैसे, उस घर के सामने एक काली गाय खड़ी होगी; जो स्त्री भिक्षा देगी वह गर्भिणी होगी; कि एक बच्चे को अपनी गोदी में लिए होगी; कि दो आदमी दरवाजे पर लड़ रहे होंगे। कुछ तय कर लेते सुबह और फिर भिक्षा मांगने निकलते। अगर उस दिन उस जैसी कुछ स्थिति बन जाती, बड़ी संयोग की बात है--बन जाती तो भिक्षा ले लेते, नहीं बनती तो वापस लौट आते, कहते कि मेरे भाग्य में नहीं है। शरीर को भूख लगी जरूर, लेकिन मेरी नियति में नहीं है, मेरे पिछले कर्मों का हिस्सा नहीं है। भूख मेरी नियति में है तो आज मैं भूखा रहूंगा।
आश्चर्य है कि बारह वर्ष में तीन सौ पैंसठ बार भी मिल गई भिक्षा। लेकिन महावीर निश्चिंत लौट आते कि जो भाग्य में नहीं है, वह नहीं; जो नियति में नहीं है, वह नहीं है। इसका मतलब यह हुआ कि मैं अब कर्ता नहीं रहा, अब मैं भीख मांगने नहीं जा रहा हूं। अगर यह पूरा अस्तित्व मुझे जिलाए रखना चाहता है आज, तो भिक्षा का इंतजाम जुटा देगा, मेरी शर्त पूरी कर देगा। नहीं शर्त पूरी करता है तो इसका मतलब हुआ कि अस्तित्व को आज मुझे भोजन देने की कोई जरूरत नहीं है।
और बड़े आश्चर्य की बात है कि महावीर रुग्ण नहीं हुए; महावीर दीन-हीन नहीं हो गए इन बारह वर्षों में; सूख नहीं गए। इतना संतोषी व्यक्ति किसी और ही दिशा से भोजन को पाना शुरू कर देता है। इतने संतुष्ट व्यक्ति को, जिसने नियति पर सब छोड़ दिया--भोजन भी, जैसे पूरा अस्तित्व अपने हाथों में सम्हाल लेता है। और अगर अस्तित्व चांद-तारों को चला सकता है, फूलों को खिला सकता है, वृक्षों को बड़ा कर सकता है, नदियों को बहा सकता है, अगर इतना बड़ा आयोजन अस्तित्व करता है, तो महावीर के छोटे से पेट और शरीर की चिंता नहीं कर सकता, ऐसा सोचने का कोई कारण नहीं है।
तो महावीर कहते हैं कि अगर अस्तित्व चलाना चाहता है तो ही मैं चलने को हूं, मेरी कोई वासना चलने की नहीं है।
आप चलने की वासना से जब तक जीते हैं तब तक संसार को निर्मित करते हैं।
जिस दिन आप ठहर जाते हैं; संसार की धारा जहां ले जाती है वहां जाते हैं, उस दिन आप मुक्त होने लगते हैं।

तो महावीर ने "एषणा"ः भोजन, वस्त्र, सुरक्षा सब को सीमित कर देना है अंतिम बिंदु पर--कि उसके पार मृत्यु है, उसके इस पार जीवन है--ठीक मध्य में।
चौथा--"आदान-निक्षेप।" लोग जो दें, उसमें भी सीमा रखनी, और होश रखना। संन्यासी को अक्सर लोग देने को उत्सुक हो जाते हैं। जिसके पास कुछ नहीं है, जिसने सब छोड़ा, एक अर्थ में सभी लोग उसको देने के लिए आतुर हो जाते हैं। तो महावीर ने कहा, आदान-निक्षेपः लोग दें सिर्फ इसलिए कि किसी ने दिया, मत ले लेना; सिर्फ इसलिए कि मिल रहा था, क्या करें--हमने तो कुछ मांगा न था, हमने कुछ कहा न था बिना कहे मिला, बिना मांगे मिला! तो भी महावीर कहते हैं कि तुम्हारी जरूरत हो तो ही लेना, अन्यथा धन्यवाद देकर आगे बढ़ जाना--मत लेना।
और पांचवां है--"उच्चार" या "उत्सर्ग" निक्षेप। यह बहुत बहुमूल्य है। महावीर ने कहा है कि मल-मूत्र, किसी को दुख हो, किसी को पीड़ा हो, दुर्गंध आए, किसी जीव का जीवन नष्ट हो--ऐसी जगह मल-मूत्र मत छोड़ना। ऐसी जगह खोजना साफ सुथरी, सीधी-सपाट, देख कर होशपूर्वक कि कोई कीड़ा-मकोड़ा, कोई जीव-जंतु आपके मल-मूत्र में दब कर तो नहीं मर जाएगा। ऐसी जगह खोजना कि किसी को आपके मल-मूत्र से कठिनाई तो न होगी; कोई देख कर पीड़ा तो अनुभव नहीं करेगा; कोई दुर्गंध से तो परेशान नहीं होगा।
यह तो इसका मोटा अर्थ है, जो जैन साधु पकड़े हुए हैं; इसका सूक्ष्म अर्थ बहुत गहरा है, जिस पर पकड़ खो गई है। मल-मूत्र ही केवल मल-मूत्र नहीं है, आप जो भी अपने बाहर छोड़ते हैं, वह सभी मल-मूत्र है। आपकी सभी इंद्रियों से जो व्यर्थ हो गया है, वह बाहर छूटता है। आपको पता नहीं कि आपकी आंख भी कचरा बाहर फेंकती है; आपके हाथ का स्पर्श भी कचरा बाहर फेंकता है; आपके कान, आपकी जीभ--सब कचरा बाहर फेंकते हैं। असल में जो भी आप भीतर लेते हैं, उस सब को किसी न किसी रूप में बाहर फेंकना पड़ता है।
जो भी बाहर से आया है, उसे बाहर फेंकना पड़ेगा। आपने भोजन किया, तो या
तो वह पच जाएगा, खून बन जाएगा, मल होकर निकल जाएगा, नहीं पचा तो वमन हो जाएगी। लेकिन जो भी बाहर से लिया है, वह बाहर जाएगा। जो भीतर का है वही भीतर रहेगा, बाकी तो सब बाहर जाएगा। आपने शास्त्र पढ़ लिया, अगर पच गया तो आपका जीवन बन जाएगा, अगर नहीं पचा तो आप किसी की खोपड़ी पर उसे मल-मूत्र की तरह छोड़ेंगे। आपने कुछ भी भोगा, अगर पच गया तो ठीक, नहीं पचा तो आपका भोग भी कचरे की तरह चारों तरफ दिखाई पड़ेगा।
आप पूरे समय अपने से रेडिएट कर रहे हैं विद्युत की तरंगें, जो आपके भीतर कचरा हो गई हैं। तो महावीर कहते हैं कि अपने कचरे को, अपने मल-मूत्र को--इसमें सभी कुछ सम्मिलित है, जो आपके भीतर गया और जो बाहर फेंकना पड़ेगा। सभी कुछ सम्मिलित हैः आपके शब्द, आपका शास्त्र, आपका ज्ञान; आपने आंखों से जो पीआ, कानों से जो सुना, नाक से जो गंध ली--वह सब बाहर फेंकी जाएगी। इससे दूसरे को कोई भी पीड़ा और कष्ट न हो, इससे दूसरे की हिंसा न हो।
इसको महावीर ने "उच्चार समिति" कहा हैः जो भी बाहर जाए, उससे किसी को पीड़ा न हो।
अब यह बड़े मजे की बात है, और कई दफा कितनी जटिल हो जाती है। जैन-साधु किसी को छुएगा नहीं। मगर वह इसलिए नहीं छू रहा है कि कहीं दूसरे को छूने से वह अपवित्र न हो जाए! महावीर का प्रयोजन बिल्कुल दूसरा है। दूसरों को मत छूना कि कहीं दूसरा तुम्हारी अपवित्रता से न भर जाए। मगर आदमी का अहंकार बड़ा कुशल है। उसमें से रास्ते निकाल लेता है। जैन साधु सम्हल कर चलता है, किसी को छू न ले। वह सोच रहा है कि वह अपवित्र न हो जाए कोई पापी को छू ले तो कोई अपवित्र न हो जाए।
नहीं, महावीर कहते हैं, दूसरे को छूते वक्त आपके हाथ से जो ऊर्जा जा रही है, शरीर से जो ऊर्जा जा रही है, वह दूसरे को दुख, कष्ट, हानि न पहुंचाए। ये हानियां कई तरह की हो सकती हैं।
जैन-साधु स्त्री को नहीं छुएगा, इस कारण कि कहीं स्त्री की वासना उसमें प्रवेश न कर जाए। यह मूढ़तापूर्ण बात है। साधु को तो कम से कम इस स्थिति में होना चाहिए कि दूसरे उसे प्रभावित न कर सकें। कारण बिल्कुल

दूसरा है। महावीर की नजर बिल्कुल दूसरी है। महावीर कहते हैं, स्त्री को मत छूना कि कहीं तुम्हारी वासना उसे सजग न कर दे, कहीं तुम्हारी वासना उसमें प्रविष्ट होकर उसे पीड़ा और हिंसा का कारण न बन जाए।
महावीर की पूरी चिंता एक है कि तुम्हारे कारण किसी को किसी तरह की हानि और दुख और पीड़ा का उपाय न हो--तुम अपने से जो भी छोड़ना हो, वह इस तरह छोड़ना।
यह अगर ठीक से पकड़ा जाए तो बहुमूल्य है, अगर क्षुद्रता से पकड़ा जाए तो इससे बड़ी मजाक की स्थिति पैदा हो जाती है, हास्यास्पद हो जाता है। जैन साधुओं का एक वर्ग है जो मुंह पर पट्टी बांधे हुए है। वह इसी उच्चार-समिति के कारण कि कहीं श्वास से कोई कीड़ा-मकोड़ा, कोई हवा का जीव-जंतु न मर जाए। बात तो ठीक है! बात तो ठीक है, लेकिन हास्यास्पद हो गई है। मजाक कर लिया, क्षुद्र पर ले आए चीजों को। तब तो हिलने-डुलने से भी कोई मर रहा है। श्वास लेने से भी कोई मर ही रहा है, एक श्वास में कोई एक लाख कीटाणु नष्ट हो जाते हैं, महावीर के हिसाब से नहीं, विज्ञान के हिसाब से। वह तो नष्ट हो ही रहे हैं। कागज की या कपड़े की पट्टी उनको रोक नहीं सकती, वे इतने सूक्ष्म हैं। वे इतने सूक्ष्म हैं कि आंखों से देखे नहीं जा सकते, सिर्फ खुर्दबीन से देखे जा सकते हैं। इसीलिए तो लाखों एक श्वास में नष्ट हो जाते हैं। वे तो नष्ट हो ही रहे हैं, लेकिन एक मजाक कर लिया। लेकिन मुंह पर पट्टी बांध कर आदमी समझ रहा है, सब ठीक हो गया, समिति पूरी हो गई। समिति को बहुत क्षुद्र जगह ले आए।
बुरा नहीं है, बांध लेने में कुछ हर्जा नहीं है। लेकिन बांध लेने को बड़ा गौरव समझ लेना नासमझी है। बांध लेना ठीक है, जितना कम हिंसा हो उतना ठीक है। लेकिन इसे साधना समझ लेना या सिद्धि समझ लेना; और समझ लेना कि कोई बहुत ऊंची बात हो गई; और जो नाक पर पट्टी नहीं बांधे हैं वे पापी हैं, नरक जाएंगे भ्रांति हो गई!
ये पांच समितियां हैं और तीन गुप्तियां है--मनोगुप्ति, वचनगुप्ति और कायगुप्ति।
गुप्ति का अर्थ हैः सिकोड़ना और गुप्त करना। "मनोगुप्ति" का अर्थ है, अपने मन के फैलाव को सिकोड़ना। आपका मन बड़ा फैला हुआ है। यह आकाश भी छोटा है, इससे भी ज्यादा फैला हुआ है। आप फैलाते रहते हैं मन को। बम्बई में रहते होंगे, लेकिन मन न्यूयार्क में घूमता रहता है; कि लंदन में घूमता रहता है कि कब यात्रा पर निकल जाएं। मन फैलता चला जाता है।
जापान की एक कंपनी उन्नीस सौ पचहत्तर के लिए चांद पर जाने के टिकट बेच रही है। काफी दाम हैं। लेकिन सभी लोगों को मिल नहीं रही, क्यू लग गया है। आदमी का मन! अभी उन्नीस सौ पचहत्तर को देर है। आप बचेंगे कि नहीं बचेंगे। और चांद पर कुछ है नहीं, कुछ है भी नहीं देखने योग्य। लेकिन, फिर भी चांद पर जाने का मन है।
मन फैलना चाहता है। मन जितना फैल जाए उतना रस लेता है। तो महावीर कहते हैं, मन को सिकोड़ना। उसे इतना सिकोड़ लेना कि वह सिर्फ तुम्हारे हृदय में रह जाए, कहीं भी उसका फैलाव न हो। किसी वासना में, किसी इच्छा में, किसी एषणा में उसको मत फैलाना। खींचते जाना और जिस दिन मन शुद्ध हृदय में ठहर जाता है, उस दिन अदभुत आनंद का जन्म होता है।
नरक है हमारे मन का फैलाव, और आप फैलाए चले जाते हैं। शेखचिल्ली की कहानी आपने पढ़ी होगी, जो फैलाए चला जाता है और बड़ी मुश्किल में पड़ जाता है। दूध बेचने जा रहा है। सिर पर दूध की मटकी रखे हुए है; और ख्याल आता है कि दूध अगर बिक गया तो चार आने मिलेंगे। और अगर ऐसा होता रहा तो आधे साल में एक भैंस अपनी खरीद लूंगा। अगर भैंस खरीद ली, उसके बच्चे होंगे। बढ़ता जाएगा धन, फिर शादी कर लूंगा। शादी हो जाएगी, बच्चे होंगे। छोटा बच्चा किलकारी मारेगा और गोदी में बैठेगा, दाढ़ी खींचेगा और कहेगा, "बाबा!"
गिर न जाए, उसे सम्हालने को बच्चे को, उसने हाथ नीचे किया वह जो सिर पर मटकी थी, वह नीचे गिर कर फूट गई! वे चार आने भी हाथ से गए!
मगर ये शेखचिल्ली की कहानी नहीं है, आदमी के मन की कहानी है। मन शेखचिल्ली है। आपका सबका मन हिसाब लगा रहा है, ऐसा हो जाएगा, फिर ऐसा हो

जाएगा, फिर ऐसा होता चला जाएगा। और डर यह है कि कहीं मटकी न फूट जाए। अक्सर फूट जाती है। अंत में जीवन के आदमी पाता है कि मटकी फूट गई! चार आने हाथ के भी खो गए!
महावीर कहते हैं, मन को सिकोड़ना। जितना फैला हुआ मन उतना दुख, यह सूत्र है। जितना सिकुड़ा हुआ मन, उतना सुख। मन अगर बिल्कुल शून्य पर आ जाए तो ध्यान हो जाता है। जब मन इतना सिकुड़ जाता है कि कुछ भी सिकोड़ने को नहीं बचता; बिल्कुल सेंटर पर, केंद्र पर आ गया; सब किरणें सिकुड़ कर आ गईं वापस; अपने ही घोसले में लौट आया मन--उसको महावीर कहते हैं, "मनोगुप्ति।" "वचनगुप्ति" शब्दों को भी मत फैलाना, क्योंकि शब्द जाल में डाल देते हैं। किसी से बोले कि उपद्रव शुरू हुआ, संबंध निर्मित हुआ। बोलने का अर्थ है दूसरे तक पहुंचे। बोलना एक सेतु है; दूसरे से संबंध निर्माण करना है। झंझट होगी। आपने अच्छी ही बात कही हो तो भी जरूरी नहीं कि दूसरा अच्छी ही तरह ले, दूसरा अपने ढंग से लेगा।
बोल कर उपद्रव बनता है। आप ख्याल करें अपनी जिंदगी में। आपने जितने उपद्रव, झगड़े-झांसे खड़े किए होंगे, वे सब बोल कर किए होंगे। काश, आप चुप रह जाते तो शायद जिंदगी और ढंग की होती। तो जब बोलना ऐसा लगे कि किसी के हित में नहीं है, तब रोक लेना। लेकिन हम चाहते हैं, बोले चले जाते हैं, कुछ भी कहे चले जाते हैं।
मैंने सुना, मुल्ला नसरुद्दीन एक ट्रेन में चल रहा है। पास में ही एक आदमी बैठा हुआ शांति से अपना अखबार पढ़ रहा है। लेकिन मुल्ला बेचैन है कि अखबार अलग करे तो कुछ बातचीत हो।
इसलिए ट्रेन में लोग जल्दी बातचीत शुरू कर देते हैं। और ऐसी बातें कह देते हैं अजनबियों से, जो उन्होंने अपने घर में अपनी पत्नी या अपने पति से भी न कही होतीं। अजनबियों से कनफेशन शुरू कर देते हैं, क्योंकि बोलने की बेचैनी है। गाड़ी में बैठे-बैठे बेचैनी होती है।
नसरुद्दीन ने पूछा कि आप, आप मुसलमान हैं क्या? मुसलमान मालूम होते हैं। उस आदमी ने सिर्फ अखबार से नजर उठा कर कहा कि नहीं, मैं मुसलमान नहीं हूं। वह थोड़ा डरा भी कि यह आदमी मुसलमान दिखता है--मुसलमान हूं, ऐसा कहूं भी, या मुसलमान होता तो झंझट होती, ये फिर आगे बढ़ाता बात को। मामला खत्म हो गया। वह आदमी मुसलमान है भी नहीं। वह फिर अपना अखबार पढ़ने लगा। लेकिन नसरुद्दीन ने कहा कि बिल्कुल निश्चित, निश्चित ही मुसलमान नहीं हो?
उस आदमी ने कहा कि कह तो दिया आपसे, इसमें निश्चय की क्या बात है? मुसलमान नहीं हूं। नसरुद्दीन फिर थोड़ी देर में बोला, एब्सोल्यूटली? बिल्कुल पक्का? उस आदमी ने झंझट छुड़ाने के लिए, कि अखबार न पढ़ने देगा यह आदमी, कहा कि हां भाई हूं, गलती हो गई जो कह दिया कि नहीं हूं। तो नसरुद्दीन ने कहाः फनी, यू डोंट लुक लाइक ए मोहम्डन--मुसलमान जैसे दिखाई नहीं पड़ते। इसी ने उसको "मुसलमान हूं"--ऐसा कहलवा दिया और अब कह रहा है कि आप मुसलमान जैसे दिखाई नहीं पड़ते!
महावीर कहते हैं कि वचन व्यर्थ बाहर न जाएं। और सार्थक कितने वचन हैं? अगर आप चौबीस घंटे देखेंगे, हिसाब रखेंगे तो आप पाएंगे कि मुश्किल से दस-पांच वाक्य से काम चल जाता है; गूंगे रहने से भी काम चल जाता है। लेकिन बोले जा रहे हैं; गूंगे तक बोले जाते हैं। गूंगों तक को भी चैन नहीं है। मैंने सुना है कि एक फैक्टरी में गूंगी स्त्रियों को काम देने का मालिक ने इंतजाम किया। और एक दस-बारह स्त्रियों का मंडल, गूंगी स्त्रियों का काम ऐसा था कि हाथ से ही करने का था। लेकिन गूंगी स्त्रियां इशारे से एक दूसरे से बातचीत करती जाती हैं। फिर एक पुरुष को भी, जो गूंगा था, उसी डिपार्टमेंट में भेज दिया कि ठीक रहेगा--वहां इतने गूंगे हैं, तुम भी उनके साथ रहो। उसने तीन दिन बाद आकर कागज पर लिख कर कहा कि मेरा इस्तीफा स्वीकार कर लें। मालिक ने पूछाः क्या बात है? --वे औरतें बहुत बातें करती हैं। मेरा सिर खा गई हैं। मालिक ने कहाः लेकिन वे तो सब गूंगी हैं! तो उस गूंगे ने लिखा, लेकिन गूंगी होने से क्या होता है? वे सब इशारा कर रही हैं एक-दूसरे को, मैं अकेला वहां फंस गया हूं।

औरतें गूंगी हों तो भी क्या फर्क पड़ता है, औरतें ही हैं। उसने कहाः वहां तो मेरी जान ही निकल जाएगी। और मैं तो समझता हूं उनके इशारे का मतलब क्या है, क्योंकि मैं भी गूंगा हूं।
बड़ी बातचीत हो रही है। गूंगे तक बातचीत में लगे हैं।
तो हम जो बोलने वाले हैं, महावीर कहते हैं, उनको धीरे-धीरे गूंगे होने
की कला सीखनी चाहिए।
वचन को रोक लेना है, "वचनगुप्ति।" सम्हालना है भीतर; जल्दी नहीं करनी है। व्यर्थ को तो रोक ही लेना है--सार्थक को भी भीतर रोकना है, ताकि वह बीज की तरह भूमि में रुका रह जाए और अकुंरित हो सके। पर हम सार्थक--व्यर्थ सब फेंके जा रहे हैं, उलीचे जा रहे हैं।
और तीसरा महावीर कहते हैं, "कायगुप्ति।" शरीर को भी सिकोड़ना हैः यह एक प्रक्रिया है महावीर की, खास। चलते, उठते, बैठते--ऐसे चलना है जैसे शरीर सिकुड़ता जा रहा है, छोटा होता जा रहा है।
आप जान कर हैरान होंगे कि शरीर का विस्तार आपकी वासना का विस्तार है; शरीर का विस्तार आपकी कल्पना पर निर्भर है। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि जिन मुल्कों में लोग लंबे होते हैं, उनमें वे लंबे होते चले जाते हैं। उसका कारण वंशानुगत तो है ही, लेकिन आस-पास लंबे लोगों को देख कर बच्चे को लंबे होने की कल्पना प्रगाढ़ होती है। जहां ठिगने लोग होते हैं वहां ठिगने होने की कल्पना प्रगाढ़ होती है।
बर्नार्ड शॉ मरने के पहले--कुछ वर्ष पहले लंदन के आस-पास के सब मरघटों में गया, यह देखने कि किस गांव में सबसे ज्यादा लम्बी उम्र तक लोग जीते हैं। आखिर उसने एक गांव खोज लिया, जिसमें एक कब्र पर पत्थर लगा हुआ था कि यह आदमी सत्रहवी सदी में जन्मा, और अठारहवीं सदी में, कम उम्र में ही, सौ वर्ष बाद मर गया। बर्नार्ड शॉ ने उसी गांव में रहने का तय कर लिया। उसके मित्रों ने पूछाः तुम्हारा मतलब क्या है? उसने कहाः जिस गांव में लोग सोचते हैं कि सौ वर्ष में मरना कम उम्र में मरना है, उस गांव में ज्यादा जीने का उपाय है, कल्पना को फैलाव है।
अगर पुराने ऋषि बच्चों को आशीर्वाद देते थे कि शतायु हो! सौ वर्ष तक जीओ--तो उनके आशीर्वाद से कोई सौ वर्ष तक नहीं जी सकता। लेकिन जहां सब बड़े- बूढ़े कह रहे हों कि सौ वर्ष तक जीओ, वहां बच्चे की कल्पना सौ वर्ष तक जीने की प्रगाढ़ हो जाती है। वह कल्पना शरीर को खींचती है।
कई बार ज्योतिषी आदमियों को मार देते हैं। वे कह देते हैं कि बस, अब तो अंतिम समय आ गया है, दो ही साल में आपका मरना है। ज्योतिषी कह रहा है, ये इसलिए नहीं कि यह आदमी दो साल में मरने ही वाला था--बल्कि यह आदमी मर जाएगा दो साल में, क्योंकि ज्योतिषी ने कहा है। अब यह दो साल सिर्फ सोचता ही रहेगा कि मरे, अब दिन करीब आ रहे हैं। वह सिकुड़ने लगेगा, भीतर से मरने लगेगा; मरने की तैयारी जुटाने लगेगा, यह मर भी जाएगा।
भविष्यवाणियां मृत्यु की सफल हो जाती हैं, क्योंकि भविष्यवाणियां कल्पना को गति दे देती हैं। आपका मन बड़ा शक्तिशाली है। तो महावीर कहते हैं, "कायगुप्ति"--शरीर को सिकोड़ना और शरीर को ऐसा अनुभव करना कि छोटा होता जा रहा है, छोटा होता जा रहा है।
दो प्रयोग हैं। एक प्रयोग ब्रह्मवादियों ने, शंकर ने, उपनिषद के ऋषियों ने किया है। वे कहते हैं, शरीर को फैलाना फैलाना फैलाना--इतना फैलाने की कल्पना करना कि सारा ब्रह्मांड शरीर में समा जाए। जिस दिन ऐसा अनुभव होने लगे कि चांद तारे मेरे भीतर चलने लगे, सूर्य मेरे भीतर उगने लगा, वृक्ष मेरे भीतर खिलने लगे, सारा जगत मेरे भीतर चल रहा है--उस दिन ब्रह्म का अनुभव हो जाएगा।
यह भी सच है। अगर इतना फैलाव हो जाए कि मैं ही बचूं और सब मेरे भीतर समा जाए, तो भी व्यक्ति सत्य को उपलब्ध हो जाता है; क्योंकि क्षुद्र अहंकार से मुक्त हो जाता है।
दूसरा उपाय हैः मैं को इतना सिकोड़ते जाना; इतना सिकोड़ते जाना शरीर को सम्हाल कर छोटा करते जाना छोटा करते जाना--शरीर इतना छोटा हो जाए कि मैं भी

उसके भीतर न रह सकूं; इतना छोटा हो जाए, इतना एटामिक हो जाए कि मैं खुद भी उसके भीतर न रह सकूं; जगह ही न बचे और मैं उसके बाहर छिटक जाऊं।
महावीर कायगुप्ति का भरोसा करते हैं। ये दोनों प्रयोग एक से हैं विपरीत दिशाओं से। महावीर कहते हैंः छोटा छोटा शरीर को छोटा मानते जाना। एक ऐसी जगह आ जाती है, जहां शरीर इतना छोटा हो जाता है कि आपको बेचैनी लगेगी कि इसके भीतर मैं हो कैसे सकता हूं? अगर यह बेचैनी बढ़ गई और शरीर को आप छोटा ही करते गए, एटामिक कर लिया, अणु की तरह हो गया--आप छिटक कर बाहर हो जाएंगे; वही स्थिति उपलब्ध हो जाएगी जो विराट हो जाने पर होती है।
या तो शून्य की तरह छोटे हो जाएं, या ब्रह्म की तरह विराट हो जाएं। भभमहावीर ने "पांच समितियां चरित्र, दया आदि प्रवृत्तियों के काम में आती हैं," ऐसा कहा, "और तीन गुप्तियां सब प्रकार के अशुभ व्यापारों से निवृत्त होने में सहायक होती हैं।"
"जो विद्वान मुनि उक्त आठ प्रवचन-माताओं का अच्छी तरह आचरण करता है,
वह शीघ्र ही अखिल संसार से सदा के लिए मुक्त हो जाता है।"
मुक्ति के सूत्र हैंः जहां-जहां हम बंधे हैं, वहां-वहां से एक-एकशृंखला को तोड़ देने की प्रक्रियाएं हैं। इन्हें थोड़ा प्रयोग करें और देखें क्योंकि मेरे कहने से समझ में नहीं आएगा। कोई भी एक छोटा प्रयोग इन आठ में से करके देखें, अनूठा अनुभव होगा। इतना ही सोचने लगें कि शरीर छोटा होता जा रहा है। चलते, उठते, बैठते--शरीर छोटा होता जा रहा है; सोते शरीर छोटा होता जा रहा है। आप चकित हो जाएंगे कि शरीर के इस छोटे होने की धारणा के पैदा होते ही आपके शरीर के बहुत से व्यापार बदल जाएंगे; क्योंकि वे आपके शरीर की जो पुरानी धारणा थी, उसके साथ जुड़े थे। धारणा के गिरते ही वे व्यापार गिर जाएंगे।
अगर आप एक भी प्रयोग इन आठ में से करने में थोड़ा सा स्वाद ले लें, तो बाकी सात भी आपको करने जैसे मालूम होने लगेंगे। कोई भी एक प्रयोग इक्कीस दिन के लिए चुन लें। शरीर को छोटा करने का प्रयोग बड़ा सरल है। ख्याल करते जाएं और आप पाएंगे कि शरीर की धारणा बदली, आप छोटे होने लगे, इतने छोटे होने लगे कि आप हैरान हो जाएंगे कि आपका व्यवहार लोगों से बदलने लगा।
अब एक आदमी आपको कहता है कि तुम क्या हो, कुछ भी नहीं--आपको बिल्कुल ठीक जंचेगा। यही बात अगर इसने पहले कही होती कि तुम क्या हो, कुछ भी नहीं; क्षुद्र, ना-कुछ--आप अकड़ कर लड़ने खड़े हो गए होते। अगर आपका शरीर सिकुड़ रहा है तो आप कहेंगे, बिल्कुल ठीक कह रहे हो, ठीक ही कह रहे हो कि मैं बिल्कुल क्षुद्र हूं। और अगर आप ऐसा कह सकें कि मैं बिल्कुल क्षुद्र हूं, तो शायद वह आदमी भी धारणा बदलने को मजबूर हो जाए; क्योंकि जो क्षुद्र है वह कभी स्वीकार नहीं करता कि क्षुद्र है; जो छोटा है वह कभी स्वीकार नहीं करता कि मैं छोटा हूं। जो अज्ञानी है, वह राजी नहीं होता कि मैं अज्ञानी हूं; वह कहता है, मैं ज्ञानी हूं। हम सदा विपरीत की घोषणा करते हैं।
आप छोटे होते जाएं, सिकुड़ते जाएं शरीर के साथ-साथ, या मन को छोटा करें, सिकोड़ते जाएं, मत फैलने दें--और आप पाएंगे कि धीरे-धीरे दुनिया दूसरी होने लगी; आपका आकार बदलने लगा और दुनिया की आकृति बदलने लगी।
दुनिया तो यही की यही रहती है--अमुक्त को, मुक्त को--लेकिन मुक्त बदल जाता है, इसलिए संसार बदल जाता है। संसार ही मोक्ष हो जाता है, अगर आप भीतर मुक्त हैं। जैसे आप हैं, अगर भूल-चूक से कहीं मोक्ष में प्रवेश कर जाएं, कोई रिश्वत दे दें कहीं, किसी गुरु-कृपा से कहीं मोक्ष में आप घुस जाएं, तो आपको वहां संसार के सिवाय कुछ भी दिखाई नहीं पड़ेगा। इसलिए मोक्ष में रिश्वत देकर जाने का कोई उपाय नहीं है। आप चले भी जाएं तो आपको वहां संसार ही दिखाई पड़ेगा। आप वहां भी संसार निर्मित कर लेंगे। आप संसार हैं; आप मोक्ष हैं।

पांच मिनिट रुकें। कीर्तन करें और फिर जाएं।

महावीर-वाणी, भाग 2
सोलहवां प्रवचन

कौन है पूज्य? (पूज्य-सूत्र)

आयारमट्ठा विणयं पउंजे, सुस्सूसमाणो परिगिज्झ वक्कं।
जहोवइट्ठं अभिकंखमाणो, गुरुं तु नासाययई स पुज्जो।।
अन्नायउंछं चरई विसुद्धं, जवणट्ठया समुयाणं च निच्चं।
अलद्धुयं नो परिदेवएज्जा, लद्धुं न विकत्थई स पुज्जो।।
संथारसेज्जासणभत्तपाणे अपिच्छाया अइलाभे वि सन्ते।
जो एवमप्पाणभितोसएज्जा, संतोसपाहन्नरए स पुज्जो।।
गुणेहि साहू अगुणेहि साहू, गिण्हाहि साहू गुण मुंच साहू।
वियाणिया अप्पगमप्पएणं,
जो रागदोसेहिं समो स पूज्जो।।

जो आचार-प्राप्ति के लिए विनय का प्रयोग करता है, जो भक्तिपूर्वक गुरु-वचनों को सुनता है एवं स्वीकृत कर वचनानुसार कार्य पूरा करता है, जो गुरु की कभी अवज्ञा नहीं करता, वही पूज्य है।
जो केवल संयम-यात्रा के निर्वाह के लिए अपरिचित भाव से दोष-रहित उन्छ-वृत्ति से भिक्षा के लिए भ्रमण करता है, जो आहार आदि न मिलने पर भी खिन्न नहीं होता और मिल जाने पर प्रसन्न नहीं होता है, वही पूज्य है।
जो संस्तारक, शय्या, आसन और भोजन-पान आदि का अधिक लाभ होने पर भी अपनी आवश्यकता के अनुसार थोड़ा ग्रहण करता है, संतोष की प्रधानता में रत होकर अपने आपको सदा संतुष्ट बनाए रखता है, वही पूज्य है।
गुणों से ही मनुष्य साधु होता है और अगुणों से असाधु। अतः हे मुमुक्षु! सदगुणों को ग्रहण कर और दुर्गुणों को छोड़। जो साधक अपनी आत्मा द्वारा अपनी आत्मा के वास्तविक स्वरूप को पहचान कर राग और द्वेष दोनों में समभाव रखता है, वही पूज्य है।

मैंने सुना है, एक अंधेरी रात में भयंकर आंधी-तूफान उठा, साथ में भूकंप के धक्के भी आए। मुल्ला नसरुद्दीन का पूरा मकान गिर गया। कुछ बचा भी नहीं, सब नष्ट हो गया। नसरुद्दीन, लेकिन बिना चोट खाए बाहर भाग कर आ गया। घबड़ा तो बहुत गया, हाथ-पैर उसके कांपते थे, लेकिन हाथ में एक शराब की बोतल बचाए हुए बाहर आ गया। जो बचाने योग्य उसे लगा, उस गिरते हुए, टूटते घर में, वह शराब की बोतल थी!
बाहर आकर बैठ गया; आंख से आंसू बहने लगे। सब जीवन की कमाई नष्ट हो गई। पड़ोस के लोग आ गए। पड़ोस के ही एक चिकित्सक ने आकर नसरुद्दीन को कहा कि थोड़ी सी यह शराब ले लो तो थोड़ी स्नायुओं को ताकत मिले। तुम बहुत घबड़ा गए हो, थोड़े आश्वस्त हो सकते हो।
नसरुद्दीन ने कहाः नथिंग डूइंग, दैट आई एम सेविंग फॉर सम इमरजेंसी! यह
जो शराब की बोलत है, किसी दुर्घटना के लिए है; इसे किसी आपत्कालीन, संकटकालीन स्थिति के लिए बचा रहा हूं!
जीवन में आप भी जीवन की निधि को किसलिए बचा रहे हैं? जीवन की ऊर्जा को किसलिए बचा रहे हैं? कल पर टाल रहे हैं, परसों पर टाल रहे हैं, और दुर्घटना अभी घट रही है। प्रतिपल जीवन मृत्यु में फंसा है, और जिसे आप जीवन कहते हैं, वह सिवाय मरने के और कुछ भी नहीं है।
नीत्से ने कहा है कि जीवन अपना अतिक्रमण कर सके, सेल्फ ट्रांसेंडेंस,
तो ही जीवन है। जो जीवन अपने ही भीतर घूम-घूम कर नष्ट हो जाए, वह जीवन नहीं है। जब मनुष्य स्वयं को पार करता है, जिन क्षणों में पार होता है, उन्हीं क्षणों में जीवन की वास्तविक परम अनुभूति उपलब्ध होती है। जब आप अपने से ऊपर उठते हैं, तभी आप परमात्मा के निकट सरकते हैं। जितना ही कोई व्यक्ति स्वयं के पार जाने लगता है, उतना ही प्रभु के निकट पहुंचने लगता है। लेकिन आप जीवन की ऊर्जा का क्या उपयोग कर रहे हैं? किस संकट के लिए बचा रहे हैं? संकट अभी है--इसी क्षण। और जिसे आप जीवन कहते हैं, बड़ी हैरानी की बात है,

उसे कैसे जीवन कह पाते हैं--सिवाय दुख, और पीड़ा और संताप के वहां कुछ भी नहीं है--न कोई आनंद का संगीत है; न कोई अस्तित्व की सुगंध है; न कोई शांति का अनुभव है--न किसी समाधि के फूल खिलते हैं, और न किसी परमात्मा का साक्षात्कार होता है। क्षुद्र में व्यतीत होता जीवन... उसे जीवन कहना ही शायद उचित नहीं।
प्रथम महायुद्ध के पहले जब एडोल्फ हिटलर दुनिया की सारी ताकतों का मनोबल तोड़ने में लगा था, युद्ध के पहले उनका संकल्प तोड़ने में लगा था, तब इंग्लैंड का एक बड़ा राजनीतिज्ञ उससे मिलने गया--एक बड़ा कूटनीतिज्ञ। सातवीं मंजिल पर हिटलर अपने आफिस में बैठ कर उससे बात कर रहा था। और हिटलर ने उससे कहा कि ध्यान रखो, जाकर अपने मुल्क में कह देना कि जर्मनी से उलझने में लाभ नहीं है। मेरे पास ऐसे सैनिक हैं, जो मेरे इशारे पर जीवन को ऐसे फेंक दे सकते हैं, जैसे कोई हाथ से कचरे को फेंक दे।
तीन सैनिक द्वार पर खड़े थे। इतना कह कर एडोल्फ हिटलर ने पहले सैनिक से कहा कि खिड़की से कूद जा! वह पहला सैनिक दौड़ा। अंग्रेज कूटनीतिज्ञ तो समझ ही नहीं पाया, वह खिड़की से छलांग लगा गया। उसने यह भी नहीं पूछा, क्यों? अंग्रेज राजनीतिज्ञ की छाती कांपने लगी। वह बहुत परेशान हो गया; उसे पसीना आ गया। और हिटलर ने कहाः शायद इतने से तुझे भरोसा न हो--दूसरे सैनिक को कहाः खिड़की से कूद जा! दूसरा सैनिक भी खिड़की से कूद गया! हिटलर ने कहा कि शायद अभी भी भरोसा नहीं आया। और तीसरे सैनिक से कहाः तू भी खिड़की से कूद जा! तब तक अंग्रेज राजनीतिज्ञ ने हिम्मत जुटा ली। वह भागा खिड़की से कूदते सैनिक को बांह पकड़ कर रोका और कहाः पागल हो गए हो? जीवन को ऐसे खोने की क्या आतुरता है? उस सैनिक ने कहाः यू काल दिस लाइफ? छुड़ा कर वह खिड़की से कूद गया। इसे तुम जीवन कहते हो?
जिसे हम जीवन कहते हैं, वह भी जीवन नहीं है। लेकिन हम उसे ही जानते हैं, उसके अतिरिक्त जीवन का हमें कोई अनुभव नहीं है। अगर हमें थोड़ी सी भी प्रतीति हो जाए वास्तविक जीवन की, तो इस जीवन को हम भी वैसे ही छोड़ने को राजी हो जाएंगे जैसे एडोल्फ हिटलर का सैनिक उसके नीचे हिटलर की ज्यादतियों से परेशान होकर जीवन को छोड़ने को उत्सुक है, आतुर है। लेकिन हमें किसी और जीवन का अनुभव न हो तो बड़ी कठिनाई है। जो है, उसे ही हम सब कुछ मान कर जी लेते हैं। क्षुद्र सब कुछ मालूम होता रहता है, क्योंकि विराट का कोई स्वाद नहीं मिलता। और हमने इस ढंग की व्यवस्था कर ली है कि विराट का स्वाद मिल भी नहीं सकता। हमने कोई जगह भी नहीं छोड़ी कि विराट हम में उतर सके।
महावीर का यह सूत्र कहता है, कौन पूज्य है। पूज्य वही है जो विराट को उतरने की अपने में जगह दे। क्षुद्र वही है, अपूज्य वही है, जो सब तरफ से अपने को बंद कर ले और अपनी क्षुद्रता में ही डूब मरे, लेकिन हम तो पूजते भी उन्हीं को हैं, जो अपनी क्षुद्रता को ही जीवन का शिखर बना लेते हैं। हम पूजते ही उनको हैं, जो अपने अहंकार को गौरीशंकर बना लेते हैं। पूजते हैं हम राजनीतिज्ञों को; पूजते हैं हम शक्तिशालियों को; पूजते हैं हम अभिनेताओं को, हमारे मन में पूज्य की धारणा भी बड़ी अजीब है। जहां पूज्य जैसा कुछ भी नहीं, जहां विराट का कोई संस्पर्श नहीं हुआ है जीवन में, जहां अंधेरे हृदय में कोई प्रकाश की किरण नहीं उतरी है--वहां हमारी पूजा है। समझ लेना जरूरी है कि हम क्या--क्यों इस तरह के लोगों को पूजते हैं, जहां पूज्य कुछ भी नहीं है। शायद आप ख्याल भी न किए होंगे। आप वही पूजते हैं, जो आप होना चाहते हैं। पूज्य आपका भविष्य है। अगर आप अभिनेता को पूजते हैं, और उसके आस-पास भीड़ इकट्ठी हो जाती है पागलों की, तो उसका अर्थ है कि वे सब पागल हैं, जीवन का एक लक्ष्य मन में लिए हुए हैं कि वे भी अभिनेता हो सकते हैं, नहीं हो पाए, हो जाएं किसी दिन, उसी आशा से जी रहे हैं।
आप जिसे पूजते हैं, उससे खबर देते हैं कि आपके जीवन का आदर्श क्या है? अगर राजनीतिज्ञों के आस-पास भीड़ इकट्ठी होती है, तो उसका अर्थ है कि आप भी शक्ति, पद, यश को पूजते हैं। और जिसे आप पूजते हैं, वह आपकी महत्वाकांक्षा की खबर है। आप जहां दिखाई पड़ते हैं, वहां अकारण दिखाई नहीं पड़ते। जिन

चरणों में आपके सिर झुकते हैं, अकारण नहीं झुकते। आप उन्हीं चरणों में सिर झुकाते हैं, जो आपके भविष्य की प्रतिमा हैं, जो आप चाहते हैं कि हो जाएं। तो महावीर पूज्य-सूत्र में कुछ सूत्र दे रहे हैं कि "कौन पूज्य है?" मैंने सुना है कि एक इजरायली तेल-अबीव के एक बड़े अस्पताल में गया, उसका मस्तिष्क जीर्ण-जर्जर हो गया था, और उसने चिकित्सकों से कहा कि मैं चाहता हूं कि किसी और का मस्तिष्क ट्रांसप्लांट कर दिया जाए।
यह भविष्य की कथा है। जैसे आज खून के बैंक हैं, ऐसे मस्तिष्क के बैंक
भी भविष्य में हो जाएंगे।
उस इजरायली ने कहा कि मेरे चिकित्सक कहते हैं कि मेरा मस्तिष्क अब ज्यादा दिन काम नहीं दे सकता, इसे हटा दिया जाए, रिप्लेस कर दिया जाए। तो मैं पता लगाने आया हूं कि बैंक में कितने प्रकार के मस्तिष्क उपलब्ध हैं। तो चिकित्सक उसे ले गया। उसने एक पहला मस्तिष्क दिखलाया और कहाः "इसके पांच हजार रुपये होंगे। यह एक साठ वर्ष के गणितज्ञ का मस्तिष्क है और साठ वर्ष के बूढ़े आदमी का मस्तिष्क है, इसलिए दाम थोड़े कम हैं।" पर उस इजरायली ने कहा कि साठ वर्ष! मेरी उम्र से बहुत ज्यादा हो गया। इतना बूढ़ा मस्तिष्क नहीं, कुछ थोड़ा जवान तो दिखाया कि यह एक स्कूल शिक्षक का मस्तिष्क है, यह आदमी तीस साल में मर गया, तो उस इजरायली ने कहाः "स्कूल शिक्षक की हैसियत मुझसे बड़ी नीची है, जरा मेरे योग्य!" तो उसने एक धनपति का मस्तिष्क दिखाया कि इसकी कीमत पंद्रह हजार रुपये है। यह आदमी पचास साल में मरा।
और तभी इजरायली की नजर गई एक खास कांच के बर्तन में, जिस पर एक बल्ब जल रहा है। "इस बर्तन में जो मस्तिष्क रखा है, वह किसका है?" तो उस डाक्टर ने कहाः "वह जरा महंगी चीज है। उसके दाम हैं पांच लाख रुपये। क्या वह आपकी हैसियत में पड़ेगा?"
उस इजरायली ने कहा कि मैं इसके संबंध में ज्यादा जानना चाहूंगा। इतने दाम की क्या बात है? पांच लाख रुपये! तो उस डाक्टर ने कहा कि यह एक राजनीतिज्ञ का मस्तिष्क है, एक पोलिटीशियन का।
तो भी इजरायली ने कहा कि इतनी कीमत की क्या जरूरत है? तो उस डाक्टर ने कहाः अब आप नहीं मानते तो मैं बताए देता हूं, इट हैज बीन नेवर यूज्ड--इसका कभी उपयोग नहीं किया गया है!
राजनीतिज्ञ को मस्तिष्क का उपयोग करने की जरूरत भी नहीं है। मस्तिष्क जितना कम हो उतनी संभावना सफलता की ज्यादा है। लेकिन बुद्धिहीनता को हम आदर देते हैं, अगर बुद्धिहीनता अहंकार के शिखर पर चढ़ जाए। मूढ़ता आदृत है-- हम भी मूढ़ हैं इसलिए, और हम भी वही चाहते हैं इसलिए।
आप जिसे पूजते हैं, उस पर विचार कर लेना। आपकी पूजा आपका मनोविश्लेषण है। किसे आप पूजते हैं? कौन है आपका आदृत? तो आपकी जीवन-दिशा कहां जा रही है, उसका पता चलता है। अगर आप सफल हो जाएं तो आप वही हो जाएंगे। अगर असफल हो जाएं तो बात अलग है, लेकिन असफल भी आप उसी मार्ग पर होंगे।
अपने हृदय के कोने में इसकी जांच-पड़ताल कर लेनी जरूरी है कि कौन है मेरा पूज्य? और किस कारण मैं पूजता हूं? जो पूज्य है, उसका सवाल नहीं है, इससे आप अपने को समझने में समर्थ हो पाएंगे। यह आत्मविषण होगा। और अगर आप अपने को बदलते हैं तो आपकी पूजा का भाव भी बदलता जाएगा, पूजा के पात्र भी बदलते जाएंगे।
पीछे लौटें। आज जैसा अभिनेता पूज्य है, वैसा कभी संन्यासी पूज्य था, क्योंकि लोग संन्यास को जीवन का परम मूल्य समझते थे। आज अभिनेता पूज्य है, जीवन इतना झूठा हो गया है! अभिनेता से ज्यादा झूठा और क्या होगा? अभिनेता का होने का मतलब ही झूठा होना है--एक असत्य। संन्यास अगर सत्य का प्रतीक था तो अभिनेता असत्य का प्रतीक है। संन्यास अगर निर-अहंकार भाव का प्रतीक था तो नेता अहंकार भाव का प्रतीक है। अगर भिक्षु त्याग का प्रतीक था तो धनपति भोग का प्रतीक है।
किसे आप पूजते हैं? नेता से भी ज्यादा कीमत अभिनेता की बढ़ती जा रही है। यह किस बात की खबर है? किस मौसम की खबर है यह? आपके भीतर झूठ की

प्रतिष्ठा बढ़ती जा रही है; मनोरंजन की प्रतिष्ठा बढ़ती जा रही है, सत्य की कम होती जा रही है।
और ध्यान रहे, मनोरंजन की प्रतिष्ठा तभी बढ़ती है, जब लोग बहुत दुखी होते हैं, क्योंकि दुखी आदमी ही मनोरंजन खोजता है। सुखी आदमी मनोरंजन नहीं खोजेगा। अगर आप प्रसन्नचित्त हैं, आनंदित हैं, तो आप फिल्म में जाकर नहीं बैठेंगे, क्योंकि तीन घंटा व्यर्थ की मूढ़ता हो जाएगी। समय खराब होगा; मस्तिष्क खराब होगा; तीन घंटे में आंखें खराब होंगी; स्वास्थ्य को नुकसान पहुंचेगा, और मिलेगा कुछ भी नहीं।
लेकिन दुखी आदमी भागता है, दुखी आदमी मनोरंजन खोजता है। तो जितना मनोरंजन की तलाश बढ़ती है, उससे पता चलता है कि आदमी ज्यादा दुखी होता जा रहा है। सुखी आदमी एक झाड़ के नीचे बैठ कर भी आनंदित है; अपने घर में भी बैठ कर आनंदित है; अपने बच्चों के साथ खेल कर भी आनंदित है; अपनी पत्नी के पास चुपचाप बैठ कर भी आनंदित है। कहीं जाने की कोई जरूरत नहीं है। कहीं जाने का मतलब यह है कि जहां आप हैं, वहां दुख है--वहां से बचना चाहते हैं। अभिनेता असत्य है, लेकिन उसकी कीमत बढ़ती जाती है। नेता मनुष्य में निम्नतम का प्रतीक है। राजनीति मनुष्य के भीतर जो निम्नतम वृत्तियां हैं, उनका खेल है; लेकिन वह आदृत है। झूठ हमारा आदर्श होता चला जा रहा है।
सुना है मैंने, एक स्त्री एक पुल के पास से गुजरती थी। पुल के किनारे
पर उसने एक अंधे आदमी को बैठे देखा, तख्ती लगाए हुए है, जिस पर उसने लिखा है, प्लीज हेल्प दि ब्लाइंड--कृपया अंधे की मदद करें। उसकी दशा इतनी दुखद है कि उस स्त्री ने पांच रुपये का एक नोट निकाल कर उसके हाथ में दिया। उस अंधे ने कहाः नोट बदल दें तो अच्छा है। थोड़ा पुराना, फटा सा मालूम पड़ता है; पता नहीं, चले, न चले। उस स्त्री ने कहाः अंधे होकर तुम्हें पता कैसे चला कि नोट पुराना, गंदा सा मालूम होता है? उस आदमी ने कहाः क्षमा करें, अंधा मैं नहीं हूं, मेरा मित्र अंधा है। वह आज सिनेमा देखने चला गया है; मैं उसकी जगह काम कर रहा हूं--सिर्फ प्रतिनिधि हूं। और जहां तक मेरी बात है, मैं गूंगा-बहरा हूं।"
"अंधा फिल्म देखने चला गया है; मैं गूंगा-बहरा हूं"; वह कह रहा है! मगर करीब-करीब ऐसी ही असत्य हो गई है जीवन की सारी व्यवस्था। तख्तियों से कुछ पता नहीं चलता है कि पीछे कौन है? नामों से कुछ पता नहीं चलता है कि पीछे कौन है? प्रचार से कुछ पता नहीं चलता कि पीछे कौन है? एक झूठा चेहरा है सबके ऊपर, भीतर कोई और है; भीतर कुछ और चल रहा है। अभिनय की पूजा इस पाखंड का सबूत है। पद की, प्रतिष्ठा की पूजा आपके भीतर एक रोग की खबर देती है कि आप पागल हैं, आप चाहते हैं कि आप विशिष्ट हो जाएं। आप चाहते हैं, सबकी छाती पर चढ़ जाएं, सबसे ऊपर हो जाएं। चढ़ने की सीढ़ियां कोई भी हो सकती हैं--धन, पद, ज्ञान, त्याग भी। अगर चढ़ने की ही सीढ़ी बनानी हो तो कोई भी चीज सीढ़ी बन सकती है।
महावीर किसे पूज्य कहते हैं? महावीर जैसे आदमी जिसे पूज्य कहते हैं,
उस पर विचार कर लेना जरूरी है।
"जो आचार-प्राप्ति के लिए विनय का प्रयोग करता है।"
बड़ी कठिन शर्त है। आप भी आचारवान होना चाहते हैं, लेकिन महावीर विनय
की शर्त लगा रहे हैं, जो कि बड़ी उलटी है। हम बचपन से ही बच्चों को सिखाते हैं कि तुम्हारा चरित्र ऊंचा रखना, क्योंकि चारिष्य का सम्मान है। अगर तुम चरित्रवान हो तो सभी तुम्हें आदर देंगे। अगर तुम चरित्रवान हो तो कोई तुम्हारी निंदा नहीं करेगा। अगर तुम चरित्रवान हो तो समाज की श्रद्धा तुम्हारी तरफ होगी, तुम पूज्य बन जाओगे।
हम बच्चे को अहंकार सिखा रहे हैं, आचरण नहीं। हम बच्चे को यह कह रहे हैं कि अगर तुझे अपने अहंकार को सिद्ध करना है, तो आचरण जरूरी है। क्योंकि जो आचारहीन है उसको कोई श्रद्धा नहीं देता; कोई आदर नहीं देता; लोग उसकी निंदा करते हैं। ऊपर से दिखाई पड़ता है कि मां-बाप आचरण सिखा रहे हैं, पर मां-बाप अहंकार सिखा रहे हैं। मां-बाप यह नहीं कह रहे हैं कि तू विनम्र होना, कि तू निर-अहंकारी होना। मां-बाप यह कह रहे हैं कि तू चालाक होना, कनिंग होना, क्योंकि अगर तेरे पास आचरण है तो समाज तुझे कम असुविधा देगा,

सुविधा ज्यादा देगा। अगर तू आचरणहीन है तो समाज असुविधाएं देगा; दिक्कतें डालेगा; दंड देगा, परेशान करेगा--समाज दुश्मन हो जाएगा। तो तुझे जो भी पाना है जीवन में--धन, पद, प्रतिष्ठा, वह तुझे मिल नहीं सकेगी।
और हमारा आचार इसी प्रतिष्ठा के आग्रह में निर्मित होता है। हमारे बीच जो आचारवान भी मालूम पड़ते हैं, भीतर उनका आचार भी विनय पर आधारित नहीं है; ह्युमिलिटी पर आधारित नहीं है, अहंकार पर आधारित है। महावीर कहते हैं, बात खराब हो गई, यह तो जड़ में ही जहर डाल दिया। जो फूल आएंगे वे जहरीले होंगे। विनय आधार है। और बड़े आश्चर्य की बात है कि विनय में सारा आचार समा जाता है। विनय का अर्थ है निर-अहंकार भाव; "मैं कुछ हूं", इस पागलपन का त्याग। यह अकड़ भीतर से खो जाए कि "मैं कुछ हूं।" मगर दूसरी अकड़ फौरन हम बिठा लेते हैं।
आदमी की चालाकी को ठीक से समझ लेना जरूरी है--हम यह कह सकते हैं कि "मैं कुछ भी नहीं हूं", और यह अकड़ बन सकती है--"मैं ना-कुछ हूं" लेकिन इसके कहते वक्त एक प्रबल अहंकार भीतर कि "मैं विनम्र हूं"; कि "मुझसे ज्यादा विनीत और कोई भी नहीं... !"
आदमी तरकीबें निकाल लेता है और जब तक होश न हो, तरकीबों से बचना मुश्किल है। तो आप विनीत भी हो सकते हैं और भीतर अहंकार हो सकता है। विनम्र होने का अर्थ है--न तो इस बात की अकड़ कि "मैं कुछ हूं", और न इस बात की अकड़ कि "मैं ना-कुछ हूं"--इन दोनों के बीच में विनम्रता है। जहां मुझे यह पता ही नहीं है कि "मैं हूं"--मेरा होना सहज है, इस सहजता को महावीर कहते हैं, आचार का आधार।
"जो आचार-प्राप्ति के लिए विनय का प्रयोग करता है, जो भक्तिपूर्वक गुरु-वचनों को सुनता है एवं स्वीकृत कर वचनानुसार कार्य पूरा करता है, जो गुरु की कभी अवज्ञा नहीं करता, वही पूज्य है।"
"विनय" का अर्थ है, अपने को शून्य समझना और जब तक आप शून्य नहीं हो जाते तब तक गुरु उपलब्ध नहीं हो सकता। आप गुरु को नहीं खोज सकते, ध्यान रखना। आप तो जिसको खोजेंगे वह आप--जैसा ही गुरु-घंटाल होगा, गुरु नहीं हो सकता। आप खोजेंगे न! आप अपने से अन्यथा कुछ भी नहीं खोज सकते। आप सोचेंगे, आप व्याख्या करेंगे--आप करेंगे न! गुरु तो गौण होगा, नंबर दो होगा! नंबर एक तो आप होंगे, आप पता लगाएंगे कि कौन ठीक है, कौन गलत है? गुरु कैसा होना चाहिए, यह आप पता लगाएंगे। आप तय करेंगे कि आचरणवान है कि आचरणहीन है। आप-- जिनको कुछ भी पता नहीं है। आप गुरु के निर्धारक होंगे, तो जिसे आप चुन लेंगे वह आपका ही प्रतिबिंब होगा, आपकी ही प्रतिध्वनि होगा, और अगर आप गलत हैं तो गुरु सही नहीं हो सकता; आप गलत गुरु ही चुन लेंगे।
गुरु की खोज का पहला सूत्र है कि आप न हों। तब आप नहीं चुनते, गुरु आपको चुनता है। तब आप अपने को बीच में नहीं लाते; आप कोई शर्त नहीं लगाते; आप परीक्षक नहीं होते।
इधर मैं देखता हूं, लोग गुरुओं की परीक्षा करते घूमते हैं। देखते हैं
कि कौन गुरु ठीक, कौन गुरु ठीक नहीं। आप अगर इतना ही तय कर सकते हैं और परीक्षक हैं, आपको शिष्य होने की जरूरत ही नहीं है; आप गुरु के भी महा-गुरु हैं! आप अपने घर बैठिए, जिनको सीखना है वे खुद ही आपके पास आ जाएंगे। आप मत जाइए।
और आप कितने ही भटकें, आपको गुरु नहीं मिल सकता। आपको गलत आदमी ही प्रभावित कर सकता है, जो आपकी शर्तें पूरी करने को राजी हो। कौन आपकी शर्तें पूरी करेगा? कोई महावीर, कोई बुद्ध आपकी शर्त पूरी करेगा? कोई क्षुद्र आपकी शर्त पूरी कर सकता है। अगर वह आपका गुरु होना चाहता है, आपकी शर्त पूरी कर दे सकता है। आपकी शर्तें जाहिर हैं, उसमें कुछ कठिनाई नहीं है। क्षुद्र आदमी के मन की क्या भावनाएं हैं, वे सब जाहिर हैं। जो आदमी चालाक है, वह आपकी शर्तें पूरी कर देगा और आपका गुरु बन बैठेगा। अगर आप उपवास को आदर देते हैं, उपवास किया जा सकता है। अगर आप गंदगी को आदर देते हैं, तो आदमी गंदा रह सकता है।

जैन साधु हैं, उनके भक्त महावीर के वचनों का ऐसा अनर्थ कर लिए हैं, जिसका हिसाब नहीं है। महावीर ने कहा है, शरीर को सजाना मत, सजाने की कोई जरूरत नहीं, क्योंकि वह कामवासना से भरे हुए व्यक्ति की बात है।
शरीर को आप अपने लिए तो नहीं सजाते, शरीर को आप सदा दूसरे के लिए सजाते हैं--कोई देखे, कोई आकर्षित हो, किसी में वासना जगे, चाहे आप सचेतन न हों-- यह तो आदमी की दुविधा है कि वह अचेतन में सब करता जाता है। सड़कों पर चलती हुई स्त्रियों को देखें कोई उनको धक्का मार दें तो वे नाराज होती हैं, लेकिन घर से वे पूरी तरह सजावट करके चली हैं कि धक्का मारने का निमंत्रण छिपा है। कोई धक्का न मारे तो भी वे उदास लौटेंगी, शायद सजावट में कोई कमी रह गई--कोई धक्का मार दे तो परेशानी खड़ी कर देंगी, लेकिन निमंत्रण साथ लेकर चलेंगी।
यह बड़े मजे की बात है कि स्त्रियां घर में तो महाकाली बनी बैठी रहती हैं--चंडी का अवतार और घर से निकलते वक्त? उसका कारण है कि पति को आकर्षित करने की अब कोई जरूरत नहीं है--टेकन फॉर ग्रांटेड, वह स्वीकृत है। लेकिन पूरा बाजार भरा है--और फिर कोई धक्का मार दे; कोई ताना कस दे; कोई गाली फेंक दे, कुछ बेहूदी बात कह दे, तो अड़चन है!
आदमी बड़ा अचेतन जी रहा है, वह क्या करना चाहता है, क्या कर रहा है उसे कुछ ठीक-ठीक साफ भी नहीं है।
मैंने सुना है, एक दिन एक आदमी अपनी पत्नी के साथ नसरुद्दीन के घर पर दस्तक दिया। दरवाजा खुला तो वे दोनों चकित हो गए। पत्नी तो बहुत भयभीत हो गई। नसरुद्दीन बिल्कुल नंगा खड़ा है, सिर्फ एक टोप लगाए हुए। आखिर स्त्री से नहीं रहा गया, उसने कहा कि क्या आप घर में ऐसा दिगंबर वेश ही रखते हैं? नसरुद्दीन ने कहाः "हां, क्योंकि मुझे कोई मिलने-जुलने आता नहीं।" तो स्त्री की जिज्ञासा और बढ़ गई। उसने कहाः "अगर ऐसा ही है तो फिर वह टोप और काहे के लिए लगाए हुए हैं?"
नसरुद्दीन ने कहाः "कभी-कभार कोई आ ही जाए तो, उस ख्याल से।"
कोई मिलने नहीं आता, इस ख्याल से नंगे हैं, और टोप इसलिए लगाए हैं कि कभी-कभार कोई आ ही जाए, तो उसके लिए!
आदमी बड़े द्वंद्व में बंटा हुआ है। कुछ साफ नहीं है। महावीर ने कहा है, शरीर की सजावट भोगी के लिए है; योगी के लिए शरीर की सजावट नहीं। लेकिन जब भोगियों ने महावीर के मार्ग पर कदम रखे तो उन्होंने इसका बड़ा अनूठा अर्थ लिया। सजावट एक बात है, स्वच्छता बिल्कुल दूसरी बात है। स्वच्छता अपने लिए है, सजावट दूसरे के लिए होगी। स्वच्छता का तो अपना निजी सुख है, दूसरे से कोई प्रयोजन नहीं। लेकिन, स्वच्छता भी सजावट हो गई है। तो जैन मुनि स्नान नहीं करेगा, शरीर से बदबू आती रहेगी; दातौन नहीं करेगा, मुंह से बदबू आती रहेगी।
अब यह बड़े मजे की बात है कि जैसे सजावट दूसरों को प्रभावित करने के लिए थी, यह गंदगी भी दूसरों को प्रभावित करने के लिए है। और अगर जैन श्रावक को पता चल जाए कि मुनि जी के मुंह से मैक्लीन्स की बास आ रही है, सब गड़बड़ हो गया! वह जाकर फौरन प्रचार कर देगा कि यह आदमी भ्रष्ट हो गया है; दातौन कर रहा है। दातौन ही नहीं कर रहा, ब्रश कर रहा है।
आप दांत में सुगंध भी चाहते हैं दूसरे के लिए और दुर्गंध भी दूसरे के लिए, तो कुछ फर्क नहीं हुआ। महावीर का जोर इस बात का है कि दूसरे को भूल जाएं। अपने लिए, स्वयं के लिए, निज के लिए जो हितकर है, स्वस्थ है, उस दिशा में खोज करें।
जैसा मैंने कल आपको कहा कि कैसी विकृतियां संभव हो जाती हैं। मैंने आपको कहा कि महावीर ने कहा है, मल-मूत्र विसर्जित करते वक्त ख्याल रखना जरूरी है, किसी को दुख न हो, किसी को पीड़ा न हो। महावीर ने बहुत विचार किया है, सूक्ष्म, गंदगी से किसी को कष्ट न हो। पच्चीस सौ साल पहले न तो सेप्टिक टैंक थे और न फ्लश लैट्रिन थीं। और भारत तो पूरा का पूरा गांव के बाहर ही मल-मूत्र विसर्जन करता रहा है। तो महावीर ने कहा है, गीली जगह पर घास उगी हो, जहां कि कीड़े-मकोड़े के होने की संभावना है--जीवन की। घास भी जीवन है। तुम्हारे मल-मूत्र से घास को भी नुकसान पहुंच जाएगा--वह भी नहीं। तो सूखी

जमीन पर, साफ जमीन पर, जहां कोई जीवन की कोई संभावना न हो, वहां तुम मल-मूत्र का विसर्जन करना।
अब बड़ा पागलपन हो गया! अब बंबई में जैन साधु-साध्वियां ठहरे हैं। जहां सपाट जमीन खोजनी मुश्किल है, सिवाय रोड के। तो वे रोड का उपयोग कर रहे हैं। तरकीब से कर रहे हैं! अब मजा यह है कि बर्तनों में इकट्ठा कर लेंगे पेशाब को, मल-मूत्र को और रात के अंधेरे में सड़कों पर उ.ंडेल देंगे।
अब किसी नियम से कैसी मूढ़ता का जन्म हो सकता है, सोचें। फ्लश लैट्रिन
इस समय सर्वाधिक उपयोगी होगी। लेकिन वहां नियम में उलटा हो गया, क्योंकि गीली जगह पर... वहां पानी है फ्लश का, तो उस पानी की वजह से शास्त्र... ! शास्त्र लोगों को अंधा कर सकते हैं। और जो इस तरह अंधे हो जाते हैं उनके जीवन में कैसे प्रकाश होगा, कहना बहुत मुश्किल है। शास्त्र की लकीर के फकीर हैं वे। उसमें लिखा है, "गीली जमीन पर नहीं"... तो वहां फ्लश का पानी है, इसलिए वहां पेशाब भी नहीं कर सकते, वहां मल-विसर्जन भी नहीं कर सकते। तो सूखी थाली या बर्तन में कर लेंगे, फिर सम्हाल कर रखे रहेंगे और जब रात हो जाएगी, अंधेरा हो जाएगा तो सड़क पर, सूखी जमीन पर छोड़ देंगे।
अब यह पागलपन हो गया। लाओत्सु कभी-कभी ठीक लगता है कि पैगंबरों से बड़ी मूढ़ता पैदा होती है। महावीर को कल्पना भी नहीं रही होगी, हो भी नहीं सकती। फ्लश लैट्रिन का उनको पता होता तो शास्त्र में थोड़ा फर्क करते। लेकिन उनको यह ख्याल भी नहीं रहा होगा कि उनके पीछे ऐसे पागलों की जमात आ जाएगी, जो उसको नियम बना लेगी।
कोई शास्त्र नियम नहीं हैं। सब शास्त्र निर्देशक हैं; सिर्फ सूचना मात्र हैं। उनका भाव पकड़ना चाहिए; शब्द पकड़ेंगे तो गड़बड़ हो जाएगी, क्योंकि सभी शब्द पुराने पड़ जाएंगे। महावीर ने जिनसे कहा है, उनके लिए ठीक थे। समय बदलेगा, स्थिति बदलेगी, व्यवस्था बदलेगी, उपकरण बदलेंगे--शब्द वही रह जाएंगे। शास्त्र कोई वृक्ष तो हैं नहीं कि बढ़ें, उनमें नये फूल लगें। शास्त्र तो मुर्दा हैं। उन मुर्दा शास्त्रों को जकड़ कर लोग बैठ जाते हैं। महावीर ने कहा है कि "आचार-प्राप्ति के लिए विनय का उपयोग करता है जो व्यक्ति... ।"
लेकिन आप गौर से देखें, जब भी कभी आप आचार-प्राप्ति का कोई उपयोग करते हैं, तो उसमें अहंकार कारण होता है। इसलिए आचारवान व्यक्ति अकड़ कर चलता है; दुराचारी चाहे डर कर चले। दुराचारी थोड़ा चिंतित भी होता है कि किसी को पता न चल जाए। दुराचारी डरता है कि मेरे आचरण का पता न चल जाए। जिसको हम सदाचारी कहते हैं, वह कोशिश करता है कि उसके आचरण का आपको पता चलना चाहिए। मगर आप ही बिंदु हैं।
तो दुराचारी अंधेरे में छिपता है, सदाचारी प्रचार करता है अपने आचरण का। वह हिसाब रखता है कि किस वर्ष कितने उपवास किए, कितनी पूजा की, कितने मंत्र का जाप किया; सब हिसाब रखता है, कितने लाख जाप कर लिया।
किसके लिए यह हिसाब है?
हिसाब बता रहा है कि भीतर चालाक आदमी मौजूद है, मिटा नहीं है, बही-खाते
रख रहा है।
"विनय" है पहली शर्त। विनय का अर्थ हैः स्वयं को "ना-कुछ" की अवस्था में ले आना। "ना-कुछ" हूं, ऐसा बोध भी न पकड़े। इतना जो विनम्र आदमी है, उसे गुरु उपलब्ध होगा। और अगर आप उसे खोजने भी न जाएं तो वह आपको खोजते हुए आ जाएगा।
जीवन के अंतर-नियम हैं। जहां भी जरूरत होती है गुरु की, वहां जिनके जीवन में भी जागृति का फूल खिला है, उनको अनुभव होना शुरू हो जाता है। जैसे प्रकृति में होता है कि जहां बहुत गर्मी हो जाएगी वहां हवा के झोंके भागते हुए आ जाएंगे। जब हवा आती है तो आपको पता है, क्यों आती है? हवा अपने कारण नहीं आती। जहां गर्म हो जाता है बहुत, विज्ञान के हिसाब से जहां गर्मी ज्यादा हो जाती है वहां की हवा विरल हो जाती है, कम सघन हो जाती है, ऊपर उठने लगती है गर्म होकर--वहां गड्ढा हो जाता है। उस गड्ढे को भरने के लिए आस-पास की हवाएं दौड़ पड़ती हैं। आप पानी भरते हैं, एक मटकी में नदी से, गड्ढा

हो जाता है। जैसे ही गड्ढा हुआ कि आस-पास का पानी दौड़ कर गड्ढे को भर देता है।
ठीक ऐसा ही आत्मिक जीवन का नियम है कि जब भी कोई व्यक्ति मिट जाता है,
तो कोई जो शिखर को उपलब्ध है, दौड़ कर उसको भर देता है। लेकिन वे सूक्ष्म-जगत के नियम हैं; इतने साफ नहीं हैं। इजिप्त में कहा जाता है कि व्हेन दि डिसाइपल इ.ज रेडी, दि मास्टर एपियर्स--जब शिष्य तैयार है, तो गुरु उपस्थित हो जाता है। शिष्य को गुरु खोजना नहीं पड़ता, गुरु शिष्य को खोजता है; क्योंकि जरूरत पैदा हो गई, तो जिसके पास है वे देने को दौड़ पड़ेंगे। पात्र तैयार हो गया। जिनके पास है, वे उसे भर देंगे, क्योंकि जिनके पास है, वे अपने होने से भी बोझिल होते हैं--ध्यान रखें।
जैसे वर्षा के बादल होते हैं, भर जाते हैं पानी से तो बोझिल हो जाते हैं; अगर न बरसें तो भार होता है। जैसे मां है: गर्भ हो गया, बच्चा आ गया, तो उसके स्तन भर जाते हैं दूध से। वह न बच्चे को दे, तो पीड़ा होगी। अगर बच्चा मर भी जाए तो वह पड़ोस के किसी बच्चे को दूध देगी, क्योंकि देना हिस्सा है अब--भर गई है। नहीं निकलेगा दूध तो कठिनाई होगी। तो यंत्र बनाए गए हैं। अगर बच्चा मर जाए तो स्तन से दूध निकालने के लिए यंत्र बनाए गए हैं, जो बच्चे की तरह दूध को खींच लें।
जब कहीं ज्ञान सघन होता है, जब कहीं ज्ञान उत्पन्न होता है, तो जैसे स्तन मां के भर जाते हैं, ऐसे गुरु का हृदय भर जाता है। वह चाहता है कि कोई आ जाए और उसे हलका कर दे।
तो जब आप तैयार हैं तो गुरु मौजूद हो जाता है। आप खोजने जाते हैं, तो गलती में हैं। पहले आप मिटें और मिट कर आप चल पड़ें; गुरु आपको पकड़ लेगा। और आप निर्णय करेंगे तो भटकते रहेंगे। आप निर्णय करने की स्थिति में नहीं हैं; हो भी नहीं सकते। तब डर लगता है कि यह अंधश्रद्धा हो जाएगी। तर्क कहेगा कि यह तो अंधी बात हो जाएगी, तब हम कुछ भी नहीं!
अगर तर्क अभी न थका हो तो तर्क करके कुछ और उपाय करके खोजने की व्यवस्था कर लें। एक घड़ी आएगी कि आप तर्क से थक जाएंगे। और एक घड़ी आएगी कि आप जान लेंगे इस बात को कि जिसे भी आप खोजते हैं, वह आप ही जैसा गलत है। इस विषाद के क्षण में ही आदमी अपनी खोज बंद करता है; खुद मिट कर एक सूना पात्र होकर घूमता है। जहां भी कोई भरा हुआ व्यक्ति होता है--जैसे हवा दौड़ पड़ती है खाली जगह की तरफ, पानी दौड़ पडता है गड्ढे की तरफ, मां का दूध बहता है बच्चे की तरफ--ऐसा गुरु बहने लगता है शिष्य की तरफ।
इस घड़ी में जो मिलन है, इस घड़ी में जो गुरु शिष्य के बीच मिलन है, वह इस जगत की महत से महत घटना है। जिनके जीवन में वह घटना नहीं घटी, वे अधूरे मर जाएंगे। उन्होंने एक अनूठे अनुभव से अपने को वंचित रखने का उपाय कर रखा है।
इससे बड़े सुख का क्षण पृथ्वी पर कभी भी नहीं होता, जब आप पात्र की तरह खाली होते हैं, और कोई भरा हुआ व्यक्ति आपकी तरफ बहने लगता है। लेकिन इस बहाव के लिए ग्राहक होना जरूरी है, और ग्राहक वही हो सकता है जो आलोचक नहीं है। आलोचक तो अकड़ा हुआ सोचता है, खुद ही जांच-परख करता है। इसलिए विज्ञान और धर्म के सूत्र अलग हैं। विज्ञान आलोचना से जीता है, तर्क से जीता है। धर्म अतर्क है, श्रद्धा से जीता है, समर्पण से जीता है।
एक मित्र, मेरे साथ एक पर्वतीय स्थल पर गए थे; बीमार आलोचक हैं। आलोचक बीमार होते ही हैं। कोई भी चीज देख कर, क्या गलती है, यही उनके ध्यान में आता है। ठीक कुछ हो सकता है, इस पर उनका भरोसा नहीं है। जो भी होगा, गलत ही होगा।
तो जहां भी उन्हें मैं ले जाता--उन्हें एक सुंदर जल-प्रपात के पास ले गया, तो उन्होंने कहाः क्या रखा है इसमें? जरा पानी को हटा लो, फिर कुछ भी नहीं है।
खूबसूरत पहाड़ पर ले गया, जहां सूर्यास्त देखने जैसा है। उन्होंने कहा, "ऐसा कुछ खास नहीं है। इतनी दूर चल कर आने का कोई मतलब नहीं है। क्षणभर में सूर्य अस्त हो जाएगा, फिर क्या रखा है?" लौटते वक्त उन्होंने कहा कि बेकार ही आना हुआ! सिवाय पहाड़, झरने, सूरज--इनको हटा लो, सब सपाट मैदान है।

ऐसा आदमी गुरु को कभी उपलब्ध नहीं हो सकता। उसने गलत तरफ से खोज शुरू
कर दी। ठीक तरफ खोज का अर्थ है, संवेदनशीलता, रिसेप्टिविटी, ग्राहकता। जितना विनम्र होगा व्यक्ति, उतना ग्राहक होगा। उतनी शीघ्रता से गुरु उसकी तरफ दौड़ सकता है।
"जो भक्तिपूर्वक गुरु-वचनों को सुनता है।"
"भक्तिपूर्वक"--जैसे प्रेमी सुनता है प्रेयसी के वचन। और आपको पता है
कि वचनों का अर्थ बदल जाता है, कैसे आप सुनते हैं।
एक नई स्त्री के प्रेम में पड़ गए हैं आप। वह जो भी बोलती है वह स्वर्णिम मालूम होता है। कोई दूसरा पास से गुजरता हुआ सुने तो समझेगा कि बचकाना है। आपको स्वर्णिम मालूम पड़ता है, स्वर्गीय मालूम पड़ता है। आप जो भी उससे कहते हैं, क्षुद्र सी बातें भी, बहुत क्षुद्र सी साधारण सी बातें भी, वे भी हीरे-मोतियों से जड़ जाती हैं, वे भी बहुमूल्य हो जाती हैं। जरा सा इशारा भी कीमती हो जाता है। कोई दूसरा सुनेगा तो कहेगा कि ठीक है, क्या रखा है?
उसे कुछ भी नहीं रखा है। लेकिन प्रेम से भरा हुआ हृदय बहुत गहरे तक चीजों को ले जाता है, क्योंकि उतना खुल जाता है। चीजों के अर्थ अलग हो जाते हैं। एक साधारण सा फूल उठा कर आपका प्रेमी आपको दे दे, तो वह फूल स्मरणीय हो जाता है। कोई कोहिनूर से भी बदलना चाहे तो आप बदलने को राजी न होंगे। कोहिनूर दो कौड़ी का है उस फूल के मुकाबले। फूल में कुछ और आ गया। क्या आ गया? फूल सिर्फ फूल है; वैज्ञानिक परीक्षण से कुछ भी ज्यादा नहीं मिलेगा। लेकिन फूल आपके हृदय में गहरे उतर गया है; किसी प्रेम के क्षण में लिया गया है। तब आप खुले थे और चीजें भीतर तक झंकृत हो गईं। इसलिए प्रेमी पत्थर का टुकड़ा भी भेंट कर दें, तो कीमती हो जाता है।
गुरु जो वचन बोल रहा है, वे साधारण मालूम पड़ सकते हैं, अगर भक्ति से नहीं सुने गए हैं। अगर भक्ति से सुने गए हैं, तो उसके साधारण वचन भी क्रांतिकारी हो जाते हैं। वचनों में कुछ भी नहीं है, भक्ति से सुनने में सब-कुछ है। इसलिए आप कुरान को पढ़ें अगर आप मुसलमान नहीं हैं तो पाएंगे, क्या रखा है? कुरान पढ़नी हो, तो मुसलमान का हृदय चाहिए, तो ही कुरान का अर्थ प्रकट होगा। जैन गीता पढ़ता है; "कहता है, क्या रखा है? क्यों हिंदू इतना शोरगुल मचाए रखते हैं?" गीता के लिए फिर हिंदू का हृदय चाहिए। अगर जैन भागवत पढ़ेगा तो कहेगा, "यह क्या हो रहा है? रासलीला है कि सब पाखंड हो रहा है?" उसकी अपनी धारणा प्रवेश कर जाएगी। चैतन्य से पूछो, या मीरा से भागवत का रस, तो वे पागल होकर नाचने लगते हैं। पर वह जो नाच है, वह चैतन्य की अपनी ग्राहकता से आता है, भागवत से नहीं आता है। भागवत तो सिर्फ सहारा है, निमित्त है।
गुरु निमित्त है; आनंद तो आप से जगेगा। लेकिन निमित्त को आप भीतर ही न घुसने दें तो कठिनाई है। और ध्यान रखें एक बात, गुरु आक्रामक नहीं हो सकता, एग्रेसिव नहीं हो सकता, क्योंकि जो आक्रामक हो सकता है, वह तो गुरु होने की योग्यता को भी उपलब्ध नहीं होगा। गुरु तो बिल्कुल अनाक्रामक है। वह जबरदस्ती आपकी गर्दन पकड़ कर नहीं कुछ पिला देगा। आप खुले होंगे, तो उस खुले क्षण में ही वह प्रवेश करेगा। वह द्वार पर दस्तक भी नहीं देगा आपके, क्योंकि वह भी हिंसा है। अगर आप सो रहे हों गहरे, मधुर स्वप्न देख रहे हों, और आप राजी ही न हों अभी लेने को, तो जो राजी नहीं है उसे कुछ भी नहीं दिया जा सकता।
तो गुरु आप पर जबरदस्ती नहीं करेगा। लेकिन हमें ख्याल है जबरदस्ती का। जिनको भी हमने जाना है, मां-बाप, स्कूल, कालेज, विद्यालय, वहां सब जबरदस्ती चल रही है। वे सब हिंसा के उपाय हैं। ठोका जा रहा है जबरदस्ती आपके सिर में। आध्यात्मिक जीवन उस तरह नहीं ठोंका जा सकता।
एक महिला के घर मैं मेहमान था--बहुत सुशिक्षित, सुसंस्कृत, पश्चिम में पढ़ी हुई महिला हैं। जब भी उनके घर जाता था तो वह हमेशा एक ही रोना रोती थीं कि मेरे मां-बाप ने मुझे जबरदस्ती प्यानो बजाना सिखाया, वह मुझे बिल्कुल पसंद नहीं था। और ठीक भी है उसकी बात, क्योंकि वह "टोन डेफ" है। उसे कोई ध्वनियों में बहुत रस नहीं है। ध्वनियों के प्रति बहरी है, वह संवेदना

उसमें है नहीं। लेकिन मां-बाप पीछे पड़े थे कि लड़की को प्यानो बजाना जानना ही चाहिए; तो उन्होंने जबरदस्ती सब तरह से उसे ठोक-पीट कर प्यानो बजाना सिखा दिया। किसी तरह रट कर, कंठस्थ करके पाठ करके परीक्षाएं भी उसने पास कर लीं। तो मैंने एक दिन जब वह अपना रोना रो रही थी फिर से सुबह-सुबह, तो उससे मैंने कहा कि जो तुम्हारे मां-बाप ने तेरे साथ किया, इतना कम से कम ख्याल रखना कि अपनी लड़की के साथ तू मत करना। क्योंकि उस महिला ने मुझे कहा कि मैं तो नाचना सीखना चाहती थी, और मां-बाप ने प्यानो में लगा दिया। काश! मैं नृत्य सीख लेती। तो उस स्त्री ने बड़े जोर से कहा कि निश्चित ही, मैं यह भूल अपनी लड़की के साथ कभी भी नहीं करूंगी। व्हेदर शी लाइक्स इट आर नॉट, शी विल हैव टु लर्न डांसिंग।
यही चल रहा है। मां-बाप थोप रहे हैं, विद्यालय थोप रहा है, स्कूल का शिक्षक थोप रहा है। सब तरफ आदमी पर चीजें थोपी जा रही हैं। इससे आपको एक भ्रांति पैदा होती है कि शायद गुरु भी आप पर थोपेगा। आप सिर्फ पहुंच जाएं मिट्टी के लौंदे की तरह और वह आपको ठोक-पीट कर मूर्ति बना देगा।
ध्यान रहे, जो गुरु आप पर थोपता हो उसे अध्यात्म की खबर भी नहीं है। वह इसी दुनिया का गुरु है। बेहतर था, किसी स्कूल में शिक्षक होता। शिक्षक और गुरु में फर्क है। शिक्षक सिखाने के लिए उत्सुक है। शिक्षक आपको बनाने के लिए आतुर है। शिक्षक आक्रामक है। इसलिए अगर सारे विश्वविद्यालयों में हिंसा फूट पड़ रही है तो उसका कारण विद्यार्थी तो नंबर दो है, नंबर एक तो शिक्षक है।
अब तक शिक्षक थोपता रहा। अब वक्त आ गया है कि लोग-उनके ऊपर कुछ भी थोपा जाए, इसके लिए राजी नहीं हैं। हिंसा शिक्षक करता रहा है हजारों साल से, बच्चे अब बगावत कर रहे हैं। अब बच्चे हिंसा कर रहे हैं। और जब तक शिक्षक नहीं रोकता हिंसा करना, तब तक अब विश्वविद्यालय शांत नहीं हो सकते। लेकिन हमारा सारा सोचने का ढंग ही आक्रामक है। गुरु ऐसा नहीं कर सकता,
वह असंभव है। अगर आप राजी हैं पीने को, लेने को तो वह देगा, बेशर्त, अथक, असीम आप में उ.ंडेल देगा। आपकी छोटी सी गागर में पूरा सागर भर देगा। लेकिन पुकार आपकी तरफ से आएगी। प्यास आपकी तरफ से आएगी, इस प्यास और पुकार का नाम है भक्तिभाव।
"जो गुरु-वचनों को भक्तिभाव से सुनता है, स्वीकृत कर वचनानुसार कार्य पूरा करता है।"
यह एक अलग कीमिया है; अध्यात्म की अपनी एलकेमी है, अपना रसायन-विज्ञान है। गुरु कुछ कहे, तो पहले तो मन यही होगा कि पहले हम सोच लें, ठीक भी कह रहा है कि गलत। क्या सोचेंगे आप? कैसे सोचेंगे आप? आपको ठीक का पता है, तो आप पता लगा सकते हैं कि गुरु जो कह रहा है, वह ठीक कह रहा है या गलत। अगर आपको ठीक का पता ही नहीं है, और निश्चित ही पता नहीं है, नहीं तो गुरु के पास आने की कोई आवश्यकता न थी, आप कैसे सोचेंगे कि क्या ठीक है और क्या गलत? और जिस बुद्धि से आप सोचेंगे, वह तो आपका ज्ञान है अब तक का इकट्ठा किया हुआ; उससे आप कहीं भी नहीं पहुंचे। उसी से सोचेंगे अतीत के अनुभव और ज्ञान को आगे ले आकर गुरु का भविष्य में जाता हुआ ज्ञान आप परखेंगे। गुरु वह कह रहा है जो आप भविष्य में होंगे और आप उस ज्ञान से जांचेंगे जो आप अतीत में थे।
कोई मिलना नहीं हो पाएगा। आपको, जैसे आप जूते बाहर उतार देते हैं मंदिर के, ऐसे ही अपनी खोपड़ी भी बाहर ही रख कर आनी होगी। तो ही गुरु के साथ कोई मिलन हो सकता है। ऐसा नहीं कि गुरु आपके पूछने से इनकार करता है। पूछने की कोई मनाही नहीं है, लेकिन पूछने का ढंग स्वीकार करने के लिए हो। आप इसलिए पूछते हैं, ताकि और जान सकें; इसलिए नहीं पूछते हैं कि आप विरोध में कोई बात खड़ी कर रहे हैं। आप अपने को ला रहे हैं और आप जांचेंगे। जांचना हो तो पहले काफी जांच लेना चाहिए, लेकिन एक बार किसी के पास गुरु-भाव उत्पन्न हुआ हो तो फिर सब जांच-परख नीचे रख देनी चाहिए। करीब-करीब ऐसे ही जैसे आपको आपरेशन करवाना हो, डेलिकेट, नाजुक आपरेशन हो, तो आप पता लगाते हैं, कौन सबसे अच्छा सर्जन है। ठीक है, पहले पता लगा लें। लेकिन एक बार आपरेशन की टेबल पर लेट जाने के बाद कृपा करके अब कुछ न करें। यह मत कहें कि यह चमचा उठा, वह कांटा उठा, यह छुरी से काम कर और इस तरह काट, और इस

तरह निकाल! आप बिल्कुल अब कुछ न करें। अब आप पूरी तरह छोड़ दें सर्जन के हाथ में। एक भरोसा, एक ट्रस्ट चाहिए। अगर आप पूरी तरह छोड़ दें तो आपको कम से कम कष्ट होगा।
मनोविज्ञान तो यह अनुभव करता है कि अगर सर्जन की टेबल पर मरीज अपने को पूरी तरह छोड़ दे, तो उसे बेहोश करने की जरूरत नहीं होगी। अगर वह इतना स्वीकार कर ले--ठीक है, तो उसे बेहोश भी करने की जरूरत नहीं होगी। बेहोश भी इसीलिए करना पड़ता है कि वह जो भीतर बैठा हुआ अहंकार है, वह बीच में दखलंदाजी करेगा कि यह आप क्या कर रहे हो? कहीं गलती तो नहीं कर दोगे? कहीं जान तो नहीं ले लोगे? यह क्या हो रहा है? उसे बेहोश करना इसलिए जरूरी है ताकि वह बिल्कुल सो जाए और सर्जन उन्मुक्त-भाव से मरीज को भूल कर, मरीज का आपरेशन कर सके।
अध्यात्म बड़ी गहरी सर्जरी है। कोई सर्जन इतनी गहरी सर्जरी तो नहीं करता है। क्योंकि हड्डी नहीं काटनी, न मांस-मज्जा काटना है; आपकी पूरी आत्मा के साथ जुड़े हुए संस्कार, आत्मा के साथ जुड़े हुए परमाणु, उनको काटना है। इससे बड़ी और कोई शल्य-चिकित्सा नहीं हो सकती। इतनी बड़ी शल्य-चिकित्सा तभी संभव है, जब कोई इतने सहज भाव से गुरु के हाथ में छोड़ दे कि अगर वह मारता भी हो, तो भी संदेह न उठाए।
इस निस्संदिग्ध अवस्था में सुने हुए वचन सहज ही स्वीकृत हो जाते हैं। बुद्धि बीच में नहीं आती, पूरे जीवन में प्रविष्ट हो जाते हैं। दरवाजे पर कोई पहरेदार नहीं रोकता, हृदय तक बात चली जाती है। और उसके स्वीकृत वचनों के अनुसार कार्य पूरा करता है।
"जो गुरु की कभी अवज्ञा नहीं करता, वही पूज्य है।"
गुरु की अवज्ञा करनी हो तो गुरु को छोड़ देना चाहिए, अवज्ञा की कोई जरूरत नहीं है। कोई और गुरु की तलाश में निकल जाना चाहिए। गुरु का मतलब ही यह है कि आपने वह आदमी खोज लिया जिसकी आप अवज्ञा न करेंगे। गुरु का और कोई मतलब नहीं होता। आपने ढूंढ़ ली वह जगह, जहां आप अपने को छोड़ सकते हैं पूरा किसी के हाथ में, पूरे भरोसे के साथ। अब अवज्ञा नहीं करेंगे। और गुरु निश्चित ही बहुत सी ऐसी बातें कहेगा, जिनमें मन होगा कि अवज्ञा की जाए, निश्चित ही! क्योंकि अगर गुरु ऐसी ही बातें कहे जिनकी आप अवज्ञा कर ही नहीं सकते, तो आपके शिष्यत्व का जन्म नहीं होगा। इसे समझ लें, अगर गुरु सच में ही गुरु है तो वह बहुत सी ऐसी बातें कहेगा और करेगा जिनमें अवज्ञा करना बिल्कुल स्वाभाविक मालूम हो। और जब उस स्वाभाविक अवज्ञा को भी आप छोड़ देते हैं, तभी, तभी शिष्य का पूरा जन्म होता है।
लेकिन, हम बड़े होशियार हैं। हम वह मान लेंगे जो हम मानना चाहते हैं। मेरे पास बहुत तरह के लोग हैं। एक व्यक्ति आया, उसे मैंने कहाः संन्यासी है--कि अच्छा हो कि तू कुछ दिन के लिए भ्रमण करती कीर्तन-मंडली में सम्मिलित हो जा। उसने कहाः "मेरी तबियत ठीक नहीं है, तो मैं तो किसी यात्रा पर न जा सकूंगा।" फिर मैंने थोड़ी देर दूसरी बात की। और फिर मैंने कहाः "अच्छा, ऐसा कर, तुझे मैं अमरीका भेज देता हूं। वहां एक आश्रम है, उसको तू सम्हाल ले।" उसने कहा कि जैसे आपकी आज्ञा! जब सभी आपको समर्पित कर दिया, तो फिर क्या! फिर थोड़ी देर बात चली। मैंने कहा कि ऐसा है, अमरीका तो तुझे भेज दूंगा, पहले तू कीर्तन-मंडली में एक छह महीने।
उसने कहाः "आप जानते ही हैं कि मेरी तबियत ठीक नहीं रहती।"
मगर वह आदमी यही सोचता है कि वह मेरी अवज्ञा कभी नहीं करता!
आज्ञाकारी होना बहुत आसान है, जब आज्ञा आपके अनुकूल हो। तब आज्ञाकारी होने का कोई अर्थ ही नहीं है।
मुल्ला नसरुद्दीन का बेटा रो रहा है। मुल्ला उससे कह रहा है, "रोना बंद कर। मैं तेरा बाप हूं, मेरी आज्ञा मान।" मगर वह रोना बंद नहीं करता। बाप भी क्या कर सकता है, अगर बच्चा रोना बंद न करे। नसरुद्दीन उसकी पिटाई करता है। पिटाई करता है तो वह और रोता है। इतने में ही एक आदमी नसरुद्दीन से मिलने आ गया। उस आदमी को देख कर नसरुद्दीन ने कहाः "बेटा, दिल खोल करो! जितना रोना है, रो! मेरी आज्ञा है!"

वह लड़का भी थोड़ा चौंका और उस आदमी ने भी पूछा कि यह क्या मामला है? क्यों उसको रोने को कह रहे हो? उसने कहाः "सवाल रोने का नहीं है। मैं तो चाहता हूं कि यह रोए न, लेकिन उसमें मेरी आज्ञा टूटती है। और हर हालत में मुझे अपने पिता का गौरव बचाना जरूरी है। इसलिए इसे कह रहा हूं कि रो, यही मेरी आज्ञा है।"
लेकिन वह बेटा भी चुप हो गया। अब नसरुद्दीन कह रहा है कि नालायक, कोई
भी हालत में मेरी आज्ञा मानने को तैयार नहीं है।
आप भी, जब मन की बात होती है तो मानने को तैयार होते हैं, जब मन की बात नहीं होती तो अड़चनें डालते हैं; पचीस बहाने करते हैं; होशियारियां निकालते हैं।
गुरु के पास ये होशियारियां न चलेंगी। आपकी सब होशियारी अज्ञान है। आपको बिल्कुल निर्दोष होकर जाना पड़ेगा।
"कभी गुरु की अवज्ञा नहीं करता, वही पूज्य है।"
"जो केवल संयम-यात्रा के निर्वाह के लिए अपरिचित भाव से दोष-रहित उन्छ वृत्ति से भिक्षा के लिए भ्रमण करता है, जो आहार आदि न मिलने पर भी खिन्न नहीं होता और मिल जाने पर प्रसन्न नहीं होता, वही पूज्य है।" "संयम-यात्रा के निर्वाह के लिए।"
महावीर कहते हैं, जीवन का एक ही उपयोग है कि महाजीवन उपलब्ध हो जाए। अगर जीवन उपकरण बन जाता है, साधन बन जाता है महाजीवन को पाने के लिए, परमात्म-जीवन को पाने के लिए, तो ही उसका उपयोग हुआ। उसका और कोई उपयोग नहीं है। इसलिए महावीर कहते हैं कि अगर जीना है, तो बस एक ही जीने योग्य बात है कि जितने से संयम सध जाए, जितनी शक्ति की जरूरत है शरीर को, ताकि साधना हो सके। इस भाव से निर्वाह; बस, इतना।
"अपरिचित घरों से।"
महावीर की शर्तें बड़ी अनूठी हैं। महावीर कहते हैं कि उनका भिक्षु, उनका साधु परिचित घरों में भीख मांगने न जाए, क्योंकि जहां परिचय है वहां मोह बन जाता है; जहां मोह बन जाता है वहां देनेवाला ऐसी चीजें देने लगता है, जो वह चाहता है कि दी जाएं।
अगर भिक्षु रोज आपके घर आता है--आपका मोह बन जाए, तो आप मिठाइयां देने लगेंगे, अच्छा भोजन बनाने लगेंगे। और, महावीर कहते हैं कि वह जो गृहस्थ है, जिसके घर आप परिचित भाव से भीख मांगने लगेंगे, आपके लिए तैयारी में जुट जाएगा। उसके लिए चिंता पैदा होगी। वह विचार करेगा। वह कल रात से ही सोचेगा कि कल मुनि जी आते हैं, तो उनके लिए क्या तैयार करना है? तो उसकी चिंता, विचार का आप कारण बनते हैं और यह चिंता, विचार कर्म हैं, और ये बांधते हैं। इसलिए अपरिचित घर में भिक्षा मांगना। अचानक पहुंच जाना, ताकि उसे कोई तैयारी न करनी पड़े।
और महावीर कहते हैं, आपके लिए विशेष रूप से तैयारी करनी पड़े तो उससे
भी अहंकार निर्मित होता है, विशिष्टता। अपरिचित घर के सामने खड़े हो जाना, जिसको पता ही नहीं था कि आप भिक्षा मांगेंगे वहां। फिर वह जो दे दे, और वह वही देगा जो वह रोज खाता है। जो उसने अपने लिए तैयारी किया था, वही देगा। विशिष्ट आपके लिए कोई चिंता नहीं करनी पड़ेगी।
लेकिन अपरिचित घर के सामने हो सकता है, वह दे या न दे। इसलिए तो हम परिचित घर खोजना पसंद करेंगे। अपरिचित घर के सामने वह दे या न दे, इसलिए महावीर कहते हैं: दे तो प्रसन्न मत होना, न दे तो खिन्न मत होना। क्योंकि अपरिचित का मतलब ही यह है कि सब अनिश्चित है, कि देगा कि नहीं देगा।
और ध्यान रहे, जितना अपरिचित घर होगा उतनी ही खिन्नता असंभव होगी क्योंकि अपेक्षा नहीं होगी। आप मुझे जानते हैं, और मैं आपके द्वार पर भिक्षा मांगने आ जाऊं और आप न दें, तो खिन्नता पैदा होने की संभावना ज्यादा है। क्योंकि जिस आदमी को जानते थे, जिस पर भरोसा किया था, उसने दो रोटी देने से इनकार कर दिया। अपरिचित आदमी कह दे कि नहीं है, तो खिन्नता की संभावना कम है।

ध्यान रहे, खिन्नता की मात्रा उतनी ही होती है जितनी एक्सपेक्टेशन, अपेक्षा की मात्रा होती है। लेकिन एक बड़े मजे की बात है; इसे थोड़ा समझ लेना जरूरी है। अगर आप परिचित आदमी के घर जाएं और वह आपको भिक्षा न दे!
महावीर अपने भिक्षुओं से बोल रहे हैं, अपने मुनियों से, साधकों से। इसे आप अपने जीवन में भी समझ लेना, क्योंकि बहुत तरह के संदर्भ गृहस्थ के लिए भी वही हैं।
अगर आप परिचित आदमी के घर जाएं और वह भिक्षा न दे तो बड़ी खिन्नता होगी,
एक बात; अगर वह भिक्षा दे तो बहुत प्रसन्नता नहीं होगी, क्योंकि देनी ही थी। इसमें कोई खास बात ही न थी। न दे तो दुख होगा, दे तो कोई सुख नहीं होगा। अपरिचित आदमी अगर न दे तो खिन्नता कम होगी; लेकिन अगर दे तो प्रसन्नता बहुत होगी, कि कितना अच्छा आदमी है। जरूरी नहीं था कि देता और दिया।
तो ध्यान, महावीर कहते हैं, दोनों बातों का रखना जरूरी है--प्रसन्नता
भी न हो। अपरिचित के घर मांगना, खिन्नता की संभावना कम है। लेकिन संभावना है, अपेक्षा आदमी कर लेता है और खासकर मुनि, साधु, स्वामी बड़ी अपेक्षा कर लेते हैं। वे मान ही लेते हैं कि मैं इतना बड़ा त्यागी, और मुझे दो रोटी देने से इनकार किया। क्या समझ रखा है इन लोगों ने? मैंने सारा संसार छोड़ दिया; लात मार दी सब चीजों को और मुझे दो रोटी देने से इनकार कर दिया! हिंदू ऋषियों की तो आपको कथाएं पता ही हैं कि जरा में श्राप दे दें; अभिशाप दे दें, नाराज हो जाएं, अभी भी हिंदू भिक्षु जब द्वार पर आकर खड़ा हो जाता है, तो आपमें डर पैदा हो जाता है कि अगर नहीं दिया तो पता नहीं? चाहे वह कुछ जानता हो या न जानता हो, अगर अपना चिमटा ही हिलाने लगे, आंख बंद कर ले, कुछ मंत्र वगैरह पढ़ने लगे, तो आपको जल्दी देना पड़ता है कि निबटाओ। महावीर कहते हैं, खिन्न मत होना, प्रसन्न मत होना, वही पूज्य है--और भिक्षा अपरिचित के घर मांगना, ताकि उसे कोई चिंता न हो। अपरिचित के घर मांगना ताकि तुम्हें भी विचार न हो एक क्या मिलेगा? नहीं तो तुम भी सोचोगे। अनजान में जाना, भविष्य को निश्चित मत करना।
लेकिन जैन साधु ऐसा कर नहीं रहा है। जैन साधु परिचित के घर भिक्षा मांग रहा है। जैन साधु अजैन के घर भिक्षा नहीं मांगता, जैनी का पता लगाता है, और उन्हीं घरों में भिक्षा मांगता है, जहां उसे अच्छा भोजन मिलता है। जैन साधु जिस गांव से गुजरते हैं पद-यात्रा में, वहां अगर जैन न हों तो उनके साथ गृहस्थ चलते हैं, बैलगाड़ी में सामान लाद कर। तो हर गांव में जाकर वे चौका तैयार करते हैं।
अब यह साधारण गृहस्थ से भी ज्यादा खर्चीला धंधा है। दस-पांच आदमी साथ चलते हैं। और ये श्वेतांबर साधुओं का तो उतना मामला नहीं है; क्योंकि एक आदमी भी चले और वही भोजन तैयार कर दे, तो भी चल जाएगा। लेकिन दिगंबर मुनि की और भी तकलीफ है, क्योंकि दिगंबर मुनि एक ही जगह से भोजन नहीं लेता, जैसा कि महावीर के सूत्र में लिखा है। वह अनेक जगह से भोजन लेता है। दस, पंद्रह, बीस आदमियों का जत्था उसके पीछे चलता है; क्योंकि सभी जगह जैन नहीं हैं, अजैन के घर वह भिक्षा ले नहीं सकता, तो दस-पचीस चौके तैयार होंगे हर गांव में, ये पचीस जो उसके पीछे चल रहे हैं, पचीस चौके बनाएंगे, एक आदमी के भोजन के लिए! फिर वह इन सब चौकों से थोड़ा-थोड़ा मांग कर ले जाएगा!
चीजें कितनी पागल हो जाती हैं! ये पचीस आदमियों का भोजन एक आदमी खराब
कर रहा है। ये पचीस चौके व्यर्थ ही मेहनत उठा रहे हैं; ये पचीस आदमियों के साथ चलने का खर्च, सामान ढोना। यह सब फिजूल चल रहा है। और महावीर कहते हैं, अपरिचित के घर। निश्चित ही ये पचीस आदमी जो चौका लेकर चलेंगे मुनि के साथ, ये थोड़े ही दिनों में मुनि की आदतों से परिचित हो जाएंगे, क्या उसे पसंद है, क्या उसे पसंद नहीं है और अच्छी-अच्छी चीजें बनाने लगेंगे। और मुनि सहजभाव से लेता रहेगा।
यह सहजभाव धोखे का है। महावीर कहते हैं, अपरिचित के घर से भिक्षा, उन्छ वृत्ति से... और एक ही घर से भी मत लेना, क्योंकि किसी पर ज्यादा बोझ पड़ जाए! तो थोड़ा-थोड़ा, जैसे कबूतर चलता है, एक दाना यहां से उठा लिया, फिर दूसरा दाना कहीं और से उठा लिया, फिर तीसरा... ।

उन्छ-वृत्ति का मतलब है, कबूतर की तरह, एक घर के सामने आधी रोटी मिल गई, आगे बढ़ गए; दूसरे घर के सामने कुछ दाल मिल गई, आगे बढ़ गए; तीसरे घर के सामने कोई सब्जी मिल गई... ताकि किसी पर बोझ न हो। और रोज उसी घर में मत पहुंच जाना, अपरिचित घरों की तलाश करना।
महावीर ने कहा है कि तीन दिन से ज्यादा एक गांव में रुकना भी मत। बड़ी अदभुत बात है। क्योंकि मनस्विद कहते हैं कि तीन दिन का समय चाहिए कोई भी मोह निर्मित होने के लिए। अगर आप घर बदलते हैं तो आपको तीन दिन नया लगेगा, चौथे दिन से पुराना हो जाएगा। अगर आप किसी नये घर में सोते हैं तो तीन दिन तक, ज्यादा से ज्यादा आपको नींद की तकलीफ होगी, चौथे दिन सब ठीक हो जाएगा, आदी हो जाएंगे। तीन दिन कम से कम का समय है, जिसमें मन चीजों को पुराना कर लेता है।
तो महावीर कहते हैं, तीन दिन से ज्यादा एक गांव में मत रुकना, ताकि कोई मोह निर्मित न हो। और जब रुकना ही नहीं है तो मोह निर्मित करने का कोई प्रयोजन नहीं है; आगे बढ़ जाना है। अभी जैन साधु करते हैं यह काम, मगर गणित से करते हैं। विलेपार्ले को अलग गांव मानते हैं; फिर सांताक्रुज चले गए तो अलग गांव; फिर मैरीन ड्राइव आ गए तो अलग गांव; तो पचीसों साल बंबई में बिता देते हैं।
आदमी की चालाकी इतनी है कि महावीर हों, कि बुद्ध, कि कृष्ण, वह सबको रास्ते पर रख देता है। तुम कुछ भी करो, वह तरकीब निकाल लेता है, और सब योजना से चलता है। महावीर का मतलब इतना है केवल कि साधक योजना न बनाए, प्लानिंग न करे, आयोजित। गृहस्थ का अर्थ है कि वह योजना करेगा, कल का विचार करेगा, परसों का विचार करेगा, वर्ष का, दो वर्ष का, पूरे जीवन का विचार करेगा। वह संसारी का लक्षण है। साधु का लक्षण महावीर कहते हैं, वह कल का विचार न करे, आज जो हो--उसे जीता रहे। और जो उनकी साधना को मान कर चलते हैं, उन्हें चालाकियां नहीं खोजनी चाहिए। चालाकियां ही खोजनी हों तो उनकी साधना नहीं माननी चाहिए। और साधनाएं हैं दूसरी, हट जाना चाहिए। जिस गुरु के पीछे चलना हो, पूरा चलना चाहिए, तो ही कहीं पहुंचना हो सकता है। अन्यथा बेहतर है, किसी और गुरु के पीछे चलो।
पूरे चलने से कोई पहुंचता है। पूरे भाव से संयुक्त होने से कोई पहुंचता है। गुरुओं का उतना सवाल नहीं है। महावीर के पीछे चलो, कि बुद्ध, कि कृष्ण, कि क्राइस्ट, कि मोहम्मद, कोई बड़ा फर्क नहीं है। रास्ते अलग-अलग हैं, लेकिन एक शर्त सबके साथ है कि जिसके साथ चलो, फिर पूरे भाव से चलो, फिर चालाकियां मत खोजो। गुरु के साथ खेल मत खेलो, क्योंकि खेल में तुम्हीं हारोगे, गुरु को हराने का कोई उपाय नहीं है। क्योंकि हराने का कोई सवाल नहीं है।
मेरे पितामह, मेरे दादा कपड़े की दुकान करते थे। मैं जब छोटा था, तब मुझे उनकी बातें सुनने में बड़ा रस आता था। क्योंकि वे कभी-कभी कम बोलते थे, लेकिन ग्राहकों से कभी-कभी वह ऐसी बात कह देते थे जो बड़ी मतलब की होती थी। ग्रामीण थे, अशिक्षित थे, मगर बड़ी चोट की बात कहते थे। वे ग्राहक को एक ही भाव कहना पसंद करते थे। तो एक ही भाव कह देते कि यह साड़ी दस रुपये की है। अगर ग्राहक मोल-भाव करता तो वे उसे कहते कि देख, तरबूज छुरी पर गिरे कि छुरी तरबूज पर, दोनों हालत में तरबूज कटेगा। अगर तुझे मोल-भाव करना हो तो वैसा कह दे; यह साड़ी अलग कर देते हैं, दूसरी साड़ी तेरे सामने लाते हैं। मगर ध्यान रखना, कटेगा तू ही; चाहे मोल-भाव कर और चाहे एक भाव कर। छुरी कटने वाली नहीं है। दुकानदार कैसा कटेगा?
जब भी मैं गुरु-शिष्य के संबंध में सोचता हूं, मुझे उनकी बात याद आ जाती है। शिष्य ही कटेगा; गुरु के कटने का कोई उपाय नहीं है। वह अब है ही नहीं जो कट सके। इसलिए चालाकी कम से कम गुरु के साथ मत करना। लेकिन सारे साधु-संन्यासी यही कर रहे हैं; अपने को बचाए रखते हैं तरकीबें निकालकर, और धोखा भी देते रहते हैं कि वे पालन कर रहे हैं, और महावीर के साथ चल रहे हैं। मत चलो। कोई महावीर का आग्रह नहीं है। कोई जरूरत भी नहीं हैं चलने की, अगर पसंद नहीं है। वहां चलो जो पसंद है, लेकिन जहां भी चलो, पूरे मन से।

"जो संस्तारक, शय्या, आसन, और भोजन-पान आदि का अधिक लाभ होने पर भी अपनी आवश्यकता के अनुसार थोड़ा ग्रहण करता है, संतोष की प्रधानता में रत होकर अपने आपको सदा संतुष्ट बनाए रखता है, वही पूज्य है।"
गृहस्थ का लक्षण है, सदा अभाव में जीना। वह उसका मूल लक्षण है। हमेशा
जो उसे चाहिए, वह उसके पास नहीं है। जिस मकान में आप रह रहे हैं, वह आपको चाहिए नहीं। आपको चाहिए कोई बड़ा, जो नहीं है। जिस कार में आप चल रहे हैं वह आपके लिए नहीं है। आपको कोई और गाड़ी चाहिए, जो नहीं है। जो कपड़े आप पहन रहे हैं, वह आपके योग्य नहीं हैं। आपको कोई और कपड़े चाहिए। जिस पत्नी के साथ आपका विवाह हो गया है, वह आपके योग्य नहीं है। आपको कोई और स्त्री चाहिए। पूरे वक्त जो नहीं है, वह चाहिए। जो है, वह व्यर्थ मालूम पड़ता है, और जो नहीं है, वह सार्थक मालूम पड़ता है। वह भी मिल जाएगा, उसको भी आप व्यर्थ कर लेंगे, क्योंकि आप कलाकार हैं। ऐसी कोई स्त्री नहीं है, जिसको आप एक न एक दिन तलाक देने को राजी न हों, क्योंकि तलाक स्त्री से नहीं आते, आपकी वृत्ति से आते हैं। जो आपके पास नहीं होता, वह पाने योग्य मालूम पड़ता है; जो आपके पास होता है, वह जाना-माना परिचित है; कुछ पाने योग्य मालूम नहीं होता।
ऐसा पति अगर आप खोज लें, जो अपनी पत्नी को ही प्रेम किए जा रहा है, अनूठा है, साधु है। बड़ा कठिन है अपनी पत्नी को प्रेम करना; बड़ी साधना है। दूसरे की पत्नी के प्रेम में पड़ना एकदम आसान है। जो दूर है, वह आकर्षित करता है। दूर के ढोल ही सुहावने नहीं होते, दूर की सभी चीजें सुहावनी होती हैं।
साधु का लक्षण है, संतोष। गृहस्थ का लक्षण है, अभाव। गृहस्थ उस पर आंख टिकाए रखता है, जो उसके पास नहीं है और जो उसके पास है वह बेकार है। साधु उस पर आंख रखता है, जो है; वही सार्थक है। जो नहीं है, उसका उसे विचार भी नहीं होता। जो है वही सार्थक है, ऐसी प्रतीति का नाम संतोष है। इसलिए जरूरी नहीं है कि आप घर-द्वार छोड़ें तब साधु हो पाएंगे। जो है, अगर आप उससे संतुष्ट हो जाएं, तो साधुता आपके पास--जहां आप हैं वहीं आ जाएगी।
संतुष्ट जो हो जाए, वह साधु है। असाधुता गिर गई। लेकिन जिनको आप साधु कहते हैं, वे भी संतुष्ट नहीं हैं। हो सकता है उनके असंतोष की दिशा बदल गई हो। वे कुछ नई चीजों के लिए असंतुष्ट हो रहे हों, जिनके लिए पहले नहीं होते थे। मगर असंतुष्ट हैं। वहां भी बड़ी प्रतिस्पर्धा है। कौन महात्मा का नाम ज्यादा हुआ जा रहा है, तो बेचैनी शुरू हो जाती है। कौन महात्मा की प्रसिद्धि ज्यादा हुई जा रही है, तो छोटे महात्मा उसकी निंदा में लग जाते हैं। क्योंकि उसे नीचे खींचना, सीमा में रखना जरूरी है।
महात्माओं की बातें सुनें तो बड़ी हैरानी होगी कि वे उसी तरह की चर्चाओं में लगे हुए हैं, जैसे आम आदमी लगा हुआ है। सिर्फ फर्क इतना है कि उनका धंधा जरा अलग है, इसलिए जब वे एक महात्मा के खिलाफ बोलते हैं तो आपको ऐसा नहीं लगता है कि कुछ गड़बड़ कर रहे हैं। लेकिन जब एक दुकानदार दूसरे दुकानदार के खिलाफ बोलता है तो आप समझते हैं कि कुछ गड़बड़ कर रहा है; नुकसान पहुंचाना चाहता है। उनकी भी आकांक्षाएं हैं। वहां भी चेष्टा बनी हुई है कि औरऔर। ऐसा भी हो सकता है कि वे परमात्मा को पाने के लिए ही चिंतारत हों और सोच रहे हों, और परमात्मा कैसे मिले, और परमात्मा कैसे मिले? अभी एक समाधि मिल गई है, अब और गहरी समाधि कैसे मिले? लेकिन ध्यान भविष्य पर लगा हुआ है, तो गृहस्थ ही चल रहा है।
संन्यस्त का अर्थ है कि जो है, हम उससे इतने राजी हैं कि अगर अब कुछ भी
न हो, तो असंतोष पैदा न होगा।
कठिन बात है! घर छोड़ना बड़ा आसान है, अभाव की दृष्टि छोड़ देना बड़ा कठिन है। जो मुझे मिला है, अगर मैं इसी वक्त मर जाऊं तो मरते क्षण में मुझे ऐसा नहीं लगेगा कि कोई चीज की कमी रह गई, कि कुछ और पाने को था, अगर कल जिंदा रह जाता तो उसे भी पा लेता। ऐसी भावदशा कि मृत्यु अचानक आ जाए तो आपको बिल्कुल राजी पाए, और आप कहें कि मैं तैयार हूं। क्योंकि जो भी होना था हो चुका, जो पाना था पा लिया, जो मिल सकता था मिल गया, मैं संतुष्ट हूं। इससे ज्यादा की कोई मांग न थी। जीवन अपने पूरे अर्थ को खोल गया है।

सोचें, अगर मृत्यु अभी आ जाए तो आपको राजी पाएगी? आप कहेंगे कि दो दिन
तो ठहर जा! एक धंधे में पैसा उलझाया है, कम से कम नतीजे का तो पता चल जाए! कि लाटरी की टिकट खरीदी है, अभी परसों ही तो वह खुलने वाली है, खबर आने वाली है; कि लड़की का विवाह करना है; कि बेटा युनिवर्सिटी गया है; परीक्षा दे दी है, रिजल्ट खुलने को दो दिन हैं... या आप राजी पाएंगे? मौत आकर कहे कि तैयार हैं, आप खड़े हो जाएंगे कि चलता हूं?

अगर आप खड़े हो सकें, तो आप संन्यस्त हैं। अगर आप समय मांगें, तो आप गृहस्थ हैं। महावीर कहते हैं, संतोष पूज्य है, जो संतुष्ट है, वही पूज्य है।
"गुणों से ही मनुष्य साधु होता है, और अगुणों से असाधु। अतः हे मुमुक्षु! सदगुणों को ग्रहण कर और दुर्गणों को छोड़। जो साधक अपनी आत्मा द्वारा अपनी आत्मा के वास्तविक स्वरूप को पहचान कर राग और द्वेष दोनों में समभाव रखता है, वही पूज्य है।"
गुणों से मनुष्य साधु होता है, घर छोड़ने से नहीं; वस्त्र छोड़ने से नहीं; पति, पत्नी, परिवार छोड़ने से नहीं; धंधा-दुकान, बाजार छोड़ने से नहीं। गुणों से व्यक्ति साधु होता है। लेकिन दुनिया के अधिक साधु गुण की फिकर नहीं करते, क्योंकि गुणों को बदलना कठिन है, जटिल है। परिस्थिति को बदलते हैं, मनःस्थिति को नहीं। जिसको भी साधु होने का ख्याल हो जाता है, वह सोचता है, छोड़ो घर-द्वार; भागो। सच तो यह है कि घर-द्वार किसके सुखद हैं। जो रह रहे हैं, बड़े साधक हैं। जो भाग गए हैं, वे केवल इतनी ही खबर देते हैं कि कमजोर रहे होंगे। कमजोरी पलायन बन जाती है।
महावीर का पलायन कमजोरी का पलायन नहीं है। महावीर कहते हैंः संसार छोड़ा जा सकता है, लेकिन शक्ति से, कमजोरी से नहीं। उस दिन संसार छोड़ना जिस दिन वह व्यर्थ हो जाएं। लेकिन हम दुख के कारण छोड़ते हैं, व्यर्थता के कारण नहीं। यह बड़ा फर्क है। महावीर संसार छोड़ते हैं, क्योंकि वहां कुछ है ही नहीं जिसको पकड़ने की जरूरत हो। सब व्यर्थ है। तो संसार ऐसे गिर जाता है जैसे सांप की केंचुली गिर जाती है और सांप आगे सरक जाता है। फिर सांप लौट-लौट कर नहीं देखता है कि कितनी बहुमूल्य केंचुली दिया... "अरे, कोई तो समझो! कोई तो आओ, देखो कि त्याग कर दिया! महात्यागी हूं, खोल छोड़ दी अपनी!"
सांप खोल से बाहर निकल जाता है, खोल व्यर्थ हो गई। महावीर कहते हैंः संसार छोड़ा जा सकता है, लेकिन तभी, जब संसार इतना व्यर्थ हो जाएं कि छोड़ने- जैसा भी मालूम न पड़े।
ध्यान रहे, आपको वही चीज छोड़ने-जैसी मालूम पड़ती है, जो पकड़ने जैसी मालूम पड़ती थी पहले। छोड़ने का ख्याल, पकड़ने की वृत्ति का हिस्सा है। अगर एक-एक आदमी से हम पूछें कि अगर तुझे सच में पूरा मौका हो भागने का घर से, और कोई असुविधा नहीं आएगी इससे बड़ी वहां जो यहां आ रही है, तो सभी लोग राजी हो जाऐंगे। वे इसी डर से नहीं छोड़ते हैं कि छोड़ कर जाओगे कहां? और जहां जाओगे वहां फिर असुविधाएं हैं। लेकिन कमजोर आदमी भाग जाता है। कमजोर आदमी दुखी की भाषा ही समझता है।
मैंने सुना है, एक बड़ी फर्म में मालिक कुछ इकसेंट्रिक--थोड़ा सा झक्की आदमी था; मौजी और झक्की, उसने अचानक एक दिन घोषणा की अपने सारे कर्मचारियों को इक्ट्ठा करके कि मैं तुम सबको तुम्हारी पेंशन का जो पुराना हिसाब था वह तो दूंगा ही और हर व्यक्ति को जब वह रिटायर होगा, तो उसको पचास हजार रुपए दूंगा। सब लोग लेने को राजी हैं, तो सब लोग महीने के भीतर दस्तखत कर दें फार्म पर। शर्त एक ही हैः सबके दस्तखत होने चाहिए; अगर एक ने भी दस्तखत न किया तो यह नियम लागू न होगा।
पर लोगों ने कहा, यह शर्त तो बड़ी मजेदार है, कौन दस्तखत न करेगा! लोगों
का क्यू लग गया एकदम जल्दी दस्तखत करने को कि कहीं महीना न निकल जाए। पहले दिन ही सब लोगों ने, सिर्फ मुल्ला नसरुद्दीन को छोड़ कर, दस्तखत कर दिए। मुल्ला नहीं आया। एक दिन, दो दिन, तीन दिन--आखिर लोग चिंतित होने लगे। लोगों ने कहा, "भाई, दस्तखत क्यों नहीं कर रहे हो? मुल्ला ने कहाः दिस इ.ज टू कांप्लिकेटेड, एण्ड आई डोंट अंडरस्टैंट, एण्ड अनलेस आई अंडरस्टैंड

राइटली, आई एम नॉट गोइंग टु साइन। जरा जटिल है--यह पूरी योजना, और भरोसा भी नहीं आता, और समझ में भी नहीं बैठता कि कोई आदमी क्यों पचास हजार रुपएं देगा? जरूर इसमें कोई चाल होगी। यह फंसा रहा है!
सबने समझाया--मित्रों ने, आफिसर्स ने, मैनेजर ने, यूनियन के लोगों ने, लेकिन मुल्ला अपनी जिद्द पर अड़ा रहा कि मेरी कुछ समझ में नहीं आता। सब सुन कर वह कहता कि मेरी समझ में नहीं आता। इस मामले में कोई चाल है। पचास हजार किसलिए? और एक आदमी का सवाल नहीं है; कोई पांच सौ कर्मचारी हैं। --ढ़ाई करोड़ रुपया! मान नहीं सकते! बुद्धि में नहीं घुसता!
आखिर सब लोगों ने आकर कहा कि यह तो मार डालेगा सबको। आखिरी दिन आ गया,
पर कोई रास्ता नहीं निकला। आखिर मैनेजर ने जाकर मालिक को कहा कि वह आदमी, मुल्ला नसरुद्दीन दस्तखत नहीं कर रहा है। हम सब फंस गए और आपने भी खूब शर्त लगाई। हम सोचते थे, आप ही एक झक्की हो--एक हमारे बीच भी है आपसे भी पहुंचा हुआ है।
मालिक ने कहाः उसे बुलाओ। बीसवीं मंजिल पर मालिक का आफिस था। नसरुद्दीन लाया गया; दरवाजे के भीतर प्रविष्ट हुआ। मालिक ने फार्म, कलम तैयार रखी है दस्तखत करने के लिए। दरवाजा बंद किया, तब नसरुद्दीन ने देखा कि पांच पहलवान आदमी दरवाजे के पास खड़े हैं।
मालिक ने कहाः इस पर दस्तखत कर दो। मैं दस तक गिनती करूंगा, इस बीच अगर दस्तखत नहीं किए तो पीछे पहलवान जो खड़े हैं, वे उठा कर तुम्हें खिड़की के बाहर फेंक देंगे! नसरुद्दीन ने बड़ी प्रसन्नता से दस्तखत कर दिए। ना तो सवाल उठाया, न कोई झंझट खड़ी की; न कोई तर्क, न कोई शंका। और ऐसा भी नहीं कि दुख से किए, बड़ी प्रसन्नता से, आह्लादित।
मालिक भी हैरान हुआ। उसने कहा कि नसरुद्दीन, तब तुमने पहले ही दस्तखत क्यों नहीं कर दिए? नसरुद्दीन ने कहाः नो वन एक्सप्लेन्ड मी सो क्लीयरली। बात बिल्कुल साफ है, पर कोई समझाए तब न।
हम भी दुख की, मृत्यु की भाषा समझते हैं। अगर आप संन्यस्त भी होते हैं
तो मरने के डर से; अगर संन्यस्त होते हैं तो गृहस्थी के दुख से, पीड़ा से, संताप से। बस, हम समझते ही हैं मौत की भाषा से। आनंद की भाषा का हमें कोई पता भी नहीं है। महावीर संन्यस्त हुए महा-आनंद से। उनके पीछे जो साधुओं का समूह चल रहा है, वह दुखी लोगों की जमात है। कोई परेशान था कि पत्नी सता रही थी। कोई परेशान था कि पत्नी मर गई। स्त्रियों की बड़ी संख्या है जैन साधुओं में, साध्वियों में काफी बड़ी--पांच-सात गुनी ज्यादा पुरुषों से। उनमें अधिक विधवाएं हैं, जिनके जीवन में कोई सुख का उपाय नहीं रहा, या गरीब घर की लड़कियां हैं, जिनका विवाह नहीं हो सकता था, क्योंकि दहेज की कोई व्यवस्था नहीं थी, या कुरूप स्त्रियां हैं, जिन्हें कोई पुरुष चाह नहीं सकता था, या बीमार और रुग्ण स्त्रियां हैं, जो अपने शरीर से इतनी परेशान हो गई थीं कि उससे छुटकारा चाहती थीं।
साधु-साध्वियों की मनो-कथा इकट्ठी करने जैसी है कि कोई क्यों साधु हुआ है। अगर कोई दुख से साधु हुआ है तो उसका महावीर से कोई संबंध नहीं जुड़ सकता। क्योंकि महावीर आनंद की भाषा... आप जानते हों, तो ही महावीर से जुड़ सकते हैं।
मनुष्य कुछ छोड़ने से साधु नहीं होता, गुणों से साधु होता है। गुण पैदा करने पड़ते हैं। गुणों का आविर्भाव करना पड़ता है। और यह भी ख्याल में ले लें कि महावीर पहले कहते हैं, गुणों से मनुष्य साधु होता है और अगुणों से असाधु। ये भी ध्यान में ले लें कि दुर्गुण छोड़े नहीं जा सकते, क्योंकि छोड़ने की प्रक्रिया नकारात्मक है। सदगुण पैदा किए जा सकते हैं, वह विधायक हैं। और सदगुण जब पैदा हो जाते हैं तो दुर्गुण छूटने लगते हैं। अगर आप दुर्गुणों पर ही ध्यान रखें और उनको ही छोड़ने में लगे रहे, तो आप व्यर्थ ही नष्ट हो जाएंगे, क्योंकि दुर्गुण तो सिर्फ इसलिए हैं कि सदगुण नहीं हैं। दुर्गुणों की फिकर ही मत करें; सदगुणों को पैदा करने की चेष्टा करें। समझें कि एक आदमी सिगरेट पी रहा है, शराब पी रहा है, वह कोशिश में लगा रहता है कि इसको छोड़ें; छोड़ नहीं पाता, क्योंकि वह यह देख ही नहीं पा रहा है कि कोई बहुमूल्य चीज की भीतर कमी है, जिसके कारण शराब मूल्यवान हो गई है।

एक मित्र हैं मेरे; यहां मौजूद हैं। वे शराब पीए चले जाते हैं। भले आदमी हैं। पत्नी उनके पीछे लगी रहती है कि छोड़ो। पत्नी जरूरत से ज्यादा भली है; उनसे भी ज्यादा भली है, इसलिए पीछे लगी रहती है, पिंड ही नहीं छोड़ती उनका कि छोड़ो, शराब पीना छोड़ो। न पत्नी की यह समझ में आता है कि निरंतर बीस साल से उसकी यह कोशिश कि शराब छोड़ो छोड़ो, उनको शराब पीने की तरफ धक्का दे रही है। पत्नी मुझे कह रही थी आकर कि वैसे तो वे मेरे सामने बिल्कुल शांत रहते हैं, दब्बू रहते हैं, जब होश में रहते हैं; लेकिन रात जब वे पीकर आ जाते हैं तो बड़ा ज्ञान बघारने लगते हैं और बड़ी ऊंची बातें! और आपको सुन लेते हैं, तो वह जो सुन लेते हैं उसको आकर रात दो-दो, तीन-तीन बजे तक प्रवचन करते हैं और फिर वे बिल्कुल नहीं दबते मुझसे। फिर वे सोने को भी राजी नहीं होते। फिर तो वे डरते ही नहीं; किसी को कुछ समझते ही नहीं। लेकिन दिन में बिल्कुल दब्बू रहते हैं!
अब इसको थोड़ा समझना जरूरी है कि हो सकता है वे दब्बूपन मिटाने के लिए
ही शराब पीना शुरू कर दिए हों। पत्नी ने इतना दबा दिया है कि जब तक वे होश में हैं, तब तक हीन मालूम पड़ते हैं; जब होश खो जाता है, तब फिर वे फिकर नहीं करते पत्नी की और बीस साल निरन्तर किसी की खोपड़ी को सताते रहो कि मत पीओ, मत पीओ, मत पीओ, बिना इसकी फिकर किए कि वह क्यों पी रहा है।
कोई व्यक्ति शराब पीने ऐसे ही नहीं चला जाता। जीवन में कुछ दुख है, कुछ भुलाने योग्य है। सभी जानते हैं कि शराब नुकसान कर रही है, फिर भी नुकसान को झेल कर भी आदमी पीए जाता है, क्योंकि कुछ जो भुलाने योग्य है, वह इतना ज्यादा है कि नुकसान सहना बेहतर है, बजाय उसको याद रखने के।
लेकिन हम दुर्गण छोड़ने पर जोर देते हैं। दुर्गुण छुड़ाने से नहीं छूटते। वह पत्नी भूल में है। वह शराब कभी भी नहीं छूटेगी। वह शराब को पिलाने में पचास प्रतिशत उसका भी हाथ है; ज्यादा भी हो सकता है, क्योंकि पत्नी से पति डरने लगा है। जहां डर है, वहां प्रेम खो जाता है, और जहां प्रेम नहीं है, वहां आदमी अपने को भुलाने की चेष्टा शुरू कर देता है। मैंने उनकी पत्नी को कहा कि कम से कम तू तीन महीने के लिए इतना कर कि छोड़ दे कहना। उसने कुछ ही दिन बाद आकर मुझे कहा कि बड़ी मुश्किल है! जैसे उनकी आदत पड़ गई पीने की, वैसे ही मेरी आदत पड़ गई छुड़ाने की।
अब आपको पक्का ख्याल नहीं हो सकता, अगर पति सच में ही छोड़ दे शराब पीना, तो पत्नी परेशान हो जाएगी; जितनी वह अभी है उससे ज्यादा, क्योंकि छुड़ाने को कुछ भी न बचेगा।
मैंने उस पत्नी को कहा कि जब तुझे लगता है कि तू कहना नहीं छोड़ सकती,
तो पीना छोड़ना कितना कठिन होगा, यह तो सोच! तो थोड़ी दया कर और तेरे कहने से नहीं छूटती है, यह भी तुझे अनुभव है। बीस साल, काफी अनुभव है।
कोई दुर्गुण सीधा नहीं छोड़ा जा सकता। जो भी छुड़ाने की कोशिश करते हैं
वे नासमझ हैं। वे दुर्गुण को और बढ़ाते हैं। सदगुण पैदा किया जाए। कोई आदमी अपने को भुलाने के लिए शराब पी रहा है, तो उस आदमी के जीवन में कुछ सुखद नहीं है। उस आदमी के जीवन में सुखद पैदा हो, तो वह स्वयं को भुलाना छोड़ देगा, क्योंकि कोई भी सुख को नहीं भूलना चाहता; सभी दुख को भूलना चाहते हैं। और इस आदमी को भी खुद ख्याल नहीं है कि मैं क्या कर रहा हूं। वह भी छोड़ने की कोशिश करते हैं कि छोड़ दूं, छोड़ दूं, पर कुछ नहीं होता। छोड़ कर क्या होगा? कुछ भीतर खो रहा है। कोई मौलिक तत्व भीतर मौजूद नहीं है। उसको पहले पैदा करना पड़ेगा।
सभी शराब पीने वाले अपराधी नहीं हैं, सिर्फ मूर्च्छित हैं; मानसिक रूप से रुग्ण हैं और जीवन का आह्लाद नहीं है; भीतर तो शराब की जरूरत पड़ रही है। इन मित्र को मैं कहता हूं कि जीवन का आह्लाद पैदा करो; नाचो, गाओ, ध्यान करो, प्रसन्न होओ, और प्रसन्नता की थोड़ी सी रेखा तुम्हारे भीतर आ जाए तो तुम शराब पीना बंद कर दोगे, क्योंकि जब भी तुम शराब पीओगे, वह प्रसन्नता की रेखा मिट जाएगी। अभी दुख है भीतर, शराब पीने से दुख मिटता है; आनंद होगा, आनंद मिटेगा। आनंद को कोई नहीं मिटाना चाहता। तो तुम आनंदित होने की कोशिश करो, शराब का बिल्कुल ख्याल ही छोड़ दो। पीते रहो और आनंदित होने की कोशिश करो। गुण को पैदा करो; दुर्गुण से मत लड़ो।

दुर्गुण से लड़ना मूढ़तापूर्ण है। इसलिए महावीर कहते हैं: गुणों से मनुष्य साधु हो जाता है, दुर्गुणों से असाधु।
"... हे मुमुक्षु! सदगुणों को ग्रहण कर और दुर्गुणों को छोड़।"
दुर्गुण छूट ही जाते हैं सदगुण करने से, छोड़ने की चेष्टा भी नहीं करनी पड़ती; गिरने लगते हैं, जैसे सूखे पत्ते वृक्ष से गिर जाते हैं।
"जो साधक अपनी आत्मा द्वारा अपनी आत्मा के वास्तविक स्वरूप को पहचान
कर राग और द्वेष दोनों में समभाव रखता है, वही पूज्य है।"
जीवन के दो ही द्वंद्व हैं। कोई आकर्षित करता है तो "राग" पैदा होता है; कोई विकर्षित करता है तो "द्वेष" पैदा होता है। किसी को हम चाहते हैं हमारे पास रहे, और किसी को हम चाहते हैं पास न रहे। किसी को हम चाहते हैं सदा जीए, चिरंजीवी हो, और किसी को हम चाहते हैं, अभी मर जाए। हम जगत में चुनाव करते हैं कि यह अच्छा है और यह बुरा है; ये मेरे लिए हैं मित्र, और ये शत्रु हैं, मेरे खिलाफ हैं।
महावीर कहते हैं, साधु वही है, वही पूज्य है, जो न राग करता है, न द्वेष। क्योंकि महावीर कहते हैं कि तुम्हारे अतिरिक्त तुम्हारे लिए कोई भी नहीं है। तुम ही तुम्हारे मित्र हो और तुम ही एकमात्र तुम्हारे शत्रु हो। महावीर ने बड़ी अनूठी बात कही है कि आत्मा ही मित्र है और आत्मा ही शत्रु है। बाहर मित्र-शत्रु मत खोजो। वहां न कोई मित्र है, न कोई शत्रु। वे सब अपने लिए जी रहे हैं, तुम्हारे लिए नहीं। तुमसे उन्हें प्रयोजन भी नहीं है। तुम भी अपने भीतर ही अपने मित्र को खोजो, और अपने शत्रु को विसर्जित करो।
और तब एक बड़ी अदभुत घटना घटती है। जैसे ही कोई व्यक्ति यह समझने लगता
है कि मैं ही मेरा मित्र हूं और मैं ही मेरा शत्रु, वैसे ही जीवन रूपांतरित होना शुरू हो जाता है; क्योंकि दूसरों पर से नजर हट जाती है, अपने पर नजर आ जाती है। तब जो बुरा है, वह उसे काटता है, क्योंकि वह शत्रु है। तब जो शुभ है, वह उसे जन्माता है, क्योंकि वही मित्र है। और जिस दिन कोई व्यक्ति भीतर अपनी आत्मा की पूरी मित्रता को उपलब्ध हो जाता है, उस दिन इस जगत में उसे कोई भी शत्रु नहीं दिखाई पड़ता।
ऐसा नहीं कि शत्रु मिट जाएंगे। शत्रु रहे आएंगे, लेकिन वे अपने ही कारण शत्रु होंगे, आपके कारण नहीं, और उन शत्रुओं पर भी आपको दया आएगी, करुणा आएगी, क्योंकि वे अकारण परेशान हो रहे हैं; कुछ लेना-देना नहीं है। महावीर कहते हैं: अपने को ही अपने द्वारा जान कर राग-द्वेष से जो मुक्त होता जाता है, और धीरे-धीरे स्वयं में जीने लगता है; दूसरों से अपने संबंध काट लेता है... । इसका यह मतलब नहीं है कि वह दूसरों से संबंधित न रहेगा। लेकिन तब एक नये तरह के संबंध का जन्म होता है। वह बंधन नहीं है। अभी हम संबंधित हैं; वह बंधन है, जकड़ा हुआ जंजीरों की तरह। एक और संबंध का जन्म होता है, जब व्यक्ति अपने में थिर हो जाता है। तब उसके पास लोग आते हैं, जैसे फूल के पास मधुमक्खियां आती हैं। अनेक लोग उसके पास आएंगे। अनेक लोग उससे संबंधित होंगे, लेकिन वह असंग ही बना रहेगा। मधुमक्खियां मधु ले लेंगी और उड़ जाएंगी; फूल अपनी जगह बना रहेगा। फूल रोएगा नहीं कि मधुमक्खियां चली गईं। फूल चिंतित नहीं होगा कि वे कब आएंगी। नहीं आएंगी तो फूल मस्त है; मधुमक्खियां आएंगी तो फूल मस्त है। न उनके आने से, न उनके न आने से कोई फर्क पड़ता है। संबंध अब भीतर से बाहर की तरफ नहीं जाता।
जो व्यक्ति स्वयं में थिर हो जाता है, उसके आस-पास बहुत लोग आते हैं; संबधित होते हैं लेकिन वे भी अपने कारण संबंधित होते हैं। वह व्यक्ति असंग बना रहता है।
भीड़ के बीच अकेला हो जाना संन्यास है। गृहस्थी के बीच अकेला हो जाना संन्यास है। संबंधों के बीच असंग हो जाना संन्यास है। महावीर कहते हैं, ऐसा व्यक्ति पूज्य है।

आज इतना ही।

महावीर-वाणी, भाग 2
सत्रहवां प्रवचन

राग, द्वेष, भय से रहित है ब्राह्मण (ब्राह्मण-सूत्रः 1)

जो न सज्जइ आगन्तुं, पव्वयन्तो न सोयई।
रमइ अज्जवयणम्मि, तं वयं बूम माहणं।।
जायरुवं जहामट्ठं, निद्धन्तमल-पावगं।
राग-दोस-भयाईयं, तं वयं बूम माहणं।।
तवस्सियं किसं दन्तं, अवचियमंससोणियं।
सुव्वयं पत्तनिव्वाणं,
तं वयं बूम माहणं।।

जो आने वाले स्नेही-जनों में आसक्ति नहीं रखता, जो उनसे दूर जाता हुआ शोक नहीं करता, जो आर्य-वचनों में सदा आनंद पाता है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।
जो अग्नि में डाल कर शुद्ध किए हुए और कसौटी पर कसे हुए सोने के समान निर्मल है, जो राग, द्वेष तथा भय से रहित है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।
जो तपस्वी है, जो दुबला-पतला है, जो इंद्रिय-निग्रही है, उग्र तपसाधना
के कारण जिसका रक्त और मांस भी सूख गया है, जो शुद्धव्रती है, जिसने निर्वाण पा लिया है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।

ईसप की एक कथा है। एक दिन एक सिंह, एक गधा और एक लोमड़ी शिकार को निकले साथ-साथ। उन्होंने काफी शिकार किया। फिर जब सूर्य ढलने लगा और सांझ हो गई, तो सिंह ने लोमड़ी को कहा कि तू समझदार भी है, चालाक भी, गणितज्ञ भी, तार्किक भी; उचित होगा कि तू ही इस शिकार के तीन विभाजन कर दे, बराबर-बराबर, ताकि तीनों शिकार में भाग लेने वाले साथियों को बराबर भोजन उपलब्ध हो सके। बड़े चमत्कारिक ढंग से लोमड़ी ने विभाजन किए जो बिल्कुल बराबर थे, तीन हिस्से किए। लेकिन सिंह बहुत नाराज हो गया। उसने कुछ कहा भी नहीं; लोमड़ी की गर्दन दबाई और उसको भी शिकार के ढेर में फेंक दिया और गधे से कहा कि तू अब दो हिस्से कर दे, एक मेरे लिए और एक तेरे लिए, बिल्कुल बराबर-बराबर। गधे ने सारे शिकार का एक ढेर लगा दिया और एक मरे हुए कौए की लाश को एक तरफ कर दिया और कहा कि महानुभाव! यह मेरा आधा भाग कौआ और वह आपका आधा भाग। सिंह ने कहाः गधे, मित्र गधे! तूने इतना समान विभाजन करने की कला कहां से सीखी? किसने तुझे सिखाया ऐसा शुद्ध गणित? तूने बिल्कुल बराबर विभाजन कर दिए!
और विभाजन क्या है, एक तरफ कौआ मरा हुआ और एक तरफ सारे शिकार का ढेर।
गधे ने कहाः दिस डेड फाक्स--इस मरी हुई लोमड़ी ने मुझे यह कला सिखाई बराबर विभाजन करने की!
ईसप ने कहा है कि गधे भी अनुभव से सीख लेते हैं, लेकिन आदमी नहीं सीखता। आदमी अनुभव से सीखता हुआ मालूम ही नहीं पड़ता। हजारों-हजार साल वही अनुभव, वही अनुभव बार-बार दोहरता है, फिर भी आदमी वैसा ही बना रहता है। उसमें कोई फर्क पड़ता हुआ मालूम नहीं पड़ता। जैसे अनुभव बह जाता है उसके ऊपर से; कहीं भी दे नहीं पाता उसके रोओं में, उसकी चमड़ी में, उसकी हड्डियों में, उसके हृदय तक तो पहुंचने की बात ही दूर। ऊपर-ऊपर वर्षा के जल की तरह गिरता है और बह जाता है और आदमी वैसे का वैसा बना रहता है।
मनुष्य को हजारों साल के अनुभव में यह बात साफ हो जानी चाहिए थी, इसमें कोई भी अड़चन नहीं है कि जन्म से धर्म का कोई भी संबंध नहीं है। एक आदमी मुसलमान के घर में पैदा हो सकता है, लेकिन इससे मुसलमान नहीं हो सकता। एक आदमी हिंदू के घर में पैदा हो सकता है, लेकिन पैदा होने से धर्म का क्या लेना-देना है? एक आदमी जैन कुल में पैदा होता है, लेकिन वह कुल का धर्म होगा, व्यक्ति का निजी चुनाव नहीं।

धर्म का प्रारंभ ही तब होता है जब व्यक्ति अपनी स्वेच्छा से चुनता है। जब बोधपूर्वक निर्णय लेता है, जब समझपूर्वक संकल्प करता है, जब दीक्षित होता है स्वयं एक धारा में, तब धर्म का जन्म होता है।
दुनिया में इतना अधर्म है, उसके बुनियादी कारणों में एक कारण यह भी है
कि हमारा धर्म उधार है। उधार धर्म जिंदा नहीं हो सकता, मरा हुआ होगा। आपके पिता ने ही नहीं चुना है; न मालूम कितनी पीढ़ियों पहले किसी ने चुना। कोई व्यक्ति महावीर के पास दीक्षित हुआ। कोई व्यक्ति महावीर से आकर्षित हुआ; आंदोलित हुआ। किसी व्यक्ति को महावीर के पास तरंगें मिलीं परम सत्य की। वह दीक्षित हुआ। उसकी दीक्षा बहुमूल्य थी। वह उसका निर्णय था। वह शायद हिंदू घर में पैदा हुआ था; दीक्षित हुआ, जैन बना। उस आदमी के लिए जैन होने का कोई मूल्य था, क्योंकि जैन होने के लिए उसने कुछ चुकाया था, कुछ खोया था, कुछ मिटाया था। कुछ पाने के लिए कुछ त्यागा था; मोह छोड़े थे, संस्कार छोड़े थे, बचपन से पड़ी हुई धारणाएं छोड़ी थीं। जो सिखाया गया ज्ञान था, उसे फेंका था और एक नई यात्रा पर, अनजाने मार्ग पर चला था। उसका साहस था; उस साहस के परिणाम हुए। फिर उसका बेटा है, वह जैन हो जाता है पैदाइश से। फिर आप तो न मालूम कितनी पीढ़ियों के बाद जैन हैं।
सब उधार है, कचरा है। आपके जैन होने का कोई मूल्य नहीं है। आप भी जानते हैं कि आपका जैन होना झूठा है, हिंदू होना झूठा है, मुसलमान होना झूठा है, क्योंकि जो आपने नहीं चुना वह सत्य नहीं हो सकता। निज का चुनाव सत्य की तरफ पहला कदम है।
यह हमें अनुभव है कि पैदाइश से कोई धार्मिक नहीं हो सकता, लेकिन हम पैदाइश से धार्मिक हो गए हैं, तो वस्तुतः धार्मिक होने का उपाय भी बंद हो गया है, क्योंकि हम सब को ख्याल है कि हम धार्मिक हैं।
अनुभव कहता है कि धर्म सदा व्यक्ति का निजी संकल्प है। समूह धार्मिक नहीं होता, व्यक्ति धार्मिक होता है। भीड़ धार्मिक नहीं होती, व्यक्ति धार्मिक होता है। क्योंकि जीवन का, चेतना का अनुभव व्यक्ति के पास है, समूह के पास नहीं है। समूह तो बंधी हुई लकीरों से चलता है सुविधा के लिए; व्यवस्था के लिए, अराजकता न हो जाए इसलिए; नियम का घेरा बांध लेता है और चलता है।
अगर व्यक्ति भी उस घेरे में बंध कर चलता है और अपने निजी पथ की खोज नहीं करता, तो वह समाज का एक हिस्सा ही रहेगा; उसकी आत्मा उत्पन्न नहीं होगी। आत्मा उसी दिन उत्पन्न होती है, जिस दिन निजता का मूल्य समझ में आता है, जिस दिन मैं अपना मार्ग चुनता हूं ताकि अपने सत्य तक पहुंच सकूं। और प्रत्येक व्यक्ति का सत्य तक पहुंचने का मार्ग भिन्न होगा, उसके अपने अनुसार होगा।
जैसे कोई व्यक्ति अगर कम्युनिस्ट घर में पैदा हो जाए, तो हम नहीं कहते
कि वह कम्युनिस्ट है। और कोई व्यक्ति सोशलिस्ट घर में पैदा होकर सोशलिस्ट नहीं हो जाता। सोशलिस्ट होने के लिए विचार करना पड़े, सोचना पड़े, निर्णय लेना पड़े।
कोई भी विचार जब तक आपके भीतर उगता नहीं है, तब तक बासा है, बोझ है। महावीर ने यह घोषणा आज से पचीस सौ साल पहले की, और महावीर ने कहा, जन्म से धर्म का कोई संबंध नहीं है। कहां आप पैदा हुए हैं, यह बात मूल्यवान नहीं है; क्या आप बनते हैं, खुद अपने श्रम से, वही बात मूल्यवान है। तो महावीर ने वर्ण की व्यवस्था तोड़ दी; आश्रम की व्यवस्था तोड़ दी। और महावीर ने नये अर्थ दिए पुराने शब्दों को।
यह सूत्र ब्राह्मण-सूत्र है। इसमें महावीर ब्राह्मण की व्याख्या करते हैं कि ब्राह्मण कौन है। ब्राह्मण के घर में पैदा होने से कोई ब्राह्मण नहीं है, लेकिन हम उसी को ब्राह्मण कहते हैं, जो ब्राह्मण घर में पैदा हुआ है। तो ब्राह्मण की जो महान धारणा थी वह नष्ट हो गई; वह एक क्षुद्र बात हो गई।
ब्राह्मण के घर में पैदा होना बड़ी क्षुद्र बात है; ब्राह्मण हो जाना बिल्कुल दूसरी बात है। ब्राह्मण होना एक यात्रा है। ब्राह्मण होना एक

श्रम है, एक तपश्चर्या है। ब्राह्मण तभी कोई हो सकता है, जब ब्रह्म से उसका सम्पर्क सध जाए।
उद्दालक ने अपने बेटे श्वेतकेतु को कहा है उपनिषदों में कि श्वेतकेतु, ध्यान रखना एक बात, हमारे परिवार में कोई जन्म से ब्राह्मण नहीं हुआ। वह बड़ी बदनामी की बात है। हमारे परिवार में हम चेष्टा से ब्राह्मण होते रहे हैं। तू भी यह मत सोच लेना कि तू मेरे घर पैदा हुआ तो ब्राह्मण हो गया। तुझे ब्राह्मण होने के लिए अथक श्रम करना होगा, तुझे ब्राह्मण होने के लिए खुद ही साधना करनी होगी। ब्राह्मण होने के लिए तुझे स्वयं को ही जन्म देना होगा; मां-बाप तुझे जन्म नहीं दे सकते हैं। क्योंकि जब तक तेरा अनुभव ब्रह्म के निकट न आने लगे, तब तक तू ब्राह्मण नहीं है। महावीर की बात निश्चित ही जातिगत ब्राह्मणों को बहुत कठिन मालूम पड़ी होगी। सत्य हमेशा ही स्वार्थ को कठिन मालूम पड़ता है। क्योंकि कितनी सुगम बात है जन्म से ब्राह्मण हो जाना और श्रम से ब्राह्मण होना तो बहुत दुर्गम है। जन्म से तो हजारों ब्राह्मण हो जाते हैं; श्रम से तो कभी कोई एकाध ब्राह्मण होता है।
तो जो ब्राह्मण थे जन्म से, उनको बहुत कष्टपूर्ण मालूम पड़ा होगा। महावीर उनकी पूरी बपौती छीन ले रहे हैं; उनकी शक्ति छीन ले रहे हैं। इससे भी खतरनाक मालूम पड़ी होगी बात, और भी दूसरा खतरा था और वह यह कि ब्राह्मण से उसका ब्राह्मणत्व ही नहीं छीन ले रहे हैं--जातिगत, जन्मगत; बल्कि महावीर कह रहे हैं कि कोई भी ब्राह्मण हो सकता है, तो शूद्र भी ब्राह्मण हो सकता है, श्रम से। तो ब्राह्मण की सत्ता छीन रहे हैं और जिनके पास सत्ता कभी नहीं थी, उनको सत्ता का, उस परम सत्ता के अनुभव का अवसर खोल रहे हैं। महावीर की क्रांति गहरी है। महावीर कहते हैं, सभी लोग जन्म से शूद्र पैदा होते हैं। क्योंकि शरीर से पैदा होने में कोई कैसे ब्राह्मण हो सकता है? शरीर शूद्र है शरीर से; आदमी पैदा होता है, तो सभी जन्म से शूद्र पैदा होते हैं। फिर इस शूद्रता के बीच अगर कोई श्रम करे, निखारे अपने को, तपाए, तो सोने की तरह निखर आता है। पर अग्नि से गुजरना पड़ता है, तब कोई ब्राह्मण होता है।
शूद्र पैदा हो जाने से ब्राह्मण होने में बाधा नहीं है। शूद्रता ब्राह्मणत्व का आधार है। जैसे देह आत्मा का आधार है, ऐसे शूद्रता ब्राह्मणत्व का आधार है। इसलिए कोई भी शूद्र होने से वंचित नहीं है। सभी शूद्र हैं। लेकिन कुछ शूद्रों ने जन्म से अपने को ब्राह्मण समझ रखा है। कुछ शूद्रों ने जन्म से अपने को वैश्य समझ रखा है। कुछ शूद्रों ने जन्म से अपने को क्षत्रिय समझ रखा है। और कुछ शूद्रों को समझा दिया गया है कि तुम जन्म से ही शूद्र नहीं हो, तुम्हें सदा ही शूद्र रहना है; तुम जन्म से लेकर मृत्यु तक शूद्र रहोगे।
यह बड़ी खतरनाक बात है। इससे न मालूम कितनी संभावनाएं ब्राह्मण होने
की खो गईर्ं। जो ब्राह्मण हो सकता था वह रोक दिया गया। जो ब्राह्मण नहीं था, वह ब्राह्मण मान लिया गया। उसकी भी संभावना को नुकसान हुआ, क्योंकि वह भी हो सकता, उसकी फिकर छूट गई। उसने मान लिया कि मैं शूद्र हूं।
महावीर कहते हैं, ब्राह्मण होना जीवन का अंतिम फूल है, इसलिए जन्म पर कोई ठहर न जाए। कीचड़ से कमल पैदा होता है; शूद्रता से ब्राह्मणत्व पैदा होता है। कीचड़ पीछे छूट जाती है; कमल ऊपर उठने लगता है। एक घड़ी आती है, कीचड़ बहुत पीछे छूट जाती है; कमल जल के ऊपर उठ आता है। और कमल को देख कर आपको ख्याल भी पैदा नहीं हो सकता कि वह कीचड़ से पैदा हुआ है।
शूद्रता कीचड़ है। उसी में पड़े रहने की कोई भी जरूरत नहीं है। उससे ऊपर उठने का विज्ञान है। अध्यात्म, धर्म, योग कीचड़ को कमल में बदलने की कीमिया है। और एक बार कीचड़ कमल बन जाए, तो नीचे भूमि में जो कीचड़ पड़ी है, वह भी फिर उसे कीचड़ नहीं बना सकती। बल्कि उस कीचड़ से भी कमल रस लेता है; उस कीचड़ को निरंतर बदलता रहता है सुगंध में। उस कीचड़ की दुर्गंध बनती रहती है सुगंध, कमल के माध्यम से। उस कीचड़ का जो-जो कुरूप है उस कीचड़ में, वह सब कमल में आकर सुंदर होता रहता है।

आदमी कीचड़ की तरह पैदा होता है, लेकिन कीचड़ की तरह मरने की कोई भी जरूरत नहीं है। कमल होकर मरा जा सकता है।
उस कमल होने की कला का नाम धर्म है।
महावीर के सूत्र को अब हम समझें।
"जो आने वाले स्नेही-जनों में आसक्ति नहीं रखता, जो उनसे दूर जाता हुआ शोक नहीं करता, जो आर्य-वचनों में सदा आनंद पाता है, उसे हम "ब्राह्मण" कहते हैं।"
एक-एक कदम समझना जरूरी है।
"जो स्नेही-जनों में आसक्ति नहीं रखता।" इसका यह अर्थ नहीं है कि वह स्नेह नहीं रखता, नहीं तो स्नेही-जन कहने का कोई कारण नहीं है। प्रेम भरपूर है; आसक्ति नहीं है। शूद्र-मन में प्रेम बिल्कुल नहीं होता, आसक्ति ही आसक्ति होती है। ब्राह्मण-मन में आसक्ति खो जाती है और प्रेम ही रह जाता है।
आसक्ति कीचड़ है; प्रेम कमल है। लेकिन प्रेम को आसक्ति से मुक्त करना बड़ी दुर्गम बात है, क्योंकि हम तो जैसे ही किसी को प्रेम करते हैं, प्रेम कर ही नहीं पाते कि आसक्ति पकड़ लेती है। आसक्ति का मतलब है या तो हम गुलाम हो जाते हैं, या दूसरे को गुलाम बनाने लगते हैं। दोनों ही गुलामी की प्रक्रियाएं हैं।
किसी व्यक्ति को आप प्रेम करते हैं, प्रेम करते ही आप निर्भर हो जाते हैं उस पर। आपका सुख उस पर निर्भर हो जाता है। आपका दुख उस पर निर्भर हो जाता है। दूसरा आदमी मालिक हो गया। अगर वह चाहे तो दुखी कर सकता है; अगर चाहे तो सुखी कर सकता है। उसका एक इशारा आपको नचा सकता है। उसका एक इशारा आपको दुख में डाल सकता है। आपकी आत्मा की अपनी मालकियत दूसरे व्यक्ति के हाथ में चली गई।
और ध्यान रहे, जब भी हम अपने प्रेम में किसी को अपना मालिक बना लेते हैं, तो उससे हमारी घृणा भी शुरू हो जाती है, क्योंकि मालकियत कोई किसी की कभी पसंद नहीं करता। इसलिए जिसे हम प्रेम करते हैं, उसे ही घृणा भी करते हैं; और जिसे हम प्रेम करते हैं, उसे ही हम नष्ट भी करना चाहते हैं। क्योंकि वह दुश्मन भी मालूम पड़ता है।
पड़ेगा ही! प्रेमी दुश्मन मालूम पड़ते हैं एक दूसरे को, क्योंकि एक-दूसरे की स्वतंत्रता को छीन लेते हैं और एक-दूसरे को वस्तुएं बना देते हैं, व्यक्तियों से मिटा कर।
हर पति की कोशिश है कि उसकी पत्नी एक वस्तु बन जाए। वह जैसा कहे वैसा उठे-बैठे। वह जैसा इशारा करे वैसा चले। पत्नी की भी पूरी चेष्टा यही है कि पति उसका गुलाम हो जाए। वह कहे रात, तो रात। वह कहे दिन, तो दिन। दोनों इसी संघर्ष में लगे हैं। एक दूसरे को डामिनेट करना है। एक दूसरे को मिटा डालना है।
क्यों? दूसरे से इतना भय क्या है? और जिससे हमारा प्रेम है, उससे इतना
भय क्या है? भय इस बात का है कि हमारा प्रेम तत्काल आसक्ति बन जाता है; अटैचमेंट बन जाता है। और जैसे ही आसक्ति बनता है, तो दो में से कोई एक मालिक बन जाता है। तो मैं मालिक बना रहूं; दूसरा मालिक न बन जाए। लेकिन दूसरा भी इसी कोशिश में लगा है।
क्या प्रेम आसक्ति से मुक्त हो सकता है?
अगर प्रेम आसक्ति से मुक्त हो सके, तो प्रेम घृणा से भी मुक्त हो जाता है।
महावीर कहते हैं, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं, जो स्नेही-जनों में आसक्ति नहीं रखता। जिसका स्नेह भरपूर है। जिसके प्रेम देने में कोई कमी नहीं। लेकिन जो अपने प्रेम के कारण न तो किसी का गुलाम बनता है, और न किसी को गुलाम बनाता है। जिसका प्रेम दो स्वतंत्र व्यक्तियों के बीच एक आनंद का संबंध है। जिसका प्रेम दो परतंत्र व्यक्तियों के बीच एक दुख का संबंध नहीं है।
मन की ठीक-ठीक जांच की जाए, तो प्रेम से बड़ी बीमारी खोजनी मुश्किल है। उससे जितना दुख आदमी पाता है; उतना किसी और चीज से नहीं पाता। आपके सभी दुख

प्रेम के दुख हैं। इसका परिणाम यह हुआ है कि पश्चिम में एक ऐसी घटना विकसित हो रही है रोज पिछले बीस-तीस वर्षों में कि लोग कहते हैं, प्रेम की बात ही मत करो। काम, सेक्स काफी है। क्योंकि सेक्स कम से कम स्वतंत्र तो रखता है; प्रेम तो उपद्रव खड़ा कर देता है।
इसलिए पश्चिम में प्रेम डूब रहा है; सिर्फ सेक्स उभर रहा है। दो व्यक्तियों के बीच सिर्फ सेक्स का संबंध काफी है, पश्चिम की नई धारणाएं कहती हैं। क्योंकि जैसे ही प्रेम आया कि बुखार आया; कि उपद्रव शुरू हुआ; कि एक ने दूसरे को दबाना शुरू किया, इसलिए सिर्फ सेक्स का संबंध पर्याप्त है। यह बड़ी खतरनाक बात है।
भारत ने भी प्रयोग किया है आसक्ति से मुक्त होने का; पश्चिम भी प्रयोग
कर रहा है। भारत ने प्रयोग किया है, जो महावीर कह रहे हैं। महावीर कह रहे हैं, प्रेम तो प्रगाढ़ हो जाए, आसक्ति खो जाए। तो जो दुख है प्रेम का वह नष्ट हो जाएगा और प्रेम एक आनंद की वर्षा हो जाए।
पश्चिम भी यही चाहता है कि जो उपद्रव है आसक्ति का वह मिट जाए। पर वह नीचे गिर कर आसक्ति का उपद्रव मिटा रहा है। वह कह रहा है, दो शरीरों का संबंध काफी है। इससे ज्यादा जिम्मेवारी लेनी ठीक नहीं।
जैसे ही आप किसी के प्रेम में पड़ते हैं, उपद्रव शुरू होता है। इसलिए
एक ही व्यक्ति से भी काम के संबंध ज्यादा देर तक बनाना ठीक नहीं है। काम के संबंध भी बदलते रहने चाहिए। आज एक स्त्री, कल दूसरी स्त्री; आज एक पुरुष, परसों दूसरा पुरुष। ये बदलते रहें ताकि कहीं कोई ठहराव न हो जाए और आसक्ति न बन जाए।
दृष्टि तो दोनों ही एक ही कोण पर निर्भर हैं। पूरब ने भी यही अनुभव किया है कि प्रेम दुख देता है। तो दुख से उठने का क्या उपाय है? महावीर कहते हैं, उपाय यह है कि प्रेम तो रह जाए, हृदय तो प्रेमपूर्ण हो लेकिन किसी को गुलाम बनाने की और किसी को मालिक बनाने की वृत्ति का निषेध हो जाए।
पश्चिम भी इसी परेशानी में है, लेकिन पश्चिम का सुझाव बड़ा अजीब है और बड़ा खतरनाक है। महावीर प्रेम को दिव्य बना देते हैं और पश्चिम प्रेम को पाशविक बना देता है।
प्रेम उपद्रव है, यह बात जाहिर है। यह पूरब, पश्चिम दोनों के मनीषियों
ने अनुभव किया है। जिसको हम प्रेम कहते हैं, वहां झंझट है। तो या तो उससे नीचे उतर आओ और जैसे पशुओं का संबंध है... वहां कोई झंझट नहीं है। न विवाह है, न तलाक है, न कोई कलह है; सिर्फ संबंध शरीर का है। पशु मिलते हैं शरीर से क्षण भर के लिए, अलग हो जाते हैं। उससे कोई मोह निर्मित नहीं करते, कोई आसक्ति नहीं बनाते कि अब यह जो मादा है मेरी पत्नी हो गई; अब कोई दूसरा पुरुष इसकी तरफ आंख उठाएगा तो मैं उपद्रव खड़ा करूंगा या यह जो पुरुष है पशु, मेरा पति हो गया, और अगर इसने अपनी नजर किसी और मादा की तरफ उठाई तो कलह शुरू होगी।
नहीं, पशु सिर्फ शरीर के संबंध से जीते हैं, अलग हो जाते हैं। वहां कोई आसक्ति नहीं है। इसलिए प्रेम की जो पीड़ा हमें है, पशुओं को नहीं है। पश्चिम गिर रहा है प्रेम के उपद्रव से मुक्त होने के लिए। लेकिन गिर
कर कुछ भी हल न होगा, क्योंकि कितना ही सेक्स हो जीवन में, अगर प्रेम का फूल न खिले तो प्राण अतृप्त रह जाते हैं, और जीवन की जो चमक है, जीवन की जो प्रतिभा है, जो आभा है, वह प्रकट नहीं हो पाती। मनुष्य पशु होकर तृप्त नहीं हो सकता। मनुष्य केवल दिव्य होकर ही तृप्त हो सकता है। नीचे गिर कर कोई कभी तृप्त नहीं होता; जिम्मेवारी से मुक्त हो सकता है, लेकिन तृप्ति को उपलब्ध नहीं हो सकता। इसलिए पूरे पश्चिम में अनुभव किया जा रहा है कि एक मीनिंगलेसनेस, एक अर्थहीनता छा गई है। क्योंकि प्रेम है अर्थ जीवन का। महावीर कहते हैं, मैं उसे ब्राह्मण कहता हूं, जो प्रेम कर सकता है और आसक्ति में नहीं बंधता। यह हो सकता है। यह तब हो सकता है जब हमारा प्रेम दूसरे व्यक्ति पर निर्भर न हो, बल्कि हमारी क्षमता हो।
इस फर्क को ठीक से समझ लें।

आप इसलिए प्रेम करते हैं कि दूसरा व्यक्ति प्यारा है, तो दूसरे पर निर्भर हैं। महावीर कहते हैं, इसलिए प्रेम कि आप प्रेमपूर्ण हैं। जोर इस बात पर है कि आपका हृदय प्रेमपूर्ण हो। जैसे दीया जल रहा है तो दीये की रोशनी पड़ रही है; फिर कोई भी पास से निकले दीये की उस पर रोशनी पड़ेगी। दीया यह नहीं कहेगा कि तुम सुंदर हो, इसलिए तुम पर रोशनी डाल रहा हूं; कि तुम कुरूप हो इसलिए अपने को बुझा लेता हूं और अंधकार कर देता हूं। दीये की रोशनी बहती रहेगी; कोई न भी निकले तो शून्य में दीये की रोशनी बहती रहेगी। महावीर उसे ब्राह्मण कहते हैं, जिसका प्रेम उसकी हार्दिक ज्योति बन गया। जो इसलिए प्रेम नहीं करता कि आप प्यारे हैं; कि आप सुंदर हैं; कि भले हैं; कि मुझे अच्छे लगते हैं, कि मुझे पसंद हैं। नहीं, जो सिर्फ इसलिए प्रेम करता है कि प्रेमपूर्ण है; कुछ और करने का उपाय नहीं। आप उसके पास होंगे तो उसके प्रेम की किरणें आप पर पड़ती रहेंगी।
प्रेम संबंध नहीं, स्थिति है। और जब ऐसे प्रेम का जन्म हो जाता है--यह तभी होगा जब व्यक्ति दूसरों से अपने को हटाए, अपनी दृष्टि को "पर" से हटाए और "स्वयं" में गड़ाए, जिसे हम ध्यान कहते हैं। जैसे-जैसे ध्यान बढ़ता है, वैसे-वैसे प्रेम संबंध से हट कर स्थिति बनने लगता है। वह मनुष्य का स्वभाव हो जाता है।
महावीर भी प्रेम देते हैं, करते नहीं। करने में तो कृत्य है। महावीर प्रेम देते हैं। उनके होने का ढंग प्रेमपूर्ण है। आप उनके पास जाएं तो प्रेम मिलेगा। और आपको ऐसा भी वहम हो सकता है कि उन्होंने आपको प्रेम किया; क्योंकि आप करने की भाषा समझते हैं, होने की भाषा नहीं समझते। महावीर प्रेमपूर्ण हैं। जैसे फूल में गंध है, ऐसे उनमें प्रेम है।
"जो आने वाले स्नेही-जनों में आसक्ति नहीं रखता, जो उनसे दूर जाता हुआ शोक नहीं करता।"
और ध्यान रखें, शोक तभी होगा जब आसक्ति होगी। जिससे हम बंधे हैं, जिसके बिना हमें होने में अड़चन है, अगर वह न हो तो हमें बहुत कठिनाई हो जाएगी।
जब कोई मरता है तो आप इसलिए नहीं रोते कि कोई मर गया। आप इसलिए रोते हैं कि आपके भीतर जो निर्भरता थी, वह टूट गई। जब कोई मरता है तो आप अपने लिए रोते हैं। कुछ खंड आपका टूट गया जो उस आदमी से भरा था। कुछ हृदय का कोना उसने भरा था, रोशन कर रखा था, वह दीया बुझ गया। आपके भीतर अंधेरा हो गया। कोई किसी के मरने पर इसलिए नहीं रोता कि कोई मर गया। मृत्यु पर हम इसलिए रोते हैं कि हमारे भीतर कुछ मर गया। और तभी तक रोएंगे आप, जब तक वह कोना फिर से न भर जाए; जिस दिन वह कोना फिर से भर जाएगा, रोना बंद हो जाएगा। आदमी अपने लिए ही रोता है। तो जब आप शोक करते हैं किसी से दूर हटते या किसी के दूर जाने पर, वह खबर देता है कि उसके पास रहने पर आसक्ति पैदा हो गई थी।
महावीर गुजरते हैं एक गांव से; प्रेमपूर्ण हैं, कुछ और होने का उपाय
भी नहीं है। गांव पीछे छूट जाता है, तो महावीर की स्मृति अगर उस गांव से अटकी रहे तो महावीर ब्राह्मण नहीं हैं। गांव छूट गया, स्मृति भी छूट गई। जहां महावीर होंगे, वहीं उनका बोध होगा, वहीं उनका प्रकाश होगा। वे लौट-लौट कर पीछे के गांव के संबंध में नहीं सोचेंगे कि जिस आदमी ने भोजन दिया था; कि जिस आदमी ने आश्रय दिया था; कि जिसने पैर दबा दिए थे; कि जिसने इतना प्रेम दिया था... ।
अगर यह मन पीछे लौट रहा है पीछे लौटता मन ब्राह्मण नहीं है। अगर यह मन आगे दौड़ रहा है कि आने वाले गांव में कोई प्रियजन मिलने वाला है और पैरों में गति आ गई, तो यह मन ब्राह्मण नहीं है। ब्राह्मण का मन वहीं होता है, जहां ब्राह्मण होता है। जहां होते हैं हम वहीं होना काफी है; न पीछे लौटते हैं किसी आसक्ति के कारण, न किसी शोक के कारण; न आगे जाते हैं किसी आसक्ति के कारण, न किसी सुख के कारण। वर्तमान में होना ब्राह्मण है।
महावीर कहते हैं कि जो न आसक्ति करता है और जो न उनसे दूर जाता हुआ शोक करता है। जो आर्य-वचनों में सदा आनंद पाता है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।

आर्य-वचन, इसको समझ लेना चाहिए। महावीर के लिए कोई जाति अर्थ नहीं रखती। महावीर "आर्य" किसी जातिगत अर्थों में नहीं कह रहे हैं। जैसी हिंदुओं की धारणा है कि हिंदुओं का पुराना नाम "आर्य" है। महावीर और बुद्ध, दोनों ही "आर्य" का बड़ा अनूठा अर्थ करते हैं। वे कहते हैं, "आर्य"-- उसको जो अंतिम श्रेष्ठता को उपलब्ध हो गया। वह कोई जातिगत धारणा नहीं है। कोई जाति आर्य नहीं है। इससे बड़े खतरे हुए हैं। हिंदू हजारों साल तक मानते रहे कि वे "आर्य" हैं, उन्हीं के पास शुद्ध रक्त है, बाकी सब अशुद्ध हैं। ब्राह्मण श्रेष्ठता से दूसरों को हीन बनाता रहा। इसके उपद्रव कई बार हुए। "आर्य" शब्द कई दफे खतरनाक बन गया। अभी जो पिछला युद्ध हुआ, दुसरा महायुद्ध, वह इस "आर्य" शब्द के आस-पास हुआ। हिटलर को फिर यह वहम पैदा हो गया कि वह "आर्य" है और नारडिक जाति "आर्य" है, शुद्ध "आर्य", तो सारी दुनिया पर नारडिक जाति को, जर्मन्स को अधिकार करना चाहिए, क्योंकि बाकी सब शूद्र हैं।
हिटलर को प्रभावित करने वाले लोगों में नीत्शे था, और नीत्शे को प्रभावित करने वालों में मनु; तो हिटलर सीधा मनु से जुड़ा है। और मनु से ज्यादा जातिवादी व्यक्ति नहीं हुआ। महावीर का सारा विरोध मनु से है।
कोई जाति श्रेष्ठ नहीं है, हो नहीं सकती। खून में कोई श्रेष्ठता नहीं है। खून में क्या श्रेष्ठता हो सकती है? ब्राह्मण का खून निकालें और शूद्र का, कोई भी दुनिया का बड़े से बड़ा वैज्ञानिक भी दोनों की जांच करके नहीं कह सकता कि कौन सा खून शूद्र का है और कौन सा खून ब्राह्मण का।
हड्डियों में कुछ जाति नहीं होती। मांस-मज्जा में कोई जाति नहीं होती। महावीर कहते हैं, जाति होती है चेतना की श्रेष्ठता में। आर्य कहते हैं महावीर उसको, जो परम श्रेष्ठता को उपलब्ध हो गया। इस परम श्रेष्ठता को उपलब्ध व्यक्ति के विचारों में, शब्दों में जिसको भरोसा है, ट्रस्ट है, उसे महावीर ब्राह्मण कहते हैं।
यह थोड़ा समझने जैसा है, "आर्य-वचनों में जो सदा आनंद पाता है।"
आप हैरान होंगे जान कर कि आपको हमेशा अनार्य-वचनों में आनंद मिलता है--क्यों? क्योंकि जब भी कोई अनार्य-वचन आप सुनते हैं, क्षुद्र, तो पहली तो बात, आप उसे एकदम समझ पाते हैं, क्योंकि वह आपकी ही भाषा है। दूसरी बात, उसे सुन कर आप आश्वस्त होते हैं कि मैं ही बुरा नहीं हूं, सारा जगत ऐसा ही है। तीसरा, उसे सुनते ही आपको जो श्रेष्ठता का चुनाव है, वह जो चुनौती है आर्यत्व की, उसकी पीड़ा मिट जाती है, सब उत्तरदायित्व गिर जाता है।
ऐसा समझें, फ्रायड ने कहा कि मनुष्य एक कामुक प्राणी है। यह अनार्य-वचन है; असत्य नहीं है, सत्य है, लेकिन शूद्र सत्य है, निकृष्टतम सत्य है। आदमी की कीचड़ के बाबत सत्य है; कि आदमी के बाबत सत्य नहीं है कि आदमी सेक्सुअल है; कि आदमी के सारे कृत्य कामवासना से बंधे हैं, वह जो भी कर रहा है वह कामवासना ही है।
छोटे से बच्चे से लेकर बूढ़े आदमी तक सारी चेष्टा कामवासना की चेष्टा है; यह सत्य है, लेकिन शूद्र सत्य है। यह निम्नतम सत्य है--
कीचड़ का। लेकिन सारी दुनिया में इस कीचड़ के सत्य ने लोगों को बड़ा आश्वासन दिया। लोगों ने कहा, तब ठीक है, तब हम ठीक हैं, जैसे हैं फिर कुछ बुराई नहीं है। फिर अगर मैं चौबीस घंटे कामवासना के संबंध में ही सोचता हूं, और नग्न स्त्रियां मेरे सपनों में तैरती हैं, तो जो कर रहा हूं वह नैसर्गिक है। अगर मैं शरीर में ही जीता हूं तो यह जीना ही तो वास्तविक है, फ्रायड कह रहा है।
फ्रायड ने हमारे निम्नतम को परिपुष्ट किया, इसलिए फ्रायड के वचन थोड़े
ही दिनों में सारे जगत में फैल गए। जितनी तीव्रता से साइको एनालिसिस का, फ्रायड का आंदोलन फैला, दुनिया में कोई आंदोलन नहीं फैला। महावीर को पचीस सौ साल हो गए। उपनिषदों को लिखे और पुराना समय हुआ। गीता कहे और भी समय व्यतीत हो गया, पांच हजार साल हो गए। पांच हजार सालों में भी उन्होंने कहा है, वह इतनी आग की तरह नहीं फैला, जो फ्रायड ने पिछले पचास सालों में सारी दुनिया को पकड़ लिया--साहित्य, फिल्म, गीत, चित्र सब फ्रायडियन हो गए हैं। हर चीज फ्रायड के दृष्टिकोण से सोची और समझी जाने लगी। क्या कारण होगा?

अनार्य-वचन हमारे निम्नतम को पुष्ट करते हैं। जब भी कोई हमारे निम्नतम को पुष्ट करता है, तो हमें राहत मिलती है। हमें लगता है कि ठीक है, हममें कोई गड़बड़ नहीं है। अपराध का भाव छूट जाता है। बेचैनी छूट जाती है कि कुछ होना है, कि कहीं जाना है, कि कोई शिखर छूना है। सीधी जमीन पर चलने की स्वीकृति आ जाती है कि ठीक है, आदमी सभी ऐसे हैं।
इसलिए हम सब दूसरों के संबंध में बुराई सुन कर प्रसन्न होते हैं। कोई निंदा करता है किसी की, हम प्रसन्न होते हैं; क्योंकि उस निंदा से हमारे भीतर एक राहत मिलती है कि ठीक है। अगर कोई किसी महात्मा की निंदा करे तो हमें प्रसन्नता और भी ज्यादा होती है; क्योंकि यह पक्का हो जाता है कि महात्मा-वहात्मा कोई हो नहीं सकता, सब ऊपरी बातचीत हैं। हैं तो सब मेरे ही जैसे; किसी का पता चल गया है और किसी का पता नहीं चला है।
तो जब भी आपको किसी की निंदा में रस आता है, तब आप समझना कि आप क्या कर रहे हैं। आप अपने निम्नतम को पुष्ट कर रहे हैं। आप यह कह रहे हैं कि अब कोई चुनौती नहीं, कोई चैलेंज नहीं; कहीं जाना नहीं, कुछ होना नहीं। जो मैं हूं-- इसी कीचड़ में मुझे जीना है और मर जाना है। यही कीचड़ जीवन है।
अनार्य-वचन बड़ा सुख देते हैं। बहुत अनार्य-वचन प्रचलित हैं। हम सबको पता है कि अनार्य-वचन तीव्रता से फैलते जा रहे हैं; और धीरे-धीरे हम यह भी भूल गए हैं कि वे अनार्य हैं। सब चीजों को जो लोएस्ट डिनामिनेटर है, जो निम्नतम तत्व है, उससे समझाने की कोशिश चल रही है। आदमी को रिडयूस करके आखिरी चीज पर खड़ा कर देना है। जैसे हम आदमी को काटें-पीटें तो क्या पाएंगे? हड्डी-मांस-मज्जा--तो हम कहेंगे कि मनुष्य हड्डी-मांस-मज्जा का एक जोड़ है। बात खतम हो गई, चेतना वहां नहीं मिलेगी।
जो श्रेष्ठतम है, वह हमारे उपकरणों से छूट जाता है। अगर आदमी के व्यवहार की हम जांच-पड़ताल करें, तो क्या मिलेगा? कामवासना मिलेगी, वासना मिलेगी, दौड़ मिलेगी महत्वाकांक्षा की। फिर हर श्रेष्ठ चीज को हम निकृष्ट से समझा लेंगे, ऐसे ही जैसे हम कहेंगे, कमल में क्या रखा है, कीचड़ ही तो है। यह एक ढंग हुआ। इससे हम कीचड़ को राजी कर लेंगे कि कमल होने की मेहनत में मत लग। कमल में भी क्या रखा है, बस कीचड़ ही है। तो कीचड़ की कमल होने की जो आकांक्षा पैदा हो सकती थी, वह कुंद हो जाएगी। कीचड़ शिथिल होकर बैठ जाएगी अपनी जगह; क्यों व्यर्थ दौड़-धूप करना, क्यों परेशान होना। अनार्य-वचन सुख देते हैं। आर्य-वचन दुख देते हैं। महावीर कहते हैं, जो आर्य-वचन में आनंद ले सके, वह ब्राह्मण है। भला वह अभी आर्य हो न गया हो, लेकिन आर्य-वचनों में आनंद लेने का अर्थ यह है कि चुनौती स्वीकार कर रहा है। जीवन के शिखर तक पहुंचने की आकांक्षा को जगने दे रहा है। जो है क्षुद्र उससे राजी नहीं है, जब तक विराट न हो जाए।
आर्य-वचन में आनंद लेने का अर्थ है कि मैं--आर्य-वचन जो कह रहे हैं, वहां तक पहुंचना चाहता हूं। दूर है मंजिल, लेकिन आंखें मेरी उसी तरफ लगी हैं। पैर मेरे कमजोर हों, लेकिन चलने की मेरी चेष्टा है। गिरूं, न पहुंच पाऊं, यह भी हो सकता है, लेकिन पहुंचने की चेष्टा मैं जारी रखूंगा।
आर्य वचन में आनंद लेने का अर्थ है कि हम संभावना का द्वार खोल रहे हैं।
लोग हैं, जिन्हें यह सुन कर प्रसन्नता होती है कि ईश्वर नहीं है। लोग हैं जिन्हें सुन कर प्रसन्नता होती है कि आत्मा नहीं है। लोग हैं जिन्हें सुन कर सुख होता है कि मोक्ष नहीं है। बस, यही जीवन सब कुछ है; खाओ, पीओ और मौज करो। अगर उनको ख्याल आ जाए कि परमात्मा है, तो उनके सुख में एक कंकड़ पड़ गया। उन्हें ख्याल आ जाए कि इस जीवन के समाप्त होने पर और जीवन है, तो सिर्फ खाओ, पीओ और मौज करो काफी नहीं मालूम होगा। फिर कुछ और भी करो। फिर जीवन अपने में लक्ष्य नहीं रह जाता, साधन हो जाता है, किसी और परम जीवन को पाने के लिए।
हम जो इनकार करते हैं कि ईश्वर नहीं है, आत्मा नहीं है, मोक्ष नहीं है,
वह इनकार हम अपने को बचाने के लिए करते हैं। क्योंकि अगर ये तत्व हैं, तो फिर हम क्या कर रहे हैं। फिर समय नहीं है। फिर जीवन बहुत छोटा है और शक्ति को व्यर्थ खोना उचित नहीं है।

अगर पश्चिम में इतना भौतिकवाद फैला, तो उसके फैलने का एक कारण तो यह
था कि ईसाइयत ने कहा कि कोई पुनर्जन्म नहीं है। पश्चिम में भौतिकता के इतनी तीव्रता से फैल जाने का एक कारण बना ईसाइयत की यह धारणा कि कोई पुनर्जन्म नहीं है, एक ही जीवन है। अगर एक ही जीवन है, तो लोगों को लगा कि फिर इसी जीवन को लक्ष्य बना कर जी लेना उचित है। कोई और जीवन नहीं है जिसके लिए इस जीवन को समर्पित किया जाए, त्यागा जाए, साधना में लगाया जाए। समय हाथ से छूटा जा रहा है, इसे भोग लो।
पश्चिम में भोगवाद एक जीवन की धारणा के कारण बड़ी आसानी से फैल सका। जीसस के प्रयोजन दूसरे थे। मगर जीसस, महावीर या बुद्ध के प्रयोजनों से हमें कुछ लेना-देना नहीं। हम उनके प्रयोजन से भी अपना स्वार्थ निकाल लेते हैं।
जीसस का प्रयोजन था इस बात पर जोर देने के लिए कि एक ही जन्म है, ऐसा नहीं कि जीसस को पता नहीं था। जीसस ने ऐसी बहुत सी बातों का उल्लेख किया है जिनसे साबित होता है कि उन्हें पता है कि पुनर्जन्म है। क्योंकि जीसस से किसी ने पूछा कि तुम्हारी उम्र क्या है, तो जीसस ने कहा कि इब्राहिम के पहले भी मैं था। इब्राहिम को हुए तब दो हजार साल हो चुके थे।
तो जीसस को पूरा पता है; होगा ही। इतने ज्ञान को उपलब्ध व्यक्ति को अगर इतना भी पता न हो कि जीवन एक अनंत धारणा है, एक अनंत फैलाव है... लेकिन फिर भी जीसस ने लोगों से कहा कि एक ही जीवन है। और प्रयोजन यह था कि ताकि लोग तीव्रता से मोक्ष को पाने की चेष्टा में लग जाएं। क्योंकि ज्यादा समय नहीं है खोने को, समय कम है, लेकिन लोग बड़े होशियार हैं। उन्होंने देखा कि समय इतना कम है, कहां का मोक्ष, कहां का परमात्मा! पहले इसे तो भोग लो! हाथ की आधी रोटी, दूर सपनों की पूरी रोटी से बेहतर है। लोग अपने मतलब से लेते हैं।
मैंने सुना है, बाजार से एक संभ्रांत आदमी गुजर रहा था। अपने व्यवसाय
की वेशभूषा में सजा-धजा। और एक छोटे से गरीब लड़के ने आकर कहाः महानुभाव, क्या आप बता सकेंगे कि कितना समय है?
उसने इतने आदर से पूछा कि व्यापारी रुक गया। खीसे से शान से उसने अपनी सोने की घड़ी निकाली, देखा, घड़ी वापस रखी और कहा कि अभी तीन बजने में पंद्रह मिनट कम हैं।
उस लड़के ने कहाः धन्यवाद! ठीक तीन बजे तुम मेरा पैर चूमोगे। और भाग खड़ा हुआ।
स्वभावतः व्यवसायी क्रोध से भर गया। भागा आगबबूला होकर उसके पीछे। कोई दो मील भाग पाया होगा, हांफ रहा है, उम्र ज्यादा है, कि नसरुद्दीन मिल गया, पुराना परिचित। उसने व्यापारी को रोका और कहा कि कहां भागे जा रहे हैं? क्या हो गया है, इस उम्र में हांफ रहे हैं, पसीना-पसीना हो रहे हैं! उस व्यापारी ने कहा कि वह देखते हैं, नालायक, वह लड़का! उसने मुझसे पूछा
कि कितना समय है? तो मैंने घड़ी निकाली उसके लिए रुका और मैंने कहा कि अभी पौने तीन बजे हैं। तो उसने कहा कि ठीक तीन बजे तुम मेरा पैर चूमोगे। नसरुद्दीन ने कहाः देन वाट इ.ज दि हरी, यू हैव इनफ टाइम--एट टेन मिनट लेफ्ट। इतनी तेजी से क्यों दौड़ रहे हो? अरे, पैर ही चूमना है न तीन बजे! इतनी जल्दी क्या है?
क्या आदमी अर्थ लेगा, आदमी पर निर्भर है। जीसस ने कहा कि एक ही जन्म है, तेजी से लगो, समय ज्यादा नहीं, ताकि परमात्मा खो न जाए; क्योंकि दूसरा अवसर नहीं है। लोगों ने कहा, इतना ही जीवन है, दूसरे का हमें कुछ पता नहीं; ठीक से इसे भोग लो।
महावीर, बुद्ध और कृष्ण ने कहा कि अनंत जीवन हैं। उन्होंने भी किसी प्रयोजन से ऐसा कहा। उन्होंने कहा कि अनंत जीवन हैं। बड़ा लंबा संघर्ष है; एक ही जीवन में पूरा न हो पाएगा। लेकिन चेष्टा करोगे तो अनंत जीवन में सत्य के निकट पहुंच जाओगे।
अनंत जीवन का ख्याल इसलिए दिया ताकि तुम चेष्टा कर सको। अनंत जीवन का इसलिए ख्याल दिया ताकि तुम इस जीवन को सब कुछ न समझ लो। इसे तुम उपकरण बनाओ, साधन बनाओ, अगले जीवन में और श्रेष्ठतर स्थिति पाने के लिए। यह जीवन

सब कुछ न हो जाए, अनंत जीवन की धारणा दी। हमने क्या मतलब निकाला! हमने कहा, अनंत पड़े हैं जीवन; पहले इसे तो भोग लें। जल्दी क्या है? वॉट इ.ज दि हरी? जल्दी क्या है, इस जन्म में नहीं हुआ तो अगले जन्म में कर लेंगे। अगले जन्म में नहीं हुआ, और अगले जन्म में करेंगे। अनंत अवसर हैं; जल्दी कुछ भी नहीं है, पहले इसे तो भोग लें जो हाथ में है।
आदमी बहुत बेईमान है। सभी सिद्धांतों से वह अपना मतलब और स्वार्थ खींच लेता है।
महावीर कहते हैं कि आर्य-वचनों में जो आनंद पाता है, जो अपना स्वार्थ नहीं खोजता और आर्य-वचनों को अपने तल पर नहीं खींच लेता, बल्कि स्वयं को आर्य-वचनों के तल पर खींचने की कोशिश करता है, वह व्यक्ति ब्राह्मण है। उसे हम ब्राह्मण कहते हैं, "जो अग्नि में डाल कर शुद्ध किए हुए और कसौटी पर कसे हुए सोने के समान निर्मल है, जो राग, द्वेष तथा भय से रहित है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।"
"... अग्नि में डाल कर शुद्ध किए, कसौटी पर कसे हुए सोने के समान निर्मल है।"
जिस अग्नि को आप जानते हैं वही अग्नि नहीं है, और भी अग्नियां हैं। जो बाहर दिखाई पड़ती है वही अग्नि नहीं है, भीतर भी अग्नि है। सारा जीवन अग्नि का ही फैलाव है। और जिस सोने को आप बाहर देखते हैं, वही सोना नहीं है, भीतर भी सोने की संभावना है। लेकिन वहां सब मिट्टी मिला हुआ है, कचरा मिला हुआ है। हमने कभी उसे शुद्ध नहीं किया। असल में हम बाहर के सोने की चिंता में इतने पड़े रहते हैं कि भीतर के सोने की फिकर कौन करे। और बाहर के सोने को ही खोजने में जीवन समाप्त हो जाता है; भीतर के सोने को खोजने का मौका ही नहीं आता। कभी दुख, पीड़ा में, परेशानी में हम भीतर का ख्याल भी करते हैं, तो सुख में फिर भूल जाते हैं। सुख बहिर्गामी है। दुख में थोड़े से भीतर भी जाते हैं, तो सुख के आते ही!
मुल्ला नसरुद्दीन बहुत बीमार था, बहुत दुखी था। एक दिन बीमारी, पीड़ा
की चिंता में मस्जिद चला गया; वैसे जाता नहीं था। मौलवी से जाकर कहाः मेरे लिए प्रार्थना करो। मैं तो पापी हूं, तुम तो पुण्यात्मा हो। तुम्हारी प्रार्थना जरूर स्वीकार होगी। मैं तो किस मुंह से प्रार्थना करूं, मेरे लिए प्रार्थना करो। अगर मैं बच गया इस बीमारी से, चिकित्सक कहते हैं कि बच न सकूंगा, बीमारी घातक है, अगर बच गया इस बीमारी से तो पांच रुपये--पांच रुपये काफी थे--पांच रुपया मस्जिद को दान करूंगा!
मुल्ला के ये वचन सुन कर मौलवी को भरोसा तो न आया कि वह पांच रुपये दान करेगा, लेकिन उसने सोचा दुख में आदमी कभी-कभी कर भी देता है। दुख में कभी- कभी धर्म और परमात्मा स्मरण भी आ जाता है। और फिर कौन जाने दुख में कभी आदमी बदल भी जाता है।
मौलवी ने प्रार्थना की। संयोग की बात, मुल्ला बच भी गया। बच जाने के बाद, स्वस्थ हो जाने के बाद, मौलवी ने कई दफा कोशिश की और उसके घर का दरवाजा खटखटाया। लेकिन उसने खबर दे रखी थी अपने लड़कों को, पत्नी को, सबको कि जब भी मौलवी दिखे तो उसे फौरन कह देना कि मुल्ला घर में नहीं है।
दो महीने मौलवी चक्कर काटता रहा मस्जिद के उन पांच रुपयों के लिए। आखिर एक दिन उसने बाजार में पकड़ ही लिया कि नसरुद्दीन, रुको! हद्द कर दी! बीमारी से बच भी गए, प्रार्थना स्वीकृत भी हो गई, पांच रुपयों का क्या हुआ? नसरुद्दीन ने कहाः कैसा पांच रुपया? क्या मैं इतना ज्यादा बीमार था
कि पांच रुपया बोल गया दान? मैं होश में न रहा होऊंगा। इससे तुम समझ सकते हो! नसरुद्दीन ने कहा कि मैं कितना बीमार था!
आदमी दुख के क्षण में कभी घबड़ा जाता है, तो भीतर सोचता भी है। लेकिन उसका सोचना क्षणभर का होता है; सुख का क्षण आया कि फिर बाहर बहने लगता है। भीतर भी कुछ है, इसका हमें पता ही नहीं चल पाता। और भीतर ही सब कुछ है। सोना भीतर है, खजाना भीतर है, और हम भिक्षापात्र लिए बाहर मांगते रहते हैं। मरते वक्त भिक्षापात्र ही हाथ में होता है, खाली। होगा ही, क्योंकि सोना बाहर नहीं है। बाहर का सोना जुटाने में जो लगे हैं, उनसे ज्यादा नासमझ कोई दूसरा नहीं हो सकता, क्योंकि इसी समय का उपयोग भीतर के सोने को

खोदने में हो सकता था। वहां अनंत खान है। जिसे हम आत्मा कहते हैं, वह भीतरी सोने की खदान है। लेकिन उस तरफ हमारे हाथ नहीं पहुंच पाते।
महावीर कहते हैं कि जो भीतर के सोने की खोज में लग जाए, वह ब्राह्मण है। न केवल खोज में लगे, बल्कि भीतर के सोने को खोज कर अग्नि में शुद्ध करे। अग्नि यानी तप, अग्नि यानी साधना, तपश्चर्या, योग, तंत्र--जो भी हम नाम देना चाहें।
अग्नि का अर्थ है कि भीतर अपने को तपाए। आप अपने को कभी तपाते हैं किसी भी क्षण में? कभी भीतर अपने को तपाते हैं किसी क्षण में? आप हमेशा कमजोरी की तरफ झुक जाते हैं। आप कभी सबल होने की तरफ नहीं झुकते। क्रोध उठा--यह बिल्कुल स्वाभाविक, सहज है कि आप क्रोध प्रकट करते हैं, पशु भी कर रहे हैं। कुछ खास नहीं। कुछ क्रोध करके आप खास हो नहीं जाएंगे। पाशविक वृत्ति है लेकिन क्या कभी आपने सोचा है कि यह जो निर्बल धारा है कि क्रोध उठा, बाहर शरीर से ऊर्जा जा रही है? रुक जाऊं, क्रोध को बैठ जाने दूं भीतर। दबाऊं भी नहीं, क्योंकि दबाने से जहर बन जाएगा। निकालूं भी नहीं, क्योंकि निकालने से दूसरे पर जहर चला जाएगा। सिर्फ साक्षीभाव से देखता रहूं कि क्रोध उठा है, और कोई प्रतिक्रिया न करूं।
आप अग्नि से गुजर रहे हैं। क्रोध अग्नि बन जाएगी, लपट बन जाएगी। और अगर आप बिना कुछ किए इस लपट को देखते रहे, बिना कुछ किए... कोई निर्णय नहीं लेना। न तो यह कहना कि यह बुरा है, क्योंकि बुरा कहा कि दबाना शुरू हो गया, तो खुद के शरीर में जहर फैल जाएगा। अगर कहा कि बिल्कुल ठीक है, स्वाभाविक है; दुनिया में सभी क्रोध करते हैं, मैं क्यों न करूं, और किया, तो दूसरे के शरीर पर जहर पहुंच गया। और क्रोध अगर किया तो और क्रोध को करने का द्वार खुल गया। आदत निर्मित हुई। कल और जल्दी क्रोध आ जाएगा। परसों और जल्दी क्रोध आ जाएगा। धीरे-धीरे क्रोध जीवन हो जाएगा।
लेकिन अगर न अपने क्रोध को दबाया और न क्रोध को प्रकट किया, बल्कि चेतना को संभाला और क्रोध को देखा, कोई निर्णय न लिया कि अच्छा या बुरा, करूं या न करूं, सिर्फ देखा कि क्या है क्रोध, तो आप एक अग्नि से गुजर रहे हैं। जो आग दूसरे को जलाती, जो आग अगर दबा दी जाती तो आपके स्नायुओं को नष्ट करती और आपके शरीर को विषयुक्त करती, अगर उस आग का कोई भी उपयोग न किया जाए, वह तप हो जाती है। उस आग को अगर सिर्फ देखा जाए, तो वह आग आपके सोने को निखारने लगती है।
और अगर आप एक क्रोध को सिर्फ देखने में समर्थ हो जाएं तो आप इतने आनंदित होंगे इस अनुभव के बाद, कि आप कल्पना नहीं कर सकते। इतना बल मालूम होगा। आप अपने मालिक हुए। अब कोई दूसरा आदमी आपको क्रोधित नहीं करवा सकता। इसका मतलब हुआ कि अब दूसरे लोग आपके ऊपर हावी नहीं हो सकते। अब दुनिया की कोई ताकत आपको परेशान नहीं कर सकती। आप, चाहे सारी दुनिया आपको परेशान कर रही हो, तो भी निश्चिंत रह सकते हैं।
इसका नाम जिनत्व है, ऐसी निश्चिंतता जो दूसरे से मुक्त होकर उपलब्ध होती है। जब आप क्रोध करते हैं, तब आप दूसरे के गुलाम हैं। यह सुन कर हैरानी होगी, क्योंकि क्रोध करने वाला सोचता है, मैं दूसरे को ठीक कर रहा हूं। क्रोध करने वाला समझता है अगर मैंने क्रोध न किया तो दूसरा मेरा मालिक हुआ जा रहा है।
आपको पता नहीं है कि जीवन बड़ी जटिल बात है। जब आप क्रोध करते हैं, तो आपने दूसरे को मालिक स्वीकार कर लिया, क्योंकि उसने आपको क्रोधित करवा दिया। आपकी चाबी उसी के हाथ में है। किसी ने आपको गाली दी, उसने चाबी घुमा दी, आपका ताला खुल गया। उसकी चाबी घूमती रहे और ताला नहीं खुले, तो चाबी बेकार हो गई। वह चाबी फेंकने जैसी हो गई।
अगर दुनिया में अधिक लोग अपने क्रोध को, अपने सोने को निखारने का उपाय बना लें, तो दूसरे लोगों को भी अपनी चाबियां फेंकने का मौका मिले; क्योंकि उनका कोई अर्थ न रहेगा। जो चाबी लगती ही नहीं उसका क्या करोगे? अगर कोई गाली देता हो और उसकी गाली की कोई प्रतिक्रिया नहीं होती, तो दुनिया से गालियां गिर जाएं।

गालियों में वजन है, क्योंकि गालियों से लोग प्रभावित होते हैं। सच
तो यह है कि आप चाहे किसी और चीज से प्रभावित न भी हों, गाली से जरूर प्रभावित होते हैं। कोई जरा गाली दे दे, आप एकदम आंदोलित हो जाते हैं, जैसे तैयार ही बैठे थे। बारूद तैयार थी, किसी की चिनगारी की जरूरत थी। जरा सी चिनगारी और भभक उठ आएगी।
कामवासना उठती है; अग्नि है, वस्तुतः अग्नि है। रोआं-रोआं आग से भर जाता है, खून गरम हो जाता है, स्नायु तन जाते हैं। इस आग को आप किसी पर उड़ेल दे सकते हैं। यह कामवासना किसी पर उड़ेली जा सकती है और यह कामवासना खुद में भी दबाई जा सकती है। दोनों ही गलत हैं। क्योंकि खुद में दबाने पर हर चीज रोग बन जाती है; दूसरे पर उ.ंडेलने पर रोग और फैलता है। और रोग की आदत निर्मित होती है।
कामवासना जगी है और आप चुपचाप साक्षीभाव से देख रहे हैं। भीतर खड़े हो
गए हैं, भीतर के मंदिर में, आंख बंद कर ली है और देख रहे हैं कि शरीर में कैसी कामवासना फैल रही है, कैसा रोआं-रोआं उससे कंपित और आंदोलित हो रहा है। उसे देखते रहें। यह आग आपकी चेतना को निखार जाएगी। इस आग की चमक में आप जग जाएंगे। इस आग की तप्तता में आपके भीतर का कचरा जल जाएगा।
जीवन की समस्त वासनाएं अग्नियां बन सकती हैं। उनके तीन उपयोग हैंः या
तो दूसरे को नुकसान पहुंचाएं, या अपने को नुकसान पहुंचाएं, और या फिर अपनी आत्मा को उस अग्नि से निखारें।
इस निखार के लिए महावीर कह रहे हैं कि जो अग्नि में डाल कर शुद्ध किए हुए, कसौटी पर कसे हुए सोने के समान हैं!
कसौटी पर भी कसा जाना जरूरी है। क्योंकि पता नहीं अग्नि सोने को निखार पाई या नहीं निखार पाई। इसकी कसौटी कहां होगी? अग्नि में सोना डाल देना काफी नहीं है। हो सकता है अग्नि कमजोर ही हो, सोने का कचरा मजबूत रहा हो, पर्तें गहरी रही हों, सोना न शुद्ध हो पाया हो--कसेंगे कहां?
इस संबंध में एक बात समझ लेनी बहुत आवश्यक है। महावीर, बुद्ध, मोहम्मद
या क्राइस्ट या कोई भी कुछ समय के लिए समाज से हट जाते हैं। वह समाज से हटने का वह समय आग को जलाने का समय है। लेकिन फिर समाज में लौट आते हैं। वह लौटना कसौटी का समय है। कसौटी कहां है?
मैं एकांत में जाकर बैठ जाऊं और मुझे क्रोध न उठे, क्योंकि वहां कोई गाली देने वाला नहीं है। वर्षों बैठा रहूं, क्रोध न उठे, तो मुझे वहम भी पैदा हो सकता है कि अब मैं क्रोध का विजेता हो गया। कसौटी कहां है? मुझे लौट कर आना पड़ेगा। मुझे भीड़ में खड़ा होना पड़ेगा। मुझे लोगों से संबंधित होना पड़ेगा। कोई मुझे गाली दे, कोई मुझे नुकसान पहुंचाए, और तब मेरे भीतर क्रोध की झलक भी न आए, तब अग्नि की एक लपट भी न उठे, मेरे भीतर कुछ भी जले नहीं, तो कसौटी होगी।
समाज कसौटी है। उचित है, जरूरी है कि साधक कुछ समय के लिए समाज से हट जाए। लेकिन सदा एकांत में रहना खतरनाक है। आग से तो आप गुजरे, लेकिन कसौटी कहां है? इसलिए जो साधक वन में ही रह जाते हैं सदा के लिए, अधूरे रह जाते हैं। जंगल की तरफ जाना जरूरी है। आग से पक जाने और गुजर जाने के बाद वापस लौट आना भी उतना ही जरूरी है क्योंकि यहीं कसौटियां हैं। यहां चारों तरफ कसौटियां घूम रही हैं, वे आपको ठीक से कसौटी करवा देंगीं। यहां धन है, यहां वासना है, यहां काम के सब उपकरण हैं, यहां आपको पता चलेगा।
अभी एक कैंप था माउंट आबू में। एक जैन मुनि बड़ी हिम्मत करके बड़ी हिम्मत! क्योंकि उन्होंने कहा कि मैं देखने आना चाहता हूं कि वहां ध्यान लोग कैसा कर रहे है? मैंने उनसे कहा कि देखने से क्या दिखाई पड़ेगा, आप करें ही। तो उन्होंने कहा कि वह तो जरा मुश्किल हो जाएगा--डर क्या है? तो वह कहने लगे कि वहां तो अभिव्यक्ति होती है, किसी के भीतर कुछ भी हो वह बाहर निकालना है। तो मैंने कहाः भीतर कुछ है तो निकलेगा, नहीं है, तो नहीं निकलेगा। डर क्या है? है तो निकाल कर जान लेना जरूरी है; कसौटी हो जाएगी कि भीतर पड़ा है। नहीं है, तो भी आनंद का अनुभव होगा कि भीतर कुछ भी नहीं पड़ा है। पर उन्होंने कहा कि नहीं, आप तो इतनी ही आज्ञा दें कि मैं बैठ कर देख

सकूं। आपकी मर्जी--लेकिन जो कर नहीं सकता, मैंने कहाः वह ठीक से देख भी नहीं पाएगा।
और यही हुआ। जब लोगों ने ध्यान करना शुरू किया तो वह कोई दो मिनट तक तो देखते रहे, फिर सामने ही एक युवती ने अपना वस्त्र अलग कर दिया। मुनि ने तत्काल आंखें बंद कर लीं। फिर वह देख नहीं सके! ... नग्न स्त्री!
स्त्री को देखने की ही घबड़ाहट है, तो नग्न स्त्री को देखने में तो बहुत घबड़ाहट हो जाएगी। लेकिन घबराहट बाहर है या भीतर?
भीतर कोई कंपित हो गया। भीतर कोई वासना उठ गई, भीतर कोई परेशानी खड़ी
हो गई। आंख उस स्त्री से थोड़े ही बंद की जा रही है। आंख बंद करके वह जो भीतर उठ रहा है, उसे दबाया जा रहा है। यह जो दबाया जा रहा है इससे कभी मुक्ति न हो पाएगी। यह दबा हुआ सदा पीछा करेगा, जन्मों-जन्मों तक सताएगा। मैंने उन्हें कहा कि आप सोचते थे, देख पाएंगे, लेकिन देख नहीं पाए। क्योंकि जो डर करने में था, वही डर देखने में भी है।
वासना भीतर खड़ी है। एकांत में इसका निरीक्षण, इसका साक्षीभाव उचित है। और अच्छा है कि प्रारंभ में साधक एकांत में चला जाए, ताकि और चीजों के उपद्रव न रह जाएं। एक ही बात रह जाए जीवन में साधना की। लेकिन वन अंत नहीं है, लौट तो समाज में ही आना पड़ेगा।
तो महावीर कहते हैं कि जो अग्नि में डाले हुए शुद्ध किए हुए और कसौटी
पर कसे हुए निर्मल सोने की तरह है; जो राग, द्वेष तथा भय से रहित है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।
"... राग, द्वेष तथा भय से रहित है।"
राग, द्वेष से रहित कौन हो सकता है? राग और द्वेष दो चीजें नहीं हैं,
एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जो राग से भरा है, वह द्वेष से भी भरा होगा; जो द्वेष से भरा है, वह राग से भी भरा होगा। लेकिन इसे समझा नहीं गया है। आमतौर से तो हालत बड़ी उलटी हो गई है। दुनिया में दो तरह के लोग हैं इस वक्तः राग से भरे हुए लोग, जिन्हें हम गृहस्थ कहते हैं और द्वेष से भरे हुए लोग, जिनको हम साधु-संन्यासी कहते हैं। जिस-जिस चीज से आपको राग है, साधु को उसी-उसी से द्वेष है। लेकिन महावीर कहते हैं, राग और द्वेष दोनों से जो मुक्त है, वह ब्राह्मण है। क्योंकि द्वेष राग का ही शीर्षासन करता हुआ रूप है।
एक आदमी स्त्री के पीछे दीवाना है, पागल है, बस उसे सिर्फ स्त्री दिखाई पड़ती है। यह आदमी कल संन्यस्त हो सकता है। तब यह स्त्री से बचने के लिए पागल हो जाएगा। तब कहीं कोई स्त्री छू न ले, कोई स्त्री पास न आ जाए, कहीं कोई स्त्री एकांत में न मिल जाए। तब यह भयभीत हो जाएगा, यह भागेगा, यह डरेगा।
पहले भी भाग रहा था। पहले यह स्त्री की तरफ भाग रहा था, अब स्त्री की तरफ से भाग रहा है। लेकिन ध्यान स्त्री पर ही लगा हुआ है। पहले राग था, अब द्वेष है। पहले धन इकट्ठा कर रहा था, अब धन को देखता है तो आंख बंद कर लेता है। पहले धन को छूकर बड़ा मजा आता था। जैसे धन में भी प्राण हो। अब कोई धन को पास ले आए तो हाथ सिकोड़ लेता है कि कहीं छू न जाए, जैसे धन में अब भी प्राण है और धन इसको बिगाड़ सकता है। फर्क नहीं पड़ रहा है।
राग और द्वेष में फर्क नहीं है। द्वेष राग की ही उलटी तस्वीर है। जो
भी राग करते हैं, किसी भी दिन द्वेष कर सकते हैं। जो भी द्वेष करते हैं, किसी भी दिन फिर राग कर सकते हैं। और राग, द्वेष घड़ी के पेंडुलम की तरह बदलते रहते हैं। सुबह द्वेष, सांझ राग; सांझ राग, सुबह द्वेष। आप अपने ही जीवन में अनुभव करेंगे तो पता चलेगा, प्रतिपल यह बदलाहट होती रहती है। यह बदलाहट, यह द्वंद्व हमारे विक्षिप्त मन का हिस्सा है।
महावीर कहते हैं, राग, द्वेष से मुक्ति, दोनों से एक साथ। न तो किसी चीज के प्रति आसक्ति और न किसी चीज के प्रति विरक्ति। यह बड़ी कठिन है क्योंकि हम तो विरक्त को संन्यासी कहते हैं; महावीर नहीं कहते। महावीर ने एक नया शब्द खोजा, उसे वे कहते हैं, "वीतराग।" आसक्ति में बंधा हुआ आदमी और विरक्त, दोनों एक-जैसे हैं। वीतराग का अर्थ हैः दोनों से पार। वीत-दोनों से पार चला गया, अब वहां दोनों नहीं हैं--आदमी सरल हो गया, सहज हो गया।

एक बड़ी अदभुत शर्त साथ में लगाई है कि जो राग, द्वेष और भय से रहित है। क्योंकि यह भी हो सकता है कि हम राग, द्वेष से रहित होने की कोशिश भय
के कारण करें। हममें से बहुत से लोग धार्मिक भय के कारण होते हैं, डर के कारण। डर नरक का, डर पाप का, डर अगले जन्म का, मृत्यु के बाद सताए तो नहीं जाएंगे? पता नहीं क्या होगा!
आदमी मृत्यु से उतना नहीं डरता, जितना दुख से डरता है। मेरे पास बूढ़े लोग आते हैं, वे कहते हैं कि मृत्यु का हमें डर नहीं है, इतना ही आशीर्वाद दे दें कि सुख से मरें। कोई दुख न पकड़े, कोई बीमारी न पकड़े; सड़ें-गलें नहीं। मृत्यु का डर नहीं है, डर दुख का है। मृत्यु में क्या है, कोई फिकर नहीं है। लेकिन कैंसर हो जाए, टी. बी. हो जाए, सड़ें-गलें, दुख पाएं, उसका डर है। जैसे हैं, स्वस्थ मर जाएं।
मृत्यु से भी ज्यादा डर दुख का है। और पुरोहितों को पता चल गया है कि आदमी दुख से डरता है, इसलिए उन्होंने बड़े नरक का इंतजाम कर दिया है। उन्होंने नरक बना दिया कि अगर तुमने पाप किया, अगर राग किया, द्वेष किया, यह किया, वह किया तो नरक में सड़ोगे। नरक के डर के कारण बहुत से लोग धार्मिक बने हैं।
अब यह नरक का डर रोज-रोज कम होता जा रहा है, लोगों का धर्म भी कम होता
जा रहा है उसी अनुपात में। जिस दिन नरक बिल्कुल समाप्त हो जाएगा, आप बिल्कुल अधार्मिक हो जाएंगे, क्योंकि आपका धर्म सिवाय भय के कुछ भी नहीं है। भगवान की मूर्ति के सामने जब आप घुटने टेकते हैं, वह भय में टेके गए घुटने हैं। और भय से क्या संबंध सत्य से हो सकता है!
महावीर कहते हैं, अभय सत्य की खोज का पहला चरण है। और जो अभय नहीं है,
वह ब्राह्मण नहीं हो सकता। इसलिए महावीर ने तो प्रार्थना तक को विसर्जित कर दिया। महावीर ने कहाः प्रार्थना में भय छिपा रहता है, मांग छिपी रहती है। प्रार्थना की भी कोई जरूरत नहीं है, सिर्फ अभय हो जाने की जरूरत है। कौन आदमी अभय हो सकता है? भय मौजूद है, वास्तविक है। मौत है, दुख है, पीड़ा है।
तो एक तो उपाय यह है कि कोई दुख न रह जाए, तब आदमी निर्भय हो जाए, अभय हो जाए। पर दुख तो रहेंगे। कोई दुनिया का विज्ञान आदमी को दुख से मुक्त नहीं कर सकता; एक दुख को बदल कर दूसरे दुख में ही डाल सकता है। कोई स्थिति नहीं हो सकती जमीन पर, जब कोई दुख न हो। पांच हजार साल का अनुभव है। पुराने दुख हट जाते हैं, नये दुख आ जाते हैं। पुरानी बीमारियां चली जाती हैं। प्लेग नहीं है अब। बहुत से मुल्कों से मलेरिया विदा हो गया। प्लेग खो गई। काला बुखार नहीं रहा; लेकिन क्या फर्क पड़ता है, उससे भी भयंकर बीमारियां मौजूद हो गई हैं।
आदमी सुख में नहीं हो सकता, अकेले सुख में नहीं हो सकता; दुख सुख के साथ जुड़ा है। हम इधर सुख का इंतजाम करते हैं, उतने ही दुख का इंतजाम उसके साथ ही हो जाता है। तो महावीर कहते हैं कि दुख से मुक्त होने की कोशिश एक ही अर्थ रखती है कि मेरी चेतना दुख और सुख से पृथक हो जाए। और कोई उपाय नहीं है।
विज्ञान मनुष्य को आनंद में नहीं उतार सकता; बड़े सुख में ले जा सकता है, लेकिन साथ ही बड़े दुख में भी ले जाएगा। इसलिए जितना विज्ञान सुविधा जुटाता है, उतना ही आदमी को असुविधा का अनुभव होने लगता है। एक आदमी धूप में दिन भर काम करता है, उसे धूप का दुख निरंतर अनुभव से कम हो जाता है। एक आदमी छाया में बैठकर काम करता है। छाया में निरंतर बैठने से छाया का सुख होता है, लेकिन धूप का दुख बढ़ जाता है। धूप में जाएगा तो बहुत दुख पाएगा, जो धूप में काम करनेवाला कभी नहीं पाएगा।
आप जितना सुख बढ़ाते हैं, उनके साथ ही दुख की क्षमता बढ़ती जाती है। क्योंकि सुख के साथ ही साथ आप डेलिकेट होते जाते हैं, नाजुक होते जाते हैं और जितने नाजुक होते हैं, उतना रेसिस्टेंस कम हो जाता है, प्रतिरोध कम हो जाता है। तो हमने सब बीमारियों का इंतजाम कर लिया, लेकिन आदमी का प्रतिरोध कम हो गया और आदमी का प्रतिरोध कम हो जाने से हजार नई बीमारियां खड़ी हो गईं।

हम आदमी को जितना सुख देंगे, उतना ही उसके साथ दुख की खाई बढ़ती जाएगी। विज्ञान बड़े सुख दे सकता है; बड़े दुख देगा।
महावीर कहते हैं, आनंद की तो एक ही संभावना है कि सुख दुख से मैं अपनी चेतना को पृथक कर लूं। राग, द्वेष से अलग होने का अर्थ है, मैं साक्षी हो जाऊं। न तो मैं किसी के खिलाफ, न किसी के पक्ष में, न तो सुख की आकांक्षा और न दुख का विरोध। जो भी घटित हो, मैं उसका देखने वाला रह जाऊं।
महावीर का धर्म अभय पर खड़ा धर्म है। अंग्रेजी में एक शब्द है, गॉड-फियरिंग। हिंदी में भी एक शब्द है, ईश्वर-भीरु--ईश्वर से डरने वाला, महावीर ऐसे शब्द को धर्मशास्त्र में जगह नहीं देंगे। महावीर कहेंगे, जो डरता है, वह तो कभी सत्य को उपलब्ध नहीं हो सकता। भयभीत चित्त का कोई संबंध सत्य से होने की संभावना नहीं है। तो महावीर कहते हैंः राग, द्वेष और भय से जो रहित है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।
"जो तपस्वी है... ।"
जो भीतर जीवन की वासना की जो अग्नि है, उसको यज्ञ बना रहा है। जो भीतर अपने को निखार रहा है। अपने जीवन की पूरी ऊर्जा का उपयोग जो व्यर्थ बाहर नहीं खो रहा है। बल्कि सारा ईंधन एक ही काम में ला रहा है कि मेरे भीतर का सोना निखर जाए, वह तपस्वी है।
"... जो दुबला-पतला है।"
यह जरा सोचने जैसा है, क्योंकि महावीर की प्रतिमा दुबली-पतली नहीं है। इससे बड़ी भ्रांति पैदा हुई है। महावीर की प्रतिमा बड़ी बलिष्ठ और स्वस्थ है, दुबली-पतली जरा भी नहीं है। और महावीर की एक भी प्रतिमा उपलब्ध नहीं है, जिसमें वे दुबले-पतले हों। हां, बुद्ध की एक प्रतिमा उपलब्ध है, जिसमें वे हड्डी-हड्डी रह गए हैं, महातप उन्होंने किया जिसमें वे बिल्कुल सूख गए हैं, और उनकी पीठ और पेट एक हो गए। वे इतने कमजोर हो गए हैं कि उठ भी नहीं सकते। नदी में स्नान करने गए हैं निरंजना में, इतने कमजोर हो गए हैं कि नदी से बाहर निकलने की ताकत नहीं तो एक वृक्ष की जड़ को पकड़ कर लटके हुए हैं।
जरूर महावीर और बुद्ध की तपश्चर्या में कुछ बुनियादी फर्क है। बुद्ध जरूर कुछ गलत तपश्चर्या कर रहे हैं। और इसीलिए बुद्ध को छह साल के बाद तपश्चर्या छोड़ देनी पड़ी। और बुद्ध ने कहा कि तप से कोई मुक्त नहीं हो सकता। उनका अनुभव ठीक था। उन्होंने जो तप किया था, उससे कभी कोई मुक्त नहीं हो सकता। वह उस तप को छोड़ कर मुक्त हुए।
लेकिन इस पर बहुत गंभीर विचारणा नहीं हुई, क्योंकि महावीर तप से ही मुक्त हुए। लेकिन महावीर ने वैसा तप कभी नहीं किया, जैसा बुद्ध ने किया। बुद्ध के तप में कोई भ्रांति थी। बुद्ध एक तरफ भोगी थे; फिर एकदम विपरीत तपस्वी हो गए। उन्होंने शरीर को सुखा डाला; खून, मांस सब सूख गया; हड्डी- हड्डी हो गए; इतने कमजोर हो गए कि ऊर्जा ही न बची जो कि भीतर के सोने को निखार सके। तो उन्हें उस तप को छोड़ देना पड़ा। लेकिन महावीर कभी हड्डी- हड्डी नहीं हुए।
तो महावीर का यह वचन समझने जैसा है। महावीर कहते हैं, "जो दुबला-पतला है, जो इंद्रिय-निग्रही है, उग्र तपसाधना के कारण जिसका रक्त और मांस सूख गया है, जो शुद्धव्रती है, जिसने निर्वाण पा लिया है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।"
महावीर की प्रतिमा को ख्याल में रख कर इस वचन को समझना जरूरी है, नहीं
तो भ्रांति महावीर के अनुयायी भी करते रहे हैं। महावीर कहते हैं कि मनुष्य के शरीर में रक्त और मांस अकारण नहीं होता। रक्त और मांस के होने के दो कारण हैं। एक तो शरीर की जरूरत है कि शरीर बिना रक्त और मांस के जी नहीं सकता। वह शरीर का भोजन है, शरीर का ईंधन है। लेकिन जितना शरीर को चाहिए, उतने से ज्यादा आदमी इकट्ठा कर लेता है और वह जो ज्यादा इकट्ठा किया हुआ है, वह मनुष्य को वासनाओं में ले जाता है। ध्यान रहे, अगर आपको अचानक लाख रुपये मिल जाएं, तो आप क्या करेंगे? आप एकदम, आपकी जो-जो बुझी पड़ी वासनाएं हैं, उनको सजग कर लेंगे। एक लाख का ख्याल आते ही से आपकी वासनाएं भागने लगेंगी। क्या कर लूं? कहां भोग लूं?

नया-नया धनी हुआ आदमी बड़ा पागल हो जाता है। नया धनी अपनी सारी वासनाओं
को जगा हुआ पाता है। इसलिए नये धनी को पहचानने में कठिनाई नहीं है। उसका धन उछलता हुआ दिखाई पड़ता है। उसका धन वासना की दौड़ बन जाता है। जैसे ही आपके शरीर में जरूरत से ज्यादा खून, मांस मज्जा इकट्ठी हो जाती है, आप इसका क्या करेंगे? और मनुष्य के पास संग्रह करने का उपाय है।
मनुष्य के शरीर में उपाय है। तीन महीने के लायक तो भोजन हम अपने शरीर में इकट्ठा रखते ही हैं। इसलिए कोई भी आदमी तीन महीने तक उपवास कर सकता है, मरेगा नहीं। स्वस्थ, सामान्य स्वस्थ आदमी अगर नब्बे दिन भूखा तक रहे तो मरेगा नहीं, क्योंकि नब्बे दिन के लिए भोजन शरीर में रिजर्व, सुरक्षित रहता है। हम अपना मांस पचाते जाएंगे नब्बे दिन तक। इसलिए जब आप उपवास करते हैं तो हर रोज पौंड, डेढ़ पौंड वजन गिरने लगता है। कैसे गिर रहा है वजन? यह वजन कहां जा रहा है? शरीर को बाहर से भोजन नहीं दिया जा रहा है, तो शरीर के पास एक दोहरी व्यवस्था है, शरीर अपने ही मांस को पचाने लगता है।
उपवास एक तरह का मांसाहार है, अपना ही मांस पचाना है। डेढ़ पौंड, दो पौंड मांस रोज पचा जाएगा। स्वस्थ आदमी के शरीर में तीन महीने तक के लायक सुरक्षित व्यवस्था होती है। लेकिन इस तीन महीने से ज्यादा भी हम इकट्ठा कर लेते हैं। हम बड़े कृपण हैं, कंजूस हैं। हम सब चीजें इकट्ठी करते रहते हैं। हम इतना इकट्ठा कर लेते हैं कि उसे फेंकना जरूरी हो जाता है। उसे न फेंकें तो वह बोझ हो जाएगा। वह जो अतिरिक्त बोझ हो जाता है, वह हमारी वासनाओं में फिंकने लगता है।
तो महावीर जब कहते हैं, "दुबला-पतला", तो उनका मतलब है सामान्य, स्वस्थ, जो कृपण नहीं है, जो मांस-मज्जा को इकट्ठा करने में नहीं लगा है; क्योंकि वह इकट्ठी मांस-मज्जा गलत मार्गों पर ले जाएगी; बोझ हो जाएगा। पश्चिम में अगर आज वासना का ज्वार आ गया है, तो उसका एक कारण यह है कि जरूरत से ज्यादा भोजन आज पश्चिम में पहली दफा उपलब्ध है। इतना भोजन उपलब्ध है कि बड़ी हैरानी की बात है, उस भोजन का उपयोग क्या किया जाए? अगर आपको बहुत ज्यादा दूध और पौष्टिक पदार्थ मिलें, तो कामवासना बढ़ जाएगी। इतनी भी ज्यादा बढ़ सकती है कि आपको चौबीस घंटे कामवासना ही घेरे रहे। क्योंकि इतना वीर्य आप रोज उत्पन्न कर लेंगे कि उसे फेंकना जरूरी हो जाएगा।
महावीर कहते हैं, शरीर पर दृष्टि रखनी जरूरी है। एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण है कि शरीर में अतिरिक्त इकट्ठा न हो। अतिरिक्त इकट्ठा होगा तो वासना में खींचेगा। शरीर में उतना ही हो जितना जरूरी है ताकि जितना आत्मा को जगाने और रोशन करने के लिए काफी है उतना दीया भीतर जल जाए और बाहर की तरफ की वासना न उठे।
तो महावीर कहते हैं कि जो दुबला-पतला है, जिसका रक्त और मांस सूख गया है।
इसका यह मतलब नहीं कि उसका रक्त और मांस बिल्कुल सूख गया है। रक्त, मांस सूख गया है, मतलबः अतिरिक्त रक्त, मांस सूख गया है। जिसके पास व्यर्थ ईंधन नहीं है, जो उसे गलत मार्ग पर ले जाए।
"जो शुद्धव्रती है, जिसने निर्वाण पा लिया है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।"
इस आखिरी शब्द-निर्वाण को समझ लेना जरूरी है। निर्वाण बड़ा कीमती शब्द है। इस शब्द का मतलब होता है, दीये का बुझ जाना। जब किसी दीये को हम फूंक देते हैं और उसकी ज्योति बुझ जाती है, तो कहते हैंः दीया निर्वाण को उपलब्ध हो गया।
महावीर कहते हैंः जो निर्वाण को उपलब्ध हो गया, वह ब्राह्मण है।
तो किस दीये की बात कर रहे हैं?
जब तक अहंकार है, तब तक हम जल रहे हैं व्यक्ति की तरह। जैसे ही अहंकार
की ज्योति बुझ जाती है, हम व्यक्ति की तरह समाप्त हो जाते हैं; अहंकार खो जाता है। अब हम होते हैं; लेकिन व्यक्ति की तरह नहीं होते हैं; अहंकार की तरह नहीं होते, अस्मिता नहीं होती। हमारी कोई सीमा नहीं रह जाती, हमारी कोई दीवालें नहीं रह जातीं, और "मैं" का कोई भाव नहीं रह जाता।

"मैं-भाव" का बुझ जाना निर्वाण है। जिस क्षण मैं हूं, और मुझे पता नहीं चलता कि मैं हूं, मेरा होना शुद्ध हो गया। इस शुद्धतम अवस्था को महावीर कहते हैं, "मैं ब्राह्मण कहता हूं।"
महावीर ने जितना आदर "ब्राह्मण" शब्द को दिया है, उतना किसी और ने कभी
भी नहीं दिया है। "ब्राह्मण" शब्द की ऐसी पराकाष्ठा न तो उपनिषदों में उपलब्ध है और न वेदों में उपलब्ध है। लेकिन फिर भी ब्राह्मणों ने समझा कि महावीर ब्राह्मणों के दुश्मन हैं। समझने का कारण था, क्योंकि उन्होंने ब्राह्मण की जन्मजात बपौती छीन ली, स्वार्थ छीन लिया, उसका धंधा छीन लिया, उसका व्यवसाय छीन लिया।
लेकिन अगर कोई ठीक से समझे तो महावीर ब्राह्मण के दुश्मन नहीं हैं, ब्राह्मण ही ब्राह्मण के दुश्मन हैं। महावीर तो परम प्रेमी मालूम पड़ते हैं ब्राह्मणत्व के। ब्राह्मण को उन्होंने ठीक ब्राह्मण के निकट बिठा दिया। और ब्रह्मण तभी कहने का कोई अपने को अधिकारी है, जब महावीर की परिभाषा पूरी करता है। जन्म से जो ब्राह्मण है, उसका ब्राह्मणत्व औपचारिक है, फारमल है। उसका कोई मूल्य नहीं है। ब्राह्मण की उपलब्धि और ब्रह्म की उपलब्धि के मार्ग पर चलते हुए, पड़ते हुए कदम और पडाव, वे ही ब्राह्मण होने के पड़ाव हैं।

आज इतना ही।

महावीर-वाणी, भाग 2
अठारहवां प्रवचन

अलिप्तता है ब्राह्मणत्व (ब्राह्मण-सूत्रः 2)

दिव्व-माणुस-तेरिच्छं, जो न सेवइ मेहुणं।
मणसा काय-वक्केणं, तं वयं बूम माहणं।।
जहा पोम्मं जले जायं, नोवलिप्पइ वारिणा।
एवं अलित्तं कामेहिं, तं वयं बूम माहणं।।
आलोलुयं मुहाजीविं,
अणगारं अकिंचणं।
असंसत्तं गिहत्थेसु,
तं वयं बूम माहणं।।

जो देवता, मनुष्य तथा तिर्यंच संबंधी सभी प्रकार के मैथुन का मन, वाणी
और शरीर से कभी सेवन नहीं करता, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।
जिस प्रकार कमल जल में उत्पन्न होकर भी जल से लिप्त नहीं होता, उसी प्रकार जो संसार में रह कर भी काम-भोगों से सर्वथा अलिप्त रहता है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।
जो अलोलुप है, जो अनासक्त-जीवी है। जो अनगार (बिना घर-बार का) है। जो अकिंचन है, जो गृहस्थों के साथ आने वाले संबंधों में अलिप्त है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।

इस सदी के प्राथमिक चरण में सिगमंड फ्रायड ने पश्चिम के लिए और आधुनिक मनुष्य के लिए एक बड़ी महत्वपूर्ण खोज की। खोज नई नहीं है। पूरब के मनीषी उससे सदा से परिचित रहे हैं। पुनर्खोज है; लेकिन आधुनिक मनुष्य के लिए नये की तरह ही है।
फ्रायड ने मनुष्य का विश्लेषण किया और पाया कि कामवासना मनुष्य के प्राणों में सबसे गहरी पर्त है; जैसे मनुष्य का जीवन कामवासना के आस-पास ही घूमता और भटकता है। स्वाभाविक है कि ऐसा हो। क्योंकि मनुष्य का जन्म होता है कामवासना से। मनुष्य के शरीर का प्रत्येक कण काम-कण है। जिन पहले परमाणुओं से, जीव-कोष्ठों से मनुष्य निर्मित होता है, वे ही कामवासना के कण हैं। फिर उन्हीं कणों का विस्तार मनुष्य के पूरे शरीर को निर्मित करता है। इसलिए कामवासना तो रोएं-रोएं में समाई हुई है। एक-एक कोष्ठ शरीर का कामवासना से ही भरा हुआ है। स्वाभाविक है कि कामवासना की प्रगाढ़ पकड़ आदमी के जीवन में हो। वह जो भी करे, जिस भांति भी जीए, जो भी सोचे, स्वप्न देखे, उन सब में कहीं न कहीं कामवासना मौजूद होगी।
फ्रायड की यह खोज तो कीमती है। कीमती इस लिहाज से कि सत्य है; लेकिन खतरनाक भी, क्योंकि अधूरी है, और अधूरे सत्य असत्य से भी ज्यादा खतरनाक हो जाते हैं।
यह मनुष्य की प्राथमिक भूमिका है कामवासना, लेकिन यह उसका अंत नहीं है। यह बीज है। यह फूल नहीं है। यहां से मनुष्य शुरू होता है, लेकिन यहां समाप्त नहीं होता। और जो प्राथमिक जीवन की पर्त पर ही नष्ट हो जाते हैं, वे जीवन के शिखर को और जीवन के गौरव को जानने से वंचित रह जाते हैं।
ईसाइयत ने बड़ा विरोध किया फ्रायड का। वह विरोध निकम्मा साबित हुआ। क्योंकि उस विरोध में सिर्फ भय था, सत्य नहीं था। ईसाइयत डरी कि अगर लोग समझ लें कि कामवासना ही जीवन का मूल आधार है, उत्स है, स्रोत है, तो फिर लोगों को परमात्मा तक ले जाना मुश्किल हो जाएगा। लेकिन पूरब इस बात से राजी है कि कामवासना उत्स है, स्त्रोत है, गंगोत्री है जहां से धारा बहती है। लेकिन वह अंतिम सागर नहीं है, जहां से गंगा गिरती है, और हमें कभी कोई अड़चन नहीं रही कि हम स्वीकार करें कि निम्न से परम का जन्म हो सकता है। क्योंकि हमारी दृष्टि में निम्न और श्रेष्ठ में बुनियादी रूप से कोई अंतर नहीं है। निम्न हम उसे ही कहते हैं, जहां श्रेष्ठ बीज में छिपा हुआ है और

श्रेष्ठ हम उसे ही कहते है जहां निम्न रूपांतरित हुआ, प्रकट हुआ, अभिव्यक्त हुआ, परिशुद्ध हुआ।
निम्न और श्रेष्ठ विरोधी नहीं हैं, एक ही उर्जा के दो आयाम हैं। जैसा मैंने कल कहा मिट्टी और कमल। हम कामवासना को मिट्टी मानते हैं। और इस कामवासना में अगर समाधि का फूल खिल जाए, तो उसे हम कमल मानते हैं। मिट्टी और कमल में विरोध नहीं है, गहरी मैत्री है। कला आनी चाहिए मिट्टी को कमल बनाने की।
तो पूरब ने दो तरह की कलाएं विकसित कीं मनुष्य को कामवासना के पार ले जाने वाली। उनमें एक कला है "तंत्र" की और एक कला है "योग" की। तंत्र कहता है, जहर का उपयोग अमृत की तरह किया जा सकता है। और तंत्र कहता है, जो विकृत है, जो रुग्ण है, उसे भी स्वस्थ किया जा सकता है। जहां जीवन नीचा मालूम पड़ता है, उस नीची सीढ़ी का उपयोग भी ऊपर चढ़ने के लिए किया जा सकता है। पत्थर भी, मार्ग के रोड़े भी, सोपान बनाए जा सकते हैं।
तो तंत्र निषेध नहीं करता कामवासना का। और तंत्र कहता है, कामवासना
का इस भांति उपयोग किया जा सकता है कि उसके उपयोग से ही व्यक्ति उसके पार चला जाए। योग ठीक दूसरी तरफ से खोज करता है। योग कहता है, कामवासना के उपयोग की भी कोई जरूरत नहीं है। कामवासना का बिना उपयोग किए ही कामवासना के प्रति साक्षीभाव साधा जा सकता है। और जिस मात्रा में साक्षीभाव सधता है, उसी मात्रा में कामवासना से आत्मा के संबंध टूटते चले जाते हैं।
ये दोनों परंपराएं बिल्कुल विपरीत हैं और बिल्कुल एक ही मंजिल पर ले जाती हैं। और जो ज्ञानी इस बात को नहीं समझ पाता, वह कुछ भी नहीं समझ पाया है।
विपरीत मार्गों से भी एक मंजिल पर पहुंचा जा सकता है। तंत्र और योग में कोई संघर्ष नहीं है, साधन का संघर्ष है, अंतिम लक्ष्य का कोई संघर्ष नहीं है। महावीर महायोगी हैं। इसलिए महावीर तंत्र की किसी प्रक्रिया के समर्थन में नहीं हैं। महावीर कहते हैंः कामवासना जैसी है, उसका बिना उपयोग किए छोड़ देना जरूरी है। वे कहते हैं; जितना उपयोग किया जाए, उतना ही डर है कि आदत प्रगाढ़ होती चली जाए।
उनका भय भी ठीक है। सौ में से निन्यानबे आदमियों के लिए यही ठीक मालूम पड़ेगा कि खतरे से दूर रहें। क्योंकि खतरे की आदत भी बन सकती है। और हम न भी चाहें, तो भी एक यांत्रिक आदत के जाल में फंस जाते हैं। अधिक लोग कामवासना में इसलिए उतरते हैं कि वह एक रोज की आदत हो गई है; कुछ रस भी नहीं पाते; कुछ सुख भी नहीं मिलता। शायद कामवासना से गुजर कर दुख ही मिलता है; विषाद मिलता है, रुग्णता मिलती है और ऐसा लगता है कुछ खोया। लेकिन फिर भी एक बंधी हुई आदत है और आदमी उस आदत के पीछे दौड़ा चला जाता है।
महावीर कहते हैं कि कठिन है यह बात कि आदमी कामवासना के बीच कामवासना
का उपयोग करके पार हो सके; क्योंकि कामवासना इतनी प्रगाढ़ है; उसका पंजा इतना मजबूत है। तो उचित यही है कि उसका उपयोग ही न किया जाए और उससे साक्षीभाव साधा जाए। लेकिन जैसा तंत्र का खतरा है कि आदत बन जाए, वैसे ही योग का खतरा है कि दमन बन जाए।
खतरे तो हर मार्ग पर हैं। जो चलेगा उसके लिए खतरा है; जो नहीं चलता, उसके लिए कोई खतरा नहीं है। जो चलेगा वह भटक सकता है, इसलिए भटकने से मत डरना। क्योंकि जो भटकने से बहुत डरता है, वह चलता ही नहीं। भटकने वाले भी कभी न कभी पहुंच जाएंगे, लेकिन जो चलते ही नहीं, वे कभी भी नहीं पहुंच सकते। इसलिए भूल करने से कभी भयभीत मत होना। भूल सुधारी जा सकती है। लेकिन भूल से कोई इतना भयभीत हो जाए कि कुछ करे ही नहीं कि कहीं भूल न हो जाए, तो फिर सुधार का कोई उपाय नहीं है।
जीवन में एक ही असलफता है, और वह है प्रयास ही न करना। गलत प्रयास भी कभी न कभी सफल हो जाता है। लेकिन प्रयास ही कोई न करे, तब तो सफलता का कोई उपाय नहीं है।
हिम्मत से भूल करना, हिम्मत से भटकने की तैयारी रखना; क्योंकि जो भटक सकता है, वह पहुंच भी सकता है। भटकने में भी पैर ही चलते हैं, श्रम होता है, संकल्प होता है। एक बात निश्चित है कि अगर कोई चलता ही जाए तो कितना ही

लंबा भटकाव हो, पार हो जाएगा। क्योंकि जो चलने को तैयार है, वह आज नहीं कल समझने लगेगा कि मैं भटक रहा हूं। जहां-जहां भटक रहा हूं, वहां-वहां से पैर मुड़ने लगेंगे।
तंत्र का खतरा है कि हम अपने को धोखा न दे लें कि हम सोचें कि हम कामवासना का उपयोग कर रहे हैं, और उपयोग कर-कर के हम धीरे-धीरे मुक्ति की अवस्था में पहुंच जाएंगे, और यह कामवासना हमारी आदत बन जाय। और निकलना तो दूर हो, हम और इसमें, गहरे जाल में फंसते चले जाएं। क्योंकि जितना अभ्यास होता चला जाता है, उतनी आदतें जंजीर की तरह मजबूत होती चली जाती हैं।
योग का भी खतरा है। योग का खतरा है कि साक्षीभाव के नाम पर कहीं हम दमन
न करने लगें, कहीं हम वासनाओं को दबा न लें; क्योंकि दबी हुई वासनाएं जहर हो जाती हैं; और दबा हुआ चित्त बुरी तरह कामुक हो जाता है।
आप जान कर हैरान होंगे, साधारण मनुष्य इतना कामुक नहीं होता, जितना दमित व्यक्ति कामुक हो जाता है और दमित व्यक्ति को सब तरफ कामवासना ही दिखाई पड़ने लगती है। क्योंकि जो आप दबाते हैं, उसकी पर्त आपकी आंख पर फैल जाती है। वह आपका चश्मा बन जाता है। और कामवासना को दबाया हुआ आदमी खोद-खोद कर जगह-जगह कामवासना देखने लगता है।
मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी ने पुलिस में रिपोर्ट की
कि मेरे मकान के पास ही जो नदी बहती है, वहां कुछ युवक नग्न स्नान कर रहे हैं। मेरे चौके की खिड़की से वे मुझे दिखाई पड़ते हैं। यह बरदाश्त के बाहर है। यह अशोभन है; अश्लील है। पुलिस को तत्क्षण कुछ करना चाहिए।
पुलिस आई; युवकों को समझाया। युवक पहले तो थोड़े रुष्ट हुए, फिर राजी
हो गए, और आधा मील दूर नदी में नीचे चले गए। लेकिन घंटे भर बाद फिर श्रीमती नसरुद्दीन का फोन पुलिस स्टेशन आया कि पुलिस कुछ करे; लड़के अभी भी नदी में नहा रहे हैं और नग्न हैं। लेकिन पुलिस के अधिकारी ने कहा कि देवी, अब वे आधा मील दूर चले गए हैं। अब तुम्हारी खिड़की से उन्हें देखने का कोई उपाय भी नहीं है।
श्रीमती नसरुद्दीन ने कहाः उपाय है! विद माई बायनाक्यूलर्स आई कैन सी देम--मैं अपनी दूरबीन से देख सकती हूं।
कठिनाई नग्न लड़कों के स्नान में नहीं थी, कठिनाई कहीं श्रीमती नसरुद्दीन के मन में ही है। दमित व्यक्ति ऐसी कठिनाई से भर जाता है। वह दूरबीन ले लेता है और सब तरफ वह एक ही चीज की तलाश करता रहता है।
होगा ही। क्योंकि जो दबाया है, वह बदला लेगा। जीवन बदला लेगा। जिस वासना को आपने जोर से दबा लिया है, वह प्रतीक्षा कर रही है कि कब आप पर कब्जा कर ले, कब आपको जकड़ ले।
लेकिन हमें दिखाई नहीं पड़ता। योग का खतरा हमें कम दिखाई पड़ता है तंत्र का खतरा ज्यादा दिखाई पड़ता है। इसी कारण तंत्र सार्वभौम नहीं बन पाया और योग का काफी प्रभाव हुआ। क्योंकि दमन ज्यादा सूक्ष्म है और व्यक्ति को अपने भीतर करना होता है; और उसकी खबर किसी को भी नहीं मिलती। मैं साधुओं से मिलता हूं। और जब भी साधु मुझे एकांत में मिलते हैं, तो उनकी परेशानी कामवासना होती है। और वे मुझे कहते हैं, कोई रास्ता बताएं। वर्षों हो गए; उपवास करते हैं, सामायिक करते हैं, शास्त्र पढ़ते हैं, अध्ययन, मनन, स्वाध्याय सब करते हैं। अपने को सब भांति रोका है, निग्रहीत किया है; लेकिन वासना जाती नहीं, बल्कि बढ़ती चली जाती है।
अगर साधुओं के स्वप्न जांचे जाएं, तो वे सदा ही कामवासना के होंगे। क्योंकि जो दिन में दबाया है, वह रात चेतना को पकड़ लेता है। इसलिए साधु रात सोने तक से डरने लगते हैं, भयभीत हो जाते हैं।
जीवन इतनी आसान बात नहीं है। जीवन जटिल है, और उसके साथ अत्यंत कलात्मक व्यवहार करने की जरूरत है। दमन कोई कला नहीं है, बिल्कुल ग्रामीण, असंस्कृत, अज्ञान से भरी हुई प्रक्रिया है।
किसी चीज को आप दबाते हैं; जब आप दबाते हैं तो आप क्या कर रहे हैं? उसे
और भीतर सरका रहे हैं। वह जितने भीतर चली जाएगी, आप पर उसकी शक्ति उतनी ही ज्यादा हो जाएगी। इसिलए यह अक्सर हो जाता है कि जो लोग कामवासना में ही जीते रहते हैं, वे धीरे-धीरे कामवासना से ऊब जाते हैं। उनका रस चला जाता

है। लेकिन जो लोग कामवासना से लड़ते रहते हैं, मरते दम तक उनका रस नहीं जाता है। साधारण गृहस्थ, जीवन की साधारण धारा में बहते-बहते एक दिन ऊब जाता है, लेकिन साधु नहीं ऊब पाता; क्योंकि ऊबने का उसे मौका ही नहीं मिला। उसकी वासना ताजी और जवान बनी रहती है। मरते दम तक वासना उसका पीछा करती है। और कठिनाई यह है कि जितना उसका पीछा करती है, उतना ही वह दबाता है। जितना वह दबाता है वासना उतने ही नये रूप धरती है, और ये नये रूप विकृत होते चले जाते हैं। ये नये रूप स्वस्थ भी नहीं रह जाते, प्राकृतिक भी नहीं रह जाते; अप्राकृतिक और एबनार्मल हो जाते हैं।
महावीर ब्राह्मण की परिभाषा में कह रहे हैंः "जो देवता, मनुष्य तथा तिर्यंच संबंधी सभी प्रकार के मैथुन का मन, वाणी और शरीर से कभी सेवन नहीं करता, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।"
सुन कर थोड़ी हैरानी होगी कि महावीर कहते हैं, जो देवता, मनुष्य, पशु- पक्षी किन्हीं का भी मन, वाणी और काया से मैथुन का सेवन नहीं करता, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं। तो ब्राह्मण एक उपलब्धि है; एक चित्त की दशा है जहां वासना बिल्कुल तिरोहित हो गई है, जहां वासना किसी भी रूप में नहीं पकड़ती। अगर आप मनुष्य के साथ अपने संबंधों को विकृत करेंगे, तो आपकी वासना पशुओं के साथ जुड़नी शुरू हो जाएगी।
पश्चिम में बड़ा खतरा पैदा हुआ है। और पश्चिम में जगह-जगह ऐसी समितियां निर्मित हुई हैं, जो पशुओं को आदमी की कामवासना से बचाने का उपाय कर रही हैं। क्योंकि मनुष्य मनुष्य के साथ ही कामवासना के संबंध जोड़ रहा हो ऐसा नहीं है, पशुओं से भी जोड़ रहा है। और एक पूरा रोग-पशुओं के साथ मनुष्य की कामवासना के संबंधों का--विकसित होता जा रहा है।
महावीर का वचन सुन कर लगता है कि महावीर मनुष्य के बहुत गहरे तक देख रहे हैं। अगर आदमी को रोका जाए, जबरदस्ती रोका जाए तो उसकी वासना नीचे गिर सकती है। वह पशुओं के साथ संबंध जोड़ना शुरू कर सकता है। एक सुविधा है; क्योंकि मनुष्य के साथ जब कामवासना के संबंध जोड़े जाते हैं, तो उत्तरदायित्व भी जुड़ता है। अगर किसी स्त्री को आप प्रेम करते हैं, तो आप जिम्मेवारी भी अनुभव करते हैं। वह स्त्री कल गर्भिणी हो जाए, उस स्त्री का जीवन आपके लिए मूल्यवान हो गया। उस स्त्री को दुख-पीड़ा न हो, वह सारी जिम्मेवारी आपके ऊपर है। लेकिन पशु के साथ अगर आप कोई काम-संबंध निर्मित कर लेते हैं, तो कोई जिम्मेवार नहीं है। और पशु अबोध है। और पशु निषेध भी नहीं कर सकता। और पशु लड़ भी नहीं सकता।
पश्चिम में कुत्तों के साथ इतने ज्यादा काम-संबंध निर्मित हो रहे हैं
कि जिसका कोई हिसाब नहीं। मनोवैज्ञानिक बहुत चिंतित हैं कि यह क्या हो रहा है! आदमी कैसे नीचे गिर रहा है! गिरने का कारण है। क्योंकि मनुष्य और मनुष्य के बीच इतनी जटिलता हो गई है पश्चिम में, स्त्री और पुरुष के बीच संबंध इतना भारी मालूम पड़ता है, और उसमें इतना कलह और इतना उपद्रव है कि उस तरफ से आदमी हटा रहा है अपने को।
पशुओं तक भी बात नहीं है। अभी डेनमार्क में एक सेक्स फेयर था, एक कामवासना का मेला था, जिसमें स्त्री और पुरुषों के गुड्डे पूरे शरीर की माप के बेचे गए। इन गुड्डों में पूरी कामवासना का इंतजाम है, और विद्युत का उपयोग किया गया है। स्त्री गुड्डे से पुरुष संभोग कर सकता है, और जब उस गुड्डे के स्तन को आप छुएंगे तो वह गुड्डीयां अपनी आंख बंद कर लेगी जैसी स्त्री अपनी आंख बंद कर लेती है। उसके स्तन में उभार आएगा और जननेंद्रिय में विद्युत की व्यवस्था की गई है कि वह आपके वीर्य को शोषित कर लेगी। ठीक ऐसे ही पुरुषों के गुड्डे भी तैयार किए गए हैं।
पशु से ही नहीं, महावीर को ख्याल भी नहीं। महावीर ने तीन की गिनती गिनाई है, लेकिन उन्होंने यह नहीं कहा है, वस्तुओं के साथ भी मनुष्य काम-संबंध निर्मित कर सकता है। मनुष्य का मैथुन इतनी प्रगाढ़ बात है कि उसे एक तरफ से हटाओ वह दूसरी तरफ से प्रगट होना शुरू हो जाता है।
देवताओं के साथ भी मनुष्य की कामना होती है। वह हमें जरा कठिन लगेगा। पशुओं का भी समझ में आ सकता है, क्योंकि पशु हमारे चारों तरफ मौजूद हैं।
वस्तुओं का भी समझ में आ सकता है, क्योंकि वस्तुएं हम निर्मित कर सकते हैं,

यंत्र भी निर्मित कर सकते हैं। लेकिन जिस तरह हमें आज पशु और यंत्र निकट मालूम पड़ते हैं, महावीर के वक्त में देवताओं की उपस्थिति भी उतनी ही निकट थी। आज भी इतनी ही निकट है, हमारी संवेदनशीलता क्षीण हो गई है।
आप जान कर हैरान होंगे कि मनुष्य के आस-पास अशरीरी आत्माएं हैं। बुरी आत्माओं को हम प्रेत कहते हैं, अच्छी आत्माओं को देवता कहा जाता है। पर मनुष्य के आस-पास अशरीरी आत्माएं मौजूद हैं। और कोई व्यक्ति अगर बहुत प्रगाढ़ मन से मैथुन की आकांक्षा करे तो उन अशरीरी आत्माओं को आकर्षित कर सकता है और मैथुन हो सकता है। कई बार जब आप स्वप्न में मैथुन कर लेते हैं, तो जरूरी नहीं कि वह स्वप्न ही हो। इसकी बहुत संभावना है कि कोई अशरीरी आत्मा संबंधित हो। इस संबंध में बहुत खोज-बीन की जरूरत है। मनुष्य की कामना आकर्षण का बिंदु बन जाती है। और जहां भी वासना हो, वहां से खिंचाव शुरू हो जाता है।
एक घटना जो पिछले सौ वर्षों से निरंतर अध्ययन की जा रही है, मनसशास्त्री अध्ययन में लगे हैं, वह मैं आपको कहना चाहूंगा तो ख्याल में आ सके। बहुत बार ऐसा होता है, आपको भी शायद अनुभव हो, सुना हो या किसी के घर में हुआ हो, बहुत बार ऐसा हो जाता है कि घर में अचानक चीजें हिलने-डुलने लगती हैं, और कोई प्रगट कारण नहीं मालूम होता। आपने किताब टेबल पर रखी है, वह गिर कर नीचे आ जाती है। आपने बर्तन बीच में टेबल पर रखे हैं, वह सरक कर किनारे पर आ जाते हैं। आपने खूंटी पर कोट टांगा है, वह एक खूंटी से उतर कर दूसरी खूंटी पर चला जाता है। लोग कहते हैं कि घर में प्रेत-बाधा हो गई है। मनस्विद सौ साल से इसका अध्ययन कर रहे हैं कि क्या हो क्या रहा है! और हर बार यह पाया गया कि ऐसी घटना जब भी किसी घर में घटती है, तो उस घर में कोई जवान युवती होती है, जिसका मेंनसीज शुरू होने के करीब होता है या शुरू हो रहा होता है। हमेशा! जब भी ऐसी घटना किसी घर में घटती है तो कोई युवती होती है जो अभी कामवासना की दृष्टि से प्रौढ़ हो रही है, और उसकी प्रौढ़ता इतनी प्रबल है कि उस प्रबलता के कारण प्रेतात्माएं आकर्षित हो जाती हैं। अब इस पर वैज्ञानिक अध्ययन काफी निर्णय ले चुका है। उस स्त्री को, उस युवती को घर से हटा दिया जाए, यह उपद्रव बंद हो जाता है। वह जिस घर में जाएगी, वहां उपद्रव शुरू हो जाएगा। यह भी पाया गया है कि कुछ घरों में अचानक कपड़ों में आग लग जाती है। कोई कारण नहीं मालूम पड़ता। और जितने अब तक अध्ययन किए गए हैं इस तरह के मामलों में, पाया गया है कि घर में कोई युवक हस्थमैथुन करता होता है। इस हस्तमैथुन करने वाले युवक को हटा दिया जाए, तो घर में आग लगने की घटना बंद हो जाती है।
हस्तमैथुन की स्थिति में प्रेतात्माएं सक्रिय हो सकती हैं। जब भी व्यक्ति कामवासना से बहुत ज्यादा भरा होता है तो अदेही आत्माएं भी संलग्न हो जाती हैं, और सक्रिय हो जाती हैं, और उनकी सक्रियता बहुत तरह की घटनाओं का कारण बन सकती है। प्रेतात्माएं भी अक्सर उन्हीं लोगों में प्रवेश कर पाती हैं, जो कामवासना को इतना दबा लिए हैं कि जीवन के सहज शारीरिक संबंध स्थापित नहीं कर पाते; तो फिर उनके देहरहित आत्माओं से वासना के संबंध स्थापित होने शुरू हो जाते हैं।
फ्रायड ने हिस्टीरिया का अध्ययन किया पूरे चालीस वर्ष और उसने पाया
की सभी हिस्टीरिया... और हिस्टीरिया की बीमारी सारी दुनिया में फ्रायड के पहले प्रेतात्माओं की बाधा समझी जाती थी। अगर किसी स्त्री को अचानक चक्कर आने लगते हैं, बेहोश हो जाती है, मुंह से फसूकर आ जाता है, चीखने चिल्लाने लगती है और स्त्रियों को ज्यादा मात्रा में हिस्टीरिया होता है पुरुषों को नहीं। क्योंकि स्त्रियां ज्यादा कामवासना का दमन करती हैं बजाय पुरुषों के। पुरुष बातें कुछ भी करें, ब्रह्मचर्य की कितनी ही चर्चा करें लेकिन वे उपाय खोज लेते हैं अपनी कामवासना को तृप्त करने के। स्त्रियां बातें ही नहीं करतीं, बातों पर ही भले मन से भरोसा कर लेती हैं और भरोसा करके संयम साधने की कोशिश में लग जाती हैं। उस संयम में कोई साक्षी-भाव तो होता नहीं, दमन ही होता है। इसलिए स्त्रियां ही हिस्टीरिया की बीमारी से परेशान होती रहीं।

फ्रायड बहुत हैरान हुआ जब उसने हिस्टीरिया का अध्ययन शुरू किया। उसने इनकार ही कर दिया; कि उसमें प्रेतात्माओं का कोई हाथ नहीं है। क्योंकि जिन स्त्रियों पर भी हिस्टीरिया पाया गया, वे वही स्त्रियां थीं जिन्होंने अपनी कामवासना को किसी कारण दबाया था। पति नपुंसक था, या स्त्री विधवा थी; पति मर चुका था, या पति बीमार था; संभोग की कोई संभावना न थी, या स्त्री को बचपन से इस तरह की धार्मिक शिक्षा दी गई थी कि कामवासना में उतरना उसके लिए असंभव हो गया था। खास कर ईसाई नन्स, ईसाई साध्वियां हिस्टीरिया से भयंकर रूप से परेशान थीं। और मध्ययुग में तो पूरे यूरोप में नन्स के ऊपर प्रेतात्माओं का उतरना बिल्कुल रोज की घटना थी।
फ्रायड ने इनकार कर दिया। उसने कहा कि कामवासना के दमन के कारण यह घटना घट रही है; इसमें प्रेतात्माओं का कोई संबंध नहीं है। फ्रायड की बात आधी ही ठीक है। वह ठीक कह रहा है, कामवासना के रिप्रेशन से ही घटना घट रही है। लेकिन रिप्रेशन, दमन केवल अवसर बनता है। उस अवसर में मन इतना ज्यादा वासनापूरित हो जाता है, और इतने जोर से पुकारता है, और पूरा शरीर इतने जोर से खींचने लगता है कि आस-पास की अदेही आत्माएं भी उस प्रचंड झंझावात में खिंच के पास आ सकती हैं और प्रेतात्माओं का प्रवेश हो सकता है।
तो महावीर कहते हैं कि जो देवता, मनुष्य, तिर्यंच संबंधी सभी प्रकार
के मैथुन का मन, वाणी और शरीर से कभी सेवन नहीं करता, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।
तब तो ब्राह्मण खोजना बहुत मुश्किल हो जाएगा। और जिन्हें हम ब्राह्मण कहते हैं, उन्हें ब्राह्मण कहने का कोई अर्थ न रह जाएगा। आदमी इतने गहन में डूबा है कामवासना के साथ, कि कोई उपाय नहीं दिखता, कि वह कैसे ब्राह्मण हो सके!
सुना है मैंने, इंगलैंड का राजा जार्ज द्वितीय बहुत बुद्धिमान नहीं था। और सारा काम, सारे राज्य की व्यवस्था उसकी पत्नी कैरोलीन ही सम्हालती थी। लेकिन इतना बुद्धिमान वह था कि कैरोलीन की बात मान लेता था सदा। कैरोलीन सुंदर थी, योग्य थी, प्रतिभाशाली थी, लेकिन असमय में उसका निधन हो गया। कोई संघातक बीमारी थी, इलाज नहीं हो सका। मरते क्षण कैरोलीन ने सम्राट से कहा--आगे की व्यवस्था भी उसी को करनी थी, उसने कहा कि तुम मेरे मरने के बाद शीघ्र ही विवाह कर लेना। एक तो तुम बिना विवाह के रह न सकोगे, दूसरे तुम्हें एक योग्य सलाहकार की भी जरूरत है और तीसरे यह विवाह उपयोगी होगा अतंर्राष्ट्रीय संबंध निर्धारित करने में। तो तुम कहां विवाह करना, कौन-कौन सी राजकुमारियां योग्य हैं, और किससे संबंध बनाना राजनीतिक अर्थों में कीमती है।
लेकिन जार्ज द्वितीय, जार-जार आंसू गिराने लगा और उसने कहा कि नहीं, बिल्कुल नहीं! जीवन में अपनी पत्नी को उसने पहली बार "नहीं" कहा था। उसने कहा कि नो, नेवर! आफ्फटर यू नो वाइव्स! पत्नी बड़ी प्रसन्न हुई। उसने आंख खोली, लेकिन प्रसन्नता क्षण भर में खो गई क्योंकि जार्ज आंसू बहा रहा था, छाती पर हाथ रखे था और कह रहा था, नहीं, कभी नहीं--नो मोर वाइफ्स आफ्टर यू, ओनली मिस्ट्रेसेस--कोई पत्नी नहीं, सिर्फ रखैल स्त्रियां!
वासना बड़ी गहरी है, और उसकी गहराई को बिना समझे जो उसके साथ कुछ भी करने में लग जाता है, वह झंझट में पड़ेगा। सब सिद्धांत ऊपर रह जाते हैं। सब शास्त्र ऊपर रह जाते हैं। कामवासना बड़े केंद्र पर है वहां तक कोई शास्त्र पहुंच नहीं पाता, कोई सिद्धांत नहीं पहुंच पाता। आप ऊपर से प्रभावित होकर निर्णय और संकल्प ले सकते हैं। वे निर्णय ऊपर कागज के लेबल की तरह चिपके रह जाएंगे और आप झूठे आदमी हो जाएंगे।
मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन निकल रहा है अपने घोड़े पर बैठ कर। एक मकान से रोने की आवाज सुनाई पड़ती है। कोई रात के बारह बजे हैं। तो रुक जाता है दयावश; भीतर जाता है। एक नग्न स्त्री बिस्तर पर बांध दी गई है। किसी ने बुरी तरह उसे सताया है। शरीर पर चोट के निशान हैं, और वह स्त्री रो रही है। वह नसरुद्दीन को देख कर कहती है कि बड़ी कृपा की, आप आ गए। मुझे मुक्त करें। डाकुओं ने हमला किया। उन्होंने मेरे पति को बेहोश कर दिया है। मेरे साथ व्यभिचार किया है, और मेरे पति को बेहोश हालत में घसीट करके घर के बाहर ले

गए हैं। पास-पड़ोस में कोई भी नहीं है। लोग किसी निकट के मेले में चले गए हैं। हम अकेले हैं। मुझे बचाओ, बड़ी कृपा कि तुम आ गए।
नसरुद्दीन को आंसू आ जाते हैं दया से। उसे बड़ी पीड़ा होती है। लेकिन बजाय स्त्री के बंधन खोलने के, वह अपने कपड़े उतारना शुरू कर देता है। वह स्त्री कहती है, "यह आप क्या कर रहे हैं?" नसरुद्दीन कहता है कि "माफ करें-- एक्सक्यूज मी, लेडी! बट दिस डे इ.ज नॉट लकी फॉर यू--आज का दिन तुम्हारे लिए सौभाग्यपूर्ण नहीं है। मैं तुम्हें बचाना चाहता हूं, लेकिन बचा नहीं सकता हूं!"
सारी दया, सारे ब्रह्मचर्य, सारे शास्त्र, सारे उपदेश ऊपर रह जाते हैं। अवसर मिले आपको, तो आप सबको अलग रख कर अपनी वासना को पूरा कर लेंगे। अवसर न मिले तो आप सिद्धांतों की बातें करते रह सकते हैं। सोचें, एक सुंदर युवती नग्न पड़ी हो, आस-पास कोई भी नहीं, कोई खतरा नहीं, पति को डाकू उठा कर ले गए हैंबहुत कठिन हो जाएगा!
शायद आपने सुना हो कि मिश्र की खूबसूरत महारानी क्लियोपैट्रा जब मर गई, तो उसकी कब्र से उसकी लाश चुरा ली गई और तीन दिन बाद लाश मिली। और चिकित्सकों ने कहा कि मुर्दा लाश के साथ अनेक लोगों ने संभोग किया है। मरी हुई लाश के साथ! और निश्चित ही ये कोई साधारण जन नहीं हो सकते थे जिन्होंने क्लियोपैट्रा की लाश चुराई होगी। क्योंकि क्लियोपैट्रा की लाश पर भयंकर पहरा था। ये जरूर मंत्री, वजीर, राजा के निकट के लोग, राजा के मित्र, शाही महल से संबंधित लोग, सेनापति इसी तरह के लोग थे। क्योंकि क्लियोपैट्रा की लाश तक भी पहुंचना साधारण आदमी के लिए आसान नहीं था। और चिकित्सकों ने कहा कि अनेक लोगों ने संभोग किया है। तीन दिन के बाद लाश वापस मिली।
आदमी की वासना कहां तक जा सकती है, कहना बहुत मुश्किल है। एकदम कठिन है। और महावीर कहते हैं, ब्राह्मण वही है, जो कामवासना के ऊपर उठ गया हो। जिसे किसी तरह की वासना न पकड़ती हो। क्या यह संभव है? संभव है असंभव जैसा दिखता है, लेकिन संभव है। असंभव इसलिए दिखता है कि हमें ब्रह्मचर्य के आनंद का कोई भी अनुभव नहीं है। हमें सिर्फ कामवासना से मिलने वाला जो क्षण भर का सुख है सुख भी कहना शायद ठीक नहीं, क्षणभर की जो राहत है, क्षणभर के लिए हमारे शरीर से जैसे बोझ उतर जाता है।
बायोलाजिस्ट कहते हैं कि कामसंभोग छींक से ज्यादा मूल्यवान नहीं है। जैसे छींक बेचैन करती है और नासापुट परेशान होने लगते हैं, और लगता है किसी तरह छींक निकल जाए; तो हलकापन आ जाता है। ठीक करीब-करीब साधारण कामवासना छींक से ज्यादा राहत नहीं देती है। बायोलॉजिस्ट कहते हैं जननेंद्रिय की छींक-शक्ति इकट्ठी हो जाती है भोजन से, श्रम से; उससे हलके होना जरूरी है। इसलिए वे कहते हैं, कोई सुख तो उसमें नहीं है, लेकिन एक बोझ उतर जाता है। जैसे सिर पर किसी ने बोझ रख दिया हो और फिर उतार कर आपको अच्छा लगता है। कितनी देर अच्छा लगता है? जितनी देर तक बोझ की याद रहती है। बोझ भूल जाता है, अच्छा लगना भी भूल जाता है।
यह जो कामवासना जिसका हम बोझ उतारने के लिए उपयोग करते रहे हैं और हमने इसके अतिरिक्त कोई आनंद नहीं जाना है, छोड़ना मुश्किल मालूम पड़ती है। क्योंकि जब बोझ घना होगा, तब हम क्या करेंगे? और आज की सदी में तो और भी मुश्किल मालूम पड़ती है, क्योंकि पूरी सदी के वैज्ञानिक यह समझा रहे हैं लोगों को कि छोड़ने का न तो कोई उपाय है कामवासना, न छोड़ने की कोई जरूरत है। न केवल यह समझा रहे हैं, बल्कि यह भी समझा रहे हैं कि जो छोड़ता है वह नासमझ है, रुग्ण हो जाएगा; जो नहीं छोड़ता, वह स्वस्थ है।
शायद आप आधुनिक साहित्य से जरा भी परिचित नहीं होंगे। क्योंकि भारत करीब-करीब दो-तीन सौ साल पीछे की हालतों में मन से भी जीता है। लेकिन अभी सौ वर्षों में पश्चिम में ऐसा साहित्य निर्मित हुआ है जिसका वैज्ञानिक समर्थन है। जो कहता है कि नियमित कामवासना में जाना आदमी के स्वस्थ होने के लिए जरूरी है। जो आदमी नहीं जाएगा नियमित कामवासना में, वह अस्वस्थ हो जाएगा।

वैज्ञानिकों की खोजें समझा रही हैं आदमी को कि कामवासना मनुष्य का चरम अर्थ है; उसके आगे न कोई अर्थ है, न कोई प्रयोजन है, न कोई आनंद है। धर्म की बातचीत सब बकवास है। आदमी एक पशु है और पशु से ज्यादा होने की कामना ही सिर्फ भ्रम है, एक सपना है।
और बड़े बेहूदे प्रयोग भी विज्ञान के नाम पर चल रहे हैं। अमरीका में सेक्स लैब बनाए गए हैं, जहां मनुष्य की कामवासना का वैज्ञानिक अध्ययन हो रहा है; जो कि बड़ा अजीब और बड़ा अमानवीय है; जिसको हम सोच भी नहीं सकते। एक प्रयोगशाला में सात सौ स्त्री-पुरुषों ने वैज्ञानिकों के सामने, कैमरों के प्रकाश के सामने फिल्में ली जा रही हैं, चित्र उतारे जा रहे हैं, थर्मामीटर जांच कर रहे हैं, पुरुष की इंद्रिय में क्या घटनाएं घट रही हैं, उनका रिकार्ड लिया जा रहा है, स्त्री की योनि में भीतर क्या शारीरिक घटनाएं हो रही हैं, उनका रिकार्ड लिया जा रहा है। पच्चीसों यंत्र लगे हुए हैं, पच्चीसों लोग खड़े हुए हैं।
सात सौ लोगों ने इस समूह के सामने संभोग करके दिखाया ताकि अध्ययन किया जा सके। अध्ययन हुआ भी और कीमती नतीजे भी हाथ आए। लेकिन मेरा मानना है कि जो दो व्यक्ति पचास लोगों के सामने मंच पर संभोग कर सकते हैं इतने यांत्रिक व्यवस्था और आयोजन के बीच उनका संभोग यांत्रिक होगा, उसमें से मनुष्य तो विदा हो गया। वह सिर्फ दो शरीरों का संभोग होगा, और वह भी एकदम यांत्रिक। और वे मनुष्य भी ऐसे होने चाहिए, जिनकी चेतना करीब-करीब मर चुकी है। अन्यथा, सहज ही आदमी प्रेम में प्राइवेसी खोजता है; एकांत खोजता है; क्योंकि प्रेम इतनी एकांत की घटना है, दो व्यक्तियों के बीच का इतना निजी संबंध है कि कोई तीसरा उसे न देखे। लेकिन जब आदमी रुग्ण हो जाता है, तो वह चाहता है कि कोई तीसरा देखे।
ये जो सात सौ लोग जो स्वेच्छा से, वालेंटियर किए और जिन्होंने संभोग करके दिखाया प्रयोगशाला में, ये जरूर रुग्ण रहे होंगे। और ये ही रुग्ण रहे हों यह भी नहीं, है जो लोग चित्र लेने को खड़े हैं, जांचने को खड़े हैं, इनके मन का भी ठीक से परिक्षण किया जाए तो ये भी रुग्ण हैं अन्यथा दूसरे को काम-संभोग में देखने की वासना, देखने की इच्छा, देखने के लिए बहाना खोजना स्वस्थ मन का लक्षण नहीं हो सकता।
और जो परिणाम आए, वे स्वाभाविक रूप से भौतिक हैं। तो यंत्र की तरह सारी बात तय कर दी गई कि क्या-क्या घटना घटती है शरीर में। आत्मा का कोई संबंध नहीं है। कामवासना का कोई संबंध मनुष्य से नहीं है, दो शरीरों के बीच शक्तियों का आदान-प्रदान है, और वह भी राहत के लिए है। और यह राहत वैज्ञानिक समझा रहे हैं कि बिल्कुल जरूरी है। और जो व्यक्ति इस राहत से अपने को रोकेगा, वह रुग्ण हो जाएगा।
उनकी बात में थोड़ी सच्चाई है। अगर कोई सिर्फ रोकेगा, तो रुग्ण हो जाएगा। उनकी बात में झूठ भी है। कोई अगर सिर्फ भोगता ही चला जाएगा, तो भी नष्ट हो जाएगा।
पूरब की दृष्टि न तो भोग और न दमन, वरन दोनों के ऊपर उठने की है ताकि चेतना शरीर को अपने नीचे पा सके। शरीर की जो पकड़ चेतना के ऊपर है, गर्दन पर है चेतना के, वह छूट जाए। मालिक हो सके चेतना, और शरीर उसकी छाया रह जाए। कामवासना में जब भी आप डूबते हैं, तब शरीर मालिक हो जाता है और आत्मा उसकी छाया रह जाती है, उसके पीछे सरकती है। बहुत बार तो आप नहीं भी चाहते तो भी कामवासना में डूबते हैं। तब आपकी आत्मा का कोई मूल्य नहीं रह जाता। तब उसकी कोई सुनवाई नहीं रह जाती। तब शरीर इतना प्रगाढ़ हो जाता है कि आत्मा को दबा देता है; उसकी छाती पर बैठ जाता है।
महावीर कहते हैंः हम उसे ब्राह्मण कहते हैं, जो मैथुन की समस्त कामना
के पार और ऊपर हो गया है। यह हुआ जा सकता है; दमन से नहीं। लेकिन महावीर के साधु भी दमन ही कर रहे हैं। क्योंकि दमन आसान है; सुगम है। साक्षीभाव बहुत कठिन है, बहुत दुर्गम है।
वासना जब उठे, तब उससे दूर खड़े रहना और तादात्म्य को तोड़ लेना। वासना
को उठने देना। न तो उसे बाहर किसी पर प्रकट करने जाना, और न उसे भीतर दबाना। निष्पक्ष खड़े रहना भीतर और जो हो रहा है, उसे देखते रहना, और होने

देना भीतर जो हो रहा है। लेकिन दूर खड़े होकर देखने की क्षमता विकसित करना।
जितना डिस्टेंस, जितना फासला आप में और आपकी वासना के धुएं में हो जाए, उतने आप मालिक होते जाएंगे। और जैसे-जैसे दूरी बढ़ेगी, वैसे-वैसे आप चकित होंगे कि एक नये आनंद की धुन बजने लगी, जिससे आप अपरिचित हैं।
यह आप ठीक संभोग करते क्षण में भी दूरी रख सकते हैं।
मेरे पास लोग आते हैं। एक महिला ने मुझे आकर कहा कि साक्षीभाव मैं रखना चाहती हूं, लेकिन पति हैं। और अगर मैं संभोग में नहीं उतरती हूं, तो पति दुखी और परेशान और पीड़ित होते हैं, चिड़चिड़े हो जाते हैं; झगड़ा करते हैं, उपद्रव खड़ा करते हैं। तो मुझे संभोग में उतरना तो मेरा कर्तव्य है। मैंने कहाः "तू संभोग में उतर, लेकिन संभोग के क्षण में भी दूरी बनाए रखना, जैसे संभोग तुझसे नहीं हो रहा है, सिर्फ शरीर से हो रहा है और तू पार होकर दूर रहना। जितनी तू शांत रहेगी, शांति के लक्षण साफ हो जाएंगे, तेरी श्वास में फर्क नहीं होगा। पति संभोग करता रहेगा, उसकी श्वास में फर्क हो जाएगा। श्वास तेज चलने लगेगी। श्वास सीमा के बाहर हो जाएगी। लेकिन तेरी श्वास शांत बनी रहे।"
"श्वास पर ध्यान रखना और अपने को दूर रखना, और देखना कि पति जैसे किसी
और के साथ संभोग कर रहा है।"
तो ठीक संभोग के क्षण में भी साक्षीभाव साधा जा सकता है। और एक बार इसका ख्याल आ जाए कि मैं शरीर से दूर हूं, शरीर के साथ क्या हो रहा है वह मेरे साथ नहीं हो रहा है, शरीर में क्या हो रहा है वह मुझमें नहीं हो रहा है, ऐसी प्रतीति सघन होने लगे, तो एक नई धुन बजनी शुरू हो जाती है। क्योंकि जैसे ही हम शरीर से दूर हटते हैं, वैसे ही हम आत्मा के करीब आते हैं।
आनंद का अर्थ है आत्मा के करीब आने से जो सुवास मिलती है, जो हलका शीतल हवा का झोंका आता है, वह जो गंध आती है अनूठी, जिसे कभी हमने जाना नहीं। और एक दफा उसका हमें स्वाद पकड़ ले, तो हम शरीर की तरफ पीठ करके उसकी तरफ दौड़ने लगते हैं।
बड़ा आनंद छोटे आनंद से निश्चित ही मुक्ति दिला देता है। और कोई उपाय
भी नहीं है। और जब तक आपको बड़े आनंद का पता नहीं है, तब तक छोटे, क्षुद्र आनंद से छूटने में आप व्यर्थ ही परेशान होंगे। कुछ होगा नहीं। बड़े आनंद को जन्मा लें, छोटे आनंद से हाथ छूटने लगता है। आप पीछे हटने लगते हैं।
ठीक गृहस्थ रह कर भी। जरूरी नहीं है कि आप भाग कर जंगल में जाएं। जंगल में भागना तो तभी जरूरी मालूम पड़ता है, जब दमन करना हो आपको। सिर्फ साक्षीभाव जगाना हो, तो घर में रह कर भी हो सकता है। पति-पत्नी के बीच भी हो सकता है। कोई अड़चन नहीं है। एक बार ठीक से कला आ जानी चाहिए। और कला ऐसी है कि आप प्रयोग करें तो आ जाती है। जैसे कोई आपसे पूछे कि साइकिल चलाना है, क्या करें? तो आप कहेंगे चलाना शुरू करो! गिरोगे दो-चार बार।
कोई बताने का उपाय नहीं है। साइकिल जो चलाना जानता है, वह भी नहीं बता सकता है कि कैसे। वह भी लिख कर नहीं दे सकता कि यह-यह नियम है; इस-इस तरह करोगे तो साइकिल चल जाएगी। वह भी इतना ही कह सकता है कि तुम साइकिल चलाओ। क्योंकि सच्चाई यह है कि साइकिल चलाने में सीखना साइकिल चलाना नहीं होता; साइकिल चलाने में सीखना होता है बैलेंस, संतुलन। वह भीतरी घटना है। साइकिल से उसका कोई लेना-देना नहीं है। साइकिल तो सिर्फ बहाना है। उसके ऊपर आप संतुलित होना सीखते हैं। वह संतुलित होना तो आप प्रयोग करेंगे, गिरेंगे, अनुभव करेंगे कि बाएं ज्यादा झुक जाता हूं तो गिर जाता हूं, दाएं ज्यादा झुक जाता हूं तो गिर जाता हूं; अनुभव करेंगे कि अगर पैडल की गति थोड़ी धीमी हो जाती है तो साइकिल गिर जाती है, अगर बहुत ज्यादा हो जाती है तो गिरने का डर है।
तो धीरे-धीरे प्रयोग से आप अनुभव कर लेंगे दो-चार दिन में कि वह बिंदु कहां है, जहां साइकिल सधी रहती है और गिरती नहीं वह आपका भीतरी अनुभव आप दूसरे को भी बता नहीं सकेंगे। आप निकाल कर कह नहीं सकते कि बस, यह सूत्र है; तुम भी ऐसा करो।

साक्षीभाव एक आंतरिक संतुलन है। शरीर से दूर हटना एक भीतरी घटना है। उसे आप प्रयोग करेंगे तो वह आ जाएगा। वह करीब-करीब तैरने की तरह है। जो तैरना सिखाते हैं, वे भलीभांति जानते हैं कि कुछ करना नहीं होता।
मुल्ला नसरुद्दीन पूछने गया है किसी से कि एक युवती को मुझे तैरना सिखाना है। तो जो तैराक था, जो तैरना सिखाने वाला मास्टर था, गुरु था, उसने बताया कि किस तरह उसके कमर में हाथ डालना, किस तरह उसे पानी में उतारना सम्हाल कर। तभी नसरुद्दीन ने कहा कि इतने विस्तार में मत जाओ, वह मेरी बहन है। तो उस ने कहा कि फिर हाथ-वाथ डालने की कोई जरूरत नहीं, सीधा पानी में उठा कर उसे फेंक देना! असली बात तो पानी में फेंकना है। अपने आप तड़फड़ाएगी। जीवन अपने बचने की कोशिश करेगा। वह जो तड़फड़ाना है, वही तैरना हो जाएगा दो- चार दिन के अभ्यास से। बस, तुम इतना ही ख्याल रखना कि कहीं वह डूब कर खत्म ही न हो जाए। बस, बचाने का ख्याल रखना, सिखाने की कोई जरूरत नहीं है।
जीवन खुद ही तड़पता है बचने के लिए; हाथ-पैर फेंकना शुरू करता है। तैरने वाले में गैर-तैरने वाले में ज्यादा फर्क नहीं है। दोनों हाथ-पैर फेंकते हैं। एक व्यवस्था से फेंकता है, दूसरा गैर-व्यवस्था से फेंकता है। बस, और कोई अंतर नहीं है। एक निर्भय होकर फेंकता है, एक भयभीत होकर फेंकता है। भय के कारण परेशानी होती है। इसलिए ठीक तैराक तो बिना हाथ-पैर चलाए भी नदी में पड़ा रह सकता है क्योंकि निर्भय हो गया है। वह जानता है कि तैर सकता हूं, कोई डर नहीं है। बिना हाथ-पैर चलाए भी वह नदी में तैर जाता है।
आपको पता है कि जिंदा आदमी डूब जाता है, मुर्दा आदमी कभी नहीं डूबता। जिंदा मर जाता है पानी में डूब कर, मुर्दा ऊपर आकर तैरने लगता है। मुर्दा को कोई कला आती है, जो जिंदे को भी नहीं आती। मुर्दा कोई सूत्र जानता है। वह सूत्र है अभय। भय का कोई कारण नहीं है। जो होना था हो चुका। वह ऊपर तैरता रहता है। मुर्दे को कोई पानी डुबा नहीं पाता। तैरने वाला उतनी ही कला सीख रहा है, जो मुर्दा सीख लेता है अपने आप।
तैरने या साइकिल चलाने जैसा है साक्षीभाव। घटना घटने दें और आप देखने वाले हो जाएं, करने वाले न रहें। यह मूल सूत्र है।
कर्ता न रहें, द्रष्टा हो जाएं। इसे थोड़ा उपयोग करें। जरूरी नहीं कि सीधा संभोग से ही शुरू करें। इसे कहीं भी उपयोग करें। भोजन करते वक्त कर्ता न बनें, साक्षी हो जाएं। रास्ते पर चलते वक्त चलने वाले न बनें, शरीर चल रहा है, आप देख रहे हैं। इसे जीवन के सब पहलुओं पर फैलाएं, और धीरे-धीरे साक्षी को सम्हालें। जैसे-जैसे साक्षी भीतर सम्हलता है, एक नये जीवन का उदय होता है। आपके शरीर में पंख लग जाते हैं। अब आप आकाश में उड़ सकते हैं। अब परमात्मा दूर नहीं है। और जैसे-जैसे दूरी बढ़ती है शरीर से, वैसे-वैसे नये सुख के स्रोत टूटते हैं, बुद्ध ने कहा है महासुख। और जैसे ही उस स्रोत के झरने टूटने लगते हैं, फिर शरीर के सुखों में कोई अर्थ नहीं रह जाता है; मूढ़ता हो जाती है।
ध्यान रहे, जब तक कामवासना में अर्थ है, तब तक आप छुटकारा नहीं पा सकेंगे, तब तक ब्राह्मण का जन्म नहीं होगा। जिस दिन कामवासना में अर्थ ही नहीं रह जाता है, कामवासना से भी बड़े आनंद का झरना फूट पड़ता है और कामवासना सिर्फ मूढ़ता रह जाती है, नासमझी रह जाती है; ठीक वैसे ही जैसे आपके हाथ में हीरा है, और कोई आपको गाली दे दे, तो आप हीरा उठा कर पत्थर की तरह फेंक नहीं देंगे। आप कहेंगे, पागलपन है। हीरा बहुत कीमती है, इस आदमी को मारने की बजाय। लेकिन आपको अगर पता न हो और आप समझें कि यह पत्थर है, तो बराबर मार देंगे; हीरा है, तो नहीं फेंक कर मारेंगे।
कामवासना में जिस शक्ति को आप फेंक रहे हैं अपने बाहर, आपको पता नहीं
है वह क्या है। वह जीवन की धारा है। वह जीवन का परम गुह्य रहस्य है। एक बार आपको पता चल जाए कि यह धारा भीतर की तरफ बह सकती है और सुखों के महल खुल जाते हैं, और नये द्वार खुलते ही चले जाते हैं। फूल खिलते ही चले जाते हैं।
वीणा का संगीत बढ़ता ही चला जाता है।
लेकिन यह आपको अपने अनुभव से जब आए! महावीर के कहने से कुछ भी न होगा।
मेरे कहने से कुछ भी न होगा। किसी के कहने से कुछ नहीं हो सकता। इतना ही हो

सकता है कि स्मरण आ जाए कि यह भी एक संभावना है, बस। लेकिन जब आप प्रयोग करें!
प्रयोग बहुत से लोग करते हैं, लेकिन उनको ठीक प्रक्रिया का ख्याल न होने से दमन में उलझ जाते हैं; शरीर से लड़ने लगते हैं। शरीर से लड़ना नहीं है, शरीर से दूर होना है; क्योकि लड़ने में भी आप शरीर के करीब ही होते हैं। भोगने में भी करीब होते हैं, लड़ने में भी करीब होते हैं। भोगने में भी शरीर से जुड़े होते हैं, लड़ने में भी शरीर से जुड़े होते हैं। और दोनों हालत में शरीर का मूल्य आप से ज्यादा होता है। उस मूल्य को कम करना है। जो शरीर से लड़ रहा है उसका मूल्य कम नहीं होता है। देखें साधुओं को! उनके शरीर का मूल्य और बढ़ जाता है--कोई छू न ले, वे किसी को छू न लें। घबड़ाहट बढ़ जाती है। शरीर से इतनी घबड़ाहट का मतलब है कि और करीब हो गए शरीर के।
मेरे पास कुछ मित्र आते हैं। वे कहते हैं कि कुछ जैन साधु यहां सुनने आना चाहते हैं, बैठने का अलग इंतजाम करना पड़ेगा। क्या जरूरत है अलग इंतजाम करने की? मैंने कहा कि मंच पर बैठ जाएंगे। पर वे कहते हैं वहां कई स्त्रियां बैठती हैं। अब स्त्रियों से साधुओं को क्या लेना-देना? जब स्त्रियां नहीं डर रही हैं साधुओं से, तो साधु क्यों डर रहे हैं स्त्रियों से? ये साधु तो स्त्रियों से भी कमजोर और स्त्रैण मालूम पड़ते हैं। इतनी कमजोरी का मतलब है कि शरीर के और करीब आ गए--कि दूर गए? अगर दूर जाएं तो स्त्री और पुरुष के शरीर में फर्क कम हो जाना चाहिए; बढ़ना नहीं चाहिए। तब शरीर ही हैं दोनों, फर्क क्या है? स्त्री और पुरुष के शरीर में साधु को क्या फर्क है? क्यों होना चाहिए फर्क? फर्क पैदा होता है वासना से।
एक अजायबघर में एक हिपोपोटेमस पानी में तैर रहा है। दूसरा हिपोपोटेमस
भी उसी के पास विश्राम कर रहा है। मुल्ला नसरुद्दीन गया है देखने। तो अजायबघर के आदमी से पूछता है कि इसमें कौन स्त्री है और कौन पुरुष? हिपोपोटेमस, इसमें कौन स्त्री और कौन पुरुष? वह अजायबघर का आदमी कहता है कि हमने कभी फिकर नहीं की। यह तो हिपोपोटेमस को पता लगाने की बात है। अपने को करना भी क्या है? तुम पहले आदमी हो, जो इस चिंता में पड़े हो!
निश्चित ही, आदमी को क्या मतलब है कि कौन स्त्री है और कौन पुरुष है; कौन मादा है, कौन नर है। मादा और नर की उत्सुकता तो वासना से पैदा होती है। इसलिए आप दुनिया भर की मादाओं को देखते रहें, कोई रस नहीं मालूम पड़ता, लेकिन मनुष्य की मादा में रस मालूम पड़ता है।
आप यह मत सोचना कि ऐसा ही दुनिया के जानवर मनुष्य की मादाओं में रस लेते हैं। उन्हें कोई मतलब नहीं है। एक हाथी चला जा रहा है, कितनी ही सुंदर स्त्री हो, क्या मतलब है? क्या प्रयोजन? प्रयोजन और अर्थ तो आता है भीतर की वासना से, और भीतर की वासना हो जितनी प्रगाढ़, उतना ही विपरीत यौन का व्यक्ति मूल्यवान होता चला जाता है। जिनकी कामवासना प्रगाढ़ है, अगर वे पुरुष हैं, तो स्त्री के अतिरिक्त उनका कोई परमात्मा नहीं; अगर वे स्त्री हैं तो पुरुष के अतिरिक्त उनका कोई परमात्मा नहीं।
मुल्ला नसरुद्दीन अपने मित्र पंडित रामचरणदास के साथ बैठा हुआ है। चर्चा चल रही है। दोनों शराब पी रहे हैं। जब नशा थोड़ा गहरा हो गया, तो पंडित रामचरणदास ने कहा कि "नसरुद्दीन, अगर तुम्हें एक एकांत निर्जन द्वीप पर महीने भर अटक जाना पड़े, नाव डूब जाए, कोई कारण हो जाए, या तुम्हें भेज दिया जाए, तो तुम अपने साथ क्या ले जाना पसंद करोगे? श्रेष्ठतम चीज कौन सी है, जिसे तुम अपने साथ ले जाना पसंद करोगे? वॉट डू यू कनसीडर दि बेस्ट?" नसरुद्दीन ने कहाः "साफ है कि मैं पूरी मधुशाला, पूरे गांव की मधुशाला अपने साथ ले जाना पसंद करूंगा।"
"और पंडित जी, आप अगर ऐसी हालत में उलझ जाएं, नसरुद्दीन ने पूछा, तो आप क्या करेंगे? आप क्या ले जाना पसंद करेंगे?"पंडित रामचरणदास ने थोड़ा झिझकते हुए कहाः हेमामालिनी!"
वे इतना ही कह पाए थे कि नसरुद्दीन ने जोर से घूंसा मारा टेबल पर; टेबल उलट दी और कहा कि "गलत! स्टिक टु दि टर्म्स। यू सेड दि बेस्ट, नॉट दि वेरी बेस्ट। शर्त पर बंधे रहो। तुमने कहा था श्रेष्ठ, सबसे श्रेष्ठ नहीं, नहीं तो हम ही हेमामालिनी को न ले जायें!"

आदमी का मन कामवासना से भरा हो, तो स्त्री परमात्मा है, पुरुष परमात्मा है। सारा धर्म वहीं समाप्त हो जाता है। कामवासना गहरी हो, तो कामवासना के अतिरिक्त कोई धर्म नहीं है। बाकी सब धर्म बहाना है, झूठ है। धर्म का जन्म तो तभी शुरू होता है, जब हम विपरीत की वासना से हटना शुरू होते हैं। और यह हटाव ब्राह्मणत्व है।
साक्षीभाव से, शरीर से फासला बढ़ने से जैसे ही, जितने ही आप अपने शरीर
से दूर होंगे, उतने ही आप दूसरे के शरीर से दूर हो जाएंगे। इसे आप गणित समझें भीतर का। जितना आपको दूसरे का शरीर आकर्षक मालूम होता है, उसका अर्थ है कि अपने शरीर से उतने ही जुड़े हैं; क्योंकि आपके शरीर को ही दूसरे का शरीर आकर्षक मालूम होता है, आत्मा को नहीं। आत्मा को शरीर से कोई संबंध नहीं है। जैसे-जैसे आप पीछे हटते हैं अपने शरीर से, वैसे-वैसे दूसरे के शरीर भी खोने लगते हैं। इस कामवासना के धुएं के खो जाने पर जो प्रकाश जन्मता है, इस अंधेरे से हट कर, शरीर के अंधेपन और अंधेरे से हट कर जो रोशनी उपलब्ध होती है, महावीर कहते हैं, वही ब्राह्मणत्व है।
"जिस प्रकार कमल जल में उत्पन्न होकर भी जल से लिप्त नहीं होता, उसी प्रकार जो संसार में रह कर भी काम-भोगों से सर्वथा अलिप्त रहता है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।"
इसमें कई बातें समझने जैसी हैं। "जिस प्रकार कमल जल में उत्पन्न होकर
भी जल से लिप्त नहीं होता!" आदमी पैदा तो वासना में ही हुआ है। कामवासना स्त्रोत है जीवन का। उसकी निंदा की भी कोई जरूरत नहीं है। निंदा वे ही करते हैं, जो उससे परेशान हैं। उससे लड़ना पागलपन है, क्योंकि जिससे आप पैदा हुए हैं, उससे लड़ नहीं सकते। उससे लड़ कर क्या हाथ लगेगा? और अतीत से लड़ने की जरूरत क्या है? भविष्य की चिंता करनी चाहिए। जो पीछे छूट गया है, उससे लड़ने की जरूरत क्या है? जो आगे हो सकता है, उसके होने का उपाय जुटाना चाहिए। महावीर कहते हैं, जैसे कमल जल में ही पैदा होता है, फिर भी जल उसे छूता नहीं। ऐसे ही चेतना शरीर में है, शरीर में ही रहती है, लेकिन शरीर उसे छूता नहीं।
चेतना का जन्म वासना में हुआ है। उसके चारों तरफ वासना का जल है। लेकिन कमल की तरह चेतना अलग हो जाती है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं। यह जो कमल की तरह अलग हो जाना है, यह कई तरह से सोचने-जैसा है, क्योंकि महावीर कहते हैं, उसी प्रकार जो संसार में रह कर भी काम-भोगों से सर्वथा अलिप्त रहता है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं। संसार से भागने की सलाह नहीं है, संसार में रह कर भी, क्योंकि संसार से भागने का तो मतलब हुआ कि कमल पानी से डर कर दूर हट जाए। डर ही बताता है कि कमल को भय था कि पानी छू सकता था। भय खबर देता है। लेकिन कमल निर्भय है। वह जानता है कि पानी छू नहीं सकता, तो पानी में रहे कि पानी के बाहर रहे, कोई भेद नहीं है।
संसार को छोड़ कर भागने का मतलब एक ही हो सकता है सौ में निन्यानबे मौके पर। एक मौके को मैं छोड़ देता हूं। उसकी मैं पीछे बात करूंगा। उस एक मौके पर महावीर, बुद्ध और शंकर आते हैं। सौ में निन्यानबे मौके पर संसार से भागने का एक ही अर्थ है कि हम इतने डरे हुए हैं कि संसार में रह कर तो हमारा कमल पानी को छूएगा ही। कोई उपाय हमें दिखाई नहीं पड़ता। वहां तो हम उलझ ही जाएंगे। तो अवसर ही न रहने दें, बाहर की परिस्थिति ही बदल दें; ऐसी जगह चले जाएं, जहां कोई मौका ही न हो।
लेकिन ध्यान रहे, मौका बाहर से नहीं पैदा होता। बाहर तो खूंटियां हैं। वासना भीतर है। आप जंगल में चले जाएंगे, दो पक्षियों को संभोग करते देखेंगे; कठिनाई शुरू हो जाएगी। आप कहां भागेंगे, ऐसी जगह चले जाएंगे, जहां पक्षी नहीं, वृक्ष नहीं, पौधे नहीं; क्योंकि सब में वासना है। फूल खिल रहा है कामवासना से; तितलियां उड़ रही हैं कामवासना से; हवाओं में सुगंध चल रही है फूलों की कामवासना से; क्योंकि उस सुगंध के साथ बीजकण जा रहे हैं। सारा जगत कामवासना है। भाग कर जाएंगे कहां? फिर भी, समझ लें कि भाग गए; एक गुहा में छिप गए, पर अपने से भाग कर कहां जाएंगे? वह जो भीतर कामवासना है, वह तो साथ है; तो आटोइरोटिक हो जाएंगे, खुद के ही साथ वासना जगने लगेगी।

मनोवैज्ञानिकों को शक है इस बात का कि जहां-जहां हम पुरुषों को स्त्रियों से दूर करते हैं, वहां-वहां मस्टरबेशन शुरू हो जाता है, हस्तमैथुन शुरू हो जाता है। ऐसी घटना बहुत जगह घटी है। पहली दफा जब अफ्रीका के एक कबीले में ईसाई मिशनरी पहुंचे, और ईसाई मिनशरी जहां पहुंचे हैं, वहां उपद्रव पहुंचा है; क्योंकि उनकी धारणाएं अत्यंत कुंद हैं, और अत्यंत उथली हैं। जब उस कबीले में ईसाई मिशनरी पहुंचे, तो उन्होंने तत्काल। कुछ लोग हैं जो दूसरों को सुधारने में ही लगे रहते हैं बिना इसकी फिकर किए कि वे दूसरे सुधारने की अवस्था में हैं या हम सुधरने की अवस्था में हैं।
उस गांव में लड़के-लड़कियां सब साथ खेलते थे, कूंदते थे। ग्रामीण आदिवासी कबीला था, और बहुत से आदिवासी कबीलों में, गांव के बीच में, एक भवन होता है जो युवकों का भवन होता है, "यूथ हाल।" वहां लड़के और लड़कियां जब जवान हो जाते हैं, तब वे सब वहीं सोते हैं, सब साथ। उस कबीले को मस्टरबेशन का, हस्तमैथुन का पता ही नहीं था कि कोई आदमी हस्तमैथुन भी कहीं करता है, या स्त्रियां करती हैं। लेकिन जाकर ईसाई पादरियों ने कहा कि यह तो अनाचार हो रहा है, लड़के और लड़कियां साथ! यह अनाचार बंद करना पड़ेगा! उन्होंने हॉस्टल अलग-अलग बना दिए; लड़के और लड़कियों को अलग-अलग छांट कर रख दिया; बीच में दीवाल खड़ी कर दी। मनोवैज्ञानिक कहते हैं, जिस दिन दीवाल खड़ी की गई, उसी दिन हस्तमैथुन उस कबीले में प्रविष्ट हुआ।
आटोइरोटिक हो जाता है आदमी। तो आप भाग कर जाएंगे कहां? आप अपनी वासना
को अपने हाथों ही पूरा करने लगेंगे। और अगर आपने अपने हाथ भी बांध लिए, तो भी कोई फर्क नहीं पड़ता; क्योंकि स्वप्न में आपकी वासना आपको पकड़ेगी। स्वप्न में स्खलन हो जाएगा। भाग नहीं सकते संसार से, क्योंकि संसार भीतर है। हां, भीतर से संसार विसर्जित कर दिया जाए तो संसार में रह कर भी आदमी संन्यस्त हो जाता है।
महावीर विरोध में नहीं हैं कि कोई संसार न छोड़े। वे कहते हैं, संसार छोड़े लेकिन तभी छोड़े, जब संसार छूट चुका हो। इसे थोड़ा समझ लें। कच्चा न छोड़े, क्योंकि कच्चा आदमी दिक्कत में पड़ेगा। वह भाग कर जाएगा, मुसीबत खड़ी करेगा। नये रोग, नई विकृतियां, परवरशंस खड़े हो जाएंगे। संसार छोड़े तभी, जब पक्का अनुभव हो जाए कि संसार भीतर से छूट चुका है। अब यहां रहने की कोई जरूरत नहीं। यह परीक्षा पूरी हो गई। यह विद्यालय की शिक्षा पूर्ण हो चुकी।
तो एक तो वे हैं, जो विद्यालय से भाग खड़े होते हैं कि परीक्षा न देनी पड़े, निन्यानबे प्रतिशत, और एक वे हैं, जो विद्यालय की सब परीक्षाएं पार कर जाते हैं, और विद्यालय उनसे कहता है कि अब आप कृपा करके जाइए; अब यहां होने की कोई आवश्यकता नहीं है।
महावीर और बुद्ध इस संसार के विद्यालय को पास करके छोड़ते हैं। यह व्यर्थ हो जाता है इसलिए छोड़ते हैं। जैसे सूखा पत्ता वृक्ष से गिरता है, कच्चा पत्ता उस शान से नहीं गिर सकता, क्योंकि कच्चा पत्ता गिरेगा तो पीड़ा होगी; पत्ते को भी होगी, वृक्ष को भी होगी, घाव भी छूट जाएगा। सूखा पत्ता टूटता है; न पत्ते को पता चलता है, न वृक्ष को खबर होती है कि कब छूट गया, न कोई घाव होता है।
महावीर कहते हैंः ब्राह्मण वह है जो संसार में रह कर कामवासना से ऐसे अलिप्त हो गया, जैसे कमल का पत्ता पानी से अलग है। ऐसा ब्राह्मण संन्यस्त हो तो संन्यास में गरिमा होती है, गौरव होता है; संन्यास में एक स्वास्थ्य होता है। ऐसे संन्यास में संसार का विरोध नहीं होता, संसार का अतिक्रमण होता है, ट्रांसेंडेंस होता है। यह आदमी संसार से भयभीत होकर नहीं गया है। यह आदमी संसार को पार करके ऊपर उठ गया है। यह बियांड हो गया है। यह संसार से जरा भी भयभीत नहीं है। संसार में होने में अब कोई अर्थ नहीं रहा, इसलिए गया है।
जो भय से भागता है, उसे अर्थ अभी है। इसलिए जब भी संन्यासी को आप संसार
से भयभीत देखें तो समझ लेना कि अभी यह आदमी जल्दी में चला गया, कच्चा पत्ता था, इसे अभी रुकना था। बेहतर था, अभी यह संसार में और जी लेता। एक साठ वर्ष

के बूढ़े साधु ने मुझे कहा कि मैं जब नौ वर्ष का था, तब मेरे पिता ने मुझे दीक्षा दी। पिता भी साधु थे। और अक्सर पिताओं की इच्छा होती है कि जो वे हैं, वही उनके बेटे भी हो जाएं! लेकिन पिता ने संन्यास लिया भी पैंतालिस साल की उम्र में; बेटे को संन्यास दे दिया नौ साल की उम्र में। यह बेटा अब साठ साल का हो गया, लेकिन इसकी बुद्धि नौ साल से आगे नहीं बढ़ी।
बढ़ नहीं सकती। क्योंकि इसको बढ़ने का कोई मौका ही नहीं है, अवसर ही नहीं है।
साठ साल का बूढ़ा, लेकिन बुद्धि अटक कर रह गई नौ साल पर। अभी हालत इसकी वही है कि अगर इसको कुलफी बेचने वाला दिखाई पड़ जाए तो कुल्फी खाने का मन होता है। सिनेमा घर के सामने क्यू लगा होता है, तो इसका मन होता है कि भीतर पता नहीं क्या हो रहा है; मैं भी देख लूं। स्त्री देख कर उसे बड़ी कठिनाई होती है, क्योंकि इस स्त्री में क्या छिपा है, जो इतना आकर्षित करती है; अपरिचित है। इसकी सारी साधना सिर्फ संघर्ष है, और अतिक्रमण कुछ भी नहीं हो रहा है। हो नहीं सकता। अनुभव अतिक्रमण लाता है।
जीवन से सस्ते छूटने का कोई उपाय नहीं है, और जो सस्ता छूटना चाहता है,
वह भटकेगा बहुत बार। जीवन में शार्टकट होते ही नहीं। कोई उपाय नहीं है। यहां कोई अपवाद नहीं है। महावीर भी जन्मों-जन्मों के अनुभव के बाद संन्यस्त होते हैं। बुद्ध भी जन्मों-जन्मों के अनुभव के बाद संन्यस्त होते हैं। आप को तो पिछले जन्मों की कोई याद ही नहीं है। आपका कोई अनुभव ही नहीं बना है। अनुभव बनता तो याद होती। आपने पिछले जन्मों में कुछ सार निचोड़ा होता जीवन से, तो वह आपके साथ होता। वह दीये की तरह आपको रोशनी करता। वह तो है नहीं। कुछ अनुभव तो इकट्ठा किया नहीं है। फूलों के साथ आप रहे हैं, लेकिन इत्र बिल्कुल नहीं निकाल पाए। इत्र साथ जाता है, फूल साथ नहीं ले जाए जा सकते। जब एक आदमी मरता है तो उस जीवन में जो उसने इत्र निकाल लिया है, एसेंस, वह उसके साथ हो जाता है। फूल ही फूल के साथ खेलता रहा है, फूल तो पीछे छूट जाते हैं। शरीर पर थोड़ी-बहुत सुगंध जो रहती है, वह भी शरीर के साथ छूट जाती है। नये जन्म में फिर से इकट्ठा करना पड़ता है। और हर जन्म में हम इकट्ठा करते हैं और खोते हैं। जब तक आप परिपक्व न हो जाएं, मैच्योरिटी न आ जाए, तब तक महावीर कहते हैं, संसार में ही अलिप्त होकर रहना ब्राह्मण होना है।
अलिप्तता ब्राह्मणत्व है।
"जो अलोलुप है, जो अनासक्त-जीवी है, जो अनगार, बिना घर-बार का है, जो अकिंचन है, जो गृहस्थों के साथ आनेवाले संबंधो में अलिप्त है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।"
एक-एक शब्द को गौर से समझें, क्योंकि हर शब्द के साथ खतरा है कि आप गलत समझ लेंगे और गलत समझने की संभावना सदा ज्यादा है ठीक समझने की बजाय; क्योंकि हम गलत हैं। हमें एकदम से गलत चीज एकदम से समझ में आती है। वह हमारे लिए स्वाभाविक है, वह हमें ज्यादा प्राकृतिक है कि गलत हमको एकदम से समझ में आ जाए।
महावीर कहते हैं, जो अलोलुप है, जिसका लोभ चला गया है। हमें क्या समझ में आता है? हमें समझ में आता है कि धन छोड़ दो तो लोभ चला गया! धन छोड़ने से लोभ नहीं जाता है। धन पकड़ा जाता है लोभ के कारण। धन के पहले भी लोभ मौजूद रहता है, नहीं तो धन को कोई पकड़ेगा क्यों। धन आदमी इकट्ठा करता है लोभ के कारण। तो एक बात तो पक्की है कि धन के पहले लोभ था, नहीं तो धन को कोई पकड़ता क्यों। तो जो पहले था, वह धन को छोड़ने से मिट नहीं सकता। वह पीछे छिपा मौजूद रह जाएगा। धन पीछे आया है, तो धन छोड़ दो, कोई फर्क नहीं पड़ता। लोभ मौजूद रहेगा।
महावीर कहते हैं, जो अलोलुप है, और हम समझते हैं कि जो निर्धन है। तो
हम समझते हैं कि साधु धन छोड़ दे तो बस साधु हो गया। धन छोड़ने से लोभ जाता होता, तो बड़ी आसान बात हो जाती। इसका तो मतलब हुआ कि वस्तुओं को छोड़ने से आत्मा बदलती है। तब तो आत्मा कमजोर है; वस्तुएं ज्यादा सबल हैं।
नहीं, वस्तुओं को छोड़ने से कुछ भी नहीं बदलता; हां, धोखा हो जाता है। अगर धन न हो, तो ऐसा लगता है कि अब मेरा कोई लोभ न रहा। और किसी को दिखाई भी

नहीं पड़ता। क्योंकि जब धन नहीं है तो किसी को दिखाई भी कैसे पड़ेगा! दिखाई धन पड़ता है, लोभ तो दिखाई नहीं पड़ता। लोभ तो खुद को ही देखना पड़ता है। धन दूसरों को दिखाई पड़ता है। जो दूसरों को दिखाई पड़ता है, उसे छोड़ना बहुत आसान है। जो दूसरों को दिखाई नहीं पड़ता, मेरे भीतर छिपा है, असली सवाल वही है।
तो महावीर नहीं कहते कि निर्धन ब्राह्मण है। महावीर कहते हैं अलोलुप।
ये दोनों बड़े फर्क हैं। तब यह भी हो सकता है कि कोई आदमी धन के बीच भी अलोलुप हो, और यह भी हो सकता है कि कोई आदमी निर्धन होकर भी लोलुप हो।
लोलुपता मन की एक वृत्ति है, चीजों को पकड़ने की। लोलुपता मन की एक तरंग है।
वस्तुओं से उसका संबंध नहीं है। वस्तुओं के सहारे वह फैलती है बाहर, लेकिन छिपी भीतर है। वस्तुएं हटा दें; वह भीतर जाकर सिकुड़ जाती है, लेकिन मौजूद रहती है। वह नई चीजों से जुड़ने लगती है।
तो देखें, एक लंगोटी वाला संन्यासी जिसके पास सिर्फ लंगोटी है, वह लंगोटी के प्रति भी लोलुप हो सकता है।
सुना है मैंने कि ऐसा हुआ कि एक संन्यासी बड़ी यात्रा करता था; जगह-जगह गुरुओं के पास जाता था, लेकिन कहीं उसे ज्ञान न हुआ। तो उसके अंतिम गुरु ने कहाः "हम तुझे ज्ञान न दे सकेंगे। तू बेहतर हो, जनक के पास चला जा।" उसने कहाः "जनक मुझे क्या ज्ञान देगा, जब बड़े-बड़े त्यागी, महात्यागी ज्ञान नहीं दे सके, तो यह भोगी मुझे क्या ज्ञान देगा!" लेकिन उसके गुरु ने कहाः "हम हार गए। अब वही तुझसे जीत सकता है। तू वहीं चला जा।"
वह गया; जाकर देखा तो बड़ा हैरान हुआ, क्योंकि जनक जमे थे, उनकी बैठक जमी थी। वहां पीना चल रहा था, भोजन चल रहा था, रास-रंग, नृत्य हो रहा था। उस संन्यासी ने कहा कि मैं भी कहां आ गया! भोगियों और पापियों के बीच! इस नर्क में मुझे किसलिए भेज दिया मेरे गुरु ने? लेकिन अब आ गया हूं, तो रात तो रुकना ही पड़ेगा। तो उसने सम्राट से कहा कि रात रुक जाऊं? आ तो गया। गलती तो हो गई। पूछने कुछ आया था। अब नहीं पूछूंगा। सुबह विदा हो जाऊंगा। सम्राट ने कहा कि कोई हर्ज नहीं, इतनी जल्दी निर्णय मत लो।
सुबह सम्राट उसे लेकर नदी पर स्नान करने गया, और जब वे दोनों नदी में स्नान कर रहे थे, तो सम्राट के महल में आग लग गई। भयंकर लपटें उठने लगीं। सारे गांव में कोलाहल मच गया। तो उस फकीर ने कहा कि "जनक, क्या देख रहे हो, मकान से लपटें निकल रही हैं, मकान जल रहा है!" और वह यह कह कर संन्यासी भागा वहां से। सम्राट ने कहा कि "तू कहां जा रहा है?" उसने कहाः मैं अपनी लंगोटी घाट पर छोड़ आया हूं। अगर आग बढ़ती आ गई तो लंगोटी साफ हो जाएगी।
जनक ने कहाः "महल जल रहा है; मैं नहीं जल रहा हूं, और अभी तेरी लंगोटी नहीं जल रही है, लेकिन तूने जलना शुरू कर दिया! अभी आग बहुत दूर है। जब पूरे गांव को पार करेगी, तब घाट तक आएगी, लेकिन तू जल उठा और रखा क्या है? वहां एक लंगोटी रख आया है किनारे पर!"
लोलुपता से संबंध नहीं है कि किस चीज से जुड़े; किसी भी चीज से जुड़ सकती है। और अक्सर ऐसा होता है कि धनी की लोलुपता तो फैली रहती है बहुत सी चीजों में; धन को छोड़ कर जो भाग जाते हैं, उनकी लोलुपता इंटेंस हो जाती है। थोड़ी सी चीजें रहती हैं, सारी लोलुपता उन्हीं थोड़ी सी चीजों पर लग जाती है।
तो संन्यासी का मोह नष्ट नहीं होता, सिकुड़ कर थोड़ी सी चीजों पर लग जाता है। लेकिन वह मोह वहीं खड़ा है। धन छोड़ना शर्त नहीं है, धन को पकड़ने का जो आग्रह है भीतर, उसका छूट जाना! यह कब होगा? यह कैसे होगा? धन को हम पकड़ना ही क्यों चाहते हैं? जब तक उसकी जड़ ख्याल में न आए तब तक कटेगी भी नहीं। धन को हम इसलिए पकड़ना चाहते हैं, क्योंकि हम अपने प्रति आश्वस्त नहीं हैं। हमें भय है, कल का भरोसा नहीं है; बीमारी है, स्वास्थ्य है, मृत्यु है, आज मित्र हैं, कल मित्र न हों; आज घर है, कल घर न हो। और जिंदगी जीनी है तो आदमी धन पर भरोसा करता है। धन सुरक्षा है, सिक्युरिटी है। और जब तक आप असुरक्षित रहने को राजी नहीं हैं, तब तक आप लोलुपता के बाहर नहीं जा सकते। असुरक्षित, इनसिक्युरिटी में रहने को जो राजी है; जो कहता है, जो कल होगा, वह हम कल देखेंगे; जो आज हो रहा है, वह आज के लिए काफी है। यह क्षण पर्याप्त है। मैं किसी और क्षण की चिंता नहीं करूंगा। जो क्षण-जीवी है और जो कल चाहे

मुसीबत हो, तो उसे झेलेगा, लेकिन कल ही झेलेगा; आज से तैयारी नहीं करेगा। ऐसा व्यक्ति अलोलुप हो सकता है और ऐसा व्यक्ति ही संन्यस्त हो सकता है। जो अलोलुप है!
आप अपनी लोलुपता को खोजें कहां है। भय में छिपी है, और मजा यह है कि आप कितना ही धन इकट्ठा कर लें, भय तो मिटता नहीं, बढ़ता ही चला जाता है। कितना ही इंतजाम कर लें, मृत्यु तो आएगी ही, और कितनी ही व्यवस्था जुटा लें, रोग तो पकड़ेगा ही। मित्र खोएंगे ही, पत्नी मरेगी, पति विदा होगा, दुख आएगा। इस पृथ्वी पर कोई भी कभी सुरक्षित नहीं रहा। सुरक्षा इस पृथ्वी का नियम नहीं है, मगर हर आदमी अपने को अपवाद मान लेता है, और फिर उसी कोशिश में लग जाता है, जिसमें सिकंदर, नेपोलियन, चंगेज डूब जाते हैं; फिर उसी कोशिश में लग जाता है कि मैं अपने को सुरक्षित कर लूं, मुझ पर कोई खतरा न रहे।
और हम जिंदगी भर खतरे से बचने में जिंदगी को गंवा देते हैं; जिंदगी का
रस ही नहीं ले पाते और न ही जिंदगी का उपयोग कर पाते हैं। महावीर इसलिए अलोलुपता को ब्राह्मणत्व का आधार बनाते हैं, क्योंकि जो आदमी अलोलुप है, वह जीवन का ठीक उपयोग कर पाएगा। जो लोलुप है, वह डरा हुआ, भयभीत, इंतजाम करने में ही लगा रहेगा। और जो यहीं इंतजाम करने में लगा है, उसका ब्रह्म से क्या संबंध स्थापित होगा! उसका परम से कोई संबंध स्थापित नहीं हो सकता। वह क्षुद्र में ही व्यतीत हो जाएगा।
"जो अलोलुप है, जो अनासक्त-जीवी है।"
हम भी जीते हैं, ब्राह्मण भी जीता है, लेकिन महावीर कहते हैं, ब्राह्मण जीता है अनासक्त; इसलिए जीता है कि जीवन है; इसलिए नहीं जीता कि जीवन से कल एक बड़ा मकान बनाना है, एक बड़ी जमीन खरीदनी है, एक बड़ा बगीचा लगाना है, खेती-बाड़ी करनी है, धन इकट्ठा करना है; कल कुछ करना है जीवन से, कोई वासना पूरी करनी है, ऐसी किसी आसक्ति से नहीं जीता। जीवन है; जब तक है, तब तक जीएगा; जिस दिन श्वास छूट जाएगी, इतनी भी प्रार्थना नहीं करेगा कि एक श्वास और मुझे मिल जाए। मृत्यु, तो मृत्यु स्वीकार; जीवन, तो जीवन स्वीकार। जो भी घटित हो, वह उसे स्वीकार है। उसमें कोई अस्वीकार नहीं है। अनासक्त का अर्थ है कि मैं जीवन पर अपनी कोई धारणा नहीं थोपता। जीवन जहां ले जाए, जीवन जो करे, मैं सहज भाव से उसे स्वीकार करता हूं। हमारी कठिनाई है, हम जीवन पर धारणा थोपते हैं। हम जीवन को स्वीकार नहीं करते। हम जीवन को चाहते हैं वासना के अनुकूल। उमर खय्याम ने कहा है कि अगर परमात्मा मुझे मौका दे, तो मैं सारी दुनिया को मिटा कर फिर से बनाऊं। तभी शायद मुझे तृप्ति हो सके।
लेकिन तब भी शायद ही तृप्ति हो सके। तब भी शायद ही तृप्ति हो सके, क्योंकि मन का नियम यह है कि जो भी आप बना पाते हैं उसकी अतृप्ति आगे बढ़ जाती है। एक मकान आप बनाते हैं; सोचते हैं तृप्त हो जाऊंगा; बनते ही सब समाप्त हो जाता है। नई कल्पनाएं, नये स्वप्न जग जाते हैं। जैसे वृक्षों में पत्ते लगते हैं, ऐसे मन में वासनाएं लगती हैं। पुराने गिर नहीं पाते कि नये लग जाते हैं। मन तो नई अतृप्तियां खोजता चला जाता है।
ब्राह्मण वही है, जो अनासक्त-जीवी है; जो जीवन में ऐसे जी रहा है जैसे
कल है ही नहीं, जैसे भविष्य होगा ही नहीं। हम लेकिन, गलत समझ लेते हैं। जीसस ने अपने शिष्यों को कहा कि कल नहीं है। बस, आज ही है। और दुनिया का समझो कि जैसे कल अंत होनेवाला है। इस भांति जीओ कि जैसे कल मृत्यु होनेवाली है, कल सब समाप्त हो जाएगा, महाप्रलय हो जाएगी।
बड़ा मजा है! आदमी का मन कैसी गलती करता है! शिष्यों ने समझा कि ऐसा मामला है, ऐसा खतरा आ रहा है कि जल्दी दुनिया का कल अंत हो जाने वाला है, तो बजाय आज शांति से जीने के, वे कल की चिंता में लग गए कि अंत हो जाएगा, तो क्या करें! और जीसस से वे बार-बार पूछते हैं, जब कल आ जाता है, कि अभी अंत नहीं हुआ, प्रलय कब होगी? जीसस कहते हैं, बहुत निकट है, दि लास्ट डे इ.ज वेरी क्लोज। और दो हजार साल हो गए, लेकिन अभी भी ईसाई समाज में कभी न कभी कोई संप्रदाय खड़ा हो जाता है, जो कहता है, बस, उन्नीस सौ पचहत्तर आखिरी। फिर उन्नीस सौ पचहत्तर की तैयारी चलने लगती है कि आखिरी दिन आ रहा है, तो

थोड़ा अच्छा काम कर लो। फिर उन्नीस सौ पचहत्तर आ जाता है, वह आखिरी दिन नहीं आता। फिर कोई दूसरा संप्रदाय पैदा होता है।
इन दो हजार सालों में ईसाइयों में हजार दफा ऐसी तारीखें तय हो चुकी हैं, जब कि आखिरी प्रलय होने वाली है। किस तरह हम जीसस को, महावीर और बुद्ध को गलत समझते हैं! जीसस का कुल प्रयोजन इतना है कि कल जैसे सब नष्ट हो जाएगा, इस बात को समझकर आज जीओ। लेकिन हम आज तो जी ही नहीं सकते। हम तो सदा कल में ही जीते हैं। कल! और वह कल हमारे पूरे जीवन को चूस लेता है; कभी आता नहीं।
अनासक्त-जीवी का अर्थ हैः वर्तमान में जीने वाला।
ध्यान रहे, वासनाओं के लिए भविष्य चाहिए, जीवन के लिए भविष्य की कोई
भी जरूरत नहीं है। जीवन के लिए यही क्षण काफी है। अभी मैं जीवित हूं पूरा।
आप पूरे जीवित हैं। जीने के लिए कल की क्या जरूरत है? लेकिन वासना के लिए कल की जरूरत है, क्योंकि वासनाएं बड़ी हैं; आज कैसे पूरी होंगी? कल चाहिए।
वासनाएं भविष्य निर्मित करती हैं।
वासनाएं ही समय का निर्माण हैं।
"जो अनासक्त-जीवी है, जो अनगार है, बिना घर-बार का है।"
अब यह भी बड़ा मुश्किल हो गया। "अनगार" का सीधा अर्थ ले लिया गया कि जो घर-बार छोड़ दे। जो घर-बार में न रहे, वह अनगार है।
लेकिन बड़े मजे की बात है कि जैन साधु को भी रहना पड़े तो किसी के घर में
ही रहना पड़ता है! कितना ही इंतजाम करो, घर तो बनाना ही पड़ता है; कोई छाया, छप्पर डालना पड़ता है। धर्मशाला में ठहरो कि स्थानक में ठहरो, ठहरना कहीं होगा, घर तो होगा ही।
घर-बार न हो जिसका, अनगार है जो, तो जरूर महावीर कुछ चेतना की स्थिति
की बात कर रहे हैं। महावीर यह कह रहे हैं कि जिसकी चेतना के आस-पास किसी तरह की दीवाल नहीं, किसी तरह का घर, किसी तरह का कारागृह, कुछ भी नहीं है। जिसकी चेतना खुले आकाश की तरह है, जो अनगार है। फिर ऐसा अनगार व्यक्ति छप्पर के नीचे भी सोए तो वह छप्पर उसके भीतर के आकाश को छोटा नहीं कर पाता। और आप-जिसकी आत्मा घर-घूलों में बंधी है, दीवालों से घिरी है-आप खुले आकाश के भी नीचे सोएं तो कोई फर्क नहीं पड़ता। आप अपने घर में ही सो रहे हैं। खुला आकाश क्या करेगा, जिसके भीतर का आकाश बंद है? खुला आकाश भीतर होना चाहिए। तब बाहर भी सब खुला हुआ है। लेकिन शब्द दिक्कत में डाल देते हैं; क्योंकि हमारे पास शब्द आते हैं, शब्द की आत्मा तो नहीं आती।
मार्क ट्वेन अमरीका का एक बहुत विचारशील लेखक हुआ, एक हंसोड़ व्यक्तित्व। और कभी-कभी हंसोड़ व्यक्तित्व बड़े गहरे, बड़ी गहरी चोटें कर जाते हैं; बड़े गहरे सत्य कह जाते हैं। असल में सत्य कहना हो तो हंसी के बिना कहा ही नहीं जा सकता। जिंदगी ऐसे ही काफी उदास है। और उदास सत्य डाल-डाल कर आदमी को मारने का कोई अर्थ भी नहीं है।
मार्क ट्वेन को आदत थी भयंकर रूप से गालियां देने की। जरा सी बात हो जाए, तो वह गालियां देना शुरू कर दे, और ऐसा नहीं कि आदमियों को ही दे, चीजों को भी दे। दरवाजा न खुल रहा हो, तो वह गाली देने लगे। उसकी पत्नी बड़ी परेशान थी। और वह इतना नामी, अंतर्राष्ट्रीय ख्याति का आदमी था कि उसकी पत्नी कहती थी कि कोई सुन ले कि तुम इस तरह की गालियां बकते हो, तो क्या लोग कहेंगे! लेकिन कोई उपाय नहीं था। गालियां उसके लिए अनिवार्य थीं। एक दिन सुबह ही सुबह, ब्रह्ममुहूर्त में, कहीं जाने को वह निकला; कमीज पहनी, बटन टूटा है--बस, उसने गाली देना शुरू की, पत्नी भी परेशान हो गई। वह दरवाजे पर खड़ी सुनती रही एक-एक गाली उसकी। वह इतने रस से दे रहा था, जैसे संगीत का मजा ले रहा हो! बड़ी भद्दी गालियां दे रहा था, जिनको स्त्रियां उपयोग भी नहीं कर सकतीं। पर उसकी पत्नी ने कहा यह भी करके देख लेना चाहिए। तो जैसे ही उसने बंद किया, उसकी पत्नी ने, जो-जो गालियां उसने दी थीं, उतनी ही जोर से उनको दोहराया। उसने सोचा, शायद इससे घबड़ा जाएगा, सोचेगा कि पड़ोसी क्या कहेंगे? कि मार्क ट्वेन की पत्नी ऐसी भद्दी गालियां बकती है! मार्क ट्वेन गौर से सुनता रहा, और उसने कहा कि राइट, यू हैव कॉट दि वटर्ड्स, बट यू हैव मिस्ड दि

स्पिरिट--शब्द तो पकड़ लिए, शब्द में क्या रखा है? आत्मा! वह गाली देने में जो मैं आत्मा डाल रहा था, वही नहीं है!
सभी सत्यों के साथ करीब-करीब यही दिक्कत है, कि शब्द पकड़ में आ जाते हैं और आत्मा खो जाती है। शब्द झंझट की बात है। और शब्द के अनुसार फिर हम चलना शुरू कर देते हैं। और शब्द का अर्थ भाषाकोश में लिखा है, महावीर से पूछने की जरूरत नहीं है। अनगार यानी जिसका कोई घर नहीं--बात खत्म हो गई। और अगर घर है तो आप ब्राह्मण नहीं हैं; घर छोड़ दें तो ब्राह्मण हो गए! आसान हो गई बात; सरल हो गई।
घर छोड़ने से कोई ब्राह्मण नहीं होता। घर में रहने से कोई अब्राह्मण नहीं होता। अनगार एक चेतना की अवस्था है, ऐसी भाव-दशा, जहां मैं अपनी तरफ कोई सीमाएं खड़ी नहीं करता, जहां मैं बंधा हुआ नहीं हूं।
घर का अर्थ है, बंधन। जगत से आप भयभीत हैं, चारों तरफ से घर की दीवाल खड़ी कर रखी है। उसके भीतर आप सुरक्षित हैं। घर के बाहर खुले आकाश के नीचे असुरक्षा शुरू हो जाती है। तो महावीर कहते हैंः जो असुरक्षित जीता है, जो कोई दीवाल खड़ी नहीं करता; और जो दूसरे से अपने को फासला नहीं करता, किसी सीमा को बना कर कि तुम अलग हो।
समझें, अगर आप कहते हैं, मैं जैन हूं--आपने एक घर बना लिया। हिंदू से आपका घर अलग हो गया। आप दोनों के आंगन अलग हो गए। मुसलमान से आपका घर अलग हो गया। ईसाई से आपका घर अलग हो गया। इन्हीं घरों के अलग होने के कारण तो हमें मंदिर, मस्जिद और चर्च बनाने पड़े। हमारे घर ही अलग नहीं हो गए, हमें भगवान के घर भी अलग कर देने पड़े।
महावीर कहते हैं कि तुम उस दिन ब्राह्मण होओगे, जिस दिन तुम्हारा कोई
घर न रह जाए चेतना पर, और हमने तो ब्रह्म को भी घरों में बांध दिया है। हम बड़े होशियार लोग हैं! महावीर आपको मुक्त करना चाहते हैं कि ब्रह्म हो जाएं, हमने ब्रह्म को भी बांध कर नीचे खड़ा कर दिया है!
लोगों के अपने-अपने ब्रह्म हैं। चर्च के सामने आपका दिल हाथ झुकाने
को नहीं होता। जीसस को सूली पर लटके देख कर आपके मन में कोई भाव नहीं उठता। महावीर को अपने सिद्धासन में बैठे देख कर आपका सिर झुक जाता है। लेकिन जीसस का अनुयायी निकलता है, उसे कोई भाव नहीं होता। उसे सिर्फ इतना दिखाई पड़ता है कि आदमी नग्न बैठा है। आपको जीसस को देख कर लगता है कि क्या है इसमें, सूली पर लटका है! किसी पाप का फल भोग रहा होगा; किया होगा कर्म, तो भोगेगा। कि कहीं तीर्थंकर कहीं सूली पर लटकते हैं? तीर्थंकर को तो कांटा भी नहीं चुभता, सूली तो बहुत दूर की बात है! तीर्थंकर तो चलता है, तो कांटा अगर सीधा पड़ा हो, तो जल्दी से उलटा हो जाता है; क्योंकि तीर्थंकर ने कोई पाप तो किया नहीं जो कांटा चुभे। तो जीसस को सूली लगी है, जरूर किसी महापाप का फल है।
जैनी के मन में यह भाव आएगा जीसस को देख कर। हाथ नहीं जुड़ेगा। जीसस के अनुयायी को महावीर को देख कर ख्याल आएगा कि परम स्वार्थी मालूम पड़ता है। दुनिया इतने कष्ट में पड़ी है और तुम सिद्धासन लगाए बैठे हो! सारा संसार जल रहा है, तुम आंखें बंद किए हो! हमारा जीसस सबके लिए सूली पर लटका, और तुम अपने लिए बैठे हो! जीसस जगत का कल्याण करने आए और तुम--तुम सिर्फ अपने ही घेरे में बंद हो! उसके हाथ नहीं जुड़ेंगे।
जीसस और महावीर तो दूर हैं। इधर पास भी देखें, महावीर और राम तो बहुत दूर नहीं हैं! दोनों क्षत्रिय हैं, एक ही धारा के हिस्से हैं। लेकिन जैनी के हाथ राम को देख कर नहीं जुड़ सकते! वह सीता मैया जो पास खड़ी हैं, वह उपद्रव है। भगवान होकर और पत्नी! यह कल्पना ही के बाहर है! और धनुषबाण किसलिए लिए हो? किसी से लड़ना है? तीर्थंकर, और धनुषबाण लिए हो! सोच भी नहीं सकते! और पत्नी खड़ी है। सब गड़बड़ हो गया। अभी कामवासना में ही पड़े हो! लेकिन, राम के मानने वाले को महावीर को देख कर भी कोई भाव नहीं उठता, क्योंकि महावीर उसे पलायनवादी मालूम होते हैं कि जहां जीवन संघर्ष है, वहां तुम भगोड़े हो! जहां जरूरत थी कि लड़ते और दुनिया को बदलते, वहां तुम जंगल में जाकर आंख बंद किए बैठे हो। राम को देखो! धनुषबाण लिए युद्ध में, संघर्ष में खड़े हैं। और जब परमात्मा ने ही स्त्री-पुरुष को बनाया, तो तुम

छोड़ने वाले कौन हो! और जब परमात्मा ने ही चाहा कि वे दोनों साथ हों, तो परमात्मा की मर्जी के खिलाफ जो जा रहा है वह नास्तिक है।
हम अपनी धारणाओं के घर बनाए हैं। उनको हम मंदिर कहते हैं। हमने अपनी धारणाओं के भगवान बनाए हैं। वे हमारी धारणाओं के प्रोजेक्शन हैं, प्रक्षेप हैं। महावीर कहते हैं, अनगार चेतना चाहिए--जिसका कोई घर नहीं, जिसका कोई मंदिर नहीं, जिसका कोई संप्रदाय नहीं, जिसका कोई धर्म नहीं, जिसकी कोई सीमा नहीं; जो शुद्ध "होने" में ही जीता है। न जो ईसाई है, न जैन है, न बौद्ध है, न हिंदू है, न मुसलमान है। न जो कहता है मैं भारतीय हूं, न जो कहता है कि मैं चीनी हूं, जो किसी तरह के घेरे नहीं बनाता। जो न कहता है कि मैं धनी हूं, न कहता है निर्धन हूं। न जो कहता है मैं शूद्र हूं, न जो कहता है कि मैं ब्राह्मण हूं। जो न कहता है मैं ऊंचा हूं, न नीचा हूं। जो न कहता है मैं पुरुष हूं, स्त्री हूं। जो कुछ भी नहीं कहता। जो अपनी तरफ कोई भी विशेषण नहीं लगाता।
विशेषण-शून्य व्यक्ति अनगार है। उसने सब घर गिरा दिए। वह खुले आकाश
के नीचे आ गया। आकाश ही अब उसका घर है। यह इतना विस्तार, यह विराट ही उसका अब घर है। ऐसे व्यक्ति को महावीर कहते हैं, मैं ब्राह्मण कहता हूं, जो अनगार है।
"जो अकिंचन है।"
"अकिंचन" शब्द भी बड़ा मूल्यवान है। अकिंचन का अर्थ नहीं होता कि निर्धन है, दीन है। नहीं, अकिंचन का अर्थ होता हैः जो अपने को "कुछ भी हूं," ऐसा नहीं मानता। समबडी, कुछ होने का ख्याल जिसे नहीं है। एक नोबडीनेस, एक ना-कुछ होने का भाव कि मैं कुछ भी नहीं हूं। यह "कुछ भी नहीं हूं"--यह भी विधायक रूप से न पकड़ ले कि "मैं कुछ भी नहीं हूं," नहीं तो यह भी अकड़ बन जाए। बस, होने का भाव न हो।
बोकोजू अपने गुरु के पास गया--एक झेन फकीर। और उसने अपने गुरु से जाकर कहा कि तुमने कहा थाः ना-कुछ हो जाओ बिकम ए नोबडी। नाउ आई हैव बिकम ए नोबडी--अब मैं ना-कुछ हो गया। उसके गुरु ने डंडा उठाया और कहाः "दरवाजे के बाहर हो जा, इस नोबडी को बाहर छोड़ कर आ। यह जो "ना-कुछ" को तू भीतर ला रहा है, नालायक! यह वही है, "कुछ" हूं। इसमें कोई फर्क नहीं हुआ। अब दुबारा यहां मत आना, जब तक तू कुछ है।"
फिर बोकोजू की हिम्मत नहीं पड़ी आने की। क्योंकि, असल में दावा करना ही
जब हो, तो कुछ का ही दावा हो सकता है। "ना-कुछ" का कहीं कोई दावा होता है?" ना-कुछ" के दावे का मतलब ही खो गया, बात ही उलटी हो गई।
तो फिर बोकोजू नहीं आया। वर्ष बीतते चले गए। तीन साल बाद गुरु गया खोजने कि बोकोजू कहां है। शिष्यों ने कहा कि वह उस झाड़ के नीचे बैठा रहता है। गुरु उसके पास गया। बोकोजू उठ कर खड़ा भी नहीं हुआ! क्योंकि उठना था, वह औपचारिक था। गुरु आए तो शिष्य को उठना था; लेकिन जब कुछ भी न रहा, तो शिष्य कौन, गुरु कौन? कहते हैं, गुरु ने उसके चरणों में सिर झुकाया और कहा कि तू अकिंचन हो गया। अब कोई भाव नहीं रहा कि तू कौन है। अब ना-कुछ का भी भाव नहीं है।
अकिंचन का अर्थ हैः जब मुझे भाव ही न रह जाए कि मैं क्या हूं; सिर्फ होना रह जाए अपनी परिशुद्धता में।
महावीर कहते हैंः अकिंचन होना, ब्राह्मण होना है। ब्राह्मण की ऐसी महिमापूर्ण व्याख्या महावीर के अतिरिक्त और किसी ने भी नहीं की है। महावीर चाहते थे, पूरी पृथ्वी ब्राह्मण हो जाए। ऊपर से देखने पर लगता
है कि महावीर ने तोड़ दिए सारे समाज के सारे नियम, वर्ण की व्यवस्था, लेकिन महावीर की कल्पना थी कि सारी पृथ्वी ब्राह्मण हो जाए। और जब तक सारी पृथ्वी ब्राह्मण नहीं हो जाती, तब तक धार्मिक होने का कोई उपाय नहीं है, पृथ्वी धार्मिक भी नहीं हो सकती। पृथ्वी ब्राह्मण हो सकती है। लेकिन, कोई तिलक-टीकाधारी ब्राह्मण, चोटी धारी ब्राह्मण, यज्ञोपवीत वाला ब्राह्मण अगर कोशिश करे कि सारी दुनिया यज्ञोपवीत पहन ले, चोटी रख ले, तिलक लगा ले और ब्राह्मण हो, तो पृथ्वी ब्राह्मण नहीं हो सकती। और इस तरह का ब्राह्मणत्व फैल भी जाए तो दो कौड़ी का है। उसका कोई मूल्य नहीं है।

ब्राह्मण के लक्षणों को शरीर से हटा कर महावीर आत्मा पर ले जा रहे हैं। हमारी व्याख्या ब्राह्मण की जो महावीर के पहले थी, वह शरीर पर थी कि ब्राह्मण-कुल में जो पैदा हुआ, ब्राह्मण घर में बड़ा हुआ, ब्राह्मण-जाति के नियम मानता है--शास्त्र पढ़ता है, शास्त्र पढ़ाता है, गुरु है--वह ब्राह्मण है। महावीर ने शरीर से सारी व्याख्या हटा दी।
"जो अकिंचन है।"
ध्यान रहे, जिसको हम ब्राह्मण कहते हैं, वह अकिंचन कभी नहीं होता चाहे उसके पास कौड़ी भी न हो। और जब भी आप उसके सामने खड़े होते, तो वह देखता है कि छुओ पैर! अकिंचन कभी नहीं होता। अगर आप उसके पैरों में सिर न रखें तो अभिशाप देने को जरूर तैयार रहता है। अकिंचन वह कभी नहीं होता, महान अहंकार से पीड़ित होता है।
ब्राह्मण के चेहरे पर देखें एक अकड़... जो कि उन सभी लोगों में आ जाती है, जो बहुत समय तक अभिजात्य रहते हैं; ऊपर रहते हैं, छाती पर रहते हैं समाज की। उन सभी में आ जाती है। जैसे कि अंग्रेज चलता था हिंदुस्तान में, जब उसकी मालकियत थी, उसकी चाल, उसकी आंखें।
ब्राह्मण हजारों साल से ऊपर हैं, और ऊपर होने का कुल आधार शरीर है। इसलिए ब्राह्मणों को रुचिकर नहीं लगा महावीर का यह कहना कि ब्राह्मण होना आत्मा की गुणवत्ता है। क्योंकि उनको लगा कि इससे तो हमारा सारा ब्राह्मणत्व, जो कि शरीर पर निर्भर है, बिखरता है। इसलिए ब्राह्मणों ने महावीर का गहन विरोध किया। महावीर की विचारधारा को मुल्क में न जमने दिया जाए, इसकी पूरी चेष्टा की। महावीर घोर नास्तिक हैं और लोगों को अधार्मिक बना रहे हैं--ऐसा प्रचार किया। महावीर कोई ज्ञानी पुरुष नहीं हैं, इसकी पूरी धारणा फैलाई।
यह जान कर आपको हैरानी होगी कि महावीर--जैसे आस्तिक व्यक्ति के विचार
को ब्राह्मणों ने--जाति, जन्म से बंधे ब्राह्मणों ने--नास्तिकता सिद्ध करने की चेष्टा की, और उन्होंने इतने जोर से प्रचार किया है महावीर के नास्तिक होने का कि भारत के परंपरागत दर्शनशास्त्र के ग्रंथों में महावीर का नाम हमेशा नास्तिक परंपरा में गिना जाता है।
यह बड़ी चमत्कारपूर्ण घटना है कि महावीर और बुद्ध--जैसे परम आस्तिक, नास्तिक व्यक्ति क्यों मालूम पड़े उन्होंने जो कहा था उसके कारण नहीं; बल्कि उन्होंने जातिगत स्वार्थों को जो नुकसान पहुंचाया उसका बदला लेना जरूरी था। और एक बार किसी के नास्तिक होने की घोषणा कर दो, तो लोग अंधे हो जाते हैं, फिर लोग सुनना बंद कर देते हैं। किसी के भी संबंध में कह दो कि वह नास्तिक है, लोग डर जाते हैं।
जैसे आज, आज किसी आदमी के बारे में कह दो कि वह कम्युनिस्ट है, फिर लोग सोच लेते हैं कि इसकी बात सुनने की जरूरत नहीं। जैसे आज किसी को कम्युनिस्ट कह देना काफी है निंदा के लिए। कम्युनिस्ट भी अपने को कम्युनिस्ट बताने में दो दफा सोचता है कि बताना कि नहीं। ठीक आज से ढाई हजार साल पहले "नास्तिक" इससे भी ज्यादा खतरनाक सत्य था। और चारवाक के साथ महावीर को गिनना एकदम बेहूदी बात है। क्योंकि कहां चारवाक, जो सिर्फ खाने, पीने और मौज उड़ाने की शिक्षा दे रहा है। जो कहता है कि न कोई परमात्मा है, न कोई आत्मा है, न कोई परम जीवन है--सिवाय पदार्थ के और कुछ भी नहीं। उसके साथ महावीर को गिनना या बुद्ध को गिनना ज्यादती है।
लेकिन, ब्राह्मणों ने यह ज्यादती की। करने का कारण यह नहीं था कि महावीर नास्तिक थे। करने का कारण यह था कि महावीर ने ब्राह्मण की व्याख्या को इतना महान बना दिया कि सभी ब्राह्मणों को साफ हो गया कि उनमें से कोई भी ब्राह्मण नहीं है। यह व्याख्या गिरनी चाहिए। उनका ब्राह्मणत्व छीन लिया। इतनी बड़ी लकीर खींच दी ब्राह्मण की, कि उसके नीचे ब्राह्मण एकदम क्षुद्र मालूम होने लगा। कि इस आदमी का वचन नहीं सुनना चाहिए।
ऐसा उल्लेख है शास्त्रों में कि अगर कोई ब्राह्मण निकलता हो रास्ते
से और सामने पागल हाथी आ जाए, और जैन-मंदिर करीब हो, तो पागल हाथी के पैर के नीचे दब कर मर जाना बेहतर, जैन-मंदिर में शरण नहीं लेनी चाहिए। क्योंकि पता नहीं वहां कोई नास्तिक वचन कान में पड़ जाए।

मगर आप ऐसा मत सोचना कि ऐसा हिंदुओं ने ही किया। जैनों ने भी ठीक यही किया पीछे। उन्होंने भी लिखा है अपने शास्त्रों में कि कोई जैन अगर हिंदू- मंदिर के पास पागल हाथी के सामने पड़ जाए, तो बेहतर है मर जाना पागल हाथी के पैर के नीचे दबकर, हिंदू-मंदिर में शरण मत लेना। क्योंकि वहां कुदैव की पूजा हो रही है, कुशास्त्र पढ़ा जा रहा है।
बड़े मजे की बात है, महावीर ने कहा कि कोई ब्राह्मण जन्म से नहीं होता लेकिन सब जैन जन्म से जैन हैं! महावीर ने जैन की कोई व्याख्या नहीं की, क्योंकि उस दिन कोई जैन था नहीं। ब्राह्मण की व्याख्या की। अब जरूरत है कि कोई तीर्थंकर जैन की व्याख्या करे, कौन है "जैन"? "जैन" शब्द "ब्राह्मण" शब्द से ज्यादा कीमती है, कम कीमती नहीं है।
ब्राह्मण बनता है "ब्रह्म" से; कि जो ब्रह्म को उपलब्ध होने लगा। और जैन बनता है "जिन" से; जो स्वयं का स्वामी होने लगा, जीतने लगा अपने को। जिसने अपने को पूरी तरह जीत लिया वह "जिन" है। और जो जीतने के मार्ग पर चल पड़ा वह "जैन" है। लेकिन जैन घर में पैदा होने से कोई जीतने के मार्ग पर चलता है?
लेकिन, जैसा उस दिन ब्राह्मण मूढ़ था, और सोच रहा था ब्राह्मण कुल में पैदा होकर मैं ब्राह्मण हो गया। वैसा ही जैन आज मूढ़ है। वह सोचता है जैनकुल में पैदा होकर मैंने सब पा लिया, संपदा मिल गई।
जन्म से कुछ भी नहीं मिलता--हड्डी-मांस-मज्जा मिलती है। उसका धर्म से कोई लेना-देना नहीं है। धर्म तो उपलब्ध करना होता है, चाहे ब्राह्मण बनो और चाहे जैन। अथक साधना, जन्मों-जन्मों की चेष्टा का फल है। जिनत्व या ब्राह्मणत्व उपलब्धि है। जन्म के साथ नहीं मिलती, खुद पानी होती है।

महावीर-वाणी, भाग 2
उन्नीसवां प्रवचन

वर्णभेद जन्म से नहीं, चर्या से (ब्राह्मण-सूत्रः 3)

न वि मुंडिएण समणो, न ओंकारेण बंभणो।
न मुणी रण्णवासेणं, कुसचीरेण ण तावसो भ।।
समयाए समणो होइ, बंभचेरेण बंभणो।
नाणेण उ मुणी होइ, तवेण होइ तावसो।।
कम्मुणा बंभणो होइ, कम्मुणा होइ खत्तिओ।
वइसो कम्मुणा होइ, सुद्दो हवइ कम्मुणा।।
एवं गुणसमाउत्ता, जे भवन्ति दिउत्तमा।
ते समत्था समुद्धत्तुं,
परमप्पाणमेव चे।।

सिर मुंडा लेने मात्र से कोई श्रमण नहीं होता, "ओम" का जाप कर लेने मात्र से कोई ब्राह्मण नहीं होता, निर्जन वन में रहने मात्र से कोई मुनि नहीं होता, और न कुशा के बने वस्त्र पहन लेने मात्र से कोई तपस्वी ही हो सकता है।
समता से मनुष्य श्रमण होता है; ब्रह्मचर्य से ब्राह्मण होता है; ज्ञान से मुनि होता है; और तप से तपस्वी बना जाता है।
मनुष्य कर्म से ही ब्राह्मण होता है, कर्म से ही क्षत्रिय होता है, कर्म से ही वैश्य होता है और शूद्र भी अपने किए कर्मों से ही होता है। (अर्थात वर्ण-भेद जन्म से नहीं होता। जो जैसा अच्छा या बुरा कार्य करता है, वह वैसा ही ऊंच या नीच हो जाता है)
इस भांति पवित्र गुणों से युक्त जो द्विजोत्तम (श्रेष्ठ ब्राह्मण) हैं, वास्तव में वे ही अपना तथा दूसरों का उद्धार कर सकने में समर्थ हैं।

सत्य के अनुसंधान में अपरिसीम साहस चाहिए--प्रतिष्ठा को चुनौती देने का, स्वीकृत धारणाओं को खंडित करने का, आदृत मूर्तियों को भंजित करने का। असत्य चाहे कितना ही प्रतिष्ठित हो, उसे असत्य की तरह ही घोषित करना, असत्य की तरह ही जानना साधक के लिए अत्यंत अनिवार्य है। बहुत बार प्रतिष्ठित को हम सत्य मान लेते हैं। परंपरागत को सत्य मान लेते हैं, बहुजन के द्वारा स्वीकृत को सत्य मान लेते हैं। स्वार्थ में भी यही होता है कि व्यर्थ की उलझन में हम न पड़ें, सभी जैसा मानते हैं वैसा ही हम भी मान लें और सभी के साथ भीड़ में खड़े हो जाएं। लेकिन भीड़ कभी सत्य को उपलब्ध नहीं होती, समूह तो अंधकार में ही भटकता है। भीड़ से दूर उठने की हिम्मत चाहिए। भीड़ से दूर उठने में कठिनाई भी होगी, अड़चनें होंगी, असुविधा होगी, लेकिन वह भी सत्य की खोज-तपश्चर्या है। चाहे विज्ञान हो चाहे धर्म, इस संबंध में दोनों राजी हैं, और वह प्रतिष्ठा को, परंपरा को, भीड़ को, क्राउड का जो चित्त है, उसको चुनौती देने की बात।
महावीर शुद्ध सत्य के अन्वेषक हैं। जहां-जहां स्वार्थ ने असत्य के मंदिर खड़े कर रखे हैं, वहां-वहां चोट करना जरूरी है। वह चोट मनुष्यों पर नहीं है, मनुष्यों की भूलों पर है।
विश्व के वैज्ञानिक-वर्तुल में एक छोटी सी बड़ी मधुर कथा प्रचलित है। आस्ट्रीयन वैज्ञानिक वुल्फगैंग पावली उन्नीस सौ अट्ठावन में मरा। कथा है कि ईश्वर बहुत दिन से उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे कि वह कब मरे और कब आए; क्योंकि पावली जैसे आदमी मुश्किल से कभी होते हैं। असत्य को पकड़ने की, लोग कहते हैं, ऐसी क्षमता मनुष्य जाति के इतिहास में, विज्ञान की परंपरा में दूसरे व्यक्ति के पास नहीं थी। क्षणभर में असत्य को पकड़ लेना, भूल को पकड़ लेना पावली की कुशलता थी। और चाहे कितना ही खोना पड़े, कितना ही दांव पर लगाना पड़े, भूल को अस्वीकार करना या भूल को मद्देनजर करना या छिपाना उसके लिए असंभव था।

हो सकता हो ईश्वर उसकी प्रतीक्षा करता हो, क्योंकि सत्य के खोजी की प्रतीक्षा ही ईश्वर कर सकता है।
पावली मरा, और कथा है कि ईश्वर ने पावली से कहा कि तू भी अनूठा आदमी है। छोटी-छोटी भूलों के लिए तूने अपनी न मालूम कितनी रातें बिना सोए बिताई हैं। और निश्चित ही जीवन के बहुत से रहस्य--वह भौतिकविद था, फिजिसिस्ट था-- भौतिक शास्त्र के बहुत से रहस्य तुझे अनजाने रह गए होंगे और तू प्रतीक्षा कर रहा होगा कि कब परमात्मा से मिलना हो तो उनसे पूछ सके।
तुझे कुछ पूछना तो नहीं है? मैं खुश हूं।
पावली ने कहा कि धन्यभागी, हे प्रभु, एक सवाल मुझे वर्षों से चिंतित
कर रहा है, और मेरे मित्रों ने, मेरे साथियों ने जितने भी सिद्धांत खोजे वह सब गलत थे और मामला हल नहीं हो पाया। जब आप ही मौजूद हैं, जिन्होंने जगत को बनाया तो अब हल होने में कोई कठिनाई नहीं है।
उसने भौतिक-शास्त्र का एक उलझा हुआ सवाल ईश्वर से पूछा। उसने कहा कि प्रोटान और इलेक्ट्रान दोनों के मास में अठारह सौ गुना का फर्क है। प्रोटान का मास इलेक्ट्रान के मास से अठारह सौ गुना ज्यादा है। लेकिन दोनों का विद्युत चार्ज बराबर है; यह बड़ी हैरान करनेवाली बात है। ऐसा कैसे हो पाया? क्या कारण है? जरूर कोई कारण होगा।
ईश्वर ने अपनी टेबिल के ऊपर से कुछ कागजात उठाए और पावली को दिए और कहा कि यह रहा सारा सिद्धांत, इस भेद का सारा सिद्धांत, इस भेद का सारा रहस्य! पावली गौर से पढ़ गया। फिर से दुबारा लौट कर उसने पढ़ा। तीसरी बार फिर नजर डाली और ईश्वर के हाथ में देते हुए कहाः स्टिल रांग--अभी भी गलत है।" कहानी कहती है कि ईश्वर बहुत प्रसन्न हुआ और उसने कहा कि मैंने गलत ही तुझे पकड़ाया था। मैं जानना चाहता था कि ईश्वर को भी गलत कहने की क्षमता तुझ में है या नहीं।
ईश्वर की प्रतिष्ठा से और बड़ी कोई प्रतिष्ठा नहीं हो सकती; लेकिन सत्य के खोजी की आड़ में अगर ईश्वर भी आता हो तो उसे भी हटा देना आवश्यक है। महावीर सत्य के अनुसंधान में लगे थे, और बहुत सी बातें आड़ में थीं। वेद की प्रतिष्ठा थी। और वेद ईश्वर से कम प्रतिष्ठित नहीं था इस देश में। वेद ईश्वर का वचन था। कहना चाहिए ईश्वर से भी ज्यादा प्रतिष्ठित था। अगर ईश्वर भी वापस आ जाए और वेद के खिलाफ बोले, तो ईश्वर अस्वीकृत हो जाएगा, वेद स्वीकृत रहेगा। वेद परम वचन था। महावीर ने वेद को अस्वीकार कर दिया। क्योंकि उन्होंने कहा कि अनुभूति ही परम हो सकती है, शब्द परम नहीं हो सकते। और महावीर ने जो-जो प्रतिष्ठित परंपरा थी, सब पर आघात किए। ब्राह्मण प्रतिष्ठित था। महावीर ने ब्राह्मण की पूरी व्याख्या बदल दी। उस समय कोई सोच भी नहीं सकता था कि शुद्र भी अपने कर्म से ब्राह्मण हो सकता है, ब्राह्मण भी अपने कर्म से शूद्र हो सकता है। लेकिन महावीर ने जन्म की पूरी व्यवस्था तोड़ दी और कहा कि व्यक्ति अपनी चेतना से ब्राह्मण होता है या शूद्र होता है, शरीर से नहीं।
स्वभावतः परंपरा को जब चोट पहुंचाई जाए, तो परंपरा प्रतिशोध लेती है। लेगी ही; क्योंकि न मालूम कितने स्वार्थ गिरेंगे, निहित स्वार्थों को चोट पहुंचेगी-वे बदला भी लेंगे। उन्होंने बदला लिया भी। लेकिन उससे सत्य में कोई फर्क नहीं पड़ता। सत्य प्रतिशोध की अग्नि से गुजरकर और भी निखरकर स्वर्ण हो जाता है।
इस सूत्र में प्रवेश करने के पहले एक बात प्राथमिक रूप से समझ लेनी चाहिए कि धर्म के लिए सबसे बड़ा उपद्रव सदा से एक रहा है, और वह उपद्रव है कि जो आंतरिक है उसे हम बाह्य से तौलते हैं। कारण भी साफ है, क्योंकि मनुष्य का बाह्य हमें दिखाई पड़ता है, अंतस तो दिखाई नहीं पड़ता। अंतस को तौलने का हमारे पास कोई उपाय भी नहीं है। और अंतस मूल्यवान है, बाह्य तो केवल आवरण है, वस्त्रों की भांति।
एक आदमी सफेद वस्त्र पहन सकता है, इससे शुभ्र हृदय का नहीं हो जाता।
एक आदमी काले वस्र पहने हो, इससे ही काले हृदय का नहीं हो जाता। हृदय का वस्त्रों से क्या लेना-देना? वस्त्र हृदय को नहीं बदल सकते। यद्यपि उलटी बात हो सकती है कि हृदय अगर शुभ्र हो तो काला वस्त्र प्रीतिकर न लगे, और

आदमी काला वस्त्र न पहनना चाहे। लेकिन, सिर्फ काला वस्त्र पहन लेने से किसी का हृदय काला नहीं हो जाता। यह हो सकता है कि हृदय काला हो और आदमी सफेद वस्त्र पहनकर उसे छिपा लेना चाहे। बहुत लोग यह करते हैं। हृदय जितना काला हो, उतना सफेद आवरण में, सफेद वस्त्रों में छिपा लेना जरूरी है। वस्त्र खादी के हों तो और भी अच्छा है। तो भीतर वह जो काला है, वह छिप जाता है।
वस्त्रों से भीतर को पहचानने का कोई उपाय नहीं है। भीतर की क्रांति
तो वस्त्रों तक आ जाती है, लेकिन वस्त्रों का परिवर्तन भीतर तक नहीं जाता। लेकिन मनुष्य की कठिनाई है कि हमें बाहर से आदमी दिखाई पड़ता है, भीतर पहुंचने का कोई उपाय भी तो नहीं है। और, धर्म की घटना घटती है भीतर से, और हम देख पाते हैं केवल व्यवहार--अंतरात्मा नहीं। इसी कारण पूरे धर्म की परंपराएं रोगग्रस्त हो जाती हैं।
महावीर नग्न हुए; नग्न होकर परम ज्ञान को उपलब्ध हो गए, ऐसा नहीं। लेकिन परम ज्ञान जैसा उनके जीवन में घटा, वे इतने निर्दोष हो गए कि नग्नता आ गई। नग्नता पीछे आई; निर्दोषता पहले घटी। निर्दोषता को हम नहीं देख सकते, लेकिन उनका बच्चे की तरह नग्न खड़े हो जाना हमें दिखाई पड़ा। हममें से बहुत से लोगों को भी उन्होंने प्रभावित किया। उनके जीवन की सुगंध ने, उनका प्रकाश हमें छुआ। हमारे हृदय की वीणा पर कुछ अनुगूंज हुई; कोई गीत हमारे भीतर भी जगा, कोई प्रतिध्वनि हम में भी गूंजी। हम जो कि बिल्कुल जड़ हैं, वे भी थोड़े हिले। लेकिन हमें महावीर की निर्दोषता नहीं दिखाई पड़ी, नग्नता दिखाई पड़ी। तो हमने सोचाः हम भी नग्न खड़े हो जाएं तो महावीर जैसा ज्ञान हमें भी उपलब्ध हो जाएगा। बात बिल्कुल उलटी हो गई।
हम नग्न खड़े हो सकते हैं, और नग्न खड़े होने का अभ्यास कठिन बात नहीं है। एकाध, दो दिन अड़चन होगी। जब सभी को जाहिर हो जाएगा कि आप नग्न रहते हैं तो बात समाप्त हो जाएगी। दो-चार दिन के बाद नग्नता वैसे ही सहज हो जाएगी, जैसे अभी वस्त्र हैं।
पश्चिम में बहुत से न्यूड-क्लब हैं। जो लोग उन नग्न क्लबों के सदस्य बनते हैं, उनको एक-दो दिन अड़चन होती है। सच तो यह है कि सिर्फ पहले दिन ही अड़चन होती है, दूसरे दिन से तो वे भूल ही जाते हैं। तीसरे दिन पता ही नहीं रहता कि कोई नग्न भी है, क्योंकि सभी नग्न हैं।
मेरे एक मित्र एक नग्न क्लब के सदस्य थे अमरीका में। उन्होंने मुझे बताया कि हम भूल ही गए थे कि कोई नग्न है। हमें याद तो तब आया, जब एक दिन एक कपड़े पहने हुए आदमी भीतर आ गया। जहां पांच सौ लोग नग्न थे, वहां एक आदमी के कपड़े पहने हुए भीतर आने से तत्काल हमें पता चला कि अरे, हम नग्न हैं। अन्यथा नग्नता का हमें कोई पता नहीं था।
मन अभ्यस्त हो जाता है। लेकिन नग्न-क्लबों में जो बैठे हैं, वे महावीर नहीं हो जाएंगे। नग्न क्लब की सदस्यता से कोई महावीर नहीं हो जाता।
तो यहां हिंदुस्तान में जैन मुनि हैं, जो नग्न हैं। वे नग्न होने से महावीर नहीं हो जाएंगे। महावीर को मरे हुए पच्चीस सौ साल हो गए। इस बीच बहुत लोग उनके पीछे नग्न हुए, एक में भी महावीर की चमक नहीं आई। कहीं कुछ भूल हो गई। जो घटना भीतर से बाहर की तरफ घटी थी, जो झरना सदा भीतर से बाहर की तरफ बहता है, हमने उसे बाहर से भीतर की तरफ ले जाना चाहा। फूल निकलते हैं पौधे में; वे भीतर से आते हैं, फिर खिलते हैं। हम जाकर बाजार से फूल ले आएं और पौधे की डाल पर चिपका दें, शायद किसी अजनबी को धोखा भी हो जाए, और जो नहीं जानता है फूल का अंतर-जीवन, वह शायद चमत्कृत भी हो; कहे, "कैसा सुंदर फूल है!" लेकिन माली को धोखा नहीं दिया जा सकता। और, साधारण आदमी को भी ज्यादा देर धोखा नहीं दिया जा सकता; क्योंकि बाहर से चिपकाया फूल अलग ही मुरझाया हुआ, लटका हुआ होगा। भीतर से आते हुए फूल में जो जीवन है, जो प्रवाह है, जो गति है, वह बाहर से लटकाए हुए फूल में नहीं हो सकती।
तो महावीर की नग्नता का फूल तो भीतर से आता है, फिर महावीर के पीछे चलने वाला नग्नता को ऊपर से आरोपित कर लेता है और सोचता है कि जब बाहर हम महावीर जैसे हो गए तो भीतर भी महावीर जैसे हो जाएंगे। यह गणित बिल्कुल ठीक दिखाई पड़ता है, और बिल्कुल गलत है।

यह सभी के साथ होगा, सभी परंपराओं में होगा। महावीर फूंक-फूंक कर कदम रखते हैं, कोई हिंसा न हो जाए उनके जीवन में यह उनको चारों तरफ से घेरे हवा है कि कोई हिंसा न हो जाए; किसी को दुख, किसी को पीड़ा, किसी को कष्ट न हो जाए लेकिन, इसका कारण आंतरिक है। महावीर ने जिस दिन जाना कि "मैं कौन हूं," उसी दिन उन्हें ज्ञात हुआ कि सभी के भीतर ऐसा ही चैतन्य विराजमान है, और किसी को भी चोट पहुंचाना अतंतः अपने को ही चोट पहुंचाना है।
तो महावीर की अहिंसा उनके ज्ञान की छाया है। फिर उनके पीछे जैनों का समूह है, वह भी अहिंसक होने की कोशिश करता है। उसकी अहिंसा ज्ञान की छाया नहीं है। वह उलटी कोशिश में लगा है। वह सोचता है, जब मैं अहिंसक हो जाऊंगा तो मुझे ज्ञान उपलब्ध होगा। महावीर का आचरण आता है अंतरात्मा की क्रांति से, जैन का आचरण आता है, आचरण से, और सोचता है कि पीछे अंतरात्मा की क्रांति होगी
हम करीब-करीब बिल्कुल पागलपन का काम कर रहे हैं, जो असंभव है। ईंधन लगाते हैं हम भट्टी में, आग जलती है। आग पीछे आती है, इ॰धन पहले लगाना पड़ता है। हम आग को पहले रख कर फिर पीछे ईंधन को लाने की कोशिश में लगे हैं। वह होगा नहीं, लेकिन होता हुआ दिखता है। धोखा हो जाता है। आदमी आचरण को चिपका लेता है। तब खुद को तो धोखा नहीं होता, खुद तो वह जैसा था वैसा ही होता है, लेकिन दूसरों को धोखा हो जाता है। पूजा, सम्मान, सत्कार मिल जाता है। बाहर इंगित बड़ी दिक्कतें खड़ी कर देते हैं। दुनिया भर के धार्मिक लोगों के अगर वस्त्र अलग कर लिए जाएं धार्मिकता के, तो भीतर अधार्मिक आदमी बैठा हुआ है। लेकिन इशारे में सब छिप गया है और इशारे का अर्थ हम लगा रहे हैं बाहर से।
मैंने सुना है, मध्य युग में ऐसा हुआ कि रोम के पोप के पास कुछ लोगों
ने, ईसाइयों ने अत्यंत गहरा निवेदन किया, खुशामद की, यहूदियों की बड़ी निंदा की और कहा रोम में, जो कि ईसाइयों का गढ़ है, वहां तो एक भी यहूदी का रहना ठीक नहीं है। रोम से यहूदी निकाल बाहर कर दिए जाएं।
पोप, आदमी भला था; लेकिन भले आदमी भी पद पर होकर बड़ी मुश्किल में पड़ जाते हैं। पद किसी को भी बुरा कर सकता है। और, अगर पद पर रहने की थोड़ी सी भी आकांक्षा हो, तो फिर बुरे के साथ समझौता जरूरी हो जाता है।
आदमी भला था, लेकिन पद पर रहने की आकांक्षा। वह उसे लगा कि यह बात तो ज्यादती की है, लेकिन अगर ईसाई धनपति सब नाराज हो जाएं तो कठिनाई होगी। तो उसने कहा, अच्छा! पर उसने कहा एक तरकीब--हम यहूदियों को अलग कर देंगे, लेकिन पहले एक अवसर देना जरूरी है! तो उसने ये अवसर दिया कि यहूदियों में जो भी उनका प्रधान हो जो भी उनका नेतृत्व करे, वह आकर मुझ से विवाद करे। पूरा रोम इकट्ठा होगा। और अगर विवाद में वह मुझसे जीत जाए तो यहूदी रह सकते हैं रोम में, अगर वह हार जाए तो यहूदियों को रोम छोड़ना पड़ेगा। कम से कम इतना न्याययुक्त तो मालूम पड़ेगा कि हार गए। इसलिए रोम छोड़ना पड़ा। यहूदी बड़े बेचैन हुए। उनके नेता, उनके गुरु, उनके पुरोहित इकट्ठे हुए सिनागाग में, और उन्होंने कहा कि हम तो बड़ी मुश्किल में पड़ गए। और सिनागॉग का जो प्रधान पुरोहित था, उसने कहा कि इस विवाद में तो हार निश्चित है, क्योंकि निर्णायक भी पोप है। विवाद भी वही करेगा एक तरफ से, और निर्णायक भी वही है कि कौन जीता कौन हारा! हमारे जीतने का कोई उपाय नहीं है। यह चाल है।
और प्रधान पुरोहित ने कहा कि मैं विवाद में जाने को राजी नहीं; क्योंकि इसका कोई अर्थ ही नहीं है। और अगर मैं हार गया, जो कि निश्चित है, तो मेरे मन में सदा के लिए एक पाप का भाव रह जाएगा कि मेरे हार जाने के कारण सारे यहूदियों को रोम छोड़ना पड़ा। इसलिए मैं नहीं जाता। हम बिना हारे रोम छोड़ दें, वह उचित है।
लेकिन इतनी जल्दी छोड़ने को यहूदी राजी न थे; तो पुरोहितों से पूछा, लेकिन कोई राजी न हुआ। सिनागॉग में जो आदमी बुहारी लगाता था, वह बड़ी देर से सुन रहा था, सफाई भी कर रहा था। उसने कहाः अच्छा तो मैं चला जाऊंगा! लोगों ने कहा, तू पागल है, तू समझता क्या है? तू सिर्फ बुहारी लगाता रहा है। उसने

कहा, थोड़ा-बहुत जो भी समझ गया हूं जब कोई जाने को राजी ही नहीं है, तो किसी का जाना जरूरी है--तो मैं जाता हूं।
कोई उपाय न देख कर बुहारी लगाने वाले उस बूढ़े को यहूदी विवाद में भेजने के लिए राजी हो गए। सारे रोम के यहूदी और ईसाई बीच चौक में रोम के इकट्ठे हुए। पोप भी थोड़ा चिंतित हुआ यह देख कर कि एक बुहारी लगाने वाला बूढ़ा यहूदी विवाद करने आया है। लेकिन कोई उपाय नहीं था, क्योंकि यहूदियों ने उसे अपना नेता चुना था। पोप ने विवाद शुरु किया उसने आकाश की तरफ हाथ उठाकर यहूदी को आकाश दिखाया। जब पोप ने आकाश की तरफ इस तरह हाथ करके दिखाया तो यहूदी ने अपना हाथ जमीन की तरफ करके दिखाया। पोप बड़ा प्रसन्न हुआ कि जब का आदमी है, जभी तो चुना होगा इसको। फिर पोप ने एक अंगुली ठीक उस यहूदी के सामने कर दी। उस यहूदी ने तीन अंगुलियां पोप के सिर के सामने कर दी।
पोप को पसीना आ गया कि यह आदमी तो जीत जाएगा! कोई उपाय न देख कर पोप ने अपने खीसे से एक सेव निकाला और उस सेव को यहूदी के सामने किया। उसने भी झट अपनी कमर में बंधे हुए एक बैग में से एक रोटी निकाली और पोप के सामने कर दी।
पोप ने कहा कि दिस मैन इ.ज डिक्लेयर्ड विक्टोरियस एण्ड ज्यू.ज कैन रिमेन इन रोम--यह आदमी जीत गया। यहूदी रह सकते हैं रोम में।
सारे ईसाई पादरी चकित हुए। वो पास आए। जैसे ही यहूदियों का झुंड चला गया अपने नेता को लेकर, उन्होंने पोप से पूछाः इतनी जल्दी लेन-देन हुआ आप दोनों के बीच, और इतने चमत्कारी ढंग से कि हम तो कुछ समझ ही नहीं पाए कि हो क्या रहा है! और वह जीत भी गया! मामला क्या था, हमें समाझाइए।
पोप ने कहा कि मैंने उस बूढ़े को इशारा किया कि सारे जगत में एक ही परमात्मा का राज्य है। यहूदी बड़ा होशियार था--ही वा.ज ए मास्टर ऑफ डिबेट्स। उसने कहाः और नीचे शैतान का भी राज्य है, जमीन के नीचे पाताल। उसको मत भूल जाओ।
बात सच्ची थी। मैंने उसके सामने फिर भी कहा, लेकिन परमात्मा एक ही है,
दो कैसे हो सकता है? तो मैंने एक अंगुली उसके सामने की। उसने तीन अंगुली मेरे मुंह के सामने करके मुझको ही हरा दिया। ट्रिनिटि--तीन का सिद्धांतः कि परमात्मा तीन है, एक नहीं है।
ईसाई मानते हैं कि परमात्मा तीन है, जैसा कि हिंदु मानते हैं त्रिमूर्ती। ईसाई मानते हैं, परमात्मा, होली घोस्ट और उसका पुत्र।
तो कोई उपाय ही नहीं था। मेरी ही चीज मेरे ही सिर पर मार दी उसने तीन बता कर। तो मैंने सोचा कि सिद्धांतों में इसको उलझाना मुश्किल है। कोई और सरल-सा उपाय निकालूं, शायद उसमें हार जाए। तो मैंने अपने खीसे से एक सेव निकाला, कि कुछ नासमझ कहते हैं कि जमीन गोल है सेव की तरह। उस समय विज्ञान की नई खोजें चल रही थीं; और विज्ञान सिद्ध कर रहा था कि जमीन वर्तुलाकार है, चपटी नहीं।
यहूदी भी जब का था; रोटी के साथ लेकर आया था। उसने रोटी दिखा दी; कहा कि कोई कुछ भी कहे, लेकिन जैसा बाइबिल में कहा है किजमीन रोटी की तरह सपाट और चपटी है। हारने के सिवा कोई उपाय नही था।
सिनागॉग भागा हुआ उस यहूदी के पास पहुंचा। उन्होंने उस बुहारी लगाने वाले से कहा कि तूने हद कर दी! क्या गजब का आदमी है! हुआ क्या? उसने कहाः एवरीथिंग वा.ज जस्ट नॉनसेंस। दैट मैन इ.ज मैड। और अगर चौथा सवाल पूछता तो मैं उसको झपट्टा मार देता। बहुत गुस्सा मुझे आ रहा था।
फिर भी हुआ क्या? तू जीत तो गया!
उसने कहा कि वह तो मेरी समझ में भी नहीं आता। जब पोप ने ऐसा हाथ किया
तो मैने समझा कि वह कह रहा है कि निकलो यहूदियो रोम से। मैंने कहा कि दुनिया की कोई ताकत हमें इस जगह से नहीं हटा सकती। हम यहीं रहेंगे। उस आदमी ने मेरी आंख के सामने एक अंगुली की; और कहा कि ड्राप डेड--मर जाओ। तो मैंने तीन अंगुली की और कहा कि यू ड्राप डेड थ्राइस। और तब मैंने देखा--देन आई सा दैट ही इ.ज ब्रिंगिंग आउट हिज लंच, सो आई ब्राट आउट माइन--वह अपना भोजन निकाल रहा है। तो मैं भी अपना भोजन तो साथ रोज रखता ही हूं। गरीब आदमी

हूं, रोज दोपहर घर जाना आसान नहीं होता। जब तुम अपना भोजन निकाल रहे हो, हम भी निकालते हैं। और वह जो चौथा उसने नहीं पूछा, सो ठीक ही किया।
बाहरी प्रतीक कुछ भी खबर नहीं देते, और उनसे भीतर का अंदाज आप जो लगाते हैं, वह अनुमान है। लेकिन हम यही कर रहे हैं। एक आदमी मंदिर जा रहा है, तो हम समझते हैं, धार्मिक है। मंदिर जाना बाहरी प्रतीक है। पता नहीं, वह किसलिए जा रहा है, किस कारण से जा रहा है? कि मंदिर में स्त्रियां इकट्ठी हैं, इसलिए जा रहा है, कि मंदिर में गांव के सब लोग, भले लोग इकट्ठे हैं, वे देख लें कि मैं भी भला आदमी हूं, इसीलिए जा रहा है। वह मंदिर किसलिए जा रहा है, इतने से कुछ पता नहीं चलता कि वह धार्मिक है।
एक आदमी उपवास कर रहा है, पूजा-प्रार्थना कर रहा है, इससे कुछ पता नहीं चलता कि वह धार्मिक है। ये तो बाहर के प्रतीक हैं; हम अनुमान लगाते हैं। और एक आदमी चुप बैठा है; मंदिर नहीं जा रहा है, तो हम सोचते हैं, अधार्मिक है। लेकिन कुछ आवश्यक नहीं, जो मंदिर जा रहा है, वह धार्मिक न हो। जिंदगी जटिल है। और जो एकांत में चुप बैठा हो, वह धार्मिक हो। कहना मुश्किल है। लेकिन, हम बाहर से देखते हैं और इसलिए दुनिया में पाखंड फैलता चला जाता है, हिपोक्रेसी फैलती जाती है। हमारे बीच जो चालाक हैं, वे बाहर का इंतजाम कर लेते हैं और हमारे बीच जो चालाक नहीं हैं, वे उलझ जाते हैं, फंस जाते हैं। जो अपराधी फंस जाते हैं, वे सब छोटे अपराधी हैं। बड़े अपराधी फंस नहीं पाते। बड़े अपराधी तो अधिकार में, पद में प्रतिष्ठा में होते हैं; उन्हें फंसाना मुश्किल है। वे काफी होशियार हैं। वे बाहर का इंतजाम कर रखते हैं। ऐसा कहा जाता है, मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि मंदिर के पुरोहितों को कभी भरोसा नहीं होता कि "ईश्वर है।" यह उनका धंधा होता है-यह प्रोफेशनल सीक्रेट है। ईश्वर में उन्हें कभी भरोसा नहीं होता, हो भी नहीं सकता। मंदिर के पुरोहित को क्या खाक भरोसा होगा, क्योंकि जो नौकरी कर रहा है पूजा के लिए, नौकरी कर रहा है प्रार्थना के लिए; प्रार्थना जैसे निजी संबंध को जिसने व्यवसाय बना लिया है, उसे परमात्मा का कोई अनुभव नहीं हो सकता।
मंदिर का पुरोहित जानता है कि भगवान वगैरह कुछ भी नहीं है, लेकिन निरंतर घोषणा करता रहता है अपने सारे आचरण से, कि है, क्योंकि उसका सारा जीवन, सारा व्यवसाय, सारा धंधा भगवान के होने पर निर्भर है। इसलिए जब कोई कहता है कि भगवान नहीं है, तो पुरोहित की नाराजगी यह नहीं है कि आप असत्य बोल रहे हैं, पुरोहित की नाराजगी यह है कि सत्य बोल कर आप उसका पूरा धंधा खराब किए दे रहे हैं। पुरोहितों को कभी भरोसा नहीं होता। हो नहीं सकता; लेकिन पाखंड का जाल उनके चारों तरफ होता है, जिससे दूसरों को भरोसा मिलता रहता है कि वे भरोसा करते हैं।
महावीर का यह सूत्र सारे पाखंड की जड़ काट देने का सूत्र है। महावीर कहते हैंः "सिर मुंडा लेने मात्र से कोई श्रमण नहीं होता।"
जैसे "ब्राह्मण" शब्द बहुमूल्य है, वैसे ही महावीर के लिए "श्रमण" शब्द महत्वपूर्ण है। और भारत में दो संस्कृतियों की धारा है। एक ब्राह्मण संस्कृति की धारा है और एक श्रमण संस्कृति की धारा है। श्रमण संस्कृति में बुद्ध और महावीर आते हैं और शेष सारे विचारक ब्राह्मण संस्कृति में आते हैं। ब्राह्मण और श्रमण संस्कृति का मौलिक भेद समझ लेना चाहिए। ब्राह्मण समर्पण की संस्कृति है, सरेंडर की। ब्राह्मण संस्कृति का मौलिक आधार है कि जब तक कोई व्यक्ति अपने अहंकार को परमात्मा के चरणों में न छोड़ दे, तब तक ज्ञान की उपलब्धि नहीं हो सकती। ब्रह्म उपलब्ध होगा, जब अहंकार समर्पित हो जाएगा।
तो समर्पण, श्रद्धा ब्राह्मण संस्कृति का सूत्र है। श्रमण संस्कृति बिल्कुल भिन्न है। श्रमण शब्द बना है श्रम से। श्रमण संस्कृति का आग्रह है कि समर्पण से परमात्मा नहीं मिलेगा; श्रम से मिलेगा--प्रयास से, साधना से। सिर्फ असहाय हूं और पतितपावन, मुझे बचाओ, इन प्रार्थनाओं से नहीं मिलेगा। जीवन को बदलना होगा। मेहनत करनी होगी। एक-एक इंच जीवन को रूपांतरित करना होगा। कोई प्रार्थना सफल नहीं हो सकती, साधना सफल होगी।

अहंकार मिटाना है। लेकिन श्रमण धारा कहती है कि अहंकार समर्पण करने
से नहीं मिट सकता। क्योंकि पहली तो बात यह है कि जो है, उसी का समर्पण किया जा सकता है; जो है ही नहीं, उसका समर्पण कैसे होगा? श्रमण धारा कहती है कि "अहंकार नहीं है", इस सत्य को जानने की साधना करनी पड़ेगी। समर्पण से क्या होगा? छोड़ेंगे कहां जो है ही नहीं, होता कुछ, तो छोड़ देते।
और फिर श्रमण संस्कृति कहती है कि अगर दूसरे के चरणों में छोड़ेंगे तो अहंकार यहां से हटा, लेकिन वहां मौजूद होगा जहां छोड़ेंगे। और इसलिए भक्त का अहंकार अपने भीतर से हट कर भगवान के साथ जुड़ जाता है। भक्त को आप गाली दें, वह नाराज नहीं होगा; उसके भगवान को गाली दें, वह लड़ने को तैयार हो जाएगा।
तो अहंकार शिफ्ट हुआ। कल तक अपने साथ था कि मैं महान हूं। अब मैं महान हूं, यह छोड़ दिया, लेकिन मेरा भगवान, मेरा कृष्ण, मेरा राम, मेरा जीसस, मेरा महावीर महान है। अहंकार दूसरी तरफ हट गया, लेकिन सूक्ष्म रूप से अब भी आपका ही अहंकार है; क्योंकि न वहां राम है, न वहां कृष्ण है, न महावीर है उसको झेलने को। आप अपने ही हाथ में संभाले हुए हैं। भगवान भी आपका, अहंकार भी आपका। वे दोनों आपके भीतर ही छिपे हैं।
श्रमण संस्कृति है--अहंकार मिटाना है, समर्पण करने का कोई उपाय नहीं है। और मिटाने का अर्थ है कि इतना श्रम करना है कि स्वयं दिखाई पड़ जाए कि अहंकार है ही नहीं। वह श्रम से ही तिरोहित हो जाए। जैसे सुबह की ओस की बूंद सूरज के उगने पर तिरोहित हो जाती है, ऐसे ही जीवन की धारा जब संगृहित होती है, इंटिग्रेट होती है, समग्र होती है, तो अहंकार का कुहासा समर्पित नहीं होता है, विसर्जित हो जाता है। श्रमण संस्कृति "स्वयं" पर भरोसा रखती है; ब्राह्मण संस्कृति "ब्रह्म" पर भरोसा रखती है। श्रमण संस्कृति "व्यक्तिवादी" है; ब्राह्मण संस्कृति "अद्वैतवादी" है। ब्राह्मण संस्कृति में एक ब्रह्म है, और श्रमण संस्कृति में उतने ही ब्रह्म हैं जितनी चेतनाएं हैं। और हर व्यक्ति ब्रह्म होने का अधिकारी है। ये दो धाराएं हैं।
महावीर कहते हैंः "सिर मुंडा लेने मात्र से कोई श्रमण नहीं होता।"
जैन साधु हो जाते हैं लोग। उनका सिर मुंडा दिया, वस्त्र बदल दिए, हाथ में उपकरण दे दिए साधु के; साधु हो गए! कल तक यह आदमी साधु नहीं था; एक क्षण वस्त्र बदल लेने से, सिर मुंडा लेने से एक क्षण में साधु हो गया! कल तक इसके चरण कोई छूता नहीं, शायद यह चरण छूता तो लोग अपने चरण को हटा लेते; अब लोग इसके चरणों पर सिर रखते हैं! इसलिए महावीर कहते हैंः "सिर मुंडा लेने मात्र से कोई श्रमण नहीं हो जाता।"
बाह्य आचरण पूरा भी कर लिया जाए, तो भी भीतर के श्रमण का जन्म नहीं होता। हां, भीतर के श्रमण का जन्म हो, तो बाहर का आचरण भी पीछे आ सकता है, लेकिन बड़े फर्क हैं। बुनियादी फर्क यह है कि अगर कोई भीतर से श्रमण की स्थिति को उपलब्ध हो जाए, तो बाहर का आचरण बदलेगा जरूर, लेकिन प्रत्येक व्यक्ति का अलग बदलेगा। इसे जरा समझ लें, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति के जीवन का ढंग भिन्न है, बेजोड़ है। तो महावीर नग्न खड़े हो जाएंगे। बुद्ध भी श्रमण को उपलब्ध हुए, लेकिन नग्न खड़े नहीं हुए। महावीर नग्न खड़े हुए। यह उनका निजी ढंग है। जो घटना घटी है, उस घटना को अभिव्यक्त करने का उनका निजी ढंग है। बुद्ध को यह निजी ढंग नहीं जमा; यह ख्याल में भी नहीं आया। जब कोई व्यक्ति भीतर की क्रांति को उपलब्ध होता है तो बाहर को व्यवस्था नहीं देता; बाहर जैसा भी घटित होने लगता है उस चेतना के प्रकाश में, वैसा घटित होने देता है। तो दुनिया के सारे ज्ञानी एक जैसा व्यवहार करते नहीं दिखाई पड़ते।
यह बात बड़े मजे की और समझ लेने जैसी बात है कि अगर ज्ञान भीतर हो, तो दो ज्ञानियों का व्यवहार एक जैसा नहीं होगा, लेकिन अगर आचरण थोपा जाए तो हजारों ज्ञानियों का व्यवहार एक जैसा होगा। मगर वे ज्ञानी नहीं हैं। पांच सौ जैन साधुओं को खड़ा कर दें, अगर वे तेरापंथी हैं तो सब मुंह पर पट्टी बांधे हुए खड़े हैं; जैसा कि सैनिक या सिपाही खड़े हों। सैनिक और सिपाही का एक जैसा, एक यूनिफार्म में खड़े हो जाना समझ में आता है; एक ढंग से

खड़े हो जाना समझ में आता है; उसका कारण है, क्योंकि सैनिक के व्यक्तित्व को मिटाने की पूरी कोशिश की जाती है; ताकि उसमें कोई आत्मा न रह जाए; आत्मा रहे, तो युद्ध में वह कुशल नहीं हो पाएगा। वह जड़ मशीन की तरह हो जाए, उसका सारा काम यांत्रिक हो जाए।
तो आप पांच सौ सैनिकों को खड़ा करके देखें, आपको पांच सौ लोग दिखाई पड़ेंगे, लेकिन व्यक्ति दिखाई नहीं पड़ेंगे। सब चेहरे एक जैसे मालूम होंगे। एक सा कपड़ा, एक सी बंदूक, एक सी टोपी, एक से बाल कटे, सब एक जैसे मालूम होंगे। व्यक्तित्व खो जाता है, भीड़ रह जाती है। इसलिए, मिलिटरी में हम नंबर दे देते हैं, नाम हटा देते हैं, क्योंकि नाम से थोड़ा व्यक्तित्व का पता चलता है। अगर एक आदमी मर जाता है, तो तख्ती पर खबर लग जाती है कि ग्यारह नंबर गिर गया। ग्यारह नंबर गिरने से कुछ नंबर भी पता नहीं चलता, कौन गिर गया? वह कवि था, वैज्ञानिक था, साधु था, असाधु था; उसके बच्चे हैं, पत्नी है? ... कुछ पता नहीं चलता। ग्यारह नंबर का न कोई परिवार होता है, न कोई बच्चे होते हैं, न पत्नी होती है। ग्यारह नंबर के क्या बच्चे होंगे? ग्यारह नंबर नंबर गिर जाता है, तख्ती पर लोग पढ़ लेते हैं। बात खतम हो गई। ग्यारह नंबर की जगह दूसरा आदमी ग्यारह नंबर हो जाता है।
ध्यान रहे, नंबर रिप्लेस किए जा सकते हैं, व्यक्ति रिप्लेस नहीं किए
जा सकते। कोई उपाय नहीं है। आपमें से एक व्यक्ति हट जाए, कोई उपाय नहीं है जगत में कि उसकी जगह दूसरा व्यक्ति रखा जा सके। क्योंकि उसकी पत्नी कहेगी कि कितना ही दूसरा व्यक्ति प्यारा हो, मेरा पति नहीं है। उसके बेटे कहेंगे कि कितना ही अच्छा आदमी हो, लेकिन मेरा पिता नहीं है; उसके मित्र कहेंगे कि सब ठीक है, लेकिन वह मित्रता कहां? उसकी मां कहेगी कि सब ठीक है, लेकिन मेरा बेटा जिसे मैंने जन्मा था... !
व्यक्ति को स्थान पर रखा नहीं जा सकता, बदला नहीं जा सकता; नंबर बदले
जा सकते हैं। एक फिएट कार की जगह दूसरी फिएट कार रखें, तीसरी रखें, कोई फर्क नहीं पड़ता। यंत्र बदले जा सकते हैं। तो मिलिटरी पूरी कोशिश करती है कि व्यक्ति मिट जाए और यंत्र रह जाए। और उस व्यक्ति को पूरी ऐसी चेष्टा करवाई जाती है कि धीरे-धीरे आज्ञा उसके लिए मेकेनिकल हो जाए, सोच-विचार समाप्त हो जाए। तो इसलिए उसको लेफ्ट-राइट करवाते रहते हैं वर्षों तक। लेफ्ट-राइट की कोई जरूरत नहीं है कि बाएं घूमो, दाएं घूमो, आगे चलो, पीछे जाओ--उसको करवाते रहते हैं। नया-नया सैनिक भी हैरान होता है कि इतना यह करवाने से क्या मतलब है, और वर्षों तक! लेकिन इसका उपयोग है। धीरे-धीरे "बाएं घूमो" यह सुनते ही उसे सोचना नहीं पड़ता, वह बाएं घूमता है। सोचने की कोई जरूरत नहीं रह जाती। जिस दिन बिना सोचे शरीर बाएं-दाएं घूमने लगता है, उस दिन यह आदमी अब सैनिक हो गया; इसकी आत्मा खो गई। अब इससे कहो, गोली चलाओ, तो इसका हाथ सीधा बंदूक के घोड़े पर जाएगा; गोली चलेगी। अब वह सोचेगा नहीं कि मैं किसको मार रहा हूं? क्यों मार रहा हूं? मारने का क्या अर्थ है, क्या प्रयोजन है? न, अब वह यंत्रवत हो गया।
तो सैनिक के लिए तो पोंछ मिटा देना तो शायद उचित हो, लेकिन साधु के लिए पोंछ कर मिटा देना बिल्कुल गलत है। लेकिन पांच सौ तेरापंथी साधु खड़े कर दें, कि स्थानकवासी साधु खड़े कर दें, कि दिगंबर साधु खड़े कर दें, वे सब बिल्कुल एक जैसे लकीर के फकीर होकर चल रहे हैं। इससे लगता है कि भीतर कोई अपनी चेतना नहीं है जो मार्ग खोज सके। शास्त्र ने जो मार्ग दिया है उसको नाप-नाप कर चल रहे हैं, अपना कोई बोध नहीं है जो आचरण बन सके। आचरण शास्त्र से पकड़ा है; उसको थोपते चले जा रहे हैं। इससे एक बड़ी अशोभन घटना घटती है कि आत्मा खो जाती है साधु की भी। औपचारिक व्यवस्था रह जाती है, आत्मा खो जाती है।
महावीर कहते हैं कि यह होगा ही, अगर कोई बाह्य को ज्यादा मूल्य देगा आंतरिक से, और पहले बाह्य को बदलने की कोशिश करेगा, और सोचेगा, पीछे भीतर को बदल लूंगा।
सिर मुंडा लेने से कोई श्रमण नहीं होता। हालांकि यह हो सकता है कि जो श्रमण हो गया है, वह सिर मुंडा ले। यह दूसरी बात हो सकती है, जरूरी नहीं है

कि हो। और ध्यान रखना कि जो सिर न मुंडाए तो ऐसा मत समझ लेना कि वह श्रमण नहीं हुआ। लेकिन यह घटना भी घट सकती है कि कोई श्रमण होकर सिर मुंडा ले। बालों का एक सौंदर्य है। बालों का एक आकर्षण है। बाल बहुत कामुक हैं, खींच सकते हैं; इसलिए हम सिर मुंडाने में भयभीत होते हैं। कोई आपका सिर मुंडा दे तो आप घर से निकलना पसंद नहीं करेंगे कि लोग क्या कहेंगे! हम तो तब सिर मुंडाते हैं आदमी का, जब वह मर जाता है। तब उसका सिर सफा कर देते हैं, न अब कोई देखने की दिक्कत है, न कोई डर है, न अब किसी को आकर्षित करना है।
बालों का एक कामुक आकर्षण है। इसलिए पुरुष तो सिर मुंडा भी ले, स्त्री सिर मुंडाने को बिल्कुल राजी नहीं हो सकतीं। और स्त्री सिर मुंडी हुई बिल्कुल पुरुष जैसी मालूम होने लगती है; स्त्री जैसी मालूम नहीं होती। स्त्री का बहुत सा सौंदर्य उसके बालों में छिपा है।
तो महावीर कहते हैं, श्रमण होकर कोई सिर मुंडा सकता है, क्योंकि अब उसे कोई प्रयोजन नहीं रहा दूसरे को आकर्षित करने में। अब अपनी सुविधा की बात है। और श्रमण को बाल दिक्कत दे सकते हैं। महावीर कहते हैं कि बाल अगर रखना हो तो दूसरों पर बालों को कटवाने के लिए निर्भर होना पड़ता है। अकारण निर्भरता बढ़ती है। या साथ में साधन रखो, रेजर रखो, उस्तरा रखो कि बालों को साफ करो। अगर न साफ करो तो गंदगी बढ़ती है। अगर बालों को बढ़ने दो तो उनकी सफाई का ध्यान रखना पड़ता है। अगर सफाई न करो तो जुएं पड़ जाएं और दूसरा मल इकट्ठा हो जाए। वह सब कष्टपूर्ण है। तो महावीर कहते हैं कि जो व्यक्ति श्रमण हो गया है, वह हो सकता है कि बालों को साफ कर दे। बालों को साफ कर देना एक गौण घटना है; क्योंकि अब उसे कोई उत्सुकता नहीं है कि उसके शरीर को कोई सुंदर माने। और उसके स्वास्थ्य के लिए हितकर होगा, स्वच्छता में सहायक होगा और व्यर्थ की व्यवस्था उसे नहीं जुटानी पड़ेगी।
महावीर कहते हैं कि साधक को व्यवस्था न जुटानी पड़े, ऐसे जीना चाहिए। कुछ भी उसे ढोना न पड़े। तो बाल अकारण है, लेकिन इससे उलटा सही नहीं है कि आप बाल घुटा लें तो आप श्रमण हो गए। बालों को घुटाने के पीछे और भी कारण हैं। जो लोग महावीर की साधना में उतरेंगे और भीतर की साधना में प्रवेश करेंगे, वे चाहेंगे कि बाल न घोंट ले।
आपको शायद ख्याल में नहीं है, बाल भी अकारण नहीं हैं और कुछ कर रहे हैं। शायद आपको ख्याल हो, कि मनुष्य अतीत में, कोई दस लाख साल पहले, मनुष्य के पूरे शरीर पर बाल थे, क्योंकि पूरे शरीर को रक्षा की जरूरत थी। जैसे- जैसे आदमी की रक्षा की व्यवस्था बदलती गई और शरीर को रक्षा की जरूरत न रही, शरीर से बाल तिरोहित होने लगे। अब सिर्फ उन जगहों पर बाल रह गए हैं, जहां अभी भी रक्षा की जरूरत है। कुछ ग्लैंड्स भीतर छिपे हैं जिनको रक्षा की जरूरत है।
महावीर की साधना का एक हिस्सा है कि भीतर का जो ताप है, भीतर की जो ऊर्जा है, गर्मी है, उस गर्मी को, उस ऊर्जा को, उस अग्नि को काम-केंद्र से उठाकर सहस्रार तक लाना है। बाल उस गर्मी को बिखरने में बाधा देंगे, उस गर्मीं को मस्तिष्क में रोक लेंगे। वह गर्मीं आकाश में तिरोहित हो जानी जाहिए, अन्यथा मस्तिष्क भारी और रुग्ण हो जाएगा। तो सहस्रार के स्थान पर बाल नहीं होने चाहिए ताकि ऊर्जा सीधी आकाश में लीन हो जाए।
ध्यान रहे, शरीर में ऊर्जा पैदा हो रही है। उसको विसर्जित करने के दो उपाय हैं। एक तो संभोग के द्वारा, तो वह निम्नतम केंद्र से जगत में चली जाती है, प्रकृति में चली जाती है, और दूसरा उपाय है सहस्रार के मार्ग से, श्रेष्ठतम केंद्र से।
ये दो छोर हैं। और जैसे विद्युत केवल छोर से ही विसर्जित हो सकती है, ऐसे ही इन दो छोरों से जीवन-ऊर्जा विसर्जित होती है। जो व्यक्ति सहस्रार से अपनी जीवन-ऊर्जा को आकाश में छोड़ने में समर्थ हो जाता है, महावीर उसको ही श्रमण कहते हैं। वह कामवासना से बिल्कुल... जितनी दूर संभव हो सकता है, उतनी दूर चला गया है, और उसकी ऊर्जा ने नई दिशा और नया आयाम ले लिया। यह गुणात्मक अंतर है, इसलिए श्रमण चाहेगा कि बालों को घोट दे।

आप जान कर हैरान होंगे कि जैन मुनि और बौद्ध भिक्षु बाल घोटते रहे हैं
और हिंदू ऋषि-मुनि बाल बढ़ाते रहे हैं, घोटते नहीं रहे हैं। शंकराचार्य ने जरूर हिंदू संन्यासियों के लिए बाल घुटवाने शुरू किए, क्योंकि शंकराचार्य ने अपनी साधना का अधिकतम हिस्सा बौद्धौं से उधार लिया। लेकिन हिंदू ऋषि-मुनि, अगर आप उपनिषदों और वेदों के ऋषि-मुनियों को देखें, तो वे सब दाढ़ी और बालों को पूरी तरह बढ़ाते रहे हैं। उनकी साधना-प्रक्रिया बिल्कुल भिन्न है। उस प्रक्रिया में बाल सहयोगी हो जाते हैं।
जैन साधना में ऊर्जा को विसर्जित करना है। अनंत ब्रह्मांड में ऊर्जा
खो जाए, क्योंकि वह ऊर्जा शरीर की ही है, आत्मा की नहीं है। हिंदू साधना में--विशेषकर पतंजलि की साधना में उस ऊर्जा को विसर्जित नहीं करना है, उस ऊर्जा को सहस्रार पर इकट्ठा करना है। दोनों रास्ते अलग हैं। हिंदू साधना में उस ऊर्जा को इकट्ठा करना है एक खास सीमा तक, और जब वह एक खास सीमा तक इकट्ठी हो जाए तभी परमात्मा को समर्पित करनी है।
तो बाल उस ऊर्जा को रोकने में सहयोगी हैं। हिंदू संन्यासियों का बाल
का घोटना, सिर को मुंडाना शंकराचार्य के बाद प्रारंभ हुआ और गति पकड़ गया लेकिन वह बौद्ध परंपरा से आई हुई धारणा है। साधकों ने जो भी चुना है, उसके पीछे कुछ कारण हैं। और, अगर कारण ख्याल में न हों और अंधों की भांति लोग चलते जाएं, तो उससे कोई लाभ नहीं होता, कभी नुकसान भी हो सकता है।
महावीर और बुद्ध शीर्षासन के पक्ष में नहीं और उन्होंने योगासनों को कोई मूल्य नहीं दिया। पतंजलि, हिंदू योग का मूल आधार जिसने रखा, वह शीर्षासन के बहुत पक्ष में है। जो आदमी शीर्षासन करता है उसके लिए बालों का होना बिल्कुल जरूरी है, नहीं तो खतरा होगा, नुकसान होगा। क्योंकि जब आप शीर्षासन में खड़े होते हैं तो जीवन-धारा पूरी की पूरी सिर की तरफ बहती है। अगर उसको रोकने का कोई उपाय न हो तो शीर्षासन के बाद आप अपने को बिल्कुल निस्सत्व और कमजोर पाएंगे। उसे रोकना चाहिए। इसलिए हिंदू मुनि जटाएं बढ़ाता था, जितनी बड़ी कर सकता था। कभी नहीं कटाता था, उनको बढ़ाते चला जाता था। उनकी वह पगड़ी बना लेता था, और उस पगड़ी पर शीर्षासन करता था। वह पगड़ी सिर और पृथ्वी के बीच अंतराल का काम करती थी, नहीं तो पृथ्वी झटके से ऊर्जा को खींच लेती। और वह झटके से ऊर्जा का खींचना बड़ा खतरनाक हो सकता है। वह शरीर को कई तरह के नुकसान पहुंचा सकता है। कई दफा जिंदगी में बड़ी उलझनें हो जाती हैं। शंकराचार्य ने मुंडा तो कर दिया हिंदू संन्यासियों को, लेकिन शीर्षासन करने से नहीं रोका।
अकारण कुछ भी नहीं है। छोटा सा नियम भी जब ज्ञानियों ने चुना है, तो उसके पीछे उनके अपने कारण हैं। महावीर किसी और प्रक्रिया पर काम कर रहे हैं, तो वे कहते हैं कि यह हो सकता है कि श्रमण होकर कोई सिर मुंडा ले, लेकिन सिर मुंडा लेने से कोई श्रमण नहीं होता। और अच्छा है उन्होंने यह कह दिया। क्योंकि वैज्ञानिक कहते हैं कि चार हजार साल के बाद बच्चे मुंडे ही पैदा होंगे। जैन साधु को बड़ी तकलीफ होगी तब।
आपको पता है, सिर से बाल कम होते जा रहे हैं। जैसे-जैसे आदमी की बुद्धि विकसित होती जाती है, वैसे-वैसे सिर से बाल कम होते जाते हैं। पुरुषों के सिर से बाल ज्यादा गिरते हैं, स्त्रियों के कम गिरते हैं; क्योंकि उन्होंने बुद्धि का उतना उपयोग किया नहीं है। तो वह सबूत है इस बात का कि बुद्धि की प्रक्रिया पर उन्होंने काम नहीं किया; इतनी ऊर्जा उनके सिर में इकट्ठी नहीं होती कि बाल गिर जाएं। इसलिए स्त्रियां गंजी नहीं हो पातीं, पुरुष गंजे हो जाते हैं। और जितनी ज्यादा प्रतिभा का उपयोग किया जाए, उतने ही जल्दी गंजे हो जाते हैं।
वैज्ञानिक कहते हैं, चार हजार साल में आदमी बुद्धि का इतना उपयोग कर रहा होगा कि बच्चा जन्म से ही गंजा पैदा होगा। गंजे होने का डर नहीं रह जाएगा। अच्छा कहा महावीर ने कि सिर मुंडा लेने से कोई श्रमण नहीं होता, नहीं तो चार हजार साल बाद सभी श्रमण पैदा होते।
"और ओम का जाप कर लेने मात्र से कोई ब्राह्मण नहीं होता।"
ब्राह्मण होने से ओम का जाप पैदा होता है। जब कोई व्यक्ति सब भांति समर्पित कर देता है अपने को अनंत शक्ति में, अपने मस्तिष्क को सब भांति

छोड़ देता है "उसके" हाथों में, अपने विचार को, अपनी चिंतना को, अपने मनन को; सभी को "उसके" चरणों में उतार कर रख देता है; वह चरण सही हो या झूठ, यह सवाल नहीं है, उतार कर रख देता है, अपनी तरफ से निर्भार हो जाता है, तब उसके भीतर एक परम ध्वनि गूंजने लगती है। उस ध्वनि का नाम "ओंकार" है। उसके भीतर ओम का सहज आवर्तन होने लगता है, उसे करना नहीं पड़ता।
लेकिन हम तो हमेशा उलटा चलते हैं। हम बैठ कर ओम का जाप करते हैं। ओम का जाप हमारा व्यर्थ है; क्योंकि ओम का जाप भी हम बुद्धि से ही करते हैं; और बुद्धि ही बाधा है। ओम का जाप भी हमारे लिए एक विचार का पुनरावर्तन होगा; और विचार ही तो अवरोध हैं।
महावीर कहते हैं कि ओंकार का जाप करने से कोई ब्राह्मण नहीं होता यद्यपि कोई ब्राह्मण हो जाए तो ओंकार का जाप प्रकट होता है; उसके भीतर ओम की ध्वनि गूंजने लगती है; उसके रोएं-रोएं से ओंकार गूंजने लगता है।
ओंकार मनुष्य के द्वारा पैदा की गई ध्वनि नहीं है, बल्कि प्रकृति की स्वाभाविक ध्वनि-व्यवस्था है। अगर सब शून्य हो जाए जगत में, तो ओंकार का नाद शेष रह जाएगा। वह नाद इस जगत का मौलिक ध्वनि-स्वर है। उसे पैदा नहीं करना होता।
इसलिए ओंकार को हिंदुओं ने "अनाहत" कहा है।
दो तरह के नाद हैं। एक तो "आहत" नाद है। मैं ताली को बजाऊं, तो यह "आहत नाद" है; क्योंकि दो चीजें टकराईं, आहत हुईं। उनके परस्पर चोट से ध्वनि पैदा हुई। ओंकार "अनाहत नाद" है। वह दो चीजों के टकराने से पैदा नहीं होता। जब सब टकराव भीतर बंद हो जाता है, तब जो शेष रह जाता है; जब भीतर बुद्धि की सारी कलह बंद हो जाती है, संघर्ष बंद हो जाता है, सब विचार खो जाते हैं, सब शून्य हो जाता है; उस शून्य में जो ध्वनि अनुभव होने लगती है, वह ध्वनि व्यक्ति नहीं करता, वह ध्वनि ब्रह्मांड का स्वरूप है।
तो महावीर कहते हैंः "ओम का जाप कर लेने से कोई ब्राह्मण नहीं होता।" "निर्जन वन में रहने मात्र से कोई मुनि नहीं होता।"
आप अकेले में जाकर रह सकते हैं, लेकिन आप अकेले नहीं हो सकते। क्योंकि भीड़ तो आपकी खोपड़ी में भरी है, वह आपके साथ चली जाएगी, एक दुकानदार को उठा कर ले जाएं जंगल में। वहां बैठ कर वह दुकान का ही विचार करेगा, ग्राहकों से बातें करेगा, सामान लेगा-देगा, सौदा पटाएगा; वह करेगा क्या!
मुल्ला नसरुद्दीन कपड़ा बेचता था। एक दिन आधी रात में उठा और एकदम से उसने अपनी चादर फाड़ दी। उसकी पत्नी ने पूछाः नसरुद्दीन, यह क्या कर रहे हो? उसने कहाः तू कम से कम दुकान में दखल न दे, ग्राहक कपड़ा खरीदने आया है। वह सपने में कपड़ा फाड़ कर ग्राहक को दे रहा है। सपने में भी ग्राहक! सपने में भी दुकान! सपने में भी वही चलेगा न, जो दिन में चला है!
आप कहां भाग कर जाएंगे अपने से? तो एकांत निर्जन में आप जा सकते हैं, लेकिन आप अकेले नहीं हो सकते। अकेले होने की कला दूसरी है। जो आदमी अकेले होने की कला जान लेता है, वह भीड़ में भी अकेला है। उसके लिए भीड़ में भी एकांत है। महावीर को आप बाजार में ला ही नहीं सकते। इसका मतलब यह नहीं है कि उनको आप बाजार में नहीं निकाल सकते। बिल्कुल निकाल सकते हैं। लेकिन महावीर को बाजार में नहीं लाया जा सकता। बाजार में से भी वह ऐसे ही गुजर जाएंगे, जैसे कि एकांत से गुजर रहे हों। क्योंकि उनके भीतर कोई भीड़ नहीं है।
भीड़ में अकेले होने की कला। और हम तो एक ही कला जानते हैं, अकेले में
भी भीड़ में होने की कला। अकेले भी बैठे हैं, तो भी भीतर कुछ चलता रहता है। निर्जन वन में रहने से कोई मुनि नहीं होता, हालांकि कोई मुनि हो जाए
तो निर्जन उसे उपलब्ध हो जाता है।
"और न कुशा के वस्त्र पहन लेने मात्र से कोई तपस्वी होता है।"
अपने को कष्ट देने से कोई तपस्वी नहीं हो जाता, यद्यपि कोई तपस्वी हो
तो कष्टों को झेलने की क्षमता आ जाती है।
इस फर्क को समझ लें। ये दोनों बातें बड़ी बुनियादी और भिन्न हैं।
एक आदमी अपने को कष्ट दे रहा है; कांटे बिछा कर लेटा हुआ है; आग जला लिया है और उसके पास बैठ कर तप रहा है; धुनी लगा ली है, पसीना-पसीना हो रहा

है; सर्दी है, बर्फ पड़ रही है और वह बाहर खड़ा कंप रहा है; यह आदमी आयोजन करके, इंतजाम करके अपने को कष्ट दे रहा है। इस आदमी के चित्त में कहीं न कहीं रोग है। यह आदमी खुद को कष्ट देने में रस ले रहा है। यह अपने को सताने में प्रसन्न है। यह आदमी बीमार है।
और, इस आदमी में और आप में फर्क नहीं है। आप सुख का आयोजन कर रहे हैं,
यह दुख का आयोजन कर रहा है। यह आपसे उल्टा चला गया आदमी है; पर यह है आप ही जैसा। इंतजाम करना यह भी नहीं छोड़ रहा है। आप चाहते थे सुख मिले, यह चाहता है दुख मिले। यह भी हो सकता है कि सुख पाने की इसने बहुत कोशिश की और नहीं पा सका, तो अब ये अंगूर खट्टे हैं, ऐसा मान कर दुख पाने की कोशिश कर रहा है। इसका अहंकार हार गया; सुख न जुटा पाया। अब इसका अहंकार कम से कम इतना तो जीत ही सकता है कि दुख जुटा सकता है।
यह आदमी अहंकार से जी रहा है और रुग्ण है। बहुत लोग हैं जो अपने को कष्ट देने में रस पाते हैं; और वे अपने आस-पास इस तरह के लोग इकट्ठे कर लेते हैं जो उन्हें कष्ट दें। और फिर रोते हैं और चिल्लाते हैं कि यह आदमी मुझे कष्ट दे रहा है। लेकिन आपको पता नहीं है कि आप ने ही उस आदमी को अपने पास इकट्ठा कर लिया है; और आप चाहते हैं कि वह आपको कष्ट दे। और अगर वह चला जाए, तो आपको खालीपन लगेगा और जल्दी ही आप किसी दूसरे आदमी से जगह भर लेंगे। कोई चाहिए जो आपको कष्ट दे।
महावीर कहते हैं, अपने को कष्ट देने मात्र से कोई तपस्वी नहीं होता, यद्यपि कोई तपस्वी हो जाए तो कष्ट को झेलने की क्षमता आ जाती है। वह बिल्कुल दूसरी बात है। कांटे बिछा कर लेटना एक बात है और जीवन में कांटे आ जाएं तो उनके बीच से साक्षीभाव से गुजर जाना बिल्कुल दूसरी बात है। जीवन में कांटे आएंगे, दुख आएंगे। तपस्वी वह है जो न सुख की आकांक्षा करता है, न दुख की; जो आ जाता है उसके जीवन में उससे बिना चिंता के अपने को गुजारता है। जो भी हो, वह हर हालत में अपने को अनुद्विग्न रखता है। न तो सुख से रस बांधता है, न दुख से।
दुख आएंगे, क्योंकि हमारे बहुत से जन्मों की शृंखला है, हमारे कर्मों
का गहन संस्कार है। और हम आज एकदम नये नहीं हो सकते हैं। हमारा कल हमारा पीछा कर रहा है। कल हमने किसी को गाली दी थी, वह आज गाली देने आएगा। दुख आएगा।
तो, तपस्वी चाहता नहीं कि कोई आकर उसे गाली दे, ऐसी उसकी कामना नहीं है, लेकिन कोई गाली दे, तो वह साक्षीभाव से सहेगा। इसको महावीर ने "परिशय" कहा है, दुख को साक्षीभाव से सहने की कला; कोई प्रतिक्रिया न करते हुए जो भी हो उसे चुपचाप सह लेना, उसके प्रति कोई भी धारणा न बनाना--यह कि बुरा है, नहीं होना था, ऐसा नहीं होना था, ऐसा क्यों हुआ, परमात्मा ने ऐसा मुझे क्यों दिखाया, कौन से कर्मों का पाप है--कुछ भी प्रतिक्रिया न करना, सिर्फ ऐसा भाव रखना कि एक लेन-देन था पुराना, वह निपट गया; संबंध समाप्त हुआ, एक कड़ी जुड़ी थी, वह टूट गई।
दुख आए तो उसे सह लेना तपश्चर्या है। दुख की खोज रोग है। लेकिन आप देखें, जब भी आप साधना में उत्सुक होते हैं तो आप दुख की तलाश करते हैं। मेरे पास लोग आते हैं, अगर मैं उन्हें सीधा-सीधा उपाय बताता हूं तो वे कहते हैं कि यह इतना सीधा है कि इससे क्या होगा? कुछ उपद्रव उनको न बताया जाए तो जमता नहीं। उपद्रव की इच्छा है।
अगर मैं उनको कहूं कि पहले पूरी रात सर्दी में खड़े रहो, फिर दिन भर उपवास करो, फिर कुछ उठक-बैठक, कवायद, कुछ आसन करो, फिर ध्यान पर बैठना, तो जंचेगा। तब वे कहेंगे कि हां, इससे कुछ हो सकता है, क्योंकि कुछ करने जैसा दिखता है।
खुद को कष्ट देने में विजय मालूम पड़ती है कि मैं मालिक हो रहा हूं। दुनिया में धर्मो के नाम पर स्वयं को जो इतना कष्ट दिया जाता है, जो इतनी सेल्फ-टार्चरिंग चलती है, वह इसलिए चलती है कि लोग अपने को कष्ट देना चाहते हैं। बहाने कोई भी खोज लेते हैं, फिर अपने को कष्ट देते हैं। यह जो कष्ट देना है, यह स्वस्थ मन का सबूत नहीं है। और महावीर कहते हैं, तपस्वी का इससे कोई लेना-देना नहीं है।

"समता से मनुष्य श्रमण होता है।"
भीतर के समत्व से, भीतर के संतुलन से, भीतर के सयुंक्त से, व्यक्ति श्रमण होता है।
"ब्रह्मचर्य से ब्राह्मण होता है।"
और जिसका आचरण ब्रह्म-जैसा होने लगता है... ।
ब्रह्मचर्य का मतलब केवल वीर्य-रक्षण नहीं है। वह क्षुद्रतम अर्थ है। ब्रह्मचर्य का ठीक-ठीक अर्थ हैः ब्रह्म जैसी चर्या जैसा आचरण। अगर ईश्वर ही पृथ्वी पर उतर आए, तो वह कैसे चलेगा, वह कैसे उठेगा-बैठेगा, वह कैसे बोलेगा, कैसे व्यवहार करेगा? "उस" जैसा आचरण जिसका हो जाए, वह ब्राह्मण है।
और भीतर जो इतना संतुलित हो जाए कि बाहर की कोई भी चीज उसे हिला न सके; डिगा न सके; कोई तूफान जिसकी चेतना की लौ को जरा भी कंपित न कर सके; जो भीतर अंकप हो जाए, वह श्रमण है; और जो ब्रह्म जैसे आचरण को उपलब्ध हो जाए वह ब्राह्मण है।
"ज्ञान से मुनि होता है; और तप से तपस्वी बन जाता है।"
ज्ञान, वह जो हमें शास्त्र से मिल जाए, वह नहीं है। वह तो किसी को भी मिल सकता है। उससे आदमी पंडित होता है; शास्त्रीय होता है; शब्दजाल फैल जाता है और वैसे पंडित दूसरों को भी पंडित बनाने की कोशिश में लगे रहते हैं। वह खुद भटके हैं और दूसरों को भटकाए चले जाते हैं।
दूसरों को भटकाने का भी एक मजा है। और जब खुद भटका हुआ आदमी दो-चार आदमियों को भटका देता है, तो उसे अपनी भटकन कम मालूम पड़ती है कि हम कोई अकेले थोड़े ही भटक रहे हैं। और उसकी बात को मान कर अगर बहुत से लोग भटकने लगते हैं तो वह भूल ही जाता है कि मैं भटक रहा हूं। क्योंकि तब उसे लगता है कि मैं इतने लोगों का नेता हूं, इतने लोग मेरे पीछे चल रहे हैं, मेरे भटकने का सवाल ही नहीं है। नेता को अपने पीछे चलते अनुयायियों को देखकर भरोसा आता है कि मैं ठीक चल रहा हूं, अन्यथा इतने लोग मेरे पीछे क्यों चलते। पंडितों के कारण--थोथा और उधार ज्ञान जिन्होंने इकट्ठा कर लिया है-- ऐसे गुरुओं के कारण आपको रास्ता मिल भी सकता तो नहीं मिल पाता।
मुल्ला नसरुद्दीन का एक रुपया गिर गया है। वह सड़क पर खोज रहा है। आधे घंटे में पसीना-पसीना हो गया खोजते-खोजते। उसकी पत्नी भी उसका साथ दे रही है। आखिर पत्नी ने पूछाः नसरुद्दीन, मिला? नसरुद्दीन ने कहाः मिल सकता था, अगर तूने इतनी सहायता न की होती।
उसको डर है कि यह स्त्री पा गई। वह कह रहा है कि मिल सकता था, अगर तूने खोजने में इतनी सहायता न की होती।
बहुत से गुरु आपको खोजने में इतनी सहायता कर रहे हैं कि जो मिल सकता
था वह भी मिल नहीं पा रहा है। लेकिन उधार ज्ञान का दंभ करे, यह भी स्वाभाविक है, क्योंकि दंभ करे तो ही ज्ञान जैसा मालूम पड़ सकता है। महावीर कहते हैं, ऐसे ज्ञान से कोई मुनि नहीं होता। जो ज्ञान बाहर से
आ सकता है, वह आपकी बुद्धि को भरेगा। लेकिन जो ज्ञान भीतर से जन्मता है, जो स्वयं की अनुभूति से आता है, वही आपको मौन कर जाएगा। जो ज्ञान बाहर से आता है, वह आपको मुखर करेगा; बुद्धि और बेचैन होकर चलने लगेगी। जो ज्ञान भीतर से आता है, वह आपको मौन कर जाएगा; बुद्धि को चलने की जरूरत न रह जाएगी। इसे थोड़ा समझ लेना जरूरी है। ज्ञानी की बुद्धि चलती नहीं। जरूरत नहीं है। अज्ञानी की बुद्धि चलती है। और जितना ज्यादा अज्ञानी हो, उतना बुद्धि को चलाना पड़ता है, क्योंकि उतनी ज्यादा जरूरत होती है।
अगर आंख वाला आदमी इस हाल के बाहर जाएगा, तो वह टटोलेगा नहीं। क्या जरूरत है टटोलने की? आंखें हैं, सोचेगा भी नहीं कि दरवाजा कहां है। सोचने की भी क्या जरूरत है? दरवाजा दिखाई पड़ता है। बस, वह दरवाजे से निकल जाएगा। अगर आप उससे बाद में पूछें कि तुम्हें पता है कि दरवाजा कहां है, तो वह कहेगा कि मैंने ख्याल नहीं किया, किस दिशा में है, मुझे कुछ ख्याल नहीं। दरवाजा था--मैं तो बस निकल आया, मैंने सोचा भी नहीं। लेकिन अंधा आदमी अगर इस हाल के बाहर जाना चाहे, तो पहला सवाल उसके सामने यह उठेगा कि दरवाजा कहां है? फिर अंधा लकड़ी से टटोलेगा, फिर अंधा किसी से पूछेगा कि दरवाजा

कहां है? अगर आप अंधे से पूछें तो जितनी व्यवस्था से वह जवाब देगा कि दरवाजा कहां है, आंखवाला कभी नहीं दे सकता।
यह बड़े मजे की बात है। अंधे से अगर आप बाद में मिलें, तो वह आपको पूरा ब्यौरा बता देगा कि दरवाजा कहां है। कितनी कुर्सियों के बाद उसको दरवाजा मिला। कितनी जगह उसने टटोला। कितनी खिड़कियां बीच में पड़ीं। बाएं है कि दाएं है, कि कहां है--अंधा जितना ठीक जवाब देगा, आंखवाला नहीं देगा। क्यों? क्योंकि अंधे को सोचना पड़ा; आंख वाला निकल गया।
जैसे-जैसे भीतर का ज्ञान जन्मेगा, बुद्धि की जरूरत न रहेगी, क्योंकि बुद्धि सब्स्टीट्यूट है। वह भीतर का ज्ञान नहीं है, इसलिए हमें बुद्धि का उपयोग करना पड़ता है। जब भीतर का ज्ञान आना शुरू होता है, बुद्धि का उपयोग बंद हो जाता है। बुद्धि जहां शांत होती है, वहां मुनि का जन्म होता है।
तप से मनुष्य तपस्वी बन जाता है; लेकिन तप की जो मैंने बात कही, वह ख्याल में रखना। भीतर की अग्नि को जगा कर--जो चेतना के स्वर्ण को उसमें निखार लेता है, उस निखरी हुई चेतना को--जो जीवन-जगत के संघर्ष में--जो कसौटी पर कस लेता है, उसे महावीर तपस्वी कहते हैं।
"मनुष्य कर्म से ही ब्राह्मण होता है, कर्म से ही क्षत्रिय होता है, कर्म से ही वैश्य होता है और शूद्र भी अपने किए गए कर्मों से ही होता है। अर्थात जन्म से कोई वर्ण-भेद नहीं है। जो जैसा करता है, वह वैसा ही हो जाता है।"
ऊंच या नीच चेतना की अवस्थाएं हैं, शरीर की नहीं।
"इस भांति पवित्र गुणों से युक्त जो द्विजोत्तम (श्रेष्ठ ब्राह्मण)हैं, वास्तव में वे ही अपना और दूसरों का उद्धार करने में समर्थ हैं।"
तीन बातें ख्याल में ले लें--
एक, कहां आप पैदा हुए हैं, किस घर में पैदा हुए हैं, किस कुल में पैदा हुए हैं, यह बात बिल्कुल गौण है। इसे बहुत मूल्य मत दें। यह मूल्य महंगा पड़ सकता है। ब्राह्मण घर में पैदा होकर अगर आपने समझ लिया कि मैं ब्राह्मण हो गया, तो ब्राह्मण होने की आपकी जो संभावना थी, वह बंद हो गई।
महावीर द्वार को खोलते हैं। वे कहते हैं, जन्म के साथ तुम समाप्त नहीं
हो गए, जन्म के साथ सिर्फ तुम शुरू हुए हो। मौत के साथ अध्याय बंद होगा। लेकिन जो कहता है कि मैं जन्म से ब्राह्मण हूं, उसने अध्याय बंद कर लिया। अब करने को कुछ नहीं बचा; आखिरी बात पा ली गई। महावीर कहते हैं, जन्म शुरुआत है संभावनाओं की। उनको अंत मत करो, बंद मत करो। सबकी संभावनाएं खुली हैं। द्वार खुला है। यात्रा करनी जरूरी है। और यात्रा पर निर्भर होगा कि आप क्या हैं।
बर्नार्ड शॉ से किसी ने पूछा, अस्सी वर्ष की उम्र थी उसकी तब, कि क्या तुम अपने संबंध में अब कोई सत्य कह सकते हो? बर्नार्ड शॉ ने कहा कि जब तक मैं मर न जाऊं, तब तक संभावनाएं खुली हैं। जिस दिन मैं मर जाऊं, उसी दिन अध्याय बंद होगा। उसी दिन कोई निर्णय लिया जा सकता है। तब तक कोई निर्णय नहीं लिया जा सकता।
जीवन एक खुलाव है। उसमें सब खुला है। बंद थी भारत में व्यक्तित्व की संभावना। शूद्र शूद्र था; और कुछ होने का उपाय नहीं था उसे। उसकी जिंदगी बस झाड़-बुहारी लगाने में, मल-मूत्र साफ करने में, जूते-चमड़े का सामान बनाने में व्यतीत होने वाली थी। करोड़ों-करोड़ों लोगों का जीवन एकदम बंद था। वहां से इंच भर हटने का कोई उपाय नहीं था। हिलने-डुलने की कोई सुविधा नहीं थी। समाज स्टैटिक था, अवरुद्ध था, जैसे तालाब का पानी जम गया हो। नदी की धारा नहीं थी। महावीर ने तालाब के पानी को तोड़ा, धारा बनाई--शूद्र भी ब्राह्मण हो सकता है, और ब्राह्मण को भी कहा कि तू आश्वस्त मत रह, क्योंकि ब्राह्मण होना भी एक अर्जन है। तूने कुछ न किया तो तू भी शूद्र हो जाएगा; तू भी शूद्र रह जाएगा।
महावीर ने ब्राह्मण की आस्था तोड़ दी ताकि वह भी खुले और बह सके; और शूद्र का बंधन तोड़ दिया ताकि वह भी खुले और बह सके। लेकिन जैन महावीर के पीछे चल नहीं पाए।

जैनों में यद्यपि कोई वर्ण नहीं है; जैनों के भीतर कोई जैन ब्राह्मण, जैन क्षत्रिय, जैन वैश्य या जैन शूद्र नहीं हैं, लेकिन जैन अपने को वैश्य मानते हैं; और घर में अगर पूजा करवानी हो, विवाह करवाना हो तो ब्राह्मण को निमंत्रित करते हैं; और घर का अगर पाखाना साफ करवाना हो तो शूद्र को खोजते हैं।
जैन भी महावीर को मान नहीं सके। जैनों के लिए तो कोई शूद्र नहीं होना चाहिए। कैसी दुर्घटना इतिहास में घटती है कि जब यहां हिंदुस्तान में आंदोलन शुरू हुआ कुछ वर्षों पहले कि शूद्र-हरिजन मंदिरों में प्रवेश करें, तो जैनों को तो सबसे पहले अपने मंदिर खोल देने थे! क्योंकि महावीर ने कहा है कि कोई जन्म से शूद्र नहीं है। लेकिन जैनों ने सबसे पहले अपने मंदिर बंद कर लिए। उन्होंने कहा कि हम तो हिंदू हैं ही नहीं, इसलिए हमारे मंदिरों में हरिजनों के प्रवेश का तो कोई सवाल ही नहीं है। शूद्र हिंदू हैं; वे हिंदुओं के मंदिर में जाएं, हिंदुओं से लड़ें-झगड़ें। जैन मंदिर तो जैनों का है।
लेकिन जैनों ने ब्राह्मणों को कभी नहीं रोका जैन मंदिरों में जाने से। अगर उन्होंने ब्राह्मणों को भी रोका होता, तो तर्क समझ में आता था। लेकिन ब्राह्मण तो सदा जाते रहे, शूद्र को उन्होंने रोक दिया कि जैन मंदिर में वह नहीं आ सकता, क्योंकि जैन धर्म तो धर्म ही अलग है। और महावीर कहते हैं कि जन्म से कोई शूद्र नहीं है; जन्म से कोई ब्राह्मण नहीं है; जन्म से कोई कुछ नहीं है। जैन का मंदिर तो बिल्कुल खुला होना चाहिए था, लेकिन शूद्र तो बहुत दूर, दिगंबर का मंदिर श्वेतांबर के लिए खुला हुआ नहीं है; श्वेतांबर का मंदिर दिगंबर के लिए खुला हुआ नहीं है। और श्वेतांबर और दिगंबर तो दोनों जैन हैं, न कोई शूद्र है, न कोई ब्राह्मण; वे एक-दूसरे का सिर खोलते हैं, अदालतों में लड़ते रहते हैं।... आश्चर्यजनक है!
आदमी इतना मूढ़ है कि महावीर कितना ही हिलाएं, वह जा भी नहीं पाते हैं
कि उनकी पत्थर की शिला फिर अपनी जगह पर वापस बैठ जाती है; वे जहां के तहां पाए जाते हैं। तीर्थकर छोड़ गया था--वह वहीं फिर आसन लगाए बैठा है। कोई अंतर नहीं पड़ता। क्योंकि अंतर डालने के लिए सिद्धांत काफी नहीं हैं, शब्द काफी नहीं हैं। अंतर डालने के लिए स्वार्थ भी छोड़ना पड़ेगा; अंतर डालने में खुद के निहित स्वार्थों को हानि भी पहुचेगी, और अंतर डालने के लिए खुद को बदलना पड़ेगा।
शूद्र जन्म से शूद्र नहीं है, यह कहना, यह बातचीत काफी नहीं है। अगर शूद्र जन्म से शूद्र नहीं है, तो आपकी लड़की अगर एक शूद्र के प्रेम में पड़ जाए और आप जैन हों, तो आप को इनकार नहीं करना चाहिए। देखना इतना चाहिए कि शूद्र के पास चरित्र है, आचरण है, जीवन है? और अगर उसका आचरण ठीक न हो, वह शराबी हो, जुआरी हो, तो ही इनकार करना चाहिए।
लेकिन तब अड़चनें होंगी; और अड़चनें उठाने से हम बचना चाहते हैं। हम सिर्फ कनवीनियंस खोज रहे हैं--शांति से मर जाएं; कोई झंझट न हो।
मुल्ला नसरुद्दीन को सूली की सजा सुनाई गई। उसका साथी और वह दोनों सूली पर लटकाए जाने के करीब हैं। दोनों ने हत्या की है। आखिरी क्षण में सूली देने वाले ने नियमानुसार दोनों से पूछाः कोई आखिरी इच्छा हो तो बताओ, सिगरेट तो नहीं पीना चाहते हो; तो मैं ला दूं?
तो मुल्ला ने कहाः हत्यारे! सिगरेट अपने पास रख। झंझट खड़ी मत कर। नसरुद्दीन ने कहा कि--आखिरी समय में झंझट से डर रहा है--झंझट खड़ी मत कर। अब झंझट खड़ी करने से भी क्या होनेवाला है! लेकिन यह कह रहा है उससे कि अब शांत रह, आखिरी समय में झंझट खड़ी मत कर।
हम जिंदगीभर इसी कोशिश में रहते हैं, कहीं कोई झंझट न हो जाए। झंझट से बचाते-बचाते पूरी जिंदगी हमारी असत्य हो जाती है। क्योंकि जहां-जहां हम समझौता करते हैं, झंझट से बचते हैं, वहां-वहां सुविधा के कारण असत्य को स्वीकार कर लेते हैं।
कौन है शूद्र, कौन है ब्राह्मण, अगर महावीर की बात मानें तो हर बार सोचना पड़ेगा। जो आदमी आपके घर में बुहारी लगाता है वह ब्राह्मण हो सकता है, और जो आदमी आपके घर पूजा करता है, वह शूद्र हो सकता है। तब बड़ी झंझट खड़ी

होगी; क्योंकि तब रोज-रोज यह सोचना पड़ेगा कि यह आदमी शूद्र है कि ब्राह्मण; किसके पैर पड़ो और किसको घर में मत आने दो, रोज-रोज सोचने से यह बड़ी कठिनाई होगी। इसलिए हमने लेबलिंग कर रखी है कि यह आदमी शूद्र के घर में पैदा हुआ है, इसलिए शूद्र है; और यह आदमी ब्राह्मण के घर में पैदा हुआ है, इसलिए ब्राह्मण है। लेबल लगा देने से सुविधा हो जाती है; जैसे कि दुकानों में लोग डब्बों पर लेबल लगा देते हैं कि इसमें यह--यह चीजें हैं।
आदमी डब्बा नहीं है, उस पर लेबल लगाया नहीं जा सकता कि इसमें मिर्च रखी है, इसमें नमक रखा है; ऐसा कुछ उसमें रखने का कुछ उपाय नहीं है। आदमी एक प्रवाह है। लेकिन महावीर से राजी होने के लिए सतत प्रवाह की असुविधा, संकट और संघर्ष झेलना जरूरी है।
द्विज वही है, महावीर कहते हैं, जो पवित्र गुणों से युक्त है; जिसने धीरे-धीरे अपनी चेतना में परमात्मा की क्षमता को प्रकट करना शुरू किया है; जो ट्रांसपैरेंट हो गया है, पारदर्शीं हो गया है; जिसने अपनी सारी अशुद्धि छोड़ दी; और भीतर का प्रकाश जिससे बाहर आने लगा है।
"द्विज" शब्द समझने जैसा है। द्विज का अर्थ हैः दुबारा जिसका जन्म हो गया--ट्वाइस बार्न। एक जन्म तो मां के पेट से होता है। वह असली जन्म नहीं है। उससे तो सभी शूद्र पैदा होते हैं। दूसरा जन्म है जो व्यक्ति अपनी आत्मा को स्वयं के श्रम से देता है। उस श्रम से जब आप स्वयं ही अपने माता- पिता बनते हैं और एक नई आत्मा को जन्माते हैं, आप द्विज होते हैं।
द्विज का अर्थ है, जिसने दूसरा जन्म भी इसी जन्म में पा लिया; जिसने नया जन्म पा लिया। इस नये जन्म पा लिए व्यक्ति से आशा की जा सकती है कि वह अपना और दूसरों का उद्धार कर सकेगा। लेकिन अपना उद्धार पहले है; क्योंकि जिसका अपना दिया बुझा हो, वह दूसरों के दीये नहीं जला सकता। जिसका अपना दीया जला हो, उससे दूसरों की ज्योति भी जल सकती है। जिनके खुद के दीये बुझे हैं वे दूसरों के दीये जलाना तो दूर, डर यह है कि किसी का जलता हुआ दिया बुझा न दें।
अंधे तो गड्ढों में गिरते ही हैं, उनके पीछे जो चलते हैं, वे भी गड्ढों में गिर जाते हैं। आंखवाले की तलाश गुरु की तलाश है। आंखवाले की खोज द्विज की खोज है जिसका दूसरा जन्म हो चुका है इसी जन्म में; जो शरीर ही नहीं रहा अब, बल्कि शरीर के पार कुछ और भी जिसके भीतर घटित होना शुरू हो गया है; जो अब कह सकता है कि मैं वही नहीं हूं, जो मां-बाप ने मुझे पैदा किया था मैं कुछ और भी हूं।
बुद्ध लौटे बारह वर्ष बाद। सारा गांव बुद्ध को घेर कर इकट्ठा खड़ा हो गया। ऐसी रोशनी देखी नहीं गई थी। ऐसे संगीत का अनुभव पहले किसी व्यक्ति के करीब नहीं हुआ था। लेकिन बुद्ध के पिता को कुछ नहीं दिखाई पड़ा। बुद्ध के पिता नाराज थे। वे द्वार पर खड़े थे राजमहल के। उन्होंने गौतम सिद्धार्थ से कहाः सिद्धार्थ, मेरे पास बाप का हृदय है, मैं तुझे अभी भी क्षमा कर सकता हूं। तू वापस आजा।
बुद्ध ने निवेदन किया कि आप शायद मुझे देख नहीं पा रहे हैं कि मैं बिल्कुल बदल कर आया हूं। जो बेटा घर से गया था, वही लौट कर नहीं आया है। मैं बिल्कुल नया होकर आया हूं; जो गया था उसकी रेखा भी नहीं छूटी है। यह जो आया है; बिल्कुल नया है, आप जरा गौर से देखें।
पिता नाराज हो गए। पिता, जैसा अक्सर... नाराज हो ही जाएंगे। पिता ने कहा कि मैंने तुझे पैदा किया और मैं तुझे पहचान नहीं पा रहा हूं? मेरा खून-मांस-हड्डी तेरे भीतर है और मुझे तुझे पहचानना पड़ेगा? मैं तेरा बाप हूं; मैंने तुझे जन्माया है; मेरा खून है तू; मैं तुझे भलीभांति जानता हूं। तुझे देखने की क्या जरूरत है?
बुद्ध ने कहाः आप ठीक कहते हैं। जो आपको दिखाई पड़ रहा है, उसके आप पिता हैं। लेकिन अब मैं कुछ और भी लेकर आया हूं, जो आपसे नहीं जन्मा है। अब मैं द्विज होकर आया हूं; नया जन्म हुआ है।
जीसस से निकोडैमस ने पूछा है कि कैसे मैं प्रभु के राज्य को पा सकूंगा? तो जीसस ने कहाः जब तक तेरा नया जन्म न हो जाए; जब तक तू द्विज न हो जाए। द्विज जो है, वह अपना और दूसरे का उद्धार करने में समर्थ है।

पांच मिनट रुकें, कीर्तन करें और फिर जाएं।

महावीर-वाणी, भाग 2
बीसवां प्रवचन

भिक्षु की यात्रा अंतर्यात्रा है (भिक्षु-सूत्रः 1)

रोइय-नायपुत्त-वयणे, अप्पसमे मन्नेज्ज छप्पि काए।
पंच य फासे महव्वयाइं, पंचासवसंवरे जे स भिक्खू।।
सम्मदिट्ठि सया अमूढे, अत्थि हु नाणे तवे संजमे य।
तवसा धुणइ पुराणपावगं,
मण-वय-कायसुसंवुडे जे स भिक्खू।।

जो ज्ञातपुत्र--भगवान महावीर के प्रवचनों पर श्रद्धा रख कर छह प्रकार
के जीवों को अपनी आत्मा के समान मानता है, जो अहिंसा आदि पांच महाव्रतों का पूर्णरूप से पालन करता है, जो पांच आस्रवों का संवरण अर्थात निरोध करता है, वही भिक्षु है।
जो सम्यग्दर्शी है, जो कर्तव्यविमूढ़ नहीं है, जो ज्ञान, तप और संयम का दृढ़ श्रद्धालु है, जो मन, वचन और शरीर को पाप-पथ पर जाने से रोक रखता है, जो तप के द्वारा पूर्व-कृत पाप-कर्मों को नष्ट कर देता है, वही भिक्षु है।

जो अज्ञात है, जो अननुभूत है, जो अदृश्य है, जिसे हमने अब तक जाना नहीं, जिसका कोई भी स्वाद हमें उपलब्ध नहीं हुआ, जिसकी एक भी किरण से हम परिचित नहीं हैं--उसकी खोज कैसे शुरू हो? उसे हम खोजें कैसे? खोज के लिए भी थोड़ा सा परिचय जरूरी है, उस दिशा में हम बढ़ें, उस दिशा की थोड़ी सी झलक चाहिए। और उस यात्रा में हम अपने पूरे जीवन को लगा दें, यह तो तभी हो सकता है, जब जीवन से मूल्यवान है--वह अज्ञात, ऐसी हमारी प्रतीति हो। पर ऐसी कोई प्रतीति नहीं है, इसलिए श्रद्धा अति मूल्यवान हो जाती है।
श्रद्धा का अर्थ समझ लेना चाहिए। श्रद्धा का अर्थ है कि हमें कुछ भी पता नहीं परमात्मा का, हमें कुछ भी पता नहीं मोक्ष का, हमें कुछ भी पता नहीं कि मनुष्य के भीतर शरीर को पार करने वाली कोई आत्मा भी है। लेकिन हमें ऐसे व्यक्ति से मिलन हो सकता है, जिसकी मौजूदगी इस अज्ञात की हमें खबर दे; ऐसे व्यक्ति के हम संपर्क में आ सकते हैं, जो परमात्मा को देख पा रहा है, जो मुक्त है, और जिसकी चेतना शरीर के पार जा चुकी है, जा रही है। ऐसे व्यक्ति में हमें झलक मिल सकती है। वह झलक सीधी नहीं होगी; प्रत्यक्ष नहीं होगी। परोक्ष होगी, उस व्यक्ति के माध्यम से होगी। लेकिन इसके अतिरिक्त धर्म की यात्रा में और कोई उपाय नहीं है। ऐसे व्यक्ति की निकटता में हमें जो प्रतीति होती है, उसका नाम श्रद्धा है।
महावीर को जब लोग देखते हैं तो एक बात तय हो जाती है अगर देखते है तो, अगर सुनते हैं तो; अगर आंखें बंद किए हैं और कान बंद किए हैं, और उन्होंने तय कर रखा है कि वे अपने से ऊपर कुछ भी नहीं देखेंगे--क्योंकि अपने से ऊपर कुछ भी देखते ही पीड़ा शुरू होती है, संताप शुरू होता है, चिंता का जन्म होता है। जैसे ही हमें दिखाई पड़ता है कि कोई हमसे पार है, और हम जहां खड़े हैं, वही जीवन की अंतिम मंजिल नहीं है, वैसे ही बेचैनी शुरू होगी; प्यास जगेगी, और हमें चलना पड़ेगा; बैठे-बैठे फिर काम नहीं चल सकता। इस भय से कि कहीं यात्रा न करनी पड़े, हम अपने से ऊपर देखते ही नहीं। अगर महावीर जैसा व्यक्ति हमारे करीब भी आ जाए, तो हम उसे झुठलाने की सब तरह से कोशिश करते हैं।
लेकिन अगर कोई सरलता से, सहजता से महावीर, बुद्ध या कृष्ण को देखे तो
एक बात पक्की हो जाएगी कि हम जैसे हैं, यह हमारा अंतिम होना नहीं है; यह हमारी नियति नहीं है, हमारा भविष्य महावीर में प्रकट हो जाएगा।
जिस आनंद से भरे हुए महावीर खड़े हैं, जिस मौन और शांति का उनके चारों तरफ वर्षण हो रहा है, उनकी आंखों से जिस अलौकिक की झलक आ रही है, उनके शब्दों से जिस शून्य का स्वर उठ रहा है, वह हमारा भी भविष्य हो सकता है; हम भी उस जगह कभी हो सकते हैं, ऐसी प्रतीति का नाम श्रद्धा है।

श्रद्धा का अर्थ अंधापन नहीं है। और श्रद्धा का अर्थ हर किसी को मान लेना नहीं है। श्रद्धा का अर्थ है ऐसे ग्राहक, रिसेप्टिव, संवेदनशील चित्त की अवस्था, जब हमसे पार का कोई व्यक्तित्व निकट हो तो हम उसके प्रति बंद न हों, खुले हों, हम तैयार हों उसके साथ थोड़ा दो कदम चलने को--क्योंकि वह किन्हीं रास्तों पर चला है, जो हमसे अपरिचित हैं, उसने कुछ जाना है, जो हमने नहीं जाना; उसने कुछ देखा है, जिसके लिए हम अभी अंधे हैं; उसको कुछ स्वाद मिला है, जिसका हमें कोई भी पता नहीं है, उसके साथ दो कदम चलने का नाम श्रद्धा है। और प्राथमिक यात्रा उसके साथ ही शुरू होगी।
जीवन जटिल है; एक बड़ी पहेली है। और उसमें सबसे बड़ी जटिलता है वह यह है
कि हम जहां हैं, वहां से हिलने में तकलीफ होती है। चाहे हम दुख में ही क्यों न हों, दुख को छोड़ने में भी तकलीफ होती है। क्योंकि दुख परिचित है, अपना है, और छोड़ कर जहां हम जाएंगे, वह होगा अपरिचित, अनजान; वहां भय लगता है। अनजान रास्तों पर जाने में भय लगता है, इसलिए हम अनजान रास्तों पर नहीं जाते। और अगर हम जाने-माने रास्तों पर ही भटकते रहे तो हम एक वर्तुल में घूम रहे हैं; जो जाना है, उसे फिर से जान लेगें, फिर-फिर जान लेंगे, लेकिन जीवन में कोई नया सूरज, इस जीवन में कोई नया जन्म संभव नहीं होगा। हम पिटी हुई लकीर पर घूमते रहेंगे।
श्रद्धा का अर्थ है, किसी के साथ अनजान में उतरने का साहस। यह किसी के साथ ही होगा; क्योंकि उस दूसरे को देख कर भरोसा आ जाएगा। और उस दूसरे के व्यक्तित्व में ऐसे लक्षण हैं, जो भरोसा दिला सकते हैं। अगर महावीर कहते हैं कि एक ऐसा आनंद है, जिसका कोई अंत नहीं होता; एक ऐसे आनंद की अवस्था है, जहां दुख की एक तरंग नहीं उठती, तो हम महावीर को देख कर भी अनुभव कर सकते हैं। महावीर का पूरा जीवन सामने है। वहां दुख की एक भी तरंग नहीं है; दुख के सब अवसर हैं तो भी महावीर को दुखी करना असंभव है। सब तरह की कोशिश की गई है कि उन्हें दुखी किया जाए, लेकिन सभी कोशिश असफल हो गई। जिस व्यक्ति को दुखी नहीं किया जा सकता, एक बात पक्की है कि उसे कुछ मिल गया है, जो हमारे सब दुखों के पार चला जाता है। वह किसी नये केंद्र पर प्रतिष्ठित हो गया है। कोई एक नई तरह की सेंट्रिंग उसके भीतर हो गई है, जिसे हम हिला नहीं पाते। हम तो हिल जाते हैं हवा के थोड़े से झोंके से, झोंके का ख्याल भी आ जाए, तो हिल जाते हैं। महावीर अकंप हैं। कैसा भी तूफान हो उनके चारों तरफ, कितनी ही बड़ी आंधी उठे, महावीर के भीतर कोई आंधी प्रवेश नहीं कर पाती। निश्चित ही, कोई बहुत गहन केंद्र उन्हें उपलब्ध हो गया है। पर हमें वह केंद्र दिखाई नहीं पड़ता; सिर्फ महावीर दिखाई पड़ते हैं।
और महावीर को देखकर उस केंद्र का अनुमान हो सकता है। वह अनुमान हमारी श्रद्धा बनेगा। लेकिन इस श्रद्धा के लिए महावीर के प्रति खुले होना जरूरी है। अगर आप आलोचक की तरह महावीर के पास जाते हैं, तो आप पहले से ही धारणाएं बनाकर जा रहे हैं। आपकी धारणाएं आपके जाने हुए जगत से संबंधित हैं, महावीर एक नये जगत के पथिक हैं; ऐसा समझें कि किसी और लोक के व्यक्ति हैं। आपकी भाषा, आपका अनुभव उन पर कुछ भी लागू नहीं होता। तो जो भी आप अपनी धारणाओं को लेकर उनके संबंध में सोचेंगे, वह गलत होगा। उस गलती से महावीर को कोई हानि होनेवाली नहीं है। स्मरण रहे, उस गलती से आप बंद हो जाएंगे, और श्रद्धा का जो अंकुरण हो सकता था, वह नहीं हो पाएगा।
श्रद्धा इस जगत में सबसे अनूठी बात है, प्रेम से भी अनूठी; क्योंकि प्रेम तो वासना के प्रवाह में जग जाता है; श्रद्धा निर्वासना के प्रवाह में जगती है। जैसे-जैसे व्यक्ति की वासना सबल होती है, प्रगाढ़ होती है, प्रेम जग जाता है। प्रेम एक प्राकृतिक घटना है, जिसमें शरीर के कोष्ठ भाग लेते हैं। वह एक बायलाजिकल, एक जैविक घटना है। आपको कुछ करना नहीं पड़ता। बच्चा जवान होता है, और उसके चारों तरफ प्रेम पकने लगता है। वह प्रेम में गिरेगा।
श्रद्धा एक अर्थ में प्रेम जैसी है, और एक अर्थ में प्रेम से बिल्कुल उलटी है। श्रद्धा अलौकिक घटना है, क्योंकि शरीर का कोई भी कण उससें सहयोगी नहीं होता। और अगर वैज्ञानिक जांच करे, तो आपके प्रेम का तो फार्मूला निकाल लेगा कि आपके शरीर में किन हारमोंस के कारण प्रेम पैदा होता है।

लेकिन श्रद्धा का कोई फारमूला वैज्ञानिक नहीं निकाल सकता। कितना ही श्रद्धालु की जांच की जाए, उसके भीतर कोई भौतिक तत्व नहीं मिलेगा, जिसके कारण श्रद्धा समझी जा सके।
श्रद्धा बेबूझ है; लेकिन श्रद्धा घटी है। और श्रद्धा ऐसी घटी है कि लोगों ने अपने पूरे जीवन को उस पर दांव पर लगा दिया है। जिनके जीवन में श्रद्धा घटी है उन्होंने उसे जीवन से भी ज्यादा मूल्यवान पाया है; अन्यथा कौन जीवन को नष्ट करेगा? कौन पूरे जीवन को दांव पर लगा देगा? जीवन को दांव पर लगाना बताता है कि जीवन के भीतर कुछ ऐसा भी घट सकता है, जो जीवन के पार जाता है; जीवन की सीमा में जिसकी कोई परिभाषा नहीं है।
श्रद्धा मनुष्य के जीवन में अलौकिक फूल है; इस पृथ्वी पर किसी और लोक
का अवतरण है। और जब आप का हृदय आंदोलित होता है श्रद्धा से, तो आप पृथ्वी के हिस्से नहीं रह जाते; ग्रेविटेशन--जमीन की कशिश से आप मुक्त हो जाते हैं। लेकिन उस घटना के लिए क्या करें? एक बात समझ लेनी जरूरी है कि उस घटना के लिए पाजिटिवली, विधायक रूप से कुछ भी नहीं किया जा सकता; नकारात्मक रूप से कुछ किया जा सकता है।
आप प्रेम करने के लिए क्या कर सकते हैं? क्या आप चेष्टा करके प्रेम कर सकते हैं? अगर आपसे कहा जाए कि इस व्यक्ति को प्रेम करो, और आपके भीतर प्रेम न घट रहा हो, तो क्या आप प्रेम करके बता सकते हैं? क्या प्रेम का अनुभव पैदा हो सकता है चेष्टा से?
प्रेम का अनुभव भी चेष्टा से पैदा नहीं होता। आप सिर्फ इतना ही कर सकते हैं कि बाधा न डालें। व्यक्ति को निकट आने दें, खुद को निकट पहुंचने दें, आंतरिकता बढ़ने दें। आप कुछ और कर नहीं सकते। घट जाए, घट जाए; न घटे, न घटे--आपके हाथ की बात नहीं है।
श्रद्धा और भी कठिन है। क्योंकि प्रेम के लिए तो शरीर में एक धक्का है, एक ज्वार है, एक चोट है; शरीर भी मांग कर रहा है। श्रद्धा तो शरीर की मांग नहीं है; श्रद्धा आत्मा की मांग है। और जैसे प्रेम शरीर की घटना है, ऐसे श्रद्धा आत्मा की घटना है। और जब हम प्रेम तक को पैदा नहीं कर पाते, तो श्रद्धा को पैदा करना तो बहुत मुश्किल है।
तो आप क्या करें?
आप अपने को छोड़ें। एक लेट-गो, एक विश्राम चाहिए। जहां श्रद्धा पैदा हो सकती हो, उस व्यक्ति के पास आपका एक विश्राम से भरा हुआ चित्त चाहिए। आपका द्वार खुला रहे। आप सूरज को घसीट कर मकान के भीतर नहीं ला सकते; लेकिन सूरज बाहर हो, और दरवाजा बंद हो, तो सूरज दरवाजा तोड़ कर भीतर आएगा नहीं। आप दरवाजा खुला छोड़ सकते हैं। सूरज बाहर होगा, उसकी किरणें भीतर आ जाएंगी। किरणों को बांध कर लाने का कोई उपाय नहीं है, लेकिन किरणों को आप आने से न रोकें, इतना काफी है। इसलिए मैं कहता हूं, श्रद्धा का जन्म नकारात्मक है। आप महावीर, बुद्ध, कृष्ण और क्राइस्ट के करीब रह चुके हैं। इस जमीन पर कोई भी नया नहीं है। न मालूम कितने तीर्थंकर और अवतार आपके पास से गुजर चुके हैं। लेकिन आपने श्रद्धा का मौका नहीं दिया। आपके ऊपर, जैसे उलटे घड़े पर से पानी बह जाए, ऐसे ही श्रद्धा की सारी संभावनाएं बह गई हैं। निश्चित ही, आप अपने को समझा लेते हैं। जब महावीर आपके पास होते हैं, तो आप--आप अपने को समझा लेते हैं कि आदमी ही ऐसा नहीं है कि श्रद्धा पैदा हो।
ध्यान रहे, महावीर से कोई संबंध नहीं है श्रद्धा का; श्रद्धा का संबंध आपसे है। वह आपकी निजी घटना है। हो जाए, तो महावीर का रस आप में प्रविष्ट हो जाए; महावीर की धुन आप में समा जाए, महावीर की शराब आप में भी उतर जाए--वह नशा, वह मस्ती। लेकिन आप समझा लेते हैं कि नहीं, श्रद्धा योग्य आदमी नहीं है; इसलिए अभी अपने को खुला रखना ठीक नहीं।
आपको श्रद्धा योग्य आदमी कभी भी न मिलेगा; क्योंकि वह उसे ही मिलता है, जो खुला हुआ है।
ध्यान रखें, एक आंखें बंद किए हुए आदमी रास्ते पर चलता हो और वह कहे कि अभी सूरज निकला नहीं; जब निकलेगा, तब मैं आंखें खोलूंगा; जब प्रकाश होगा तब मैं आंखें खोलूंगा, लेकिन जिसने आंखें नहीं खोलीं, उसे पता भी कैसे चलेगा कि प्रकाश कब है?

आप महावीर, बुद्ध, कृष्ण के करीब से गुजरते वक्त सोचते हैं, अभी सूरज कहां है? अभी महावीर के लिए आप बहुत से कारण खोज लेते हैं कि श्रद्धा की कोई जरूरत नहीं है। अश्रद्धा के लिए आप सब तरह के कारण खोज लेते हैं। और अश्रद्धा के लिए कारणों से रोकना असंभव है।
मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन एक सुबह अपने घर से बाहर निकला, और देखा कि पुराने मित्र पंडित रामचरणदास रास्ते से गुजर रहे हैं। नसरुद्दीन ने जाकर उसके कंधे पकड़ लिए और कहाः "पंडित जी, हद्द हो गई! मैंने तो सुना कि आप मर चुके! तीन दिन हो गए, मैं तो रो भी लिया। मैंने तो सब दुख झेल लिया; रात सो नहीं सका तीन दिन, खबर मिली कि आप मर गए हैं।"
रामचरणदास ने कहाः "भूल जाओ! अब तो मैं सामने खड़ा हूं जिंदा, अफवाह रही होगी।"
नसरुद्दीन ने कहाः "इंपासिबल, असंभव! क्योंकि जिस आदमी ने मुझे कहा है, उस पर मेरी श्रद्धा आप से ज्यादा है--जितनी श्रद्धा मेरी आप पर है--दैट मैन इ.ज मोर रिलायबल दैन यू।"
जिंदा आदमी भी अगर सामने खड़ा हो, और श्रद्धा न हो, तो उसका जीवन दिखाई नहीं पड़ सकता।
श्रद्धा हो तो असत्य में भी जीवन का अंकुरण हो जाता है, श्रद्धा न हो
तो सत्य भी निर्जीव हो जाता है। और श्रद्धा आपकी घटना है, उसका किसी और से संबंध नहीं है। श्रद्धेय से श्रद्धा का कोई संबंध नहीं है, श्रद्धालु से संबंध है। घटना आपके भीतर घटती है। अगर आप श्रद्धालु हैं, तो आप महावीर को हर काल में खोज ही लेंगे; और अगर आप श्रद्धालु नहीं हैं, तो कितने ही महावीर कतारबद्ध होकर आपके पास से निकलते रहें, उनसे आपका कोई संबंध नहीं हो सकता।
इसलिए, एक बुनियादी बात ख्याल में ले लें, अश्रद्धा के लिए तैयारी मत करें; उससे कुछ लाभ होने वाला नहीं है। श्रद्धा की तैयारी रखें, उससे कोई हानि होनेवाली नहीं है। अश्रद्धा से जो महानतम है, वह खो जाएगा; और श्रद्धा से जो महानतम है, उसका द्वार खुलेगा। लेकिन हम बड़े सचेत रहते हैं कि कहीं श्रद्धा न हो जाए।
एक मित्र एक दिन मुझे सुनने आए। फिर मुझे उन्होंने पत्र लिखा कि मैं
अब दुबारा सुनने नहीं आ सकूंगा, क्योंकि मुझे डर लगता है कि कहीं श्रद्धा पैदा न हो जाए; आपकी बातों से कहीं श्रद्धा पैदा न हो जाए, नहीं तो मेरा पूरा जीवन अस्त व्यस्त हो जाएगा। मैं भयभीत हो गया हूं, इसलिए अब मैं तब तक सुनने नहीं आऊंगा, जब तक जीवन को बदलने की पूरी तैयारी न हो।
यह तैयारी कब होगी? कैसे होगी? और इस तैयारी को कल पर छोड़ने की जरूरत क्या है?
कुछ भय है। श्रद्धा से भय है, जैसा प्रेम से भय है। आदमी प्रेम करने से डरता है। क्योंकि प्रेम करते ही दूसरा व्यक्ति बड़ा मूल्यवान हो जाता है। और प्रेम में पड़ते ही दूसरा व्यक्ति इतना मूल्यवान हो जाता है कि अपना मूल्य भी कम हो जाता है। प्रेम से आदमी डरते हैं; प्रेम से भयभीत होते हैं। प्रेम खतरनाक है। इसलिए बहुत लोग तो प्रेम करते ही नहीं, सिर्फ प्रेम का दिखावा करते हैं। इन्हीं समझदार लोगों ने विवाह की संस्था ईजाद की। बिना प्रेम में पड़े काम वासना का संबंध स्थापित हो जाए, विवाह का मतलब यही है। क्योंकि प्रेम में खतरा है, डर है। और दूसरा आदमी शक्तिशाली हो जाता है, और हम एक उलझन में पड़ जाते हैं। विवाह में कोई डर नहीं है, प्रेम की घटना ही नहीं घटती। बिना प्रेम के दो व्यक्ति साथ रहने लगते हैं और एक-दूसरे के शरीर का उपयोग करने लगते हैं।
विवाह चालाक, चतुर लोगों की ईजाद है। इसलिए विवाह में जो भरोसा करते हैं, वे प्रेम में पड़ने वाले लोगों को पागल कहते हैं। उनके हिसाब से वे बिल्कुल ठीक कहते हैं। क्योंकि उनको गणित नहीं आता, तर्क नहीं आता। वे बिल्कुल भूल कर रहे हैं। प्रेम में झंझट में पड़ेंगे, लेकिन जो झंझट में पड़ने से बचता है, वह जीवित ही नहीं रह जाता; और जितनी झंझट से बचता है, उतना मुर्दा होता चला जाता है। मरा हुआ आदमी बिल्कुल झंझट में नहीं होता। आपको झंझट से बिल्कुल हंड्रेड परसेंट बचना हो--सौ प्रतिशत, तो आप मर जाएं; आप

जिंदा न रहें। श्वास लेने में भी खतरा है इन्फेक्शन का, डर है बीमारी का। उठने-बैठने में खतरा है।
जीना बड़ा खतरनाक है। और जो आदमी जितना ज्यादा जीना चाहता है, उतने बड़े खतरे में उसे उतरना होगा। प्रेम बड़ा खतरा है--शिखर छूते हैं आप, लेकिन खाई में गिरने का डर भी पैदा हो जाता है। जो आदमी सपाट जमीन पर चलता है--विवाह सपाट जमीन है, उसमें कभी कोई गिरता नहीं। कोई शिखर भी नहीं छूता गौरीशंकर के, कोई गिरता भी नहीं। लेकिन जो गौरीशंकर के शिखर पर चढ़ने की कोशिश कर रहा है, वह खतरा हाथ में ले रहा है। लेकिन ध्यान रहे, जहां खतरा इतना बड़ा होता है, जैसा गौरीशंकर के नीचे की खाई, उस खतरे की चुनौती में ही जीवन भी अपने पूरे शिखर पर उठता है। जिसके जीवन में एडवेंचर नहीं है, दुस्साहस नहीं है, वह आदमी जीवित ही नहीं है। वह पैदा ही नहीं हुआ। वह अभी अपनी मां के गर्भ में है। अभी वहां से उसका छुटकारा नहीं हुआ।
प्रेम खतरे में ले जाता है। लेकिन, श्रद्धा महाखतरे में ले जाती है। क्योंकि प्रेम तो एक साधारण व्यक्ति का भरोसा है; और श्रद्धा एक असाधारण व्यक्ति का भरोसा है। प्रेमी तो हमें इस जगत के बाहर नहीं ले जाएगा; इसके भीतर ही परिभ्रमण होगा--श्रद्धेय हमें इस जगत के बाहर ले जाने लगेगा। वह हमें उठाने लगेगा उन अछूती ऊंचाइयों की तरफ, जिनको कभी-कभार ही सदियों में कोई आदमी छू पाता है।
वासना प्रेम का खतरा उठाने की तैयारी करवा देती है। श्रद्धा उस अनंत, असीम, अनजान, अज्ञात, और अज्ञात ही नहीं, अज्ञेय घटना के लिए साहस दे देती है। श्रद्धा में भय है सिर्फ एकः अपने को खोने का भय। श्रद्धा में अहंकार खोएगा। क्योंकि श्रद्धा का अर्थ है, आप अपने अहंकार को कहीं छोड़ रहे हैं और किसी को कह रहे हैं कि आज से तुम मेरी आंख हुए, अब मैं तुम्हारे द्वारा देखूंगा; तुम मेरे कान हुए, तुम्हारे द्वारा मैं सुनूंगा; तुम मेरे हृदय हुए, तुम्हारे द्वारा मैं धड़कूंगा। अब मैं गौण हुआ छाया की तरह, तुम मेरी आत्मा हो गए।
श्रद्धा का अर्थ हैः किसी व्यक्ति में प्रकाश की घटना को अनुभव करके अपने को उस प्रकाश के साथ जोड़ देना; उसकी छाया बन जाना। लेकिन वासना से भरा व्यक्ति, अनंत वासनाओं से भरा हुआ व्यक्ति अपने अहंकार को छोड़ने से डरता है। क्योंकि अहंकार के छूटते ही सारी वासनाएं भी गिरती हैं और अहंकार को हम बढ़ाए जाना चाहते हैं, जब तक कि असंभव ही न हो जाए।
सुना है मैंने, एक दिन मुल्ला नसरुद्दीन ज्यादा पी गया है और मधुशाला में लड़ने के मिजाज से भर गया; लड़ने का मूड आ गया। तो उसने खड़े होकर चारों तरफ देखा और कहा कि इस मधुशाला में अगर कोई हो माई का लाल तो बाहर निकल आए, उसे मैं चारों खाने अभी चित्त कर दूं!
लेकिन किसी ने उस पर ध्यान न दिया। और लोग भी अपने नशे में लीन थे। उससे उसकी हिम्मत बढ़ी और उसने कहा कि छोड़ो, मधुशाला में क्या रखा है! इस पूरे गांव में भी अगर कोई माई का लाल हो तो खबर कर दो।
फिर भी किसी ने ध्यान न दिया तो उसकी आवाज और बढ़ गई, और उसने कहाः "इस पूरे देश में, अगर किसी ने अपनी मां का दूध पीया हो तो प्रकट हो जाए! फिर भी कोई प्रकट न हुआ।" तो उसने कहा, "इस पूरी पृथ्वी पर है कोई मर्द?"
एक आदमी जो बड़ी देर से सुन रहा था, उसे बड़ी हैरानी हुई कि यह आदमी बढ़ता
ही चला जा रहा है। तो उसने अपना गिलास सरकाया और आकर मुल्ला को दो-चार घूंसे मारे। मुल्ला नशे में तो था ही, जमीन पर गिर पड़ा। वह आदमी उसकी छाती पर बैठ गया।
मुल्ला सोचने लगा, और उसने उस आदमी से कहाः लगता है मैं जरा अपनी सीमा
के बाहर बढ़ गया--आई रेकंन आई हैव गान बियांड माई लिमिट--उतर भाई, देश तक ही हम दावा करते हैं; नीचे उतर, पृथ्वी का हम दावा ही छोड़ते हैं।"
आपका अहंकार भी बढ़ता चला जाता है, जब तक कि आप उस जगह नहीं पहुंच जाते, जहां अड़चन हो जाती है, जहां उलझ जाते हैं। लेकिन पीछे हटना भी बहुत मुश्किल है। आगे बढ़ नहीं पाते; पीछे हटना बहुत पीड़ा देता है, चोट देता है-- अटके रह जाते हैं। अनुभव में भी आने लगे कि सीमा से बाहर बढ़ गए तो भी

मुल्ला नसरुद्दीन जैसी हालत में आप नहीं होते कि वापस इतनी बाहर सरलता से लौट जाएं। दावे को मुकरना, छोड़ना बहुत कठिन हो जाता है।
हम सब दावों के साथ जी रहे हैं। अहंकार बाधा बनता है, क्योंकि हमने इतनी घोषणाएं कर रखी हैं। हर आदमी ने अपने मन में सोच रखा है कि है ही नहीं पृथ्वी पर कोई जिसके सामने मैं झुकूं। चाहे आपको पता हो और चाहे न पता हो, ये मन की धारणा है। और आपका मन ऐसा सोचता है कि मुझसे श्रेष्ठ हो भी कैसे कोई सकता है! ऐसी धारणा से भरा हुआ अहंकार श्रद्धा को कैसे उपलब्ध होगा! श्रद्धा का अर्थ ही है इस बात की प्रतीति कि मुझसे महान की संभावना है। और यह संभावना आपको क्षुद्र नहीं बनाती, क्योंकि यह आपके भी महान होने का द्वार खोलती है।
महावीर पर श्रद्धा आपके महावीर होने की संभावना बनेगी ही। अपने पर ही श्रद्धा से आप जो हैं, वही रह जाएंगे। जैसे बीज अपने पर ही भरोसा कर ले और आस-पास के वृक्षों को देख कर भी अनदेखा कर दे, तो फिर उसमें अंकुर कैसे फूटे! अंकुर फूटता है अज्ञात की उठान से, उमंग से।
फिर, समर्पण--श्रद्धा एक तरह का विश्राम है। आपके चित्त में इतना कोलाहल है कि विश्राम कहां है? इसलिए जो लोग श्रद्धा को उपलब्ध हो जाते हैं, उनकी शांति देखने जैसी है। क्योंकि उन्हें फिर कोई अशांत नहीं कर सकता। असल में उन्होंने अशांति का कारण ही किसी और के हाथ में सौंप दिया। किसी और के चरणों में जाकर उन्होंने कह दिया कि सारा बोझ अब मैं छोड़ता हूं, अब "तू" समझ।
ऐसा सदा होने वाला नहीं है, लेकिन प्राथमिक चरण में बड़ा बहुमूल्य है। धीरे-धीरे तो शिष्य गुरु से मुक्त हो जाता है। अगर गुरु से शिष्य मुक्त न हो पाए, तो गुरु सदगुरु नहीं था। गुरु की पूरी चेष्टा यह है कि शिष्य जल्दी से जल्दी उससे मुक्त हो जाए; अपनी यात्रा पर निकल जाए, जहां श्रद्धा की कोई जरूरत नहीं। क्योंकि सत्य का प्रकाश स्वयं आने लगता है। अपनी आंखों से देखने लगे; क्योंकि दूसरों की आंखों से कितना भी देखा जाए, तो भी धुंधला ही होगा। अपने पैरों से चलने लगे; क्योंकि मोक्ष तक कोई भी दूसरे के कंधों पर सवार होकर नहीं पहुंच सकता। लंगड़े-लूलों के लिए वहां कोई जगह नहीं है। लेकिन प्राथमिक चरण में किसी का सहारा बड़ा कीमती हो जाता है। वह सहारा वैसे ही है, जैसे एक दीये की निकटता से दूसरे दीये में ज्योति पकड़ जाती है, फिर तो दूसरा दीया अपनी यात्रा पर खुद चल पड़ता है। फिर तो पहला दीया बुझ भी जाए, तो भी दूसरे दीये को कोई बाधा नहीं आती। फिर पहला दीया खो भी जाए, तो भी दूसरा दीया अपनी यात्रा पर होता है।
श्रद्धा प्राथमिक है--पहला स्पार्क, एक पहली चोट--जहां पहली अग्नि पैदा होती है, वहीं उपयोगी है। अंततः उसका कोई उपयोग नहीं, लेकिन प्रथम का बड़ा मूल्य है। चित्त बहुत ज्यादा वासना से ग्रस्त हो, तो हम विश्राम नहीं कर पाते। और जब तक विश्राम न कर पाए मन, तब तक हम इकट्ठे नहीं हो पाते। यह थोड़ा समझ लेना जरूरी है।
हम बंटे कटे रहते हैं। महावीर पर थोड़ी श्रद्धा भी होती है, थोड़ी अश्रद्धा भी होती है, थोड़ा उनके विपरीत वाला जो कह रहा है, उस पर भी थोड़ा भरोसा होता है; थोड़ा अपने पर भी भरोसा होता है। ऐसा खंड-खंड होते हैं। लेकिन श्रद्धा अखंड ही हो सकती है, खंड-खंड नहीं। आप अगर बहुत खंडों में बंटे हैं, तो आप की हालत ऐसी है, जैसे किसी व्यक्ति के बहुत से परिचित हों, लेकिन मित्र कोई भी न हो।
लेकिन परिचित और मित्र में बड़ा फर्क है। एक्वेंटेंस--परिचय, परिचय है, ऊपरी है। मित्रता एक गहन संबंध है, एक आंतरिक तीव्रता है--एक मिलन है, जहां एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति में प्रविष्ट हो जाता है।
तो आप बहुत व्यक्तियों से परिचित हो सकते हैं, वह मित्रता नहीं है। और
आप बहुत खण्डों में बंटे हो सकते हैं--थोड़ी श्रद्धा महावीर पर भी, थोड़ी श्रद्धा बुद्ध पर भी, थोड़ी श्रद्धा कृष्ण पर भी लेकिन किसी से भी मित्रता न बनेगी। इस सदी में इस तरह का एक खतरा हुआ है। कुछ अति समझदार लोगों ने, लोगों को ऐसा समझाना शुरू किया है कि महावीर भी वही कहते हैं, कृष्ण भी वही कहते हैं, बुद्ध भी वही कहते हैं, यह बात निहायत गलत है। और उन सभी का मतलब

एक है। यह सबको लीप पोत देने जैसा है। उनके मतलब बड़े भिन्न हैं। उनकी मंजिल एक है, उनके रास्ते बड़े भिन्न हैं--अंतिम परिणाम एक है। लेकिन अंतिम परिणाम से क्या लेना-देना? आप वहां अभी हैं नहीं। जहां आप हैं, वहां महावीर और बुद्ध बिल्कुल भिन्न हैं, जैसे पूरब-पश्चिम। जहां आप हैं, वहां कृष्ण और क्राइस्ट बिल्कुल भिन्न हैं। वहां अगर आपने खिचड़ी बनाने की कोशिश की, जिसको कुछ लोग "धर्म-समन्वय" कहते हैं--वह खिचड़ी है, समन्वय नहीं है। और खिचड़ी में भी कुछ पौष्टिक तत्व हो--है! इस धर्मों की खिचड़ी में कोई पौष्टिक तत्व नहीं रह जाता; क्योंकि आप सभी रास्तों की खिचड़ी नहीं बना सकते। चलना तो एक ही रास्ते पर पड़ता है। और जब आप एक रास्ते पर चलते हैं, तब उचित है कि सभी रास्तों से आपका चित्त हट जाए ताकि पूरी शक्ति एक प्रवाह से लग जाए।
लेकिन जो चित्त खंडित है बहुत चीजों में, वह कोई श्रद्धा पैदा नहीं कर पाता। जो कहता है, हमारी श्रद्धा सभी में है, समझना कि उसकी श्रद्धा किसी में भी नहीं है। असल में आपको अगर सबमें से किसी से भी श्रद्धा का संबंध जोड़ने से बचना हो, तो सबमें श्रद्धा करना--अच्छा है। आज सुबह कुरान भी पढ़ ली, थोड़ी गीता भी पढ़ ली, और फिर पीछे गीत गा लिया--"अल्लाह-ईश्वर तेरे नाम, सबको सन्मति दे भगवान।"
नहीं, गीता और कुरान बड़े भिन्न रास्तों पर जाते हैं। और गीता मांगती
है पूरी श्रद्धा, और कुरान भी मांगता है पूरी श्रद्धा; महावीर भी मांगते हैं पूरी श्रद्धा।
श्रद्धा का यह अर्थ नहीं है कि आप अंधे हो जाएं। श्रद्धा का अर्थ यह
है कि आप पूरे महावीर के साथ खड़े हो जाएं, अधूरे खड़े होने का कोई अर्थ नहीं है। लेकिन हम सब चीजों में अधूरे हैं। न तो हमने कभी प्रेम किसी को ऐसे किया है कि पूरी पृथ्वी से हमारा सारा प्रेम सिकुड़ कर एक धारा में बहने लगे; न हमने कभी मित्रता ऐसी की है कि हमारे पूरे जीवन का प्रकाश, हमारे पूरे जीवन की ऊर्जा एक ही व्यक्ति के साथ गहनता से जुड़ जाए।
इसका यह मतलब नहीं है कि सब दुश्मन हो जाएंगे। जिंदगी बड़ी बेबूझ है। अगर आप एक व्यक्ति से इतने गहरे जुड़ जाएं जितना कि जुड़ सकते हैं, आप सारे जगत के प्रति मैत्रीपूर्ण हो जाएंगे। लेकिन मित्रता एक से होगी। वह एक द्वार होगा सारे जगत के प्रति मैत्री का। अगर आप एक व्यक्ति से इतना प्रेम कर लें कि आप भूल ही जाएं; यह संभावना ही खो जाए कि यह प्रेम किसी खंड में बंट सकता है, तो आप सारे जगत के प्रति प्रेम से भर जाएंगे। इस व्यक्ति के माध्यम से वह प्रेम की गंगा बहेगी और सारे जगत में फैल जाएगी, लेकिन बहेगी सदा गंगोत्री से। गंगोत्री पर द्वार बड़ा सकरा होता है; होगा ही। श्रद्धा भी अगर एक पर हो जाए, तो धीरे-धीरे श्रद्धा का प्रकाश सब तरफ पड़ने लगेगा, लेकिन धारा एक से ही बहेगी।
हम इतने खंडित हैं, इस कारण ही किसी तरह के विश्राम को उपलब्ध नहीं होते। मैंने सुना है, मनसविद कहते भी हैं, अनेक लोग सो तक नहीं पाते रात में, और उसका कुल कारण इतना है कि मन इतना बंटा होता है, और नींद एक को आ सकती है, भीड़ को नहीं आ सकती। अगर आप एक हैं, तो सो जाएंगे; अगर भीड़ खड़ी है मस्तिष्क में, तो कैसे सोएंगे?
आपका कोई हिस्सा अभी सिनेमा देखने जाना चाहता है; कोई हिस्सा किताब पढ़ना चाहता है; कोई हिस्सा ध्यान करना चाहता है; कोई हिस्सा सोना चाहता है; कोई हिस्सा कह रहा है कि क्यों रात बर्बाद कर रहे हो सोकर? ऐसे तो जिंदगी खराब हो जाएगी। अगर आदमी साठ साल जीए, तो बीस साल तो नींद में ही नष्ट हो जाते हैं--भोग लो, जिंदगी हाथ से जा रही है। तो चलो किसी क्लब-घर में, किसी नृत्य-घर में।
पच्चीस खंड हैं, उस कारण आप नहीं सो पा रहे हैं। नींद तक असंभव हो गई। क्योंकि नींद के लिए भी थोड़ी एकजुटता चाहिए। प्रेम और भी मुश्किल हो गया है। क्योंकि जब नींद के लिए एकजुटता चाहिए, तो प्रेम के नशे के लिए तो और भी गहरी एकजुटता चाहिए। श्रद्धा करीब-करीब, करीब-करीब खो गई है, क्योंकि उसके लिए बहुत ही अखंडता चाहिए।

मुल्ला नसरुद्दीन पूछता है अपने मनस्विद से कि मैं सो नहीं पाता, कोई उपाय मुझे बताएं। सब विचार करके उसके मनस्विद ने कहा कि तुम्हें थोड़ी विश्राम की कला सीखनी होगी। तो रात आज तुम स्नान करके आराम से बिस्तर पर लेट जाना और फिर अपने शरीर से थोड़ी बात करना, और शरीर को थोड़ी आज्ञा देना। अंगूठे से शुरू करना; कहना, पैर के अंगूठे सो जाओ--टोज, नाउ गो टु स्लीप। और तब अनुभव करना। फिर कहना--पंजे सो जाओ, फिर पैर सो जाओ। ऐसे ऊपर बढ़ते जाना और आखिर में सिर तक आना। और फिर अंत में आंखों के लिए कहना--"नाउ आइज गो टु स्लीप।" और आंखों तक आते-आते तुम सो ही चुके होगे।
नसरुद्दीन भागा हुआ घर आया। कई दिन से सो नहीं पाया था। रात की राह देखी, स्नान किया, बिस्तर ठीक से तैयार किया, फिर लेट गया अपने बिस्तर पर। पत्नी स्नान करने बाथरूम में चली गई। वह लेट गया अपने बिस्तर पर और उसने शुरू किया, जैसा मनस्विद ने कहा था। पैर से शुरू किया कि--नाउ टोज गो टु स्लीप; नाउ फीट गो टु स्लीप, नाउ माई लेग्स गो टु स्लीप; माई हिप्स... और ऐसे- ऐसे वह बढ़ता गया ऊपर। वह बस करीब-करीब आ ही रहा था, जब वह कहने वाला था कि मेरा सिर, माइ हेड, गो टु स्लीप, पत्नी नहा कर बाथरूम से बाहर निकली। उसे देख कर ही उसने जोर से अपने हाथ अपने शरीर पर मारे और कहाः एवरीबडी अवेक इमीजिएटली--एवरीबडी अवेक--सब जाग जाओ।"
वासना सोने तक नहीं देती, तो वासना समर्पण कैसे करने देगी! वासना विश्राम तक में नहीं उतरने देती, तो वासना श्रद्धा मैं कैसे उतरने देगी! क्योंकि श्रद्धा परम विश्राम है, जहां मन कुछ भी नहीं चाह रहा है, और जहां मन कहता है, अब कुछ चाहना भी नहीं है, अब सिर्फ होना है--जस्ट बीइंग। अब सिर्फ मैं होना चाहता हूं। मेरी कोई चाह नहीं है। तब महावीर से संबंध जुड़ता है।
अब हम इस सूत्र में उतरें।
"जो ज्ञातपुत्र--भगवान महावीर के प्रवचनों पर श्रद्धा रख कर छह प्रकार के जीवों को अपनी आत्मा के समान मानता है, जो अहिंसा आदि पांच महाव्रतों का पूर्णरूप से पालन करता है, जो पांच आस्रवों का संवरण अर्थात निरोध करके जीता है, वही भिक्षु है।"
"भिक्षु" शब्द को थोड़ा ख्याल में ले लेना चाहिए क्योंकि जगत में सिर्फ भारत अकेला देश है जिसने भिक्षु को सम्राट होने, के भी ऊपर रखा है। वैसी घटना पृथ्वी पर कहीं नहीं घटी। वह घटना अलौकिक है। सम्राट से ऊपर पृथ्वी पर कहीं भी कोई नहीं रहा है। सिर्फ भारत अकेला देश है, जहां हमने सम्राट के ऊपर भिक्षु को स्थापित किया है। क्योंकि सम्राट भोग का शिखर है, और भिक्षु त्याग का। सम्राट चीजों को संग्रह करता चला गया है, सब कुछ संग्रह करता चला गया है पागल की तरह, और भिक्षु ने सिर्फ अपने को बचाया है; बाकी कुछ भी नहीं बचाया है। सम्राट वस्तुओं को इकट्ठा कर रहा है, भिक्षु सिर्फ अपनी आत्मा को इकट्ठा कर रहा है। सम्राट चीजों में खोया हुआ है, भिक्षु चीजों से अपने को मुक्त कर रहा है ताकि अपने में प्रवेश कर सके। सम्राट की यात्रा बहिर्यात्रा है; भिक्षु की यात्रा अंतर्यात्रा है। "भिक्षु" शब्द परम आदरणीय है। भिक्षु का अर्थ है कि अब जिसके पास अपना कहने योग्य कुछ भी नहीं सिवाय स्वयं के होने के। जो किसी चीज का मालिक नहीं रहा है। जिसका कोई पजेशन नहीं। जिसका कोई परिग्रह नहीं। जो कहता है, मेरा कुछ भी नहीं है; सिर्फ मै हूं, जिसके पास एक दाना भी अपना कहने को नहीं है। जिसका सब-कुछ संसार का है और जिसने एक भेद रेखा स्पष्ट अनुभव कर ली है कि मेरा मैं ही अकेला हो सकता हूं, कोई संपदा मेरी नहीं हो सकती; क्योंकि जब मैं नहीं था, तब संपदा थी, महल थे, जमीन थी, जायदाद थी, हीरे थे, मोती थे; जब मैं नहीं रहूंगा, तब भी वे होंगे; मैं व्यर्थ ही बीच में अपना परिग्रह स्थापित करके परेशान हूं। उससे हीरे-मोती परेशान नहीं होते, उससे मैं ही परेशान होता हूं।
जब आप मर जाएंगे तो आपका घर नहीं रोएगा; बड़ा मजा है। लेकिन आपका घर जल जाए तो आप रोएंगे। मालिक कौन है? आपका हीरा खो जाए, तो हीरा आपकी जरा भी चिंता नहीं करेगा। हीरा सोचगा ही नहीं कि आप कहां खो गए। आप जैसे बहुत लोग

आए और खो गए। लेकिन आप बड़ी मुश्किल में पड़ जाएंगे। और आप सोचते थे कि आप मालिक हैं। मालिक मुश्किल में पड़ता है।
नहीं, जिन चीजों को हम सोच रहे हैं, हम उनके मालिक हैं, वे हमारी मालिक
हो गई हैं। मालकियत हमारा बिल्कुल वहम है, असत्य है। इसलिए इस देश ने भिक्षु को सर्वोत्तम जीवन की आखिरी ऊंचाई का फूल कहा है, जहां एक व्यक्ति यह अनुभव कर लेता है कि परिग्रह का कोई उपाय नहीं है। वस्तुएं किसी की भी नहीं हो सकती हैं। सिर्फ एक ही घटना है जो मेरी हो सकती है; वह मेरी आत्मा है।
लेकिन हम बड़े अजीब लोग हैं। हम सब चीजों पर दावा करते हैं, सिर्फ उस एक
पर दावा नहीं करते, जिस पर दावा हो सकता है। इसलिए अगर ठीक से समझें तो अर्थ यह हुआ कि हम बहुत चीजों के मालिक नहीं हो पाते, बहुत चीजों के प्रति भिखारी हो जाते हैं। असल में तो हम भिखारी हैं, लेकिन हमको मालिक होने का ख्याल है।
महावीर जिसको भिक्षु कहते हैं, वही मालिक है। लेकिन, वह हम सब अपने को मालिक कहते हैं, इसलिए महावीर ने उसे मालिक कहना उचित नहीं समझा--क्योंकि उससे भ्रांति होगी। हम सभी अपने को मालिक समझते हैं, तो हम सबको ठीक चोट देने के लिए महावीर और बुद्ध दोनों ने उस परम घटना को भिक्षु कहा। बुद्ध अपने को "भिक्षु" कहते हैं, जिनके पास अपनी मालकियत है; और हम अपने को "मालिक" कहते हैं, जो वस्तुओं के गुलाम हैं।
तो जिस दुनिया में गुलाम अपने को मालिक समझते हों, यह उचित ही है कि मालिक अपने को भिक्षु कहे; नहीं तो भाषा में बड़ी गड़बड़ हो जाएगी।
इसलिए हिंदुओं का जो शब्द है, स्वामी, वह जैनों और बौद्धों ने चुनना पसंद नहीं किया। वह शब्द बिल्कुल सही है--एकदम सही है। "स्वामी" का अर्थ हैः "मालिक", जो अपना सचमुच मालिक है। हिंदुओं ने अपने संन्यासी को स्वामी कहा। बिल्कुल ठीक कहा है। यही मतलब लेकिन बुद्ध और महावीर ने उलटा शब्द चुना, "भिक्षु।" उनका व्यंग गहरा है। वे यह कह रहे हैं कि यहां तो सभी अपने को "स्वामी" समझ रहे हैं, यहां तुम भी अपने को स्वामी कहोगे तो भाषा बड़ी गड़बड़ हो जाएगी। और जहां सभी पागल अपने को स्वस्थ समझते हों; वहां स्वस्थ आदमी को अपने को पागल कहना ही उचित है।
कौन है भिक्षु? सच में जो मालिक हो गया। लेकिन सच की मालकियत सिर्फ अपने पर हो सकती है, और किसी पर भी नहीं हो सकती। और जब तक कोई व्यक्ति दूसरे पर मालकियत करने की कोशिश करता है, तब तक अपने जीवन का अपव्यय करता है। वह शक्ति व्यर्थ जा रही है। उसका कोई अर्थ नहीं होने वाला है। वह कहीं भी पहुंचेगा नहीं। वह सिर्फ अपने को रिक्त कर रहा है, चुका रहा है, खत्म कर रहा है; वह नष्ट कर रहा है। वह आत्महंता है--क्योंकि जो नहीं हो सकता, वह नहीं होगा; वह कभी नहीं हुआ है। अलेक्जेंडर और नेपोलियन गुजरते हैं रास्तों से मालिक होने की कोशिश में, और दीन-दरिद्र ही मरते हैं।
ठीक उलटा प्रयोग है महावीर का कि तुम मालिक होने की कोशिश छोड़ दो बाहर
की तरफ। भीतर एक संसार है। भीतर एक साम्राज्य है--एक विस्तार है, एक आकाश है। तुम उसके मालिक हो। तुम उस मालकियत को "क्लेम" कर लो। तुम उस मालकियत के दावेदार हो जाओ। लेकिन ऐसा दावा वही कर पाएगा, जो श्रद्धा से शुरू करे किसी मालिक पर; श्रद्धा से शुरू करे किसी सम्राट पर--महावीर, या बुद्ध, या कृष्ण, या क्राइस्ट, या मोहम्मद जैसे किसी मालिक पर भरोसा करे जिसमें उसे स्वामित्व दिखा हो। जिसमें उसने झलक पाई हो कि यह आदमी गुलाम नहीं है, किसी बात का गुलाम नहीं है। उस पर श्रद्धा से शुरू होगा।
तो जो ज्ञातपुत्र महावीर के वचनों पर श्रद्धा रख कर सब जीवों के भीतर अपनी ही जैसी आत्मा का विचार करता है; अनुभव करता है; अहिंसा, अपरिग्रह, अचौर्य, अकाम, अप्रमाद--पंचमहाव्रतों में जो गति करता है, उनका पालन करता है; रोकता है शक्ति को व्यर्थ जाने से; आस्रवों का ध्यान रखता है, संवरण करता है; और जीवन बाहर भटक न जाए, मरुस्थल में जीवन की ऊर्जा व्यर्थ न हो, भीतर सृजनात्मक हो जाए, अपनी आत्मा को ऐसा निरंतर निरोध करता है व्यर्थ में जाने से, वही भिक्षु है।

हम तो व्यर्थ के लिए आतुर होते हैं। खबर भर मिल जाए, हम दौड़ पड़ते हैं। व्यर्थ को हम न मालूम कितना मूल्य देते हैं। शायद हम कभी सोचते भी नहीं कि हम भेद करें सार्थक और व्यर्थ का; कि हम सार और असार का ठीक विवेचन करें; कि ठीक विवेक करें कि क्या सही है और क्या गलत है।
शंकर ने कहा हैः सार और असार को जो ठीक पहचान लेता है, वही संन्यासी है। क्योंकि जो सार को पहचान लेता है, फिर वह असार से अपने को रोकने लगता है, संवरण करने लगता है। और जो सार को पहचान लेता है, वह चुपचाप, अनजाने ही सार की तरफ बढ़ने लगता है।
गलत की तरफ जाना असंभव है; ठीक की तरफ जाने से रुकना असंभव है। लेकिन ठीक और गलत का बोध होना चाहिए, क्या गलत है और क्या ठीक है। वह हमें जरा भी बोध नहीं है। तो महावीर कहते हैंः वह बोध भी हमें तभी पैदा होगा जब हम किसी पर श्रद्धा करें, जिसे ठीक और गलत जिसके जीवन में आ गए हैं।
सूफी फकीर, बायजीद, अपने गुरु के पास गया और उसने अपने गुरु को कहाः मुझे कुछ शिक्षा दें। तो उसके गुरु ने कहा कि तू सिर्फ मेरे पास रह और मुझको देख, और मेरा निरीक्षण कर--उठना, बैठना, खाना, पीना, सोना, सब तू मेरा देख, और मेरा निरीक्षण कर। उसी निरीक्षण से तुझे विवेक उत्पन्न होगा। बायजीद ने कहाः यह बड़ा कठिन मामला दिखता है। सीधा मुझे कह दिया होता कि क्या करूं, तो मैं कर लेता; कह दिया होता--यह मत करो, तो मैं नहीं करता।
हम सब पचा-पचाया भोजन चाहते हैं। कोई हमारे लिए चबा कर हमारे मुंह में डाल दे। चबाने तक का कष्ट नहीं उठाना चाहते। लेकिन ध्यान रहे, ऐसा पचाया हुआ भोजन अपच ही कर सकता है। वह आपके जीवन में ठीक-ठीक प्रवेश नहीं कर पाएगा। बायजीद के गुरु ने ठीक कहा कि तू बस बैठ और मेरा निरीक्षण कर; मेरे पास बैठ और देख क्या-क्या होता है।
बायजीद बैठ गया। पहले दिन ही एक घटना घटी। एक आदमी आया और बड़ी गालियां देने लगा; बायजीद के गुरु को बड़े अशोभन शब्द बोलने लगा। बायजीद को कई दफा हुआ कि उठ कर एक हमला इस आदमी पर बोल दे। लेकिन गुरु ने कहा था, तुझे कुछ करना नहीं है। तुझे मुझे देखना है। तू कृपा करके बीच में कुछ मत करने लगना, क्योंकि तू यहां करनेवाला नहीं है--तू सिर्फ यहां देखना।
तो उसे बड़ी तकलीफ हो रही है। उसका दिल तो उस आदमी को देखने का हो रहा है, जो गालियां दे रहा है। लेकिन आज्ञा उसे हुई थी कि वह गुरु को देखे। गलत को देखने का मन होता है। ठीक में ज्यादा रस नहीं मालूम पड़ता। गुरु चुपचाप बैठा है। वहां देखने योग्य भी कुछ नहीं लगता। गुरु शांत बैठा है। बायजीद को बड़ी बेचैनी होती है। उसका दिल तो वहां देखने का होता है। लेकिन फिर वह अपने को समझाता है कि देखूं गुरु को ही, इस आदमी से मुझे सीखना भी क्या है जो मैं देखूं। यह असार है। फिर गुरु ने भी कहा है कि मुझे ही देखो। गुरु बैठा है, चुप। वह हंसता रहता है। वह आदमी गालियां देकर चला जाता है, बायजीद अपने गुरु से पूछता है कि इस आदमी ने इतनी गालियां दीं और आप चुपचाप बैठे रहे? उसके गुरु ने कहा कि तू सुबह यहां नहीं था, अब कल सुबह तुझे पता चल जाएगा। क्योंकि सुबह-सुबह एक भक्त मेरा यहां आता है और मेरी इतनी प्रशंसा करता है कि तराजू के एक पलड़े को बिल्कुल जमीन से लगा देता है। एक पलड़े को यह उसको ठीक कर गया है। यह मुझे बिल्कुल बैलेंस कर गया है। यह आदमी बड़ा गजब का है। यह कभी-कभी आता है।
दूसरे दिन सुबह वह आदमी आया जो प्रशंसा के पुल बांधने लगा। बायजीद का फिर मन हुआ उसकी बातें सुनने का, लेकिन उसने ख्याल रखा कि वह गुरु को देखे। भक्त के चले जाने के बाद गुरु ने बायजीद से कहाः "तूने देखा? जगत एक संतुलन है। वहां प्रशंसा भी है, वहां गाली भी है, प्रशंसा से फूल मत जाओ, गाली से पीड़ित मत हो जाओ। वे दोनों एक-दूसरे को काट कर अपने आप शून्य हो जाएंगे। तुम अपनी जगह रहो, तुम बेचैन मत हो--न गाली देने वाले से कुछ प्रयोजन है, न प्रशंसा करने वाले से कुछ प्रयोजन है। वे दोनों आपस में निपट रहे हैं। तुम अलग ही हो--बायजीद से कहाः तू बस मुझे देखता रह और उसी देखने में से तुझे सार का पता चलने लगेगा। और उसी सार पर तू चल पड़ना, और असार से अपने को बचाना। क्योंकि मन असार की तरफ खींचता है। क्योंकि मन बिना असार के जी

नहीं सकता। कचरा ही उसका भोजन है। अपने को रोकना असार की तरफ जाने से, संवरित करना संयम है। सार की तरफ अपने को ले जाना साधना है।
तो महावीर कहते हैं, वही भिक्षु है, जो श्रद्धा से--जैसा महावीर जीते हैं। महावीर के लिए जीवन तो सहज है, क्योंकि उन्हें सबके भीतर एक ही आत्मा का दर्शन होता है; आपको नहीं होता। तो महावीर का जो जीवन है, उस जीवन को गौर से देखकर, उसको आत्मीयता से अपने साथ सम्हाल कर, सार को पहचान कर वैसे ही जीवन में बहने का जो प्रयास है!
प्रथम में वह प्रयास ही होगा। शुरू-शुरू में चेष्टा करनी पड़ेगी; धीरे- धीरे खुद भी दिखाई पड़ने लगेगा। महावीर की आंखों की फिर जरूरत न होगी। फिर भिक्षु स्वयं अपनी यात्रा पर चल पड़ेगा।
महावीर के पास दस हजार भिक्षुओं का समूह था। जैसे-जैसे कोई भिक्षु पक जाता था, वैसे-वैसे महावीर उससे कह देते कि अब तू, जो तुझे मिला है, उसे बांटने निकल जा। अब मेरे पास होने की जरूरत नहीं है। अब मेरे सहारे की कोई आवश्यकता नहीं है।
ठीक वैसे ही, जैसे छोटे बच्चे को मां-बाप चलाते हैं, तो मां हाथ पकड़ लेती है। यह कोई जीवन भर का उपक्रम नहीं है कि मां जीवन भर हाथ पकड़े रहे। कुछ मां नहीं छोड़ती हैं। वे दुष्ट हैं, खतरनाक हैं; वे बच्चे की जान ले लेती हैं। कुछ बाप चाहते हैं कि लड़के का हाथ सदा ही पकड़े रहें। वे सदा चाहते हैं कि वे ही लड़के को चलाते रहें। वे बाप नहीं हैं, वे दुश्मन हैं। लेकिन पहले दिन जब बच्चा खड़ा होता है, तो मां या बाप उसका हाथ अपने हाथ में ले लेते हैं। भलीभांति जानते हुए कि बच्चे के पैर खुद ही थोड़े दिनों में समर्थ हो जाएंगे--समर्थ हैं, लेकिन अभी बच्चे को आत्म-श्रद्धा नहीं है; अभी बच्चे को भरोसा नहीं है कि मैं चल पाऊंगा। वह अभी डरता है। वह कभी चला नहीं है। उसे चलने का कोई अनुभव नहीं है। वह भयभीत होता है। इस भय के कारण कहीं वह ऐसा न हो कि घसीटता ही रहे और चले न, उसका भय भर कम करना है। श्रद्धा से पैरों में चलने की ताकत नहीं आएगी। सिर्फ बाप हाथ पकड़े है
तो लड़का शक्तिपूर्वक खड़ा हो जाएगा, क्योंकि वह कहेगा, कि जब बाप हाथ पकड़े हैं तो मैं निश्चिंत हूं, गिरूंगा तो वह बचाएगा। और एक बार उसके पैर चलने लगे, बहुत जल्दी उसे अनुभव हो जाएगा कि बाप का हाथ मुझे नहीं चला रहा है, मेरे पैर चला रहे हैं। फिर लड़का खुद ही अपने हाथ को अलग करना चाहेगा, क्योंकि खुद पैरों पर खड़े होने का आनंद ही और है।
लेकिन सदगुरु चाहता ही है कि जल्दी से जल्दी वह अपना हाथ छुड़ा ले। इसलिए सदगुरु पूरी कोशिश करता है कि उसका का हाथ छोड़ दे। असदगुरु उसका का हाथ जोर से पकड़ लेता है, असदगुरु इसलिए हाथ पकड़ लेता है कि उसको चलाए--वह चले, इसमें रस नहीं है। वह मुझ पर निर्भर रहे, इसमें रस है।
इसलिए मां-बाप बन जाना बहुत आसान है, सच में मातृत्व और पितृत्व पाना बहुत कठिन है; क्योंकि मां-बाप तो पशु भी बन जाते हैं। उसमें कुछ बहुत बड़े गुण की जरूरत नहीं है। लेकिन फिर कब बच्चे को चलते वक्त छोड़ देना है, कब उसको अपने पैरों पर धक्का दे देना है, कब उसको मुक्त कर देना है निर्भरता से, इस कला को जानने का नाम ही मातृत्व और पितृत्व है।
ठीक पिता वही है, जो जल्दी से जल्दी बच्चे को स्वतंत्र कर दे, मुक्त कर दे; उस जगह खड़ा कर दे, जहां वह खुद चल सकता है। लेकिन हमें भी मजा आता है कि कोई हम पर निर्भर हो। क्योंकि कोई निर्भर हो तो हमको लगता है कि हम भी कुछ हैं। मां-बाप को दुख होता है, जब बच्चा मुक्त होता है। मां पीड़ा पाती है, जब बच्चा अपने पैरों पर चलने लगता है।
उसे पता नहीं है, साफ नहीं है। पहले तो वह बहुत खुश होती है कि बच्चा अपने पैरों चल रहा है। लेकिन उसे पता नहीं है। क्योंकि यह पैरों पर चलना तो प्राथमिक घटना है। अभी और बहुत आयामों में बच्चा पैरों पर चलेगा। कल तक वह अपनी मां की गोद में बैठ जाता था छिपके; जल्दी ही वह शर्म अनुभव करने लगेगा; वह मां की गोद में नहीं बैठना चाहेगा। वह मां के साथ सोता था रात; जल्दी ही वह जल्दी ही वह अपना अलग बिस्तर मांग करेगा कि वह मां के साथ नहीं सोना चाहता है पीड़ा शुरू हो गयी। इस जगत में मां के अतिरिक्त कोई भी स्त्री उसके लिए मूल्यवान नहीं थी; शीघ्र ही कोई स्त्री उसके लिए मां से

ज्यादा मूल्यवान हो जाएगी। मां की तरफ पीठ हो गई। मां दिक्कत देनी शुरू करेगी।
सास-बहुएं जो लड़ रही हैं; उसके पीछे यह मां की झंझट है। वह बेटा, जो उसका एक मात्र प्रेमी था, वह अचानक एक दूसरी स्त्री ने उसे छीन लिया। तो बहू सास को निरंतर ही दुश्मन की तरह मालूम पड़ती है। वह कितना ही अपने को समझाए, उसे लगता है उसका बेटा छीन लिया गया।
यह मां ठीक मां नहीं है। इसे मां होने की कला का पता नहीं है। इसे आनंदित होना चाहिए कि बेटा अब पूरी तरह मुक्त हो गया; पूरी तरह गर्भ के बाहर हो गया। अब दूसरी स्त्री महत्वपूर्ण हो गई। बेटा अब स्वयं एक यूनिट, एक इकाई बन गया। अब वह खुद परिवार बना सकता है। मां से जुड़ा हुआ, उसके पल्ले को पकड़े हुए जो बेटा है, वह यूनिट नहीं है।
शिष्य जब तक गुरु न हो जाए, तब तक गुरु को चैन नहीं है; क्योंकि जब तक
वह गुरु न हो जाए, तब तक धर्म उसके आस-पास फैल नहीं सकता; तब तक उसका अपना परिवार निर्मित नहीं हो सकता। तो गुरु चाहेगा कि जल्दी वह श्रद्धा से मुक्त हो। लेकिन श्रद्धा से वे ही मुक्त हो सकते हैं, जिन्होंने श्रद्धा की है। आप यह मत सोचना कि हम पहले से ही मुक्त हैं; झंझट में ही क्यों पड़ना कि पहले श्रद्धा में पड़ो और फिर मुक्त हो जाओ। जब मुक्त ही होना है, तो श्रद्धा ही क्यों करूं? तो आप श्रद्धा से कभी मुक्त न हो पाएंगे।
ऐसा हो रहा है। जे. कृष्णमूर्ति को सुनने वालों को ऐसी भ्रांति पैदा होती है। जे. कृष्णमूर्ति जो कह रहे हैं, बिल्कुल ठीक कह रहे हैं। वही गुरु का काम है कि वह व्यक्ति को श्रद्धा से मुक्त करे। लेकिन एक पहलू खोया हुआ है। और सुनने वाला बहुत प्रसन्न हो रहा है कि मैं किसी पर भी श्रद्धा नहीं करता; मैं ठीक उसी अवस्था में पहुंच गया हूं, जिसकी कृष्णमूर्ति बात कर रहे हैं।
महावीर और कृष्णमूर्ति की, दोनों की बात अगर आपके जीवन में मिल जाए,
तो ही आप पूरे हो पाएंगे। महावीर प्राथमिक बात कह रहे हैं, क्योंकि प्रथम से ही शुरू करना है। कृष्णमूर्ति अंतिम बात कह रहे हैं, जहां पूरा करना है। वह कहना ठीक है। लेकिन जिनसे वे कह रहे हैं, उनमें अकसर गलत लोग हैं। उनमें वे ही लोग हैं, जो श्रद्धा करने में असमर्थ हो गए हैं। जिनकी श्रद्धा बिल्कुल सूख गई है। जो नपुंसक हैं श्रद्धा की दृष्टि से, इंपोटेंट हैं। जिनमे कोई संभावना नहीं है। जो अपने को समर्पित कर ही नहीं सकते, वे उनको को सुन कर प्रसन्न होते हैं। वे कहते हैं, तब हमारे लिए भी मार्ग है। कोई चिन्ता की बात नहीं। किसी को गुरु बनाने की जरूरत नहीं, अपने ही पैरों पर चलना है।
ये वे ही छोटे बच्चे हैं, जो अभी पालने में पड़े हैं, और जिनको कोई समझा
दे कि बाप का हाथ मत पकड़ना, क्योंकि हाथ पकड़ने से आदमी निर्भर हो जाता है-- ये बच्चे झूलनों में ही पड़े रह जाएंगे; और ये जिंदगी भर घुटनों से ही सरकते रहेंगे। क्योंकि कोई जो खड़ा हो सकता है अपने पैरों पर, और कोई जो इनसे काफी बड़ा है, जो इनको भरोसा दे सके; जिसको देख कर इनको आस्था आए और इनको लगे कि ठीक है, जब यह आदमी खड़ा है, और इतना शक्तिशाली आदमी खड़ा है, बाप से ज्यादा शक्तिशाली आदमी बेटे के लिए और कोई नहीं होता। मुल्ला नसरुद्दीन के जीवन में एक उल्लेख है। उसका बेटा बड़ा होने लगा। एक दिन उसने अपने बेटे को कहा कि तू इस सीढ़ी से ऊपर चढ़ जा। बेटा ऊपर चढ़ गया। वह सदा मुल्ला नसरुद्दीन की बात मानता था। बेटे के ऊपर चढ़ जाने के बाद नसरुद्दीन ने सीढ़ी अलग कर ली, और बेटे से कहा कि अब तू कूद पड़। बेटे ने कहा कि कूद पडूं? हाथ-पैर टूट जाएंगे! नसरुद्दीन ने कहा कि मैं मौजूद हूं, तेरा पिता। मैं तुझे सम्हाल लूंगा। कूद पड़ डर मत। लड़के ने बड़ी हिम्मत बांधी कई बार, और फिर रुक गया। उसने कहाः लेकिन दूरी काफी है। अगर जरा चूका, तो हड्डी-पसली एक हो जाएगी। नसरुद्दीन ने कहा कि जब मैं मौजूद हूं, तो तू डरता क्यों है? लड़का हिम्मत करके, बाप पर भरोसा करके कूद गया। कूदते ही नसरुद्दीन दूर हो गया।
लड़का नीचे गिरा, दोनों पैर लहूलुहान हो गए। उस लड़के ने कहा कि क्या मतलब?

नसरुद्दीन ने कहा, अपने बाप पर भी अब भरोसा मत करना। अब किसी पर भरोसा नहीं, अपने बाप का भी नहीं। अब तुझे मैं स्वतंत्र करता हूं। अब तू अपनी बुद्धि से चल। अब बहुत हो गया।
एक दिन गुरु भी कहेगा कि कूद पड़, अब किसी पर भरोसा नहीं। लेकिन यह संभावना तभी है, जब भरोसा पैदा हुआ हो। श्रद्धा चाहिए, ताकि अंततः श्रद्धा से मुक्त हुआ जा सके। और जो श्रद्धा नहीं कर पाते, वे श्रद्धा-मुक्ति को कभी उपलब्ध नहीं होते। कृष्णमूर्ति को सुनने वाले लोग श्रद्धा से कभी मुक्त नहीं हो सकेंगे। यह बात बड़ी उलटी मालूम पड़ेगी क्योंकि जिन्होंने श्रद्धा ही नहीं की, वहां उनके पास मुक्त होने को भी कुछ नहीं है। महावीर पर श्रद्धा करनेवाला मुक्त हो सकेगा, क्योंकि मुक्त होना श्रद्धा के भीतर ही छिपा है।
"जो सम्यकदर्शी है; जो समूढ़ नहीं है, जो ज्ञान, तप और संयम का दृढ़ श्रद्धालु है, जो मन, वचन, और शरीर को पाप-पथ पर जाने से रोक रखता है; जो तप के द्वारा पूर्व-कृत, पाप-कर्मों को नष्ट कर देता है; वही भिक्षु है।"
"जो सम्यकदर्शी है"--यह शब्द महावीर को बहुत प्रिय है। यह शब्द है भी बड़ा मूल्यवान--राइट वि.जन। सम्यक दर्शक--जिसे ठीक-ठीक देखने की कला आ गई। जिसकी आंखों पर से सारे पर्दे और धारणाए अलग हो गईं। जिसकी आंखें नग्न और शुद्ध हो गईं; और जो देखता है तो देखते वक्त अपने आरोपण नहीं करता, उसका नाम है, "सम्यक दृष्टि।"
हम जब भी देखते हैं तो हमारा आरोपण हो जाता है। हम जो देखते हैं उसमें
हम अपने को मिश्रित कर लेते हैं। हमारा देखना शुद्ध नहीं है। जब आप किसी स्त्री के प्रेम में पड़ जाते हैं, तो आपको स्त्री सुंदर दिखाई पड़ती है। मनसविद से पूछें, वह कहता है कुछ और। आप कहते हैं, स्त्री सुंदर है। इसलिए मैं प्रेम में पड़ गया; और मनस्विद कहता है, आप प्रेम में पड़ गए, इसलिए यह स्त्री सुंदर दिखाई पड़ रही है। क्योंकि यह स्त्री और किसी को सुंदर दिखाई नहीं पड़ रही है। यह अगर सुंदर होती--ऑब्जेक्टिवली, तो सारा जगत इसके प्रेम में कभी का पड़ गया होता; आपको मौका भी नहीं मिलता। इतने दिन तक यह प्रतीक्षा करती रही, कोई प्रेम में नहीं पड़ा। आपकी यह राह देखती रही! उसका कारण है, क्योंकि जो प्रेम में पड़ जाए, उसी को यह सुंदर दिखाई पड़ेगी। सौंदर्य प्रेम का प्रोजेक्शन है। आप अपने प्रेम को आरोपित करते हैं किसी चेहरे पर, किसी शरीर पर। और ऐसा मत समझना कि यह स्त्री सदा सुंदर रहेगी। हो सकता है, कल ही यह असुंदर हो जाए। यह कल यही रहेगी, जो आज है। लेकिन तुम्हारा अगर प्रेम तिरोहित हो गया तो यह असुंदर हो जाएगी।
हम सभी चीजें आरोपित कर रहे हैं। जहां आपको साधुता दिखाई पड़ती है, वह
भी आपका आरोपण है। यह बड़े मजे की बात है, अगर मुसलमान साधु जैन के सामने खड़ा हो, तो जैन को वह साधु नहीं मालूम होता। जैन का साधु हिंदू को साधु नहीं मालूम पड़ता, हिंदू का साधु बौद्ध का साधु नहीं मालूम होता। बौद्ध भिक्षु, बौद्ध का साधु नहीं है। साधुता कुछ हमारी धारणा में है, जो हम आरोपित करते हैं।
अब जैसे देखें--बौद्ध का साधु मांसाहार कर लेता है; शर्त एक ही है कि मरे हुए जानवर का मांस हो--अपने आप मर गए जानवर का मांस हो। बात तर्कयुक्त मालूम पड़ती है। क्योंकि बुद्ध ने कहा, मारने में हिंसा है। अगर कोई किसी गाय को मारकर खाता है, तो हिंसा कर रहा है। लेकिन गाय अपने से मर गई तब इसके मांस को खाने में क्या हिंसा है? बात साफ है। लेकिन बुद्ध का भिक्षु जब मांस खाता है तो जैन का मुनि तो सोच ही नहीं सकता कि यह आदमी... और साधु! इससे ज्यादा असाधु और क्या होगा; मांसाहार कर रहा है। बौद्ध भिक्षु कहता है, गाय मर गई, और उसका मांस न खाओ तो इतने भोजन को तुम व्यर्थ ही नष्ट कर रहे हो। यह किसी के काम आ सकता था। इस भोजन को नष्ट करना हिंसा है।
बड़ा कठिन है। तो हमारी धारणा पर निर्भर है कि हमारी धारणा क्या है। अगर गांधी जी के आश्रम में जाएं तो चाय पीना वर्जित है। सिर्फ राजगोपालाचार्य के लिए विशेष सुविधा गांधी जी करते थे। उनके लिए छूट थी, क्योंकि समधी थे; थोड़ी छूट रखनी जरूरी भी थी। वे दिन भर चाय पीते थे। चाप पाप है।

लेकिन सारी दुनिया के बौद्ध भिक्षु चाय पीते हैं; ध्यान करने के पहले चाय पीते हैं, फिर ध्यान करते हैं। क्योंकि वे कहते हैं, चाय सजग करती है, और सजगता ध्यान में ले जाने में सहयोगी है। बात में थोड़ी जान मालूम पड़ती है, क्योंकि चाय थोड़ा सजग तो करती ही है, शरीर को थोड़ा ताजा तो करती है। उसमें निकोटिन है। निकोटिन खून में दौड़ कर थोड़ी गति बढ़ाता है। खून में थोड़ी गति आती है; आदमी थोड़ा ताजा हो जाता है।
बौद्ध भिक्षु पहले उठ कर चाय पीएगा, फिर ध्यान में लगेगा--क्यों? वह कहता है, सुस्ती के साथ ध्यान करना ठीक नहीं है, ताजगी के साथ करना ठीक है।
तो चाय धर्म का हिस्सा है। और जापान में हर घर में चाय का कमरा अलग है-- संपन्न घर में। और चाय के कमरे की वही प्रतिष्ठा है, जो मंदिर की होती है। क्योंकि जो जगाए, वही मंदिर है।
अब बड़ा मुश्किल है। और जापानी घर में, कुलीन, संपन्न घर में, सुबह चाय
का वक्त, या सांझ चाय का वक्त प्रार्थना का समय है। और जिस ढंग से जापानी चाय पीते हैं, वह निश्चित ही प्रार्थनापूर्ण है। वे शांतिपूर्ण ढंग से चाय के कमरे में बैठते हैं। वहां कोई बातचीत नहीं करेगा, क्योंकि बातचीत व्याघात है। सब लोग मौन होकर भीतर आएंगे। गृहिणी खास तरह के कपड़े पहने होगी, जो उसी कमरे के लिए बनाए गए हैं--बिल्कुल ढीले, साधु-वेश के। फिर वह चाय बनाना शुरू करेगी। और चाय बनाना पूरा एक रिचुअल है, जैसे पूजा कर रही हो। एक-एक चीज को इतनी व्यवस्था से करेगी, और सारे लोग बैठ कर निरीक्षण करेंगे। केतली उबलने लगेगी। चाय की धीमी-धीमी आवाज आने लगेगी। और सब शांत बैठ कर उस चाय की आवाज को सुन रहे हैं।
यह भी ध्यान का हिस्सा हो गया। फिर वह चाय जब दी जाएगी तो उसको बड़े पवित्र भाव से ग्रहण करना है, वह पूजा है। फिर उस चाय की चुस्कियां लेते वक्त ध्यान रखना है कि सजगता बढ़े और चाय के बाद ध्यान में उतर जाना है।
अब बड़ा मुश्किल है। किसको साधु कहिए, किसको असाधु कहिए? मुसलमान फकीर
को देख कर हम मान नहीं सकते कि साधु है। मुसलमान फकीर हमारे संन्यासी को देख कर नहीं मान सकता कि साधु है।
मोहम्मद ने नौ विवाह किए--नौ! हम तो एक के लिए भी महावीर को आज्ञा नहीं
दे सकते। महावीर ने विवाह किया है, ऐसा लगता है। लेकिन उनका एक संप्रदाय, दिगंबर, मानता है कि नहीं, नहीं किया। क्योंकि दिगंबर संप्रदाय को यह बात ही बेहूदी लगती है कि महावीर और विवाह करे! यह बात ही बेहूदी है। किया भी हो--लगता है कि किया है, क्योंकि उनकी लड़की के नाम का उल्लेख है; उनके दामाद के नाम का उल्लेख है तो लगता है कि किया है क्योंकि झूठ लड़की का नाम और दामाद का नाम कहां से आ जाता है? और कौन फिक्र करता है कि झूठ उनका विवाह करवाओ! लेकिन मानने वालों को जरा पीड़ा लगती है क्योंकि बड़ी सख्ती से उसने ब्रह्मचर्य की धारणा को पकड़ा है, और अपनी धारणा को वह महावीर पर आरोपित करता है, उनको विवाह नहीं करने देता।
मोहम्मद नौ विवाह करते हैं, तो दिगंबर जैन सोच भी नहीं सकता कि मोहम्मद में कुछ भी हो सकता है। वह सोचेगा, उससे तो हम ही बेहतर, कम से कम एक ही विवाह किया है। लेकिन अगर मुसलमान से पूछें, जिसने मोहम्मद को प्रेम किया है और श्रद्धा की है, तो वह पायेगा कि मोहम्मद की साधुता है।
बड़ा मुश्किल है! क्योंकि मोहम्मद के वक्त में अरब में स्त्रियों की संख्या चार-गुनी ज्यादा थी पुरुषों से। क्योंकि पुरुष युद्ध में जाते, सैनिक बनते, कट जाते, पिट जाते, मर जाते; स्त्रियां बढ़ती चली जातीं। तो सारा मुल्क व्यभिचार में डूबा था। जहां एक पुरुष हो, चार स्त्रियां हों-- सोचें, वहां क्या हालत होगी। सारा मुल्क व्यभिचार में था।
तो मोहम्मद ने नियम बनाया कुरान में कि चार विवाह प्रत्येक व्यक्ति करे, कर सकता है, ताकि उस व्यभिचार से छुटकारा हो। और मोहम्मद से जिस स्त्री ने भी निवेदन किया--विधवाएं, गरीब स्त्रियां, उन्होंने सबसे विवाह कर लिया--नौ विवाह किए, और इन सभी नौ स्त्रियों को मोहम्मद ध्यान, पूजा और प्रार्थना की तरफ ले गए।
आपकी कितनी स्त्रियां हैं, यह सवाल नहीं है। आप उनको कहां ले जा रहे हैं, यह सवाल है। अपनी स्त्री को आप अपने साथ नरक ले जाएंगे। वह भी साथ दे

रही है। दोनों का कोआपरेशन है। दोनों नरक की यात्रा कर रहे हैं। दोनों एक ही गाड़ी के दो पहिए हैं; नरक की तरफ जा रहे हैं।
मोहम्मद उन नौ स्त्रियों को, जितनी ऊंचाई पर ले जाया जा सकता है, ले गए। और मोहम्मद का विवाह निश्चित ही, आप जैसा विवाह करते हैं, वैसा विवाह नहीं है, क्योंकि मोहम्मद की उम्र थी चौबीस वर्ष, उन्होंने जब पहला विवाह किया, और उस स्त्री की उम्र थी चालीस वर्ष। चौबीस वर्ष के जवान लड़के से पूछिए कि वह चालीस वर्ष की बूढ़ी स्त्री से शादी करने को तैयार है? चालीस वर्ष मोहम्मद के जमाने के, अब के नहीं है, क्योंकि अब तो चालीस वर्ष में भी स्त्री उतनी बूढ़ी नहीं हो पाती। मोहम्मद के वक्त में तो चालीस वर्ष खातमा था क्योंकि तब अठारह या बीस साल औसत उम्र थी। चालीस साल तो आखिरी बात थी। चालीस साल की स्त्री से जवान लड़के का विवाह करना है। साधुता थी। बड़ा मुश्किल है। हां पुरुष अपने से छोटी उम्र की लड़की से शादी करना एकदम आसान पाता है। चाहता ही है कि करे, लेकिन अपने से बड़ी उम्र की लड़की से शादी करना बड़ा उलटा मालुम होता है। लेकिन मोहम्मद ने किया।
निश्चित ही, यह विवाह साधारण कामुक-यौन संबंध नहीं था। और जिस पहली स्त्री से उन्होंने विवाह किया, उस स्त्री ने सबूत भी दिया; क्योंकि वही स्त्री पहली मुसलमान होनेवाली थी--पहली। जिस दिन इलहाम हुआ मुहम्मद को, जिस दिन कुरान की पहली आयत उन पर उतरी, तो वे इतने घबड़ा गये, क्योंकि वे बिल्कुल गैर पढ़े-लिखे थे, और बहुत सीधे-सीधे आदमी थे। उन्होंने कभी सोचा नहीं था कि परमात्मा की कोई शक्ति मुझे अपना वाहन चुन सकती है। वे इतने घबड़ा गये कि उनके हाथ पैर कंपने लगे। वे घर आकर कंबल ओढ़कर सो गये। उनकी पत्नी ने कहा कि तुम्हें हुआ क्या? तुम बिल्कुल ठीक गये थे। उन्होंने कहा कि पूछ ही मत। तीन दिन तू मुझसे बात ही मत कर। मैं बहुत घबड़ा गया हूं।
तीन दिन में वे आश्वस्त हुए। हिम्मत उन्होंने जुटायी कि मैं कहूं। क्योंकि उन्हें लगा कि लोग क्या कहेंगेः कि एक गंवार, अपढ़, मुहम्मद यह पैगम्बर हो गया! अहंकार--लोग कहेंगे कि अहंकारी हो गया। मैं सीधा-साधा आदमी, पैगंबर होने की कभी सोची भी नहीं।
तीन दिन बाद उन्होंने अपनी पत्नी को डरते हुए कहा कि तू किसी से कहना मत। मेरे भीतर कुछ घटा है। और मैं वही नहीं रहा, जो मैं था। और कोई आवाज मुझ पर उतरी है, जो अनंत की मालूम पड़ती है, परमात्मा की; मुझे पता नहीं है, किसकी है। लेकिन आवाज बलशाली है, और उसने मुझे पूरी तरह तोड़ डाला है और बदल दिया है। तू किसी को कहना मत, खादीजा!
खादीजा को श्रद्धा आ गयी मुहम्मद की आंखों में देखकर--और उसने कहा कि तुम मुझे दीक्षित करो, खादीजा पहली मुसलमान थी। उसने भरोसा किया। यह प्रेम, यह विवाह साधारण यौन तल पर नहीं था। यह प्रेम-विवाह, सच में पूछा जाये, तो गुरु-शिष्य के तल पर ही था। यह श्रद्धा का ही एक संबंध था।
पर मुश्किल है। हम सोच नहीं सकते; क्योंकि अपनी धारणा हम आरोपित करते हैं। हमारी अपनी साधु की धारणा है, वह हम आरोपित करते हैं। जब कोई आदमी उस धारणा में फिट बैठ जाता है, ठीक बैठ जाता है, तो हम कहते हैं, "साधु"; नहीं बैठता, तो "असाधु"।
महावीर सम्यक-दर्शी उसको कहते हैं, जो अपनी धारणायें दूसरों पर नहीं लादता। जो दूसरों को देखता है, जैसे वे हैं--निष्पक्ष; हर चीज को वैसा ही देखता है, जैसी वह है। जो अपनी तरफ से कोई ताल-मेल नहीं बिठाता। जो अपने को चीजों में नहीं डालता।
बड़ी हैरानी होगी; जो है; आपकी जिंदगी बदल जाए, अगर आप सम्यक-दर्शी हो जायें। क्योंकि तब आपके हाथ में कोहिनूर कोई रख दे, तो आप वही देखेंगे, जो है; कोहिनूर का इतिहास नहीं पढ़ेंगे। आप समझ भी नहीं पायेंगे कि कोई सैकड़ों लोग मर गये हैं इसके पीछे--इस पत्थर के पीछे। आप कहेंगे, यह पत्थर ही है। एक छोटे बच्चे को कोहिनूर दे दें, वह थोड़ी देर में खेल-खालकर, फेंककर भूल जायेगा; क्योंकि उसके पास कोई प्रोजक्शन नहीं है अपना डालने को। लेकिन आपके हाथ में कोहिनूर आ जाए तो आप दीवाने हो जायेंगे। फिर आप चैन से नहीं रह सकते; फिर रात सो नहीं सकते। फिर आप पागल हो जायेंगे। वह पागलपन कौन पैदा कर रहा है? कोहिनूर पैदा कर रहा है, आप कुछ धारणा कोहिनूर पर डाल

रहे हैं; लेकिन कोहिनूर तो पत्थर है। और अगर पत्थर हंसते हैं, तो जरूर हंसते होंगे आदमियों पर कि आदमी भी कैसे पागल हैं कि पत्थरों के पीछे इस बुरी तरह उलझे हैं! इस बुरी तरह पागल हैं!
हम अपनी धारणायें हर चीज में डाल रहे हैं, और हर चीज को हम वैसा देखते हैं, जैसा हम देखना चाहते हैं; वैसा नहीं जैसी वह है। वस्तुएं जैसी अपने में हैं, उनको शुद्धता से देखने का नाम सम्यक दृष्टि है। और जो व्यक्ति वस्तुओं को वैसा ही देखने लगे, जैसी वे हैं--वह मुक्त होना शुरू हो जाता है, क्योंकि फिर उसे कोई भी नहीं बांध सकता। जिसकी दृष्टि मुक्त है, उसकी आत्मा को बांधने का कोई उपाय नहीं है।
"जो सम्यक दृष्टि है, जो अमूढ़ हैं!"
मूढ़ता एक तरह की मूर्च्छा है, जिसमें हम सोए-सोए चलते हैं--जैसे होश नहीं है; क्या कर रहे हैं, इसका कुछ पता नहीं है; क्या हो रहा है, इसका कुछ पता नहीं है--किए जा रहे हैं। आप अपनी जिंदगी से कभी एक दिन की छुट्टी ले लें, चौबीस घंटे की बिल्कुल छुट्टी ले लें और बैठ कर सोचें कि आप क्या कर रहे हैं? यह क्या हो रहा है? आप कहां हैं? आप सारी ताकत लगाए दे रहे--लेकिन कहां पहुंचने के लिए? कोई मंजिल है? कुछ इससे उपलब्ध होने वाला है? कुछ सार इससे निकलेगा? कभी निकला है किसी को? लेकिन दौड़ में इतने उलझे हैं कि सोचने की फुरसत कहां है!
मुल्ला नसरुद्दीन पैंतालीस साल तक नौकरी करता रहा। पैंतालीस साल बाद
जब वह रिटायर हो गया, तो एक दिन उसने पत्नी से कहा कि चाय बहुत ज्यादा गर्म है। इतनी ज्यादा गर्म चाय मुझे बिल्कुल पसंद नहीं। उसकी पत्नी ने कहाः "हद्द करते हो, नसरुद्दीन! पैंतालीस साल इससे भी ज्यादा गर्म चाय तुम पीते रहे; कभी तुमने कहा क्यों नहीं?" उसने कहाः "फुरसत कहां थी; अब रिटायर हो गया हूं, अब फुरसत है। अब तुझे बताता हूं कि एक दिन भी मैं इतनी गर्म चाय नहीं पीना चाहता।"
आप जिंदगी के आखिर में बैठ कर पाएंगे कि आप--क्या करना चाहते थे, वह तो किया नहीं, और जो करना नहीं चाहते थे, वह रते रहे। फुरसत भी नहीं थी कि सोच लेते। अगर आपको आज ही पता चल जाए कि कल सुबह आप समाप्त हो जाएंगे, आपकी जिंदगी का पूरा मूल्यांकन बदल जाएगा। तत्काल आप सोचेंगे कुछ चीजें जो आपने सदा से करना चाहा और टालते रहे; और कुछ चीजें जिन्हें आप सदा करना चाहते थे, चाहेंगे कि अब बंद कर दें--उनका अब कोई सार नहीं है।
लेकिन असलियत यही है कि अगला क्षण भरोसे का नहीं है। आप अगले क्षण समाप्त हो सकते हैं; कल तो बहुत दूर है, अगले क्षण आप समाप्त हो सकते हैं। लेकिन मूढ़ता है। एक मूर्च्छा है, चले जा रहे हैं। भीड़ में धक्कम-धुक्का है; और भी सब लोग जा रहे हैं, उसी में हम भी चले जा रहे हैं। अगर अकेले भी रास्ते पर होते, तो शायद थोड़े आप चौंकते। इतनी बड़ी भीड़ चली जा रही है, जरूर कहीं जा रही होगी। इतने पैर, इतने हाथ, चारों तरफ लोग दबाए दे रहे हैं; सब भागम-भाग, इतनी प्रतिस्पर्धा है कि ये जरूर कहीं पहुंच रहे होंगे। और हमें इतना भरोसा है अपने चारों तरफ की भीड़ पर, उनके शब्दों पर, उनकी इच्छाओं, वासनाओं पर कि वे वासनाग्रस्त लोग हमें भी उन्हीं वासनाओं से भर देते हैं।
नसरुद्दीन जिस दफ्तर में काम करता था। एक दिन जब वह अपने आफिस में आया
तो देखा कि उसकी टेबल पर एक तार रखा है। तो वह भागा, तार में खबर थी कि यौर मदर हेज एक्सपायर्ड--तुम्हारी मां चल बसी है, शीघ्र पहुंचो; तो वह स्टेशन पर पहुंच गया। स्टेशन पर उसके ही दफ्तर के एक क्लर्क ने उससे आकर कहा कि क्षमा करिए, मैं आपको बहुत ढूंढता रहा, आप मिले नहीं। मेरी मां मर गई है, घर से तार आया है। आपकी टेबल पर मैं वह तार छोड़ आया हूं।
नसरुद्दीन ने कहाः धत तेरे की। यही मैं सोचता था कि मेरी मां को मरे
तो दस साल हो गए, तार आज क्यों आया है। लेकिन तार ने ही ऐसी हालत पैदा कर दी कि मैंने कहा, कुछ भी हो, कुछ न कुछ होगा मामला, जाना जरूरी है।
अभी यहां कोई जोर से चिल्ला दे कि आग लग गई, तो आपके हृदय की धड़कन बढ़ जाएगी, पैर तैयार हो जाएंगे भागने को। फिर कोई खबर भी दे दे कि आग नहीं लगी,

आप बैठ भी जाएं, तो भी हृदय थोड़ी देर तक धड़कता ही रहेगा। श्वास जोर से चलती रहेगी, पसीना थोड़ा ही रहेगा।
सपने तक में आप घबड़ा जाते हैं, तो जगकर भी थोड़ी देर घबड़ाये रहते हैं। चारों तरफ की भीड़ घबड़ाई हुई है। चारों तरफ के लोग भागे जा रहे हैं अंधों की तरह--उस में आप भी भागे जा रहे हैं। महावीर इसको "मूढ़ता" कहते हैं। संन्यासी तो वही है, जो इस मूढ़ता के बाहर आ जाए। वही भिक्षु है। अमूढ़-- जो जग जाये और जो जिंदगी की भीड़ के धक्के में न जिये, बल्कि होशपूर्वक सोचे और जिये; देखे और जिये; निर्णय करे और चले, ऐसे ही न चलता जाये।
बेहतर है कुछ न करना, बजाय कुछ करने के जो कि मूढ़ है, जो कि अंधा है। अच्छा है रुक जायें कुछ देर के लिए; कुछ न करें, खाली छोड़ दें और एक दफा जिंदगी को पुनर्विचार कर लें, रिकन्सिडरेशन कर लें; और एक दफा लौटकर पिछला इतिहास देख लें अपना कि क्या कर रहे हैं, कहां जा रहे हैं--अगर सफल भी हो जायेंगे तो कहां पहुंचेंगे, क्या उपलब्ध हो जायेगा?
ऐसी मूढ़ता तोड़ने की जब तक कोई तैयारी न करे, तब तक उसके जीवन में संन्यास नहीं उतरता। संन्यास या भिक्षु होने की संभावना उतरती है मूढ़ता का सिलसिला तोड़कर अमूढ़ होने से होश से भरने से। जो होश से भर जाता है, वह नये पाप नहीं करता। सब पाप मूढ़ता में किये जाते हैं। जो होश से भर जाता है, उसके होश की अग्नि उसके अतीत के किये गये पापों को भी जलाने लगती है। लेकिन मूढ़ आदमी अभी तो पाप करता ही है, भविष्य की योजना भी बनाता है और अतीत के लिए भी दुखी रहता है।
मुल्ला मरते वक्त जो वक्तव्य दिया था, वह याद रखने जैसा है। पुरोहित
ने उससे पूछा कि नसरुद्दीन, अगर तुम्हें फिर से जिंदगी मिले, तो तुमने जो पाप किये हैं, क्या तुम उसे फिर से करना चाहोगे?
नसरुद्दीन ने कहा, "निश्चिय ही, लेकिन जरा जल्दी शुरू करूंगा! इस बार काफी देर कर दी।" पुरोहित तो समझा भी नहीं। उस पुरोहित ने कहा कि प्रार्थना करो परमात्मा से, पश्चाताप करो। क्या पागलपन की बात कह रहे हो? नसरुद्दीन ने कहा, "पश्चाताप मैं भी कर रहा हूं, लेकिन उन पापों के लिए नहीं, जो मैंने किये हैं; बल्कि उन पापों के लिए, जो मैं नहीं कर पाया; नाहक चूक गया; जिंदगी हाथ से निकल गयी।"
मूढ़ता अतीत में भी पाप करना चाहती है, जो कि जा चुका; जहां अब कुछ नहीं किया जा सकता। होशपूर्वक व्यक्ति भविष्य के पापों की योजना छोड़ देता है, वर्तमान के पापों से उसका हाथ अलग हो जाता है, अतीत के पाप उसके इस होश की अग्नि में गिरने लगते हैं, जलने लगते हैं; कुसंस्कार अपने आप जल जाते हैं। उनका जो प्रतिपल है, वह भोग लिया जाता है। मैंने किसी को गाली दी थी, तो मैं गाली पा लूंगा; भोग लूंगा। वह दुख, वह कांटा छिदेगा, उसे मैं साक्षी-भाव से सुन लूंगा और समझूंगा कि एक सौदा, एक संबंध, एक लेने देन पूरा हो गया। इस आदमी से अब हमारा कुछ लेना देना न रहा। मैं ऋण से मुक्त हो गया।
अतीत धीरे-धीरे होश की अग्नि में जल जाता है। और जिस दिन न कोई अतीत का पाप पकड़ता है; न भविष्य की कोई कामना पकड़ती है; न वर्तमान में कोई पाप की मूढ़ता होती है, उस दिन व्यक्ति जहां होता है--वहीं संन्यास है, वहीं भिक्षु का स्वरूप है।
पांच मिनट रुकें।
कीर्तन करें, फिर जायें।

महावीर-वाणी, भाग 2
इक्कीसवां प्रवचन

अस्पर्शित, अकंप है भिक्षु (भिक्षु-सूत्रः 2)

जो सहइ हु गामकंटए,
अक्कोस-पहार-तज्जणाओ य।
भय-भेरव-सद्द-सप्पहासे,
समसुह-दुक्खसहे अ जे स भिक्खू
हत्थसंजए पायसंजए,
वायसंजए संजइन्दिए।
अज्झप्परए सुसमाहिअप्पा,
सुत्तत्थं च वियाणइ जे स भिक्खू।।

जो कान में कांटे के समान चुभने वाले आक्रोश-वचनों को, प्रहारों को, तथा अयोग्य उपालंभो (तिरस्कार या अपमान) को शांतिपूर्वक सह लेता है, जो भयानक अट्टहास और प्रचंड गर्जना वाले स्थानों में भी निर्भय रहता है, जो सुख-दुख दोनों को समभावपूर्वक सहन करता है, वही भिक्षु है।
जो हाथ, पांव, वाणी और इंद्रियों का यथार्थ संयम रखता है, जो सदा अध्यात्म-चिंतन में रत रहता है, जो अपने आपको भलीभांति समाधिस्थ करता है, जो सूत्रार्थ को पूरा जानने वाला है, वही भिक्षु है।

जीवन दो प्रकार का संभव हैः एक शरीर के लिए, एक स्वयं के लिए। जो शरीर
के लिए ही जीते हैं, मृत्यु के अतिरिक्त उनकी कोई और दूसरी नियति नहीं है। जो स्वयं के लिए जीना शुरू करते हैं, वे अमृत को उपलब्ध हो जाते हैं। मनुष्य मृत्यु और अमृत का जोड़ है। शरीर मरणधर्मा है। शरीर में जो छिपा है, वह अमरण-धर्मा है। अगर शरीर ही सब-कुछ हो जाए, और जीवन की आधारशिला बन जाए, तो हम सिर्फ मरते हैं, जीते नहीं हैं। जब तक शरीर में जो छिपा है-- अदृश्य, चैतन्य, आत्मा, परमात्मा--जो भी नाम हम उसे दें, जब तक वह हमारे जीवन का आधार नहीं बनता, तब तक हम वास्तविक जीवन को जानने से वंचित ही रह जाते हैं।
शरीर का जीवन इंद्रियों का जीवन है, दिखाई नहीं पड़ता; खुद स्मरण भी नहीं आता, क्योंकि हम उसमें इतने डूबे हैं कि देखने के लिए जितनी दूरी चाहिए, वह भी नहीं है; परिप्रेक्ष्य चाहिए, फासला चाहिए, वह भी नहीं है। अधिक लोग इंद्रियों के सुख के लिए ही अपने को समर्पित करते रहते हैं। इंद्रियों की बलिवेदी पर ही उनका जीवन नष्ट हो जाता है।
सुना है मैंने, पुराने दिनों में यूनान में भोजन की टेबल पर भोजन के साथ-साथ, थाली के पास ही पक्षियों के पंख भी रखे जाते थे, ताकि अगर भोजन बहुत पसंद आया हो, तो आप पंख को उठा कर वमन कर लें, गले में छुआ कर, और फिर से भोजन कर सकें।
सम्राट नीरो के संबंध में कहा जाता है कि वह दिन में कम से कम बीस बार भोजन करता था। बीस बार भोजन करने के लिए जरूरी है कि हर बार भोजन करने के बाद उलटी की जाए, ताकि शरीर में भोजन न पहुंच पाए, भूख बनी रहे। तो सम्राट नीरो के पास दो चिकित्सक सिर्फ वमन करवाने के लिए सदा रहते थे।
सिर्फ स्वाद के लिए व्यक्ति जीवित है। और उस स्वाद के लिए कष्ट भी सहने की तैयारी है। बीस दफा वमन करना, भोजन करना--तो जैसे सारा जीवन ही एक ही काम में लीन हो गया। जैसे आदमी सिर्फ एक यंत्र है, जिसमें भोजन डालना है। और आदमी का जैसे सारा सुख स्वाद में ठहर गया।
नीरो अतिशयोक्ति मालूम पड़ता है, लेकिन हम भी बहुत भिन्न नहीं है। बीस बार हम भोजन न करते हों, लेकिन बीस बार आकांक्षा जरूर करते हैं। हमारी जो आकांक्षा है, नीरो ने उसे सत्य बना लिया; वास्तविक बना लिया था, इतना ही फर्क है। लेकिन बहुत लोग हैं जो चौबीस घंटे भोजन का चिंतन कर रहे हैं। चिंतन भी भोजन करने जैसा ही है; क्योंकि चिंतन में भी जीवन, उतनी ही शक्ति, उतनी ही ऊर्जा नष्ट होती है।

कुछ लोग हैं जो कामवासना के लिए ही जीते रहते हैं; जैसे जीवन का एक ही लक्ष्य है कि शरीर किसी भांति कामवासना का सुख ले ले; क्षण भर को डूब जाए बेहोशी में। फिर उनका चित्त चौबीस घंटे वही सोचता रहता है। फिर उनकी कविता हो, कि उनका उपन्यास हो, कि उनकी फिल्म हो, कि उनका संगीत हो, नृत्य हो, सभी कामवासना से आपूर होता है।
अगर हम आधुनिक जीवन को ठीक से देखें, और आधुनिक मन का ठीक विश्लेषण करें, तो ऐसा लगता है जैसे आदमी जमीन पर सिर्फ इसलिए है, उसका शरीर सिर्फ इसलिए है कि किसी तरह कामोत्तेजना में उसको नष्ट कर लिया जाए। और यह पागलपन इतनी दूर तक प्रवेश कर जाता है कि जिन चीजों से कामवासना का कोई भी संबंध नहीं है, उन्हें भी हम कामवासना से ही जोड़ कर चलते हैं।
अखबार देखें। विज्ञापन देखें। जिनका कोई संबंध कामवासना से नहीं है,
उन चीजों को भी बेचना हो तो उनको काम-प्रतीकों के साथ जोड़ना पड़ता है। कार का क्या संबंध है कामवासना से? लेकिन उसके पास एक सुंदर, नग्न स्त्री को खड़ा कर दिया जाए तो कार का विज्ञापन ज्यादा प्रभावकारी हो जाता है। लोग कार को नहीं खरीदते, जैसे उस नग्न स्त्री को कार के पास खड़ा हुआ खरीद लेते हैं।
सिगरेट बेचनी हो, कि कुछ भी बेचना हो--सारी चिंतना इस बात की है कि मनुष्य का मन शायद कामवासना से ही प्रभावित होता है, और किसी चीज से नहीं। तो जिस चीज को हम सेक्स से जोड़ दें, वह बिक जाती है।
करीब-करीब नब्बे प्रतिशत लोग काम भोगने में नष्ट हो जाते हैं। कुछ दस प्रतिशत ऐसे लोग भी हैं, जो काम से लड़ने में नष्ट होते हैं। उनका पूरा जीवन भोगी से ठीक विपरीत है। वे चौबीस घंटे लड़ रहे हैं कि कामवासना मन को न पकड़ ले। लेकिन ध्यान रहे, दोनों ही कामवासना के इर्द-गिर्द घूम कर मिट जाते हैं; और दोनों की नजर कामवासना पर ही लगी रहती है।
ऐसे ही हमारी सारी इंद्रियां हैं। किसी को कान का सुख है, तो वह संगीत सुन-सुन कर जीवन को व्यतीत कर रहा है। किसी को स्पर्श का सुख है, किसी को गंध का सुख है--लेकिन हम कहीं न कहीं किसी इंद्रिय के पास अपने को ठहरा लेते हैं। और जो इंद्रिय हमारे जीवन में प्रमुख बन जाती है, वही हमारी आत्मा की हत्या का कारण हो जाती है।
शरीर के भीतर जो छिपा है, उसकी कोई भी इंद्रिय नहीं। शरीर में इंद्रियां हैं। और इंद्रियां उपयोगी हो सकती हैं, लेकिन उसी के लिए, जो बुद्धिमान है। इंद्रियां सेवक हो सकती हैं, सेवक होनी चाहिए यही उनका प्रयोजन है। यह शरीर भी सीढ़ी बन सकता है उस तक पहुंचने की जो अशरीरी है। और जब तक कोई व्यक्ति इस शरीर की सीढ़ी नहीं बना लेता, साधन नहीं बना लेता, इसके पार जाने का, इससे ऊपर उठने का, तब तक वह मूढ़ है, अज्ञानी है।
शरीर में मनुष्य है, लेकिन शरीर ही नहीं है; शरीर के भीतर है, निवासी है, लेकिन शरीर से भिन्न और अलग है। उस भिन्नता का अनुभव जब तक न हो, तब तक आनंद का कोई भी पता न चलेगा। सुख का छोटा सा अनुभव हो सकता है इंद्रियों से, लेकिन जितना सुख आप खरीदेंगे, उतना ही दुख भी आप खरीदते चले जाएंगे। हर इंद्रिय के साथ सुख-दुख संयुक्त मात्रा में जुड़े हैं। दुख कीमत है जो चुकानी पड़ती है इंद्रिय के सुख पाने के लिए। लेकिन हम दुख चुकाने को राजी हैं, और इसी आशा में जीते हैं कि ये जो बबूले की तरह थोड़े से सुख मिलते हैं, ये कभी ठहर जाएंगे। पानी के बबूले हैं, छू भी नहीं पाते और मिट जाते हैं। और पूरा जीवन, हमारा अनुभव कहता है कि कोई सुख ठहरता नहीं, फिर भी न ठहरने वाले सुख के लिए हम संघर्षरत रहते हैं। और इसी संघर्ष में मृत्यु हमें पकड़ लेती है--नष्ट हो जाते हैं।
धर्म की शुरुआत उस व्यक्ति की चेतना में होती है, जिसे यह दिखाई पड़ना शुरू हो जाता है कि जिनका मैं पीछा कर रहा हूं, वे पानी के बबूले हैं; उन्हें पा भी लूं तो कुछ मिलता नहीं है; और पाकर बबूला टूट जाता है, और दुख लाता है; उन्हें न पा सकूं तो पीड़ा होती है।
इन बबूलों को जब कोई देखता रहता है तटस्थ भाव से और बह जाने देता है; न उन्हें पकड़ने की कोशिश करता है, न उनके फूट जाने से चिंतित होता है; उनसे

अपने को दूर कर लेता है--वही व्यक्ति भिक्षु है। लेकिन मरते दम तक हम बच्चों की तरह।
छोटे बच्चे तितलियों के पीछे दौड़ते रहते हैं। बूढ़े उन पर हंसते हैं
कि क्या तितलियों के पीछे दौड़ रहे हो! लेकिन बूढ़े भी तितलियों के पीछे ही दौड़ते रहते हैं। तितलियां बदल जाती हैं। इनकी अपनी तितलियां हैं। बूढ़ों की अपनी तितलियां हैं; बच्चों की अपनी तितलियां हैं; जवानों की अपनी तितलियां हैं। लेकिन सभी लोग रोशनी में चमक गए, प्रकाश में चमक गए रंगों के पीछे दौड़ते रहते हैं--इंद्रधनुषों के पीछे। अंत समय तक भी यह पीछा छूटता नहीं।
मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन की लड़की काफी उम्र की हो गई; तीस वर्ष की हो गई, और उसे पति नहीं मिल रहा है। खोज की जाती है, मां-बाप भी परेशान हो गए हैं खोज-खोज कर; उम्र ढलती जाती है। अब संदेह होने लगा है कि अब शायद विवाह न हो सकेगा।
तो अपनी लड़की की चिंता में नसरुद्दीन की पत्नी सो भी नहीं पाती। एक दिन उसे ख्याल आया कि अखबार में खबर दे दी जाए। और उसने एक बहुत सुंदर विज्ञापन बनाया और लिखा कि एक बहुत सुंदर युवती के लिए, जिसके पास काफी दहेज भी है, एक साहसी युवक की जरूरत है। अति साहसी युवक चाहिए, क्योंकि लड़की को पर्वतारोहण का शौक है। और जिसमें दुस्साहस हो इतनी सुंदर और साहसी लड़की के लिए, वही केवल निवेदन करे।
तीन दिन तक मां-बेटी प्रतीक्षा करती रहीं कि कोई पत्र आए। तीन दिन तक कोई पत्र नहीं आया तो मां चिंतित होने लगी। लेकिन तीसरे दिन एक पत्र आया। मां भागी हुई बाहर आई, तब तक लड़की ने पत्र ले लिया और छिपा लिया। मां ने कहा कि पत्र मुझे देखना है, किसका पत्र आया है। लड़की ने कहा कि आप न देखें तो अच्छा है। तो मां ने कहा कि यह विचार मेरा ही था--यह विज्ञापन का विचार, तो मैं जोर देती हूं कि मैं पत्र देखूंगी। और मां जिद पर अड़ गई। लड़की ने कहा कि आप नहीं मानतीं तो देख लें।
पत्र नसरुद्दीन की तरफ से था। क्योंकि विज्ञापन में कोई पता तो था नहीं--अखबार के नाम केयर ऑफ था, नसरुद्दीन ही निवेदन कर दिया।
बूढ़ा आदमी भी वहीं खड़ा है, जहां जवान खड़े हैं। कोई भेद नहीं है। जरा भी भेद नहीं है। बूढ़े मन की भी वे ही कामनाएं हैं; वे ही वासनाएं हैं; वे ही इच्छाएं हैं।
अंत समय तक भी आदमी शरीर में ही जीता चला जाता है; इसलिए मृत्यु इतनी दुखद है। मृत्यु में कोई भी दुख नहीं है; हो नहीं सकता--क्योंकि मृत्यु तो महाविश्राम है। मृत्यु में दुख की कोई संभावना ही नहीं है। लेकिन दुख होता है। कभी लाख में एकाध आदमी मृत्यु में आनंदपूर्वक प्रवेश करता है। सभी लोग तो दुख में ही प्रविष्ट होते हैं।
लेकिन दुख का कारण मृत्यु नहीं है। दुख का कारण हमारा इंद्रियों से संयोग है, जोड़ है। और दुख का कारण हमारी वासनाएं हैं। जैसे ही मृत्यु करीब आने लगती है, हम इंद्रियों से तोड़े जाते हैं। वह जो चेतना चिपक गई है, जुड़ गई है, बंध गई है, वह टूटती है। उस टूटने के कारण दुख प्रतीत होता है। और अब वासनाओं के होने का कोई उपाय न रहेगा। अब इंद्रियां खो रही हैं। हाथ-पैर शिथिल होने लगे। शरीर टूटने लगा।
दुख है इस बात का कि कोई भी वासना तृप्त नहीं हो पाई और मौत आ गई--दुख मृत्यु का नहीं है। इसलिए वे लोग, जो वासनाओं के पार हो जाते हैं, जो इंद्रियों से अपना संबंध, इसके पहले कि मृत्यु तोड़े, स्वयं तोड़ लेते हैं-- वे भिक्षु हैं। और वे आनंद से मरते हैं।
यह बड़े मजे की बात हैः जो आनंद से मर सकता है, वही आनंद से जी सकता है।
और जो दुख से मरता है, वह दुख से ही जीएगा। क्योंकि मृत्यु जीवन का चरम उत्कर्ष है। वह आपके सारे जीवन का निचोड़ है, सार है, इत्र है। सारे जीवन में कितने ही फूल खिले हों, सबकी सुगंध मृत्यु के क्षण में आ जाती है।
अगर मृत्यु महादुख है, तो पूरा जीवन दुख की एक लंबी यात्रा थी। मृत्यु महासुख हो सके, यही धार्मिक व्यक्ति की खोज है। और जो विरोधाभास है, वह यह

है कि जिसकी मृत्यु महासुख हो पाती है, उसके पूरे जीवन पर सुख की छाया और सुख का संगीत फैल जाता है।
आप मृत्यु से डरते हैं। डर का कारण ही यही है कि आपको अभी जीवन का कोई पता नहीं चला। जिस दिन आपको जीवन का पता चल जाएगा, मृत्यु मित्र है। मृत्यु जीवन को नष्ट नहीं करती, केवल शरीर से जीवन को अलग करती है। जीवन को नष्ट करने का कोई आधार नहीं है मृत्यु में। मृत्यु तो केवल उस जीवन से आपको अलग कर लेती है, जिसको आपने एकमात्र जीवन बना रखा था। जैसे कोई आदमी एक दीवाल के छेद से आकाश को देख रहा हो, और उसे कुछ पता न हो कि बाहर जाकर पूरे आकाश को देखा जा सकता है, जीआ जा सकता है, और हम उसे उसके छेद से छीनने लगें, खींचने लगें, तो वह चिल्लाने लगे कि मेरा आकाश मत छीनो, मैं मर जाऊंगा। यही तो मेरा जीवन है, यही तो मेरी मुक्ति है, यही तो मेरा सुख है कि सूरज उगता है, कि पक्षी उड़ते हैं, कि फूल खिलते हैं, इसी छिद्र से तो मैं देख पाता हूं। वह रोएगा, चिल्लाएगा। उसे कुछ भी पता नहीं कि हम उसे पूरे आकाश के नीचे ही ले जा रहे हैं, जहां फूलों की तरह वह खुद भी खिल सकता है; जहां पक्षियों की तरह वह खुद भी उड़ान भर सकता है; जहां सूरज की तरह वह भी रोशन हो सकता है। लेकिन वह अपने छिद्र को ही आकाश समझ रहा है। और जो सदा छिद्र के पास ही बैठा रहा हो, उसे यह भ्रांति होनी स्वाभाविक है।
हमारी इंद्रियां जीवन की तरफ छोटे-छोटे छेद हैं। हमारी आंख क्या है?
वह जो भीतर छिपा है, उसके लिए एक छोटा सा छेद है शरीर में, जिससे हम बाहर देख पाते हैं। हमारा कान क्या है? एक छोटा सा छेद है, जिससे बाहर की ध्वनि भीतर आ पाती है। हमारी इंद्रियां छिद्र हैं, उन छिद्रों को ही हम जीवन समझ लिए हैं।
मृत्यु हमें छिद्रों से अलग करती है। हम दुखी होते हैं, क्योंकि हमारा सब कुछ छीना जा रहा है। कुछ भी छीना नहीं जा रहा है। अगर हम भीतर के निवासी को पहचान लें, तो मृत्यु हमें केवल क्षुद्रता से अलग कर रही है। इसलिए जो व्यक्ति भीतर के निवासी को पहचानने लगता है, उसकी मृत्यु मोक्ष हो जाती है। हमारा जीवन भी मृत्यु जैसा है, उसकी मृत्यु भी मुक्ति बन जाती है।
मैंने सुना है कि नसरुद्दीन एक दिन अपने मित्रों से बात कर रहा है और शिकार की अतिशयोक्तिपूर्ण घटनाएं और अनुभूतियां सुना रहा है। एक जगह जाकर तो बात बिल्कुल आखिरी हद पर पहुंच गई। उसने कहाः मैं अफ्रीका गया था, और सिर्फ शिकार के लिए गया था। चांदनी रात थी। तो बंदूक बिना लिए झोपड़े के बाहर घूमने निकल गया। एक भयंकर सिंह अचानक एक वृक्ष के नीचे आ गया। दस फीट की दूरी रही होगी... ।
मित्र भी श्वास रोक लिए।
बंदूक हाथ में नहीं है, नसरुद्दीन ने कहा, सिंह दस कदम की दूरी पर तैयार खड़ा है।
एक मित्र ने पूछाः फिर क्या हुआ?
नसरुद्दीन ने कहानी को छोटा करने के लिहाज से कहाः सिंह ने हमला किया
और मेरा खात्मा कर दिया। उस मित्र ने कहाः नसरुद्दीन, डू यू मीन दि लायन किल्ड यू? बट यू आर अलाइव, सिटिंग जस्ट बिफोर मी--और तुम भलीभांति जिंदा हो। मतलब तुम्हारा क्या है, उस सिंह ने तुम्हें खत्म कर दिया?
नसरुद्दीन ने कहाः हां, यू काल दिस बीइंग अलाइव--यह मेरी जिंदगी को तुम जिंदगी कहते हो?
जिसे हम जिंदगी कह रहे हैं, उसे हम भी जिंदगी कह नहीं सकते। भला सिंह
ने आपको खत्म किया हो या न किया हो, आपने खुद ही अपने को खत्म कर लिया है। आपका होना राख जैसा है, अंगार जैसा नहीं है; बुझे बुझे हैं--किसी तरह--अगर कोई जिंदगी के जीने का न्यूनतम ढंग हो, मिनिमम पर--जैसे दीया जलता है आखिरी वक्त में जब तेल चुक गया है; बाती ही जलती है, तेल तो चुक गया है। तो वैसा, जैसा पीला सा प्रकाश उस आखिरी दीये में होता है, हमारा जीवन है।
जर्मनी की एक बहुत क्रांतिकारी महिला हुई, रोजा लक्जेम्बर। उसने अपने संस्मरण में लिखा है कि मैं ऐसे जीना चाहती हूं, जैसे कोई मशाल को दोनों तरफ से जला दे; चाहे एक क्षण को, मगर भभक कर जीना चाहती हूं--मैक्सिमम; वह

जो पराकाष्ठा है जीवन की, जो तीव्रता है, इनटेंसिटी है, उस पर जीना चाहती हूं ताकि मुझे जीवन का दर्शन हो जाए। यह जो न्यूनतम पर जीना है, इससे तो सिर्फ राख ही राख का स्वाद आता है।
आप अपनी जबान को टटोलें--जिंदगी राख का एक स्वाद हो गई है, जहां कुछ होता नहीं लगता; घसीटते से मालूम होते हैं। नसरुद्दीन ठीक ही कह रहा है कि तुम इसे जिंदगी कहते हो?
पर यह राख कैसे जिंदगी हो गई? हर बच्चा अंगारे की तरह पैदा होता है। जीवन प्रगाढ़ता से, सघनता से उसमें चमकता है। हर बच्चा पूरी क्षमता लेकर पैदा होता है कि जीवन का आखिरी और गहरे से गहरा स्वाद ले ले। लेकिन कहां खो जाता है वह सब, और मरते दम क्षण हम क्यों बुझे-बुझे मर जाते हैं? और इसे हम जीवन की प्रगति कहते हैं!
यह तो हास है। यह तो पतन है। बच्चे कहीं ज्यादा जीवित होते हैं, बजाय बूढ़ों के। होना उलटा चाहिए--अगर आदमी ठीक-ठीक जीआ हो, जिसको महावीर सम्यक जीवन कहते हैं; अगर ठीक-ठीक जीआ हो तो बुढ़ापे में जीवन अपने पूरे निखार पर होगा; क्योंकि इतना अनुभव, इतनी अग्नि, इतने-इतने जीवन के पथ, इतने प्रयोग जीवन को और भी साफ-सुथरा कर गए होंगे; कुंदन की तरह निखार गए होंगे। बूढ़ा तो बिल्कुल शुद्ध हो जाएगा। लेकिन बूढ़ा तो बिल्कुल मरने के पहले मर चुका होता है।
हम सब बुढ़ापे से भयभीत हैं। जीवन में कहीं कोई बुनियादी भूल हो रही है। और वह बुनियादी भूल यह है कि जहां जीवन का स्रोत है, वहां हम जीवन को नहीं खोजते; और जहां जीवन के अनुभव के छिद्र हैं, वहीं हम जीवन को टटोलते हैं।
इंद्रियों में नहीं, इंद्रियों के पीछे जो छिपा है, उसमें ही जीवन को पाया जा सकता है। लेकिन आप दो काम कर सकते हैं आसानी से--या तो इन इंद्रियों को भोगने में लगे रहें, और या जब थक जाएं, परेशान हो जाएं, तो इंद्रियों से लड़ने में लग जाएं। लेकिन दोनों हालत में आप चूक जाएंगे मंजिल। न तो भोगने वाला उसे पाता है, और न लड़ने वाला उसे पाता है। सिर्फ भीतर जागने वाला उसे पाता है। भोगने वाला भी इंद्रियों से ही उलझा रहता है, और लड़ने वाला भी इंद्रियों से उलझा रहता है।
आप संसारी हों कि संन्यासी हों, कि गृहस्थ हों कि साधु हों--आप दोनों हालत में इंद्रियों से ही उलझते रहते हैं। आप दिन-रात स्वाद का चिंतन करते रहते हैं, और साधु, दिन-रात स्वाद का चिंतन न आए, इस कोशिश में लगा रहता है। लेकिन बड़ा मजा यह है कि जिसे विस्मरण करना हो, उसे स्मरण करना असंभव है। विस्मरण स्मरण की एक कला है, एक ढंग है। सच तो यह है कि आप किसी को स्मरण करना चाहें तो शायद भूल भी जाएं, और किसी को विस्मरण करना चाहें तो भूल नहीं सकते।
कोशिश करके देखें। किसी को भूलने की कोशिश करें और आप पाएंगे कि भूलने की हर कोशिश याद बन जाती है। क्योंकि भूलने में भी याद तो करना ही पड़ता है।
तो गृहस्थ शायद भोजन का उतना चिंतन नहीं करता जितना साधु करता है। वह भुलाने की कोशिश में लगा है। भोगी शायद स्त्री-पुरुष के संबंध में उतना नहीं सोचता, जितना साधु सोचता है। वह भुलाने में लगा है। मगर दोनों ही घिरे हैं एक ही बीमारी से--छिद्रों से पीड़ित हैं। और उस तरफ ध्यान की धारा नहीं बह रही है, जहां मालिक छिपा है। शरीर एक यंत्र है, और बड़ा कीमती यंत्र है। अभी तक पृथ्वी पर उतना कीमती कोई दूसरा यंत्र नहीं बन सका। किसी दिन बन जाए।
मैंने सुना है ऐसा, उन्नीसवीं सदी पूरी हो गई; बीसवीं सदी भी पूरी हो
गई और इक्कीसवीं सदी का अंत आ गया। इन तीन सदियों में कंप्यूटर का विकास होता चला गया है। तो मैंने एक घटना सुनी है कि बाईसवीं सदी के प्रारंभ में एक इतना महान विशालकाय कंप्यूटर यंत्र तैयार हो गया है कि दुनिया के सारे वैज्ञानिक उसके उदघाटन के अवसर पर इकट्ठे हुए, क्योंकि वह मनुष्य की अब तक बनाई गई यांत्रिक खोजों मैं सर्वाधिक श्रेष्ठतम बात थी। यह कंप्यूटर, ऐसा कोई भी सवाल नहीं, जिसका जवाब न दे सकता हो। ऐसा कोई प्रश्न नहीं, जिसको यह

क्षण में हल न कर सकता हो। जिसको मनुष्य का मस्तिष्क हजारों साल में हल न कर सके, उसे यह क्षण में हल कर देगा।
स्वभावतः, सारी दुनिया के वैज्ञानिक इकट्ठे हुए। और उदघाटन किया जाना
था किसी सवाल को पूछ कर; और दो हजार वैज्ञानिक सोचने लगे कि क्या सवाल पूछें। सभी सवाल छोटे मालूम पड़ने लगे, क्योंकि वह क्षण में जवाब देगा। कोई ऐसा सवाल पूछें कि यह यंत्र भी थोड़ी देर को चिंता में पड़ जाए। लेकिन कोई सवाल ऐसा नहीं सूझ रहा था क्योंकि वैज्ञानिकों को भी पता था कि ऐसा कोई सवाल नहीं जिसे यह यंत्र जवाब न दे दे। और तभी बुहारी लगाने वाले एक आदमी ने, जो ऊब गया था, परेशान हो गया था प्रतीक्षा करते-करते कि कब पूछा जाए... कब पूछा जाए... और देर होती जाती थी, तो उसने जाकर यंत्र के सामने पूछाः इ.ज देयर ए गॉड--क्या ईश्वर है?
यंत्र चल पड़ा। बल्ब जले-बुझे, खट-पट हुई, भीतर कुछ सरकन हुई और भीतर से आवाज आईः नाउ देअर इ.ज, क्योंकि यंत्र अब यह कह रहा है, कि मैं हूं--नाउ देअर इ.ज!
वैज्ञानिक बहुत परेशान हुए कि ईश्वर अब है, उन्होंने पूछा कि क्या मतलब? तो उस यंत्र ने कहा कि मेरे पहले कोई ईश्वर नहीं था।
आदमी का यंत्र अभी सर्वाधिक श्रेष्ठतम है। लेकिन यंत्र भी इक्कीसवीं सदी में यह अनुभव कर सकता है कि मैं ईश्वर हूं। अगर प्रतिभा इतनी विकसित हो जाए तो उसके भीतर भी प्राणों का संचार हो जाए। और आप उस यंत्र में न मालूम कितने जन्मों से जी रहे हैं, जहां प्रतिभा का संचार है। लेकिन आपको अभी अनुभव नहीं हो पाया कि ईश्वर है।
और लोग पूछते ही चले जाते हैं कि ईश्वर कहां है? और ईश्वर उनके भीतर छिपा है। जो पूछ रहा है, वही ईश्वर है--वही चैतन्य की धारा। लेकिन उस तरफ हमारी नजर नहीं है। हमारी धारा बाहर की तरफ बहती है, दूसरों की तरफ बहती है, अपनी तरफ नहीं बहती। जब धारा अपनी तरफ बहने लगती है, तो संन्यास फलित होता है। महावीर के सूत्र को हम समझें। इस सूत्र में बड़ी सरलता से बहुत सी कीमत की बातें कही गई हैं।
"जो कान में कांटे के समान चुभने वाले आक्रोश-वचनों को, प्रहारों को, अयोग्य उपालंभों (तिरस्कार या अपमान)को शांतिपूर्वक सह लेता है, जो भयानक अट्टहास और प्रचंड गर्जना वाले स्थानों में भी निर्भय रहता है, जो सुख-दुख दोनों को समभावपूर्वक सहन करता है, वही भिक्षु है।"
सब शब्द सीधे-सीधे हैं, समझ में आते हैं। लेकिन उनके भीतर बहुत कुछ छिपा है, जो एकदम से ख्याल में नहीं आता।
आमतौर से यह समझा जाता है कि जिसको हम गाली दें, अपमान करें, वह अगर शांति से सह ले, तो बड़ा शांत आदमी है; अच्छा आदमी है। इतनी ही बात नहीं है। इतनी बात तो स्वार्थी आदमी भी कर सकता है; इतनी बात तो चालाक आदमी भी कर सकता है; इतनी बात तो जिसको थोड़ी सी बुद्धि है, जो जीवन में व्यर्थ के उपद्रव नहीं खड़े करना चाहता है, वह भी कर सकता है।
महावीर इतने पर समाप्त नहीं हो रहे हैं। महावीर का यह कहना कि बाहर से अगर कांटों की तरह चुभने वाले वचन भी कानों में पड़ें; आग जला देने वाले वचन आस-पास आ जाएं; अपमान और तिरस्कार फेंका जाए, जलते हुए तीर की तरह छाती में चुभ जाएं, तो भी शांत रहना। शांत रहने का यहां प्रयोजन शांति नहीं है। शांत रहने का
यहां प्रयोजन है कि दूसरे को मूल्य मत देना।
हम उसी मात्रा में मूल्य देते हैं वचनों को, जितना हम दूसरे को मूल्य देते हैं। इसे थोड़ा समझें। अगर आपका मित्र गाली दे तो ज्यादा अखरेगा। शत्रु गाली दे, उतना नहीं अखरेगा। गाली वही होगी। गाली एक ही है। शत्रु देता है तो नहीं अखरती, मित्र देता है तो अखरती है; क्योंकि शत्रु से अपेक्षा ही है कि देगा और मित्र से अपेक्षा नहीं है कि देगा। कौन देता है, इससे अखरने का संबंध है।
अगर एक शराबी आपके पैर पर पैर रख दे, तो अखरता नहीं। आप समझते हैं कि बेहोश है। और एक होश से भरा हुआ आदमी आपके पैर पर पैर रख दे, तो अखर जाता है। तो कलह शुरू हो जाती है।

एक बच्चा आपका अपमान कर दे तो नहीं अखरता, लेकिन एक बूढ़ा आपका अपमान
कर दे तो अखरता है; क्योंकि बच्चे को हम माफ कर सकते हैं, बूढ़े को माफ करना मुश्किल हो जाता है।
हमें क्या अखरता है, यह इस बात पर निर्भर करता है कि जिसने गाली दी, अपमान किया, उसका मूल्य कितना था। उस मूल्य पर सब निर्भर होता है।
दूसरे का मूल्य है, इसलिए अपमान अखरता है। दूसरे का मूल्य है, इसलिए सम्मान अच्छा लगता है। दूसरे का कोई भी मूल्य न रह जाए, तो व्यक्ति संन्यासी है।
तो दूसरा सम्मान करे तो ठीक, अपमान करे तो ठीक। यह दूसरे का अपना काम है; इससे मेरा कोई लेना-देना नहीं है। मैंने दूसरे के ऊपर से अपना सारा मूल्यांकन अलग कर लिया है। दूसरा दूसरा है--और अगर गाली निकलती है, तो यह उसके भीतर की घटना है। इससे मेरा कोई संबंध नहीं है। जैसे किसी वृक्ष में कांटा लगता है, यह वृक्ष की भीतरी घटना है। इससे मैं नाराज नहीं होता। या कि मैं नाराज होऊं कि बबूल में बहुत कांटे लगे हैं?
जब आप बबूल के पास से निकलते हैं, तो आप कभी भी यह नहीं सोचते कि मेरे लिए कांटे लगाए गए हैं। यह बबूल का अपना गुण-धर्म है। और गुलाब के पौधे में जब फूल खिलता है, तब भी सोचने का कोई कारण नहीं है कि फूल आपके लिए खिल रहा है। यह गुलाब का गुण-धर्म है।
महावीर कहते हैं, दूसरा क्या कर रहा है, यह उसकी अपनी भीतरी व्यवस्था
की बात है। उसके जीवन से गाली निकल रही है, यह उसके भीतर लगा हुआ कांटा है। उसके भीतर से प्रशंसा आ रही है, यह उसके भीतर खिला फूल है। आप क्यों परेशान हैं? आपसे इसका कोई भी लेना-देना नहीं है। यह संयोग की बात है कि आप बबूल के कांटे के पास से निकले। यह संयोग की बात है कि गुलाब का फूल खिल रहा था और आप रास्ते से निकले।
इसे थोड़ा समझें, क्योंकि जिस आदमी ने आपको गाली दी है, अगर आप न भी मिलते, तो मनस्विद कहते हैं, वह गाली देता; किसी और को देता। गाली देने से वह नहीं बच सकता था। गाली उसके भीतर इकट्ठी हो रही थी। अपमान उसके भीतर भारी हो रहा था आप कारण नहीं है। आप सिर्फ निमित्त हैं। निमित्त कोई भी-- एक्स, वाइ, जेड हो सकता था।
यह आप अपने अनुभव से देखें तो आपको ख्याल में आ जाएगा। कभी आप बैठे हैं, क्रोध उबल रहा है। और छोटा बच्चा अपने खिलौने से खेल रहा है। तो उसको ही आप डांट-डपट शुरू कर देते हैं। बच्चे में कोई कारण नहीं है। वह कल भी खेलता था, परसों भी खेलता था। वह रोज ही अपने खिलौने से ऐसे ही खेलता था। लेकिन परसों आपके भीतर क्रोध नहीं उबल रहा था, तो आप चुपचाप मुस्कुराते रहे। उसका शोरगुल भी आनंददायी मालूम हो रहा था। वह नाच रहा था तो आप प्रसन्न थे। घर में जीवन मालूम हो रहा था। आज वह नाच रहा है, कूद रहा है, तो आपको क्रोध उठ रहा है। क्रोध उठ रहा है--उसका नाचना, कूदना निमित्त बन रहा है। वह बच्चा आपके क्रोध का भागीदार हो जाएगा।
और छोटे बच्चों को कभी समझ में नहीं आता कि क्यों उन पर क्रोध किया गया। क्योंकि उनको अभी दूसरे से इतना संबंध नहीं बना है। वे अभी अपने में जीते हैं। इसलिए छोटे बच्चे हैरान हो जाते हैं कि अकारण, कोई भी कारण नहीं था, और मां-बाप उन पर टूट पड़ते हैं।
अगर बच्चा न मिले तो आप अपनी पत्नी पर टूट पड़ेंगे। अगर कुछ भी न हो तो
यह भी हो सकता है कि आप निर्जीव वस्तुओं पर टूट पड़ें--कि आप अखबार को जोर से गाली देकर पटक दें; कि आप रेडियो को गुस्से से बंद कर दें कि उसकी नॉब ही टूट जाए।
जिस दिन स्त्रियां नाराज होती हैं, उस दिन घर में बर्तन ज्यादा टूटते हैं। ऐसे महंगा नहीं है यह--पति का सिर टूटे, इससे एक प्लेट का टूट जाना बेहतर है। यह सस्ता ही है। स्त्री भी भरोसा नहीं कर सकती कि उसने प्लेट छोड़ दी। वह भी सोचती है कि छूट गई। लेकिन कभी नहीं छूटी थी। कल नहीं छूटी; परसों नहीं छूटी। और रोज अनुपात अलग-अलग होता है।
अगर आप अपने क्रोध का हिसाब रखें, और बर्तनों के टूटने का हिसाब रखें,
आप जल्दी ही पूरा आंकड़ा निकाल लेंगे। जिस दिन क्रोध ज्यादा होता है, उस

दिन हाथ छोड़ना चाहते हैं--अनकांशस। कोई जान कर भी पत्नी नहीं छोड़ रही है। क्योंकि नुकसान तो घर का ही हो रहा है। लेकिन छूटता है।
मनस्विद कहते हैं कि ड्राइवरों के द्वारा जो मोटर दुर्घटनाएं होती हैं, उनमें पचास प्रतिशत का कारण क्रोध है, कारें नहीं। क्रोध में आदमी एक्सीलरेटर को जोर से दबाए चला जाता है। वह दबाने में रस लेता है, किसी को भी दबाने में; एक्सीलरेटर को ही दबाता है। क्रोधी आदमी तेज रफतार से कार दौड़ा देता है। क्रोधी आदमी कोई भी चीज पर त्वरा से जाना चाहता है, गति से जाना चाहता है।
तो रास्तों पर जो दुर्घटनाएं हो रही हैं, वे पचास प्रतिशत तो आपके क्रोध के कारण हो रही हैं। और थोड़ी घटनाएं नहीं हो रहीं हैं। दूसरे महायुद्ध में एक वर्ष में जितने लोग मरे, उससे दो गुने लोग कारों की दुर्घटनाओं से हर वर्ष मर रहे हैं। महायुद्ध वगैरह का कोई मूल्य नहीं है। कितना ही बड़ा महायुद्ध करो, जितने लोग सड़कों पर लोगों को मार रहे हैं, उतना आप युद्ध करके भी नहीं मार सकते।
ये कौन लोग हैं? और आप कभी ख्याल करना कि जब आप क्रोध में होते हैं, तो
आप जोर से हार्न बजाते हैं; जोर से एक्सीलरेटर दबाते हैं; कार को भगाते हैं। सामने वाला आदमी लगता है कि बिल्कुल धीमी रफ्तार से जा रहा है--हर एक हट जाए, सारी दुनिया रास्ता दे दे, तो आप अपनी पूरी गति में आ जाएं।
यह जो क्रोध है, इसका एक्सीलरेटर से कोई भी संबंध नहीं है। अगर एक्सीलरेटर को भी होश होता आप जैसा, तो वह भी कहता कि क्यों मुझे परेशान कर रहे हो? वह भी दुखी होता।
महावीर यह कह रहे हैं कि प्रत्येक व्यक्ति जीता है अपनी भीतरी नियति से। उससे जो भी बाहर आता है, वह उसके भीतर से आ रहा है। उसका संबंध उससे है, उसका संबंध आपसे नहीं है।
आप शांत रह सकते हैं। अगर यह बात समझ में आ जाए तो शांत रहने के लिए प्रयास नहीं करना पड़ेगा। अगर शांत रहने का आप प्रयास करेंगे, तो वह प्रयास भी अशांति है। किसी ने गाली दी और आपने अपने को समझाया, और अपने को शांत रखा, और अपने को दबाया, तो अशांत तो आप हो चुके। अब इतना ही होगा कि यह जो आदमी गाली दे रहा है, इसने जो क्रोध पैदा किया है, वह इस पर नहीं निकलेगा, किसी और पर निकलेगा। इतना ही होगा। कहीं जाकर यह बह जाएगा। और जब तक नहीं बहेगा, तब तक आप भारी रहेंगे।
आखिर क्रोध का मजा क्या है? क्रोध करके आपको क्या सुख मिलता है? इतना सुख मिलता है कि क्रोध से जो भारीपन और ज्वार और बुखार आ जाता है, जो फीवरिशनेस छा जाती है, वह निकल जाती है।
जापान में... और जापान मनुष्य के मन के संबंध में काफी कुशल है... हर फैक्ट्री में, बड़ी फैक्ट्रियों में पिछले महायुद्ध के बाद मैनेजर और मालिक के पुतले रख दिए गए हैं कि जब भी किसी कर्मचारी को गुस्सा आए, वह जाकर पिटाई कर सके। एक कमरा है हर बड़ी फैक्ट्री में, जहां मालिक, मैनेजर और बड़े अधिकारियों के पुतले रखे हुए हैं। गुस्सा तो आता ही है, तो आदमी चले जाते हैं, उठा कर डंडा उनकी पिटाई कर देते हैं, गाली-गलौज बक देते हैं--हलके होकर मुस्कराते हुए बाहर आ जाते हैं।
लोग पुतले जलाते हैं, जब नाराज हो जाते हैं। और कभी-कभी हजारों साल लग जाते हैं... होली पर हम होलिका को अभी तक जलाए चले जा रहे हैं। पुरानी नाराजगी है; हजारों साल पुरानी है, लेकिन अभी भी राहत मिलती है। होली पर जितने लोग हलके होते हैं, उतने किसी अवसर पर नहीं होते। होली राहत का अवसर है। क्रोध, गाली-गलौज, जो भी निकालना हो, वह आप सब निकाल लेते हैं। एक दिन के लिए सब छूट होती है। कोई नीति नहीं होती; कोई धर्म नहीं होता। कोई महावीर, बुद्ध बीच में बाधा नहीं देते। उस एक दिन के लिए आप बिल्कुल मुक्त हैं। जो आप वर्षों से कहना चाहते थे, करना चाहते थे, वह कह सकते हैं, कर सकते हैं।
बहुत समझदार लोगों ने होली खोजी होगी, जो मनुष्य के मन को समझते थे कि उसमें कोई नाली भी चाहिए, जिससे गंदा पानी बाहर निकल जाए। अभी इस समय के बहुत से बुद्धिमान समझाते हैं कि यह बात ठीक नहीं है, होली पर सदव्यवहार

करो; गाली-गलौज मत बको; भजन-कीर्तन करो। ये नासमझ हैं। इन्हें कुछ पता नहीं है आदमी का।
होली आदमी को हलका करती है। और जब तक आदमी जैसा है, तब तक होली जैसे त्यौहार की जरूरत रहेगी। आदमी जिस दिन बुद्ध, महावीर जैसा हो जाएगा, उस दिन होली गिर जाएगी। उसके पहले होली गिराना खतरनाक है। सच तो यह है कि जैसा आदमी है, उसे देख कर ऐसा लगता है, हर महीने होली होनी चाहिए। हर महीने एक दिन आपके सब नीति नियम के बंधन अलग हो जाने चाहिए ताकि जो-जो भर गया है, जो-जो घाव में मवाद पैदा हो गई है, वह आप निकाल सकें।
एक बड़े मजे की बात है कि होली के दिन अगर कोई आपको गाली दे, तो आप यह नहीं समझते कि आपको गाली दे रहा है। आप समझते हैं कि अपनी गाली निकाल रहा है। लेकिन गैर-होली के दिन कोई आपको गाली दे, तो आपको गाली देता है। महावीर कहते हैं, उस दिन भी वह अपनी ही गाली निकालता है। होली या गैर-होली से फर्क नहीं पड़ता।
हम जो भी करते हैं, वह हमारे भीतर से आता है। दूसरा केवल निमित्त है, खूंटी की तरह है--उस पर हम टांग देते हैं। अगर यह बोध हो जाए तो जीवन में एक शांति आएगी, जो प्रयास से नहीं आती; जीवन में एक शांति आएगी, जो मुर्दा नहीं होगी; दमन की नहीं होगी--जीवंत होगी।
मुल्ला नसरुद्दीन पर मुकदमा था कि उसने अपनी पत्नी के सिर पर कुल्हाड़ी मार दी, पत्नी मर गई। और मजिस्ट्रेट ने पूछा कि नसरुद्दीन, और तुम बार-बार कहे जाते हो कि यू आर ए मैन ऑफ पीस। तुम कहे चले जाते हो कि तुम बड़े शांतिवादी हो, और बड़े शांति को प्रेम करने वाले हो।
नसरुद्दीन ने कहा कि निश्चित, मैं शांतिवादी हूं। और जब कुल्हाड़ी मेरी पत्नी के सिर पर पड़ी, तो जैसी शांति मेरे घर में थी, वैसी उससे पहले कभी नहीं देखी थी। जो शांति का क्षण मैंने देखा है उस वक्त, वैसा पहले कभी नहीं देखा था।
आप अपने चारों तरफ लोगों को मार कर भी शांति अनुभव कर सकते हैं; जो आप
सब कर रहे हैं। जब आप पत्नी को दबा देते हैं, और बेटे को दबा देते हैं, जब आप अपने नौकर को गाली दे देते हैं और दबा देते हैं, और जब आप बर्तन तोड़ देते हैं--तब आप क्या वैज्ञानिकों ने खोजा कि पृथ्वी केंद्र नहीं है जगत का, तो मनुष्य के अहंकार को बड़ी चोट पहुंची। और आदमी ने बड़ी जिद्द की कि यह हो ही नहीं सकता। सूरज, चांद, तारे--सब पृथ्वी के चारों तरफ घूम रहे हैं। पृथ्वी बीच में है; सारे जगत का केंद्र है।
लेकिन जब वैज्ञानिकों ने सिद्ध ही कर दिया कि पृथ्वी केनदर नहीं है,
और बजाय इसके कि सूरज पृथ्वी के चारों तरफ घूम रहा है, ज्यादा सत्य यही है कि पृथ्वी सूरज के चारों तरफ घूम रही है--मनुष्य के अहंकार को भयंकर चोट पहुंची; क्योंकि जिस पृथ्वी पर मनुष्य रह रहा है, सभी कुछ उसके चारों तरफ घूमना चाहिए।
बर्नार्ड शॉ कहता था कि वैज्ञानिक जरूर कहीं भूल कर रहे हैं। यह हो ही नहीं सकता कि पृथ्वी--और सूरज का चक्कर काटे! सूरज ही पृथ्वी का चक्कर काट रहा है। और एक दफा वह बोल रहा था तो किसी ने खड़े होकर कहा कि बर्नार्ड शॉ, आप भी हद बेहूदी बात कर रहे हैं! अब यह सिद्ध हो चुका है। अब इसको कहने की कोई जरूरत नहीं है। और आपके पास क्या प्रमाण है कि सूरज पृथ्वी का चक्कर काट रहा है?
बर्नार्ड शॉ ने कहाः प्रमाण की क्या जरूरत है? जिस पृथ्वी पर बनार्ड
शा रहता है, सूरज उसका चक्कर काटेगा ही। और अन्यथा होने का कोई उपाय नहीं है।
वह व्यंग कर रहा था। बर्नाड शॉ ने गहरे व्यंग किए हैं।
आदमी अपने को हमेशा केंद्र में मान कर चलता है।
भिक्षु वह है, जिसने अपने को केंद्र मानना छोड़ दिया। जिसने तोड़ दी यह धारणा कि मैं केंद्र हूं दुनिया का; सारी दुनिया मेरी ही प्रशंसा में या क्रोध में, या उपेक्षा में, या प्रेम में, या घृणा में, चल रही है। सारी दुनिया मेरी तरफ देख कर चल रही है; और जो कुछ भी किया जा रहा है, वह मेरे लिए किया जा रहा है। जिसने यह धारणा छोड़ दी, वही व्यक्ति अपमान सह सकेगा। और

उसे सहना नहीं पड़ेगा। सहना शब्द ठीक नहीं है, अपमान उसे छुएगा ही नहीं। वैसा व्यक्ति अस्पर्शित रह जाएगा। सहने का तो मतलब यह है कि छू गया, फिर सम्हाल लिया अपने को।
नहीं, सम्हालने की भी जरूरत नहीं है--छुएगा ही नहीं। अपमान दूर ही गिर जाएगा। अपमान उस व्यक्ति के पास तक नहीं पहुंच पाएगा। अपमान पहुंच सकता है, इसीलिए कि हम दूसरे से मान की अपेक्षा करते थे। न मान की अपेक्षा है, न अपमान की अपेक्षा है; न प्रशंसा की, न निंदा की। दूसरे का हम मूल्य नहीं मानते। दूसरा कुछ भी करे, वह उसकी अपनी अंतर-धारा और कर्मों की गति है; और मैं जो कर रहा हूं, वह मेरी अंतर-धारा और मेरे कर्मों की गति है।
लेकिन यह बात अगर ठीक से ख्याल में आ जाए तो इसका एक दूसरा महत परिणाम होगा। और वह यह होगा कि जब मैं गाली देना चाहूंगा, तब भी मैं समझूंगा कि मैं गाली देना चाह रहा हूं, दूसरा कसूर नहीं कर रहा है। और जब मैं प्रशंसा करना चाहूंगा, तब भी मैं समझूंगा कि मेरे भीतर प्रशंसा के गीत उठ रहे हैं, दूसरा सिर्फ निमित्त है। और तब दोष देना और प्रशंसा देना भी गिर जाएगा। और तब व्यक्ति अपनी जीवन-धारा के सीधे संपर्क में आ जाता है। तब वह दूसरों के साथ उलझ कर व्यर्थ भटकता नहीं। और तब जो भी करना है, जो भी नहीं करना है, उसका अंतिम निर्णायक मैं हो जाता हूं। फिर जिससे मुझे सुख मिलता है, वह बढ़ता जाता है अपने आप। जिससे मुझे दुख मिलता है, वह छूटता जाता है। क्योंकि मेरे अतिरिक्त अब मेरा कोई मालिक न रहा। अब मैं ही नियंता हूं। तो जब महावीर कह रहे हैं कि जो कान में कांटे के समान चुभने वाले आक्रोश-वचनों को, प्रहारों को, अयोग्य उपालंभों को (तिरस्कार या अपमान)को शांतिपूर्वक सह लेता है... ।
इसमें एक उन्होंने बड़ी अच्छी शर्त लगाई है--"अयोग्य उपालंभों को।" कोई गाली दे रहा है, और वह गाली गलत है। लेकिन कभी गाली सही भी हो सकती है। कोई आपको चोर कह रहा है, और आप चोर हैं। तो महावीर कहते हैं, अयोग्य उपालंभों को शांति से सह लेना, लेकिन योग्य-उपालंभों को सोचना, सिर्फ सह मत लेना। क्योंकि दूसरा एक मौका दे रहा है, जहां आप अपनी धारा की परख कर सकते हैं। कोई आपको चोर कह रहा है।
लेकिन हम बड़ी अजीब हालत में हैं। अगर हमें ऐसी गालियां दे रहा हो जो
हम पर लागू नहीं होती, तब तो हम उन्हें नजरअंदाज भी कर सकते हैं, लेकिन अगर कोई हमारे संबंध में सत्य ही कह रहा है, तो फिर नजरअंदाज करना बहुत मुश्किल हो जाता है। तो फिर उसे छोड़ना बहुत मुश्किल हो जाता है।
सत्य जितनी चोट करता है, उतना असत्य नहीं करता। इसलिए जब आपसे कोई कहे, "चोर", और आप बहुत बेचैन हो जाएं तो उसका मतलब है, बेचैनी खबर दे रही है कि आप चोर हैं। अगर आप चोर न होते तो इतनी बेचैनी नहीं हो सकती थी; आप हंस भी सकते थे। आप कहते, कहीं कुछ भूल हो गई होगी। जब कोई बिल्कुल छू देता हैं घाव को, तभी आप बेचैन होते हैं। अगर कोई घाव को नहीं छूता तो बेचैन नहीं होते।
मैंने सुना है कि अब्राहिम लिंकन ने अपने एक विरोधी नेता के संबंध में आलोचना की। आलोचना कठोर थी। उस विरोधी नेता ने पत्र लिखा लिंकन को, और कहा कि आप मेरे संबंध में असत्य बोलना बंद कर दें, अन्यथा उचित न होगा। लिंकन ने जवाब दिया कि तुम फिर से सोच लो। अगर तुम चाहते हो कि मैं तुम्हारे संबंध में असत्य बोलना बंद कर दूं, तो मुझे तुम्हारे संबंध में सत्य बोलना शुरू करना पड़ेगा। और दोनों में तुम चुन लो कि क्या तुम पसंद करोगे।
वह आदमी भी घबड़ा गया कि बात तो ठीक ही थी। उसने खबर भेजी कि आप असत्य
ही बोले चले जाएं। सत्य तो और खतरनाक है।
बर्नार्ड शॉ ने अपने संस्मरणों में कहा है कि किसी के संबंध में असत्य कहने से ज्यादा चोट नहीं पहुंचाई जा सकती। ठीक-ठीक सत्य कह देने से जैसा घाव हो जाता है, वैसा असत्य कहने से कभी नहीं होता। असत्य बड़ा मधुर है। असत्य का लेप बड़ा प्रीतिकर है। सत्य की चोट भारी है।
तो जब आप ज्यादा उद्विग्न होते हों किसी के अपमान से; बेचैन और विक्षिप्त हो जाते हों, तब शांत बैठ कर सोचना, उसने जरूर सत्य को छू दिया

है। तब भी उस पर विचार करने की जरूरत नहीं है, अपने भीतर ही अपने सत्य को परखने की कोशिश करना। और, अगर ऐसा सत्य आपके भीतर है, जो घाव की तरह है, जो छूने से पीड़ा देता है, तो दूसरे को दोष मत देना कि दूसरा छूकर आपको पीड़ा पहुंचाता है। अपने घावों को भरना, अपने घावों को मिटाना और उस जगह आ जाना, जहां कोई कुछ भी कहे, पर आपको स्पर्श न कर पाए।
जीवन एक अंतर-सृजन है; एक इनर क्रिएटिविटी है। लेकिन हम अवसर खो देते हैं। अगर कोई गाली देता है तो हमारा ध्यान गाली देने वाले पर अटक जाता है। हम अपने को तो छोड़ ही देते हैं, भूल ही जाते हैं। वह क्या कह रहा है, वह कौन है; गलत है! और गाली देने वाला गलत होगा ही। हम उसकी भूल-चूक खोजने में लग जाते हैं। उस गाली के क्षण में हमें अपने भीतर खोजना चाहिए। अगर गाली असत्य है, तब तो कोई कारण ही नहीं है। अगर गाली सत्य है तो हमें अंतर-निरीक्षण और अंतचितन, और अंतमथन में लग जाना चाहिए। और मैं क्या करूं कि मैं भीतर से बदल जाऊं, वही हमारा ध्यान होना चाहिए।
जरूरी नहीं है कि आप बदल जाएं तो लोग गालियां देना बंद कर देंगे। जरूरी नहीं है कि आपके सब घाव मिट जाएं तो लोग आपका अपमान न करेंगे। संभावना तो यह है कि जितना ही आप कम प्रभावित होंगे, उतने ही लोग ज्यादा चोट करेंगे। क्योंकि लोग मजा लेते हैं आपको प्रभावित करने में। अगर कोई गाली दे और आप प्रभावित न हों, तो और वजनदार गाली वह आपको देगा। क्योंकि आपने उसको बड़ा दुखी कर दिया। उसने गाली दी और आप प्रभावित न हुए, इसका मतलब आप उसके नियंत्रण के बाहर हो गए। आप पर अब उसका कोई वश नहीं है, कोई ताकत नहीं है। आप ताकतवर हो गए; वह कमजोर पड़ गया--वह और वजनी गाली खोजेगा।
जब कोई व्यक्ति सचमुच ही साधु होना शुरू होता है, तो सारा समाज उसे सब तरफ से कसता है और सब तरफ से कोशिश करता है कि छोड़ो यह साधुता, आ जाओ उसी जगह जहां हम सब खड़े हैं। उस वक्त परेशानियां बढ़ जाती हैं। महावीर ने कहा है, साधु के परिश्रय, उसके कष्ट गहन हो जाते हैं। क्योंकि जिन-जिन के नियंत्रण के वह बाहर होने लगता है, वे-वे पूरी चेष्टा करते हैं नियंत्रण करने की।
यहूदियों में एक पुरानी कहावत है कि जब भी कोई तीर्थंकर या पैगंबर पैदा होता है, कोई प्रॉफेट, तो पहले लोग उसको गालियां देते है; निंदा करते हैं। अगर वह निंदा और गालियों के पार हो जाए, जो कि बड़ा मुश्किल हो जाता है... । अगर वह भी निंदा और गालियों में पड़ जाए, तो लोग उसे भूल जाते हैं, क्योंकि वह उन्हीं जैसा हो गया। लेकिन अगर वह उनके पार चला जाए, तो फिर लोग उपेक्षा करते हैं।
ध्यान रहे, गाली से भी ज्यादा पीड़ा उपेक्षा में है। यह आपको पता नहीं है। उपेक्षा, इनडिफरेंस लोग ऐसा व्यवहार करते हैं, जैसे वह है ही नहीं। उसके पास से लोग ऐसे गुजर जाते हैं, जैसे उसे देखा ही नहीं।
आप ख्याल करें। अगर लोग आपकी उपेक्षा करें तो आप पसंद करेंगे कि लोग गाली दें, वही बेहतर है--कम से कम ध्यान तो देते हैं। इसीलिए लोग अपराध करने को उत्सुक हो जाते हैं। जो नेता नहीं बन सकते हैं, वे गुंडे बन जाते हैं। गुंडों और नेताओं में जरा भी फर्क नहीं है। गुण का कोई फर्क नहीं है, दिशाएं थोड़ी भिन्न हैं। अगर गुंडों को ठीक मौका मिले तो वे नेता बन जाएं, और नेताओं को ठीक मौका न मिले तो वे गुंडे बन जाएं।
गुंडे और नेता एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। नेता भी, दूसरे लोग ध्यान दें, इस बीमारी से पीड़ित है। जितने ज्यादा लोग ध्यान दें, उतना ही उसका अहंकार तृप्त होता है। और गुंडा भी उसी बीमारी से पीड़ित है। लेकिन वह कोई रास्ता नहीं खोज पाता; और अगर कुछ न करे तो लोग उपेक्षा किए चले जाते हैं। तब फिर वह बुरा करना शुरू कर देता है। बुरे पर तो ध्यान देना ही पड़ेगा; उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती।
एक दफा भले की उपेक्षा संभव हो, बुरे की उपेक्षा संभव नहीं है। उस पर ध्यान देना ही पड़ेगा। अदालत, कोर्ट, मजिस्ट्रेट, पुलिस, अखबार--सब उसकी तरफ ध्यान देने को खड़े हो जाएंगे। वह तृप्त होता है। अपराधियों से पूछा गया है--तो वे तृप्त होते हैं, जब उनका नाम छपता है अखबारों में। लोग उनकी

चर्चा करते हैं, तब वे तृप्त होते हैं। तब उन्हें लगता है कि मैं भी कुछ हूं।
उपेक्षा सबसे ज्यादा कठिन बात है।
यहूदी कहते हैं कि पहले निंदा होती है पैगंबर की। और जब निंदा से वह नहीं पीड़ित होता और पार निकल जाता है, तो उपेक्षा करना लोग शुरू कर देते हैं कि ठीक है, कुछ खास नहीं। कोई चिंता की जरूरत नहीं है। और जब वह उपेक्षा को भी पार कर जाता है, जो कि बड़ी कठिन साधना है, परिश्रय है, तब लोग श्रद्धा करना शुरू करते हैं। तो उन्होंने जिनकी निंदा की है और जिनकी उपेक्षा की है, लंबे अर्से में, वे उनकी श्रद्धा कर पाते हैं।
महावीर कहते हैं, जो इन सारी बाहर से घटने वाली घटनाओं को ऐसे सह लेता है, जैसे मेरा उनसे कोई संबंध नहीं है--शांतिपूर्वक, वही भिक्षु है।
"जो भयानक अट्टहास और प्रचंड गर्जना वाले स्थानों में भी निर्भय रहता है... ।"
अभय पर महावीर का बहुत जोर है--फिअरलेसनेस पर। क्योंकि महावीर कहते हैं, जो अभय को नहीं साधेगा वह मृत्यु से भयभीत रहेगा। सारा भय मृत्यु का भय है। भयमात्र मूल में मृत्यु से जुड़ा है। जो भी चीज हमें मिटाती मालूम पड़ती है, उससे हम भयभीत हो जाते हैं। जो भी चीज हमें संभालती मालूम पड़ती है, उससे हम चिपट जाते हैं। उसे हम आग्रहपूर्वक अपने पास रखने लगते हैं। महावीर कहते हैं कि अभय का जन्म अत्यंत आवश्यक है। तो कुछ भी स्थिति हो--तूफान हो कि गर्जना हो, अंधकार हो कि एकांत हो--जहां मौत किसी भी क्षण घट सकती है, वहां भी जो शांत रहे, वहां भी जो मौन रहे, अडिग रहे, अकंप रहे। क्यों?
यह अकंप रहने का इशारा इसलिए है कि अगर कोई ऐसे क्षण में अकंप रहे, तो उसका इंद्रियों से संबंध छूट जाता है और आत्मा से संबंध जुड़ जाता है। अगर कंपित हो जाए, तो आत्मा से संबंध छूट जाता है और इंद्रियों से संबंध जुड़ जाता है।
इस सूत्र को ठीक से समझ लें। अकंपता आत्मा का स्वभाव है। इसलिए जब भी
आप अकंप होते हैं, आत्मा से जुड़ जाते हैं। और कंपना इंद्रियों का स्वभाव है। इसलिए जितना आप कंपते हैं, उतने ही इंद्रियों से जुड़ जाते हैं। जितना भयभीत और कंपित व्यक्ति, उतना इंद्रियों से जुड़ा हुआ होगा। जितना अकंप और निर्भय व्यक्ति, उतना आत्मा से जुड़ने लगेगा।
अकंपता, कृष्ण ने कहा है, ऐसी है, जैसे कि घर में हवा का एक झोंका भी न आता हो जब कोई दिया जलता है--और उसकी लौ अकंप होती है। वैसी ही आत्मा है-- अकंप।
तो मौका खोजना चाहिए, जहां चारों तरफ भय हो, और आप भीतर शांत और अकंप
रह सकें। कठिन होगा। शुरू-शुरू में भय आपको कंपा जाएगा। लेकिन उस कंपन को भी देखते रहें।
आप बैठे हैं निर्जन एकांत में और सिंह की गर्जना हो रही है--छाती धकधका जाएगी; खून तेजी से दौड़ेगा; श्वास ठहर जाएगी। लेकिन यह सब आप शांति से देखते रहें। आप सिंह की फिकर न करें। आपके चारों तरफ जो हो रहा है, चेतना के दीये के चारों तरफ, उसको आप शांति से देखते रहें। और एक ही ख्याल रखें कि हृदय कितनी ही जोर से धड़के--धड़के, श्वास कितनी ही तेजी से चले--चले, रोएं खड़े हो जाएं--हो जाएं, पसीना बहने लगे--बहने लगे, लेकिन भीतर मैं मौन और शांत बना रहूंगा; भीतर मैं नहीं हिलूंगा।
इस न हिलने को जो पकड़ता जाता है, धीरे-धीरे इंद्रियों से उसकी चेतना धारा मुड़ती है और आत्मा के अनुभव में प्रविष्ट हो जाती है। ऐसी घड़ी आने लगे, तो ही मृत्यु में आप बिना कंपे रह सकेंगे, अन्यथा असंभव है। अन्यथा असंभव है।
मैंने सुना है, एक झेन फकीर मरने के करीब था। तो उसने अपने शिष्यों से पूछा कि सुनो, मैं मरने के करीब हूं, मौत करीब है, और यह सूरज के अस्त होते- होते मैं शरीर छोड़ दूंगा; जरा मैं तुमसे एक सलाह चाहता हूं। कोई रास्ता बताओ मरने का कुछ ऐसा अनूठा, जैसे पहले कभी कोई न मरा हो। मरना तो है, लेकिन थोड़ा मरने का मजा ले लें।

शिष्य तो छाती पीट कर रोने लगे। उनकी समझ में भी न आया कि गुरु पागल तो नहीं हो गया है मरने के पहले। एक शिष्य ने कहा कि आप खड़े हो जाएं, क्योंकि खड़े होकर कभी किसी का मरना नहीं सुना। गुरु ने कहा कि नहीं, मेरे गुरु ने कहा है कि एक दफा एक फकीर खड़े-खड़े मरा था। तो यह नहीं जंचेगा; यह हो चुका। किसी दूसरे शिष्य ने सिर्फ मजाक में कहा कि आप शीर्षासन लगा कर खड़े हो जाएं। ऐसा कभी नहीं हुआ होगा कि कोई सिर के बल खड़ा हुआ हो और मर गया हो। फकीर ने कहा, यह बात जंचती है। वह हंसा और शीर्षासन लगा कर खड़ा हो गया। उसके पास के ही विहार में उसकी बड़ी बहन भी भिक्षुणी थी। उस तक खबर पहुंची कि उसका भाई मरने के करीब है और वह शीर्षासन लगा कर खड़ा हो गया है। वह आई और उसने जोर से उसे धक्का दिया, और कहा कि बंद करो यह शरारत, बूढ़े हो गए और शरारत नहीं छोड़ी! सीधे मरो, जैसा मरा जाता है।
तो फकीर हंसा और सीधा लेट गया, और मर गया--जैसे मौत एक खेल है।
उसने कहाः सीधे मरो! और फकीर हंसा भी। उसने कहाः मेरी बड़ी बहन आ गई, अब इसके आगे मेरा न चलेगा। तो अब मैं लेट जाता हूं और मर जाता हूं।
मौत को जो ऐसे हलके से ले सकते होंगे, ये वे ही लोग हैं जिन्होंने इसके पहले अकंपता साधी हो। इसलिए महावीर कहते हैं, अभय... !
"सुख-दुख दोनों को जो समभावपूर्वक सहन करता है, वही भिक्षु है।"
यह जरा समझ लेने जैसा है। सुख-दुख दोनों को समभावपूर्वक सहन करता हो-- जैसे सुख भी एक दुख है, दुख तो दुख है ही। आपने कभी ठीक से सुख को देखा हो तो आपको पता चल जाए कि वह भी दुख है।
सुख और दुख दोनों उत्तेजित स्थितियां हैं। आप सुख में भी उत्तेजित हो जाते हैं। कभी-कभी कुछ लोग सुख में मर तक जाते हैं। दुख में भी आप उत्तेजित हो जाते हैं। सुख और दुख दोनों का स्वभाव ऐसा है कि आप कंपित हो जाते हैं। सब डांवाडोल हो जाता है, भीतर तूफान हो जाता है।
एक तूफान को आप अच्छा कहते हैं; क्योंकि आप मानते हैं कि वह सुख है। एक तूफान को बुरा कहते हैं; क्योंकि धारणा है कि वह दुख है। यह सिर्फ धारणाओं की बात है, व्याख्या की बात है। लेकिन दोनों स्थितियों में अगर हम वैज्ञानिक से पूछें कि शरीर की जांच करे, तो वह कहेगा कि शरीर दोनों स्थितियों में अस्त-व्यस्त है; उत्तेजित है।
कभी-कभी सुख ऐसा भी हो सकता है कि हृदय की धड़कन ही बंद हो जाए, आप खत्म
ही हो जाएं--इतना बड़ा सुख हो सकता है। और दुख तो हम जानते हैं। लेकिन सुख को हमने ठीक से कभी नहीं परखा है कि उससे भी हमारा स्वास्थ्य खो जाता है; शांति नष्ट हो जाती है; भीतर की समता डिग जाती है; तराजू चेतना का डांवाडोल हो जाता है। महावीर कहते हैं, आनंद है अनुत्तेजित चित्त की अवस्था।
सुख भी उत्तेजना है, दुख भी उत्तेजना है--और सुख और दुख इसलिए हमारी व्याख्याएं है। वही चीज दुख हो सकती है और वही चीज सुख भी हो सकती है, जरा परिस्थिति बदलने की जरूरत है।
मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन और उसके साथी पंडित रामशरण दास दोनों एक साझेदारी में व्यापार कर रहे थे। और उन्होंने बहुत से कोट पतलून खरीद लिए--बड़े सस्ते मिल रहे थे। लेकिन, फिर बेचना मुश्किल हो गया; सारा पैसा उलझ गया। अब वे बड़े घबड़ाए। नया-नया धंधा किया था और फंस गए। अब दोनों चिंतित और परेशान थे, और सोच रहे थे, क्या करें--मुफ्त बांट दें या क्या करें इनका। क्योंकि इनको रखने का किराया और बढ़ता जाता था। कोई खरीददार नहीं था। और सोमवार की संध्या की बात है, एक खरीददार आ गया। और वह इतना आंदोलित हो गया उन सबको देख कर--पैंट-पतलून को, जो बिक नहीं रहे थे कि उसने कहा, मैं सब खरीदता हूं, और मुंहमांगा दाम देता हूं जो तुम कहो; चुकता लाट खरीदता हूं! लेकिन एक शर्त है कि तीन दिन प्रतीक्षा करनी पड़ेगी--आज सोमवार है; मंगल, बुद्ध, बृहस्पति--बृहस्पति की शाम पांच बजे तक। मुझे अपने परिवार से पूछना पड़ेगा, क्योंकि सभी का साझेदारी का धंधा है। तो मैं तार करूंगा। मेरे परिवार के लोग बाहर हैं। तीन दिन बाद, ठीक पांच बजे तक अगर मेरा इनकार का तार आ जाए, तो सौदा कैंसिल; अगर इनकार का तार न आए, तो सौदा पक्का। जो तुम्हारा दाम है, हिसाब तैयार रखो, मैं दो-चार दिन में सब सामान उठवा लूंगा।

फांसी लग गई। अब वे दोनों बैठे हैं, और एक-एक दिन गुजरने लगा। तीसरा दिन भी आ गया। अब चार बज गए।
अभी तक कुछ नहीं हुआ, तो उनकी श्वास अटकी है कि कहीं ऐसा हो कि पांच के पहले टेलीग्राम वाला कैन्सिलेशन का तार लिए द्वार पर दस्तक दे दे।
फिर साढ़े चार बज गए। फिर पौने पांच! अब तो जीना बिल्कुल मुश्किल हुआ
जा रहा है। और ठीक पौने पांच बजे तार वाले ने दस्तक दी। उसने कहाः टेलीग्राम!
दोनों की श्वास वहीं रुक गई। अब कोई से उठते न बने। आखिर ताकत लगा कर मुल्ला नसरुद्दीन उठा; बाहर गया। पैर चलते नहीं, हाथ कंप रहे हैं; पसीना छूट रहा है। पंडित जी तो आंख बंद किए वहीं राम-स्मरण करते रहे।
मुल्ला ने जाकर तार खोला, हाथ कंप रहे हैं, और जोर से खुशी से चीखा, पंडित रामशरण दास! योर फादर हैज डाइड--ए गुड न्यूज।
बाप का मरना भी किसी क्षण में गुड न्यूज हो सकता है, एक सुखद समाचार--
कि पिता चल बसे!
दोनों प्रसन्न हो गए। वह जो सामान बिकना है।
क्या दुख है और क्या सुख, निर्भर करता है परिस्थिति पर, व्याख्या पर।
जो सुख है, वह दुख जैसा मालूम हो सकता है। जो दुख है, वह सुख जैसा मालूम हो सकता है। किसी से प्रेम है; और गले लगे खड़े हैं! कितनी देर सुख रहेगा यह गले लगना? अगर वह छोड़ने से इनकार ही कर दे, तो चार-पांच मिनट में आप अपनी गर्दन हिलाकर बाहर होना चाहेंगे। लेकिन हाथ जंजीरों की तरह जकड़ जाएं, तो जो बड़ा सुख मालूम हो रहा था--कितना फूल की तरह कोमल था, वह पत्थर की तरह दुख हो जाएगा। यही दुख हो गया है परिवार--परिवार में कि जो आलिंगन था किसी क्षण, वह अब जंजीर हो गई है। अब उससे छूटने का उपाय नहीं है।
महावीर कहते हैं, सुख भी दुख का ही एक रूप है। और यह बड़ी वैज्ञानिक बात है। जैसे हम कहते हैं कि गर्मी और सर्दी दो चीजें नहीं हैं। हमको दो चीजें मालूम पड़ती हैं। वैज्ञानिक कहता है, वे एक ही तापमान की दो डिग्रियां हैं। एक ही चीज हैं, गर्मी और सर्दी। अंधेरा और प्रकाश एक ही चीज हैं; एक ही चीज की दो डिग्रियां हैं। जो आपको गर्मी मालूम पड़ती है, वह सर्दी मालूम पड़ सकती है; जो सर्दी मालूम है, वह गर्मी मालूम पड़ सकती है। यह निर्भर करता है कि किस हालत में आप हैं। अगर आप एअरकंडीशंड कमरे से बाहर आएं, तो आपको गर्मी मालूम पड़ती है। जो वहां खड़ा है, उसको गर्मी का कोई पता नहीं है। आप धूप से आ रहे हैं एअरकंडीशंड कमरे में, तो आपको बड़ा शीतल मालूम पड़ता है। जो वहां बैठा है, उसे कुछ पता नहीं कि शीतलता है। सापेक्ष है। सुख-दुख भी सापेक्ष घटनाएं है भीतर।
महावीर कहते हैं, जो दोनों को समभाव से सहन कर लेता है; जो न उत्तेजित होता दुख में और न उत्तेजित होता सुख में; जो दोनों का समभावी साक्षी हो जाता है, वही भिक्षु है।
"जो हाथ, पांव, वाणी और इंद्रियों का यथार्थ संयम रखता है, जो सदा अध्यात्म में रत रहता है, जो अपने आपको भलीभांति समाधिस्थ करता है, जो सूत्रार्थ को पूरा जाननेवाला है, वही भिक्षु है।"
दो-तीन बातें ख्याल में ले लेनी चाहिए।
निश्चित ही जैसे-जैसे साक्षीभाव बढ़ता है जीवन में, संयम बढ़ता है, तब हाथ भी अकारण नहीं हिलता, तब आंख भी अकारण नहीं उठती, तब जीवन का रंच-रंच विवेकपूर्ण हो जाता है। तब आप वही देखते हैं, जो देखना चाहते हैं। तब आप वही करते हैं, जो करना चाहते हैं।
बुद्ध के पास एक आदमी बैठा है सामने और बैठ कर अपने पैर का अंगूठा हिला रहा है। बुद्ध बोलना बंद कर देते हैं और कहते हैं, मित्र, यह अंगूठा क्यों हिलता है? उस आदमी का अंगूठा, जैसे ही बुद्ध यह कहते हैं, रुक जाता है। रोकने की जरूरत नहीं पड़ती, होश आ जाता है; उसे खुद ही ख्याल आ जाता है। वह कहता है, छोड़िए भी, आप भी कहां की बात में पड़ गए। यह तो यों ही हिलता था, मुझे कुछ पता ही नहीं था।
बुद्ध ने कहाः तेरा अंगूठा, और तुझे पता न हो और हिलता रहे, तो तू बड़ा खतरनाक आदमी है। तू किसी की गर्दन भी काट सकता है, तेरा हाथ हिल जाए। तेरा

अंगूठा और तुझे पता नहीं है, और हिलता है, तो तू मालिक नहीं है। होश सम्हाल।
तो महावीर कहते हैंः हाथ, पांव, वाणी, इंद्रियां जिसकी सभी संयमित हो
गई हैं, जिसके विवेक ने सभी चीजों की मालकियत आत्मा को दे दी है; और अब कोई भी इंद्रिय अपने ढंग से, अपने आप कहीं नहीं जा सकती; आपकी बिना मर्जी के रोआं भी नहीं हिल सकता।
जो सदा अध्यात्म में रत है; जिसका जीवन, जिसकी चेतना, जिसकी ऊर्जा प्रतिपल एक ही बात की खोज कर रही है कि "मैं कौन हूं?" जो हर अनुभव से अनुभोक्ता को पकड़ने की चेष्टा में लगा है। जो हर घड़ी बाहर से भीतर की तरफ मुड़ रहा है। जो हर अवसर को बदल लेता है और चेष्टा करता है कि हर अवसर में मुझे मेरा स्मरण सजग हो जाए। जो हर स्थिति में आत्म-स्मृति को जगाने की कोशिश में लगा है। जो भीतर के दीये को उकसाता रहता है, ताकि वहां ज्योति मद्धिम न हो जाए, और बाहर का कितना भी अंधेरा हो, भीतर के प्रकाश को आच्छादित न कर ले। ऐसे व्यक्ति को महावीर भिक्षु कहते हैं।
"जो अपने को सब भांति समाधिस्थ करता है, सूत्रार्थ को जानने वाला है, वही भिक्षु है।"
समाधि शब्द बड़ा अदभुत है। समाधान शब्द से हम परिचित हैं। समाधि समाधान का अंतिम क्षण है। जो व्यक्ति सब भांति अपना समाधान खोज लिया है; जिसके जीवन में अब कोई समस्या नहीं है, कोई प्रश्न नहीं है; जो हर तरह से समाधिस्थ है।
यह थोड़ा सोचने जैसा है। हम सब पूछते चले जाते हैं। जितना हम पूछते हैं, उतने उत्तर मिल जाते हैं। लेकिन हर उत्तर और नये प्रश्न खड़े कर देता है। हजारों साल से आदमी पूछ रहा है। किसी प्रश्न का कोई उत्तर नहीं है। हर प्रश्न कुछ उत्तर लाता है, लेकिन फिर उत्तर से नये प्रश्न खड़े हो जाते हैं।
कोई पूछता है, किसने बनाया जगत? कोई कहता है, ईश्वर ने बनाया। अब फिर सवाल ईश्वर का हो जाता है कि ईश्वर कौन है? क्यों बनाया? और इतने दिन तक क्या करता रहा, जब तक नहीं बनाया? और ऐसा जगत किसलिए बनाया, जहां दुख ही दुख है?
हजार प्रश्न खड़े होते हैं एक उत्तर से। दर्शनशास्त्र, फिलासाफी-- प्रश्न, उत्तर और उत्तर से हजार प्रश्न--इस तरह बढ़ता जाता है वृक्ष।
धर्म समाधि की खोज है, उत्तर की नहीं। तो धर्म की यात्रा बिल्कुल अलग है। प्रश्न का उत्तर नहीं खोजना है, बल्कि प्रश्न गिर जाए, ऐसी चित्त की अवस्था खोजनी है। एक प्रश्न उठता है, किसने जगत बनाया, अब इसके उत्तर की खोज में आप निकल जाएं तो अनंत जीवन आप चलते रहेंगे।
लेकिन धार्मिक व्यक्ति, जिसको महावीर भिक्षु कह रहे हैं--संन्यासी,
वह यह नहीं पूछता कि किसने जगत बनाया? वह कहता है, यह निष्प्रयोजन है। किसी ने बनाया हो, न बनाया हो--मुझे क्या लेना-देना है! असली सवाल यह नहीं है कि जगत किसने बनाया। असली सवाल यह है कि मैं ऐसी अवस्था में कैसे पहुंच जाऊं, जहां कोई प्रश्न न हो; जहां मेरा चित्त निस्तरंग हो जाए; जहां कोई समस्या न हो। यह रास्ता बिल्कुल अलग है। अगर प्रश्न छोड़ने हैं तो ध्यान करना पड़ेगा। अगर प्रश्नों के उत्तर खोजने हैं तो विचार करना पड़ेगा। विचार से उत्तर मिलेंगे; उत्तरों से नये प्रश्न मिलेंगे, और जाल फैलता चला जाएगा।
अगर प्रश्न छोड़ने हैं तो ध्यान करना पड़ेगा। एक प्रश्न उठता है, उसके उत्तर की खोज में मत जाएं; उस प्रश्न को देखते हुए खड़े रहें; और तब तक खड़े रहें भीतर, जब तक कि वह प्रश्न तिरोहित न हो जाए; आंख से ओझल न हो जाए; परदे से हट न जाए। हर चीज हट जाती है, आप थोड़ी हिम्मत से लगे रहें।
सोचें, आपको पता होगा कि आपके पिता का चेहरा कैसा है। जब तक आपने गौर नहीं किया, तब तक पता है। आंख बंद करें, हलकी सी छवि आएगी। फिर गौर से देखें, आप बड़ी मुश्किल में पड़ जाएंगे--पिता का चेहरा अस्त-व्यस्त होने लगा। अपने ही पिता का चेहरा, और पकड़ में ठीक से नहीं आता। और गौर से देखें... रेखाएं घूमिल हो गईं, चेहरा हटने लगा। और गौर से देखें... देखते चले जाएं।

थोड़ी देर में आप पाएंगे, परदा खाली हो गया, वहां पिता का कोई चेहरा नहीं है।
चित्त से किसी भी चीज को विसर्जित करना हो--गौर से देखना कला है। टु बी अटेंटिव--पूरा ध्यान उसी पर हो जाए, वह नष्ट हो जाएगी।
ध्यान अग्नि है। वह किसी भी विचार को जला देती है। आप करें और देखें। किसी भी विचार को सोचें मत, सिर्फ देखें। खड़े हो जाएं और देखते रहें, देखते रहें, देखते रहें--थोड़ी देर में आप पाएंगे, वह तिरोहित हो गया; वहां खाली जगह रह गई। वह खाली जगह समाधान है। और जब कोई व्यक्ति ऐसी कला से चलते, चलते, चलते उस जगह पहुंच जाता है, जहां प्रश्न उठते ही नहीं, खाली जगह रह जाती है, वह समाधिस्थ है।
इस समाधि में आत्मा का अनुभव होता है, क्योंकि इस समाधि में मन नहीं
रह जाता। मन है विचार, जब विचार खो गए; मन है प्रश्न, जब प्रश्न खो गए--तब कोई मन नहीं बचता--अ-मन, नो-माइंड।
कबीर ने कहा हैः अ-मनी स्थिति आ गई, अब अमृत झरता ही रहता है। जब मन नहीं रह जाता, अ-मनी स्थिति आ जाती है--उसको महावीर कहते हैं, "समाधि।"
इस समाधि को उपलब्ध हो जाना जीवन का परम लक्ष्य है। इस समाधि को उपलब्ध होकर ही आपके भीतर परमात्मा का फूल खिल जाता है। और जब तक वह फूल न खिल जाए, तब तक जीवन से दुख, उत्तेजना, बेचैनी, तकलीफ, चिंता, संताप के मिटने का कोई उपाय नहीं है।
उस फूल के खिलने के लिए ही यह सारा आयोजन है।
तो महावीर कहते हैंः वही है भिक्षु, जो शांत है इतना कि बाहर से उसका कोई संबंध न रहा। जो अभय है इतना कि बाहर से कोई भी चीज उसे कंपित नहीं कर सकती। और जो समाधिस्थ है; जिसके भीतर भी प्रश्न उठने बंद हो गए, वही भिक्षु है।

पांच मिनट रुकें, कीर्तन करें और फिर जाएं!

महावीर-वाणी, भाग 2
बाईसवां प्रवचन

भिक्षु कौन? (भिक्षु-सूत्रः 3)

उवहिम्मि अमुच्छिए अगिद्धे, अन्नायउंछं पुलनिप्पुलाए। कयविक्कयसन्निहिओ विरए, सव्वसंगावगए य जे स भिक्खू।।
अलोल भिक्खू न रसेसु गिद्धे,
उंछं चरे जीविय नाभिकंखे।
इड्ढिं़ च सक्कारण-पूयणं च,
चए ठियप्पा अणिहे जे स भिक्खू।।

जो अपने संयम-साधक उपकरणों तक में भी मूर्च्छा (आसक्ति) नहीं रखता, जो लालची नहीं है, जो अज्ञात परिवारों के यहां से भिक्षा मांगता है, जो संयम-पथ में बाधक होने वाले दोषों से दूर रहता है, जो खरीदने-बेचने और संग्रह करने के गृहस्थोचित धंधों के फेर में नहीं पड़ता, जो सब प्रकार से निःसंग रहता है, वही भिक्षु है।
जो मुनि अलोलुप है, जो रसों में अगृद्ध है, जो अज्ञात कुल की भिक्षा करता है, जो जीवन की चिन्ता नहीं करता, जो ऋद्धि, सत्कार और पूजा-प्रतिष्ठा का मोह छोड़ देता है, जो स्थितात्मा तथा निस्पृही है, वही भिक्षु है।

साधारण जीवन एक यांत्रिक प्रवाह है। जैसे हम उसे नहीं जीते, बल्कि जीवन ही जैसे हमें जीता है। वासनाओं का, इच्छाओं का एक धक्का है जो हमें चलाए रखता है। हम चलते हैं, ऐसा कहना उचित नहीं; क्योंकि चलने में न तो हमारा कोई अपना निर्णय है, न चलने में हमारा कोई संकल्प है, न कोई दिशा है, न कोई गंतव्य है। जैसे पानी की धार में कोई तिनका बहा जाता हो, ऐसे ही जीवन की धार में हम बहे जाते हैं। अहंकार के कारण ही हम सोच लेते हैं कि हम अपने जीवन के नियंता हैं। थोड़ा भी निष्पक्ष होकर कोई देखेगा, तो जीवन को यंत्रवत पाएगा।
पैदा हो जाते हैं; भूख है, प्यास है, कामवासना जगती है, महत्वाकांक्षा पैदा होती है, फिर चलते रहते हैं, दौड़ते रहते हैं और एक दिन गिर कर समाप्त हो जाते हैं। यह सारी दौड़ अंधेरे में, मूर्च्छा में है। हम उस शराबी की तरह हैं, जो चल रहा है, लेकिन जिसे पता नहीं कि कहां जा रहा है; और जिसे यह भी पता नहीं कि कहां से आ रहा है; और जिसे यह भी पता नहीं कि क्यों चलने की जरूरत है। नशा है और चले जा रहे हैं।
और ऐसा प्रत्येक आदमी का जीवन एक वर्तुल की तरह है। और सभी आदमियों के जीवन, जो यंत्रवत हैं, करीब-करीब एक से ही घूमते हैं और एक से ही समाप्त हो जाते हैं। जैसे प्रकृति मे ऋतुएं आती हैं, और फिर घूम कर वे ही ऋतुएं आ जाती हैं--फिर वर्षा आती है, फिर सर्दी आती है, फिर गर्मी आती है, फिर वर्षा आ जाती है--ऐसे ही हम सबके जीवन में भी बचपन है, जवानी है, बुढ़ापा है; फिर बचपन है, फिर जवानी है, फिर बुढ़ापा है। सब पुराना वर्तुल एक चक्के की भांति घूमता चला जाता है।
मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन अचानक अपने विद्यार्थी जीवन की स्मृति से भर गया। भरने का कारण था, जहां से गुजर रहा था, वहीं वह विद्यापीठ था, वह छात्रावास था, जहां विद्यार्थी जीवन में नसरुद्दीन रहा था। प्रबल कामना मन को पकड़ गई कि जाकर देखूं उस कक्ष को, उस कमरे को, जहां मैं वर्षों रहा हूं--कैसा है वह कक्ष अब? वैसा ही है या सब बदल गया है? जाकर उसने द्वार पर दस्तक दी। कोई दूसरा विद्यार्थी वहां रह रहा था। भीतर कुछ हलचल हुई। विद्यार्थी ने दरवाजा खोला। विद्यार्थी थोड़ा घबड़ाया हुआ था। नसरुद्दीन ने कहाः क्षमा करना, अकारण ही राह से गुजरता था, और याद आ गया कि अपने छात्रावास के कमरे को एक दफा हो आऊं वर्षों बाद।
कमरे के भीतर गया, देख कर उसने कहा कि दि सेम फर्नीचर--वही पुरानी कुर्सी है, वही मेज है। और तब वह गया आलमारी के पास। उसने आलमारी खोली और

वहां देखा उसने, एक अर्धनग्न युवती छिपी है। तो नसरुद्दीन ने कहाः दि सेम ओल्ड रोमांस--वही पुराना प्रेम भी चल रहा है।
लेकिन जैसे ही उसने दरवाजा खोला आलमारी का, वह युवक-विद्यार्थी, जो कमरे में रहता था, घबड़ा गया। और उसने हकलाते हुए कहा कि सर, शी इ.ज माई सिस्टर। तो नसरुद्दीन ने कहाः दि सेम ओल्ड लाइ--वही पुराना झूठ। सब वही चल रहा है।
हर आदमी के जीवन में करीब-करीब वही दुहर रहा है, जो हर दूसरे आदमी के जीवन में दुहरा है। लेकिन एक सुविधा है, क्योंकि हमें दूसरे जीवन का कोई पता नहीं।
हमसे पहले कितने लोग पृथ्वी पर हुए हैं! असंख्यात! वैज्ञानिक कहते हैं, जिस जगह पर आप बैठे हैं, कम से कम वहां दस आदमियों की लाशें दब चुकी हैं। पूरी पृथ्वी लाशों से भरी है। सारी जमीन की मिट्टी किसी न किसी आदमी के शरीर का हिस्सा रह चुकी है। लेकिन हमें उनके जीवन का कोई पता नहीं। इसलिए जब आप पहली दफा प्रेम में पड़ते हैं, तो आप सोचते हैं, ऐसा प्रेम पृथ्वी पर कभी नहीं हुआ।
ऐसा ही प्रेम हुआ है। ऐसा ही अनुभव भी हुआ है दूसरे लोगों को, जब वे प्रेम में पड़े हैं कि बस, ऐसा कभी नहीं हुआ। जब आप सफल होते हैं तो शायद सोचते हैं, ऐसी सफलता की चमक जमीन पर कभी नहीं घटी। या जब आप असफल होते हैं, और उदासी से भर जाते हैं, तो सोचते हैं, शायद ऐसा दुख का पहाड़ कभी नहीं टूटा।
यही सदा होता रहा है। हर आदमी के जीवन में मौसम की तरह चीजें वैसी ही घूमती रही हैं। लेकिन हमें दूसरे आदमियों का कोई पता नहीं है। इसलिए हर आदमी को लगता है, सब नया हो रहा है।
कुछ भी नया नहीं हो रहा है। बहुत पुराना सूत्र है कि "सूर्य के नीचे कुछ भी नया नहीं।" मगर प्रत्येक को ऐसा ही लगता है कि सब कुछ नया है।
यह भ्रान्ति है। और जब तक यह भ्रांति न टूट जाए, तब तक हम मुक्त होने
की चेष्टा में संलग्न नहीं होते। मुक्त होने की चेष्टा पैदा ही तब होती है, जब हमें ऐसा लगता है कि हम एक जाल में फंसे हैं, जैसे कि गाड़ी के चाक से हमें बांध दिया गया हो और गाड़ी घूमती चली जाती हो, और हम चाक के साथ घूमते चले जाते हैं।
इसलिए पूरब के मनीषियों ने जीवन की इस लंबी यात्रा को "आवागमन" कहा है; "संसार" कहा है। संसार का अर्थ होता हैः चाक--दि व्हील। जिसमें वे ही आरे वापस लौट आते हैं, और यह चक्र घूमता चला जाता है।
यह जो चक्र है, जब तक आपको लग रहा है कि आप कुछ नया जी रहे हैं, तब तक इससे छूटने का आपको ख्याल भी पैदा नहीं होगा। जैसे ही आपकी यह प्रतीति सघन हो जाए कि नया कुछ भी नहीं है, वही-वही दोहर रहा है, ऊब पैदा हो जाएगी। और वही ऊब अध्यात्म की तरफ पहला झुकाव बनती है। इसलिए बुद्ध और महावीर तो निरंतर अपने शिष्यों को कहते थे कि तुम याद करो अपने पिछले जन्मों को। और उन्होंने रास्ते खोजे थे ध्यान के जिनसे पिछले जन्मों की स्मृति सजग हो जाती है।
उसे महावीर "जाति-स्मरण" कहते हैं। खोजो अपने पिछले जन्मों को, और जब तुम्हारी स्मृति जगेगी, तब तुम बहुत हैरान हो जाओगे कि तुम जो आज कर रहे हो, ये तुम लाख बार कर चुके हो। यही लोभ, यही काम, यही आकांक्षा, यही दुख, यही दुख तुम इतनी बार कर चुके हो कि अगर याद भी आ जाए, तो मन विरक्त हो जाए। पुनरुक्ति इतनी हो चुकी है कि अब कहीं कोई रस नहीं है।
लेकिन प्रकृति एक खेल खेलती है कि हर जन्म के बाद हमारा पिछले जीवन का पूरा का पूरा स्मृति का संग्रह बन्द हो जाता है। हर नये जन्म के साथ पुरानी स्मृतियों के संग्रह का द्वार बंद हो जाता है। तब हमें सब फिर नया मालूम होने लगता है। फिर हम अ ब स से शुरू करते हैं।
मेरे एक मित्र है; डाक्टर हैं। एक दुर्घटना में ट्रेन से वे गिर पड़े; भीड़ बहुत थी और दरवाजे से लटके हुए खड़े थे। हाथ छूट गया और गिर गये। गिरने से सिर पर भयानक चोट लगी। ऊपर से तो कुछ चोट पता नहीं चलती थी, लेकिन भीतर से सारी स्मृतियां भूल गईं। खुद का नाम भी याद न रहा। अपनी मां और अपने

पिता को भी नहीं पहचान सकते थे। सारी जानकारी, मेडिकल साइंस का सारा अध्ययन--सब तिरोहित हो गया। फिर से--अ ब स से सब शुरू करना पड़ा। तीन साल में इस हालत में हो पाए कि ठीक से बातचीत कर सकें, भाषा समझ सकें, अखबार पढ़ सकें। जब गिरे तब उनकी उम्र कोई पैंतीस-छत्तीस वर्ष थी। वे पैंतीस वर्ष तिरोहित हो गए। वे कहां खो गए!
हमारा सारा का सारा बोध तो स्मृति पर निर्भर है। वह जो हमारी स्मृति है, अगर वह खो जाए, तो सब अतीत खो जाता है। तीन साल के बाद धीरे-धीरे मस्तिष्क स्वस्थ हुआ और पुरानी स्मृतियां फिर जगनी शुरू हो गईं।
जो लोग जीवन के संबंध में गहन खोज किए हैं, उनका ख्याल है कि मृत्यु इतना बड़ा शाक है, इतना बड़ा धक्का है कि ट्रेन से गिरने से इतना बड़ा धक्का नहीं लग सकता। उस धक्के में पुरानी स्मृतियों से हमारा संबंध छूट जाता है। फिर जन्म भी बहुत बड़ा धक्का है। दोनों ही बड़े ट्रॉमैटिक, बड़े धक्के हैं।
जब एक आदमी मरता है तो सारा स्मृतियों का जगत अस्त-व्यस्त हो जाता है;
सब संबंध विच्छिन्न हो जाते हैं; सब तार खो जाते हैं। फिर जब जन्मता है, तब फिर एक धक्का लगता है। ये दो धक्कों के कारण अतीत से हम बन्द हो जाते हैं। और हर बार हमें लगता है कि सब नया हो रहा है।
यह जो नये का भाव है, जब तक न टूट जाए, तब तक जीवन से मुक्ति की आकांक्षा पैदा नहीं होती। महावीर कहते हैं कि पीछे लौट कर स्मरण करो। और जरा सी भी स्मृति आनी शुरू हो जाए तो जीवन से रस खोना शुरू हो जाता है। इस जीवन से, जिसे हम अभी जीवन समझते हैं; और एक नया रस, और एक नया संगीत, और एक नई दिशा खुलने लगती है, जिसे महावीर ने "मोक्ष" कहा है।
संन्यस्त व्यक्ति का अर्थ है, जिसे इस जीवन में ऊब पैदा हो गई। इसे थोड़ा ठीक से समझ लें। इस जीवन में सुख अनुभव हो, तो आदमी संसारी रहेगा; और इस जीवन में दुख अनुभव हो, तो भी आदमी संसारी रहेगा। सुख और दुख दोनों में ऊब पैदा हो जाए, बोर्डम पैदा हो जाए, तो आदमी संन्यस्त होता है।
बहुत से लोग जीवन के दुख के कारण जीवन को छोड़ कर संन्यास ले लेते हैं। उनका संन्यास वास्तविक नहीं है; क्योंकि दुख की प्रतीति ही इसी बात की खबर है कि उनमें सुख की आकांक्षा अभी मौजूद है। हमें दुख मिलता इसलिए है कि हम सुख चाहते हैं। जो दुख के कारण जगत को छोड़ता है, वह सुख के लिए जगत को छोड़ रहा है। और जो सुख के लिए छोड़ रहा है, वह छोड़ ही नहीं रहा है। क्योंकि सुख की आकांक्षा ही संसार है।
बहुत से लोग दुख में संसार छोड़ते हैं--शायद सौ में निन्यानबे संन्यासी दुख में ही छोड़ते हैं। उनका संन्यास वास्तविक नहीं हो पाता। "ऊब"--इस शब्द को बहुत याद रख लें; बोर्डम। जो आदमी जगत को इतना व्यर्थ पाता है कि उसके सुख भी उबाते हैं और दुख भी उबाते हैं; दोनों बराबर हो जाते हैं, और दोनों में विरसता आती है--उस व्यक्ति के जीवन की यात्रा नई होती है।
इस संबंध में यह भी ख्याल में ले लेना जरूरी है कि आदमी अकेला प्राणी
है जगत में, जो ऊब सकता है। कोई दूसरा पशु ऊब नहीं सकता। किसी भैंस को, किसी घोड़े को, किसी सिंह को कभी भी बोर्डम की हालत में नहीं देखा गया है कि वे ऊबे हुए हों। भैंस रोज अपना वही चारा चबाती रहती है, जुगाली करती रहती है, लेकिन ऊबती नहीं। ऊब बिल्कुल मनुष्य के जीवन की घटना है। ऊब बड़ी महत्वपूर्ण घटना है; बहुत आध्यात्मिक घटना है।
कोई पशु ऊबता नहीं। आप किसी पशु की आंखों में ऊब नहीं देख सकते। पशु जैसे हैं, तृप्त हैं--जहां हैं, तृप्त हैं--जो कुछ भी उन्हें जीवन में उपलब्ध हुआ है, जहां उन्होंने जीवन को पाया है, उससे रत्ती भर आगे जाने, ऊपर उठने का कोई सवाल नहीं है। वे अपने वर्तुल को पूरा करके समाप्त हो जाते हैं। उन्हें अपनी यांत्रिकता का कोई पता नहीं चलता। और जीवन व्यर्थ है, इसका उन्हें कोई होश नहीं आता।
मनुष्य अकेला प्राणी है, जो ऊब सकता है। और ध्यान रखें, मनुष्य में जितनी प्रतिभा ज्यादा होगी, उतनी ज्यादा ऊब आएगी। मनुष्य में भी जो बहुत

कम विकसित लोग हैं, उनमें ऊब नहीं दिखाई पड़ेगी। ऊब आएगी प्रतिभा के विकास के साथ। जितना विचारशील व्यक्ति होगा, जीवन से उतना ऊबेगा, जल्दी ऊबेगा। बर्ट्रेंड रसल ने कहा है कि मैं आदिवासियों को देखता हूं, उनकी प्रसन्नता देख कर ईर्ष्या पैदा होती है। लेकिन रसल को ख्याल नहीं है कि आदिवासी इतने प्रसन्न क्यों हैं। आदिवासियों की प्रसन्नता का मौलिक कारण तो यही है कि वे पशुओं के बहुत निकट हैं। अभी भी ऊब पैदा नहीं हुई। अभी भी जीवन से दूर खड़े होकर जीवन के पुरानेपन को, पुनरुक्ति को देखने की सामर्थ्य उनमें नहीं आई। अभी वे ठीक प्रकृति में डूबे हुए जी रहे हैं। रसेल को ऊब मालूम होती है। अगर रसेल पूरब के मुल्कों में पैदा हुआ होता, या पूव्रूय जीवन-दृष्टि का उसे कुछ ख्याल होता, तो यह ऊब उसके लिए आध्यात्मिक जीवन की शुरुआत हो सकती थी। लेकिन दुर्भाग्य से वह पश्चिम में था। रसेल के जीवन में महावीर और बुद्ध जैसी घटना घट सकती थी--उतनी ही प्रतिभा थी। लेकिन पूरे पश्चिम की हवा, पूरे पश्चिम का तर्कजाल ऊब तो पैदा कर देता है, लेकिन इस ऊब के ऊपर उठने की कोई कला पश्चिम विकसित नहीं कर पाता है; इस ऊब को भुलाने की भर कला विकसित कर पा रहा है।
इसलिए पश्चिम मनोरंजन के साधन खोजता चला जाता है। मनोरंजन के साधन इस बात की खबर देते हैं कि आदमी ऊबा हुआ है। उसे किसी तरह भुलाओ। फिल्म है, संगीत है, नाटक है, नृत्य है, शराब है, भोज है, उत्सव है--उसे किसी तरह भुलाओ। उसकी ऊब प्रकट न हो पाए।
तो पश्चिम मनोरंजन के साधन खोज रहा है; उसी अवस्था में है, जिस अवस्था में महावीर के वक्त भारत था; उसी तरह संपन्न है; उसी तरह स्वर्ण शिखर पर खड़ा है। लेकिन पूरब ने ऊब की स्थिति में अध्यात्म खोजा, और पश्चिम ऊब की स्थिति में मनोरंजन खोज रहा है। स्थिति एक ही है।
अगर मनोरंजन खोजते हैं, तो आप ऊब से वापस नीचे गिर जाते हैं। मनोरंजन
का अर्थ है--कुछ नया खोज लिया, कुछ नये में रस आ गया और इसलिए भूल गए कि जिंदगी एक पुनरुक्ति है। इसलिए आप एक ही फिल्म दुबारा नहीं देख सकते। तीन बार तो बहुत मुश्किल है। चौथी बार तो दंड मालूम पड़ेगा। पांचवीं बार तो आप बगावत कर देंगे।... क्यों? जिंदगी तो आप रोज वही-वही देख लेते हैं, लेकिन फिल्म आप दोबारा क्यों नहीं देख सकते?
फिल्म का प्रयोजन ही खत्म हो जाता है दोबारा देखने से। क्योंकि फिल्म
है ही नये का अनुभव देने की चेष्टा, ताकि थोड़ी देर के लिए भूल जाए कि जिंदगी एक पुरानी बकवास है। जिंदगी की ऊब को तोड़ने के लिए ही तो मनोरंजन है। अगर मनोरंजन भी ऊब पैदा करे, पुनरुक्त हो, तो कठिनाई हो जाएगी।
इसलिए फैशन रोज बदलता है। और जितना समाज सचेतन होने लगता है, उतना जल्दी बदलने लगता है। जितना समाज पुराना होता है--प्रकृति के करीब होता है, पशुओं के निकट होता है, उतने फैशन जल्दी नहीं बदलते। लेकिन जैसे-जैसे समाज सजग, सचेत होता है, फैशन रोज बदलते हैं। हर साल कार का माडल बदल जाता है--ऊब पैदा न हो।
पश्चिम में वस्तुओं को बदलने के साथ-साथ व्यक्तियों को बदलने की भी प्रवृत्ति गहरी हो गई है। वह भी ऊब का ही परिणाम है। हर साल पत्नी भी बदल लेना चाहिए। नये मॉडल उपलब्ध हो जाते हैं। पुराने मॉडल के साथ जीना सिर्फ पुरानी आदतों की वजह से चल रहा है।
मैंने सुना है, एक फिल्म अभिनेत्री ने अपना सत्रहवां तलाक दिया। और
जब उसने अठारहवीं शादी की, तो शादी करने के बाद उसे पता चला कि यह आदमी एक दफा पहले भी उसका पति रह चुका है।
जिंदगी छोटी है, और अठारह विवाह, और सबकी याददाश्त रखना कठिन है, और जिंदगी इतनी जोर से भागती हुई है। तो व्यक्ति भी बदलो, भोजन बदलो, कपड़े बदलो, फिल्म बदलो--सब कुछ बदलते रहो ताकि ऊब का पता न चले। लेकिन कितना ही बदलो, ऊब जिंदगी के भीतर छिपी है। क्योंकि जिंदगी पुनरुक्ति है। और कितना ही फिल्म को बदलो, कहानी तो वही रहती है। कोई कहानी में फर्क नहीं आता। कोई भी फिल्म रामायण से आगे नहीं जा पाती; जा नहीं सकती। वही ट्रायंगल--वही राम, रावण, सीता। वही ट्रायंगल है। कहानी के थोड़े डिटेल्स हम बदल लेते हैं, लेकिन वही त्रिकोण चलता रहता है; दो प्रेमी हैं; एक

प्रेयसी है। रामायण से आगे फिल्म को ले जाना मुश्किल मालूम पड़ता है। वही कथा है--लेकिन कथा के नाम बदल जाते हैं। थोड़े से विस्तार की बातें बदल जाती हैं, लेकिन मौलिक बात वही चलती चली जाती है।
क्या करिएगा! जब जिंदगी ही पुरानी पड़ जाती है, तो कहानी कितनी देर नई
रह सकती है, जो जिंदगी से ही पैदा होती है।
पश्चिम और पूरब का भेद यहां है। दोनों ऊब की अवस्था में पहुंच गए। जब पूरब ऊब की अवस्था में पहुंचा, तो उसने सोचा कि इस ऊब के पार कैसे जाया जाए? इस जीवन से कैसे मुक्त हों? उससे संन्यास का जन्म हुआ। उससे भिक्षु पैदा हुए, जिन्होंने जीवन से अपने को ऊपर उठा लिया।
पश्चिम में भी ऊब की अवस्था आ गई। इस ऊब को कैसे भूला जाए? तो पश्चिम में मनोरंजन के साधन पैदा हो रहे हैं। और कुल चेष्टा इतनी रह गई है कि शराब, एल. ए. डी., मारिजुआना से किसी तरह अपने को भुला कर हम जिंदगी गुजार लें। इसलिए आज पश्चिम की सरकारें, विचारशील नैतिक लोग, पुरोहित, पंडित--सब इस कोशिश में लगे हैं कि नई पीढ़ियां सम्मोहित करने वाले, बेहोश करने वाले रासायनिक तत्वों, एल. ए. डी., मारिजुआना से कैसे बचें।
उनकी कोशिश सफल नहीं हो सकती। उनकी कोशिश असंभव है कि सफल हो। जब तक
कि पश्चिम में पूरब का संन्यास स्थापित न हो, उनकी कोशिश सफल नहीं हो सकती। क्योंकि जिंदगी दुख दे रही है; दुख ही नहीं दे रही है, जिंदगी ऊब दे रही है। उस ऊब को या तो भुलाओ, या ऊब के पार चले जाओ।
ऊब के पार जाने के सूत्र, महावीर, भिक्षु कौन है, इस संदर्भ में कह रहे हैं। उनके सूत्र को हम समझें।
"जो अपने संयम-साधक उपकरणों तक में मूर्च्छा नहीं रखता, जो लालची नहीं है, जो अज्ञात परिवारों से भिक्षा मांगता है, जो संयम-पथ में बाधक होने वाले दोषों से दूर रहता है, जो खरीदने-बेचने और संग्रह करने के गृहस्थोचित धंधों के फेर में नहीं पड़ता, जो सब प्रकार से निःसंग है, वही भिक्षु है।" मनुष्य की आसक्ति वस्तुओं के कारण नहीं होती, मनुष्य की आसक्ति अपनी
ही बेहोश होने की वृत्ति के कारण होती है। आसक्ति बेहोश होने का एक ढंग है। जब भी आप किसी चीज में बहुत आसक्त हो जाते हैं, तब वह चीज आपको नशा देने लगती है। इसे आपने अनुभव भी किया होगा।
अगर आप किसी स्त्री के प्रेम में हैं, तो आपकी चाल बदल जाती है; आप नशे में चलने लगते हैं। कोई भी देख कर कह सकता है आपको कि अब आप प्रेम में पड़ गए हैं। आपके पैर ठीक जगह पर नहीं पड़ते। आपकी आंखें ठीक देखती नहीं मालूम पड़तीं। आपके कान ठीक सुनते मालूम नहीं पड़ते। जिस स्त्री को आप प्रेम करते हैं, अगर हजार लोगों की भीड़ हो, तो नौ सौ निन्यानबे आदमी आपको दिखाई ही नहीं पड़ते, वही स्त्री दिखाई पड़ती है। अगर वह स्त्री उठ जाए, तो पूरी सभा उठ गई; वहां अब कोई नहीं है। और आप इस तरह जीने लगते हैं कि जैसे अब इस स्त्री के बिना जीना असम्भव है; या इस पुरुष के बिना जीना असंभव है।
एक नशा है। वह नशा आपको जिंदगी को भूलने में सुविधा देता है। यह नशा मनुष्यों के आपसी संबंधों में ही होता है, ऐसा नहीं है, वस्तुओं से भी हो सकता है। जो आदमी धन को प्रेम करता है, वह भी नशे में होता है। जैसे-जैसे उसकी तिजोड़ी में संग्रह बढ़ने लगता है, वैसे-वैसे उसकी चाल अनूठी होने लगती है; वैसे-वैसे उसका सीना फूलने लगता है; वैसे-वैसे वह जमीन पर नहीं होता, आकाश में उड़ने लगता है। जो आदमी राजनीति के नशे में है, पद के नशे में है, वह जैसे-जैसे पदों के करीब पहुंचने लगता है, उसकी हालत देखें, उसकी हालत बिल्कुल वही है, जो शराबी की हो सकती है।
सच तो यह है कि शराबी सबसे कमजोर नशेवाला आदमी है। असल में शराब को वही खोजता है, जो और कोई मजबूत नशा नहीं खोज पाता। जिन्दगी में बड़े नशे हैं। इसलिए यह हो सकता है कि नेता लोगों को समझा रहा है कि शराब मत पीयो, और उसे पता ही नहीं कि वह सिर्फ इसलिए नहीं पी रहा है कि उसे नेता होने की सुविधा है। और नेता होने में इतना मजा है, और इतनी बेहोशी है कि वह शराब का काम कर रही है।
आदमी, जैसी जिंदगी है, इस जिंदगी में कोई न कोई नशा खोजेगा। वह नशा कोई
भी हो सकता है। इसलिए हमने तो इस देश में विद्या तक को व्यसन कहा है। वह भी

नशा हो सकती है। वह भी अपने को भुलाने का उपाय हो सकती है। जिस किसी चीज में भी आत्मस्मृति खोती हो, वही नशा है। और जिससे आत्मस्मृति बढ़ती हो, वही नशे के पार जाना है।
और पृथ्वी पर हजारों साल से लोग समझा रहे हैं कि नशा छोड़ो। नशा छूटता नहीं, बढ़ता चला जाता है। ऐसा कोई युग नहीं हुआ, जब लोग नशा न कर रहे हों। नशे के उन्होंने बहाने अलग-अलग खोजे, लेकिन वेद से लेकर आज तक आदमी नशा करता ही रहा है। कभी यह सोमरस पीता है। और अल्डुअस हक्सले, पश्चिम का विचारशील अन्वेषक कहता है कि सोमरस, एल. ए. डी. जैसी ही चीज है। और वैज्ञानिक खोज में लगे हैं, तो वे कहते हैं, सोमरस का जो-जो वर्णन ऋग्वेद में दिया है, वह वर्णन ठीक एल. एस. डी. से मिलता-जुलता है। और हम जल्दी ही इस सदी के पूरे होते-होते एल. एस. डी. में और सुधार कर लेंगे, तो वह बिल्कुल सोमरस हो जाएगा, जिसको पीकर ऋषि-मुनि देवताओं से बात करने लगते थे; और जिसको पीकर वे परम आनंदित होकर नाचने लगते थे।
हिप्पी वही कर रहे हैं।
अल्डुअस हक्सले ने तो, बीसवीं सदी के बाद जब वैज्ञानिक आविष्कार और गहरे हो जाएंगे और एल. ए. डी. में परिष्कार हो जाएंगे, तो इक्वीसवीं सदी में जो एल. ए. डी. का परिष्कृत रूप होगा, उसको नाम ही "सोमा" दिया है--सोमरस के कारण। तो उसका नाम "सोमा" होगा।
आदमी सदा से ही नशे की तलाश करता रहा है; मूर्च्छित होने के उपाय खोजता रहा है। आदमी क्यों मूर्च्छित होना चाहता है, यह सोचना जरूरी है। होने के पीछे कारण हैं। आदमी अपने को, जैसा वह है, देखता है, तो बड़ी बैचेनी अनुभव करता है। जैसा आदमी है, अगर जागता है, तो बड़ी उदासी, ऊब पैदा होती है। आप जैसे हैं, अगर आपको पूरा-पूरा अपना दर्शन होने लगे, तो आप बहुत बैचेन हो जाएंगे, और घबड़ा जाएंगे। शायद आप आत्महत्या करना चाहेंगे। आप कहेंगे, इसमें क्या रखा है? मैं क्या कर रहा हूं? मेरे होने का क्या अर्थ है; क्या प्रयोजन है?
इसलिए प्रत्येक व्यक्ति अपने से बचता है। अपने से बचने का नाम नशा है। आप चाहे अपने मित्र के पास जाकर गपशप में अपने को भूल जाते हों, चाहे मंदिर में जाकर आप धर्म-प्रवचन सुन कर उसमें अपने को भूल जाते हों, चाहे होटल में बैठ कर नशा कर लेते हों--कुछ भी करते हों; जहां भी आप अपने को भूलने की कोशिश कर रहे हैं, वह कोशिश आपको धार्मिक बनने से रोक रही है।
तो महावीर कहते हैं कि भिक्षु वह है, जो उन उपकरणों तक में मूर्च्छा नहीं रखता, जिनके माध्यम से वह मुक्ति की तरफ जा रहा है। मोक्ष ले जानेवाले जो साधन हैं, उनमें भी जिसकी मूर्च्छा नहीं है--जो उनमें भी बेहोश नहीं होता--जो उनमें भी अपने को खोता नहीं।
लेकिन साधुओं को देखें। अगर साधु सुबह पांच बजे उठता है ब्रह्ममुहूर्त में और अपनी प्रार्थना करता है--एक दिन न उठ पाए पांच बजे, तो बेचैन, परेशान हो जाता है। तो वह ब्रह्ममुहूर्त में उठना भी एक मूर्च्छित आदत हो गई। अगर एक दिन प्रार्थना न कर पाए तो बेचैनी हो जाती है। तो इस बेचैनी में और शराब पीनेवाले की बेचैनी में बुनियादी फर्क नहीं है। एक दिन शराब न मिले तो बेचैनी हो जाती है।
मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी अपनी सहेलियों को कह रही थी कि मेरा दुर्भाग्य कि शराबी से मेरा संबंध हो गया; शराबी से मैंने विवाह कर लिया। लेकिन सहेलियों ने कहा कि विवाह किए तो दो साल भी हो गए, लेकिन तुमने कभी शिकायत न की? उसने कहा कि दो साल वह रोज शराब पीकर आता था, तो पता ही नहीं चला; कल रात बिना पिए आ गया, तो पता चला कि यह आदमी शराबी है। क्योंकि रात भर वह बेचैन और परेशान रहा।
जिस चीज से भी आपका संबंध ऐसा बन जाए कि उसके बिना आप बेचैन होने लगें,
तो आप समझना कि आपने शराब का संबंध निर्धारित कर लिया, निश्चित कर लिया। जिसके बिना भी आप अपने को मुश्किल में पाएं--वह चाहे ध्यान हो, प्रार्थना हो, पूजा हो, तो आप समझना कि आपने धार्मिक ढंग की शराब अपने आस-पास इकट्ठी कर ली।

महावीर कहते हैं, भिक्षु तो वह है, जो अपने साधनों में भी, उपकरणों में भी, जिनके सहारे वह जा रहा है परमगति की ओर, उनमें भी मूर्च्छित नहीं है। यह तो गहरी बात है। इसका एक स्थूल रूप भी है। क्योंकि आखिर भिक्षु होगा, तो भी वस्त्र थोड़े से पहनेगा, भिक्षा पात्र रखेगा, कुछ थोड़ी सी साधन सामग्री उसके पास होगी। जीवन के निर्वाह के लिए इतना जरूरी होगा। इसमें भी मूर्च्छा पकड़ जाती है। वह जो दो वस्त्र पास में है, उनमें भी रस पकड़ जाता है। वह भी खो जाए तो दुख होगा, तो लगेगा लुट गए। उनको भी सम्हाल कर रखता है। उनको भी बचा कर रखता है कि कहीं चोरी न हो जाएं।
जापान का एक सम्राट रात को निकलता था अपनी राजधानी देखने कि क्या स्थिति है--वेश बदल कर। वह बड़ा हैरान हुआ। और सब तो ठीक था, जब भी वह जाता तो एक भिखारी को जागते हुए पाता एक वृक्ष के नीचे। आखिर उसकी उत्सुकता बढ़ गई। और एक दिन उसने पूछा कि रात भर तू जागता क्यों है? तो उस भिखारी ने कहा कि अगर सो जाऊं और कोई चोरी कर ले, तो? वृक्ष के नीचे बैठा हूं, कोई और तो सुरक्षा है नहीं, तो दिन में सो लेता हूं। क्योंकि दिन में तो सड़क चलती रहती है, लोग होते हैं; रात तो जगना ही पड़ता है।
सम्राट ने उसके आस-पास पड़े हुए चीथड़ों का ढेर देखा, दो-चार भिक्षा के टूटे-फूटे पात्र देखे, उनके बचाव के लिए वह रात भर जग रहा है।
भिखारी भी चिंतित है कि चोरी न हो जाए। साधु भी चिंतित है कि उसका कुछ सामान न खो जाए। तो उसकी गृहस्थी छोटी हो गई, सिकुड़ गई, लेकिन मिटी नहीं। उसके लालच का फैलाव कम हो गया, लेकिन मिटा नहीं।
और ध्यान रहे, लालच का फैलाव जितना कम हो जाए, लालच उतना ही ज्यादा नशा देता है; क्योंकि इंटेंसिटी बढ़ जाती है। यह जरा समझने जैसा है। जैसे कि सूरज की किरणें पड़ रही हैं, आग पैदा नहीं होती; लेकिन आप एक लेन्स से सूरज की किरणों को इकट्ठा कर लें एक कागज पर, सारी किरणें इकट्ठी हो जाएंगी, आग पैदा हो जाएगी। किरणें तो पड़ रही थीं, लेकिन बिखरी हुई थीं; इकट्ठी पड़ती हैं तो कागज जल उठता है, आग पैदा हो जाती है।
ध्यान रहे, साधारण गृहस्थ आदमी की वासना की किरणें तो बिखरी हुई हैं। साधु के पास तो ज्यादा सामान नहीं रह जाता, जिस पर वह अपनी वासना को फैला दे; बहुत थोड़ा रह जाता है, इसलिए बहुत इंटेंस, बड़ी तीव्रता से वासना इकट्ठी हो जाती है। और कई बार ऐसा होता है कि फैला हुआ गृहस्थ उतना गृहस्थ नहीं होता, जितना सिकुड़ा हुआ साधु गृहस्थ हो जाता है; जकड़ जाता है। थोड़ी जगह वासना इकट्ठी होकर आग पैदा करने लगती है। इसीलिए मनुष्य का मन अनजाने ही, जैसे सहज वृत्ति से सत्य को जानता है।
अगर आप एक स्त्री को प्रेम करते हैं तो वह बरदाश्त नहीं करेगी कि आप किसी और स्त्री को प्रेम करें। यह सहज है। कोई चेष्टा नहीं है। लेकिन सहज ही दूसरी स्त्री के प्रति आपका जरा सा भी लगाव उसे कष्ट देगा। अगर आपकी पत्नी किसी दूसरे में जरा ज्यादा उत्सुकता लेती है, तो आपको कष्ट होना शुरू हो जाएगा।
कारण है। और कारण यह है कि जितनी वासना फैल जाती है, उसकी तीव्रता कम
हो जाती है--तो जो आग पैदा हो सकती है वासना से, वह फिर पैदा नहीं होती। इसलिए प्रेमी डरते हैं कि कहीं वासना ज्यादा लोगों पर न फैल जाए। तो
सब तरफ से वासना की किरणें एक ही व्यक्ति पर इकट्ठी हों। इसलिए प्रेमी एक-दूसरे को मोनोपलाइज करते हैं; पजेस करते हैं, एक-दूसरे को बिल्कुल अपने पर रोक लेना चाहते हैं--जरा सी भी वासना कहीं न जाए ताकि वासना की तीव्रता और चोट आग पैदा कर सके।
इसलिए इतना भय प्रेमियों को लगा रहता है; और इतनी ईर्ष्या, और इतनी जलन, और इतना उपद्रव पकड़े रहता है।
इस सबके पीछे कोई बड़ी नैतिकता नहीं है। इस सबके पीछे कोई धर्म नहीं है
और कोई समाज नहीं है। इस सबके पीछे मनुष्य का सहज अनुभव है कि वासना अगर बिखर जाए तो कुनकुनी हो जाती है; उसमें आग नहीं रह जाती। अगर वासना बहुत लोगों पर फैल जाए तो फिर उससे गहरे संबंध निर्मित नहीं हो सकते। फिर सतह पर ही मिलना हो पाता है।

साधु अपनी वासना को सिकोड़ लेता है सब तरफ से; घर छोड़ देता; पत्नी छोड़ देता; धन छोड़ देता; लेकिन तब उसकी वासना, जो उसके आस-पास रह जाता है, उस पर केंद्रित होने लगती है।
यह बड़े मजे की बात है कि बाप नहीं मिलेंगे ऐसे, जो अपने बेटे के प्रति इतने आसक्त हैं, जितने गुरु मिल जाएंगे, जो अपने शिष्य के प्रति इतने आसक्त हैं। गुरु जितना बेचैन रहता है कि कहीं शिष्य और कहीं न चला जाए, किसी और को गुरु न बना ले, कहीं और न भटक जाए--उतना बाप भी चिंतित नहीं रहता; उतना बाप भी परेशान नहीं रहता।
और निश्चित ही अगर गुरु को संन्यस्त होने का पूरा अनुभव नहीं हुआ है अभी, तो ही यह हो सकता है। गुरु नहीं है ठीक अर्थों में, तो ही यह हो सकता है। बुरी तरह शिष्य को जकड़ लेता है, सब तरफ से बांध लेता है, पजेसिव हो जाता है।
यह न केवल व्यक्तियों के संबंध में होगा, चीजों के संबंध में भी हो जाएगा। जो थोड़ी सी चीजें साधु के पास रह जाएंगी, उन पर वह सारा संसार आरोपित करेगा। वही उसका संसार है। आप लाख रुपये की चीज को भी इतना सम्हाल कर नहीं रखेंगे, जितना साधु दो कौड़ी की चीज को सम्हाल कर रखेगा।
महावीर कहते हैं, ऐसी मूर्च्छा अगर हो तो भिक्षु अभी भिक्षु नहीं है।
"जो लालची नहीं है, गृद्ध नहीं है, लोभी नहीं है... ।"
लोभ बड़ी सूक्ष्म वृत्ति है। और इसका संबंध धन से, मकान से, जमीन-जायदाद से नहीं है। इसका संबंध भीतर की एक गहरी आकांक्षा से है। और वह आकांक्षा है--और ज्यादा, और ज्यादा--किसी भी संबंध में।
अगर धन लाख रुपया आपके पास है, तो आपका लोभ कहेगा--और ज्यादा। अगर आपको उम्र सत्तर वर्ष की मिली है, तो लोभ की वासना कहेगी--और ज्यादा। अगर आपको ध्यान में थोड़ी सी शांति मिल रही है, तो लोभ की आकांक्षा कहेगी--और ज्यादा। अगर आपको मोक्ष के थोड़े से दर्शन होने लगे हैं, तो लोभ की आकांक्षा कहेगी-- और ज्यादा।
लोभ की आकांक्षा का सूत्र है--और ज्यादा; जितना है, उतना काफी नहीं। तो इससे कोई फर्क नहीं पड़ता, आप घर छोड़ कर चले गए, दुकान छोड़ कर चले गए। "और ज्यादा" में कोई फर्क नहीं पड़ता।
मेरे पास लोग आते हैं; ध्यान कर रहे हैं। उन्हें शांति मिलती है। जब उन्हें शुरू-शुरू में शांति मिलती है, वे बड़े प्रसन्न होते हैं। फिर थोड़े दिन बाद आकर वे कहने लगते हैं कि अब ठीक है, यह शांति तो ठीक है--अब और आगे क्या? और अब कुछ आगे बढ़ाएं। आनंद कब मिलेगा? उनको पता नहीं कि जब "और ज्यादा" का ख्याल छूट जाएगा, तभी आनंद मिलेगा। वही अड़चन है। क्योंकि "और ज्यादा" का ख्याल ही दुख देता है। वही बाधा है। और आप "और ज्यादा" को हर जगह लगा लेते हैं। कुछ भी हो, वह लग जाता है। कहीं भी वह वृत्ति जुड़ जाती है और बेचैनी शुरू हो जाती है।
आपको परमात्मा भी मिल जाए, तत्क्षण जो बात आपके मन में उठेगी, वह यह होगी कि अच्छा, ठीक है--यह तो ठीक, अब और ज्यादा। आप सोचें, खुद अपने मन के बाबत सोचें कि मिल गया परमात्मा--तृप्ति नहीं होगी!
मन कुछ ऐसा है कि अतृप्त रहना उसका स्वभाव है। लोभ मन की आधारभूत वृत्ति है। जहां लोभ मिट जाता है, वहां मन मिट जाता है। जहां लोभ नहीं वहां मन के निर्मित होने का कोई उपाय नहीं है। मन कहता है, जो है यह काफी नहीं है, और ज्यादा हो सकता है।
और वह जो नहीं हो रहा है, उससे पीड़ा आती है; जो हो रहा है, उसका सुख खो जाता है। इसे थोड़ा समझें।
आप अपना दुख इसी वृत्ति के कारण पैदा कर रहे हैं। इसको महावीर कहते हैं, गृद्ध-वृत्ति-गीध के जैसी वृत्ति। अगृद्ध होगा भिक्षु। जो भी है, वह कहेगा, इतना ज्यादा है कि मेरी क्षमता नहीं थी, वह मुझे मिला। वह हमेशा अनुगृहीत भाव से भरा होगा।... एक ग्रेटिट्यूड होगा उसमें।
आप जब तक लोभ से भरे हैं, आपमें अनुग्रह नहीं हो सकता। आपको कुछ भी मिल जाए, तो भी शिकायत होगी। आपकी जिंदगी एक लंबी शिकायत है। उसमें कभी भी

अहोभाव नहीं हो सकता। क्योंकि आप सदा जानते हैं, और ज्यादा मिल सकता था; और ज्यादा मिल सकता था, जो नहीं मिला।
भिक्षु का अर्थ है; संन्यस्त का अर्थ है--ऐसा व्यक्ति, जिसे जो भी मिल जाए, तो वह हमेशा अनुभव करता है कि जो मुझे नहीं मिल सकता था, वह मिल गया; जो मेरी पात्रता नहीं थी, वह मुझे मिल गया; जिसको पाने का मैं अधिकारी नहीं था, वह मुझ पर बरस गया। वह हमेशा अनुगृहीत है। ग्रेटिट्यूड उसका स्वभाव हो जाएगा। जो भी मिल जाए, वह उसे इतनी परम तृप्ति देगा कि आनंद के द्वारा ज्यादा देर तक बंद नहीं रह सकते, कि मोक्ष ज्यादा दूर नहीं रह सकता।
और ध्यान रहे कि संन्यस्त व्यक्ति मोक्ष में प्रवेश नहीं करता, संन्यस्त व्यक्ति में मोक्ष प्रवेश करता है। मोक्ष कोई भौगोलिक जगह नहीं है, जिसमें आप चले गए। अगर ऐसी कोई जगह कहीं होती तो आपमें से कोई न कोई रिश्वत का रास्ता, पीछे का दरवाजा जरूर खोज लिया होता इतने लंबे समय में। आदमी काफी कुशल है।
लेकिन अच्छा ही है कि मोक्ष कोई भौगोलिक जगह नहीं है, नहीं तो शैतान
और चालाक उस पर कब्जा कर लेते; निरीह, सीधे-साधे लोग बाहर रह जाते। जो योग्य होते, वे बाहर रह जाते; जो अयोग्य होते, वे भीतर सिंहासनों पर विराजमान हो जाते। लेकिन मोक्ष में राजनीतिज्ञ नहीं घुस पाते; चालाक नहीं घुस पाते; बेईमान नहीं घुस पाते। उसका कारण यह है कि मोक्ष कोई जगह नहीं है जिसमें प्रवेश किया जा सके। मोक्ष एक अवस्था है जो आपमें प्रवेश करती है। जब आप तैयार होते हैं, वह प्रविष्ट हो जाती है। ठीक तो कहना यह होगा कि वह कोई अवस्था नहीं जो आपमें बाहर से आती है--भीतर मौजूद है। जैसे ही "और ज्यादा" की वृत्ति खो जाती है, उसका अनुभव शुरू हो जाता है।
"और ज्यादा" में उलझा हुआ आदमी उसे नहीं देख पाता, जो भीतर मौजूद है।
संतुष्ट, अहोभाव से भरा व्यक्ति दौड़ता नहीं, उसका मन कहीं और जाता नहीं।
वह उससे तृप्त हो जाता है, जो भीतर है।
आदमी का मन किसी भी चीज से तृप्त नहीं होता। थोड़ी देर सोचें कि ऐसी कौन सी चीज है, जो आपको मिल जाए, तो आप तृप्त हो जाएंगे।
मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन जब मरा, स्वर्ग पहुंचा, तो उसने सेंट पीटर से कहा कि मेरी एक आकांक्षा जीवन भर रही है। एक व्यक्ति से मैं मिलना चाहता हूं, जो स्वर्ग में है। और मुझे कोई सवाल पूछना है।
सेंट पीटर ने कहा कि मिलने का इंतजाम करवा देंगे, अगर वह व्यक्ति, जिससे तुम मिलना चाहते हो, स्वर्ग में हो तो। नसरुद्दीन ने कहा कि बिल्कुल निश्चित है कि वह स्वर्ग में है, आप सिर्फ इंतजाम करवाएं। मैं जीसस की मां मेरी से मिलना चाहता हूं।
पीटर भी थोड़ा हैरान हुआ कि क्या प्रयोजन होगा! वह भी उत्सुक हुआ। उसने कहाः क्या मैं भी मौजूद रह सकता हूं तुम्हारी मुलाकात के वक्त? तुम क्या पूछना चाहते हो आखिर, जीसस की मां से?
नसरुद्दीन ने कहाः एक प्रश्न मेरे मन में सदा से अटका है; बस, वही पूछना है।
जीसस की मां मेरी के पास उसे ले जाया गया। मेरी का भव्य रूप-चारों तरफ गिरती प्रकाश की किरण--आभामंडल--आनंद का सागर चारों तरफ, नसरुद्दीन बहुत प्रभावित हुआ। उसने कहा कि मैं तुझसे एक ही सवाल पूछना चाहता हूं। मेरे मन में सदा यह उठता रहा है, क्योंकि मेरे लड़के सब नालायक निकल गए। मैं दुखी रहा हूं उनकी वजह से। मेरी पत्नी दुखी है अपने बेटों की वजह से। और मैंने पृथ्वी पर ऐसा कोई मां और बाप नहीं देखा, जो दुखी नहीं है। मैं तुमसे पूछना चाहता हूं कि तुम्हें तो जीसस जैसा बेटा मिला--जिसे लोग, हजारों-लाखों लोग ईश्वर की प्रतिमा मानते हैं--परमात्मा ही मानते हैं, तो जब तुम जमीन पर थीं और जीसस पैदा हुआ और जब जीसस ऐसा प्रभावी हो गया कि लाखों लोग उसे ईश्वर मानने लगे, तब तुम्हारे मन को कैसा हुआ? तुम तो कम से कम तृप्त रही हो? मेरी ने कहाः टु बी फ्रैंक, नसरुद्दीन, आई एण्ड माई हसबैंड, वी बोथ वेअर होपिंग दैट ही शुड बिकम ए गुड कारपेंटर--अच्छा बढ़ई बन जाएगा, ऐसा हम दोनों का ख्याल रहा, आशा थी। और हम दोनों बड़े उदास हुए, जब उसने सब धंधा छोड़ दिया और फिजूल की बातों में लग गया। बट, नसरुद्दीन, डोंट टैल इट टु एनीबडी,

दे डोंट बिलीव इट--अब तुम पूछ ही रहे हो तो मैं सच्ची बात कहे देती हूं कि उस वक्त तो हमारे मन में यही भाव था।"
क्योंकि जीसस का बाप बढ़ई था। और बढ़ई चाहता होगा कि उसका बेटा अच्छा बढ़ई बने। दूर-दूर तक उसकी ख्याति पहुंचे--उसके सामानों की, उसके फर्नीचर की, उसकी बनाई हुई चीजों की। तो मेरी बड़ी सच्ची बात कह रही है। और मेरी-- जैसी मां ही कह सकती है, इतनी सच्ची बात।
आदमी का मन ऐसा है। उसकी वासनाएं क्या हैं, चाहता क्या है--अगर परमात्मा भी उपलब्ध हो, तो भी तृप्ति नहीं होने वाली--तो भी कुछ अतृप्त रह जाएगा। कहीं कुछ खटकता ही रहेगा। कहीं कोई शिकायत मौजूद रह जाएगी।
अगर आप शिकायत से भरे हैं, तो उसका कारण यह नहीं है कि आपकी जिंदगी में शिकायत है। अगर आप शिकायत से भरे हैं, तो उसका कारण यह है कि जैसा मन आपके पास है, वह मन शिकायत से भरा ही हो सकता है।
हम पूरे जीवन इन शिकायतों को मिटाने की कोशिश करते हैं। महावीर कहते हैंः संन्यस्त वह है, जो शिकायत के मूल आधार को भीतर तोड़ देता है। वह मूल आधार लोभ है, लालच है--"और ज्यादा" का भाव।
"जो अज्ञात परिवारों से भिक्षा मांग लाता है... ।"
महावीर का बहुत जोर है कि भिक्षु अज्ञात परिवारों से भिक्षा मांगे। क्योंकि ज्ञात परिवारों से संबंध निश्चित होने शुरू हो जाते हैं। और जैसे ही संबंध बनने लगते हैं, भिक्षु की आकांक्षाएं सजग हो सकती हैं। अनजाने, अचेतन में भी वह आशा कर सकता है कि क्या मिलेगा। तो अज्ञात परिवारों से इसलिए, ताकि भविष्य सदा अनजान रहे। जैसे ही भविष्य जाना-माना होता है, मन सक्रिय हो जाता है। भविष्य बिल्कुल अननोन रहे। यह भी अंदाज न हो कि जिस द्वार पर खड़े होकर मैं भीख मांगूंगा, वहां भीख मिलेगी भी या नहीं। भीख मिलेगी तो रूखी-सूखी रोटी मिलने वाली है या कुछ मिष्ठान्न मिलने वाले हैं। गाली मिलेगी; अपमान मिलेगा; दरवाजे से हट जाने की आज्ञा मिलेगी... । एक बौद्ध भिक्षु की कथा है कि वह एक ब्राह्मण के द्वार पर भिक्षा मांगने गया। ब्राह्मण का घर था, बुद्ध से ब्राह्मण नाराज था। उसने अपने घर के लोगों को कह रखा था कि और कुछ भी हो, बौद्ध भिक्षु भर को एक दाना भी मत देना कभी इस घर से। ब्राह्मण घर पर नहीं था, पत्नी घर पर थी; भिक्षु को देख कर उसका मन तो हुआ कि कुछ दे दे। इतना शांत, चुपचाप, मौन भिक्षापात्र फैलाए खड़ा था, और ऐसा पवित्र, फूल जैसा। लेकिन पति की याद आई कि वह पति पंडित है और पण्डित भयंकर होते हैं, वह लौट कर टूट पड़ेगा। सिद्धांत का सवाल है उसके लिए। कौन निर्दोष है बच्चे की तरह, यह सवाल नहीं है, सिद्धांत का सवाल है-- भिक्षु को, बौद्ध भिक्षु को देना अपने धर्म पर कुल्हाड़ी मारना है। वहां शास्त्र मूल्यवान है, जीवित सत्यों का कोई मूल्य नहीं है। तो भी उसने सोचा कि इस भिक्षु को ऐसे ही चले जाने देना अच्छा नहीं होगा। वह बाहर आई और उसने कहाः क्षमा करें, यहां भिक्षा न मिल सकेगी।
भिक्षु चला गया। पर बड़ी हैरानी हुई कि दूसरे दिन फिर भिक्षु द्वार पर खड़ा है। वह पत्नी भी थोड़ी चिंतित हुई कि कल मना भी कर दिया। फिर उसने मना किया।
कहानी बड़ी अनूठी है; शायद न भी घटी हो, घटी हो। कहते हैं, ग्यारह साल तक
वह भिक्षु उस द्वार पर भिक्षा मांगने आता ही रहा। और रोज जब पत्नी कह देती कि क्षमा करें, यहां भिक्षा न मिल सकेगी, वह चला जाता। ग्यारह साल में पण्डित भी परेशान हो गया। पत्नी भी बार-बार कहती कि क्या अदभुत आदमी है! दिखता है कि बिना भिक्षा लिए जाएगा ही नहीं। ग्यारह साल काफी लंबा वक्त है। आखिर एक दिन पंडित ने उसे रास्ते में पकड़ लिया और कहा कि सुनो, तुम किस आशा से आए चले जा रहे हो, जब तुम्हें कह दिया निरंतर हजारों बार?
उस भिक्षु ने कहाः अनुगृहीत हूं। क्योंकि इतने प्रेम से कोई कहता भी कहां है कि जाओ, भिक्षा न मिलेगी! इतना भी क्या कम है? भिखारी के लिए द्वार तक आना और कहना कि क्षमा करो, भिक्षा न मिलेगी, क्या कम है? मेरी पात्रता क्या है! अनुगृहीत हूं! और तुम्हारे द्वार पर मेरे लिए साधना का जो अवसर मिला है, वह किसी दूसरे द्वार पर नहीं मिला है। इसलिए नाराज मत होओ, मुझे आने दो। तुम भिक्षा दो या न दो, यह सवाल नहीं है।

महावीर कहते हैं, अज्ञात द्वार से--जानी-मानी जगह भिक्षा मिल जाएगी, भिक्षा मूल्यवान नहीं है। भिक्षु के लिए, संन्यस्त के लिए भोजन मूल्यवान नहीं है, भोजन के प्रति जो उसका रुख है, दृष्टिकोण है, वह मूल्यवान है।
तो अज्ञात द्वार पर, जहां कोई अपेक्षा नहीं है, जहां संभावना है इनकार की, वहां से भिक्षा मांग लाता है जो।
किसी तरह की अपेक्षा का फैलाव न हो जीवन में, तो संसार बिखर जाता है।
हम तो ऐसी अपेक्षाएं बना लेते हैं, जिनका हमें पता नहीं है। अगर आप रास्ते पर मुझे मिलते हैं, मैं रोज नमस्कार कर लेता हूं; एक दिन नमस्कार न करूं तो आप दुखी हो जाते हैं कि इस आदमी ने नमस्कार क्यों नहीं किया? ... क्या मतलब? नमस्कार तक की हम अपेक्षा बना लेते हैं कि कौन करेगा। जो आदमी आपको देख कर रोज मुस्कुराता है, अगर न मुस्कुराए, तो आप बेचैन हैं। तब फिर आदमियों को झूठा मुस्कुराना पड़ता है। आप देखें कि वे मुस्कुरा रहे हैं, उन्होंने मुंह फैला दिया--अकारण, कोई कारण नहीं है। लेकिन आप--नाहक उपद्रव खड़ा करना कोई उचित भी नहीं है--आप भी मुस्कुरा रहे हैं, वह भी मुस्कुरा रहे हैं। दो झूठी मुस्कुराहटें, जिनके पीछे आदमियों को कोई लेना-देना नहीं है! अपेक्षाएं जीवन को झूठा कर जाती हैं।
महावीर कहते हैंः न तो खुद झूठे हों, और न दूसरों को झूठा होने का मौका देना, क्योंकि वह भी पाप है। अगर दो-चार दिन तुम एक जगह से भिक्षा मांग लाए और पांचवें दिन गए, तो उस घर के लोग भी सोचेंगे, भिक्षु अपेक्षा रखता है। अगर न देंगे तो दुखी होगा। और अगर न देंगे तो हमारी प्रतिष्ठा को भी चोट पहुंचती है। अगर न देंगे तो हमें भी अच्छा नहीं लगेगा। तो शायद उन्हें देना पड़े, जब कि वे नहीं देना चाहते थे। तो तुम अज्ञात द्वार पर जाना, जहां कोई अपेक्षा का संबंध नहीं है।
"जो संयम-पथ में बाधक होने वाले दोषों से दूर रहता है... ।"
संयम-पथ पर बहुत सी बाधाएं हैं--होंगी ही। उन बाधाओं से जो दूर रहता है। दूर रहने का प्रयोजन इतना है कि अकारण उनमें उलझने की कोई जरूरत नहीं है।
आप जहां रह रहे हैं, वहां चारों तरफ हजारों तरह के लोग हैं। एक संन्यस्त व्यक्ति अगर आपके गांव में आता है, हजार तरह की बाधाएं आप मौजूद कर देंगे बिना सचेतन रूप से जाने हुए। आप गांव की गपशप जाकर उसे सुनाने लगेंगे; किसी की निंदा, किसी की प्रशंसा करने लगेंगे। उस आदमी को भी आप पक्ष विपक्ष में बांटने लगेंगे।
यदि संयम-पथ का सच में कोई साधक हो, तो इन सारी चीजों से ऐसे दूर रहेगा, जैसे यह सब घटनाएं उसके आस-पास नहीं घट रहीं। वह तभी बोलेगा, जब उसकी साधना के लिए सहयोगी हो। अन्यथा चुप होगा। वह किसी चीज में सहमति असहमति नहीं देगा, जब तक कि वह उसकी साधना के लिए कुछ सहयोगी न हो। वह व्यर्थ की बातें सुनना भी नहीं चाहेगा, सुनाना भी नहीं चाहेगा। वह ऐसी कोई चीज खड़ी नहीं करना चाहेगा, जिससे आज नहीं कल जाकर परेशानी शुरू हो जाए।
परेशानियां बड़ी छोटी चीजों से शुरू होती हैं।
आपने सुनी होगी, बहुत प्राचीन कथा है। एक संन्यासी जंगल में रहता है अकेला। भिक्षा मांगने जाता है। भिक्षा लेकर आता है तो घर में कभी थोड़ी देर को रोटी रख देता है; भोजन रख देता है। थोड़ी देर रोटी भोजन रुक जाता है, तो चूहे धीरे-धीरे घर में पैदा हो गए; आने लगे पड़ोस से, जंगल से, खेतों से। तो किसी मित्र ने सलाह दी--एक भक्त ने--कि ऐसा करो, एक बिल्ली पाल लो। बिल्ली चूहों को खा जाएगी।
संन्यासी को तो जंचा। उसने अगर महावीर का सूत्र पढ़ा होता, तो बिल्कुल नहीं जंचती यह बात। क्योंकि बिल्ली पालने से झंझट ही शुरू होने वाली थी। बिल्ली के पीछे पूरा संसार आ सकता है; क्योंकि पालने की वृत्ति, वह गृहस्थ का लक्षण है। लेकिन बिल्ली पालना उसको भी निर्दोष लगा--मामला कोई झंझट का नहीं है। कोई संसार तो है नहीं। बिल्ली से किसी का मोक्ष कभी अटका हो, ऐसा सुना भी नहीं। बिल्ली ने किसी संन्यासी को भ्रष्ट किया हो, इसका कोई इतिहास भी नहीं।

कोई कारण नहीं था। शास्त्रों में कोई उल्लेख नहीं कि बिल्ली मत पालना। शास्त्र भी कितना इंतजाम कर सकते हैं! संसार बड़ा है, शास्त्र बड़े छोटे हैं। तो सूत्र दिए जा सकते हैं, लेकिन डिटेल्स, विस्तार में तो कुछ नहीं कहा जा सकता।
संन्यासी ने बिल्ली पाल ली। बिल्ली तो पाल ली, लेकिन अड़चन शुरू हुई। क्योंकि बिल्ली के लिए अब दूध मांग कर लाना पड़ता। भक्त ने, किसी ने सलाह दी कि क्यों इतना परेशान होते हो, गाय हम भेंट किए देते हैं, तुम एक गाय रख लो। संन्यासी ने कहाः गाय तो वैसे भी गऊ-माता है। इसमें तो कोई हर्ज है नहीं। गऊ-माता की पूंछ पकड़ कर कोई मोक्ष भला पहुंचा हो, बाधा तो किसी को नहीं पड़ी। और वैतरनी पार करनी हो तो गऊ-माता की पूंछ ही पकड़नी पड़ती है। इसमें कुछ अड़चन नहीं है। बिल्ली तो शायद कुछ शैतान से संबंध भी रखती हो, गाय तो एकदम शुद्ध परमात्मा से जुड़ी है।
गाय भी रख ली। गाय रखते ही अड़चन शुरू हुई, क्योंकि घास-पात की जरूरत पड़ने लगी। अब रोज घास खरीद कर लाओ, या मांग कर लाओ... किसी भक्त ने... !
... और भक्त सदा मौजूद हैं, जो सलाह देने को तैयार हैं। और बेचारे नेक सलाह देते हैं। उनकी तरफ से कुछ भूल नहीं है।
भक्त ने कहाः इतनी झंझट क्यों करते हो? थोड़ी सी खेती-बाड़ी आस पास ही
कर लो। तो गाय का भी काम चले, तुम्हारा भी काम चले, बिल्ली का भी काम चले। अब काफी संसार बड़ा हो गया। बेचारे ने खेती-बाड़ी शुरू कर दी। मजबूरी थी, अब यह गाय मर न जाए। दूध की भी जरूरत थी। फिर उस गाय को चराने भी ले जाना पड़ता। फिर खेती-बाड़ी काटनी भी पड़ती। वक्त पर फसल भी बोनी पड़ती। फिर ये उसे थोड़ा ज्यादा मालूम पड़ने लगा। प्रार्थना-पूजा का समय ही न बचता, ध्यान का कोई उपाय न रहा।
तो एक परम भक्त ने कहाः ऐसा करो कि तुम विवाह कर लो। एक पत्नी रहेगी, साथी-सहयोगी होगी। वह सब देखभाल कर लेगी, तुम अपना ध्यान करना। अब तुम्हें ध्यान का बिल्कुल समय ही नहीं बचा।
साधु को भी बात तो समझ में आई। क्योंकि इतना उपद्रव फैल गया कि उसको कौन सम्हाले।
अगर आपने घर बसा लिया तो घरवाली ज्यादा देर दूर नहीं रह सकती। वह आएगी। उसके बिना घर बस भी नहीं सकता। अड़चन होगी।
उसने शादी भी कर ली। लेकिन शादी से किसी को ध्यान करने का समय मिला है!
जो थोड़ा-बहुत मिलता था, गाय-बिल्ली से बचता था, वह भी खो गया।
फिर जब वह साधु मर रहा था तो उसके शिष्यों ने उससे पूछा कि तुम्हारा कोई आखिरी संदेश? तो उसने मरते वक्त कहा कि बिल्ली भूल कर मत पालना! बिल्ली संसार है!
महावीर कहते हैंः संयम के पथ पर बहुत सचेत होने की जरूरत है कि कौन सी चीज बाधा बन जाएगी। आज चाहे दिखाई भी न पड़ती हो। क्योंकि चीजें जब शुरू होती हैं, बड़ी सूक्ष्म होती हैं। धीरे-धीरे उनका स्थूल रूप निर्मित होना शुरू होता है। बहुत सूक्ष्म होती हैं। किसी ने भिक्षा दी, और आपने धन्यवाद दिया। वह धन्यवाद देने में कहीं कोई संसार नहीं आ रहा है, लेकिन आ सकता है। उस धन्यवाद में ही संसार आ सकता है।
तो महावीर कहते हैं, धन्यवाद भी मत देना। भिक्षा किसी ने दी तो, न तो सुख अनुभव करना और न दुख। चुपचाप हट जाना जैसे कुछ हुआ ही नहीं।
धन्यवाद देने तक की भी मनाही करते हैं, क्योंकि वह धन्यवाद भी संबंध निर्मित करता है। और जिसको तुमने धन्यवाद दिया, उससे तुम्हारा भीतरी एक नाता बनना शुरू हो गया। और अगर बिल्ली से संसार आ सकता है, तो धन्यवाद से भी आ सकता है।
इसलिए महावीर कहते हैं, होश रखना। कोई भी सूक्ष्म ऐसा कृत्य मत करना जिसके पीछे स्थूल जाल निर्मित हो जाए। और हर चीज के पीछे स्थूल निर्मित हो सकता है। इसलिए संयम का पथ अत्यंत होश का और सावधानी का, सावचेतता का पथ है।
"जो खरीदने-बेचने और संग्रह करने के गृहस्थोचित धंधों के फेर में नहीं पड़ता।"

गृहस्थी सवाल नहीं है, गृहस्थी के कुछ विशेष धंधे हैं जिनके आस-पास गृहस्थी निर्मित होती है। गृहस्थी का मतलब वह स्थूल घर नहीं है, जहां आप रहते हैं; वह पत्नी नहीं है, जहां आप रहते हैं; वह बच्चे नहीं है, जहां आप रहते हैं। गृहस्थी का मतलब है कि आप कुछ अर्थशास्त्र के जगत में जुड़े हैं; कुछ इकॉनामिक्स के जगत में जुड़े हैं।
मेरे एक मित्र हैं। उनको घर बनाने का बड़ा शौक है। फिर वे संन्यासी हो गए। जब वे संन्यस्त नहीं थे, तब भी वे घर बनाते थे। अपने मित्रों के घर भी बनवा देते थे। छाता लगा कर धूप में खड़े रहते, और बड़े खुश होते थे, जब कोई नई चीज बनवा देते। उनको एक ही शौक है, कि अच्छे घर। उनमें नई डिजाइन, नये ढंग, नये प्रयोग। फिर वे संन्यस्त हो गए। कोई दस साल बाद मैं उनके गांव के करीब से गुजरता था, जहां वे संन्यस्त होकर रहने लगे थे।
तो जो मित्र ड्राइव कर रहे थे, उनसे मैंने कहा कि दस मील का चक्कर तो जरूर होगा, लेकिन मैं देखना चाहता हूं कि वे क्या कर रहे हैं। जरूर वे छाता लिए खड़े होंगे।
उन्होंने कहाः आप भी पागल हो गए हैं! अब वे संन्यस्त हो गए हैं। दस साल
हो गए उन्हें संन्यस्त हुए, और अब क्यों छाता लेकर खड़े होंगे? मैंने कहाः वे जरूर खड़े होंगे, फिर भी चल कर देख लें।
आश्चर्य की बात, वे खड़े थे! आश्रम बनवा रहे थे। छाता लगाए धूप में खड़े थे, आश्रम बनवा रहे थे। वे कहने लगे कि यह जरा आश्रम बन जाए तो शांति हो। मैंने कहाः यह शांति कभी होने वाली नहीं। तुम इसी सब उपद्रव से छूट कर संन्यासी हुए थे। लेकिन उपद्रव बाहर नहीं, उपद्रव भीतर है। पर उन्होंने कहाः वह गृहस्थी की बात थी, यह तो आश्रम बन रहा है।
शंकराचार्य तक अदालतों में खड़े होते हैं, क्योंकि आश्रम का मुकदमा चल रहा है। फर्क क्या है? आप अपने घर के मुकदमे के लिए अदालतों में खड़े होते हैं; शंकराचार्य अपने आश्रम के मुकदमे के लिए खड़े होते हैं।
लेकिन मुकदमा चल रहा है!
महावीर कहते हैंः गृहस्थोचित धंधों में--लेन-देन, खरीदना-बेचना--इस तरह की जो वृत्तियां हैं उनसे जरा भी भिक्षु संबधित न हो। अन्यथा उसे पता भी नहीं चलेगा, कब छोटे से छिद्र से पूरा संसार भीतर चला आया।
"जो सब प्रकार से निःसंग रहता है, वही भिक्षु है।"
निःसंगता बड़ा मौलिक तत्व है; कठिन भी बहुत है। क्योंकि हम सदा संग चाहते हैं। संग की चाह हममें बड़ी गहरी है--कोई साथ हो। अकेले होने में बड़ा बुरा लगता है। अकेला कोई भी नहीं होना चाहता। आप जब भी अकेले छूट जाते हैं, तब बेचैनी अनुभव करते हैं कि क्या करें, क्या न करें। कुछ सूझता नहीं। अकेले होने में बड़ी मुसीबत है।
एक बहुत बड़ा संगीतज्ञ, लियोपोल गोडवस्की, अनिद्रा से पीड़ित था। और अनिद्रा से पीड़ित लोगों की तकलीफ नींद का न आना नहीं है, रात अकेला छूट जाना है। सारी दुनिया सो गई, पत्नी घुर्राटे ले रही है। बच्चे मजे से सोए हुए हैं। और आप जग रहे हैं। बिल्कुल अकेले रह गए। सारा संसार खो गया। धीरे- धीरे रास्ते का ट्रैफिक बंद हो गया। शोरगुल शांत हो गया। अब कहीं कोई हिलता डुलता नहीं। पशु-पक्षी तक सो गए। वृक्ष तक चुप हो गए। अब आप अकेले रह गए। जैसे पृथ्वी समाप्त हो गई तीसरे महायुद्ध में। सब लाशें पड़ी हैं। और आप अकेले जग रहे हैं।
लियोपोल गोडवस्की के संस्मरणों में लिखा गया है कि उसका लड़का उसके पास रहता था। तो रात को जब उसे बहुत मुश्किल हो जाती--और लड़का बहुत भयंकर सोने वाला था; जोर से घुर्राटे भरता, और बड़ी गहरी नींद में--अगर कोई भूकम्प हो जाए, तो भी जगे नहीं--तो लियोपोल रात में दो-चार बार उसके पास जाकर कहता, उसे जोर से हिलाता और कहताः क्यों बेटा, आज तुमको भी नींद नहीं आई क्या? वह सो रहा है; घुर्राटे ले रहा है। उसको हिलाता कि क्यों बेटे, आज तुमको भी नींद नहीं आई क्या? पहले उसे जगा देता। उसके बेटे ने लिखा है कि मैं चकित था कि यह मामला क्या है? लेकिन कुल मामला इतना था, आदमी साथ खोजता है। अगर दूसरे को भी नींद नहीं आई तो हम संगी-साथी हो गए।
दो तो हैं कम से कम--साथ हैं।

हम जीवन में जिस वृत्ति से सर्वाधिक ग्रसित हैं, वह है संगी खोजने की, साथी खोजने की। अकेला होना बड़ा कठिन मालूम होता है--क्यों? ... कई कारणों से।
एकः जब कोई संगी-साथी होता है, तो हम दुख का सारा दायित्व उस पर दे सकते हैं। जब कोई संगी-साथी नहीं है, तो सारा दुख अपने ही हाथों पैदा किया हो जाता है। इसे झेलना बहुत कठिन है।
जब कोई संगी-साथी होता है, तो उसमें हम अपने को भूल सकते हैं। वह नशे
का काम करता है। जब कोई संगी-साथी नहीं होता, तो भूलने की कोई जगह नहीं रह जाती।
जब कोई संगी-साथी होता है, तो हम अपनी झूठी तस्वीरें खड़ी कर सकते हैं। क्योंकि हम अभिनय कर सकते हैं उसके सामने। हम धोखा दे सकते हैं उसको। और उसको धोखा देकर अपने को धोखा दे सकते हैं।
लेकिन, जब कोई संगी-साथी नहीं, कोई दर्पण नहीं, तो धोखा किसको देना? आदमी की नग्नता, उसकी पशुता, उसके भीतर जो भी है बुरा-भला--सब सामने आ जाता है। उससे बचने का कोई उपाय नहीं रहता। उससे दुख होता है; नरक अनुभव होता है। अकेला आदमी अपने को नरक में अनुभव करता है।
महावीर कहते हैंः असंगता भिक्षु का लक्षण है; संगी की तलाश संसारी का लक्षण है। अकेले होने में आनंद; और जितनी देर अकेला होना मिल जाए, उतनी प्रसन्नता। और जितनी देर संग-साथ हो, अनिवार्य हो तो ही, अन्यथा उसको विदा करना। उतने ही देर के लिए, जितना बिल्कुल जरूरी हो, संग-साथ ठीक। अधिक समय असंग बीते। और धीरे-धीरे भीतर असंगता ऐसी बढ़ जाए कि जब कोई मौजूद भी हो, तो भी संन्यासी अपने को अकेला ही अनुभव करे। वह दूसरे को अपने भीतर न ले। वह भीड़ में भी खड़ा रहे, तो भी भीड़ उसमें प्रवेश न कर पाए, वह भीड़ के बाहर बना रहे।
इतने असंग होने की जो साधना है, वही व्यक्ति को आत्मवान बनाएगी। जितना असंग हो सकेगा आदमी, उतना आत्मवान हो सकेगा; और जितना भीड़ में खो जाता है, उतना आत्महीन हो जाता है। आप सब भीड़ में खोने को उत्सुक रहते हैं। आत्महीन होने में सारी जिम्मेवारी हट जाती है।
ध्यान रहे, दुनिया में जो बड़े पाप होते हैं, वे निजी अकेले में नहीं किए जाते। उनके लिए भीड़ चाहिए। एक हिंदुओं की भीड़ मस्जिद को जला रही है, या मुसलमानों की भीड़ मंदिर को जला रही है। इस भीड़ में जितने मुसलमान हैं, अगर उनको एक-एक से अलग-अलग पूछा जाए कि क्या तुम अकेले मंदिर को जलाने की जिम्मेवारी लेते हो? मुसलमान इनकार करेगा। अगर हिंदू से पूछा जाए कि क्या तुम अकेले इस मस्जिद को आग लगाने का विचार करोगे? वह कहेगा कि नहीं। लेकिन भीड़ में आसान हो जाता है। क्योंकि भीड़ में मैं जिम्मेवार नहीं हूं। जब भीड़ हत्या कर रही हो, तो आप भी दो हाथ लगा देते हैं। इस दो हाथ लगाने में आपकी निजी जिम्मेवारी नहीं है।
और ध्यान रहे, भीड़ आपको निम्नतम जगत में ले आती है। क्योंकि जैसा पानी
का स्वभाव है, एक लेवल पर आ जाना... अगर आप पानी को डाल दें? तो फौरन लेवल बना लेगा। पानी निकाल लें नदी से, नदी फिर लेवल पर हो जाएगी। आपका चित्त भी एक लेवलिंग करता रहता है पूरे वक्त। जब आप हजार आदमियों की भीड़ में खड़े होते हैं, तो हजार आदमियों के चित्त की जो निम्नतम सतह है, वहीं आपकी सतह हो जाती है। तत्क्षण आप छोटे आदमी हो जाते हैं।
भीड़ में पाप बड़ा आसान है करना। अकेले में पाप करना बहुत कठिन है। क्योंकि अकेले में आपको कोई दूसरे पर जिम्मा छोड़ने का मौका नहीं होता। तो महावीर कहते हैं कि जब तक कोई व्यक्ति भीड़ से मुक्त न होने लगे, तब तक आत्मवान नहीं होगा। जैसे-जैसे व्यक्ति अकेला होने लगता है, वैसे-वैसे बुराई गिरने लगती है। और जिस दिन व्यक्ति बिल्कुल अकेले होने में समर्थ हो जाता है, तो महावीर कहते है, वह असंग स्थिति कैवल्य का जन्म बन जाती है। "जो मुनि अलोलुप है, जो रसों में अगृद्ध है, जो अज्ञात कुल की भिक्षा करता है, जो जीवन की चिंता नहीं करता, जो ऋद्धि, सत्कार, पूजा और प्रतिष्ठा का मोह छोड़ देता है, जो स्थितात्मा तथा निस्पृही है, वही भिक्षु है।"
"जो जीवन की चिंता नहीं करता... ।"

जो जीता है, लेकिन चिंता निर्मित नहीं करता।
हम जीते कम हैं, चिंता ज्यादा करते हैं। अगर ऐसा हो जाए, तो क्या होगा? अगर ऐसा न हुआ होता, तो कितना अच्छा होता। हम इस तरह की चिंताएं अतीत के प्रति भी निर्मित करते हैं, भविष्य के प्रति भी। चिंताएं इतना हमें पकड़ लेती हैं कि जीने की जगह ही नहीं बचती; स्पेस भी नहीं बचती, जिसमें हम चल सकें और जी सकें।
आप अपने मन को सोचें। कल आपने किसी से कुछ कहा, आप सोचते हैं, न कहा होता। कोई अर्थ है? जो कहा, वह कहा। उसको न कहने का अब कोई उपाय नहीं। लेकिन सोच रहे हैं--अगर न कहा होता। और चिंतित हो रहे हैं। कल क्या कहना है, उसके लिए चिंतित हो रहे हैं।
और ध्यान रहे, जो भी आप तय करके जाएंगे, वह आप कल कहने वाले नहीं हैं, क्योंकि जिंदगी रोज बदल जाती है। और आप जो भी तय करते हैं, वह सब बासा और पुराना हो जाता है। जिंदगी तो नई, प्रतिपल परिवर्तनशील धारा है। वह नया प्रतिसंवेदन चाहती है। वह जो आप तय करके जाते हैं, बंधे हुए उत्तर हो जाते हैं। बंधे हुए उत्तर दिक्कत दे देते हैं।
मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन के गांव में सम्राट आ रहा है। और गांव का वह प्रतिष्ठित आदमी था। तो गांव के लोगों ने कहा कि तुम्हीं उसका स्वागत करना। लेकिन नसरुद्दीन, जरा ख्याल रखना; कुछ ऐसी-वैसी बात मत कर देना। सम्राट है, नाराज न हो जाए।
तो नसरुद्दीन ने कहाः फिर बेहतर यही होगा कि तुम मुझे बता ही दो कि मैं क्या कहूं। जिसमें कि गलती का कोई सवाल ही न रहे। तो दरबारियों ने पूरा इंतजाम कर लिया; सम्राट को कहा कि आप दो ही सवाल पूछना इस आदमी से। और वह दो ही जवाब देगा। ज्यादा झंझट खड़ी नहीं करनी है। तो आप उससे पूछना कि तुम्हारी उम्र क्या है? तो वह अपनी उम्र बता देगा। उसकी उम्र सत्तर साल है। और फिर आप उससे पूछना कि तुम धर्म में कब से रुचि ले रहे हो? कब से तुम मौलवी, मुल्ला हो गए हो? वह बीस साल से धर्म में रुचि ले रहा है। तो वह कहेगा, बीस साल से। बस, ऐसे औपचारिक बातें पक्की कर लेना।
नसरुद्दीन को भी समझा दिया गया। लेकिन सब गड़बड़ हो गई बात। क्योंकि नसरुद्दीन ने बिल्कुल तय कर लिया कि पहले का उत्तर सत्तर साल, दूसरे का उत्तर बीस साल। सम्राट गलती कर गया। उसने दूसरा सवाल पहले पूछ लिया। उसने पूछा कि नसरुद्दीन, तुम धर्म में कितने दिन से रुचि ले रहे हो? कब से मुल्ला हो? नसरुद्दीन ने कहाः सत्तर साल से! और सम्राट ने पूछाः और तुम्हारा जन्म कब हुआ? तुम्हारी उम्र कितनी है? नसरुद्दीन ने कहाः बीस साल!
सम्राट ने कहाः नसरुद्दीन, तुम पागल तो नहीं हो? नसरुद्दीन ने कहा कि मैं तो ठीक ही जवाब दे रहा हूं, पागल वह है जो गलत सवाल पूछ रहा है।
जिंदगी रोज बदल रही है। आपकी आज की चिंता कल काम नहीं आएगी। और अगर आप बहुत मजबूत होकर बैठ गए, तो आप कल पाएंगे कि उत्तर ही सब गलत हुए जा रहे हैं। क्योंकि सवाल ही नये हैं।
महावीर कहते हैं, भिक्षु वह है, जो चिंता नहीं करता। जो बीत गया, उसे जान लेता है कि बीत गया। जो नहीं आया, जानता है अभी नहीं आया। जो सामने है, उसमें जीता है।
और ध्यान रहे, जो सामने है, उसमें जो जी लेता है उससे भूलें नहीं होतीं। भूलें होती ही इसीलिए हैं कि हम "यहां" तो मौजूद नहीं होते, जहां जीना है। या तो पीछे होते हैं, या आगे होते हैं। हम "यहां" बेहोश होते हैं। जो न पीछे है, न आगे है--जो निश्चित है, वह "यहां" है। अपनी पूरी चेतना के साथ "यहां" मौजूद है, उससे भूलें नहीं होंगी।
चिंताओं से भूलें नहीं मिटतीं, चिंताओं के कारण भूलें होती हैं। इसलिए अक्सर यह होता है कि विद्यार्थी परीक्षा-भवन में जाता है और सब गड़बड़ हो जाता है। बाहर तक उसे सब मालूम था कि क्या क्या है। परीक्षा-भवन में बैठते ही सब अस्त व्यस्त हो गया। परीक्षा हाल से निकलते ही फिर सब ठीक हो जाता है। यह बड़े आश्चर्य की बात है। परीक्षा का हाल बड़ा चमत्कारी है। और

बाहर आकर उसको ठीक-ठीक उत्तर आने लगते हैं। और पहले भी आ रहे थे। और एक तीन घण्टे के लिए सब गड़बड़ हो गया, क्या कारण है?
तीन घंटे वह इतना चिंतित हो गया, ... इतना चिंतित हो गया कि उस चिंता के कारण जो भी सामने है, उससे संबंध नहीं जुड़ पाता। तीन घंटे पहले इतनी चिंता नहीं थी। तीन घंटे के बाद फिर चिंता नहीं रह जाएगी।
चिंता हमारे जीवन को विकृत कर रही है। और हम सीधे संबंधित नहीं हो पाते। समस्याएं हल नहीं होतीं, उलझती चली जाती हैं।
महावीर कहते हैं, भिक्षु वही है जो चिंता नहीं करता, जो जीवन की चिंता नहीं करता। जीवन जैसा आता है, उसके साथ जो भी स्पांटेनियस, सहज-स्फूर्त घटना घटती है, घटने देता है। न तो पीछे के लिए पश्चात्ताप करता है, और न आगे के लिए योजना करता है।
जिसने अतीत भी छोड़ दिया, और जिसने भविष्य भी त्याग दिया। जो शुद्ध वर्तमान में खड़ा है, वही भिक्षु है।
"जो ऋद्धि, सत्कार, और पूजा-प्रतिष्ठा का मोह छोड़ देता है... ।"
मोह पकड़ता है, क्योंकि जैसे ही व्यक्ति साधना के जगत में प्रवेश करता है, अनेक घटनाएं घटनी शुरू हो जाती हैं। उन घटनाओं में अगर थोड़ा सा भी ऋद्धि, चमत्कार, सिद्धि का आग्रह बना रहे, तो जीवन मदारी का जीवन हो जाता है। मोक्ष की तरफ जाने के बजाय आदमी मदारी की तरफ जाना शुरू हो जाता है। बहुत घटनाएं घटती हैं। क्योंकि जीवन में बड़ी पर्तें छिपी हैं; बड़े रहस्यमय लोक छिपे हैं। बड़ी शक्तियां हैं, जो आपके पास हैं। जैसे ही आप भीतर प्रवेश करेंगे, वे शक्तियां सक्रिय होना शुरू होंगी।
रामकृष्ण के आश्रम में एक सीधा-सादा आदमी था, कालू उसका नाम था। वह बड़ा सरल था। वह इतना सरल था और इतना ग्राहक था, जिसका हिसाब नहीं। उसका मस्तिष्क सीधा खुला था। विवेकानंद साधना शुरू किए तो एक दिन विवेकानंद को ध्यान लगा--पहली दफा। ध्यान लगते ही विवेकानंद को ऐसा लगा कि मुझमें इतनी शक्ति है कि मैं चाहूं तो किसी का भी विचार प्रभावित कर सकता हूं। वह कालू बेचारा निरीह, सीधा आदमी था। उसको याद आया--विवेकानंद को कि कालू से चाहो तो कुछ भी करवाया जा सकता है। और किसी में तो अड़चन भी होगी, क्योंकि लोग चालाक हैं; बाधा डालेंगे--कालू सीधा है। कालू अपनी पूजा कर रहे थे। वह अपने कमरे में सभी तरह के देवी-देवता रखे थे--सैकड़ों; और सभी की पूजा करते थे। उनको कोई छह-आठ घंटे सभी को फूल रखने में और घण्टी हिलाने में लग जाते। वे पूजा कर रहे थे। घंटी की आवाज आ रही थी।
विवेकानंद ने कहाः कालू, बांध एक पोटली सब देवी-देवताओं की और फेंक गंगा में। कालू ने बांधी पोटली; चले हैं गंगा की तरफ। वहां से रामकृष्ण स्नान करके आ रहे थे। तो उन्होंने कहाः रुक, कहां जा रहा है? उसने कहा कि बस, ऐसा भाव आ गया।
यह तेरा भाव नहीं है। तू वापस चल।
जाकर विवेकानंद का दरवाजा खटखटाया और कहा कि बस, यह तू क्या कर रहा है? अगर ऐसा ही तुझे करना है तो तेरे ध्यान की चाबी मैं अपने हाथ में ले लेता हूं।
जैसे ही व्यक्ति के जीवन में भीतर की ऊर्जाएं जगनी शुरू होती हैं, बड़ा भरोसा आना शुरू होता है। और उस भरोसे में आदमी कर सकता है वह सब जोअब इस मुल्क में कई चमत्कारी बहुत से तरह के काम करते दिखाई पड़ रहे हैं। महावीर उनमें से किसी को भी संन्यासी नहीं कहेंगे। सच तो यह है कि वे संन्यास का दुरुपयोग कर रहे हैं। कोई ताबीज निकाल रहा है। किसी के हाथ से भस्म गिर रही है। कोई घड़ियां बांट रहा है। मिठाइयां आ रही हैं; हाथों में प्रकट हो रही हैं।
यह सब हो सकता है। इस सबके होने में जरा भी अड़चन नहीं है; बड़े मूल्य पर होता है लेकिन। संन्यास खो जाता है, मदारीपन हाथ में रह जाता है।
तो महावीर कहते हैं, भिक्षु वही है, जो ऋद्धि-सिद्धि से बचे; जो सत्कार, पूजा-प्रतिष्ठा का मोह छोड़ दे। क्योंकि तब बड़ा सत्कार मिल सकता है क्षुद्र बातों से।

हमारे आस-पास जो भीड़ खड़ी है, वह क्षुद्र बातों की तो आकांक्षा करती है। अब यह क्या बड़ी आकांक्षा है--किसी के हाथ से राख गिरने लगे; बस, आप चमत्कृत हो गए। साधु के पास आप गए। उसने हाथ बंद किया--खुला हाथ था, खाली आपने देखा था--बंद किया और एक ताबीज आपको भेंट कर दिया। बस, मोक्ष आपको भी मिल गया; साधु को भी मोक्ष मिल गया।
न तो कोई ज्ञान से प्रभावित होता है, न कोई जीवन से प्रभावित होता है। लोग क्षुद्र चमत्कारों से प्रभावित होते हैं। लोग क्षुद्र हैं; उनकी क्षुद्र वासनाएं हैं। उन क्षुद्र वासनाओं से उनका तालमेल बैठता है।
असल में जब आप एक आदमी के हाथ से ताबीज को प्रकट होते देखते हैं, तो आपको लगता है, जो ताबीज प्रकट कर सकता है शून्य से, वह मेरी शून्य में भटकती सारी वासनाओं को भी चाहे तो पूरा कर सकता है। लड़का नहीं है मुझे; एक लड़का पैदा हो सकता है। जब ताबीज निकल सकता है शून्य से, तो लड़का क्यों नहीं निकल सकता! और अभी मुझे असफलता लगती है हाथ; सफलता क्यों नहीं आ सकती है, जब शून्य से ताबीज निकल सकता है।
आपकी भटकती हुई वासनाएं हैं, जो शून्य में हैं; जिनको कोई पूरा करने
का उपाय नहीं दिखता। जब भी आप किसी आदमी के पास शून्य से कुछ प्रकट होते देखते हैं, तब आपको भरोसा पड़ता है। तब आप चरणों पर गिर जाते हैं।
कोई भी व्यक्ति धर्म को नमस्कार करने की तैयारी में नहीं दिखता। इसलिए महावीर के भिक्षुओं को कभी भी आज्ञा नहीं रही है कि वे किसी तरह का भी चमत्कार करें। बुद्ध के भिक्षुओं को भी आज्ञा नहीं रही कि वे किसी तरह का चमत्कार करें। हो सकता है, शायद बुद्ध और महावीर के भिक्षुओं का प्रभाव इस देश पर इसीलिए ज्यादा नहीं पड़ सका। क्योंकि मदारी होने की उन्हें आज्ञा नहीं है, निषेध है। और निषेध कीमती है।
काश, हिंदू संन्यासियों को भी इसी तरह का निषेध साफ-साफ हो। और हिंदू
मन में भी यह बात साफ बैठ जाए कि चमत्कार दिखाता ही वह आदमी है, जो किसी तरह पूजा पाना चाहता है; प्रतिष्ठा पाना चाहता है; जो आपकी क्षुद्र वासना का शोषण कर रहा है। तो जिन्हें हम अभी महात्मा कहते हैं, उन्हें हम महात्मा न कह पाएं। और जिन्हें अभी हम पहचान भी नहीं पाते, और जो महात्मा है, उनकी पहचान, उनकी प्रतिभिज्ञा होनी शुरू हो जाए।
"जो स्थितात्मा है..."
जो हर स्थिति में थिर है, और जिसे हिलाने का कोई उपाय नहीं है।
"जो निस्पृही है... ।"
जिसकी कोई स्पर्धा नहीं; कोई स्पृहा नहीं; कोई महत्वाकांक्षा नहीं।
जो न किसी से जीतना चाहता है, न किसी से हारना चाहता है। जो न कहीं पहुंचना चाहता है, न जिसका कोई लक्ष्य है इस संसार की भाषा में। जो किसी का प्रतियोगी नहीं है--वही भिक्षु है।
वस्तुतः प्रतियोगिता अहंकार का ज्वर है। और जब तक अहंकार है, तब तक प्रतियोगिता रहेगी। जिनको हम साधु-महात्मा कहते हैं, वे भी बड़े प्रतियोगी हैं। एक-दूसरे से प्रतियोगिता चलती रहती है। किसकी प्रतिष्ठा बढ़ती है, किसकी घटती है; कौन ज्यादा सम्मान को प्राप्त होता है, कौन कम सम्मान को प्राप्त होता है--उसकी सबकी चेष्टा चलती रहती है।
महावीर कहते हैं, भिक्षु वही है, जिसकी कोई प्रतिस्पर्धा नहीं है। जो ना-कुछ होने को राजी है। और जो ना-कुछ ही मर जाए, तो उसे जरा सी भी चिंता पैदा न होगी। और जो सब-कुछ भी हो जाए, तो भी उसमें कोई गर्व निर्मित न होगा। जो सिंहासन पर हो तो ऐसे ही होगा, जैसे सूली पर हो। सूली और सिंहासन पर जो समभाव से हो सके, ऐसा निस्पृही, प्रतिस्पर्धारहित, समभावी व्यक्ति संन्यस्त है। वही भिक्षु है।

पांच मिनट कीर्तन करें, फिर जाएं... !

महावीर-वाणी, भाग 2
तेईसवां प्रवचन

कल्याण-पथ पर खड़ा है भिक्षु (भिक्षु-सूत्रः 4)

न परं वइज्जासि अयं कुसीले, जेणं च कुप्पेज्ज न तं वएज्जा।
जाणिय पत्तेयं पुण्ण-पावं, अत्ताणं न समुक्कसे जे स भिक्खू।।
न जाइमत्ते न य रूवमत्ते, न लाभमत्ते न सुएण मत्ते।
मयाणि सव्वाणि विवज्जइत्ता, धम्मज्झाणरए जे स भिक्खू।।
पवेयए अज्जपयं महामुणी, धम्मे ठिओ ठावयई परं पि।
निक्खम्म वज्जेज्ज कुसीललिंगं, न यावि हासंकुहए जे स भिक्खू।।
तं देहवासं असुइं असासयं, सया चए निच्चहियट्ठियप्पा।
छिंदित्तु जाईमरणस्स बंधणं, उवेइ
भिक्खू अपुणागमं गइं।।

जो दूसरों को "यह दुराचारी है" ऐसा नहीं कहता, जो कटु वचन--जिससे सुनने वाला क्षुब्ध हो--नहीं बोलता, "सब जीव... अपने-अपने शुभाशुभ कर्मों के अनुसार ही सुख-दुख भोगते हैं।"--ऐसा जान कर जो दूसरों की निन्द्य चेष्टाओं पर लक्ष्य न देकर अपने सुधार की चिंता करता है, जो अपने आपको उग्र तप और त्याग आदि के गर्व से उद्धत नहीं बनाता, वही भिक्षु है।
जो जाति का, रूप का, लाभ का, श्रुत (पांडित्य)का अभिमान नहीं करता; जो सभी प्रकार के अभिमानों का परित्याग कर केवल धर्म-ध्यान में ही रत रहता है, वही भिक्षु है।
जो महामुनि आर्यपद (सद्धर्म) का उपदेश करता है; जो स्वयं धर्म में स्थित होकर दूसरों को भी धर्म में स्थित रखता है; जो घर-गृहस्थी के प्रपंच से निकल कर सदा के लिए कुशील लिंग (निन्द्यवेश) को छोड़ देता है; जो किसी के साथ हंसी-ठट्ठा नहीं करता, वही भिक्षु है।
इस भांति अपने को सदैव कल्याण-पथ पर खड़ा रखने वाला भिक्षु अपवित्र और क्षणभंगुर शरीर में निवास करना हमेशा के लिए छोड़ देता है तथा जन्म-मरण के बंधनों को सर्वथा काट कर अ-पुनरागम-गति (मोक्ष) को प्राप्त होता है।

जीवन को बदलने वाले तीन सूत्र समझ लेने जरूरी हैं। एकः एक भी सदगुण व्यक्ति में हो, तो शेष सारे सदगुण अपने आप आनाफ्/15 शुरू हो जाते हैं। एक भी दुर्गुण व्यक्ति में हो, तो शेष सारे दुर्गुण आना शुरू हो जाते हैं। एक सदगुण या एक दुर्गुण काफी है अपने सजातीय सभी बंधुओं को आपके जीवन में बुला लेने के लिए। सदगुणों में या दुर्गुणों में एक पारिवारिक संबंध है। एक सदस्य आ जाता है, तो शेष आना शुरू हो जाते हैं। किसी को जीवन में दुर्गुण साधने हों, तो सभी को साधना जरूरी नहीं है। एक को साध लेना काफी है। शेष अपने से सध जाते हैं। और यही सदगुणों के संबंध में भी सच है। एक सदगुण जीवन में आधार ले ले, उसकी जड़ें जम जाएं, तो शेष सारे सदगुण छाया की तरह अपने आप चले आते हैं। बहुत को साधने वाला भटक जाता है; एक को साधने वाला सभी को साध लेता है। उपनिषदों ने कहा है; महावीर ने भी कहा है; एक के सध जाने से सब सध जाता है। यह जीवन-रूपांतरण का एक आधारभूत नियम है। मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन पर एक मुकदमा है; और जज उससे पूछता है, नसरुद्दीन, तुम शराब पीते हो?
नसरुद्दीन कहता है, नहीं, कभी नहीं।
तुमने कभी चोरी की है?
नसरुद्दीन कहता है, नहीं, कभी नहीं।
तुम कभी पराई स्त्री के साथ संबंधित हुए हो? व्यभिचार किया है? नसरुद्दीन कहता है, भूल कर भी नहीं। सोचा भी नहीं।
किसी को धोखा दिया है? बेईमानी की है?
नसरुद्दीन इनकार करता चला जाता है। आखिर में जज पूछता है, क्या नसरुद्दीन, तुम्हारे जीवन में एक भी दुर्गुण नहीं?

तो नसरुद्दीन कहता है, श्योर, देअर इ.ज वन, आई जस्ट टेल लाइज--सिर्फ झूठ बोलना!
और वह जो उसने सदगुणों की सारी व्याख्या की है, वह सब मिट्टी में मिल जाती है।
एक सभी को डुबा देता है; एक सभी को उबार भी लेता है। इसलिए व्यक्ति को बहुत की चिंता नहीं करनी चाहिए। और प्रत्येक व्यक्ति को अपने भीतर अपना आधारभूत दुर्गुण खोज लेना चाहिए।
गुरजिएफ अपने शिष्यों से कहता था, तुम्हारे जीवन की जो सबसे बड़ी कमजोरी है, उसे तुम पकड़ लो, क्योंकि वही सीढ़ी बन जाएगी। जो सबसे बड़ी कमजोरी है, उसे पकड़ लो और उस कमजोरी को मिटाने में लग जाओ। या वह कमजोरी जिससे मिट जाएगी, उस गुण को साधने में लग जाओ--तुम्हारा पूरा जीवन रूपांतरित हो जाएगा।
हमें इस सूत्र का पता नहीं है चेतन रूप से, लेकिन अचेतन रूप से भलीभांति पता है। और हम इसका एक उपयोग करते हैं, जो आत्मघाती है। वह उपयोग हम यह करते हैं कि व्यक्ति अपनी मौलिक कमजोरी से नहीं लड़ता अपनी क्षुद्र कमजोरियों से लड़ता रहता है।
उनके बदलने से कुछ बदलाहट न होगी। जब तक आप अपनी आधारभूत कमजोरी से लड़ना नहीं शुरू कर देंगे, तब तक जीवन नहीं बदलेगा। आप क्षुद्र कमजोरियों को बदल सकते हैं, उनसे कोई अंतर नहीं पड़ता। एक आदमी शराब पीना छोड़ सकता है; सिगरेट पीना छोड़ सकता है; मांसाहार छोड़ सकता है; ब्रह्ममुहूर्त में उठ सकता है; प्रार्थना-पूजा कर सकता है, लेकिन अगर उसकी मौलिक कमजोरियों के साथ इनका कोई संबंध नहीं है, तो उसका जीवन बिल्कुल बदलेगा नहीं।
कितने लोग हैं जो शराब नहीं पीते हैं। लेकिन शराब न पीने से कोई मोक्ष उपलब्ध नहीं हो गया है। अगर आप भी नहीं पीएंगे, तो उनसे कुछ बेहतर हालत में तो नहीं पहुंच जाएंगे, जो नहीं पीते हैं। कितने लोग हैं जो मांसाहार नहीं करते। लेकिन मांसाहार न कर लेने से उन्हें कोई आत्मा का ज्ञान नहीं हो गया है। आप भी छोड़ देंगे, तो भी क्या होगा?
मैं यह नहीं कह रहा हूं कि आप मत छोड़ना। मैं यह भी नहीं कह रहा हूं कि
आप शराब पीए जाएं और मांसाहार करते जाएं। मैं यह कह रहा हूं कि आप अपने जीवन में मौलिक को पकड़ें, जिससे क्रांति होगी। अगर मौलिक को, मूल को नहीं पकड़ा और पत्तों को काटते रहे, और जड़ नहीं काटी, तो एक पत्ता काटने से चार पत्ते पैदा हो जाते हैं। तो एक दुर्गुण आदमी काटता है, अगर वह आधारभूत नहीं है, जड़ में नहीं है, तो दस नये दुर्गुण पैदा हो जाते हैं। और आप पत्तों से लड़ते रहें जीवन भर, समय खो जाएगा। जीवन में जड़ को खोजना जरूरी है।
और दूसरा सूत्र ख्याल में ले लेना जरूरी है कि हर व्यक्ति की कमजोरी अलग है; दुर्गुण अलग है; इसलिए किसी की नकल करने से कुछ भी न होगा। हर व्यक्ति की कमजोरी मौलिक रूप से भिन्न है। वही उसका व्यक्तित्व है। और इसलिए हर व्यक्ति को कुछ भिन्न गुण साधना पड़ेगा, जो उसकी मौलिक कमजोरी को काट दे और जीवन को बदल दे। इसलिए किसी का अनुकरण, अंधानुकरण काम का नहीं है। जीवन का सचेत विश्लेषण चाहिए।
कोई आदमी है, क्रोध जिसकी मौलिक कमजोरी है। जिसकी मौलिक कमजोरी क्रोध है, वह दान देता रहे, लोभ न करे, ब्रह्मचर्य साध ले--कोई अंतर न पड़ेगा। बल्कि बड़े मजे की बात है कि क्रोधी आदमी ब्रह्मचर्य आसानी से साध लेगा। क्रोधी आदमी लोभ को छोड़ सकता है। क्रोधी आदमी क्रोध के पीछे अपना जीवन छोड़ सकता है, लोभ क्या है! वह क्रोध के पीछे खुद सब कुछ नष्ट कर सकता है; दान दे सकता है; संन्यास ले सकता है; साधु हो सकता है; नग्न खड़ा हो सकता है--सब त्याग कर सकता है। लेकिन उसका त्याग बाहर-बाहर हो जाएगा, जब तक कि उसका क्रोध नहीं चला जाता।
लोभी आदमी सब छोड़ सकता है--लोभ को छोड़ कर। और सब छोड़ने में भी लोभ बच जाएगा। और त्याग के द्वारा भी वह भविष्य में, अगले जन्म में, मोक्ष में, स्वर्ग में कुछ कमाने की आकांक्षा रखेगा। छोड़ने में भी लोभ बच रहेगा। अहंकारी व्यक्ति सब छोड़ सकता है। इसीलिए छोड़ेगा ताकि अहंकार मजबूत होता चला जाए; सघन होता चला जाए। अहंकारी आदमी तो धन, आप उससे कहें, छोड़

सकता है, अगर अहंकार बढ़ता हो। पद कहें, छोड़ सकता है, अगर अहंकार बढ़ता हो। सिंहासन पर लात मार सकता है, अगर लात मारने से अहंकार बढ़ता हो। लेकिन अहंकार को जरा सी चोट पहुंचती हो, तो कठिनाई हो जाएगी।
मैंने सुना है कि हॉलीवुड में ऐसा हुआ, एक बड़ी फिल्म अभिनेत्री विवाह करने के तीन घंटे के भीतर अपने वकील के पास पहुंच गई। और जाकर उसने कहा कि तलाक का इंतजाम कर दो। वह वकील बोला कि हॉलीवुड के इतिहास में भी ऐसा पहले नहीं हुआ! तीन घंटे! अभी जो मेहमान तुम्हारे विवाह में शरीक हुए थे, वे घर भी नहीं पहुंच पाए हैं। चर्च में जो दीये जले थे विवाह की खुशी में, वे अभी जल रहे हैं, अभी बुझे नहीं। इतनी जल्दी क्या है? इतनी जल्दी ऐसा कौन सा उपद्रव हो गया तीन घंटे के भीतर?
उस स्त्री ने कहाः इन दि चर्च ही साइंड हिज नेम इन बिगर लेटर दैन माइन! पति ने मुझसे बड़े अक्षरों में हस्ताक्षर किए हैं। यह उपद्रव शुरू हो गया। इस आदमी के साथ बन नहीं सकता। अहंकार बड़े अक्षर भी बरदाश्त नहीं कर सकता है। सिंहासन छोड़ सकता है। अगर अहंकार तृप्त होता हो, तो सब कुछ छोड़ सकता है। लेकिन अगर अहंकार टूटता हो, तो रत्तीभर का फर्क असंभव है।
साधक को पहले यह खोज लेना चाहिए, उसकी मौलिक कमजोरी क्या है; उसकी बीमारी क्या है। यह निदान आवश्यक है। क्योंकि अगर ठीक बीमारी का पता ही न हो, तो ठीक औषधि कभी नहीं मिल सकती। निदान आधी चिकित्सा है। ठीक डाइग्नोसिस आधा इलाज है। अगर आपको ठीक से पकड़ में आ जाए कि आपकी कमजोरी क्या है, आपकी पीड़ा, आपका दुर्गुण क्या है, तो उसी दुर्गुण के आस-पास सारे दुर्गुण इकट्ठे हैं। और जब तक उस दुर्गुण से ऊपर उठने की व्यवस्था न बने, तब तक सदगुणों का आगमन शुरू न होगा। और बीच में आप जन्मों-जन्मों तक चेष्टा कर सकते हैं। वह चेष्टा वैसे ही है जैसे कोई टी. बी. से बीमार है, उसका कैंसर का इलाज चल रहा है; कि कोई कैंसर से बीमार है, और उसका कुछ और इलाज चल रहा है। जब तक चिकित्सा-विधि, औषधि बीमारी से संयुक्त न होती हो, तब तक कुछ भी करना खतरनाक है। तब तक बेहतर कुछ न करना है। क्योंकि बीमारी तो बीमारी ही रहेगी, गलत औषधि और बड़ी बीमारी हो जाएगी।
मैं साधुओं को देखता हूं; साधकों को देखता हूं; उन्हें अपनी बीमारी का कोई बोध ही नहीं है। और वे लड़े चले जा रहे हैं; औषधि लिए चले जा रहे हैं; साधना किए चले जा रहे हैं। उन्हें यह पता नहीं है कि क्या मिटाना है। और उन्हें यह भी पक्का नहीं है, कि क्या प्रकट करना है। इसलिए बहुत कोशिश के बाद भी कोई परिणाम नहीं होता।
तीसरी बात समझ लेनी जरूरी है, और वह यह है कि आपके भीतर जो बुनियादी रोग होगा, वही आपको दूसरे लोगों में दिखाई पड़ेगा; खुद में दिखाई नहीं पड़ेगा। बीमारी बच ही सकती है, जब तक छिपी रहे। प्रकट हो जाए, तो मिटनी शुरू हो जाती है। जैसे जड़ें तभी तक सक्रिय होती हैं, जब तक जमीन में दबी रहें; जैसे ही जमीन के बाहर आईं कि मरनी शुरू हो गईं।
जड़ को जमीन के बाहर निकाल लेना उसकी मौत का आयोजन है। आपके भीतर भी जो बीमारियां हैं वे तभी तक चल सकती हैं, जब तक अचेतन के गर्भ में अनकांशस में दबी रहें; आपको उनका पता न हो। जैसे ही आपके बोध में जड़ें आनी शुरू हुई, कि उनकी मृत्यु शुरू हो गई। इसलिए कुछ साधनाएं तो यह कहती हैं कि बीमारी को मिटाने के लिए कुछ भी नहीं करना है; सिर्फ बीमारी के प्रति परिपूर्ण होश से भर जाना है।
कृष्णमूर्ति की पूरी साधना, जो भीतर रोग है, उसके प्रति पूरी अवेयरनेस, पूरा साक्षात बोध--इतना काफी है। बुद्ध ने भी कहा है कि अपनी बीमारी का पूर्ण स्मरण उससे छुटकारा है। ज्ञान मुक्ति है। क्योंकि जड़ जैसे ही बाहर आती है जमीन के, तभी दिखाई पड़ती है। जब आपके अचेतन के गर्भ से जड़ें बाहर आती हैं, तो दिखाई पड़ती हैं। दिखाई पड़ते ही कुम्हलानी शुरू हो जाती हैं। इधर जड़ें कुम्हलाई, उधर उनके पत्तों का फैलाव, शाखाओं का फैलाव, फूलों का फैलाव, सब मरने लगा।
इसलिए एक तीसरी बात ख्याल में ले लेनी चाहिएः आपको अपनी बीमारी स्वयं में दिखाई नहीं पड़ सकती। इसीलिए तो वह है। लेकिन जो बीमारी है, उसका कहीं न कहीं प्रतिफलन होगा। दूसरे लोग दर्पण का काम करते हैं। आपको अपनी बीमारी

दूसरे लोगों में जाएगी। जो सबसे बड़ी कमजोरी है, उसे पकड़ लो और उस कमजोरी को मिटाने में लग जाओ। या वह कमजोरी जिससे मिट जाएगी, उस गुण को साधने में लग जाओ--तुम्हारा पूरा जीवन रूपांतरित हो जाएगा।
हमें इस सूत्र का पता नहीं है चेतन रूप से, लेकिन अचेतन रूप से भलीभांति पता है। और हम इसका एक उपयोग करते हैं, जो आत्मघाती है। वह उपयोग हम यह करते हैं कि व्यक्ति अपनी मौलिक कमजोरी से नहीं लड़ता अपनी क्षुद्र कमजोरियों से लड़ता रहता है।
उनके बदलने से कुछ बदलाहट न होगी। जब तक आप अपनी आधारभूत कमजोरी से लड़ना नहीं शुरू कर देंगे, तब तक जीवन नहीं बदलेगा। आप क्षुद्र कमजोरियों को बदल सकते हैं, उनसे कोई अंतर नहीं पड़ता। एक आदमी शराब पीना छोड़ सकता है; सिगरेट पीना छोड़ सकता है; मांसाहार छोड़ सकता है; ब्रह्ममुहूर्त में उठ सकता है; प्रार्थना-पूजा कर सकता है, लेकिन अगर उसकी मौलिक कमजोरियों के साथ इनका कोई संबंध नहीं है, तो उसका जीवन बिल्कुल बदलेगा नहीं।
कितने लोग हैं जो शराब नहीं पीते हैं। लेकिन शराब न पीने से कोई मोक्ष उपलब्ध नहीं हो गया है। अगर आप भी नहीं पीएंगे, तो उनसे कुछ बेहतर हालत में तो नहीं पहुंच जाएंगे, जो नहीं पीते हैं। कितने लोग हैं जो मांसाहार नहीं करते। लेकिन मांसाहार न कर लेने से उन्हें कोई आत्मा का ज्ञान नहीं हो गया है। आप भी छोड़ देंगे, तो भी क्या होगा?
मैं यह नहीं कह रहा हूं कि आप मत छोड़ना। मैं यह भी नहीं कह रहा हूं कि
आप शराब पीए जाएं और मांसाहार करते जाएं। मैं यह कह रहा हूं कि आप अपने जीवन में मौलिक को पकड़ें, जिससे क्रांति होगी। अगर मौलिक को, मूल को नहीं पकड़ा और पत्तों को काटते रहे, और जड़ नहीं काटी, तो एक पत्ता काटने से चार पत्ते पैदा हो जाते हैं। तो एक दुर्गुण आदमी काटता है, अगर वह आधारभूत नहीं है, जड़ में नहीं है, तो दस नये दुर्गुण पैदा हो जाते हैं। और आप पत्तों से लड़ते रहें जीवनभर, समय खो जाएगा। जीवन में जड़ को खोजना जरूरी है।
और दूसरा सूत्र ख्याल में ले लेना जरूरी है कि हर व्यक्ति की कमजोरी अलग है; दुर्गुण अलग है; इसलिए किसी की नकल करने से कुछ भी न होगा। हर व्यक्ति की कमजोरी मौलिक रूप से भिन्न है। वही उसका व्यक्तित्व है। और इसलिए हर व्यक्ति को कुछ भिन्न गुण साधना पड़ेगा, जो उसकी मौलिक कमजोरी को काट दे और जीवन को बदल दे। इसलिए किसी का अनुकरण, अंधानुकरण काम का नहीं है। जीवन का सचेत विश्लेषण चाहिए।
कोई आदमी है, क्रोध जिसकी मौलिक कमजोरी है। जिसकी मौलिक कमजोरी क्रोध है, वह दान देता रहे, लोभ न करे, ब्रह्मचर्य साध ले--कोई अंतर न पड़ेगा। बल्कि बड़े मजे की बात है कि क्रोधी आदमी ब्रह्मचर्य आसानी से साध लेगा। क्रोधी आदमी लोभ को छोड़ सकता है। क्रोधी आदमी क्रोध के पीछे अपना जीवन छोड़ सकता है, लोभ क्या है! वह क्रोध के पीछे खुद सब कुछ नष्ट कर सकता है; दान दे सकता है; संन्यास ले सकता है; साधु हो सकता है; नग्न खड़ा हो सकता है--सब त्याग कर सकता है। लेकिन उसका त्याग बाहर-बाहर हो जाएगा, जब तक कि उसका क्रोध नहीं चला जाता।
लोभी आदमी सब छोड़ सकता है--लोभ को छोड़ कर। और सब छोड़ने में भी लोभ बच जाएगा। और त्याग के द्वारा भी वह भविष्य में, अगले जन्म में, मोक्ष में, स्वर्ग में कुछ कमाने की आकांक्षा रखेगा। छोड़ने में भी लोभ बच रहेगा। अहंकारी व्यक्ति सब छोड़ सकता है। इसीलिए छोड़ेगा ताकि अहंकार मजबूत होता चला जाए; सघन होता चला जाए। अहंकारी आदमी तो धन, आप उससे कहें, छोड़ सकता है, अगर अहंकार बढ़ता हो। पद कहें, छोड़ सकता है, अगर अहंकार बढ़ता हो। सिंहासन पर लात मार सकता है, अगर लात मारने से अहंकार बढ़ता हो। लेकिन अहंकार को जरा सी चोट पहुंचती हो, तो कठिनाई हो जाएगी।
मैंने सुना है कि हॉलीवुड में ऐसा हुआ, एक बड़ी फिल्म अभिनेत्री विवाह करने के तीन घंटे के भीतर अपने वकील के पास पहुंच गई। और जाकर उसने कहा कि तलाक का इंतजाम कर दो। वह वकील बोला कि हॉलीवुड के इतिहास में भी ऐसा पहले नहीं हुआ! तीन घंटे! अभी जो मेहमान तुम्हारे विवाह में शरीक हुए थे, वे घर भी नहीं पहुंच पाए हैं। चर्च में जो दीये जले थे विवाह की खुशी में, वे अभी

जल रहे हैं, अभी बुझे नहीं। इतनी जल्दी क्या है? इतनी जल्दी ऐसा कौन सा उपद्रव हो गया तीन घंटे के भीतर?
उस स्त्री ने कहाः इन दि चर्च ही साइंड हिज नेम इन बिगर लेटर दैन माइन! पति ने मुझसे बड़े अक्षरों में हस्ताक्षर किए हैं। यह उपद्रव शुरू हो गया। इस आदमी के साथ बन नहीं सकता। अहंकार बड़े अक्षर भी बरदाश्त नहीं कर सकता है। सिंहासन छोड़ सकता है। अगर अहंकार तृप्त होता हो, तो सब कुछ छोड़ सकता है। लेकिन अगर अहंकार टूटता हो, तो रत्तीभर का फर्क असंभव है।
साधक को पहले यह खोज लेना चाहिए, उसकी मौलिक कमजोरी क्या है; उसकी बीमारी क्या है। यह निदान आवश्यक है। क्योंकि अगर ठीक बीमारी का पता ही न हो, तो ठीक औषधि कभी नहीं मिल सकती। निदान आधी चिकित्सा है। ठीक डाइग्नोसिस आधा इलाज है। अगर आपको ठीक से पकड़ में आ जाए कि आपकी कमजोरी क्या है, आपकी पीड़ा, आपका दुर्गुण क्या है, तो उसी दुर्गुण के आस-पास सारे दुर्गुण इकट्ठे हैं। और जब तक उस दुर्गुण से ऊपर उठने की व्यवस्था न बने, तब तक सदगुणों का आगमन शुरू न होगा। और बीच में आप जन्मों-जन्मों तक चेष्टा कर सकते हैं। वह चेष्टा वैसे ही है जैसे कोई टी. बी. से बीमार है, उसका कैंसर का इलाज चल रहा है; कि कोई कैंसर से बीमार है, और उसका कुछ और इलाज चल रहा है। जब तक चिकित्सा-विधि, औषधि बीमारी से संयुक्त न होती हो, तब तक कुछ भी करना खतरनाक है। तब तक बेहतर कुछ न करना है। क्योंकि बीमारी तो बीमारी ही रहेगी, गलत औषधि और बड़ी बीमारी हो जाएगी।
मैं साधुओं को देखता हूं; साधकों को देखता हूं; उन्हें अपनी बीमारी का कोई बोध ही नहीं है। और वे लड़े चले जा रहे हैं; औषधि लिए चले जा रहे हैं; साधना किए चले जा रहे हैं। उन्हें यह पता नहीं है कि क्या मिटाना है। और उन्हें यह भी पक्का नहीं है, कि क्या प्रकट करना है। इसलिए बहुत कोशिश के बाद भी कोई परिणाम नहीं होता।
तीसरी बात समझ लेनी जरूरी है, और वह यह है कि आपके भीतर जो बुनियादी रोग होगा, वही आपको दूसरे लोगों में दिखाई पड़ेगा; खुद में दिखाई नहीं पड़ेगा। बीमारी बच ही सकती है, जब तक छिपी रहे। प्रकट हो जाए, तो मिटनी शुरू हो जाती है। जैसे जड़ें तभी तक सक्रिय होती हैं, जब तक जमीन में दबी रहें; जैसे ही जमीन के बाहर आईं कि मरनी शुरू हो गईं।
जड़ को जमीन के बाहर निकाल लेना उसकी मौत का आयोजन है। आपके भीतर भी जो बीमारियां हैं वे तभी तक चल सकती हैं, जब तक अचेतन के गर्भ में अनकांशस में दबी रहें; आपको उनका पता न हो। जैसे ही आपके बोध में जड़ें आनी शुरू हुई कि उनकी मृत्यु शुरू हो गई। इसलिए कुछ साधनाएं तो यह कहती हैं कि बीमारी को मिटाने के लिए कुछ भी नहीं करना है; सिर्फ बीमारी के प्रति परिपूर्ण होश से भर जाना है।
कृष्णमूर्ति की पूरी साधना, जो भीतर रोग है, उसके प्रति पूरी अवेअरनेस, पूरा साक्षात बोध--इतना काफी है। बुद्ध ने भी कहा है कि अपनी बीमारी का पूर्ण स्मरण उससे छुटकारा है। ज्ञान मुक्ति है। क्योंकि जड़ जैसे ही बाहर आती है जमीन के, तभी दिखाई पड़ती है। जब आपके अचेतन के गर्भ से जड़ें बाहर आती हैं, तो दिखाई पड़ती हैं। दिखाई पड़ते ही कुम्हलानी शुरू हो जाती हैं। इधर जड़ें कुम्हलाई, उधर उनके पत्तों का फैलाव, शाखाओं का फैलाव, फूलों का फैलाव, सब मरने लगा।
इसलिए एक तीसरी बात ख्याल में ले लेनी चाहिएः आपको अपनी बीमारी स्वयं में दिखाई नहीं पड़ सकती। इसीलिए तो वह है। लेकिन जो बीमारी है, उसका कहीं न कहीं प्रतिफलन होगा। दूसरे लोग दर्पण का काम करते हैं। आपको अपनी बीमारी दूसरे लोगों में दिखाई पड़ती है। अहंकारी व्यक्ति को सारे लोग अहंकारी मालूम पड़ेंगे। और हरेक लगेगा कि अपनी अकड़ में जा रहा है। और उसको हरेक की अकड़ चोट पहुंचाएगी।
यह बड़े मजे की बात है कि आप, जो आदमी विनम्र होता है, हंबल होता है, निर-अहंकारी होता है, उसका इतना आदर क्यों करते हैं? आपने कभी सोचा? सब समाज दुनिया के विनम्र आदमी का आदर करते हैं; और कहते हैंः "बड़ा श्रेष्ठ आदमी है, उसको अहंभाव बिल्कुल भी नहीं।" लेकिन क्यों दुनिया के सभी लोग निर-अहंकारी का आदर करते हैं?

निर-अहंकारी के आदर का बुनियादी कारण आपका अहंकार है। क्योंकि निर-अहंकारी आपको चोट नहीं पहुंचाता। और आप उसको कितनी ही चोट पहुंचाएं, तो भी प्रत्युत्तर नहीं देता। अहंकारी आपको अखरता है। अखरने का कुल कारण इतना है कि आपके भीतर के अहंकार को चोट लगती है।
यह अभिनेत्री जो अपने पति के बड़े हस्ताक्षर देख कर तलाक देने को तैयार हो गई, जरूर इसके मन में पति से बड़े हस्ताक्षर करने की वासना छिपी रही होगी। उसी को चोट पहुंची। अन्यथा दिखाई भी नहीं पड़ सकता था। यह ख्याल में भी न आता कि किसने बड़े हस्ताक्षर किए हैं।
जो दिखाई पड़ता है, वह कहीं भीतर छिपा है। जब आपको आस-पास के लोग पापी दिखाई पड़ते हैं, तो उनके पाप का जो भी ढंग हो, समझना कि वह आपकी बीमारी का निदान है। इस जगत में हर दूसरा व्यक्ति दर्पण है। और अगर हम ठीक से उसमें अपनी छवि देखें, तो हमें अपनी साधना का मार्ग स्पष्ट हो सकता है।
इसे थोड़ा सोचना आप कि आपको क्या-क्या खामियां दूसरे लोगों में दिखाई पड़ती हैं; क्यों दिखाई पड़ती हैं; और कौन-कौन सी चीजें चोट की तरह आपके भीतर घाव बनाती हैं; जरा सी चोट, और आपका घाव भीतर कंपित और दुख से भर जाता है। कौन सी चीजें हैं? तो वही, जिनमें आप भीतर से रस ले रहे हैं। लेकिन वह रस अचेतन है।
जीवन के निदान में यह तीसरा सूत्र बहुत जरूरी है कि जो आपको दूसरों में दिखाई पड़ता हो, दूसरों की फिकर छोड़ कर उसे अपने में खोजने लग जाना। ये तीन बातें ख्याल में लें; फिर हम महावीर के सूत्र में प्रवेश करें। महावीर कहते हैं--
"जो दूसरों को "यह दुराचारी है" ऐसा नहीं कहता, जो कटु वचन--जिससे सुनने वाला क्षुब्ध हो--नहीं बोलता, "सब जीव अपने-अपने शुभाशुभ कर्मों के अनुसार ही सुख-दुख भोगते हैं।"--ऐसा जान कर जो दूसरों की निंद्य चेष्टाओं पर लक्ष्य न देकर अपने सुधार की चिंता करता है, जो अपने आपको उग्र तप और त्याग आदि के गर्व से उद्धत नहीं बनाता, वही भिक्षु है।"
बहुत सी बातें हैं। एकः जो दूसरों को "यह दुराचारी है" ऐसा नहीं कहता। कहने का ही सवाल नहीं है, जो अपने भीतर भी ऐसा भाव निर्मित नहीं करता कि दूसरा दुराचारी है। क्योंकि कहने से क्या फर्क पड़ेगा? जो अपने भीतर भी ऐसा अनुभव नहीं करता, यह दुराचारी है।
लेकिन साधुओं के पास जाएं। साधुओं की आंखों में आपकी निंदा के सिवाय
और कुछ भी नहीं। साधुओं को जितना मजा आता है आपकी निंदा करने में, उतना किसी और बात में नहीं आता। साधु देख कर ही आपको आनंद अनुभव करता है कि पापियों के सामने वह पुण्यात्मा मालूम पड़ता है--कि तुम भोगी, कि तुम नारकीय, कि तुम नरक की योजना बना रहे हो, कि तुम कामी, कि तुम शरीर की वासना में डूबे हुए हो, कि तुम संसार में भटक रहे हो, अज्ञानी। साधु की आंखों में निंदा का स्वर है। और शायद आप भी उसके पास इसीलिए जाते हैं, शायद आप भी उसको इसीलिए आदर देते हैं कि अपनी निंदा का स्वर आप वहां पाते हैं।
यह बड़े मजे की बात है। इस जगत में हर व्यक्ति अपने विपरीत से आकर्षित होता है। जैसे स्त्री पुरुष से आकर्षित होती है; पुरुष स्त्री से आकर्षित होता है। यह आकर्षण जीवन के सभी आयामों में फैला हुआ है। आप अपने विपरीत से आकर्षित होते हैं। भोगी त्यागी से आकर्षित होता है। पापी पुण्यात्मा से आकर्षित होता है। पापी जाता है पुण्यात्मा के पास, लेकिन अगर पुण्यात्मा उसको यह बोध ही न दे कि तू पापी है, तो उसके जाने का मजा समाप्त हो जाए। एक खुजली है, जिसको वह खुजलाता है।
तो जब आप साधु के पास जाते हैं, और साधु आपकी निंदा करता है, तो चाहे ऊपर से आपको बुरा भी लगता हो, लेकिन भीतर से अच्छा लगता है। यह भीतर से अच्छा लगना एक रोग है--आपका भी और साधु का भी। आप उस साधु के पास शायद जाना पसंद ही नहीं करेंगे, जिसके मन में आपके प्रति कोई निंदा नहीं है। क्योंकि आपको उसके प्रति कोई आदर ही मालूम नहीं होगा। आपको आदर उसी के प्रति मालूम हो सकता है, जिसके द्वारा आपके प्रति अनादर बहता है। जो आपसे ऊंचा मालूम होता है, उसी के प्रति आदर मालूम होता है।

इसलिए अक्सर ऐसा होता है कि परम साधुओं को लोग पहचान ही नहीं पाते; सिर्फ उनको पहचान पाते हैं, जो साधु नहीं है। तो साधु के धंधे की एक व्यवस्था है कि वह आपकी जितनी निंदा करे, उतना आप उसके निकट जाएंगे।
जाकर साधुओं के प्रवचन सुनें। वे जितनी आपको गालियां दें और आपकी निंदा करें, आप उतने ही मुस्कुराते हैं, और आप कहते हैं कि बात तो बिल्कुल ठीक है। सच में तो यह है कि आप भी अपने को कभी भी इस हालत में नहीं मानते कि ऐसी कोई बुराई है, जो आपने नहीं की है। और जब कोई आपकी निंदा करता है, तो आपको भी लगता है कि सत्य कह रहा है--आप भला उसके सत्य को मान न पाते हों। जीवन की असुविधाएं हैं, कठिनाइयां हैं--आप पूरा न कर पाते हों; लेकिन उसकी निंदा से आप भी राजी हैं।
सच में, आप खुद ही आत्म-निंदा से, सेल्फ कंडेमनेशन से इतने भरे हैं कि
जो भी आपकी निंदा करता है, उससे आप राजी हो जाते हैं। लेकिन महावीर साधु की व्याख्या में पहली बात यह कहते हैं कि जो, दूसरा दुराचारी है, न तो ऐसा कहता है, न ऐसा मानता है; न ऐसा सोचता है, न ऐसा भाव करता है; दूसरे के संबंध में बुराई की धारणा छोड़ देता है, ऐसा व्यक्ति साधु है।
लेकिन ऐसा साधु आपको बहुत अपील नहीं करेगा। जो आपको अपराधी सिद्ध न करे, वह आपको सच ही मालूम न पड़ेगा। अगर कोई साधु आपको समभाव से ले--नीचे- ऊंचे का भाव न करे; आपके कंधे पर हाथ रख दे; मित्र की तरह आपसे बात करे--आप उस साधु के पास जाना बंद कर देंगे।
आप तलाश कर रहे हैं किसी की, जो आपकी निंदा करे। क्योंकि आप अपनी ही निंदा में लीन हैं। लेकिन महावीर कहते हैं, साधु का पहला लक्षण यह है... । अगर यह लक्षण साधु का है, तो सौ में से निन्यानबे साधु, साधु सिद्ध नहीं होंगे। वे आपकी बीमारी का हिस्सा हैं। आप जो चाहते हैं, वे कर रहे हैं। जगत में स्वयं को दुख देने वाले लोगों की बड़ी कतार है। और जहां भी उनको दुख मिलता है, वहां उनको रस आता है। साधु आपको एक तरह से दुख दे रहा है। क्योंकि वह कह रहा है कि आप निंदित हैं, पापी हैं। नरक और नरक की जलती हुई लपटें जिन्होंने विकसित की हैं, जिन्होंने धारणाएं बनाई हैं ये, महावीर उन्हें साधु नहीं कह सकते। क्योंकि जब दूसरे को दुराचारी ही नहीं विचार करना है, तो दूसरे को नरक में डालने का ख्याल ही क्या!
बर्ट्रेंड रसल ने एक किताब लिखी है बड़ी अनूठीः वाई आई एम नॉट ए क्रिश्चियन? मैं ईसाई क्यों नहीं हूं? और जो दलीलें दी हैं... और दलीलें तो ठीक हैं, लेकिन एक दलील सच में बहुत महत्वपूर्ण है। महावीर भी उससे राजी होते। और वह दलील यह है कि जीसस के मुंह से इस तरह के वचन कहलवाए गए हैं बाइबिल में, जिनसे ऐसा लगता है कि जीसस लोगों को नरक में डालने में रस ले रहे हैं--कि तुम सताए जाओगे; कि तुम छेदे जाओगे; कि कीड़े-मकोड़े तुम्हारे शरीर से गुजरेंगे; कि अग्नि में तुम पटके जाओगे; कि उबलते हुए तेल में तुम्हें उबाला जाएगा। तुम प्यासे होओगे। आग बरसती होगी। पानी पास होगा। लेकिन तुम्हें पानी पीने को नहीं दिया जाएगा।
रसेल यह कहता है कि जीसस के ये जो वचन हैं, अगर जीसस ने ही कहे हैं, तो जीसस साधु होने का गुण ही खो देते हैं। क्योंकि साधु दूसरे को ऐसा कष्ट देने की कल्पना भी करे, वह कल्पना भी बताती है कि दूसरे को कष्ट देने में रस है; हिंसा है। दूसरे को बुरा कहना हिंसा है। दूसरे को बुरा मानना हिंसा है। निश्चित ही, जीसस ने ये वचन कहे नहीं हैं--पीछे जोड़े गए हैं। क्योंकि जीसस के मर जाने के डेढ़ सौ वर्ष बाद बाइबिल का संकलन शुरू हुआ। जिन लोगों ने संकलन किया, उनकी धारणाएं हैं ये।
मैं यहां बोल रहा हूं; आप इतने लोग यहां बैठे हैं; अगर बाहर आपसे जाकर पूछा जाए कि मैंने क्या कहा--अभी, डेढ़ सौ वर्ष बाद नहीं--तो जितने यहां लोग हैं, उतने वक्तव्य होंगे। और मुश्किल हो जाएगा यह तय करना कि मैंने क्या कहा। क्योंकि आप वही नहीं सुनते, जो मैं कह रहा हूं। आप वही सुनते हैं, जो आप सुनना चाहते हैं। आप उसी को चुन लेते हैं; उसी को बड़ा कर लेते हैं; कुछ छोड़ देते हैं, कुछ बचा लेते हैं।
जीसस के आठ शिष्यों ने बाइबिल के आठ वक्तव्य दिए हैं। वे सब भिन्न-भिन्न हैं; अपना-अपना वक्तव्य हैं असल में। डेढ़ सौ साल बाद जो लिखा गया है,

वह उन लोगों का है जिन्होंने डेढ़ सौ साल बाद लिखा। ये वे लोग थे जो चाहते थे कि ईसाई होने से स्वर्ग; और जो ईसाई नहीं होता, उसे नरक। लेकिन रसेल का तर्क सही है। अगर जीसस ने ही ये वचन कहे हैं, तो जीसस सारा गुण खो देते हैं। जिन्होंने नरक सोचा है, उन्होंने सोच कर ही बता दिया कि उनके मन में भीतर गहरी हिंसा छिपी है। लेकिन साधु इसमें रस लेता है। लेकिन रस का कारण भी समझ लें।
आप भोग रहे हैं--स्त्री को, धन को, महल को। साधु ने स्त्री छोड़ी, धन छोड़ा, महल छोड़ा--भूखा है, प्यासा है, नग्न है, सड़क पर पैदल चल रहा है। आप सब तरह का सुख भोग रहे हैं; वह सब तरह का दुख भोग रहा है। गणित साफ है। अगर वह कहीं आगे भविष्य में आपके लिए दुख का आयोजन न कर ले, तो उसे खुद का दुख भोगना मुश्किल हो जाएगा। गणित को साफ कर लेगा वहः अपने लिए भविष्य में सुख का आयोजन; आपके लिए भविष्य में दुख का आयोजन। बात साफ हो गई। और यह भी पक्का कर लेगा कि तुम जो सुख भोग रहे हो, वह क्षणिक है; और मैं जो सुख भोगूंगा स्वर्ग में, मोक्ष में, वह शाश्वत है। और तुम जो सुख भोग रहे हो, वह तो क्षणिक है; लेकिन तुम जो दुख भोगोगे नरक में, वह अनंतकालीन है।
यह बड़े मजे की बात है। क्षणिक सुख के लिए अनंतकालीन दुख कैसे मिल सकता है? बर्ट्रेंड रसल ने वह भी तर्क उठाया है। ईसाइयत मानती है कि नरक जो है, वह इटरनल है; उसका कभी अंत नहीं होगा। जो एक दफे नरक में पड़ गया, वह पड़ गया। उससे निकलने की कोई जगह नहीं है। शाश्वत नरक!
अब यह बड़े मजे की बात है कि क्षणिक सुख, उसके बदले में शाश्वत नरक! कहीं साथ नहीं बैठता। रसल ने कहा है कि मुझ पर अगर कोई ठीक न्यायोचित व्यवस्था की जाए मेरे पापों की, तो जो मैंने पाप किए हैं वे और जो मैंने सोचे हैं, अगर वे भी जोड़ लिए जाएं--तो भी मुझे सख्त अदालत चार साल, और चार साल से ज्यादा की सजा नहीं दे सकती। तो अनंत... ! इसमें जरूर देने वालों का कुछ हाथ है। अनंत नरक, जिसका फिर कोई अंत नहीं होगा!
उलटी बात भी समझ लेने जैसी है। क्षणिक सुख छोड़ने वाले लोग शाश्वत सुख पाएंगे। क्षणिक को छोड़ कर शाश्वत कैसे पाया जा सकता है? आखिर गणित कुछ तो साफ होना चाहिए। सिर्फ क्षणिक सुख भोगनेवाले लोग शाश्वत नरक पाएं। क्षणिक सुख छोड़ने वाले शाश्वत सुख पाएं। इसमें देने वालों का, हिसाब लगाने वालों का हाथ है।
जगत में वही मिल सकता है, जो छोड़ा जाता है। सब चीजों के मूल्य अंततः समान हो जाते हैं। अगर क्षणिक सुख ही छोड़ा है, तो महावीर कहते हैं, स्वर्ग मिल सकता है। लेकिन वह स्वर्ग भी क्षणिक होगा। अगर मोक्ष चाहिए, तो क्षणिक सुख को छोड़ने से नहीं मिलने वाला है; शाश्वत आत्मा को जानने से मिलने वाला है। उसका त्याग से कोई संबंध नहीं। उसका भोग से कोई संबंध नहीं। उसका आत्म-बोध से संबंध है। शाश्वत जो मेरे भीतर छिपा है, उसको जानने से मेरा शाश्वत से संबंध जुड़ जाएगा। क्षणिक जो मेरी देह है, उसके माध्यम से जितने भी संबंध मैं जोड़ता हूं, वे भी क्षणिक ही होंगे।
साधु का आधारभूत लक्षण है कि दूसरे में उसे बुरा दिखाई न पड़े। लेकिन क्यों? यह तभी हो सकता है, जब स्वयं के भीतर से बुरा गिर जाए। क्योंकि हमें वही दिखाई पड़ता है दूसरे में, जो हमारे भीतर होता है--मैग्निफाई होकर दिखाई पड़ता है; खूब बड़ा होकर दिखाई पड़ता है। हमारे चारों तरफ दर्पण घूम रहे हैं। सारा जगत दर्पण है, जिसमें हम ही लौट-लौट कर गूंजते हैं और दिखाई पड़ते हैं। जिस दिन कोई व्यक्ति भीतर से दुर्गुणों से शून्य हो जाता है, इन दर्पणों में भी दिखाई पड़ना बंद हो जाता है।
लेकिन आप उस तरह के लोग हैं कि अगर दर्पण में आपका कुरूप चेहरा दिखाई पड़े, तो आपको ख्याल आता है कि दर्पण में जरूर कोई भूल है। मेरा चेहरा और कुरूप कैसे हो सकता है! तो आप दर्पण तोड़ देने को तैयार हो सकते हैं, चेहरा बदलने को नहीं। हम यही कर रहे हैं। चारों तरफ हर संबंध, जीवन का हर संबंध प्रतिफलन कर रहा है।
जब आप पाते हैं कि आपको एक बुरी पत्नी मिल गई, तो आपके ख्याल में नहीं आता कि यह बुरे पति का परिणाम है; यह होने ही वाला है। आप पत्नी बदल सकते हैं; दर्पण बदल सकते हैं, लेकिन हर पत्नी बुरी सिद्ध होगी। वह तो अच्छा है,

जिन मुल्कों में पत्नी बदलने की बहुत सुविधा नहीं, तो यह दुख अनुभव नहीं हो पाता कि हर पत्नी बुरी सिद्ध होती है। यह आशा बनी ही रहती है कि यह एक भूल हो गई है; बाकी इतनी स्त्रियां थीं, जो अच्छी पत्नी हो सकती थीं। लेकिन जिन मुल्कों में सुविधा हो गई तलाक की, वहां जीवन बड़ी उदासी से भर गया है।
हर बार उसी तरह की पत्नी आदमी खोज लेता है, जैसी उसने पहले खोजी थी। क्योंकि खोजने वाला तो बदलता नहीं। तो खोजी जाने वाली चीज भी बदलने वाली नहीं है।
आप कितना ही कुछ भी करें, दर्पण के बदलने से आप बदलने वाले नहीं हैं।
हर दर्पण आपका ही प्रतिफलन देगा। और आप इतने ज्यादा अंधेरे से भरे हैं कि दर्पण से रोशनी आने का कोई उपाय नहीं है। जब आपको कोई भी दुख चारों तरफ से मिलता है, तो ध्यान रखना--लोग बुरे हैं, इसलिए दुख मिल रहा है--यह धारणा सामान्य आदमी की है। मैं बुरा हूं, इसलिए दुख पा रहा हूं--यह धारणा साधु की है। और यही क्रांति साधारण व्यक्ति को साधु बनाती है। दूसरों को बदल दूं, यह चेष्टा साधारण चेष्टा है। अपने को बदल लूं, यह साधु का संकल्प है। लेकिन अपने को बदलने का ख्याल ही तब आएगा, जब हर परिस्थिति में मैं देख पाऊं अपने को ही; खोज पाऊं अपने को ही।
"जो दूसरों को "यह दुराचारी है" ऐसा नहीं कहता, ऐसा अनुभव भी नहीं करता; जो कटु वचन--जिससे सुनने वाला क्षुब्ध हो--नहीं बोलता... !"
ध्यान रहे, जब भी आप कटु वचन बोलते हैं, तो आप किसी को क्षुब्ध करना चाहते हैं--चेतन या अचेतन; होशपूर्वक या अनजाने। लेकिन आप किसी को क्षुब्ध करना चाहते हैं। एक बड़े मजे की बात है, आप कटु वचन बोलें और दूसरा क्षुब्ध न हो, तो आप क्षुब्ध हो जाएंगे। आप किसी को गाली दें, और वह मुस्कुराता रहे, गाली लौट आई। उस आदमी ने स्वीकार नहीं की। वह गाली आपकी ही छाती में तीर बन कर चुभ जाएगी। अगर आप क्षुब्ध करना चाहें, और कोई क्षुब्ध न हो, तो आप बड़ी बेचैनी और बड़ी मुश्किल में पड़ जाएंगे। और अगर कोई क्षुब्ध हो जाए, तो आप कहते हैं कि क्षुब्ध होने वाले की भूल है, मैंने तो ऐसा कुछ कहा नहीं; और अगर वचन तीखा भी था, तो सत्य था।
हम सत्य भी बोलते हैं तभी, तो जब हिंसा उससे हो सकती है। सत्य भी हम तभी बोलते हैं, जब उसका उपयोग हम छुरी की तरह कर सकें; किसी को काट सकें, चोट पहुंचा सकें। हमारे सत्य भी असत्यों से बदतर होते हैं। लेकिन साधु की सदा कोशिश यह होगी कि वह जो भी बोल रहा है, जो भी कर रहा है... । वह क्यों कर रहा है; क्यों बोल रहा है? उसका मूल भीतर क्या है? किसी को मैं क्षुब्ध क्यों करना चाहता हूं? किसी को क्षुब्ध करने की वृत्ति क्यों है?
जब तक आप किसी को क्षुब्ध न कर सकें, तब तक आपको अपनी मालकियत नहीं मालूम पड़ती। जिसको आप क्षुब्ध कर लेते हैं, उसके आप मालिक हो जाते हैं। मनस्विद कहते हैं कि अगर हिटलर को बचपन में प्रेम मिला होता, तो शायद हिटलर पैदा नहीं होता। उसे कोई प्रेम नहीं मिला, तो उसने एक ही कला सीखी दूसरे पर मालकियत की--वह थी हिंसा, घृणा, दूसरे को नष्ट करना।
जब आप किसी को नष्ट करते हैं तो आपको लगता है, आप मालिक हैं।
ध्यान रहे, दो तरह की मालकियत अनुभव की जा सकती है। या तो आप कुछ सृजन करें, कुछ क्रिएट करें... । एक चित्रकार एक पेंटिंग बनाता है। पेंटिंग बना कर प्रसन्न होता है, क्योंकि उसने कुछ बनाया; और बनाने के माध्यम से वह ईश्वर का हिस्सेदार हो गया। किसी अर्थ में ईश्वर हो गया। ईश्वर ने बनाई होगी यह सारी दुनिया; उसने भी एक छोटी दुनिया बनाई है। एक मूर्तिकार एक मूर्ति बनाता है। एक संगीतज्ञ एक धुन खोजता है; एक लय बिठाता है। एक नर्तक एक नृत्य को जन्म देता है। वे प्रसन्न होते हैं; वे आनंदित होते हैं-- उन्होंने कुछ बनाया। और जिसको वे बना लेते हैं, उसके मालिक हो जाते हैं। वह जो क्रिएटर है, वह जो स्रष्टा है किसी चीज का, वह उसका मालिक है। यह
एक उपाय है मालिक होने का। दूसरा उपाय यह है कि किसी चीज को आप तोड़ दें, मिटा दें, नष्ट कर दें--तब भी आप मालिक हो जाते हैं। न हुए ब्रह्मा, हो गए शिव--लेकिन ईश्वर के हिस्सेदार हो गए। कुछ मिटाया। मिटा सकते हैं आप।
और ध्यान रहे, बनाना बहुत कठिन है, मिटाना बहुत आसान है। एक जीवन को जन्म देना बहुत कठिन है। एक जीवन को नष्ट करने में क्या लगता है! हिटलर ने

लाखों लोगों को मिटा दिया। जितने लोग मिटते गए, उसे लगता गया, वह कुछ है। ईश्वर होने का अनुभव उसे होने लगा होगा। अगर सारी दुनिया को मिटाने की ताकत उसके हाथ में आ जाती, जिसकी वह कोशिश कर रहा था, तो उसे लगता कि अब मेरे सिवा और कोई परमात्मा नहीं है। मैं मिटा सकता हूं।
धर्म और अधर्म इसी जगह से भिन्न होते हैं। अधर्म है मिटा कर मालिक बनने की कोशिश, और धर्म है सृजन करके मालिक बनने की कोशिश। दोनों मालकियत हैं। लेकिन सृजन प्रेम है, विध्वंस हिंसा है। आप तलवार से ही मिटाते हैं, ऐसा नहीं है; एक छोटा सा शब्द भी किसी के प्राणों को मिटा सकता है। आंख का एक इशारा, आपके चलने का ढंग; किसी को तोड़ सकता है, नष्ट कर सकता है।
महावीर कहते हैं, साधु वह है जो वचन भी कठोर नहीं बोलता, इतना भी नहीं
कि कोई जरा सा क्षुब्ध हो जाए। और जब भी कोई क्षुब्ध होता है, तब वह अनुभव करता है कि मैंने कुछ किया है, जिससे क्षोभ पैदा हुआ है। और वह अपने द्वारा पैदा किए क्षोभ को हर तरह से मिटाने की कोशिश करता है। ऐसा व्यक्ति अपने चारों तरफ फूल खिलाने लगता है। विनाश की शक्ति सृजन बननी शुरू हो जाती है। बुद्ध के संबंध में कहा जाता है कि वे जहां से गुजरते, वहां वृक्षों में असमय फूल आ जाते। यह तो कहानी है, लेकिन बड़ी सूचक है। बुद्ध जैसा व्यक्ति, जिसकी सारी ऊर्जा विध्वंस से हट कर सृजन बन गई, उसका प्रतीक है यह। असमय भी वृक्षों में फूल आ जाएं, तो कुछ असंभव नहीं। इतना ही मतलब है। जहां भी यह व्यक्ति जाएगा, वहां कुछ खिलेगा बजाय मुरझाने के। इसके होने का ढंग ऐसा हो गया है कि चीजें नाचेंगी, हंसेंगी, प्रसन्न होंगी, प्रफुल्लित होंगी।
महावीर इसी को अहिंसा कहते हैं। आप हो सकता है मांसाहार न करें, पानी छान कर पीएं, रात भोजन न करें, आप सब तरह से हिंसा को भोजन से बचा लें; लेकिन तब हिंसा आपके दूसरे पहलुओं में प्रवेश कर जाए। आप कठोर वचन बोलने लगें; कटु वचन बोलने लगें; साधुओं के वचन देखें, अति कठोर मालूम होंगे। उनकी कठोरता भी हमें लगती है कि शायद उनकी अनासक्ति का प्रतीक है; शायद उनकी कटुता उनके सत्य होने का प्रतीक है। यह बात गलत है। इन्हीं कारणों से हमने एक कहावत बना रखी है कि सत्य कटु होता है। यह बात गलत है। क्योंकि जो सत्य कटु हो जाता है, वह कटु होने के कारण ही असत्य हो जाता है।
सत्य से मधुर और कुछ भी नहीं हो सकता। लेकिन बोलने का हकदार वही है, जिसके भीतर माधुर्य का जन्म हो गया है; नहीं तो वह जो सत्य बोलेगा, वह जहर होगा। आप जहर से भरे हैं--आपके भीतर से सत्य निकलेगा, वह जहर बुझा हो जाएगा। आपसे सत्य भी निकल जाए, तो आपसे बच नहीं सकता। वह जहर से बुझा तीर हो जाएगा; और जहां जाएगा, वहीं अहित करेगा।
नीत्शे ने तो कहीं व्यंग में कहा है कि असत्य भी मधुर हो, तो हितकर है
उस सत्य की बजाय जो कटु है। यह बात समझ में आने जैसी है। मेरी अपनी धारणा यह है कि असत्य भी अगर पूर्ण माधुर्य से निकले, तो सत्य हो जाता है। और सत्य भी अगर कटुता से निकले, तो असत्य हो जाता है। आंतरिक माधुर्य ही कसौटी है सत्य और असत्य की। और कोई कसौटी नहीं है। आंतरिक माधुर्य उसे ही प्राप्त होता है, जो विध्वंस की सारी क्षमता से शून्य हो गया है। उसकी आत्मा से मधु बहने लगता है। उससे फिर जो भी निकले, वह सत्य है। उससे फिर जो भी निकले, वह प्रेम है। महावीर कहते हैं--
"जो कटु वचन--जिससे सुनने वाला क्षुब्ध हो--नहीं बोलता, "सब जीव अपने- अपने शुभाशुभ कर्मों के अनुसार ही सुख-दुख भोगते हैं"--ऐसा जान कर जो दूसरों की निंद्य चेष्टाओं पर लक्ष्य न देकर अपने सुधार की चिंता करता है... ।"
इस सूत्र को ठीक से समझ लेना चाहिए। क्योंकि महावीर की आधारभूत शिक्षाओं में यह एक है कि प्रत्येक व्यक्ति जो भी अनुभव कर रहा है, जो भी कर रहा है, वह उसकी अपनी आंतरिक कर्मों कीशृंखला का हिस्सा है। आप अगर गाली देते हैं, तो यह गाली आपके अतीत से संबंधित है; जिसको आप गाली देते हैं, उससे संबंधित नहीं है। वह सिर्फ निमित्त है। अगर आप प्रेम करते हैं, तो यह भी आपके अतीत-अनुभवों की सारशृंखला है। उससे इसका कोई संबंध नहीं

है, जिसको आप प्रेम करते हैं। वह सिर्फ निमित्त है। प्रत्येक व्यक्ति अपने भीतर से जी रहा है, और बाहर केवल निमित्त हैं।
जीवन की धारा भीतर से आती है; बाहर तो केवल अवसर है। लेकिन हम उलटा सोचते हैं। हम सोचते हैंः भीतर से क्या आता है, सब कुछ बाहर है; सब कुछ बाहर से हो रहा है। एक आदमी आपको गाली देता है, थोड़ा सोचें। आपका मिजाज खराब हो तो गाली बहुत गाली मालूम पड़ेगी। मिजाज अच्छा हो तो गाली बहुत छोटी गाली मालूम पड़ेगी। अगर आप सच में ही आनंदित हों, ध्यान में मग्न हों, तो गाली गाली मालूम ही नहीं पड़ेगी। और अगर आप नरक में बैठें हों, दुख और पीड़ा से भरे हों, तो गाली आपके लिए पूरे जीवन को बदलने का आधार हो जाएगी। हिंसा, हत्या में आप उतर जाएंगे।
गाली में क्या है। गाली सिर्फ निमित्त है। जो है, वह आपके भीतर है। जैसे हम कुएं में बाल्टी डालते हैं, कुआं सूखा हो तो बाल्टी खाली लौट आती है। वैसे ही गाली एक बाल्टी की तरह आप में जाती है। आप खाली हों तो खाली लौट आती है। आप माधुर्य से भरे हों तो गाली की बाल्टी भी माधुर्य ही लेकर लौटती है और आप नरक की अग्नि से भरे हों, तो लपटें उबलती हुई उस बाल्टी में बाहर आ जाती हैं। बाल्टी जो लेकर लौटती है, वह बाल्टी का नहीं है; जो लेकर लौटती है, वह आपका है।
महावीर कहते हैं, प्रत्येक व्यक्ति अपने जगत में जी रहा है, जो उसके भीतर है। बाहर से मौके मिलते हैं, उन मौकों को मूल्य मत दो, ध्यान दो भीतर। और अगर कोई आदमी सुख भोग रहा है; कोई आदमी दुख भोग रहा है; कोई आदमी पाप कर रहा है; और कोई आदमी पुण्य कर रहा है, तो इससे परेशान मत हो जाओ। वे सभी लोग अपने-अपने कर्मों के अनुसार चल रहे हैं।
इसमें एक बात और बड़ी सोच लेने जैसी है। क्योंकि वह विचारणीय हो गई है
इस सदी में--ईसाइयत के कारण। ईसाइयत ने इस बात पर बहुत जोर दिया है कि दूसरे को, जो दुखी है, उसकी सेवा करो। उसके दुख को मिटाओ। उसके दुख को कम करो। दूसरे का सुख बढ़ाओ। ऐसी सेवा की धारणा ही धर्म है।
ईसाइयत के प्रभाव में... राजा राममोहनराय, केशवचंद्र, विवेकानंद, गांधी, ये सारे लोग ईसाइयत के भारी प्रभाव में थे--कहना चाहिए, बहुत गहरे अर्थों में ईसाई थे। इन सारे लोगों ने कहा कि सेवा धर्म है। और इन सारे लोगों ने कहा कि अगर कोई दुखी है, तो उसके दुख को मिटाने की कोशिश करो। महावीर कहते हैं कि कोई दुखी है, तो वह अपने कारण से दुखी है। तुम उसका दुख मिटा नहीं सकते। तुम्हारे दुख मिटाने का कोई उपाय कारगर नहीं हो सकता। इसका यह अर्थ नहीं है कि तुम दुख मिटाने की कोशिश मत करो। यह बहुत सोचने जैसा सूक्ष्म बिंदु है। महावीर कहते हैं कि तुम दूसरे का दुख तो मिटा नहीं सकते--इसका यह मतलब नहीं है कि तुम दूसरे का दुख मिटाने की कोशिश मत करो। तुम अगर दूसरे का दुख मिटाने की कोशिश कर रहे हो, तो इससे तुम्हारा अपना दुख मिट सकता है। यह चेष्टा कि तुम दूसरे को सुखी करने का उपाय कर रहे हो, इससे कोई दूसरा सुखी नहीं हो सकता--लेकिन यह भाव कि दूसरा सुखी हो, तुम्हें सुख की तरफ ले जाएगा। और यह भाव ही कि दूसरा दुखी न हो, तुम्हारे अपने दुखों से तुम्हें छुटकारा दिलाएगा। दूसरे से इसका कोई संबंध नहीं है, संबंध तुमसे ही है। लेकिन बड़ी भूल हुई।
एक तरफ तो यह हुआ कि जैनों में एक संप्रदाय पैदा हुआ, तेरापंथ; जो कहता है, दूसरे के दुख को मिटाने की कोशिश ही मत करना, क्योंकि महावीर कहते हैं, वह अपना दुख भोग रहा है। इसलिए तेरापंथ ने बड़ी बेहूदी धारणाएं विकसित कीं, बेहूदी से बेहूदी, जो धर्म के इतिहास में पैदा हो सकती हैं। अगर कोई आदमी भूखा मर रहा है, तो तुम उसमें बाधा मत डालना। वह अपन कर्मों का फल भोग रहा है। कोई आदमी बीमार है; कोढ़ से सड़ रहा है, तुम सेवा में मत पड़ना। क्योंकि तुम क्या कर सकते हो! वह अपना कर्म-फल भोग रहा है।
बात बिल्कुल सच है। वह अपना कर्म-फल भोग रहा है। तुम क्या कर सकते हो!
और यह भी संभावना है कि तुम उसके कर्म-फल के बीच में व्यवधान बन जाओ और उसको ठीक से कर्म-फल न भोगने दो; तो जो वह अभी भोग लेता, वह उसे कल भोगना पड़े जब तुम हट जाओगे। इसलिए तुम चुपचाप अपने रास्ते पर चलना। प्रत्येक व्यक्ति अपने भीतर से जी रहा है, तुम बीच में बाधा मत डालना।

इसलिए तेरापंथ ने अहिंसा के नाम पर एक बड़ा हिंसक रुख पैदा किया। बात
तो बिल्कुल तर्कयुक्त है कि अगर हर व्यक्ति अपने ही कर्म भोग रहा है, तो आप कौन हैं? और आप क्या कर सकते है? तो करने की फिजूल झंझट में क्यों पड़ते हैं? इतनी शक्ति और श्रम अपनी ही साधना में लगाएं; दूसरे की तरफ उन्मुख मत हों।
तो तेरापंथ में सेवा का कोई उपाय नहीं है। और सेवा करने वाला अज्ञानी है--पापी भी हो सकता है; क्योंकि दूसरे में दखलंदाजी करनी, दूसरे को बाधा डालनी एक तरह का पाप है।
महावीर के तर्क से यह बात निकली है। दूसरी तरफ ईसाइयत का तर्क है, जो कहती है दूसरे की सेवा करो और दूसरे को सुखी करने की कोशिश करो। तुम सुखी कर सकते हो। वह भी गलत है। आज तक दुनिया में कोई किसी को सुखी नहीं कर पाया। अक्सर तो यह भी हो जाता है कि सुखी करने की कोशिश में आप किसी को और दुखी कर देते हैं। और कोई किसी का दुख भी नहीं छीन सकता, क्योंकि दुख आते हैं भीतरी कारणों से। बाहर कोई उपाय नहीं है।
लेकिन ध्यान रहे, ईसाइयत की इस धारणा में एक खतरा और भी छिपा है। और वह
यह कि अगर मुझे यह ख्याल आ जाए कि मैं अपने कर्मों से किसी को सुखी कर सकता हूं और किसी को दुखी कर सकता हूं, तो इसी का अनुसांगिक तर्क भी है कि दूसरे अपने कर्मों से मुझे सुखी और दुखी कर सकते हैं। तब सारी बात अस्त-व्यस्त हो जाएगी। क्योंकि अगर दूसरे मुझे सुखी और दुखी कर सकते हैं, तो मेरे मुक्त होने का कोई उपाय नहीं है। अगर मोक्ष में भी आप पहुंच जाएं और मुझे दुखी करने लगें, तो मैं क्या करूंगा? और मोक्ष में भी तो कुछ लोग होंगे ही, जो सेवा भी करना चाहेंगे। क्या करूंगा मैं?
महावीर का तर्क बहुत शुद्ध है। महावीर कहते हैं, दूसरा कुछ भी नहीं कर सकता, यह तुम्हारी मुक्ति का आधार है। तो ही आत्मा मुक्त हो सकती है, अगर दूसरा बिल्कुल असमर्थ है कुछ करने में। नहीं तो आत्मा के मुक्त होने का कोई उपाय नहीं। इसलिए महावीर ने ईश्वर को भी अलग हटा दिया अपनी धारणा से और कहा कि अगर ईश्वर है तो मुक्ति का कोई उपाय नहीं है।
लोग सोचते हैं कि ईश्वर के बिना मुक्ति कैसे होगी! और महावीर कहते हैं
कि अगर ईश्वर है तो मुक्ति का कोई उपाय नहीं है। क्योंकि वह गड़बड़ कर सकता है। वह परम शक्तिशाली है। उसी ने तुम्हें बनाया, वह तुम्हें मिटा सकता है। वह तुम्हें गुलाम कर सकता है। वह तुम्हें मुक्त कर सकता है। उसकी प्रार्थना-पूजा से तुम मुक्त हो सकते हो, तो फिर मुक्ति का कोई अर्थ नहीं। जो मोक्ष प्रार्थना से मिल सकता है, वह मोक्ष नहीं है--हो नहीं सकता। क्योंकि कोई दूसरा जिसे दे रहा है, वह मेरी मुक्ति नहीं है। और जब दूसरा दे सकता है, तो दूसरा वापस भी ले सकता है।
इसलिए महावीर ने कहा, जब तक ईश्वर की धारणा है, तब तक जगत में मोक्ष का कोई उपाय नहीं है। इसलिए ईश्वर को अलग कर दिया बिल्कुल, और प्रत्येक व्यक्ति को आंतरिक रूप से नियंता घोषित किया कि तुम जो भी कर रहे हो, जो भी भोग रहे हो, जो भी पा रहे हो, नहीं पा रहे हो--तुम ही कारण हो।
व्यक्ति मूल कारण है अपने जीवन का, बाकी सब निमित्त हैं। लेकिन इसका
यह अर्थ नहीं जैसा तेरापंथ ने लिया है। जिन्होंने तेरापंथ की धारणा विकसित की, वे जरूर वे ही लोग होंगे, जो महावीर को ठीक से नहीं समझ पा रहे हैं।
दूसरे की सेवा करने का भाव, दूसरे को सुख में ले जाएगा ऐसा नहीं है; लेकिन तुम्हारा श्रम तुम्हें सुख में ले जाएगा। दूसरे को दुखी करने से दूसरा दुखी होगा--ऐसा नहीं, लेकिन दूसरे को दुखी करने की वासना स्वयं का दुख निर्मित करती है।
कृष्ण ने गीता में कहा है कि आत्मा मरती नहीं। तो अर्जुन को कहा है कि
तू मार बेफिकरी से, क्योंकि कोई आत्मा मरती नहीं। इसलिए अहिंसा का और हिंसा का कोई सवाल ही नहीं उठता। महावीर भी कहते हैं, आत्मा मरती नहीं; कोई मार सकता नहीं। पर महावीर हिंसा-अहिंसा का बड़ा सवाल उठाते हैं।
कृष्ण की दलील समझने जैसी है। कृष्ण कहते हैं, जब कोई मारा ही नहीं जा सकता, तो लोगों को यह समझाना कि मत मारो, मूढ़तापूर्ण है। जब मारने का कोई

उपाय ही नहीं है, तो यह कहने का क्या अर्थ है कि मत मारो! और अगर कोई नहीं भी मार रहा है तो कौन सा गुण उपलब्ध कर रहा है। क्योंकि मार सकता कहां है? जब हम एक आदमी को काटते हैं, तो शरीर ही कटता है। वह मरा ही हुआ है। उसको मारने का कोई उपाय नहीं है। आत्मा कटती नहीं।
कृष्ण कहते हैंः न हन्यमाने शरीरे। काटो कितना ही, तो भी कटती नहीं। छेदो तो छिदती नहीं। जलाओ तो जलती नहीं। तर्क कृष्ण का बहुत साफ है कि जब कोई मारने से मरता ही नहीं, मारा नहीं जाता, तो अर्जुन, तू फिजूल की बकवास में क्यों पड़ा है कि लोग मर जाएंगे? यह अज्ञान है।
बड़ा कठिन है। महावीर भी जानते हैं कि आत्मा मरती नहीं; आत्मा मिट नहीं सकती। सच तो यह है कि कृष्ण से भी ज्यादा महावीर का मानना है कि आत्मा को मिटाने का कोई उपाय नहीं है। क्योंकि कृष्ण तो कहते हैं, परमात्मा की लीला है कि वह बनाता है और चाहे तो मिटा सकता है। महावीर के लिए तो कोई मिटाने वाला भी नहीं है। परमात्मा भी नहीं है। आदमी की तो सामर्थ्य नहीं है। आत्मा को न कोई पैदा करता है, और न कोई मिटा सकता है। आत्मा शाश्वत है; अमृतत्व उसका गुण है। फिर भी महावीर कहते हैं--हिंसा और अहिंसा। तो समझ लें इस संदर्भ में।
महावीर कहते हैं कि जब तुम हिंसा करते हो, तो तुम दूसरे को नहीं मारते, लेकिन हिंसा के भाव से खुद के लिए दुख पैदा करते हो। तुम मारने की धारणा बनाते हो, उस धारणा से ही तुम पीड़ित होते हो। दूसरे के मरने से पाप नहीं होगा। क्योंकि दूसरा मर नहीं सकता। लेकिन तुमने पाप करना चाहा। तुम पाप के विचार से भरे। तुमने दूसरे को नुकसान पहुंचाना चाहा; उसका जीवन छीन लेना चाहा। तुम नहीं छीन पाते। यह तुम्हारे हाथ की बात नहीं है। यह जगत का नियम है। लेकिन तुमने अपनी पूरी कोशिश की। उस कोशिश, उस विचार, उस भावना, उस वासना, उस दुष्ट वासना के कारण तुम अपने लिए दुख पैदा करोगे। हिंसा दुख लाएगी--दूसरे के लिए मृत्यु नहीं, तुम्हारे लिए दुख। अहिंसा दूसरे को बचाएगी नहीं, क्योंकि दूसरा बचा हुआ है अपने आंतरिक जीवन से। कोई उसे बचा नहीं सकता। लेकिन दूसरे को बचाने की धारणा तुम्हारे जीवन में सुख के फूल खिलाएगी।
महावीर कहते हैं, तुम जो भी करते हो, वह तुम्हीं को हो रहा है; और निरंतर तुम्हीं को होता चला जाता है। तो दूसरे कैसे हैं--अच्छे या बुरे-- इसका विचार नहीं करना। अच्छे हैं तो अपने कारण; बुरे हैं तो अपने कारण। यह उनकी निजी बात है। इससे दूसरों को कोई लेना-देना नहीं है। वे नरक जाएंगे कि स्वर्ग जाएंगे, यह उनकी चिंता है। इसमें दूसरों को चिंता लेने का कोई कारण नहीं है।
जो दूसरों की चिंता छोड़ कर अपने सुधार की चिंता करता है।
हम सारे लोग बड़े सुधारक हैं। हम जैसा सुधारक खोजना मुश्किल है। हम सारे जगत को भी सुधारने में लगे रहते हैं--सिर्फ अपने को छोड़ कर। और अपने को सुधारने का कोई सवाल ही नहीं है। क्योंकि वहां हम सोचते हैं, सुधरे ही हुए हैं। सारा जगत बिगड़ा हुआ मालूम पड़ता है। इसलिए सुधारो। इसलिए सुधार करने वाले लोग जितना मिस्चीफ पैदा करते हैं दुनिया में, कोई दूसरा पैदा नहीं करता। ये असली उपद्रवी हैं। ये किसी को चैन से नहीं रहने देते। ये सभी को बदलने में लगे हैं। ये हर हालत में बदल के रहेंगे। इनका रस सचमुच बदलने में नहीं है कि कोई अच्छी दुनिया पैदा हो। इनका रस बदलने की प्रक्रिया में है। क्योंकि जब ये बदलते हैं किसी को, तो तोड़ते हैं; मिटाते हैं; नया करते हैं। दूसरा खिलौना हो जाता है, ये मालिक हो जाते हैं।
असल में दूसरों को बदलने के लिए जो बहुत आतुर हैं, वे हिंसक हैं। जो अपने को बदलने को आतुर हैं, वे साधु हैं। और बड़े मजे की बात यह है कि जो अपने को बदल लेता है, उसके पास बहुत से लोग बदलना शुरू हो जाते हैं। और जो दूसरे को बदलना चाहता है, उसके पास कोई नहीं बदलता। साधुओं के आश्रम में जाकर देखें, जहां बदलने की भयंकर चेष्टा चलती है। वहां कोई बदलता दिखाई नहीं पड़ता।
गांधी जी अपने आश्रम में ब्रह्मचर्य को बड़े जोर से थोपते थे। लेकिन रोज उपद्रव खड़ा होता था। ब्रह्मचर्य कभी फलित नहीं हुआ। खुद उनके निजी,

प्राइवेट सेक्रेटरी प्यारेलाल उलझ गए। ब्रह्मचर्य मुश्किल था। और गांधी की चेष्टा भारी थी। जितने जोर से थोपा जा सके ब्रह्मचर्य, उतना थोप देना। लेकिन वह हुआ नहीं। और गांधी ने जो-जो थोपना चाहा अपने शिष्यों पर, शिष्य ठीक उसके विपरीत चले गए। इधर पिछले तीस साल का इतिहास कहता है। जो-जो उन्होंने चाहा था, शिष्य उसके उलटे गए--सादगी चाही थी, तो भोग पैदा हुआ; चाहा था दीन-दरिद्र, संन्यस्त की तरह रहें, वह नहीं को सका। ब्रह्मचर्य का तो कोई सवाल ही नहीं है।
कहां भूल है?
दूसरे को बदला नहीं जा सकता। असल में जब हम बदलने की बहुत कोशिश करते हैं, तो दूसरे के अहंकार में प्रतिरोध पैदा होता है, रेसिस्टेंस पैदा होता है।
मनस्विद कहते हैं कि दुनिया में अच्छे बच्चे पैदा हो सकते हैं, अगर मां-बाप अच्छा बनाने की थोड़ी कोशिश कम करें। वे इतना अच्छा बनाने की कोशिश करते हैं, कि बच्चों को बिगाड़ देते हैं। इसलिए अच्छे बाप का अच्छा बेटा पाना बड़ा मुश्किल है--कभी बुरे बाप का अच्छा बेटा हो भी जाए।
एक शराबी का बेटा साधु हो जाए, यह हो सकता है। साधु का बेटा शराबी न हो,
यह जरा मुश्किल है। बहुत मुश्किल है। खुद महात्मा गांधी का बेटा, हरिदास, ठीक उलटा गया। और हरिदास कीमती आदमी था; और कीमती था इसलिए उलटा गया। बाकी मिट्टी के थे। मिट्टी के पुतलों को आप कैसा भी बना दें, ढाल दें, वे कुछ इनकार न करेंगे। लेकिन जिंदगी इनकार करेगी; लड़ेगी, क्योंकि जिंदगी का लक्षण प्रतिरोध है।
हरिदास ने इनकार किया। तो हरिदास मुसलमान हो गए; शराब पीने लगे। अपना नाम उन्होंने रख लिया, अब्दुल्ला गांधी। वह गांधी के विपरीत जा रहा है। और जाने का कारण गांधी की चेष्टा में है। गांधी की पूरी चेष्टा है। गांधी कहते हैं, हिंदू-मुसलमान सब एक हैं। तो हरिदास हो गया मुसलमान। और जब उसे पता चला कि गांधी पीड़ित हुए, तो उसने कहा कि पीड़ित होने की क्या बात है? हिंदू-मुसलमान सब एक, तो पीड़ित होने की क्या बात है? और हरिदास शराब पीने लगा। और गांधी पीड़ित हुए। बाप पीड़ित होगा ही। और बाप की बड़ी इच्छा थी कि अच्छा बना ले। भली इच्छा है। इच्छा में कुछ बुराई भी नहीं है। लेकिन विज्ञान का बोध नहीं है।
तो हरिदास ने कहाः जब प्रत्येक व्यक्ति स्वतंत्र है, तो मैं क्या करता हूं, क्या नहीं करता हूं, यह मेरी बात है। इससे किसी को क्या लेना- देना? और इतनी आसक्ति क्यों रखते हैं मुझ पर वे कि मेरा बेटा है? यह भी ममत्व है। मेरा बेटा बुरा न हो जाए, इसमें भी अहंकार है। मेरा बेटा अच्छा हो, इसमें भी अहंकार है।
हरिदास लड़ रहा है एक भले बाप से। सभी हरिदास लड़ते हैं। भले बाप खतरनाक होते हैं। क्योंकि वे भला करने की इतनी चेष्टा करते हैं कि प्रतिरोध पैदा कर देते हैं।
महावीर कहते हैं, साधु दूसरे को बदलने की चिंता में नहीं पड़ता। इसका
यह मतलब नहीं कि उसकी शुभाकांक्षा नहीं है। लेकिन महावीर गणित को जानते हैं जीवन के। शुभाकांक्षा तभी कारगर हो सकती है, जब आक्रमक न हो। और जब मैं दूसरे को बदलना चाहता हूं, तो मैं आक्रमक हूं; हिंसक हूं। आखिर दूसरा दूसरा है। उसकी अपनी निजी जीवन की धारा है। अगर मुझे कुछ ठीक लगता है तो वैसा मैं हो जाऊं। अगर मेरे होने से वह आंदोलित और प्रभावित हो तो ठीक, और न हो तो मेरे वश के बाहर है। फिर मैं हूं कौन? फिर मैं कौन हूं कि किसी को ठीक करने का जिम्मा अपने सिर लूं। यह अहंकार ही हो सकता है, अच्छे आदमी का अहंकार--कि दूसरे को भी मैं मेरे जैसा बना लूं। लेकिन क्यों? मेरी अपनी आत्मा है, उसकी अपनी आत्मा है। और दोनों की अपनी परम सत्ता है। महावीर कहते हैं कि जो अपने को बदलने की फिकर करता है; जो दूसरों की निंद्य चेष्टा भी हो, उसे लगता भी हो कि बिल्कुल गलत हो रहा है, तो भी उसकी निंदा में नहीं पड़ता।
एक ही उपाय है साधु के पास--अनाक्रमक जीवन। उसके जीवन की ज्योति ऐसी होनी चाहिए कि कोई प्रभावित हो, तो हो जाए। और कोई पतंगे होंगे ज्योति के

तो चले आएंगे ज्योति की तरफ। और कोई ज्योति फिरे पतंगों के पीछे उनको पकड़ने को, तो पतंगे कोई आते भी होंगे, फिर दुबारा नहीं आएंगे। क्योंकि ऐसी ज्योति भरोसे की नहीं है, जो पतंगों का पीछा कर रही है कि आओ। ज्योति का मतलब ही यह है कि वह है तो पतंगे आ जाएंगे।
ज्योति की तरह अनाक्रमक, अनाग्रह से जीता हुआ, अपने को बदलता हुआ, अपने को रूपांतरित करता हुआ व्यक्ति साधु है।
"जो अपने आपको उग्र तप और त्याग आदि के गर्व से उद्धत नहीं बनाता, वही भिक्षु है।"
यह शर्त ध्यान रखना जरूरी है, क्योंकि गर्व सब तरह से उद्धत होना चाहता है; कई उपाय खोजता है। मैं त्यागी हूं; मैं भोगी नहीं हूं; मैं ध्यानी हूं; मैं समाधिस्थ हो गया--ये सारे जाल हैं जो अहंकार भीतर की तरफ फैलाता है। बाहर की संपदा छोड़ दी, तो अब भीतर की संपदा पैदा हो रही है। बाहर के खजाने छोड़ दिए, तो अब भीतर के खजाने पैदा हो रहे हैं।
साधकों के पास जाएं, तो वे सब फिकर रखते हैं कि कौन किस चक्र तक जाग गया। किसकी कुंडलिनी कितनी जाग्रत हुई--सहस्रार तक पहुंची या नहीं पहुंची। वे सब हिसाब रखते हैं। एक दूसरे से सर्टिफिकेट मांग रहे हैं कि मैं कहां तक पहुंच गया। सिद्ध हो गया कि नहीं हो गया? क्या प्रयोजन है? अस्मिता को निर्मित करना ही असाधुता है। वह किस कारण निर्मित होती है, यह सवाल नहीं है। उसे निर्मित होने देना कि मैं कुछ हूं, दूसरों से खास, दूसरों से ऊपर... ।
बस, मेरा खास होना ही रोग है। और यह रोग सूक्ष्म है। यह दिखाई नहीं पड़ता, और बढ़ता चला जाता है। और जैसे-जैसे दूसरे लोग आदर देने लगते हैं, वैसे-वैसे पक्का होने लगता है कि बात ठीक ही है, तभी तो लोग आदर दे रहे हैं। लोग चरणों पर सिर रख रहे हैं--कुछ हो गया है तभी तो। जरूरी नहीं है। कई लोगों की जरूरत है कि वे चरणों पर सिर रखे। उन्हें बिना रखे चैन नहीं है। कुछ लोग हैं जिन्हें झुकने में रस है। उन्हें बिना झुके आनंद नहीं आता। आप इसकी फिकर मत करें कि वे आपके लिए झुक रहे हैं। आप यही जानें कि उनको झुकने में कुछ रस होगा; कोई व्यायाम होगा। वे अपने लिए झुक रहे हैं। यह उनकी अपनी निजी बात है, मुझसे कुछ लेना-देना नहीं है।
लेकिन वहम पैदा होता है। वहम पैदा हो जाता है, क्योंकि चारों तरफ हजार तरह की बीमारियों से भरे हुए लोग हैं। वे साधु को उद्धत कर देते हैं। और एक दफा अहंकार निर्मित होने लगे, तो फिर उसकी कोई सीमा नहीं है। फिर बढ़ता चला जाता है। जैसे-जैसे भरोसा बढ़ने लगता है कि लोग झुक रहे हैं, लोग आदर दे रहे हैं, जरूर मैं कुछ हूं, वैसे-वैसे कठिनाई शुरू हो जाती है।
मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन एक यात्री के साथ ट्रेन में बैठा हुआ था। कुछ बात चलाने के सिलसिले में उसने पूछा कि जरा आपका हाथ देखूं। आदमी उत्सुक हो गया।
हाथ दिखाने को सभी उत्सुक हैं। ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है, जो भविष्य में उत्सुक न हो। भविष्य में वही उत्सुक नहीं होगा, जिसकी कोई वासना नहीं है। जिसकी वासना है, वह भविष्य में उत्सुक होगा ही। इसलिए हाथ देखने से सुविधापूर्ण मित्रता का उपाय और नहीं है।
मुल्ला ने हाथ गौर से देखा और उस आदमी का चेहरा देखा, और कहा कि मालूम होता है, यू आर ए बैचलर--आप ब्रह्मचारी हैं।
वह आदमी चकित हुआ। उसने कहाः अमेजिंग! यह सच है कि मैं अभी तक ब्रह्मचारी हूं। तुमने कैसे पता लगाया?"
नसरुद्दीन की हिम्मत बढ़ी। उसने कहा कि पता? मनुष्य स्वभाव का मुझे अनुभव है। और यहीं तक नहीं, आइ कैन सी इवन फरदर, योर फादर वा.ज आल्सो ए बैचलर--यह कुछ नहीं है, आगे तक देख सकता हूं कि तुम्हारा बाप भी ब्रह्मचारी था।
जरा सी हिम्मत बढ़ी कि आदमी ने उपद्रव शुरू किया। और चारों तरफ लोग हैं, जो आपकी हिम्मत बढ़ाने को तैयार हैं। आप उनसे सावधान रहना। महावीर यही कह रहे हैं। वे यह कह रहे हैंः साधु, सावधान रहना दूसरे लोगों से, क्योंकि वे अपनी बीमारियों से पीड़ित हैं।

कोई झुकना चाहता है। ढेर लोग हैं, जो इनफिरियारिटी काम्लेक्स से पीड़ित हैं--जिनको हीनता की ग्रंथि है। जो सीधे खड़े हो ही नहीं सकते। जिनको सीधा खड़ा होने में डर लगता है। तो उन्होंने एक डिफेंस मेजर, एक सुरक्षा का उपाय बना लिया है--झुको। झुकने से दूसरा आदमी आक्रमण नहीं करता। क्योंकि जैसे ही कोई आदमी झुक गया, दूसरे को आक्रमण करने का मजा ही चला गया।
तो कुछ लोग झुके हुए ही जी रहे हैं। उनका झुका हुआ होना उनकी बीमारी है। साधु-संन्यासियों को वे मिल जाते हैं। जगह-जगह वे मौजूद हैं। एकदम झुक जाते हैं। फिर कुछ लोगों में अपराध का भाव है, गिल्ट काम्प्लेक्स है, जो अपने को अपराधी मानते हैं। अकारण भी नहीं, जीवन में बहुत अपराध हैं। आदमी अपराधों से भरा हुआ है।
तो अपराधी आदमी हमेशा अपने को झुकाना चाहता है। झुकना एक तरह का कनफेशन है, एक तरह की स्वीकृति है कि मैं अपराधी हूं; पापी हूं। लेकिन दूसरा आदमी इससे गौरवान्वित समझता है। वह समझता है कि जो आदमी झुक रहा है, वह यह कह रहा है कि तुम ऊपर हो, इसलिए मैं झुक रहा हूं।
यह आदमी झाड़ के नीचे झुकता है। यह आदमी पत्थर के सामने झुकता है। यह आदमी नदी के सामने झुकता है। इसका भरोसा मत करना। इसे कुछ प्रयोजन आपसे नहीं है। यह झुकने के बहाने, निमित्त खोजता है। यह किसी को आदर देना चाहता है, क्योंकि यह अपने को आदर नहीं दे पाता। और आदर की एक भूख रह जाती है। किसी को सम्मान देना चाहता है, क्योंकि अपने प्रति सम्मानित नहीं है। साधु अपना त्याग, अपनी साधना, तप, इनके कारण उद्धत न हो जाए; अहंकार पोषित न करे; विनम्र बना रहे। विनम्र का मतलब, ना-कुछ बना रहे। कुछ भी उसके चारों तरफ होता रहे, वह कभी भी अपने को किसी से श्रेष्ठता की स्थिति में न रखे।
"जो जाति का, रूप का, लाभ का, श्रुत (पांडित्य)का अभिमान नहीं करता; जो सभी प्रकार के अभिमानों का परित्याग कर केवल धर्म में, ध्यान में रत रहता है, वही भिक्षु है।"
"जो महामुनि सद्धर्म का उपदेश करता है; जो स्वयं धर्म में स्थित होकर दूसरों को भी धर्म में स्थित करता है; जो घर-गृहस्थी के प्रपंच से निकल कर सदा के लिए कुशील लिंग (निन्द्यवेश)को छोड़ देता है; जो किसी के साथ हंसी- ठट्ठा नहीं करता, वही भिक्षु है।"
यहां कुछ बड़ी कीमती और सूक्ष्म बातें हैं। जो व्यक्ति अहंकार से भरा है, वह ध्यान न कर पाएगा। उसकी चिंतना सदा अहंकार के आस-पास ही घूमती रहेगी। वह सोचेगा और सिंहासनों के लिए, और पदों के लिए, और प्रतिष्ठा के लिए। उसका चित्त अहंकार की ही बढ़ती... अहंकार की ही सीढ़ियां गिनने में लगा रहेगा। ध्यान में तो वही व्यक्ति प्रविष्ट हो सकता है, जिसने अहंकार की सीढ़ियां तोड़ दी हैं; जिसको अब अहंकार की यात्रा नहीं है; जिसका अहंकार का पथ बंद हो गया, और जिसने कहा, इस ओर जाना नहीं है।
अहंकार में जाने का अर्थ हैः बाहर जाना। क्योंकि अहंकार की तृप्ति दूसरे कर सकते हैं।
ध्यान रहे, अगर आप जंगल में अकेले हैं, तो अहंकार की तृप्ति नहीं हो सकती। अहंकार की तृप्ति के लिए दूसरा चाहिए। इसलिए अहंकार बंधन है। क्योंकि दूसरे के बिना हो ही नहीं सकता। अहंकार गुलामी है, क्योंकि दूसरे पर निर्भर होना पड़ता है--दूसरे की आंख, दूसरे का इशारा, दूसरे का ढंग, दूसरे की बात। इसलिए साधु चिंतित रहता है--जिसको हम साधु कहते हैं। महावीर उसे साधु नहीं कहते। जिसको हम साधु कहते हैं, वह चिंतित रहता है कि आपको उसकी किसी बात में गलती तो नहीं लग रही है, कुछ पता तो नहीं चल रहा है; आप ऐसा तो नहीं सोचेंगे, वैसा तो नहीं सोचेंगे।
एक तेरापंथी साधु मेरे पास ध्यान करने आए। तो मैंने उनसे कहा कि श्वास काफी तेज लेनी होगी, आप यह मुंह-पट्टी निकाल कर ध्यान करें। तो उन्होंने कहाः निकाल तो लूंगा लेकिन आप किसी को बताना मत। मुंह-पट्टी तो उन्होंने मजे से निकाल दी। उन्हें कोई अड़चन भी नहीं हुई निकालने में। खुद भी अड़चन हो, तो मेरी समझ में आती है बात। उन्होंने कहाः मेरी निजी अनुभूति

यह है कि मुंह-पट्टी निकालनी मुझे सहायता दे रही है, लेकिन चिंता सिर्फ इतनी है कि किसी को पता न चले।
किसी को पता न चले, यह असाधु की चिंता है। साधु को दूसरे से प्रयोजन नहीं है। दूसरा निंदा ही करेगा। दूसरा सम्मान नहीं देगा। दूसरा सिर नहीं झुकाएगा। पर उसे झुकाने की जरूरत ही कहां है? प्रयोजन ही नहीं है। साधु की चिंता नहीं है कि दूसरा क्या कहेगा। पब्लिक ओपिनियन असाधु की चिंता है। राजनैतिक नेता चिंता करे कि दूसरे क्या कहेंगे--समझ में आता है। क्योंकि सारी जिंदगी दूसरे पर निर्भर है; उसके वोट पर सारी आत्मा टिकी है। लेकिन साधु को दूसरे से कोई प्रयोजन नहीं है। लेकिन हम देखते हैं, जिसे हम साधु कहते हैं, उसे भी दूसरे से प्रयोजन है। वह भी राजनीति का ही हिस्सा है। धर्म से उसका कोई लेना-देना नहीं रहा है।
महावीर कहते हैं, जो अभिमान, अहंकार, दूसरों की धारणा को छोड़ देता है, वही ध्यान की तरफ लीन हो सकता है। क्योंकि अहंकार ले जाता है बाहर, दूसरे के पास; ध्यान ले जाता है भीतर, अपने पास। साधु वही है, जो ध्यान में लीन है। असाधु वही है, जो अभिमान में लीन है। ध्यान और अभिमान विपरीत आयाम हैं।
"जो महामुनि आर्यपद का उपदेश करता है, सद्धर्म का उपदेश करता है... ।"
और महावीर सद्धर्म किसे कहते हैं? महावीर सद्धर्म उसे कहते हैं, जो स्वयं अनुभूत है। अन्यथा पांडित्य है। अन्यथा उधार है, बासा है।
सत्य बासा नहीं हो सकता। सत्य उधार नहीं हो सकता। और अगर उधार है, तो सत्य नहीं होगा। आप गीता कंठस्थ कर ले सकते हैं, लेकिन आप गीता को कंठस्थ करके जो लोगों को उपदेश देंगे, वह सद्धर्म नहीं होगा--जब तक आप कृष्ण न हो जाएं। जब तक गीता आपसे सहज-स्फूर्त न होने लगे, तब सद्धर्म होगा। सदगुरु जहां नहीं है, वहां सद्धर्म नहीं हो सकता।
तो साधु का लक्षण है कि उधार को न समझाए; बासे को न समझाए; पिटे-पिटाए
को न समझाए; कचरे को न समझाए। वह कचरा कभी बहुमूल्य रहा होगा--कभी, जब पहली दफे जन्मा था। लेकिन हमारी हालतें ऐसी हैं...
मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन हर सर्दियों में वहीं कोट पहनता है। ऐसा लोग पचास साल से देख रहे हैं। वह कोट इतना गंदा गया है, उससे ऐसी बास आती है। थेगड़े निकल गए हैं। बिल्कुल खंडहर है कोट के नाम पर। आखिर एक दिन एक मित्र ने कहा कि नसरुद्दीन, तुम्हारे बाप को भी हमने देखा है। क्या शानदार आदमी थे! क्या कपड़े पहनते थे! दूर-दूर से कपड़े मंगवाते थे! और तुम यह कोट ही पहन रहे हो?
नसरुद्दीन ने कहा कि लो, यह वही कोट तो है जो मेरे बाप पहनते थे!
महावीर जब कुछ कहते हैं तो वह जीवित है। जब जैन पंडित दोहराता है, तो मुर्दा है--वही कोट है, माना।
महावीर कहते हैं, सद्धर्म का उपदेश करता है साधु। सद्धर्म से अर्थ है--जिसे जाना हो, जीया हो; जो जीवंत हो गया हो; जो सत्य बन गया स्वयं के लिए। जो स्वयं के लिए सत्य नहीं है, वह दूसरे के लिए सत्य कैसे हो सकता है? जो मेरे लिए बासा है, वह आपके लिए और भी बासा हो गया। एक हाथ और चल गया। लोग दूसरे के जूते में पैर डालना पसंद नहीं करते! उधार जूता कौन पहनना पसंद करेगा? लेकिन लोग दूसरे की आत्माएं पहन लेते हैं। जूते तक से डरते हैं, लेकिन आत्माएं पहन लेने में उन्हें कठिनाई नहीं होती।
साधु नहीं पहनेगा। साधु खोज करेगा। और निश्चित ही जब कोई अपने भीतर धर्म की लकीर की खोज कर लेता है, वह वही होगी जो महावीर की है, बुद्ध की है, कृष्ण की है। उसमें कोई भेद नहीं होने वाला है। लेकिन वह खोज अपनी होनी चाहिए।
हम सब ऐसे हैं, जैसे छोटे बच्चे हों। उनकी गणित की किताब होती है, पीछे उत्तर लिखे होते हैं--जल्दी से किताब उलटा कर पीछे देख लेते हैं। उत्तर तो हाथ में आ जाता है, लेकिन विधि हाथ में नहीं आने से उत्तर का क्या मूल्य! और बच्चे उत्तर के हिसाब से विधि भी बना कर लिख देते हैं। मगर वह हमेशा गलत होती है--होगी ही। विधि की खोज जरूरी है, उत्तर तो अपने आप आ जाता है।

सद्धर्म का अर्थ हैः जिसने विधिपूर्वक स्वयं की साधना से जाना है; जो उसका ही उपदेश करता है, जो उसने जाना है।
ध्यान रहे, जगत में अधर्म कम हो जाए, अगर वे लोग उपदेश करना बंद कर दें जिन्होंने स्वयं नहीं जाना है। उनके कारण बड़ा उपद्रव है। दुनिया में अधर्म अधार्मिक लोगों के कारण नहीं है, मरे-मराए धार्मिक लोगों के कारण है। जिनके पास कोई जीवन की ज्योति नहीं है; जो भीतर अंधेरे से भरे हैं और जिनकी चर्चा में प्रकाश के शब्द तैरते रहते हैं; जिनके भीतर मृत्यु है और अमृत की बात करते हैं, उनसे अधर्म चलता है--अधार्मिक लोगों से नहीं चलता, झूठे धार्मिक लोगों से चलता है।
जो स्वयं धर्म में स्थित होकर दूसरों को धर्म में स्थित करता है--वह शर्त है, "जो घर-गृहस्थी के प्रपंच से निकल कर सदा के लिए कुशील लिंग को छोड़ देता है..." यह कुशील लिंग महावीर की समझने जैसी बात है। महावीर कहते हैं कि तुम जो भी पहनते हो वेश-भूषा, वह अकारण नहीं है। तुम्हारा प्रयोजन है; भीतर वासना है उससे।
एक वेश्या निकलती है सड़क पर, उसके कपड़े आमंत्रण देते हुए हैं। वह अपने शरीर को बेचने निकली है; शरीर को ढांकती नहीं कपड़ों से, उघाड़ती है। उसके कपड़े ढांकने का काम नहीं करते, प्रकट करने का काम करते हैं; शरीर को उछालते हैं। वेश्या वैसे चले, समझ में आता है। लेकिन एक स्त्री जो कहती है, मैं अपने पति के लिए ही हूं और सिवा मेरे पति के मेरे मन में कोई भी नहीं, वह भी वेश्या की तरह शरीर को उभार कर सड़क पर चलती है, तो समझने में अड़चन मालूम होती है।
क्योंकि वेश्या बाजार में खड़ी है, उसे ग्राहक को आमंत्रित करना है।
यह गृहिणी क्यों बाजार में वेश्या की तरह खड़ी है? कहीं अनजाने में, अचेतन में यह भी वेश्या है। इसका पति के साथ, एक के साथ संबंध ऊपरी है; ऊपर-ऊपर है; चेतन में है, अचेतन में नहीं है अचेतन में ये अभी भी दूसरे पुरुषों में उत्सुक है। दूसरे पुरुष आकर्षित हों तो इसे अच्छा लगता है। इसकी चाल तेज हो जाती है। कोई इसमें आकर्षित न हो तो यह धीमी हो जाती है। दूसरों का निमंत्रण इसके भीतर कहीं छिपा है।
महावीर कहते हैं, हम जो भी पहनते हैं, जिस ढंग से उठते-बैठते हैं, उस सब में हमारी वासना भीतर काम करती है। तो महावीर उस वेश को कुशील लिंग कहते हैं। जिससे शील पैदा न होता हो।
तो वस्त्र भी ऐसे हों, जो न तो खुद में वासना जगाते हों और न दूसरे में वासना जगाते हों। उठना-बैठना भी ऐसा हो, जो शरीर को उभारता न हो; आत्मा को प्रगट करता हो। लेकिन वासना से भरा हुआ चित्त जानता भी नहीं--अनजाने सब चलता है।
फ्रायड ने काफी विश्लेषण किया है। फ्रायड तो कहता है, हमारी कारें, लंबी कारें; फैलिक हैं। जननेंद्रिय के प्रतीक हैं--कि जब कोई लंबी कार, जो जननेंद्रिय की तरह लंबी है, उसमें तेजी से चलता है, तो वह वही आनंद अनुभव करता है, जो पुरुष स्त्री से संभोग में करता है।
यह बड़े मजे की बात है कि नपुंसक लोग गाड़ियां बड़ी तेजी से चलाना पसंद करते हैं। फ्रायड के जीवन भर के अनुभवों का सार यह है कि चूंकि नपुंसक के पास अपनी कामेंद्रिय नहीं है, वह किसी प्रतीक कामेंद्रिय के साथ जीना शुरू कर देता है। तो पश्चिम में कारें इत नी ज्यादा महत्वपूर्ण होती चली जाती हैं कि आदमी अपनी स्त्री की उतनी फिकर नहीं करता, जितनी अपनी कार की देखभाल करता है। एक दफा स्त्री खो भी जाए, तो दूसरी पा लेना बहुत आसान मालूम होता है। कार से मनुष्य का ज्यादा निजी संबंध हो गया है। पशुओं से संबंध हो जाते हैं, वस्तुओं से संबंध हो जाते हैं। लेकिन हमारी वासना हमारी हर चीज में चलती है।
मुल्ला नसरुद्दीन अपने मनसचिकित्सक के पास गया है, बेचैन है। और चिकित्सक पूछता है, तुम्हारी परेशानी क्या है? नसरुद्दीन कहता है कि क्षमा करें, आप बुरा तो नहीं मानेंगे? और मेरी बहुत निंदा तो नहीं करेंगे? मैं एक घोड़े के प्रेम में पड़ गया हूं। चिकित्सक ने कहा कि इसमें चिंता की कोई ऐसी बात नहीं है। बहुत लोग पशुओं से स्नेह-भाव रखते हैं। मैं खुद ही

मजाक हमारा बदला है। वह हम उससे लेते हैं, जिसके पीछे कोई पीड़ा सरक रही है। और उस पीड़ा को सीधा हल करने का उपाय नहीं होता, तो हम व्यंग निर्मित करते हैं।
लेकिन साधु, महावीर कहते हैं किसी का हंसी-ठट्ठा नहीं करे। उसका प्रयोजन क्या है? उसका प्रयोजन यह है कि उसकी किसी से प्रतिस्पर्धा नहीं है; प्रतियोगिता नहीं है। इसलिए कोई छिपा हुआ बदला लेने का सवाल भी कहां है! यह महावीर की बड़ी अंतर्दृष्टि है, जो फ्रायड के पहले कोई भी ठीक से पकड़ नहीं पाया।
दुनिया के किसी भी धर्मशास्त्र ने, साधु हंसी-मजाक न करे किसी का, ऐसा नियम नहीं बनाया। सिर्फ महावीर ने कहा कि साधु किसी से... ।
जरूर महावीर को बड़ी गहरी प्रतीति है कि आदमी किसी के प्रति जब व्यंग करे तो, करने का कारण भीतर छिपी हुई कोई हिंसा होती है। आप अपनी ही देखना, जब आप किसी का मजाक करने लगें, तो आप क्या चाह रहे हैं भीतर? आप उसको किसी तरह नीचे दिखाना चाहते हैं। और नीचे दिखाने का कोई सीधा रास्ता नहीं पा रहे हैं, इसलिए उलटा रास्ता पकड़ रहे हैं।
साधु अपनी हंसी-मजाक कर सकता है; अपने प्रति व्यंग कर सकता है। महावीर
ने जरूर बर्नार्ड शॉ को साधु कहा होता। बर्नार्ड शॉ एक दिन थिएटर में खड़ा है। उसका नाटक पूरा हुआ है। नाटक अदभुत था और सिर्फ एक आदमी को छोड़ कर पूरा हाल तालियां बजाया और प्रशंसा के स्वर से स्वागत किया। तभी वह आदमी खड़ा हुआ और उसने कहाः शॉ, योर प्ले स्टिंग्स--सड़ा हुआ है तुम्हारा नाटक, और बदबू आती है। एक क्षण को सन्नाटा हो गया। लोग भी चौंक गए कि अब क्या होगा। शॉ ने कहाः आई कंप्लीटली एग्री विथ यू, बट वॉट वी टू कैन डू अगेंस्ट दिस ग्रेट मैजार्टी--मैं राजी तुमसे पूरी तरह हूं, लेकिन हम दो करेंगे भी क्या इतने लोगों के खिलाफ?"
यह आदमी अपने पर हंस सकता है। अपने पर वही हंस सकता है, जो इतना आश्वस्त है अपने प्रति। दूसरे पर हंसने की चेष्टा, दूसरे को किसी तरह व्यंग के माध्यम से गिराने की चेष्टा, क्षुद्र मन का लक्षण है।
"इस भांति अपने को सदैव कल्याण-पथ पर खड़ा रखने वाला भिक्षु अपवित्र और क्षणभंगुर शरीर में निवास करना हमेशा के लिए छोड़ देता है तथा जन्म-मरण के बंधनों को सर्वथा काट कर अ-पुनरागमन-गति (मोक्ष) को प्राप्त हो जाता है।" जहां से वापस नहीं लौटा जा सकता--पाइंट ऑफ नो रिटर्न--उस स्थिति को उपलब्ध हो जाता है, जहां से वापस गिरना नहीं है। ऐसी जीवनचर्या में जीने वाला व्यक्ति धीरे-धीरे शरीर से भिन्न होने लगता है। उसे स्पष्ट होने लगता है कि मैं शरीर नहीं हूं, और चैतन्य के साथ तादात्मय जोड़ने लगता है। धीरे-धीरे दीये की खोल छूट जाती है, और सिर्फ ज्योति का स्मरण रह जाता है। इस ज्योति के साथ जब पूरी एकता सध जाती है, तो शरीर को पुनः ग्रहण करने की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती। मुक्त ज्योति--शरीर से मुक्त ज्योति का नाम मुक्ति है।
महावीर कहते हैं, ऐसी ज्योतियां लोक के अंतिम स्तल पर शाश्वत आनंद में लीन रहती हैं--आखिरी सीमा लोक की। महावीर जगत को दो हिस्सों में बाटते हैंः लोक और अलोक। लोक--जिसे हम जानते हैं; जिसका विज्ञान अध्ययन कर सकता है। और अलोक--जिसमें प्रवेश का कोई उपाय नहीं है।
इस संबंध में भी महावीर बड़े अदभुत हैं। क्योंकि अभी-अभी वैज्ञानिकों
ने खोज की है कि इस जगत के ठीक विपरीत एंटी-यूनिवर्स होना चाहिए। क्योंकि जगत में विपरीत के बिना कोई भी चीज नहीं हो सकती। तो हमारा यह जो जगत है, यह जो ब्रह्मांड है--सूर्य, चंद्र, तारों का--इससे ठीक विपरीत प्रक्रिया वाला कोई लोक होना चाहिए, जो इसके ठीक बगल में होगा। लेकिन जिसमें हम प्रवेश नहीं कर सकते। क्योंकि हमारे प्रवेश का सारा ढंग लोक में ही होगा। महावीर ने पच्चीस सौ साल पहले दो बातें कही हैं कि एक तो यह लोक है, जिसे हम जानते हैं; और एक अलोक है, जिसे हम कभी नहीं जान सकते। लेकिन उसका होना इसलिए जरूरी है कि जगत द्वंद्व के बिना नहीं होता। यह जो मुक्त आत्मा है, जो शरीर से छूट जाती है, यह लोक और अलोक के मध्य में, सीमांत पर ठहर जाती

है। लोक से इसका छुटकारा हो जाता है। यह पदार्थ और शून्य के बीच में अशरीरी चैतन्य सदा आनंद में लीन रह जाता है।
यह जो आनंद की शाश्वत धारा है, यह उन्हें ही उपलब्ध होती है जो क्रमशः अपने को क्षुद्र शरीर से, क्षणभंगुर शरीर से मुक्त करने की चेष्टा में रत रहते हैं। ऐसी चेष्टा में लगा हुआ व्यक्ति साधु है; और ऐसी चेष्टा की पूर्णता को पा लिया व्यक्ति सिद्ध है।

आज इतना ही।

महावीर-वाणी, भाग 2
चौबीसवां प्रवचन

पहले ज्ञान, बाद में दया (मोक्षमार्ग-सूत्रः 1)

कहं चरे? कहं चिट्ठे? कहमासे? कहं सए?
कहं भुंजन्तो भासन्तो पावं कम्मं न बंधइ?
जयं चरे जयं चिट्ठे जयमासे जयं सए।
जयं भुंजन्तो भासन्तो पावं कम्मं न बन्धइ।।
सव्वभूयप्पभूयस्य, सम्मं भयाइं पासओ।
पिहियासवस्स दन्तस्य पावं कम्मं न बंधइ।।
पढमं नाणं तओ दया, एवं चिट्ठइ सव्वसंजए।
अन्नाणी किं कही, किं वा नाहिइ छेय-पावगं?
सोच्चा जाणइ कल्लाणं सोच्चा जाणइ पावगं।
उभयं पि जाणइ सोच्चा,
जं छेयं तं समायरे।।

भंते! साधक कैसे चले? कैसे खड़ा हो? कैसे बैठे? कैसे सोए? कैसे भोजन करे? कैसे बोले--जिससे की पाप-कर्म का बंध न हो?
आयुष्मान! साधन विवेक से चले; विवेक से खड़ा हो; विवेक से बैठे; विवेक
से सोए; विवेक से भोजन करे; और विवेक से ही बोले, तो उसे पाप-कर्म नहीं बांध सकता।
जो सब चीजों को अपने समान समझता है, अपने-पराए, सबको समान दृष्टि से देखता है, जिससे सब आस्रवों का निरोध कर लिया है, जो चंचल इंद्रियों का दमन कर चुका है, उसे पाप-कर्म बंधन नहीं होता।
पहले ज्ञान है, बाद में दया। इसी क्रम पर समस्त त्यागी वर्ग अपनी संयम-यात्रा के लिए ठहरा हुआ है। भला, अज्ञानी मनुष्य क्या करेगा? श्रेय तथा पाप को वह कैसे जान सकेगा?
सुन कर ही कल्याण का मार्ग जाना जाता है। सुन कर ही पाप मार्ग जाना जाता है। दोनों ही मार्ग सुन कर जाने जाते हैं। बुद्धिमान साधक का कर्तव्य है कि पहले श्रवण करे और फिर अपने को जो श्रेय मालूम हो, उसका आचरण करे।

पाप क्या है, पुण्य क्या है; कृत्य जो हम करते हैं, उसमें पाप है या कर्ता में, जो करता है उसमें; चोरी में पाप है या चोर की भावदशा में? दान में पुण्य है या दानी की अंतश्चेतना में? कृत्य महत्वपूर्ण है या भीतर का अभिप्राय? और अभिप्राय से भी ज्यादा भीतर की चेतना--मनुष्य के लिए पुराने से पुराना शाश्वत सवाल है।
नीति कृत्य का विचार करती है; क्या न करें, क्या करें। धर्म कर्ता का विचार करता है; करने वाला कैसा हो, कैसा न हो।
जब पहली बार उपनिषदों का पश्चिमी भाषाओं में अनुवाद हुआ तो वहां के विचारक बड़े हैरान हुए, क्योंकि उनमें दस आज्ञाओं, टेन कमांडमेंट्स की तरह कोई भी बातें नहीं हैं। चोरी मत करो; व्यभिचार मत करो; न करो, या करो--ऐसा कोई आदेश नहीं है। और यहूदी और ईसाई धर्म तो करने के आदेश पर ही खड़े हैं। दस आज्ञाएं मो.जे.ज की, वे ही आधार-स्तंभ हैं।
उपनिषदों में भी उन्होंने सोचा कि कुछ आज्ञाएं होंगी, लेकिन कोई आज्ञाएं नहीं थीं। उन्हें लगा कि शायद उपनिषद धर्मग्रंथ नहीं हैं। लेकिन उपनिषद धर्मग्रंथ हैं। उपनिषद की दृष्टि से कृत्य की आज्ञा देना या न देना नीति का काम है, धर्म का नहीं। और नैतिक उसे होना पड़ता है जो धार्मिक नहीं है। इस बात को थोड़ा ठीक से समझ लें।
नैतिकता एक सब्स्टिट्यूट है, एक परिपूरक है। जो व्यक्ति धार्मिक नहीं है, उसे नीति की जरूरत है। जो व्यक्ति धार्मिक है, उसे नीति की कोई भी जरूरत न रही।

इसका यह अर्थ नहीं कि वह अनैतिक हो जाएगा। इसका यह अर्थ है कि उसने नीति का इतना मूलस्रोत पा लिया है कि अब ऊपरी व्यवस्था और नियम की कोई आवश्यकता नहीं रही।
ऐसा समझें, एक अंधा आदमी है, तो लकड़ी से टटोल कर चलता है। आंख वाला आदमी लकड़ी से टटोल कर नहीं चलता। क्योंकि लकड़ी से टटोलने की जरूरत है, आंख न हो तो। आंख हो तो लकड़ी से टटोलने की जरूरत नहीं है। अगर अंधे आदमी को हम समझाएं कि जब तेरी आंख ठीक हो जाएगी तो तू लकड़ी फेंक देगा, तो वह बहुत हैरान होगा। वह कहेगा, बिना लकड़ी के मैं चलूंगा कैसे? जीवन भर लकड़ी से ही चला है। लकड़ी उसकी आंख हो गई है। लेकिन लकड़ी क्या आंख हो सकती है? वह तो बस कामचलाऊ है।
नीति कभी धर्म नहीं है, कामचलाऊ लकड़ी है जो अधार्मिक आदमी के हाथ में पकड़नी पड़ती है। जिसके पास भीतर की आंख नहीं है, उसे बाहर के नियम पकड़ाने पड़ते हैं। और जिसके पास भीतर की आंख है, उसे बाहर के नियम पकड़ाने की कोई भी जरूरत नहीं है। उसकी भीतर की आंख जहां उसे ले जाएगी, वही ठीक है।
यह भारतीय और गैर-भारतीय धर्मों के बीच बुनियादी फर्क है। इस्लाम या ईसाइयत दोनों इस अर्थों में नैतिक धर्म हैं। उनका सारा आधार नीति पर है। जैन, बौद्ध और हिंदू इस अर्थ में अतिनैतिक धर्म हैं, सुपर मॉरल धर्म हैं। उनका आधार नीति पर नहीं है। उनकी सारी फिकर इस बात की है कि भीतर की चेतना परिशुद्ध हो। और अगर भीतर की चेतना परिशुद्ध है, तो आचरण अपने आप परिशुद्ध हो जाएगा।
आचरण को नहीं बदलना है, अंतरात्मा को बदलना है। आप क्या करते हैं, वह मूल्यवान नहीं है। आप क्या हैं, वही मूल्यवान है। आपको डूइंग का बहुत मूल्य नहीं है, आपके बीइंग का, आपके अस्तित्व का मूल्य है। और गलत अस्तित्व हो भीतर और ठीक आचरण हो, तो सिवाय पाखंड के कुछ भी नहीं है। और ठीक अस्तित्व हो भीतर, तो गलत आचरण के होने का कोई उपाय नहीं है।
यह मौलिक भेद है धर्म और नीति का। नीति सामाजिक व्यवस्था है। इसलिए अधार्मिक समाज में भी नीति की जरूरत होगी।
सोवियत रूस धर्म से इनकार कर सकता है, नीति से नहीं। उसको भी नैतिक नियम बनाने पड़े। आदमी कैसा व्यवहार करे, इसकी चिंता नास्तिक को भी करनी पड़ेगी। अगर पूरी पृथ्वी भी नास्तिक हो जाए, तो नीति नष्ट नहीं होगी। नीति तो रहेगी, धर्म नष्ट हो जाएगा। और अगर पूरी पृथ्वी धार्मिक हो जाए, तो नीति की कोई जरूरत न रहेगी। वह ऊपरी खोल की तरह फेंकी जा सकती है।
अगर लोग सच में भीतर से अच्छे हों, तो बाह्य-आचरण, नियम, व्यवस्था की कोई भी आवश्यकता नहीं है। जितनी हमें बाहर की व्यवस्था करनी पड़ती है, उतनी ही खबर मिलती है कि भीतर हम विकृत और रुग्ण हैं। वह जो सड़क पर खड़ा हुआ पुलिस का सिपाही है, अदालत में बैठा हुआ मजिस्ट्रेट है, वह आपकी वजह से वहां बैठा है; चूंकि आप गलत हैं। अगर लोग ठीक हों तो पुलिसवाले और मजिस्ट्रेट की कोई जरूरत नहीं। वह विदा हो जाएगी। उसे रखना फिजूल हो जाएगा; व्यर्थ हो जाएगा। कानून इसलिए हैं कि आप गलत हैं।
लाओत्सु ने कहा है, नीति का जन्म तभी होता है, जब धर्म खो जाता है। जब भीतर का ताओ नष्ट हो जाता है, तो बाहर आचरण का हमें इंतजाम करना पड़ता है। जब प्रेम नहीं होता तो कर्तव्य को जगह देनी पड़ती है।
एक बेटा अपनी मां की सेवा कर रहा हो। अगर यह प्रेम के कारण है तो बेटा
यह कभी भी नहीं कहेगा कि मेरा कर्तव्य है, इसलिए मैं मां की सेवा करता हूं। प्रेम के लिए ड्यूटी और कर्तव्य से ज्यादा कुरूप और भद्दा कोई शब्द नहीं है। प्रेम, इसलिए सेवा करता है कि सेवा आनंद है। जब प्रेम नहीं रह जाता, तो फिर बेटे को समझाना पड़ता है कि तुम्हारा कर्तव्य है, कि तुम मां की सेवा करो; तुम्हारी मां है; उसने तुम्हें जन्म दिया है, उसने तुम्हें बड़ा किया है; कि बूढ़े बाप के पैर दबाओ, यह तुम्हारा कर्तव्य है। और जब भी आप कहने लगते हैं, "मेरा कर्तव्य है" तब आप समझना कि भीतर का प्रेम खो गया।
एक पति कहता है कि मैं पत्नी के लिए काम कर रहा हूं; धन कमा रहा रहा हूं--क्योंकि कर्तव्य है, ड्यूटी है--इसका अर्थ हुआ कि प्र्रेम समाप्त हो गया। जो पति प्रेम में है वह यह भूल कर भी सोच नहीं सकता कि यह कर्तव्य है।

वह कहेगा, यह मेरा आनंद है। जिसे मैं प्रेम करता हूं, उसके लिए मैं सब कुछ करूंगा। यह मेरा आनंद है, कर्तव्य नहीं; करने योग्य नहीं है, यही मेरा रस है। अगर मैं न करूं तो दुखी होऊंगा, करता हूं तो आनंदित हूं।
कर्तव्य वाले आदमी को अगर मौका मिल जाए कर्तव्य से बचने का, तो वह सुखी होगा। तो अगर वह नर्स को खोज सके मां की सेवा के लिए, तो नर्स को लगाना पसंद करेगा; क्योंकि कर्तव्य ही है। और नर्स कर्तव्य आपसे ज्यादा बेहतर ढंग से कर सकेगी--टें्रड है, प्रशिक्षित है। अगर मां अपने बेटे को इसलिए पाल रही है, क्योंकि कर्तव्य है, तो उचित होगा कि वह दाई को रख ले। दाई वह रख ही लेगी। वह अपने स्तन से दूध भी नहीं पिलाना पसंद करेगी--एक काम है, जो कोई और भी कर सकता है।
प्रेम काम नहीं है। उसे कोई दूसरा नहीं कर सकता। प्रेम में हम किसी दूसरे को नहीं रख सकते। प्रेम हम खुद ही करेंगे; वह कर्तव्य नहीं है। वह हमारे प्राणों की भीतरी स्वर है, वह बाहरी व्यवस्था नहीं है।
धर्म प्रेम की तरह है; नीति कर्तव्य ही तरह है। इसलिए नीति करने की भाषा में बोलती है; यह करो, यह मत करो। और धर्म होने की भाषा में बोलता है; ऐसे हो जाओ, और ऐसे मत हो जाओ।
महावीर के ये सूत्र धर्म के सूत्र हैं। इन्हें समझाने के पहले यह ख्याल में ले लेना जरूरी है कि जोर बीइंग पर है, अंतरात्मा पर है; कर्म पर, कृत्य पर नहीं है। इसलिए महावीर से जब पूछा जाता है, तो वे यह नहीं कहते कि यह-यह काम मत करना। वे यह कहते हैं, इस भांति की चेतना हो जाना। बस, पाप-कर्म अपने आप बंद हो जाएंगे।
संत अगस्तीन से किसी ने पूछा है कि मैं क्या करूं कि पाप न हो; क्या करूं कि पुण्य हो? तो अगस्तीन ने कहा कि अगर मैं कर्तव्यों को गिनाने बैठूं तो बड़ी लंबी फेहरिस्त हो जाएगी; यह करो, यह मत करो। अगर एक-एक कर्तव्य को विस्तार से गिनाते बैठूं तो फेहरिस्त का कभी अंत नहीं होगा। और कितनी ही बड़ी फेहरिस्त हो, फिर भी तुम उसके भीतर से तरकीब निकला लोगे जो तुम्हें करना है उसकी।
इसलिए कानून किसी को अपराध से नहीं रोक पाता। कानून के बीच से हमेशा रास्ता निकल आता है अपराध करने का। असल में कानून लोगों को सिर्फ कुशल अपराधी बनाता है। अकुशल अपराधी पकड़े जाते हैं, कुशल अपराधी सिंहासनों की यात्रा करते रहते हैं। कानून सिर्फ आपको समझदार बनाता है; चालाक बनाता है; होशियार बनाता है; गैर-अपराधी नहीं बनाता।
अगस्तीन ने उस आदमी को कहाः इसलिए तुझे मैं एक ही बात कह दूं, क्योंकि लंबी फेहरिस्त से कुछ न होगा। अगर तू प्रेम कर सकता है, तो फिर तू जो भी करेगा, वह ठीक होगा। और अगर तू प्रेम नहीं कर सकता, तो तू जो भी करेगा, वह गलत होगा।
अगस्तीन कह रहा है कि प्रेम एकमात्र नियम है। बात वही है, क्योंकि प्रेम कृत्य नहीं है, भीतरी अवस्था है। आपके कृत्य से प्रेम का पता नहीं चलता, आपके होने के ढंग से ही पता चलता है कि आप प्रेमपूर्ण हैं या नहीं। आप कितने ही कृत्य करें, तो भी प्रेम को आप भर नहीं सकते। अगर प्रेम खो गया है, तो कितनी ही भेंट लाएं प्रेयसी के लिए और कितना ही इंतजाम करें, कितना ही अच्छा मकान बनाएं, बगीचा लगाएं, सब साधन-सुविधाएं जुटाएं; अगर प्रेम खो गया है, तो कोई भी चीज परिपूरक नहीं हो सकती। बड़े से बड़ा मकान, बड़े से बड़ी गाड़ी, बड़े से बड़ी व्यवस्था, नौकर-चाकर कुछ भी पूरा नहीं कर सकते। और अगर प्रेम है, तो सड़क पर भीख भी आप मांगते हों, तो भी घटना घट सकती है। प्रेम आंतरिक है। आपके करने से उसका संबंध नहीं है, आपके होने के ढंग
से संबंध है। इसलिए प्रेम धर्म के निकटतम है। और अगर जीसस ने कहा कि लव इ.ज गॉड, ईश्वर प्रेम है, तो उसका अर्थ यही है कि हमारे जीवन में प्रेम, जैसे आंतरिक है, ऐसी ही आंतरिकता जब ईश्वर की हमारे भीतर होनी शुरू हो जाए तो हम धर्म के जगत में प्रवेश करते हैं।
सूत्र को लें।
"भंते!"
कोई पूछता है महावीर से, कोई जिज्ञासा करता हैः

"भंते! साधक कैसे चले? कैसे खड़ा हो? कैसे बैठे? कैसे सोए? कैसे भोजन करे? कैसे बोले--जिससे पाप-कर्म का बंध न हो?
पूछने वाला कृत्यों के संबंध में पूछ रहा है। कैसे चले, कैसे बैठे, कैसे सोए, कैसे भोजन करे, कैसे बोले? यह सब कृष्ण से अर्जुन ने पूछा है गीता में कि स्थितप्रज्ञ की भाषा क्या है? वह कैसे बोलता है? समाधिस्थ का व्यवहार क्या है? वह कैसा व्यवहार करता है? ऐसा ही कोई साधक, कोई जिज्ञासु महावीर से पूछ रहा है कि हम क्या करें? जोर, ध्यान दें, करने पर है; हम क्या करें, जिससे कि पाप-कर्म का बंध न हो।
पाप-कर्म के बंध से अर्थ है, जिससे मैं बंधूं न, गुलाम न होऊं; जिससे मैं कारागृह में बंद न होऊं; जिससे मेरी आंतरिक स्वतंत्रता नष्ट न हो; जिससे मैं भीतर खुले आकाश में विचरण कर सकूं; मुझे कोई बांधे न; कोई भी घटना मुझे बांधे न; मैं मुक्त हूं; मेरा भीतरी मोक्ष नष्ट न हो।
यह समझ लेने जैसा है कि आदमी की गहनतम आकांक्षा स्वतंत्रता की है; गहनतम आकांक्षा मुक्ति की है। और जहां भी आप पाते हैं कि आपकी आकांक्षा स्वतंत्रता में बाधा पड़ती है, वहीं कष्ट शुरू हो जाता है।
इसलिए जो भी आपकी स्वतंत्रता में बाधा डालते हैं--वे चाहे मित्र ही क्यों न हों--वे दुश्मन की भांति मालूम होने लगते हैं। जिनसे आप प्रेम करते हैं, अगर वे भी आपके जीवन में बाधा बन जाएं और परतंत्रता लाएं, तो प्रेम कड़वा हो जाता है; जहरीला हो जाता है और पाय.जन हो जाता है। फिर उस प्रेम से रस नहीं बहता। फिर उस प्रेम में दुख और पीड़ा समाविष्ट हो जाती है।
जगत में ऐसा कुछ भी नहीं है जो आपको सुख दे सके, अगर आपकी स्वतंत्रता
को नष्ट करता हो। इसलिए मनीषियों ने कहा है कि मोक्ष परम तत्व है। इसका अर्थ आप समझ लेना। इसका अर्थ हुआ, टु बी फ्री--टोटल फ्री--समग्र रूप से मुक्त। जहां कोई चीज बाधा नहीं बनती, और जहां मैं अपने निज-स्वभाव में पूरी तरह रह सकता हूं। जहां कोई मजबूरी नहीं है।
ऐसे चित्त की दशा ही मनुष्य की खोज है।
तो न धन से पूरी होती वह चीज, क्योंकि धन भी चारों तरफ दीवाल बन जाता है। वह भी मुक्त कम करता और बांधता ज्यादा है।
धनी आदमी को देखें। वह धन से मुक्त नहीं मालूम पड़ता; धन से और भी बंधा हुआ मालूम पड़ता है। इसका यह मतलब नहीं है कि आप गरीब हैं तो धन से मुक्त होंगे। गरीब तो और भी मुक्त नहीं हो सकता। जो नहीं है धन उसके पास, वह उसे बांधे रहता है।
तो दुनिया में गरीब और अमीर नहीं हैं। दुनिया में धन के आकांक्षी और जिसको धन उपलब्ध हो गया, धनिक; दो तरह के लोग हैं। एक जिसको धन अभी उपलब्ध नहीं हुआ; ऐसे धनी; और एक जिसको धन उपलब्ध हो गया है, ऐसे धनी। गरीब तो खोजना बहुत मुश्किल है; गरीब का मतलब यह है कि जिसे धन की आकांक्षा ही नहीं है; जो धन की दौड़ में ही नहीं है। लेकिन वैसा गरीब सम्राट हो जाता है। धन मिल जाता है तो धन मुक्त नहीं करता दिखाई पड़ता; और भी बांध लेता है, कस कर बांध लेता है।
सुना है मैंने कि मुल्ला नसरुद्दीन के गांव में एक अमीर आदमी था। जैसा कि अमीर होते हैं, महाकृपण था। कपड़े भी कभी धोता था, इसमें शक था; क्योंकि धोने से कपड़े जल्दी नष्ट हो जाते। घर में बीमारी आ जाए तो इलाज नहीं करवाता था! क्योंकि बीमारी तो अपने से ही ठीक हो जाती है, इलाज तो नाहक पैसे का खर्च है! उसने सब तरह के सिद्धांत बना रखे थे जो उसके पैसे को बचाते थे।
फिर गांव में जादूगर, एक मदारी आया और उसकी बड़ी चर्चा फैली कि वह बड़े गजब के खेल दिखा रहा है। उसके खेल का नाम थाः दि मिरेकल--चमत्कार। आखिर उस कंजूस को भी खेल देखने का ख्याल उठने लगा। लेकिन मन में बड़ी पीड़ा होती थी, अगर तुम गये तो मैं भी जाऊंगी; बेटा कहता था, अगर तुम गए तो मैं भी जाऊंगा। तो तीन रुपये का खर्च था; एक रुपया टिकिट था एक-एक आदमी का।
तो तीन रुपये के मारे वह बड़ा परेशान था। मगर रोज खबरें आतीं कि बड़ा चमत्कार हो रहा है; बड़ा अदभुत जादू है, ऐसा कभी देखा नहीं। उसकी जिज्ञासा

बढ़ती गई। आखिर संयम टूट गया। आखिरी दिन जब कि वह मदारी जाने वाला था, वह भी पहुंच गया अपनी पत्नी, बच्चे को लेकर। क्यू में खड़ा हो गया।
नसरुद्दीन भी यह देख कर कि कंजूस तीन रुपये खर्च करने जा रहा है, उसके पीछे-पीछे गया। वह भी क्यू में खड़ा हो गया कि क्या होता है। जब कंजूस पहुंचा खिड़की पर तो उसने मोल-भाव करना शुरू किया। खिड़की पर बैठी लड़की ने बहुत बार कहा कि मोल-भाव का सवाल ही नहीं है, तुम्हें देखना हो तो तीन रुपये खर्च करने होंगे। और अब देर मत करो, पहली घंटी हो चुकी है।
वह बार-बार खीसे में हाथ डालता और बाहर निकाल लेता। वह कहता कि आखिर डेढ़ रुपये में नहीं हो सकता क्या? और अब क्यू में कोई भी नहीं है, हम तीन ही बचे हैं; एक मुल्ला नसरुद्दीन भर पीछे खड़ा है।
उस लड़की ने कहाः अब आप टिकिट लेते हैं या मैं खिड़की बंद करूं? आखिर उसने तीन रुपये... उसकी आंखों में आंसू भी आ गए। उसने तीन रुपये निकाल कर दिए। नसरुद्दीन ने कहाः नाउ आई कैन गो टु माई होम, आई हैव सीन द मिरेकल--अब मुझे अंदर जाने की कोई जरूरत ही नहीं है, चमत्कार तो मैंने देख ही लिया। धन भी पकड़ लेता है; प्रेम भी जिसे हम कहते हैं, वह भी पकड़ लेता है और जकड़ लेता है। हम जीवन में जो कुछ भी करते हैं, वह सब हमें गुलाम ही किए चला जाता है।
जिज्ञासु महावीर से पूछ रहा है कि वह कौन सी कला है, किस ढंग से उठें, बैठें, चलें, व्यवहार करें कि कोई बंधन हमें न बांधे।
"पाप-कर्म" बंधन का पुराना नाम है। वह पुरानी भाषा है, जिससे हमारी स्वतंत्रता नष्ट न हो और हम उस अवस्था में पहुंच जाएं, जहां हम परम स्वतंत्र हैं। वही आनंद है। इसलिए महावीर ब्रह्म को भी परम अवस्था नहीं कहते--मोक्ष को परम अवस्था कहते हैं। क्योंकि जहां ब्रह्म भी मौजूद हो, दूसरा भी मौजूद हो, वहां थोड़ा बंधन होगा। जहां कोई भी न रह जाए; जहां सिर्फ स्वयं का होना ही आखिरी स्थिति है, उस कैवल्य को कैसे पाया जाए? लेकिन पूछने वाला पूछ रहा है कर्म की भाषा में। जिज्ञासु कर्म की भाषा में ही पूछेगा।
महावीर ने उससे कहाः
"आयुष्मान! साधन विवेक से चले; विवेक से खड़ा हो; विवेक से बैठे; विवेक
से सोए; विवेक से भोजन करे; विवेक से बोले, तो उसे पाप-कर्म नहीं बांधता।" क्रांतिकारी फर्क हो गया। महावीर का जोर कैसे चले, इस पर नहीं है; कैसे बैठे, इस पर नहीं है; कैसे उठे, इस पर नहीं है। सभी क्रियाओं के बीच उन्होंने विवेक को जोड़ दिया; विवेक से चले, विवेक से खड़ा हो, विवेक से बैठे।
उठने-बैठने का मूल्य नहीं है, विवेक का मूल्य है। और "विवेक" महावीर
का कीमती शब्द है। विवेक से महावीर का अर्थ है, अवेयरनेस, होश। लेकिन जैन-परंपरा ने सोचा कि भेद करके चलें कि यह गलत है, यह न करूं; और यह ठीक है, यह करूं; यह विवेक का अर्थ लिया।
अगर यह विवेक का अर्थ लिया तो जिज्ञासु की और परमज्ञानी की भाषा में कोई फर्क ही नहीं हुआ। जिज्ञासु भी यही पूछ रहा था। इसलिए पंडितों को भी लगा कि अर्थ यही होगा महावीर का कि "विवेक से चले"--इसका मतलब यह कि देख कर चले कि जमीन पर कोई कीड़ा-मकोड़ा तो नहीं चल रहा है, हरी घास तो नहीं उगी है। "विवेक से सोए", देख कर सोए कि कोई स्त्री तो कमरे में मौजूद नहीं है। "विवेक से भोजन करे", देख ले कि जो भोजन दिया गया है, वह सब तरह से शुद्ध है। शुद्ध हाथों से बनाया गया है। और उसमें कोई अशुद्धि तो नहीं है। एक अर्थ में पंडितों ने जो अर्थ लिया, वह ठीक मालूम पड़ेगा। क्योंकि साधक ने जो पूछा था, जिज्ञासु ने जो सवाल उठाया था, अगर महावीर उसी तल पर जवाब दे रहे हैं, तो पंडितों ने जो अर्थ किए हैं जैन-परंपरा में, वे ठीक हैं। लेकिन जहां अज्ञानी पूछता है और ज्ञानी उत्तर देता है, वहां डाइमेंशन--आयाम बदल जाते हैं; अज्ञानी की भाषा और ज्ञानी की भाषा में बुनियादी अंतर हो जाता है। जहां अज्ञानी की भाषा बहिर्मुखी होती है, ज्ञानी की भाषा अंतर्मुखी हो जाती है।

इसमें समझ लेना यह है कि सारी क्रियाओं के बीच जिस बात पर जोर है, वह विवेक है। क्रियाएं गौण हैं, विवेक महत्वपूर्ण है। और विवेक का अर्थ डिसक्रिमिनेशन नहीं है, भेद नहीं है। विवेक का अर्थ होश है, अमूर्च्छा है, अप्रमाद है, जागरूकता है। अगर विवेक का अर्थ--भेद है--सही और गलत में, तो बात बाहरी हो गई कि मैं चोरी न करूं, दान करूं। लेकिन अगर विवेक का अर्थ आंतरिक जागरूकता है, तो बाहर भेद करने का कोई सवाल नहीं है; भीतर मैं जागरूक रहूं। अगर भीतर मैं जागरूक हूं, तो चोरी होगी ही नहीं; नहीं करने का सवाल नहीं है। दान होगा; करने का सवाल नहीं है।
विवेक से जागा हुआ व्यक्ति बांटता ही रहता है। बांटना उसका आनंद हो जाता है। विवेक से जीता हुआ व्यक्ति दूसरे से छीनने का सोच भी नहीं सकता, क्योंकि दूसरे के पास न छीनने को कुछ है, न दूसरे से कुछ छीना जा सकता है। और छीनने की कोई जरूरत नहीं है। क्योंकि जो भी हो सकता है, वह मेरे भीतर स्वयं मौजूद है। विवेक से जागा हुआ व्यक्ति अपनी अपार संपदा को देखता है। इस अपार संपदा का मालिक चोरी करने जाएगा, किसी से छीनेगा, झपटेगा; यह सवाल ही नहीं उठता है। और इस विवेक में एक महत्वपूर्ण बात दिखाई पड़नी शुरू होती है कि जो मैं देता हूं, उसी का मैं मालिक हूं; जो मैं दे सकता हूं, वही मेरी संपदा है; जो मैं रोक लेता हूं, उसका मैं मालिक नहीं हूं।
इसलिए ध्यान रहे, जो भी आप दे पाते हैं, आप सिर्फ उसके ही मालिक हैं। दान ही खबर देता है कि आप मालिक थे। कंजूस मालिक नहीं है अपने धन का, धन ही कंजूस का मालिक है। जो दे सकता है, आनंद से दे सकता है! ध्यान रहे, सामान्य आदमी आनंद से ले सकता है, दे नहीं सकता। देने में पीड़ा है, लेने में सुख है। लेकिन अगर लेने में सुख है और देने में पीड़ा है, तो आपका जीवन पूरा का पूरा पीड़ा से भरा रहेगा।
जैसे ही व्यक्ति के जीवन में क्रांति घटित होती है, होश आता है, सारे नियम बदल जाते हैं। लेने की जगह देना नियम हो जाता है। लेने में सुख नहीं, देने में सुख शुरू हो जाता है। इसलिए चोरी का तो प्रश्न नहीं है। दूसरे को नुकसान पहुंचाने का सवाल नहीं है। क्योंकि हम नुकसान दूसरे को इसीलिए पहुंचाना चाहते हैं कि हम भयभीत हैं कि दूसरा हमें नुकसान न पहुंचा दे। मेक्यावली ने कहा है कि इसके पहले कि कोई तुम पर आक्रमण करे, तुम आक्रमण कर देना; क्योंकि पहले आक्रामक कर देना सुरक्षा का सुगमतम उपाय है, एकमात्र डिफेंस है जगत में। जहां हम खड़े हैं अंधेरे में, वहां पहले हमला कर देना, इसके पहले कि कोई हमला करे।
इसके पहले कि कोई मुझसे छीन ले, मैं छीन लूं; इससे पहले कि कोई मुझे दुख दे, मैं उसे दुख दे दूं; यही इस अंधेरे में चलती हुई व्यवस्था है। जैसे ही कोई भीतर होश से भरता है, यह सारी व्यवस्था बदल जाती है। इसके पहले कि कोई मुझसे छीने, मैं दे दूं, और देने से आनंदित हो जाऊं।
जीसस ने कहा है, कोई अगर तुम्हारा कोट छीने, तो तुम कमीज भी दे देना।
और कोई अगर तुमसे एक मील बोझ ढोने को कहे, तो तुम दो मील तक चले जाना।
जीसस के इस वचन को ईसाइयत ठीक से समझ नहीं पाई। यह वचन जीसस को भारत से
ही मिला। यह वचन बौद्ध विश्वविद्यालयों की हवा से जीसस को मिला। और इसके पीछे दान का सवाल नहीं है, इसके पीछे होश का सवाल है। जितना होशपूर्ण व्यक्ति हो, उतना छीनने से मुक्त हो जाता है और देने में सरल हो जाता है। महावीर को ध्यान रखें। चलें, खड़े हों, बैठें, सोएं, भोजन करें, बोलें--
यह सब गौण है। सबके भीतर एक शर्त है, विवेक से। अगर विवेक सध जाए, तो सब सध जाएगा।
मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन को उसके चिकित्सक ने कहा कि तू शराब पीना बंद कर दे। अब नशा बहुत ज्यादा बढ़ने लगा है।
... गया था चिकित्सक के पास। तो हाथ जब चिकित्सक ने उसका अपने हाथ में नाड़ी देखने को लिया, तो उसका हाथ इतना कंप रहा था कि उसके चिकित्सक ने कहा कि मालूम होता है, जरूरत से ज्यादा पीने लगे हो! बहुत पी रहे हो! हाथ इतना कंप रहा है!

नसरुद्दीन ने कहाः कहां पी जाता हूं! ज्यादा तो जमीन पर ही गिर जाती है। तो चिकित्सक ने कहा, अब बहुत हो गया, अब रुको! तुम्हारे गिरने का वक्त करीब आया जा रहा है। तुम यह शराब बंद करो, इसी से नशा हो रहा है। नसरुद्दीन ने कहा कि मैं थोड़ा वैज्ञानिक बुद्धि का आदमी हूं। पक्का नहीं कि नशा किस बात से हो रहा है, क्योंकि मैं शराब में सोडा मिला कर पिता हूं। पता नहीं, सोडा से हो रहा है।
चिकित्सक ने कहाः क्या तुम पागल हो गए हो, नसरुद्दीन?
नसरुद्दीन ने कहाः मुझे कुछ दिन का वक्त दो। मेरे पास जरा वैज्ञानिक बुद्धि है, मैं प्रयोग करके देख लूं।
तो उसने एक दिन ब्रांडी में सोडा मिला कर पीया। फिर दूसरे दिन उसने व्हिस्की में सोडा मिला कर पीआ। फिर तीसरे दिन तीसरी तरह की शराब में सोडा मिला कर पीया। ऐसे सात दिन उसने देखा कि हर हालत में नशा होता है--और एक कामन एलिमेंट है, सोडा।
तो उसने चिकित्सक को जाकर कहा कि तुम गलती में हो, और जिसने भी तुमको कहा कि शराब में नशा होता है, वह नासमझ है। मैंने हर हालत में, हर चीज में सोडा मिला कर पीकर देख लिया है। लेकिन सोडा ही नशे का कारण है। तो अब मैं सोडा छोड़ता हूं, खाली शराब पीऊंगा।
महावीर ने अनुभव से जाना है कि मूर्च्छा हर कृत्य के पीछे पाप है। हर कृत्य के पीछे मूर्च्छा पाप है। आप क्या करते हैं, यह बात बहुत मूल्यवान नहीं है। उसके पीछे मूर्च्छा है, बेहोशी है। वही बेहोशी उपद्रव है। बेहोशी का कारण कोई भी हो सकता है।
मैं एक बहुत बड़े सिने-दिग्दर्शक सी.बी. डिमायल का जीवन पढ़ता था। उसने बड़े अनूठे चित्र निर्मित किए हैं। अरबों रुपये के खर्च से एक-एक दृश्य बनाया। मरते वक्त डिमायल का ख्याल था कि एक दृश्य और मैं ले लूं--जगत की सृष्टि का दृश्य, जब परमात्मा छह दिन में जगत बनाता है--कैसे बनता है जगत। अरबों-अरबों डालर खर्च था। लेकिन उसने हिम्मत की और स्पेन में एक घाटी खरीदी। और एकांत निर्जन घाटी में अरबों रुपयों का वैज्ञानिक इंतजाम किया; दस मिनट की व्यवस्था की कि कैसे प्रकाश पैदा होता है। फिर कैसे पृथ्वी का जन्म होता है। फिर कैसे पौधे पैदा होते हैं। फिर कैसे जीवन का अवतरण होता है--और छह दिन में परमात्मा कैसे प्रकृति को पूरा निर्मित करता है।
जगत का, विश्व का जन्म! यह इतना खर्चीला मामला था, और दस मिनट में अरबों का खर्च था। और एक ही बार यह हो सकता था। अगर इसका दुबारा फिर से चित्र लेना पड़े, अगर एक दफे में फिल्म गलत हो जाए, कैमरामैन भूल-चूक कर जाए, तो फिर दस गुना खर्च होगा। और बड़ा उपद्रव था।
इसलिए डिमायल ने चारों तरफ पहाड़ियों पर चार कैमरामैन के समूह खड़े किए; और सबको हर हालत में चेतावनी दी कि सब चित्र लेना ताकि कोई भूल-चूक न हो जाए। एक ही बार में यह घटना हो जानी चाहिए।
फिर जन्म हुआ उस वैज्ञानिक व्यवस्था से प्रकाश का, खुद डिमायल रोने लगा, इतना अदभुत दृश्य था; कंपने लगा; आनंदविभोर हो गया। और जब दृश्य पूरा हुआ दस मिनट के बाद, तो उसने पहला काम किया कि पहले कैमरामैन को फोन किया और पूछा कि क्या हालत है? उस कैमरामैन ने कहा कि क्षमा करें, मैं शघमदा हो रहा हूं कि क्या कहूं। मैं तो भूल ही गया। दृश्य इतना अदभुत था कि मैं देखने में लग गया, चित्र तो ले नहीं गया।
डिमायल की जैसी आदत थी, उसने दो-चार भद्दी गालियां दीं, और उसने कहा कि मुझे पता ही था कि यह उपद्रव होने वाला है, इसलिए मैंने चार इंतजाम किए। दूसरे को फोन किया। उसने कहा कि सब ठीक था, लेकिन फिल्म चढ़ाना भूल गए।
यह तो जब दृश्य खत्म हो गया, कैमरे में झांका तो पता लगा कि हम नाहक ही शटर दबाते रहे, फिल्म तो थी ही नहीं।
अब तो डिमायल का हृदय धड़कने लगा कि यह तो बहुत मुश्किल मामला दिखता है।
तीसरे को डरते हुए फोन किया। तीसरे ने कहा कि क्या आपको कहूं, मर जाने
का मन होता है। सब ठीक था; फिल्म ठीक चढ़ी थी; कैमरा बिल्कुल तैयार था--लेंस से टोपी उतारना भूल गया। दृश्य ही ऐसा था डिमायल, कि हम क्या करें।

चौथे को तो उसे भय होने लगा फोन करने में। लेकिन जब चौथे को फोन किया
तो आशा बंधी। उसने कहाः हलो सी. बी... चौथे आदमी ने कहा, उसकी आवाज से ऐसा लगा कि कम से कम इतने ठीक अवस्था में चित्र ले लिया होगा। तो डिमायल ने पूछा कि कोई गड़बड़ तो नहीं? उसने कहा कि बिल्कुल नहीं, सब ठीक है। उसने कहाः ऐसा ठीक कभी नहीं था, जैसा ठीक अब है।
फिल्म चढ़ी है?
बिल्कुल फिल्म चढ़ी है।
तुमने टोपी अलग कर ली थी लेंस की?
बिल्कुल अलग है।
डिमायल ने कहाः धन्यवाद परमात्मा का!
उसे चौथे आदमी ने कहाः रिलैक्स सी. बी., जस्ट गिव ए हिंट; व्हेन यू आर रेडी, वी आर रेडी--बस, जरा इशारा करो, हम बिल्कुल तैयार है।
पता चला वह चौथे आदमी में जो जान मालूम पड़ रही थी, वह नशा किए था। वह शराब पी गया था। अभी उनको यह पता ही नहीं था कि वह दृश्य हो चुका!
महावीर जीवन की सारी भूल, सारे पाप के पीछे, मूर्च्छा को, बेहोशी को...
।
बेहोशी का कारण कुछ भी हो। चाहे उत्तेजना आ जाए, तो भी आदमी बेहोश हो जाता है। क्रोध आ जाए, तो भी आदमी बेहोश हो जाता है। कामवासना आ जाए, तो भी आदमी बेहोश हो जाता है। लोभ जकड़ ले, तो भी आदमी बेहोश हो जाता है। अहंकार पकड़ ले, तो भी आदमी बेहोश हो जाता है।
एक तत्व ख्याल में रखने जैसा है कि जब भी कोई बुराई पकड़ती है, तो उसमें
एक अनिवार्य भीतरी शर्त है कि आप बेहोश होने चाहिए। आपने क्रोध में देखा होगा कि आप ऐसा कर लेते हैं, जो आप कभी कर नहीं सकते थे। बाद में पछताते हैं, रोते हैं, सोचते हैं, यह कैसे किया? लेकिन वह किया इसलिए कि आप उस वक्त होश में नहीं थे।
लोभ में आदमी कुछ भी कर लेता है। अहंकार में आदमी कुछ भी कर लेता है। कामवासना से भरा हुआ आदमी कुछ भी कर लेता है। विक्षिप्तता पकड़ लेती है। महावीर का निदान यह है कि आप जब भी बुरा करते हैं, तो क्या बुरा करते हैं, यह महत्वपूर्ण हनीं है; उस बुरे करने के पीछे एक अनिवार्य बात है कि आप होश में नहीं होते।
इसलिए कृत्यों को बदलने का कोई सवाल नहीं है। भीतर से होश सम्हालने
का सवाल है। और मूर्च्छा छोड़ने का सवाल है। उठते, बैठते सोते, भोजन करते होशपूर्वक करना है।
आप चलते हैं--आपका चलना बेहोश है। आपको चलते वक्त बिल्कुल पता नहीं होता कि आप चल भी रहे हैं। चलने का काम शरीर करता है। यह आटोमेटिक है, यांत्रिक है।
चलने को भी छोड़ दें। एक आदमी साइकिल चला रहा है; उसे पता भी नहीं होता
है कि वह चला रहा है। आप अपनी कार चला रहे हैं। आप कहां मुड़ जाते हैं, कब घर के दरवाजे पर आप आ जाते हैं, कब अपने गैरेज में चले जाते हैं, इस सबके लिए आपको सोचने की जरूरत नहीं है। इस सबका होश भी रखने की जरूरत नहीं है। यह सब होता है रोज की यांत्रिकता से। अगर बीच में कोई एक्सीडेंट होने की अवस्था आ जाए, तो क्षण भर को होश आता है, अन्यथा यंत्रवत सब चलता रहता है।
आपने कभी देखा, आप कार चलाते हो और अचानक एक्सीडेंट होने की हालत आ जाए, तो एक झटका लगता है नाभि पर; सारा शरीर का यंत्र हिल जाता है। विचार बंद हो जाते हैं। एक सेकेंड को होश आता है, अन्यथा सब बेहोशी में चलता चला जाता है।
हमारी जिंदगी पूरी बेहोशी में चलती चली जाती है। जैसे हम सोए हुए चल रहे हों। हमें पता ही नहीं होता, हम क्या कर रहे हैं। बस, यंत्रवत करते चले जाते हैं। रोज वही करते हैं, फिर रोज वही करते चले जाते हैं। ठीक वक्त पर भोजन कर लेते हैं; ठीक वक्त पर सो जाते हैं; ठीक वक्त पर प्रेम कर लेते हैं; ठीक वक्त पर स्नान कर लेते हैं। सब बंधा हुआ है। उस बंधे में आपको सोच-विचार की, होश की कोई भी आवश्यकता नहीं है।

इस अवस्था को महावीर सोई हुई अवस्था कहते हैं, एक तरह से हिप्नोटाइज्ड, नशे में। और महावीर कहते हैं, यही पाप का मूल कारण है।
इसलिए जो भी हम करते हैं, उस करने में होश न होने की वजह से हम बंधते हैं। हम प्रेम करें तो बंध जाते हैं। हम धर्म करें तो बंध जाते हैं। हम मंदिर जाएं तो गुलामी हो जाती है, हम न जाएं तो गुलामी हो जाती है।
जो कुछ भी हम करें, मूर्च्छा से गुलामी का जन्म होता है। मूर्च्छा गुलामी की जननी है। इसलिए महावीर कहते हैं, विवेक से चले, विवेक से खड़ा हो, विवेक से बैठे, विवेक से सोए, विवेक से भोजन करे, विवेक से बोले, तो उसे पाप-कर्म नहीं बांधता।
प्रत्येक कृत्य में विवेक समाविष्ट हो जाए। प्रत्येक कृत्य की माला मनके की तरह हो जाए और भीतर विवेक का धागा फैल जाए। चाहे किसी को दिखाई पड़े या न पड़े लेकिन आपको विवेक भीतर बना रहे।
कैसे करेंगे इसे? हमें आसान होता है, अगर कोई मूल्य बदलने को कह दे। कह
दे कि दुकान छोड़ दो, मंदिर बैठ जाओ; समझ में आता है; सरल बात है; क्योंकि छोड़ने वाला तो बदलता नहीं है। वह तो पकड़ने वाला ही बना रहता है।
मकान छोड़ देते हैं, मंदिर पकड़ लेते हैं। पकड़ने में कोई फर्क नहीं आता। मुट्ठी बंधी रहती है। धन छोड़ते हैं, त्याग पकड़ लेते हैं। गृहस्थ का वेश छोड़ते हैं, साधु का वेश पकड़ लेते हैं। पकड़ना जारी रहता है। मूर्च्छा में कोई अंतर नहीं पड़ता है।
ऊपरी चीजें बदल जाती हैं; लेबल बदल जाते हैं; नाम बदल जाते हैं; भीतर
की वस्तु वही की वही बनी रहती है। इसलिए बहुत आसान है कि कोई हम से कह दे कि हिंसा मत करो। मांसाहार मत करो। रात पानी मत पीओ। बिल्कुल आसान है, छोड़ देते हैं।
लेकिन कोई हमसे कहे, चौबीस घंटे होश रखो। यह बड़ा कठिन है। एक सेकेंड
भी होशपूर्वक जीना अत्यंत दूभर है। अत्यंत दूभर! अगर आप कोशिश करें पांच मिनट रास्ते पर चलने की कि मैं होशपूर्वक चलूंगा, तो आप पाएंगे कि एक सेकेंड भी नहीं चल पाए, दो कदम भी नहीं उठा पाए कि मन कहीं और चला गया। आप फिर यंत्र की भांति चलने लगे।
भीतर से इस यांत्रिकता को तोड़ने का सवाल है। भीतर यह यंत्रवत्ता न रह जाए। कुछ भी हो मेरे जीवन में, हाथ भी हिले, आंख भी झपके, तो मेरी जानकारी के बिना न हो। मैं होश से भरा रहूं, तो ही हो।
कठिन होगा। तपश्चर्या होगी। और बड़ी चेष्टा के बाद ही, वर्षों और जन्मों की चेष्टा के बाद ऐसी क्षमता भीतर आनी शुरू होती है, ऐसा इंटिग्रेशन और क्रिस्टेलाइजेशन होता है, जब आदमी होशपूर्वक होता है। गुरजिएफ पश्चिम में एक महत्वपूर्ण संत था अभी, इस सदी में। मरने के कुछ दिन पहले उसने डेढ़ सौ मील की रफ्तार से कार चलाई और जान कर दुर्घटना की। दुर्घटना भयंकर थी; जान कर की गई थी। एक चट्टान, एक वृक्ष से जाकर टकरा गया। कोई डेढ़ सौ फ्रैक्चर हुए। पूरे शरीर की हड्डी-हड्डी टूट गई। कुछ बचा ही नहीं साबित। लेकिन वह पूरे होश में था, होश खोया नहीं था। तो जब उसके मित्रों ने, शिष्यों ने पूछा कि यह आपने क्या किया? डेढ़ सौ मील की रफ्तार से गाड़ी चलाने का कोई कारण न था इतने संकरे रास्ते पर। कोई प्रयोजन भी नहीं था। कोई जल्दी भी नहीं थी।
तो गुरजिएफ ने कहा कि यह सब जानकर किया गया है। मैं मरने के पहले यह देखना चाहता था कि मेरा शरीर चकनाचूर हो जाए, तो भी मेरा होश न खोए। अब मैं निश्चिंत हूं। अब मरते वक्त मौत मेरा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकती; मेरा होश कायम रहेगा। इससे ज्यादा मौत क्या करेगी! सारा शरीर टूट गया है, लेकिन एक क्षण को होश नहीं खोया है!
गुरजिएफ के शिष्य आस्पेंस्की ने भी मरते वक्त अपने मित्रों को अपने साथ लिया और कार से यात्रा पर निकल गया। कहीं रुके ही नहीं। रात आ जाए, तो भी गाड़ी चलाता रहे। आखिर उसके मित्रों ने कहा, यह क्या कर रहे हो? तीन दिन हो गए, न तुम रुकते, न तुम सोते।
तो आस्पेंस्की ने कहा कि मैं जागते हुए ही मरना चाहता हूं। नींद में पता नहीं, मैं मौत के वक्त ठीक होश रख सकूं, न रख सकूं। तो मैं चलते ही रहना

चाहता हूं इस कार में; चलाते ही रहना चाहता हूं इसको। मैं मरना चाहता हूं जाता हुआ, ताकि मुझे पक्का पता हो कि जब मौत आई, तो मैंने भीतर होश जरा भी नहीं खोया।
महावीर इसे विवेक को कह रहे हैं। उनका विवेक कोई नैतिक बात नहीं है,
एक बड़ी यौगिक प्रक्रिया है। आप कुछ भी करते हैं, आपको पता ही नहीं। आप बैठे हैं, आपका पैर हिल रहा है कुर्सी पर। आप कोई कारण बता सकते हैं, क्यों हिल रहा है? अगर आपको मैं कहूं कि आपका पैर हिल रहा है, आप नाहक पैर हिला रहे हैं; क्योंकि चल नहीं रहे हैं, बैठे हैं, तो पैर क्यों हिला रहे हैं? तो पैर रुक जाएगा। क्योंकि आपको होश आ गया। लेकिन कारण आप भी नहीं बता सकते। महावीर कहेंगे कि अगर कुर्सी पर बैठ कर पैर ही हिल रहा है, तो होशपूर्वक ही हिलाओ, जानते हुए हिलाओ कि कोई कारण है। कारण जरूर है वहां; एक बेचैनी है भीतर। वह बेचैनी पैर से बह रही है। आप बैठे हैं, तो करवट ही बदलते रहेंगे बैठे हुए। वह बेचैनी करवट बदल रही है। भीतर एक बेचैनी का विक्षिप्त ज्वर चल रहा है। कोई चैन नहीं है।
इस बेचैनी को जानो और निकालो--लेकिन होशपूर्वक। इसको बेहोशी में मत बहने दो। क्योंकि यह बेहोशी में अगर बह रही है, तो इसका मतलब यह हुआ कि तुम न तो अपने मालिक हो, न अपने कृत्यों के मालिक हो सकते हो। क्योंकि जो इतने छोटे कृत्यों का मालिक नहीं है, वह सोचे कि मैं चोरी नहीं करूंगा, मैं क्रोध नहीं करूंगा, मैं हत्या नहीं करूंगा, उनका आप भरोसा मत करना।
कभी सोचते हैं कि आप हत्या करेंगे? आप कभी नहीं सोचते। जिन्होंने हत्या की हैं, उन्होंने भी करने के पहले कभी नहीं सोचा था कि हत्या करेंगे। मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि जो लोग निरंतर सोचते रहते हैं कि हत्या करेंगे, वे हत्या नहीं करते। अक्सर वे लोग हत्या करते हैं, जिन्होंने कभी सोचा ही नहीं। लेकिन किसी ज्वर के क्षण में, विक्षिप्तता के क्षण में घटना घट जाती है। वे किसी की गर्दन दबा देते हैं। दबाने के बाद ही उनको पता चलता है कि यह क्या कर बैठे! यह क्या हो गया!
लेकिन, यह आप भी कर सकते हैं! क्योंकि जिन्होंने किया है, वे आप ही जैसे भले लोग थे। उनमें कोई अंतर नहीं था करने के पहले। करने के पहले वे भी भरोसा नहीं कर सकते थे कि उनसे और हत्या हो सकती है! लेकिन उनसे हो गई। आपसे भी हो सकती है।
होने का सारा कारण मौजूद है--क्योंकि आप बेहोश हैं। आप जा रहे हैं, आपने कभी चोरी नहीं की, लेकिन आपको लाख रुपये के नोट रखे हुए दिखाई पड़ जाएं, चोर भी भीतर सोया है, फौरन जग जाएगा। वह आपको हजार दलीलें दे देगा। वह हजार विधियां खोज लेगा। वह दलीलें फिर बुद्धि को समझाने के लिए हैं ताकि होश न जाए; ताकि बुद्धि सो जाए। चोरी आपसे हो जाएगी। यह जो चोरी है, यह आप किसी भी क्षण कर सकते हैं। आप कहेंगे कि मैं नहीं कर सकता। उसका कारण है कि पांच रुपये का नोट रहा होगा, पांच लाख नहीं रहे होंगे। पांच रुपये के नोट की आप चोरी नहीं करते--उतना आपकी मूर्च्छा के लिए काफी नहीं है। हर आदमी की चोरी की सीमा है। गरीब आदमी पांच रुपये की कर लेता है, अमीर आदमी पांच लाख की करता है। और अमीर आदमी है, पांच करोड़ की करता है। वह पांच करोड़ की करने वाला पांच की चोरी नहीं करता, इससे आप यह मत समझ लेना कि अचोर है। पांच रुपये की चोरी करने वाला पांच कौड़ी की नहीं करेगा, इससे आप यह मत समझना कि वह अचोर है।
तब तक चोरी नहीं मिटेगी, जब तक मूर्च्छा नहीं मिटती। यह हो सकता है कि आपकी चोरी की कीमत हो कि कितनी कीमत पर आप चोरी करेंगे। छोटे आदमी छोटी चोरी करते हैं, बड़े आदमी बड़ी चोरी करते हैं। छोटे आदमी बहुत सी चोरी करते हैं--क्योंकि छोटी-छोटी करते हैं। बड़े आदमी थोड़ी चोरी करते हैं; कभी करते हैं; एकाध करते हैं--लेकिन बड़ी करते हैं। वह सब पूरा कर लेते हैं। पूरी जिंदगी की चोरी एक दफा में निपटा लेते हैं।
हर आदमी की कीमत है। और कीमत परिस्थिति पर निर्भर है, आपके होश पर निर्भर नहीं है। आप सभी तरह के पाप कर सकते हैं, जो किसी मनुष्य ने कभी किए हों।

इसे ध्यान में रखें। हर आदमी के भीतर पूरी मनुष्यता बैठी हुई है। जो पाप कभी भी हुआ है इस पृथ्वी पर, वह आप भी कर सकते हैं। उलटी बात भी सही है, जो पुण्य इस पृथ्वी पर कभी भी हुआ है, वह आप भी कर सकते हैं। आपके भीतर चंगीजखान बैठा है और महावीर भी बैठे हैं। दोनों की मौजूदगी है। और दोनों की मौजूदगी इस बात पर निर्भर करती है कि कौन सक्रिय हो जाएगा।
मूर्च्छा बढ़ती चली जाए तो आप चंगीजखान की तरह गिरने लगते हैं। होश बढ़ने लगे तो महावीर की तरफ उठने लगते हैं। परम होश के क्षण में वही आपके भीतर से भी होगा जो बुद्ध को, महावीर को, कृष्ण को, क्राइस्ट को हुआ है। परम बेहोशी के क्षण में वही आपसे होगा जो हिटलर से, नेपोलियन से, सिकंदर से, चंगीजखान से, तैमूरलंग से हुआ है।
आपके भीतर दोनों छोर मौजूद हैं। और ये जो सीढ़ियां हैं बीच की, ये होश
या मूर्च्छा की सीढ़ियां हैं। नीचे की तरफ उतरें तो मूर्च्छित होते चले जाते हैं। ऊपर की तरफ उठें तो होश से भरते चले जाते हैं। होश से भरते चले जाएं तो आप ऊपर उठते हैं। यह महावीर की मौलिक आधारशिला है।
"जो सब जीवों को अपने समान समझता है, अपने-पराए, सबको समान दृष्टि से देखता है, जिसने सब आश्रवों का निरोध कर लिया है, जो चंचल इंद्रियों का दमन कर चुका है, उसे पाप-कर्म का बंधन नहीं होता।"
जैसे-जैसे होश बढ़ता है, वैसे-वैसे सभी जीवों के भीतर वही ज्योति दिखाई पड़ती लगती है, जो मेरे भीतर है। जैसे-जैसे बेहोशी बढ़ती है, खुद के भीतर ही आत्मा का पता नहीं चलता, दूसरों के भीतर तो पता चलने का कोई सवाल ही नहीं है। जिसे मैं अपने भीतर नहीं जानता, उसे मैं दूसरे के भीतर कभी भी नहीं जान सकता हूं। जो मैं अपने भीतर जानता हूं, वही मुझे दूसरों के भीतर भी दिखाई पड़ सकता है।
ज्ञान का पहला चरण भीतर घटेगा। फिर उसकी किरणें दूसरों पर पड़ती हैं। मुझे यही पता नहीं है कि मेरे भीतर कोई आत्मा भी है। इतना बेहोश हूं कि तो भीतर मौजूद है, वह भी दिखाई नहीं पड़ता। आंखों पर धुंध है, नशा है। धुआं घिरा है भीतर, कुछ दिखाई नहीं पड़ता; लेकिन हम चलते चले जाते हैं।
मैंने सुना है, एक दिन जोर की वर्षा हो रही है और मुल्ला नसरुद्दीन अपनी पत्नी को लेकर कहीं जा रहा है। गाड़ी चला रहा है। वर्षा इतने जोर की है, लेकिन उसने वाइपर नहीं चलाया। तो उसकी पत्नी कहती है कि नसरुद्दीन अपनी को लेकर कहीं जा रहा है। गाड़ी चला रहा है। वर्षा इतनी जोर की है, लेकिन उसने वाइपर नहीं चलाया। तो उसकी पत्नी कहती है कि नसरुद्दीन, वाइपर तो चला लो, कुछ दिखाई नहीं पड़ता। नसरुद्दीन ने कहाः कोई मतलब नहीं, क्योंकि मैं चश्मा घर ही भूल आया हूं। मुझे वाइपर ही नहीं दिखाई पड़ रहे हैं। इसलिए वाइपर चले, न चले, मुझे क्या फर्क पड़ने वाला है!
और जोर से गाड़ी भगाए जा रहा है। एक पुलिसवाला उसको रोकता है और पूछता
है कि क्या तुम पागल हो गए हो? इतनी जोर से गाड़ी भगा रहे हो! इतना धुंध छाया हुआ है और वाइपर तुम्हारे चल नहीं रहे।
नसरुद्दीन कहता है कि एक्सीडेंट होने के पहले मैं घर पहुंच जाना चाहता हूं, इसलिए तेजी से चला रहा हूं।
मूर्च्छा में ऐसा ही हो रहा है। और आप जो भी कर रहे हैं, सुरक्षा ही के लिए कर रहे हैं। वह तेजी से चला रहा है, ताकि एक्सीडेंट होने के पहले घर पहुंच जाए। जो आपके भीतर अगर ऐसी घनी मूर्च्छा है, जहां कुछ भी नहीं दिखाई पड़ रहा है, जहां खुद का होना नहीं दिखाई पड़ रहा है, वहां दूसरे का होना दिखाई पड़ने का तो सवाल ही नहीं है। आपको अपना पता नहीं है, दूसरे का पता तो कैसे हो सकता है!
आत्मज्ञान समस्त ज्ञान का आधार है, स्रोत है। तो महावीर कहते हैंः "सब जीवों को अपने समान समझता है... ।" यह होश के बाद ही होगा।
"जो अपने-पराए को समान दृष्टि से देखता है... ।"
क्योंकि जैसे ही होश निर्मित होना शुरू होता है, यह साफ हो जाता है कि
न कोई अपना है, और न कोई पराया है। क्योंकि अपने-पराए के सब संबंध मूर्च्छा से निर्मित हुए थे। किसी को अपना कहा था, क्योंकि वह मूर्च्छा को भरता था; मेरे स्वार्थ को पूरा करता था; मेरे शोषण का आधार। किसी को पराया कहा था,

क्योंकि वह बाधा डालता था। कोई मित्र था, क्योंकि सहयोगी था। कोई दुश्मन था, क्योंकि बाधक था।
लेकिन जैसे-जैसे होश बढ़ता है, यह साफ होने लगता है कि न कोई सहयोगी हो सकता है, न कोई बाधक; न मुझे कोई सुख दे सकता है, न दुख; इसलिए न कोई मित्र हो सकता है, और न कोई शत्रु। तो अपना-पराया होने लगता है।
"जिसने आश्रवों का निरोध कर लिया है... ।"
जैसे ही होश बढ़ता है, पाप ग्रहण करना बंद हो जाता है। अभी तो हम आतुर होते हैं। कहीं से खबर हमें मिल जाए पाप की, तो हम एकदम आकर्षित होते हैं। हमारी सारी चेतना जैसे पाप के लिए तैयार बैठी थी। पाप में हमें रस है। अखबार देखते हैं; कहीं हत्या, कहीं लूट, कहीं किसी की पत्नी भाग गई किसी के साथ--आंखें एकदम अटक जाती है। बिना पढ़े फिर आगे नहीं बढ़ा जाता। जिस फिल्म में सभी कुछ शुभ हो, उसे देखने कोई जाएगा ही नहीं। अशुभ हमें खींचता है। जिस कहानी में सिर्फ संतों की चर्चा हो, उसमें कुछ कहानी जैसा न रह जाएगा।
आस्कर वाइल्ड ने कहा हैः अच्छे आदमियों का कोई चरित्र ही नहीं होता। उसने ठीक कहा है। अच्छे आदमी का कोई चरित्र नहीं होता, चरित्र बुरे आदमी का होता है। इसलिए अच्छे आदमी के आस-पास कहानी खड़ी नहीं हो सकती--चरित्र ही नहीं है! बुरे आदमी के आस-पास कहानी खड़ी होती है।
अच्छा आदमी निश्चरित्र होता है, ऐसा समझना चाहिएःशून्य होता है; खाली होता है। कुछ घटना उसके आस-पास घटती नहीं। न हत्या होती है, न चोरी होती है, न बेईमानी होती है--कुछ नहीं होता। वह खाली होता है, जैसे न होता, तो भी कोई फर्क नहीं पड़ता। अच्छा आदमी हट जाए तो कोई फर्क नहीं पड़ता। क्योंकि अच्छा आदमी कुछ कर ही नहीं रहा है।
महावीर कहते हैंः जैसे ही होश बढ़ना शुरू होता है, वैसे ही पाप के प्रति जो हमारा प्रबल आकर्षण है, जो आश्रव है, जो हमें खींच रहा है और हम खिंचे जा रहे हैं, वह गिरने लगता है। पाप के प्रति हमारी रुचि क्षीण होने लगती है। आप चाहे पाप न कर रहे हों, लेकिन कोई पाप करता है, उसमें आपका रस है। वह रस भी पाप करने जैसा ही है। वह पाप है प्राक्सी के द्वारा। दूसरे के माध्यम से आप पाप का मजा ले रहे हैं।
आपने देखा, फिल्म देखते वक्त आप आइडेंटिफाइड हो जाते हैं किसी पात्र से, आप एक हो जाते हैं किसी पात्र से। और वह पात्र आपके जीवन को जीने लगता है। आप अपने भीतर से जो निकालना चाहते थे और नहीं निकाल पाए हैं, वह आप उस पात्र में निकालते हैं। यह प्राक्सी से जीवन है। यह अभिनेता के माध्यम से आप काम कर रहे हैं। इसमें आपको निकास होता है--मनोवैज्ञानिक कहते हैं, कैथार्सिस होता है। वे ठीक कहते हैं। अगर आप खून से भरी फिल्म, हत्याओं से भरी फिल्म देख कर घर लौटते हैं, तो आपकी खुद की हत्या करने की वृत्ति और खून करने की वृत्ति थोड़ी सी राहत पाती है। किसी के द्वारा आपने यह काम कर लिया। घर आप हलके होकर लौटते हैं।
मनोवैज्ञानिकों का तो कहना है कि यह फिल्में हत्या आप में बढ़ाती नहीं, कम करती हैं। उनकी बात में सत्य हो सकता है। क्योंकि ये आपको थोड़ा सा हत्या करने का मौका दे देती हैं; और बिना किसी झंझट के, बिना किसी अपराध में फंसे। थोड़े से पैसे फेंक कर और तीन घंटे अपराध करके आप घर वापस आ जाते हैं।
क्या आपने देखा है, अगर फिल्म में कोई अील, कामुक दृश्य हो, तो आप कामोत्तेजित हो जाते हैं। उसका अध्ययन नहीं किया गयाः किया जाना चाहिए। लोगों पर यंत्र लगाए जा सकते हैं, जो उनके मस्तिष्क की खबर दें। जब कोई नग्न स्त्री चित्र में आती है, तो आप कामोत्तेजित हो जाते हैं। वह कामोत्तेजना एक तरह को संभोग हैः प्राक्सी... ।
मुल्ला नसरुद्दीन एक फिल्म में बैठा हुआ है। खूब पी गया है। पहला शो खत्म हो गया है, लेकिन वह वहां से हटता नहीं। नौकर आकर उसे कहते हैं कि यह शो खत्म हो गया है। वह कहता है, दूसरी टिकट लाकर यहीं दे दो। दूसरा शो भी खत्म हो गया। वह कहता है, तीसरी टिकट भी लाकर... । मैनेजर भागा हुआ आता है... आप होश में हैं, नसरुद्दीन?

नसरुद्दीन कहता है कि जरा कुछ कारण है।
मैनेजर पूछता है, कारण क्या है?
फिल्म में एक दृश्य है कि कुछ स्त्रियां कपड़े उतारकर तालाब में कूदने
की तैयारी कर रही हैं। वे बिल्कुल उन्होंने कपड़े उतार दिए हैं। आखिरी कपड़ा उतारने को रह गया है और तभी एक रेलगाड़ी दृश्य को ढांक लेती है। पानी में कूदने की आवाज आती है, लेकिन तब तक उस रेलगाड़ी ने सब गड़बड़ कर दिया। वे पानी में खड़ी हैं। वह रेलगाड़ी चली गई।
नसरुद्दीन कहता है, कभी तो रेलगाड़ी लेट होगी। मैं यहां से हटने वाला नहीं हूं, कब तक ठीक वक्त पर आती चली जाएगी! एक सेकेंड भी लेट हो गई कि... ! आदमी पाप के लिए बिल्कुल आतुर है। महावीर इस पाप की आतुरता को "आश्रव" कहते हैं। जैसे होश बढ़ता है, वैसे ही ये आश्रव क्षीण होने लगते हैं।
"जो चंचल इंद्रियों का दमन कर चुका है... ।"
यह "दमन" शब्द समझ लेना जरूरी है। क्योंकि जिन अर्थों में महावीर ने ढाई हजार साल पहले इसका उपयोग किया, उस अर्थ में आज इसका उपयोग नहीं होता। दमन का आज अर्थ होता है, रिप्रेशन। और फ्रायड ने इसका अलग अर्थ साफ कर दिया है, किसी चीज को दबा लेने का नाम दमन है।
महावीर के लिए दमन का अर्थ थाः किसी चीज का शांत हो जाना। दम का अर्थ हैः शांत हो जाना। दमन का अर्थ है, कोई चीज इतनी शांत हो गई कि अब आप में हिलती-डुलती नहीं। महावीर के लिए दमन का अर्थ दमन नहीं था, रिप्रेशन नहीं था। महावीर के लिए अर्थ थाः किसी चीज का बिल्कुल शांत हो जाना, निर्जीव हो जाना।
तो जिसकी चंचल इंद्रियां इतनी शांत हो गई हैं। वह जैसे ही होश बढ़ता है, चंचल इंद्रियां शांत हो जाती हैं। उनकी चंचलता हमारी बेहोशी के कारण है। जैसे हवा चलती है तो वृक्ष के पत्ते कंपते हैं; हवा रुक जाती है तो पत्ते रुक जाते हैं। आप पत्तों को रोक कर हवा को नहीं रोक सकते। कि एक-एक पत्ते को पकड़ कर रोकेंगे? और पत्ते आप पकड़ कर रोक भी लें तो भी कोई फर्क नहीं पड़ेगा--हवा चल रही है। पत्तों को रोकना बिल्कुल पागलपन होगा, क्योंकि हवा धक्के मारती ही रहेगी। हवा रुक जाए, पत्ते रुक जाते हैं।
आपकी इंद्रियां चंचल हैं, क्योंकि भीतर मूर्च्छा है, हवा चल रही है। मूर्च्छा में चंचलता होगी। सिर्फ होश में स्थिरता हो सकती है। तो जैसे ही भीतर की हवा चलनी बंद हो जाती है, इंद्रियां थिर हो जाती हैं। कोई इंद्रियों को थिर करके मूर्च्छा से नहीं ऊपर उठता, लेकिन मूर्च्छा से ऊपर उठ जाए तो इंद्रियां थिर हो जाती हैं।
"चंचल इंद्रियों का जो दमन कर चुका है... ।"
जो पार हो चुका है इंद्रियों की अशांति के, और इंद्रियां शांत हो गईं-- उसे पाप-कर्म का बंधन नहीं होता।
"पहले ज्ञान है, बाद में दया--पढमं नाणं तओ दया।"
यह सूत्र बड़ा अदभुत है। और जैन इस सूत्र को बिल्कुल भी नहीं समझ पाए
या बिल्कुल ही गलत समझे। इस सूत्र से क्रांतिकारी सूत्र खोजना कठिन है-- पहले ज्ञान बाद में दया।
महावीर कहते हैंः अहिंसा पहले नहीं हो सकती--पहले आत्मज्ञान है। पहले भीतर का ज्ञान न हो, तो जीवन का आचरण दयापूर्ण नहीं हो सकता; अहिंसापूर्ण नहीं हो सकता। क्योंकि जिसके भीतर ज्ञान का ही उदय नहीं हुआ, उसके जीवन में हिंसा होगी ही। वह लक्षण है। उसे हम ठीक से समझ लें।
एक आदमी को बुखार चढ़ा है। शरीर का गर्म हो जाना लक्षण है, बीमारी नहीं है। लेकिन कोई नासमझ यह कर सकता है कि ठंडे पानी से इसको नहलाओ ताकि इसकी गर्मी कम हो जाए; बीमारी ठीक हो जाएगी। बुखार बीमारी नहीं है, बुखार तो केवल लक्षण है। बीमारी तो भीतर है। उस बीमारी के कारण शरीर उत्तप्त है। क्योंकि शरीर के कोष्ठ आपस में लड़ रहे हैं। शरीर में एक संघर्ष छिड़ा है। शरीर में कोई विजातीय जीवाणु प्रवेश कर गए हैं, और शरीर के जीवाणु उन जीवाणुओं से लड़ रहे हैं। उस लड़ने के कारण गर्मी पैदा हो गई है। शरीर एक कुरुक्षेत्र बना है। उस कुरुक्षेत्र में शरीर उत्तप्त हो गया है।

उत्तप्तता बीमारी नहीं है। उत्तप्तता केवल बीमारी की खबर है। और उत्तप्तता शुभ है, क्योंकि वह खबर दे रही है कि कुछ करो--जल्दी करो। ठंडे पानी से उसको ठंडा किया जा सकता है, लेकिन इससे बुखार के मिटने की संभावना कम, मरीज के मिट जाने की संभावना ज्यादा है।
लक्षणों से लड़ना अज्ञान है। आप हिंसक हैं, क्योंकि भीतर कोई मूर्च्छा है। हिंसा लक्षण है, बीमारी नहीं। आप चोर हैं, दुष्ट हैं, कामुक हैं, पापी हैं--ये लक्षण हैं। इनसे लड़ने की कोई जरूरत नहीं है। इनसे जो लड़ता है, वह भटक जाएगा। उसने चिकित्सा-शास्त्र का प्राथमिक नियम भी नहीं समझा। यह केवल खबर दे रहे हैं कि भीतर आत्मा सोई हुई है--बस, इतनी खबर दे रहे हैं। आत्मा को जगाओ, ये बदल जाएंगे।
अहिंसक होने से कोई आत्मज्ञानी नहीं होता, आत्मज्ञानी होने से अहिंसक होता है। पहले ज्ञान, फिर दया। लेकिन जैन इसको बिल्कुल ख्याल में नहीं ले पाए। वे "पहले दया, फिर ज्ञान" की पूरी कोशिश कर रहे हैं। पहले अहिंसा साधो, आचरण साधो, व्रत-नियम साधो--सब तरह से बाहर की पहले व्यवस्था करो, फिर भीतर की। वे कहते हैं कि पहले बाहर और फिर भीतर। और महावीर कहते हैंः पहले भीतर और फिर बाहर।
बाहर अटक जाना साधक के लिए सबसे खतरनाक है। क्योंकि वह अटकाव इतना लंबा है कि जन्मों लग सकते हैं और उससे छुटकारा न हो; और छुटकारा होगा नहीं।
हिंसा को बाहर से रोको, बुखार को बाहर से रोका--बुखार दूसरी तरफ से निकलना शुरू हो जाएगा। और जब दूसरी तरफ से निकलेगा तो ज्यादा खतरनाक होगा। पहला निकलना नैसर्गिक था; दूसरा विकृत, परवर्टेड होगा।
कामवासना को बाहर से रोक लो, कामवासना दूसरी तरफ से निकलना शुरू हो जाएगी। और जब दूसरी तरफ से निकलना रोगपूर्ण होगा। पहला तो कम से कम प्राकृतिक था, यह अप्राकृतिक होगा।
कामवासना से लड़ने से कोई ब्रह्मचर्य को उपलब्ध नहीं होता, लेकिन स्वयं का बोध आना शुरू हो जाए, ब्रह्मचर्य उसकी छाया की तरह पीछे आने लगता है।
आचरण छाया है। छाया को खींचने की कोशिश मत करो। उसे कोई भी खींच नहीं सकता। आप जहां होओगे, वहां छाया पहुंच जाएगी। अगर आप आत्मा में हो, तो छाया आत्मिक हो जाएगी। अगर आप शरीर में हो, तो छाया शारीरिक होगी। फिर आप कुछ भी करो, आपके करने से कोई फर्क नहीं पड़ता। इसलिए मौलिक करने की जो बात है, गहरी करने की जो बात है, वह आत्मिक ज्ञान है।
महावीर कहते हैं, वह विवेक से फलित होगा। जितना भीतर होश जगेगा, उतनी भीतर की प्रतीति होगी। वही ज्ञान है।
पहले ज्ञान, बाद में दया। इसी क्रम पर--यह क्रम बहुत मूल्यवान है-- त्यागी अपनी संयम यात्रा पूरी करता है। इसी क्रम पर--पहले ज्ञान फिर दया।
लेकिन आदमी होशियार है, और अपने मतलब की बातें निकालता रहता है और गणित बिठाता रहता है।
इस सूत्र को बदलना तो बहुत मुश्किल है।
मैं एक जैन मंदिर में गया। एक मुनि को बड़ी इच्छा थी कि मुझसे मिलें।
वे आ नहीं सकते थे मिलने क्योंकि उनके आस-पास जो गृहस्थों का जाल है, कारागृह है, वह उन्हें आने नहीं देता।
यह बड़े मजे की बात है। मुनि जाता है मुक्त होने। एक गृहस्थी से छूटता
है, पच्चीस गृहस्थियों के चक्कर में फंस जाता है।
उन मुनि ने खुद मुझे खबर भेजी कि मैं आ नहीं सकता, क्योंकि श्रावक बाधा डालते हैं। वे कहते हैं, आपको जाने की क्या जरूरत? तो मैंने कहा कि मैं खुद आऊंगा, क्योंकि मुझे बाधा डालने वाला कोई भी नहीं है। मैं श्रावकों को बाधाएं डालता हूं, मुझे बाधा डालने वाला कोई नहीं है।
मैं गया। पर मैंने उनसे कहा कि आप भ्रांति में हैं कि श्रावक आपको बाधा डालते हैं। श्रावकों से आप डरते हैं, उसका कुछ कारण है। और कारण यह है कि आप उनसे साफ क्यों नहीं कहते कि मुझे पता नहीं है, मैं पूछने जाना चाहता

हूं। श्रावकों को आप यही समझाए जा रहे हैं कि मुझे ज्ञान उपलब्ध हो गया है, और ज्ञान उपलब्ध नहीं हुआ है। इसलिए मुझसे मिलने आना चाहते हैं।
वे कहने लगे, जोर से मत बोलिए। वे लोग पास ही बैठे हैं। वे सब दरवाजे
पर बैठे सुन रहे हैं।
वे आपको नहीं बांधे हुए हैं--आपका भ्रांत अहंकार कि आपको ज्ञान हो गया है। और उनके पीछे तख्ती लगी है, "पढमं नाणं तओ दया।" मैंने कहाः यह पीछे तख्ती किसलिए लगा रखी है? तो उन्होंने क्या व्याख्या की, वह मैं आपको कहना चाहता हूं। उन्होंने कहा कि नहीं, इसका मतलब यह है कि पहले शास्त्रज्ञान, पहले पढ़ कर शास्त्र से जानना पड़ेगा और फिर अहिंसा साधनी पड़ेगी।
महावीर विवेक के सूत्र की बात कर रहे हैं। इसमें शास्त्र का कहीं कोई संबंध नहीं है। और महावीर शास्त्र की बात तो कह ही नहीं सकते, क्योंकि महावीर जैसा शास्त्र-विरोधी आदमी ही नहीं हुआ। महावीर हिंदू धर्म के विपरीत गए--सिर्फ इसलिए कि हिंदू धर्म शास्त्रवादी धर्म हो गया। वेद परम हो गया। तो महावीर अवैदिक हैं। वे कहते हैं, वेद परम नहीं है। जो आदमी कहता है, वेद परम नहीं है, वह शास्त्र को परम नहीं कह सकता। और शास्त्रज्ञान से कहीं ज्ञान हुआ है?
तो मैंने उनसे पूछा कि शास्त्र तो आप पढ़ चुके हैं, ज्ञान हो चुका? अगर
हो चुका तो आपकी व्याख्या ठीक है, और अगर ज्ञान नहीं हुआ तो व्याख्या में भूल है।
महावीर सीधा कह रहे हैं कि पहले ज्ञान, फिर दया। पहले भीतर का होश-- अवेयरनेस, अप्रमत्तता, जागरूकता, सावधानी--फिर बाहर का आचरण अपने साथ-साथ चलने लगता है। जो हमें दिखाई पड़ जाए कि गलत है, वह बंद हो जाता है जीवन से। जो हमें दिखाई पड़ जाए कि सही है, वह होना शुरू हो जाता है।
और अगर आपको पता चलता है कि क्या सही है और क्या गलत है, फिर भी गलत आप करते हैं और सही नहीं करते, तो उसका मतलब हैः वह शास्त्रज्ञान है, ज्ञान नहीं। और शास्त्रज्ञान अज्ञान से भी खतरनाक हो सकता है, क्योंकि उसमें भ्रांति होती है कि मैं जानता हूं--बिना जाने लगता है कि मैं जानता हूं। इसलिए पंडित पापी से भी ज्यादा भटक जाता है। और पापी तो कभी-कभी मोक्ष में पहुंच जाते सुने हैं, पंडित कभी नहीं पहुंच पाता। हालांकि पंडित गणित बिठाता रहता है। और हर गणित जिसको वह दूसरे से सरल करता है, जिससे वह हल करता है पहले को, जिस दूसरे गणित से हल करता है, वह दूसरा पहले से भी ज्यादा उपद्रव में ले जाता है। फिर उसको दस तरकीबें और दस तर्क और खोजने पड़ते हैं।
मुल्ला नसरुद्दीन जा रहा है ट्रेन से अपनी पत्नी के साथ। ट्रेन भागी
जा रही है साठ-सत्तर मील की रफ्तार से। एक खेत में, एक पहाड़ की खाई के करीब, एक भेड़ों का बड़ा भारी झुंड है। पत्नी कहती है, कितनी भेड़ें हैं। नसरुद्दीन कहता है, ठीक सत्रह सौ चौरासी! पत्नी कहती है, क्या कह रहे हो? इतनी शीघ्रता से तुमने गिन भी लिया? ठीक सत्रह सौ चौरासी?
नसरुद्दीन ने कहा कि सीधा गिनना तो संभव नहीं है--इट इ.ज इंपासिबल टु काउंट डाइरेक्टली। आइ डिड इट इनडाइरेक्टली--मैंने जरा यह परोक्ष रूप से किया। पत्नी ने उससे पूछा कि वह कौन सा परोक्ष रूप?
तो नसरुद्दीन ने कहा-- एक छोटे से छोटा बच्चा भी जानता है--ईवन ए स्कूल बाय नोज द ट्रिकः फर्स्ट द लेग्ज, देन डिवाइड देम बाई फोर--पहले पैर गिन लो, फिर चार से भाग दे दो। पहले मैंने पैर गिने, फिर चार से भाग दे दिया। ठीक सत्रह सौ चौरासी भेड़ें हैं।
पंडितों के सारे गणित ऐसे हैं। जिस बात से वे पहले उपद्रव हो हल करते हैं, वह और भी ज्यादा उपद्रव के हैं। फिर उनसे और पूछिए तो वे और चार तर्क खड़े कर देते हैं। एक रेश्नेलाइजेशन का जाल है। वे खड़ा करते चले जाते हैं। लेकिन उससे मूल भूल मिटती नहीं। हां, जो नहीं समझ पाते हैं गणित को, उनको शायद चमत्कार हो जाता हो। शायद वे सोचते हों कि जरूर कोई रहस्य होगा, अभी इतना गणित हल हो रहा है। लेकिन पहली, प्राथमिक भूल मिटती नहीं।
बुनियादी भूल यह है कि कोई भी चरित्र पैदा नहीं होता बोध के बिना। अगर बोध के बिना चरित्र पैदा करने की कोशिश की, तो चरित्र थोथा और पाखंड होगा--

हिपोक्रेसी होगा। और ऐसा चरित्र नरक भला ले जाए, मोक्ष नहीं ले जा सकता। और ऐसा चरित्र यहां भी पीड़ा देगा; यहां भी कष्ट देगा--क्योंकि झूठा होगा, जबरदस्ती होगा।
मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं कि जिंदगी भर हमने कोई चोरी नहीं की; बेईमानी नहीं की--लेकिन कैसा नियम है जगत का कि चोर और बेईमान धनपति हो गए हैं; आनंद लूट रहे हैं; कोई पद पर है; कोई प्रतिष्ठा पर है; कोई सिंहासन पर बैठा हुआ है, और हम ईमानदार रहे और दुख भोग रहे हैं!
उनको मैं कहता हूं कि तुम सच्चे ईमानदार नहीं हो। नहीं तो ईमानदारी
से ज्यादा सुख तुम्हें महल में दिखाई नहीं पड़ सकता था। तुम्हारी ईमानदारी पाखंड है। तुम भी बेईमान हो, लेकिन कमजोर हो। वह बेईमान ताकतवर है। वह साहसी है। वह कर गुजरा, तुम बैठे सोचते रह गए। तुम सिर्फ कायर हो, पुण्यात्मा नहीं हो। तुममें बेईमानी करने की हिम्मत भी नहीं है, लेकिन बेईमानी का फल मिलता है, उसमें रस है। तुम चाहते हो कि बेईमानी न करूं और महल हमें मिल जाए। तब तुम जरा ज्यादा मांग रहे हो। बेईमान बेचारे ने कम से कम बेईमानी तो की; कुछ तो किया; दांव पर तो लगाया ही; झंझट में तो पड़ा ही; वह जेल में भी हो सकता है। उतनी उसने जोखम ली।
जोखम हमेशा हिम्मतवर का लक्षण है। तुम सिर्फ कमजोर हो, और कमजोरी को तुम ईमानदारी कह रहे हो। तुम नहीं कर सकते बेईमानी, इसका मतलब यह नहीं है कि तुम ईमानदार हो। इसका कुल मतलब इतना है कि तुममें साहस की कमी है। अगर तुम ईमानदार होते, तो तुम कहते कि बेचारा महलों में सड़ रहा है। बेईमानी करके देखो--यह फल मिला--कि महलों में सड़ रहा है; कि सिंहासन पर सड़ रहा है। तुम्हें दया आती, और तुम आनंदित होते।
लेकिन एक बड़े मजे की बात है कि बेईमान कभी ईमानदारों की ईर्ष्या नहीं करते। यह बड़े मजे की बात है। और ईमानदार हमेशा बेईमानों की ईर्ष्या करते हैं। इससे बात साफ है कि वह जो ईमानदार है, झूठ है; धोखा है। उसकी ईमानदारी ऊपरी कवच है, उसका आंतरिक प्रकाश नहीं है। और वह जो बेईमान है, वह कम से कम सच्चा है; साफ है, कम से कम जटिल नहीं है; उलझा हुआ नहीं है।
भला आदमी... उसका भला होना ही इतना बड़ा आनंद है कि वह क्यों ईर्ष्या करेगा? दया कर सकता है। लेकिन आप सब भले आदमियों को ईर्ष्या करते पाएंगे। वे समझते हैं कि अपनी भलाई की वजह से वे असफल हो गए हैं।
भलाई की वजह से दुनिया में कोई अभी असफल नहीं होता और बुराई की वजह से दुनिया में कोई सफल नहीं होता। सफलता का कारण हैः बुराई के साथ कोई साहस जुड़ा है; कोई सच्चाई जुड़ी है; यह जरा समझ लें। असफलता का कारण हैः भलाई के साथ कोई कमजोरी, कोई कायरता, कोई नपुंसकता जुड़ी है।
बेईमान अपनी बेईमानी में जितना साहसी है, ईमानदार अपनी ईमानदारी में उतना साहसी नहीं है, वह साहस प्राण ले लेता है, उसकी कमी सब गड़बड़ कर जाती है। जगत में सफलता आथेंटिक, प्रामाणिक को मिलती है, चाहे वह प्रामाणिक अपनी बेईमानी में ही क्यों न हो; निष्ठावान को मिलती है, चाहे उसकी निष्ठा गलत में ही क्यों न हो।
सत्य भी कमजोर है अगर निष्ठा उसके पीछे नहीं है। लेकिन पाखंडी... । यह
तो आप पक्का जानते हैं कि आपको बेईमान पाखंडी मिलना मुश्किल है कि ऊपर-ऊपर बेईमानी और भीतर-भीतर ईमानदार। कभी आपने ऐसा कोई पाखंड देखा है कि ऊपर-ऊपर बेईमानी, ऊपर-ऊपर चोरी, असत्य; भीतर-भीतर सब ठीक।
नहीं, अधर्म में कोई पाखंडी होते ही नहीं। सिर्फ में पाखंडी होते हैं--भीतर बेईमानी, चोरी, बदमाशी, सब--बाहर-बाहर अच्छा, कपड़ों पर सब रंग-रोगन, भीतर सब गंदगी। इस पाखंड, इस द्वंद्व, इस आंतरिक और बाह्य के विरोध के कारण, जिसको हम भला आदमी कहते हैं, वह असफल होता है।
सफलता उसको मिलती है तो एकजुट है। और मैं कहता हूं कि बुराई तक सफल हो जाती है अगर एकजुट हो, तो जिस दिन भलाई एकजुट होती है, उसकी सफलता का तो कोई मुकाबला नहीं कर सकता। सारा जगत उसके विपरीत हो जाए, तो भी उसकी सफलता का कोई मुकाबला नहीं हो सकता। लेकिन हम हमेशा बुरे में निष्ठावान होते हैं।

मुल्ला नसरुद्दीन एक कुत्ता बेचना चाहता है। बाजार में खड़ा है।
कुत्ता बड़ा खूबसूरत है; बड़ा शानदार है; देखने में बड़ा ताकतवर है। एक आदमी खरीदने आता है। मुल्ला कहता है कि तीन सौ रुपया।
वह आदमी कहता है कि जरा ज्यादा दाम बता रहे हैं! दिस इ.ज टू मच।
मुल्ला नसरुद्दीन कहता है, पहले इस कुत्ते को तो देखो ठीक से। दिस डाग इ.ज आलसो टू मच! इस कुत्ते की शान देखो! इसका सौंदर्य देखो!
वह आदमी कहता है, वह तो बात ही मत करो! डोंट टॉक अबाउट हिज फेथफुलनेस।
आइ हैव सोल्ड हिम सेवन टाइम्स, ही कम्स बैक विदिन ट्वेल्व आवर्स--इसकी निष्ठा की तो बात मत करो! सात दफे बेच चुके, बारह घंटे में वापस आ जाता है। इसकी तुम फिकर ही मत करो। मालिक के प्रति इसकी निष्ठा तो बिल्कुल अटूट है! जहां हम जी रहे हैं, वहां अगर दुख है, पीड़ा है और हम सोचते हैं कि हम शुभ हैं, धार्मिक हैं, तो समझना, कहीं भूल हो रही है। धार्मिक व्यक्ति को पीड़ा होती ही नहीं, हो नहीं सकती। वह असंभव है। शुभ के साथ दुख का कोई संबंध ही नहीं है। और अगर दुख है, तो समझना कि सुख झूठ है, धोखा है। महावीर इसीलिए कहते हैं--पहले ज्ञान बाद में दया।
"इस क्रम पर त्यागी वर्ग अपनी संयम-यात्रा के लिए ठहरा हुआ है।" यही क्रम है, पहले ज्ञान फिर दया। पहले आंतरिक बोध, पहले भीतर का दीया जले, फिर आचरण में प्रकाश।
"भला, अज्ञानी मनुष्य क्या करेगा? श्रेय तथा पाप को वह जान ही कैसे सकेगा?" जिसके भीतर का दीया बुझा हुआ है, उसे कैसे पता चलेगा, क्या प्रकाश है और क्या अंधेरा है? क्या करने योग्य है, क्या करने योग्य नहीं है? कहां जाऊं, कहां न जाऊं? उसे दिशाओं का कोई भी पता नहीं हो सकता है। इसलिए विवेक, होश पहली शर्त है।
"सुन कर ही कल्याण का मार्ग जाना जाता है। सुन कर ही पाप का मार्ग जाना जाता है। दोनों ही मार्ग सुन कर जाने जाते हैं। बुद्धिमान साधक का कर्तव्य है कि पहले श्रवण करे, फिर अपने को जो श्रेय मालूम हो, उसका आचरण करे।"
यह बात ठीक से समझ लेनी चाहिए। और महावीर की परंपरा में इसका बड़ा मूल्य है। इतना मूल्य है कि महावीर ने अपने साधक को "श्रावक" कहा है। श्रावक का अर्थ हैः ठीक सुनने वाला--राइट लिसनर। हम सभी सुनते हैं। इसलिए महावीर कुछ ज्यादती करते करते मालूम पड़ते हैं। वह ठीक सुनने का क्या मतलब? जिसके कान ठीक हैं, वह ठीक सुनने वाला है। कान खराब हों तो ठीक सुनने वाला नहीं है।
लेकिन महावीर कहते हैंः ठीक सुनने वाला वह है जो सुनते समय विचार का बिल्कुल ही त्याग कर देता है। जो सिर्फ सुनता है। जिसकी सारी ऊर्जा और सारी चेतना सुनने में लग जाती है। जो सुनते वक्त न तो पक्ष सोचता है, न विपक्ष सोचता है। न तो कहता ठीक, न कहता गलत। न कोई तर्क खड़े करता, न भीतर द्वंद्व करता। न अपने शास्त्रों से मिलाता, न अपने अतीत के साथ तुलना करता। जो सुनते वक्त एक शून्य की भांति हो जाता है।
इसका यह मतलब नहीं है कि सुन कर वह अंधा हो जाता है। महावीर कहते हैं, पहले सुन ले साधक पूरा, फिर सोचे। लेकिन सुनने की घटना पहले घट जाए। आमतौर से ऐसा नहीं होता है। जब आप सुनते हैं, तभी आप सोचते रहते हैं। और आपका सोचना सुनने को विकृत कर देता है। फिर जो आप सुन कर जाते हैं उसमें जो कहा गया है वह शायद ही होता है। आपने जो जोड़ लिया वही होता है। आपकी व्याख्याएं सम्मिलित हो जाती हैं।
आपका मन अगर सम्मिलित हो जाए; आपके अतीत का कचरा, आपकी स्मृतियां अगर सुनते वक्त हमला बोल दें, तो जो भी आपने सुना वह अशुद्ध हो गया। उस अशुद्ध के आधार पर कोई साधना के जगत में जा नहीं सकता है। इसलिए महावीर कहते हैंः पाप भी सुन कर जाना जाता है, पुण्य भी सुन कर जाना जाता है।
प्राथमिक चरण में, जहां हम अंधेरे में खड़े हैं, हम उनसे ही सुनेंगे, जो प्रकाश में पहुंचे हैं। पहली आवाज इस अंधेरे में हमें सुनाई पड़ेगी उनकी, जो कि प्रकाश को उपलब्ध हो गए हैं। उनकी आवाज के सहारे हम भी बाहर जा सकते हैं। लेकिन पहले सुन लेना, बिल्कुल ठीक से सुन लेना जरूरी है।

हम अगर रेडियो भी सुनने बैठते हैं, तो ठीक से ट्यूनिंग करते हैं। दो- तीन स्टेशन एक साथ लगे हों, तो आप नहीं मानेंगे कि आप जो सुन रहे हैं, वह ठीक है। रेडियो के साथ हम जितनी समझदारी बरतते हैं, उतनी अपने भीतर नहीं बरतते। वहां कई स्टेशन एक साथ लगे रहते हैं।
अब मैं बोल रहा हूं--आपके भीतर कई स्टेशन साथ में बोल रहे हैं। कुछ आपने पढ़ा है, वह बोल रहा है। कुछ और सुना है, वह बोल रहा है। किसी धर्म को आप मानते हैं, वह बोल रहा है। किसी गुरु को आप मानते हैं, वह बोल रहा है। और आप तो बोल ही रहे हैं निरंतर! और आप कोई एक नहीं हैं, आप पूरी एक भीड़ हैं! आपके भीतर बाजार है--शेयर मार्केट, जो भीतर चल रहा है। वहां कुछ सुनाई नहीं पड़ रहा है कि क्या हो रहा है।
महावीर कहते हैंः श्रवण, शुद्ध श्रवण। जब मन बिल्कुल शून्य है। सिर्फ सुन रहा है, सोच नहीं रहा है और पूरी तरह आत्मसात कर रहा है, जो कहा जा रहा है, ताकि एक दफा पूरा का पूरा भीतर साफ हो जाए, फिर सोच लेंगे; फिर अपनी बुद्धि का पूरा प्रयोग कर लेंगे। इसलिए महावीर अंधश्रद्धा के आग्रही नहीं हैं। कोई यह न समझे कि महावीर कहते हैंः जो मैं कहता हूं, वह मान लो। महावीर कहते हैं, सुन लो। मानने की जल्दी नहीं है। न मानने की भी जल्दी मत करो। पहले सुन लो ताकि तुम न्यास कर सको। और फिर पीछे सोच लेना।
"सुन कर कल्याण का मार्ग जाना जाता है। सुन कर ही पाप का मार्ग जाना जाता है। दोनों ही मार्ग सुन कर जाने जाते हैं। बुद्धिमान साधक का कर्तव्य है कि पहले श्रवण करे और फिर अपने को जो श्रेय मालूम हो, उसका आचरण करे।"
अंततः आचरण के पहले, साधना में उतरने के पहले निर्णय करे। लेकिन वह निर्णय तभी किया जाए, जब शुद्ध श्रवण घट चुका हो। इसलिए महावीर ने कहा कि चार तीर्थ हैं जिनसे मोक्ष जाया जा सकता हैः श्रावक, श्राविका, साध्वी, साधु। चार तीर्थ हैं।
यह बड़े मजे की बात है कि महावीर के कहा कि अगर कोई ठीक से सुन भी ले, तो
भी मोक्ष जा सकता है। ठीक सुनना भी एक बड़ी आंतरिक घटना है। कृष्णमूर्ति बहुत जोर देते हैंः राइट लिसनिंग, ठीक से सुनो। पर उनके सामने लोग बैठे हैं, जो नोट करते रहते हैं। वे सुनेंगे कैसे! उनकी फिकर इसमें है कि नोट करने में कोई चूक न जाए, घर जाकर फिर... । जिंदा आदमी बोल रहा है, वे नोट कर रहे हैं।
एक सज्जन को मैं यहां भी देखता हूं, वे नोट करते रहते हैं। वे लेखक हैं। वे किताबें लिखते हैं। उनको यहां सुनने से मतलब नहीं है। उनको कुछ समझने से भी मतलब नहीं है। उन्हें यहां से कुछ इकट्ठा कर लेना है, जिसको जाकर वे किताब में लिख देंगे। आपको सुनने का एक क्षण मिले, उसको आप गंवा देते हैं। आप कुछ और कर रहे हैं, जब सुना जा सकता था। और जब सुना नहीं जा सकेगा, तब आप सोचेंगे। सब विकृत हो जाएगा।
महावीर कहते हैं कि अगर कोई ठीक से सुन ले, श्रावक हो, तो भी सीधा मोक्ष जा सकता है। उनकी आवाज ठीक से सुन ले, जो प्रकाश में उठ गए हैं--तो उस आवाज की दिशा को पकड़ कर... ।
ध्यान रखें, यह बड़ा फर्क है। क्या कहा गया है, वह उतना मूल्यवान नहीं है। किस दिशा से आवाज आई है, उस दिशा को पकड़ कर श्रावक भी मुक्त हो सकता है। आप अंधेरे में खड़े हैं और एक आवाज आती है। आवाज में क्या कहा गया है, वह उतना सवाल नहीं है, आवाज किस दिशा से आती है, अगर उस दिशा को आप पकड़ लें, तो थोड़ी ही देर में अंधेरे के बाहर हो जाएंगे।
महावीर और बुद्ध या कृष्ण के वचन अर्थों से नहीं समझे जाते, दिशाओं के बोध... । जब महावीर बोलते हैं, तो किस दिशा से बोलते हैं? कहां से, किस महाशून्य से वह आवाज आती है? उस दिशा को आप पकड़ लें, आप महाशून्य के पथ पर चल पड़ें। और फिर, फिर आप सोचें, आचरण करें, निर्णय करें--क्या श्रेय है, क्या अश्रेय है।
जो नासमझ हैं, वे जल्दी निर्णय कर लेते हैं। जो समझदार हैं, वे प्रतीक्षा करते हैं; आत्मसात हो जाने देते हैं; खून-हड्डी में मिल जाने

देते हैं उस आवाज को, ताकि दिशा का बोध होने लगे। और दिशा का बोध असली बात है।
महावीर मूल्यवान नहीं हैं, किस दिशा से महावीर की आवाज आ रही है, वह मूल्यवान है। अगर वह दिशा आपको दिखाई पड़नी शुरू हो जाए, तो आप समझेंगे कि यह दिशा वही है, जहां से क्राइस्ट की आवाज आती है; कृष्ण की आती है; मोहम्मद की आती है। लेकिन अगर आप शब्दों को पकड़ें, तो शब्द अलग हैं। क्योंकि मोहम्मद अरबी बोलते हैं; महावीर प्राकृत बोलते हैं; कृष्ण संस्कृत बोलते हैं; जीसस हिब्रू बोलते हैं। वे आवाजें बड़ी अलग-अलग हैं।
पंडित आवाजों से उलझ जाते हैं। श्रावक दिशा के बोध से भर जाता है और
उस दिशा में सरकने लगता है। अगर आप ठीक सुनें तो आपके भीतर रेडार पैदा हो जाता है। उस रेडार में पकड़ आने लगती है, कौन सी दिशा।
महावीर मूल्यवान नहीं हैं। कहां से आती है यह आवाज; कौन बोलता है महावीर के भीतर से; कौन सा महाशून्य, कौन सा महासत्य, उस तरफ आप हटने शुरू हो जाते हैं एक-एक कदम। जल्दी ही आप पाएंगे, अंधेरे के बाहर आ गए हैं; महाप्रकाश आपको चारों और से घेरे हुए है।

आज इतना ही।

महावीर-वाणी, भाग 2
पच्चीसवां प्रवचन

संयम है संतुलन की परम-अवस्था (मोक्षमार्ग-सूत्रः 2)

जो जीवे वि न जाणे, जीवे वि न जाणइ।
जीवा जीवे याणंतो, कहं सो नाहिइ संजमं।।
जो जीवे वि वियाणाइ, जीवे वि वियाणइ।
जीवा जीवे वियाणंतो, सो हु नाहिइ संजमं।।
जया गइं बहुविहं, सव्वजीवाण जाणइ।
तया पुण्णं च पावं च बंधं मोक्खं च जाणइ।।
जया पुण्णं च पावं च बंधं मोक्खं च जाणइ।
तया निव्विंदए मोए
जे दिव्वे जे य माणुसे।।

जो न तो जीव अर्थात चेतनतत्व को जानता है, और न अजीव अर्थात जड़तत्व को जानता है, वह जीव-अजीव के स्वरूप को न जानने वाला साधक, भला किस तरह संयम को जान सकेगा?
जो जीव को जानता है और जीव को भी, वह जीव और जीव दोनों को भलीभांति जानने वाला साधक ही संयम को जान सकेगा।
जब वह सब जीवों की नानाविध गतियों को जान लेता है, तब पुण्य, पाप, बंध
और मोक्ष को भी जान लेता है।
जब (साधक) पुण्य, पाप, बंध और मोक्ष को जान लेता है, तब देवता और मनुष्य संबंधी काम-भोगों की व्यर्थता जान लेता है--अर्थात उनसे विरक्त हो जाता है।

आत्मा का शरीर के पीछे छाया की तरह चलना असंयम है। आत्मा का प्रवाह शरीर की तरफ जाने से रुक जाए, ठहर जाये, आत्मा में ही फिर लीन हो जाए; और आत्मा गुलाम न रहे, मालिक हो जाए--उस अवस्था का नाम संयम है।
इसे ठीक से समझ लेना जरूरी है, क्योंकि महावीर की पूरी साधना-पद्धति संयम की ही पद्धति है। संयम का अर्थ शरीर को दबा रखना नहीं है; क्योंकि जिसे हम दबाते हैं, उससे हम दब भी जाते हैं।
अगर किसी व्यक्ति की छाती पर आप बैठ जाएं उसे दबा कर, तो आप छाती पर बैठे हैं, यह सच है, और वह नीचे आपके दबा है, यह भी सच है--लेकिन आप वहां से हट भी नहीं सकते। क्योंकि आपके हटते ही वह व्यक्ति मुक्त हो जाएगा। तो जहां वह पड़ा है, वहीं आप भी पड़े रहेंगे। उसे दबाए रखने का अर्थ होगा कि आप भी उससे रत्तीभर आगे नहीं जा सकते।
इसलिए जो व्यक्ति शरीर को दबा लेते हैं, वे शरीर के मालिक तो नहीं होते, मालकियत के वहम में होते हैं। और जहां शरीर को दबाए रखते हैं, वहीं उनकी आत्मा भी रुकी रह जाती है; अटकी रह जाती है। इसलिए तथाकथित साधु शरीर से बंधा हुआ होता है उसी तरह, जैसा तथाकथित गृहस्थ बंधा होता है।
घर से बंधे हुए आदमी का नाम गृहस्थ है। घर है आपका शरीर, जहां चेतना आवास कर रही है। फिर इस शरीर की मालकियत भोग के लिए हो आपके ऊपर या योग के लिए हो आपके ऊपर--दोनों ही स्थितियों का नाम असंयम है।
संयम का अर्थ हैः मेरे भीतर ऐसे साफ हो जाए मेरी चेतना; शरीर साफ हो जाए; दोनों के बीच कोई सेतु न रह जाए, कोई संबंध न रह जाए--न भोग और न योग का। इसलिए महावीर "योग" शब्द का उपयोग नहीं करते हैं। बल्कि बड़ी हैरानी होगी आपको जान कर कि महावीर योग शब्द का अर्थ मनुष्य का परमात्मा से जुड़ जाना, ऐसा नहीं करते, जैसा पतंजलि करते हैं।
महावीर कहते हैं, योग का अर्थ है, संसार और मनुष्य का शरीर से जुड़ जाना। इसलिए महावीर ने परम स्थिति को "अयोगी" कहा है--जहां संबंध टूट जाता है। योग का अर्थ है जोड़। तो तब तक शरीर और आत्मा जुड़े हैं, तब तक योग की अवस्था है। जिस दिन शरीर और आत्मा का संबंध छूट जाता है; टूट जाता है सेतु बीच से, उस दिन "अयोग!"

इसलिए महावीर ने अयोग को परम अवस्था कहा है, जहां कोई संबंध नहीं रह जाते, सब जोड़ टूट जाते हैं।
इस अयोग को साधने के लिए दमन, दबाना मार्ग नहीं हो सकता। इस संयम को साधने का मार्ग बोध होगा, ज्ञान होगा--महावीर ने कहाः विवेक होगा--इस बात का ठीक-ठीक बोध कि शरीर अलग है और मैं अलग हूं।
जिस व्यक्ति को यह बोध हो जाता है, वह न तो शरीर को भोगता है और न शरीर
को दबाता है। वह शरीर से कोई संबंध ही स्थापित नहीं करता। अगर वह भोजन भी करता है, तो शरीर ही भोजन करता है--वह भीतर देखता ही रहता है। अगर वह बीमार पड़ता है, तो शरीर ही बीमार पड़ता है--वह भीतर देखता ही रहता है। वह हर हालत में अयोग में ठहरा रहता है। वह भीतर साक्षी बना रहता है। शरीर जीए कि मरे, कि भूखा हो कि पेट भरा हो, कि शरीर को सुविधा हो कि असुविधा हो--सभी कुछ शरीर को हो रहा है। इस संसार में जो भी हो रहा है, वह शरीर के साथ हो रहा है, मेरे साथ नहीं हो रहा है।
मेरे और शरीर के बीच फासला, स्पेस पैदा हो जाए--उस फासले का नाम संयम है। न तो भोगी फासला पैदा कर पाता है, क्योंकि वह शरीर के माध्यम से भोगता है। और जिस माध्यम से हम भोगते हैं, उससे हम जुड़ जाते हैं। और न तथाकथित योगी फासला पैदा कर पाता है, क्योंकि वह शरीर के माध्यम से लड़ता है। और जिससे हम लड़ते हैं, उससे भी जुड़ जाते हैं।
मित्र से भी संबंध हो जाता है, शत्रु से भी। शत्रुता संबंध का एक नाम है। जैसे मित्रता एक संबंध है, वैसे शत्रुता एक संबंध है। तो जो शरीर से मित्रभाव रखे हुए हैं, भोग रहे हैं, वे भी बंधे हैं; जो शरीर से शत्रु-भाव रखते है, वे भी उतने ही बंधे हैं। एक का बंधन प्रेम का है, एक का बंधन घृणा का है--लेकिन बंधन मौजूद है।
महावीर संयम तब कहते हैं, जब कोई बंधन न रहे--न मित्रता के, न शत्रुता के। न शरीर में कोई रस है, न शरीर से कोई विरसता है। न शरीर से कोई राग है, न कोई विराग है। शरीर अलग है, मैं अलग हूं--ऐसी स्पष्ट प्रतीति का नाम संयम है।
शरीर में हम जन्मों-जन्मों से रह रहे हैं, लेकिन हमें इस बात का पता नहीं कि शरीर में हम रह रहे हैं। शरीर के साथ हमारा तादात्म्य, आइडेंटिटी हो गई है; हम जुड़ गए हैं। ऐसा लगने लगा है, मैं शरीर हूं। यंत्र के साथ चैतन्य जुड़ गया और एक हो गया है!
महावीर कहते हैं, यह योग ही संसार है। इस योग के पार हो जाना ही मुक्ति है, विमुक्ति है; परम आनंद और परम सत्य की प्रतीति है। शरीर में हम कितना ही जीए हों, इससे कुछ भी न होगा। बच्चे तो बंधे ही होते हैं--उनका बंधा होना स्वाभाविक है--बूढ़े भी बंधे होते हैं! भोगी तो बंधे होते हैं--उनका बंधा होना स्वाभाविक है--जिनको हम योगी मानते हैं, वे भी बंधे होते हैं!
भोग का एक तरह का असंयम है, योग का दूसरी तरह का असंयम है। संयमी वह है, जिसने असंयम की संभावना ही तोड़ दी। संभावना है शरीर से जुड़े होना। संभावना है शरीर और अपने को एक मान लेना। यह एकता जितनी गहरी हो जाए, उतना असंयम होगा। यह एकता जितनी कम हो जाए, उतना संयम होगा। और जिस दिन यह एकता बिल्कुल टूट जाए और साफ हो जाए--जैसा कि पुरानी कथाएं कहती हैं कि हंस जैसे पानी और दूध को अलग-अलग कर लेता है--जिस दिन हमारा विवेक शरीर और चेतना को अलग-अलग कर ले हंस की तरह, उस दिन संयम की अंतिम सीढ़ी उपलब्ध होती है; मंजिल उपलब्ध होती है।
इसलिए ज्ञानियों ने आत्मा को हंस भी कहा है; विवेक को, चेतना को हंस भी कहा है; और जो व्यक्ति इस स्थिति को पैदा हो जाता है, उसे परमहंस कहा है। परमहंस का अर्थ है कि जिसने अपने भीतर हंस की तरह दूध और पानी को अलग-अलग कर लिया।
हंस करता है या नहीं, पता नहीं--कविता की बात है! लेकिन आदमी कर सकता है। और दूध और पानी चाहे अलग न भी किए जा सकें--क्योंकि दूध और पानी दोनों ही एक तल के पदार्थ हैं--शरीर और चेतना अलग किए जा सकते हैं, क्योंकि अलग हैं ही। दोनों का आयाम अलग। दोनों का ढंग अलग। दोनों का होना अलग। दोनों का मिलना ही चमत्कार है, दोनों का अलग होना तो बड़ा सरल है। आपने बड़ी मेहनत

की है दोनों को एक कर लेने की, तब भी एक नहीं हो गए हैं। सिर्फ भ्रांति है एक हो जाने की। सिर्फ ख्याल है एक हो जाने का। इसलिए महावीर कहते हैं, बंधन सिर्फ मन के हैं, भाव के हैं--प्रोजेक्शन हैं। वस्तुतः कोई बंधन नहीं है। लेकिन आदमी बूढ़ा हो जाए, जीवन के सब दुख-सुख भोग ले, तो भी शरीर की वासना खींचती ही चली जाती है। अक्सर तो ऐसा होता है कि बूढ़ा होते-होते आदमी और भी कामवासना से भर जाता है।
इसलिए कोई उम्र से ही कभी मुक्त नहीं होता; और न उम्र से कोई कभी ज्ञानी होता है; और न उम्र से कभी कोई अनुभवी होता है। उम्र से तो कोई भी कितना ही बूढ़ा हो जाए, लेकिन जीवन की प्रौढ़ता उम्र से नहीं आती। और कितना ही आपको अनुभव हो जाए जीवन का, अनुभव अकेला आपको कहीं भी नहीं ले जाता--हो सकता है और गर्त में ले जाए; क्योंकि जितना हमें अनुभव होता जाता है, उतनी ही हमारी आदत भी मजबूत होती जाती है।
मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन का जवान लड़का है। बीस वर्ष उसकी उम्र है, लेकिन थोड़ा शम्रूला है। न तो ज्यादा बोलता है, न ज्यादा लोगों से मिलता-जुलता है। और उसकी उम्र में जो स्वाभाविक है कि लड़कियों के पीछे घूमे, वह भी नहीं करता है--बंद अपनी किताबों में, द्वार बंद किए रहता है। लेकिन एक दिन सांझ वह अपने कपड़े पहन कर, ठीक सज-धज कर नीचे उतरा सीढ़ियों से और उसने बूढ़े नसरुद्दीन से कहा कि पिता जी, अब बहुत हो चुका! और अब मैं वहीं करूंगा, जो मेरी उम्र में सभी लोग कर रहे हैं। और मैं शहर की तरफ जा रहा हूं सुंदर लड़कियों की तलाश में। और आज मैं खूब डट कर पीऊंगा भी ताकि मेरा यह सारा संकोच और यह मेरी सारी जड़ता टूट जाए। और आज तो अभियान और दुस्साहस की रात है। आज जो भी हो सकता है, वह मैं करूंगा। जो भी मेरी उम्र के लोग कर रहे हैं, वह मैं करूंगा। और ध्यान रहे, डोंट ट्राय एण्ड स्टॉप मी, कोशिश मत करना मुझे रोकने की!
नसरुद्दीन उठ कर खड़ा हो गया। उसने कहाः ट्राय एण्ड स्टॉप यू, होल्ड आन माई ब्वाय, आई एम कमिंग विथ यू--दृढ़ रहना अपने ख्याल पर, मैं तेरे साथ आ रहा हूं। रोकने का कोई सवाल ही कहां है!
बाप भी बेटों से बहुत भिन्न नहीं है! बूढ़ा होकर भी आदमी वहीं भटकता रहता है, जहां जवान भटकता है। जवान का भटकना क्षम्य है, बूढ़े का भटकना बिल्कुल अक्षम्य हो जाता है।
लेकिन कोई सिर्फ बूढ़ा होकर मुक्त नहीं हो पाता वासना से। कोई हो भी नहीं सकता। वासना से तो केवल वे ही मुक्त होते हैं, जो विवेक में गति करते हैं। उम्र की गति से वासना से मुक्त होने का कोई संबंध नहीं है। शरीर बूढ़ा हो जाए, वासना कभी बूढ़ी नहीं होती--मरते दम तक पकड़े रखती है। वासना तो बूढ़ी होती है तभी, जब विवेक जगता है। विवेक वासना की मौत है!
इसलिए बूढ़ा आदमी वासना को पूरा करने में अक्षम हो जाता है, लेकिन वासना मन को घेरे रखती है--घेरे रखती है; घूमती रहती है। और जवान की वासना में तो एक सौंदर्य भी होता है, बूढ़े की वासना बड़ी कुरूप हो जाती है और गंदी हो जाती है। हो ही जाएगी, क्योंकि शरीर अब साथ अपने आप छोड़ रहा है। शरीर अपने आप आत्मा से अलग हो रहा है। लेकिन वासना के कारण बूढ़ा आदमी अपने शरीर को अभी भी जकड़े हुए है। मृत्यु करीब आ रही है और शरीर आत्मा से टूट जाएगा। अगर जीवन ठीक से विकसित हो तो मृत्यु का क्षण मोक्ष का क्षण भी बन सकता है। अगर उम्र ही न बढ़े और शरीर ही न पके--बोध भी पके, विवेक भी पके और भीतर समझ भी बढ़ती चली जाए, और साक्षीभाव भी गहन होता चला जाए जीवन के अनुभव कोरे अनुभव न रहें, उनके पीछे विवेक का जागरण भी निर्मित होता चला जाए, तो मृत्यु के पहले ही व्यक्ति मुक्त हो सकता है।
और जब कोई व्यक्ति मृत्यु के पहले जान लेता है कि मैं शरीर से पृथक हूं, उसकी फिर कोई मृत्यु नहीं है। तब वह मर सकता है ऐसे, जैसे पुराने वस्त्र बदले जा रहे हों। तब वह मर सकता है ऐसे, जैसे ऊपर का कचरा झड़ रहा हो और भीतर का सोना निखर रहा हो। तब मृत्यु एक मित्र है एक अग्नि की भांति, जो जलाएगी कचरे को और बचाएगी मुझे।
और जो व्यक्ति जीवन में वासना से इतना भरा है कि विवेक को जगने का मौका नहीं दिया; और जो हर क्षण हर तरह से शरीर के साथ अंधा होकर चलने को

राजी है, वह मरते वक्त बहुत पछताएगा; बहुत पीड़ित होगा। क्योंकि जब मृत्यु छीनने लगेगी शरीर को, तब उसकी पीड़ा का अंत नहीं रहेगा। क्योंकि उसने अपने को शरीर ही जाना है।
मृत्यु में कोई भी दुख नहीं है, हमारे अज्ञान में दुख है। क्योंकि हम शरीर से अपने को जोड़े हुए हैं। और जब शरीर मिटने लगता है, तब हम चीखते- चिल्लाते हैं कि मैं मरा।
मैं कभी भी नहीं मरता हूं! मेरे मरने का कोई उपाय नहीं है! लेकिन जिससे मैंने अपने को एक समझ रखा है, जब वह टूटता है, मिटता है, तो लगता है; मैं मर रहा हूं। मृत्यु केवल उनके लिए दुख है, जो विवेकशून्य हैं। जो विवेकपूर्ण हैं, उनके लिए मृत्यु भी एक आनंद है।
महावीर के ये सूत्रः "संयम क्या है"--उसकी व्याख्या में हैं। एक-एक सूत्र को समझने की कोशिश करें।
"जो न तो जीव अर्थात चेतनतत्व को जानता है, और न अजीव अर्थात जड़तत्व को जानता है, वह जीव-अजीव के स्वरूप को न जानने वाला साधक, भला किस तरह संयम को जान सकेगा?
"जो जीव को जानता है और अजीव को भी, वह जीव और अजीव दोनों को भलीभांति जानने वाला साधक ही संयम को जान सकेगा।"
मनुष्य दोहरा अस्तित्व है। एक है परिधि--जहां शरीर है, पदार्थ है, मिट्टी का जोड़ है; और एक है भीतर का बोध, चैतन्य, प्रकाश--जो पदार्थ नहीं है, जो परमात्मा है। मनुष्य इस दो का जोड़ है। और जब तक साफ न हो जाए कि शरीर कहां समाप्त होता है और कहां मैं शुरू होता हूं; और यह बात प्रतीत न हो जाए कि शरीर पृथक है और मैं पृथक हूं, तब तक, महावीर कहते हैं, संयम असंभव है। जो जीव को और अजीव को अलग-अलग नहीं जानता; क्या मेरे भीतर सिर्फ पदार्थ है और क्या मेरे भीतर चैतन्य है, इसकी जिसे प्रतीति नहीं; जिसने भीतर प्रकाश को जला कर यह नहीं देख लिया कि मैं दो हूं; और जिसे साफ नहीं हो गया है कि परिधि मेरी नहीं है, परिधि संसार से मुझे मिली है, और मैं सिर्फ भीतर बसा हुआ अतिथि हूं, मेहमान हूं, और यह घर सदा रहने वाला नहीं है, बहुत बार इस घर में मैं रहा हूं, बहुत से घर मुझे मिले हैं और छूट गए हैं... । रोशनी चाहिए भीतर। उस रोशनी में ही यह भेद, यह भिन्नता स्पष्ट हो सकती है। हम अंधेरे में चल रहे हैं, जहां कुछ भी रेखाएं नहीं दिखाई पड़तीं। अंधेरे का मतलब ही होता है, जहां भेद दिखाई न पड़े।
इस कमरे में अंधेरा छा जाए, तो उसका क्या अर्थ है? उसका इतना ही अर्थ
है कि मैं देख न पाऊंगा कि कौन कौन है, क्या क्या है। कहां कुर्सी समाप्त होती है, कहां आप शुरू होते हैं। कहां आप समाप्त होते हैं, कहां आपका पड़ोसी शुरू होता है।
अंधेरे का मतलब है, जहां भेद खो जाएंगे और जहां सीमाएं दिखाई न पड़ेगी। अंधरा सारी सीमाओं को तोड़ देता है और अपने में लीन कर लेता है।
प्रकाश का क्या अर्थ है? प्रकाश का अर्थ है, जहां सीमाएं फिर उभर आएंगी। कुर्सी कुर्सी होगी, बैठने वाला बैठने वाला होगा। घर घर होगा, मेहमान मेहमान होगा। घर के भीतर ठहरने वाला अलग होगा, घर की दीवालें अलग होंगी। प्रकाश चीजों को प्रकट कर देता है--उनकी सीमाएं, उनके लक्षण, उनके भेद। अंधेरा सब सीमाओं को तोड़ देता है।
मैंने सुना है कि नसरुद्दीन युवा था; और एक रात बड़ा सज-धज कर तैयार था
और अपनी लालटेन साफ कर रहा था। तो उसके पिता ने पूछा कि नसरुद्दीन, लालटेन क्यों साफ कर रहा है? क्या इरादे हैं? उसने कहा कि मैं जरा जा रहा हूं अभिसार को। पत्नी की तलाश आखिर मुझे भी करनी होगी! तो मैं जरा पत्नी की तलाश पर जा रहा हूं।
उसके पिता ने कहा कि पत्नी की तलाश हमने भी की थी, बाकी लालटेन लेकर हम कभी न गए! यह लालटेन किसलिए ले जा रहा है?
नसरुद्दीन ने कहा कि देखें, दैट काउंट्स फार इट; लुक एट योर वुमन, माई मदर! अंधेरे में ढूंढोगे तो ऐसा ही पाओगे। यह भूल मैं नहीं करने वाला हूं। मैं ठीक प्रकाश में चीजें खोजना चाहता हूं!

भीतर भी हम अंधेरे में ही खोज रहे हैं। और अगर हमें वहां कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता... ।
कभी आपने आंख बंद करके भीतर देखा है? सिवाय अंधेरे के कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता।
लोग मेरे पास आते हैं। वे कहते हैं कि आप कहते हैं, भीतर देखो। लेकिन भीतर देखें कैसे? आंख बंद करते हैं, वहां अंधेरा है। वहां कुछ दिखाई ही नहीं पड़ता। देखना क्या है?
रोशनी बाहर है, अंधेरा भीतर है। बाहर सब दिखाई पड़ता है, भीतर कुछ दिखाई नहीं पड़ता। और बाहर हमने रोशनी को बढ़ाने के बड़े उपाय कर लिए हैं। कभी आदमी गहन अंधकार में था, गुहाओं में था। फिर आग खोजी तो गुहाओं का अंधेरा मिट गया। फिर विकास होता चला गया। फिर आज बिजली है और रातें रातों जैसी नहीं रह गई हैं, दिन से भी ज्यादा प्रकाशवान हो गई हैं।
बाहर हमने प्रकाश की बड़ी खोज कर ली है। बाहर भी ऐसा ही अंधेरा था। पर हमने वहां रात मिटा दी। भीतर हम प्रकाश की कोई खोज नहीं करते हैं, अन्यथा वहां भी प्रकाश की संभावना है। जहां-जहां अंधेरा है, वहां-वहां प्रकाश हो सकता है। अंधेरे का मतलब ही यह है कि जहां प्रकाश हो सकता है, इसकी संभावना है।
सारी साधना-पद्धतियां भीतर की अग्नि खोजने का प्रयास है। भीतर रोशनी कैसे जले। भीतर कैसे थोड़ा सा प्रकाश और थोड़ी सी किरणें पैदा हो जाएं ताकि वहां भी चीजें साफ हो सकें कि क्या क्या है।
अभी तो हम आंख बंद करके बैठ जाते हैं तो कुछ दिखाई नहीं पड़ता। और अगर कुछ दिखाई भी पड़ता है तो वह बाहर का ही होता है--कोई मित्र की तस्वीर, कोई याददाश्त, कोई घटना, बाजार, दुकान। आंख भी बंद करते हैं तो आंख बंद होती नहीं, चित्त तो बाहर की तरफ ही खुला रहता है।
बंद आंख में भी तस्वीरें बाहर की ही चलती हैं--तो हम भीतर नहीं हैं। और इसका इतना अभ्यास हो गया है कि हम यह बात ही भूल गए हैं कि भीतर भी ऐसा कोई क्षण हो सकता है, जब बाहर की कोई तस्वीर न चलती हो; जब बाहर का कोई प्रतिबिंब न बनता हो; जब बाहर से हमारा संबंध ही छूट जाता हो और हम निपट भीतर होते हों।
शुरुआत में अंधेरा अनुभव होगा। क्योंकि बाहर की रोशनी ने आंखों को बाहर की रोशनी का आदी कर दिया है।
और ध्यान रहे, बाहर की रोशनी को भीतर ले जाने का कोई उपाय नहीं है। आप दीये को भीतर नहीं ले जा सकते; न बिजली को भीतर ले जा सकते हैं। बाहर की कोई रोशनी भीतर काम न देगी, क्योंकि भीतर के अंधेरे का गुण-धर्म अलग है। बाहर का अंधेरा और तरह का अंधेरा है; और बाहर के अंधेरे को मिटाने के लिए और तरह का प्रकाश चाहिए। भीतर का अंधेरा और तरह का अंधेरा है--उसे मिटाने के लिए और तरह का प्रकाश चाहिए। उस प्रकाश का गुण-धर्म अलग होगा।
इसलिए बाहर का प्रकाश तो भीतर लाया नहीं जा सकता, एक बात। और बाहर के प्रकाश के कारण भीतर हमें गहन अंधेरा मालूम पड़ता है, क्योंकि प्रकाश की हमें आदत हो गई है।
कभी आप एक अंधेरे रास्ते से जा रहे हैं और अचानक एक कार निकल जाए तीव्र प्रकाश के साथ, तो कार के निकल जाने के बाद रास्ता और भी अंधेरा हो जाएगा--जितना कार के निकलने के पहले भी नहीं था! वह तीव्र रोशनी आपकी आंखों को भटका जाएगी। और उस तीव्र रोशनी की तुलना में बाद में अंधेरा बहुत भयंकर मालूम होगा।
ध्यान रहे, आदिम मनुष्य को भीतर इतना है अंधेरा, नहीं मालूम होता था, जितना आधुनिक मनुष्य को मालूम होता है। बाहर काफी रोशनी है। आदिम मनुष्य के लिए बाहर भी अंधेरा ही था, या बहुत कम रोशनी थी। भीतर इतना अंधेरा नहीं मालूम होता था। जितना मनुष्य की सभ्यता बाहर के जगत में विकसित होती चली जाती है, उतना ही भीतर का अंधेरा घना मालूम होता है। वह घना हो नहीं रहा है, तुलना में घना मालूम होता है। क्योंकि हमारे सभी अनुभव सापेक्ष हैं।

तो जिस व्यक्ति को भीतर के प्रकाश की खोज करनी है, उसे दो काम करने होंगे। पहला तो, उसे भीतर के अंधेरे के प्रति आंखों को राजी करना होगा, एडजस्ट करना होगा।
चोर अंधेरे में ज्यादा देख पाता है आपकी बजाय--अंधेरे का अभ्यास करता है। और आप भी जब कमरे में आते हैं--अंधेरे कमरे में बाहर से--तो बिल्कुल अंधेरा मालूम पड़ता है। थोड़ी देर बैठें, कुछ न करें--कुछ करने की जरूरत नहीं, सिर्फ बैठें और आंखों को एडजस्ट होने दें, समायोजित होने दें--थोड़ी ही देर में अंधेरा कम मालूम होने लगेगा, थोड़ी ही देर में थोड़ा-थोड़ा दिखाई पड़ना शुरू हो जाएगा।
अगर आप यह अभ्यास रोज करते चले जाएं, जो कि चोर को करना पड़ता है, तो आपको इतना अंधेरा मालूम नहीं होगा कि आप किसी चीज से टकराएं। आप बिल्कुल अंधेरे कमरे में भी बिना टकराए चल सकेंगे, उठ सकेंगे, काम कर सकेंगे। थोड़े से आंख के अभ्यास की जरूरत है ताकि आंख अंधेरे में देखने लगे।
ध्यान रहे, अंधेरा उतना ही मालूम होता है, जितना हमारा अभ्यास कम है।
तो जिंहें भीतर की रोशनी खोजनी हो उंहें भीतर के अंधेरे के लिए थोड़े दिन राजी होना पड़ेगा। जल्दी नहीं करनी है, आंख बंद करके ही बैठा रहना चाहिए। जापान में झेन फकीर और झेन गुरु अपने शिष्यों को कहते हैं कि तुम कुछ
मत करो--क्लोज द आइज एण्ड जस्ट सिट। मंत्र भी मत पढ़ो, किसी भगवान का स्मरण भी मत करो। किसी मूर्ति, प्रतिमा के आस-पास भी मन को मत घुमाओ। क्योंकि यह भी सब बाहर की ही रोशनियां हैं। तुम सिर्फ आंख बंद करो और बैठो। छह महीने, साल भर झेन गुरु के पास जो साधक होता है, उसको एक ही साधना करनी होती है कि वह दिन में घंटों बैठा रहे--कुछ न करे।
पहले करने का बहुत मन होता है, क्योंकि बिना किए आपको लगता है, जिंदगी बेकार जा रही है। हालांकि जिंदगी बेकार जा रही है करने में। न करने से किसी की जिंदगी बेकार क्या जाएगी! जिंदगी बेकार जा ही रही है--कुछ भी करो! लेकिन आकुपाइड, व्यस्त रहने से ऐसा लगता है, कुछ हो रहा है; वहम बना रहता है कि कुछ हो रहा है, कुछ कर रहे हैं। खाली बैठने में बेचैनी लगती है।
खाली बैठना साधक की पहली क्षमता है--कि वह बिना कुछ किए बैठा है। मन कई बार कहेगा, कुछ करो; क्या बैठे हो! और मन समझाएगा कि खाली अगर बैठे रहे तो शैतान का कारखाना हो जाओगे।
खाली बैठे लोगों ने आज तक कोई शैतानी नहीं की, ध्यान रखना। जो काफी कर्मठ हैं, जिनको हम कर्मयोगी कहते हैं--सब उपद्रव उनके कारण हैं। वे खाली नहीं बैठ सकते, उन्हें कुछ न कुछ करना है। कुछ भी हो, उन्हें कुछ करके दिखाना है। कोई कारण नहीं है, क्योंकि करके देखने वाला कोई नहीं है; न कोई प्रयोजन है। न इस जमीन पर कहीं रेखा छूट जाती है करने वालों की।
लेकिन बड़ा उपद्रव है। जब तक होते हैं, बड़ा उपद्रव मचा लेते हैं। राजनीतिज्ञ हैं, समाज-सुधारक हैं, क्रांतिकारी हैं--बस, करने में भिड़े हैं। उनका सारा जोर करने पर है।
झेन गुरु कहते हैं कि तुम कुछ करो मत, साल भर तो न करने की हिम्मत जुटाओ, सिर्फ बैठे रहो। तो झेन साधक छह-छह घंटे दिन में बैठा रहेगा आंख बंद किए। न हिलेगा, न डुलेगा; क्योंकि उतने में भी मन बाहर जा सकता है। पहले तो बड़ी बेचैनी होगी, सारी ताकत लगाएगा मन कि लगो, कुछ करो। कुछ नहीं तो कम से कम सोचो। कोई दिवास्वप्न देखो। कोई योजना करो, कुछ कामना करो--भीतर कुछ तो करो।
लेकिन अगर आप बैठे ही रहे और कुछ न किया, और अगर न करने का साहस दिखा सके, तो थोड़े ही दिन में आप पाएंगे कि भीतर का अंधेरा कम होने लगा। भीतर कुछ-कुछ दिखाई पड़ने लगा। धूमिल रेखाएं प्रकट होने लगीं।
छह महीने और साल भर का वक्त लग जाता है, जब आदमी को पहली दफा भीतर धूमिल रेखाएं प्रकट होती हैं। और जैसे ही यह धूमिल रेखाएं प्रकट होती हैं, अहोभाव पैदा होता है, एक आनंदभाव पैदा होता है कि मैं तो बिल्कुल अलग हूं, यह शरीर तो बिल्कुल अलग है।
और ध्यान रहे, शास्त्र पढ़ने से यह पता नहीं चलेगा। बहुत लोग यह कर रहे हैं--कि शास्त्र पढ़ रहे हैं कि आत्मा भिन्न है शरीर भिन्न है--मैं आत्मा

हूं; मैं शरीर नहीं हूं, इसको शास्त्र में पढ़ रहे हैं। और रोज सुबह बैठ कर इसको दोहरा रहे हैं कि मैं शरीर नहीं हूं, मैं आत्मा हूं।
दोहराने का मतलब नहीं है। दोहराने से कुछ भी न होगा। दोहराने से प्रकाश पैदा नहीं होता। दोहराने से तो केवल इतनी ही खबर लगती है कि अभी तुम्हें पता नहीं चला; अभी तुम किसी और की उधार बात दोहरा रहे हो। और तुम दोहरा-दोहरा कर इस भ्रम में भी पड़ सकते हो कि तुम्हें ऐसा लगने लगे कि शरीर और आत्मा अलग हैं। लेकिन यह तुम्हारे प्रकाश का भीतरी अनुभव नहीं है। इसका कोई मूल्य नहीं है। यह दो कौड़ी का है। तुम जीवन खराब किए।
किसी की मानने की जरूरत नहीं है। यह तो स्वयं अनुभव हो सकता है। लेकिन भीतर के अंधेरे के साथ आंखों का समायोजन करना होगा। और जन्मों-जन्मों से हमारा समायोजन हो गया है बाहर की रोशनी के साथ, इसे तोड़ना प्रतीक्षा और धैर्य की बात है।
तो महावीर कहते हैंः जो न तो जानता कि चेतन क्या है, जो न जानता कि जड़ क्या है; जो जीव-अजीव को नहीं पहचानता, वह साधक भला किस तरह संयम साधेगा? लेकिन कितने लोग संयम साध रहे हैं, जिन्हें कुछ भी पता नहीं है कि जीव क्या है, अजीव क्या है। जब मैं कहता हूं, जिन्हें कुछ भी पता नहीं है तो मेरा मतलब यह नहीं है कि उन्होंने शास्त्र से नहीं सुना है। शास्त्र में लिखा है कि जीव और अजीव भिन्न-भिन्न हैं। लेकिन शास्त्र से कोई आपका ज्ञान नहीं निर्मित होता। शास्त्र से तो सिर्फ आपका अज्ञान ढंकता है--रहते तो आप अज्ञानी हैं; शास्त्र के वचनों में छिप जाते हैं और भ्रांति पैदा होती है कि जान लिया।
अज्ञान उतना खतरनाक नहीं है, जितना थोथा ज्ञान खतरनाक है। शास्त्र जितने लोगों को डुबाते हैं, उतनी और कोई चीज किसी को नहीं डुबाती। कई लोग कागज की नाव में बैठ कर सागर में उतर जाते हैं।
शास्त्र की नाव कागज की नाव है। उससे तो बेहतर है कि बिना नाव के उतर जाना। क्योंकि नाव का भरोसा न हो तो कम से कम अपने हाथ-पैर चलाने की कुछ कोशिश होगी। और जो बिना नाव के उतरेगा, वह तैरना सीख कर उतरेगा। जो नाव में बैठ कर उतर जाएगा--और कागज की नाव में--वह इस भरोसे में उतरेगा कि मुझे क्या करना है, नाव पार कर देगी। वह डूबेगा!
लेकिन कागज की नाव में बैठने को कोई राजी न होगा, शास्त्र की नाव में बैठने को करीब-करीब पूरी पृथ्वी राजी हो गई है। कोई बाइबिल की नाव में बैठा है, कोई गीता की नाव में बैठा है, कोई कुरान की नाव में बैठा है; कोई महावीर के वचनों की नाव में, कोई बुद्ध के वचनों की नाव में।
लेकिन नाव लोगों ने कागज की बना ली है। इसलिए लोग डूब रहे हैं और जगह-जगह दुर्घटनाएं हैं। और धर्म के नाम पर इतना शोरगुल चलता है, लेकिन धर्म का कोई प्रकाश जीवन में कहीं भी दिखाई नहीं पड़ता। तो धर्म एक उत्सव हो गया है--कभी-कभी मना लेने की बात; कभी-कभी शोरगुल मचा लेने की बात है कि हम आत्मवादी लोग हैं; कि हम पदार्थ को ही सब कुछ नहीं मानते, हम आत्मा को भी मानते हैं। लेकिन मानने से कुछ भी होने वाला नहीं है, जानना जरूरी है। इसलिए महावीर कहते हैं, जिसे अभी यह ही पता नहीं है कि आत्मा क्या है
और शरीर क्या है, वह संयम नहीं साध सकेगा। लेकिन आप साधुओं से जाकर पूछें। दूसरे साधुओं को छोड़ दें, महावीर के ही साधुओं से जाकर पूछें कि तुम्हें अनुभव हुआ है भीतर कि शरीर कहां खत्म होता है और आत्मा कहां शुरू होती है? कहां सीमांत है? कहां दोनों मिलते हैं? और कहां दोनों में फासला है? और अगर अनुभव नहीं हुआ है, तो तुम जो संयम साध रहे हो--महावीर तो कहते हैं, ऐसा साधक संयम साधेगा ही कैसे!
लेकिन साधु संयम साध रहे हैं। संयम में उनके कोई कमी नहीं है। क्या भोजन करना, कितना करना, कब सोना, कब उठना, कितनी सामायिक करनी, कितना ध्यान करना--सब कर रहे हैं; कितना प्रतिक्रमण--सब नियम से चल रहा है, यंत्रवत। उसमें कहीं कोई भूल-चूक नहीं। संयम पूरा चल रहा है।
लेकिन उनका संयम, संयम नहीं है--हो नहीं सकता। क्योंकि महावीर की पहली शर्त ही पूरी नहीं हो पा रही है।

लेकिन उनकी कोशिश यह है कि संयम के द्वारा वे जान लेंगे कि शरीर और आत्मा क्या है। और महावीर उलटी बात कह रहे हैं। वे कह रहे हैं, जो जान लेगा कि शरीर और आत्मा क्या है, उसके जीवन में ही संयम हो सकता है।
हम चीजों को उलटा लेते हैं। उलटा लेने का कारण है--हम उलटे खड़े हैं। हमें हर चीज उलटी दिखाई पड़ती है। महावीर को भी जब हम देखते हैं, तो हम उनको उलटा देखते हैं। जो पहले है उसे पीछे कर देते हैं, जो पीछे है, उसे पहले कर देते हैं। फिर हमें सुविधा हो जाती है। अगर हम महावीर की बात को वैसा ही रहने दें, जैसी वह है, तो हमारे जीवन को हमें बदलना पड़ेगा।
क्या फर्क है?
महावीर कहते हैं, भीतरी बोध पहले होगा, फिर बाहरी संयम होगा।
हम क्या करते हैं?
हम पहले बाहरी संयम साधते हैं, फिर सोचते हैं, भीतरी बोध अपने आप आ जाएगा। हमारे लिए बाहर का मूल्य इतना ज्यादा है कि संयम को भी जब हम साधते हैं तो बाहर से ही शुरू करते हैं। हमारी आंखें बाहर से इस तरह ऑब्सेस्ड हो गई हैं, इस तरह बंध गई हैं। और हमारी वासनाओं ने हमें बाहर से इस तरह चिपका दिया है कि हम अगर साधना भी करते हैं तो भी बाहर से ही शुरू करते हैं। और साधना शुरू ही हो सकती है भीतर से। बाहर से जो शुरू होगी, वह संसार में ले जाएगी। लेकिन वासनाएं आदमी को मूर्च्छित कर देती हैं।
मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन एक होटल में ठहरा हुआ है। वह सांझ को लौट रहा है अपने कमरे की तरफ। एक दरवाजे के भीतर से उसे आवाज सुनाई पड़ती है एक स्त्री और एक पुरुष की--शायद अपना हनीमून मनाने आए होंगे। तो वह दरवाजे पर खड़े होकर सुनता है। तो वह पति अपनी पत्नी से कह रहा है कि तेरे जैसा सौंदर्य कभी-कभी सदियों में होता है। मैं चाहूंगा कि इस जगत का सबसे श्रेष्ठ कलाकार तेरी मूर्ति को या तेरे चित्र को निर्मित कर दे ताकि भविष्य की पीढ़ियां भी जान सकें कि ऐसा सौंदर्य भी कभी हुआ है।
नसरुद्दीन ने फौरन दरवाजे पर दस्तक दी। पति ने चिढ़ कर पूछाः कौन है? नसरुद्दीन ने कहाः दि ग्रेटेस्ट पेंटर ऑफ दि वर्ल्ड, पिकासो!
जब नसरुद्दीन यह कह चुका तभी उसको ख्याल आया कि मैं क्या कह रहा हूं
वह दरवाजा खुल जाएगा तो पकड़ा जाऊंगा। भागा अपने कमरे में। फिर बहुत सोचता रहा कि ऐसा कैसे हुआ? मैं पिकासो नहीं हूं!
लेकिन सौंदर्य की चर्चा। शरीर को देखने का मन। वासना का जग जाना। फिर
इस मूर्च्छित अवस्था में आप कुछ भी हो सकते हैं।
तो निकल गया उसके मुंह से कि जगत का सबसे बड़ा चित्रकार! खोलो दरवाजा! दरवाजा खुलना आकांक्षा है। दरवाजा खुल जाए, वह स्त्री दिखाई पड़ जाए--
वह वासना है। उस वासना में उसके मुंह से यह भी निकल गया कि मैं पिकासो हूं। यह उसने सोचा नहीं था। यह उसने कभी विचारा नहीं था। इसकी कोई योजना नहीं थी। एक क्षण की वासना में तादात्म्य बदल गया।
हम जहां-जहां वासना से घिरते हैं। वहीं-वहीं हम वही हो जाते हैं, जो होने से हमारी वासना तृप्त होगी। हमारी वासनाएं हमारे तादात्म्य को निर्धारित करती हैं। अगर आप पुरुष हो गए हैं, तो भी वासना के कारण; अगर स्त्री हो गए हैं, तो भी वासना के कारण। अगर आप मनुष्य हो गए हैं, तो भी वासना के कारण। अगर आप कीड़े-मकोड़े थे, पशु-पक्षी थे, तो भी वासना के कारण। जहां हमारी वासना सघन हो जाती है--महावीर, बुद्ध और कृष्ण कहते हैं--उस सघनता के कारण हम वैसा ही रूप ग्रहण कर लेते हैं। हम वही हो जाते हैं, जो हमारी वासना हो जाती है। अब तो वैज्ञानिक भी कहते हैं कि मनुष्य के शरीर की जो घटना है।
जैसा डार्विन ने कहा था कि मनुष्य इसलिए इस तरह विकसित हो रहा है कि प्रकृति में एक संघर्ष है, उसमें श्रेष्ठतम बच जाता है--सरवाइवल ऑफ दि फिटेस्ट। वह जो सबसे ज्यादा ताकतवर है, वह बच जाता है। लेकिन इधर डार्विन के बाद जो काम हुआ है विकासवाद पर, उससे हालतें बिल्कुल बदल गई हैं। नये विकासवादी कहते हैं कि इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता कि श्रेष्ठ बच जाता है। आप यह भला कह सकते हैं कि जो बच जाता है, उसको आप श्रेष्ठ कहने लगे। लेकिन श्रेष्ठ के बचने का कोई प्रमाण नहीं मिलता।

और आदमी का विकास संघर्ष के कारण नहीं दिखाई पड़ता, भीतरी वासना के कारण दिखाई पड़ता है--बाहरी संघर्ष के कारण नहीं। आंखें इसलिए शरीर पर प्रकट हुई हैं कि आदमी देखने की वासना से भरा हुआ है। वह देखने की वासना जब प्रगाढ़ हो जाती है तो तीर की तरह भीतर से छेद देती है और आंखें निर्मित होती हैं। और आदमी सुनने की वासना से भरा हुआ है, इसलिए कान निर्मित होते हैं। आदमी छूने की वासना से भरा है, इसलिए शरीर निर्मित होता है।
जो-जो वासना भीतर प्रगाढ़ है, उसके अनुरूप पदार्थ चारों तरफ आत्मा के इकट्ठा हो जाता है। लेकिन यह बड़ी पुरानी खोज है, महावीर, बुद्ध और कृष्ण की कि आदमी का जन्म उसकी वासना से हो रहा है; उसके तादात्मय, उसके रूप, नाम, उसकी भीतरी वासना से निर्धारित हो रहे हैं।
आप जो भी हैं, वह अपनी वासना के फल हैं। इस वासना को अगर आप बल देते चले जाते हैं, तो आप इसी चक्कर में घूमते चले जाएंगे; यही वर्तुल बार-बार घूमता रहेगा; आप पुनरुक्त होते रहेंगे। लेकिन अगर इस वर्तुल से बाहर होना है, तो भीतर से वासना का जो संबंध है शरीर से, उसे थोड़ा शिथिल करना होगा।
आप इस बुरी तरह जुड़ गए हैं कि बीच में जरा सी जगह भी नहीं है कि फर्क दिखाई पड़ सके कि मैं कौन हूं। इस फर्क को देखने के लिए थोड़ी सी शिथिलता बंधनों की चाहिए। लेकिन हम तो बंधन के लिए बड़े आतुर रहते हैं। असल में बंधन जब तक न मिल जाए तब तक हमको चैन नहीं होती। बंधन में हमें बड़ी सुविधा मालूम पड़ती है। जब तक बंधन न हो, तब तक हम परेशान होते हैं, जैसे ही बंधन निर्मित हो जाए, हम व्यस्त हो जाते हैं।
मैने सुना है, एक मुसलमान फकीर एक ट्रेन में सफर कर रहा है। सारी जगहें भरी हुई हैं। कई लोग खड़े भी हुए हैं। और तभी एक स्त्री, गर्भिणी, आकर खड़ी हो गई है। वह मुसलमान फकीर के बिल्कुल बगल में खड़ी है। बाजार से कुछ रस्सियां खरीद कर लाई है, तो रस्सियों का बंडल उसके हाथ में है। फकीर आंख बंद कर लेता है उसे देख कर। उसका पड़ोसी यात्री कहता है कि तुम क्या सो गए हो या तबियत खराब है? तो वह फकीर कहता है कि नहीं, यह बात नहीं। मैं किसी स्त्री को खड़े हुए देखना ट्रेन में नफरत करता हूं! इसलिए आंख बंद कर ली है--न देखेंगे, न यह ख्याल उठेगा कि स्त्री खड़ी है और मैं बैठा हूं। तो उस आदमी ने कहा कि अगर तुम इतने दयावान हो, तो उठ कर उसको जगह क्यों नहीं दे देते? तो उस फकीर ने कहा, मेरे गुरु ने कहा है कि जहां भी बंधन की कोई व्यवस्था दिखाई पड़े, वहां जरा सावधान रहना। और वह स्त्री जो हाथ में रस्सी का बंडल लिए है, उससे मैं बोल भी नहीं सकता; उसकी तरफ मैं देख भी नहीं सकता। बहुत से साधु यही कर रहे हैं। जहां-जहां उन्हें बंधन की संभावना दिखाई पड़ती है, वहां वे देखते नहीं; वहां से भाग खड़े होते हैं। लेकिन बंधन बाहर नहीं है, जिससे भागा जा सके; जिससे आंख बंद की जा सके। बंधन तो भीतर की वासना में है कि मैं बंधना चाहता हूं। और स्त्री से बचना आसान है, लेकिन अपने ही शरीर से बंधा हुआ हूं, उसी बंधन में सारा संसार उपस्थित हो गया है। मेरा बंधन मेरे शरीर के बाहर कहीं भी नहीं है। मेरा संसार भी मेरे शरीर के बाहर कहीं भी नहीं है। बाहर तो सब एक्सटेंशंस हैं। लेकिन बुनियादी संसार मेरे भीतर है। और वहां से तोड़ने की बात है।
यह तोड़ना--महावीर के हिसाब से--एक भेद, एक विवेक, एक बोध का परिणाम है।
वह बोध भीतर रुकने की क्षमता से, अंधेरे में रुकने की क्षमता से, धैर्यपूर्वक अंधेरे में डूबे रहने की क्षमता से, प्रतीक्षा करने से अपने आप पैदा होना शुरू हो जाता है।
ध्यान रहे चेतना का अपना प्रकाश है। हम इस जगत में जहां-जहां चीजों पर देखते है, वहां-वहां हमारी चेतना प्रकाश डालती है, रोशनी डालती है। यह रोशनी सिर्फ सूरज की नहीं है। सूरज की रोशनी काफी नहीं है। हमारी चेतना भी रोशन करती है हर चीज को, जिसे हम देखते हैं। हमारी आंखों से भी रोशनी बाहर जाती है।
और यह कोई मैटाफिजिकल, कोई पारलौकिक सिद्धांत नहीं है। अब तो विज्ञान इसके समर्थन में है कि जब भी आप देखते हैं, तो आपकी जीवन-ऊर्जा जिन चीजों पर आप फेंकते हैं, उनको रोशन करती है। उनके भीतर गति भी शुरू हो जाती है।
और देख कर आप अपनी रोशनी को पदार्थ से जोड़ते हैं।

अगर कोई व्यक्ति न देखने की साधना करेः कुछ समय तक देखे ही नहीं--आंख
को बंद ही रखे; सुने ही नहीं--कान को बंद ही रखे; छुए ही नहीं--हाथ को बंद ही रखे, तो जो ऊर्जा इन इंद्रियों से बाहर जा रही थी, वह सारी की सारी ऊर्जा भीतर इकट्ठी होने लगेगी; सघन होने लगेगी। उस सघनता में एक घड़ी आती है, जब भीतर का प्रकाश-बिंदु पैदा हो जाता है।
यह प्रकाशबिंदु वैसा ही है, जैसे हम सूरज की किरणों को इकट्ठा कर लें
तो आग पैदा हो जाए। जैसे ही भीतर की किरणें इकट्ठी हो जाती हैं, भीतर की आग जल जाती है। लेकिन प्रतीक्षा चाहिए। और कोई समय पक्का नहीं हो सकता कि किसको कितनी देर लगेगी--इंटेंसटी पर, तीव्रता पर निर्भर करेगा।
कोई एक क्षण में भी इस भीतर के प्रकाश को उपलब्ध हो सकता है अगर बाहर
से अपने को पूरा का पूरा रोक ले। इस रोक लेने की विधि का नाम ही "ध्यान" है। इस रोक लेने की विधि को "सामायिक", महावीर ने कहा है।
सामायिक शब्द बड़ा बहुमूल्य है, ध्यान से भी ज्यादा बहुमूल्य है।
क्योंकि ध्यान में थोड़ी सी भ्रांति हो सकती है। सामायिक जैसा शब्द सारी दुनिया की किसी भाषा में नहीं है। जब भी हम कहते हैं "ध्यान", तो ऐसा लगता है, किसी चीज पर ध्यान।
मेरे पास लोग आते हैं--उनसे मैं कहता हूं, "ध्यान करो!" तो वे कहते हैं, "किस चीज पर ध्यान करें?" तो ध्यान लगता है, बहिर्मुखी है। अंग्रेजी में शब्द है, मेडिटेट--उसका मतलब ही होता है, किसी चीज पर। तो किसी से कहो, मेडिटेट करो, तो वह पूछता है, आन वॉट--ओम पर? राम पर? क्राइस्ट पर? मेरी पर? ... किस पर?
महावीर ने ध्यान शब्द का उपयोग नहीं किया, क्योंकि ध्यान में भ्रांति है। ध्यान का मतलब ही होता है, किसी चीज पर ध्यान; बाहर हो गया। महावीर ने कहा; सामायिक। सामायिक शब्द उनका अपना है। "समय" आत्मा का नाम है महावीर के लिए। समय का अर्थ हैः आत्मा और सामायिक का अर्थ हैः आत्मा में होना--टु बी इन वनसेल्फ।
ध्यान उतना मूल्यवान शब्द नहीं है। लेकिन महावीर को माननेवाले भी सामायिक करते वक्त ध्यान कर रहे हैं, सामायिक नहीं; नमोकार मंत्र पढ़ रहे हैं--यह ध्यान हुआ, सामायिक नहीं हुई। महावीर स्वामी का नाम जप रहे हैं--यह ध्यान हुआ, सामायिक न हुई।
महावीर कहते हैंः भीतर की वैसी अवस्था, जब तुम ही तुम रह गए--यू अलोन; जहां न कोई शब्द है, न कोई ध्वनि है, न कोई रूप है। जहां कुछ भी बाहर का नहीं है। जहां कुछ भी पराया नहीं है। जहां कुछ भी अन्य नहीं है। जहां तुम्हारा होना, अकेला होना है। जहां होना मात्र रह गया है--जस्ट बीइंग--उस अवस्था का नाम सामायिक है।
यह बड़े मजे की बात है। इसका अर्थ यह हुआ कि सामायिक की नहीं जा सकती।
आप सामायिक में हो सकते हैं, सामायिक कर नहीं सकते--क्योंकि करने का मतलब ही होगा कि बाहर चले गए। कृत्य बाहर ले जाता है।
तो सामायिक कोई क्रिया नहीं है। सामायिक एक अवस्था है--अपने में डूबने की अवस्था; अपने में बंद हो जाने की अवस्था; अपने को सब तरफ से तोड़ लेने की, अलग कर लेने की अवस्था।
इसके लिए कोई जंगल जाना जरूरी नहीं है। जहां आप हैं, वहीं यह कला आप सीख सकते हैं। लेकिन थोड़ा सा अभ्यास करें। घड़ी दो घड़ी रोज आंख बंद कर लें और भीतर के अंधेरे में जीएं। थोड़े ही दिनों में, बिना कुछ और किए, सिर्फ भीतर के अंधेरे में रहने की क्षमता विकसित करते-करते आप अचानक पाएंगे कि बीच-बीच में जैसे झपकी लग जाती है; आप अपने में डूब जाते हैं क्षण भर को। और वह क्षण भी अपने में डूबना इतना आह्लादकारी है कि आप अनंत-अनंत जन्मों के सुख उसके लिए छोड़ सकते हैं। जरा सी झपकी भीतर; जरा सी देर के लिए डूब जाना; एक क्षण के लिए जगत से टूट जाना; शरीर से अलग हो जाना और अपने में डूब जाना--वह डुबकी एक दफा आपको मिलनी शुरू हो जाए, फिर संसार को छोड़ना नहीं पड़ता, संसार कचरा मालूम होने लगता है।
छोड़ना तो उसे पड़ता है, जिसमें मूल्य मालूम पड़े। कचरे को कोई नहीं छोड़ता। आप घर के बाहर जाकर रोज चिल्ला कर घोषणा नहीं करते कि आज फिर कचरे

का हम त्याग कर रहे हैं। हां, जब आप सोने का त्याग करते हैं, तब आप जरूर खबर चाहते हैं कि छपे--क्योंकि सोना आपके लिए कचरा नहीं है।
लेकिन जैसे ही भीतर के सोने का पता चलता है, बाहर का सब सोना कचरा हो जाता है। और एक क्षण के लिए भी वैसी सुरति बंध जाए, वैसी स्मृति जग जाए, वैसी सामायिक हो जाए, तो उसके बाद शास्त्रों में नहीं खोजना पड़ता, आप खुद जानते हैं कि शरीर और मैं अलग हूं।
एक किरण इस बोध की कि मैं शरीर से भिन्न हूं, मैं चैतन्य हूं और शरीर पदार्थ है--महावीर कहते हैं--फिर संयम बिल्कुल आसान है। फिर संयम को तोड़ना मुश्किल है, अभी संयम को साधना मुश्किल है, फिर संयम को तोड़ना मुश्किल है। अभी गलत से बचना मुश्किल है, फिर गलत को करना इससे भी ज्यादा मुश्किल हो जाएगा।
"जो जीव को जानता है और अजीव को भी, वह जीव और अजीव दोनों को भली भांति जाननेवाला साधक ही संयम को जान सकेगा।"
संयम के दो अर्थ हैं। एक संयम का बाहरी अर्थ कि जो गलत है, वह न हो। और
एक संयम का भीतरी अर्थ कि जो मेरी सत्ता है, उसमें मेरा होना हो जाए। संयम का अर्थ है: बैलेन्स की, संतुलन की आखिरी अवस्था, जहां दोनों तराजू के पलड़े बिल्कुल एक रेखा में आ जाते हैं और तराजू का कांटा जरा भी कंपन नहीं दिखाता। संयम का अर्थ हैः बैलेन्स की आखिरी अवस्था, जहां कोई कंपन नहीं रह जाता।
असंयम में कंपन है; इसलिए असंयमी चित्त हमेशा कंपित होता रहता है--कभी
इस तरफ, कभी उस तरफ; कभी यह चाहता है, कभी वह चाहता है। और असंयमी चित्त चाहता ही रहता है और कभी शांत नहीं हो पाता। चाह का कोई अंत नहीं, चाह कंपाती जाती है। कंपाना एक दुख में डुबा देता है। क्योंकि कंपन एक पीड़ा है, एक तरह का बुखार है।
स्वस्थ चेतना कंपेगी नहीं, अंकपित होगी। मांग चलती ही चली जाती है मन
की और मन कंपता चला जाता है। वासना के झोंके हिलाते ही रहते हैं--जड़ों तक को हिला देते हैं। और अपेक्षाएं बढ़ती ही चली जाती हैं और कुछ भी मिल जाए, शांति नहीं मिलती--क्योंकि मिलते ही वासना आगे बढ़ जाती है।
एक दिन मुल्ला नसरूद्दीन उदास बैठा है। कुछ मित्र मिलने आए हैं। वे पूछते हैं कि नसरूद्दीन, बड़े उदास हो, क्या कारण आ गया? नसरूद्दीन ने कहा कि नहीं, कारण तो ऐसा कुछ खास नहीं, लेकिन दो सप्ताह पहले मेरे चाचा मर गये। बड़े गजब के अच्छे आदमी थे; भले आदमी थे और असमय मर गये। अभी कोई मरने का वक्त था! अल्लाह उनकी आत्मा को शांति दे! लेकिन मरने के पहले पांच हजार रुपये मेरे नाम वसीयत कर गये। फिर एक सप्ताह पहले मेरे मामा मर गये! बड़े अच्छे आदमी थे। और अभी तो जिंदगी बहुत थी, लेकिन असमय में परमात्मा ने उनको उठा लिया। भले आदमियों को परमात्मा जल्दी उठा लेता है। और मरने के पहले पंद्रह हजार रुपये मेरे नाम कर गये!... ऐण्ड दिस वीक नथिंग... और यह सप्ताह पूरा गुजर रहा है, अभी तक कुछ भी नहीं हुआ--इसलिए उदास हूं!
चाह दूसरे की मौत से भी शोषण करती है। वासना बस अपने लिए जीती है। सारी दुनिया भी मर जाए, मिट जाए, तो भी वासना अपने लिए जीती है। वासना एक तरह की विक्षिप्तता है।
और उसका कोई अंत नहीं है। कितना ही मिल जाए, हमेशा उदास होगी। क्योंकि जितना मिल सकता है, उससे ज्यादा की कामना की जा सकती है। आपकी कामना की कोई सीमा नहीं है। संसार की सीमा है, आपकी कामना की कोई सीमा नहीं। आप सदा और ज्यादा के लिए सोच सकते हैं, इसलिए दुखी होंगे।
संयम का अर्थ है ऐसा चित्त, जो मांगता ही नहीं; जिसकी कोई मांग नहीं है; जो डोलता ही नहीं; जो डोलकर कहीं भी नहीं जाता कि यह मिल जाए, वह मिल जाए--यह मिले, वह मिले; जिसकी कोई मांग नहीं है; जिसकी कोई वासना नहीं है। लेकिन यह किस व्यक्ति की होगी?
महावीर कहते हैं, उसी व्यक्ति की जो शरीर को और अपने को अलग जान लेता है। क्यों? शरीर और अपने को अलग जानने से वासना क्यों मिट जाएगी? क्योंकि सारी वासनाएं शरीर की हैं, आत्मा की कोई वासना है ही नहीं। और जिस दिन आपको पता चल जाए कि शरीर की वासनाओं के लिए मैं परेशान हो रहा था और उसे खो रहा

था जो मेरी निजी संपदा है--जहां परम आनंद है; जहां परम प्रकाश है और जहां अमृत का झरना है--उसे मैं खो रहा था क्षुद्र शरीर के पीछे चल कर, उसकी वासनाओं में पड़ कर--वासना गिर जाएगी।
इसका यह मतलब नहीं है कि आप शरीर की हत्या कर देंगे; मार डालेंगे।
लेकिन अब शरीर को आप उतना दे देंगे, जितना शरीर के चलने के लिए जरूरी है। आवश्यकता और वासना का यही फर्क है।
आवश्यकता नहीं बांधती, वासना बांधती है। आवश्यकता का मतलब है; शरीर यंत्र है, उसके लिए जरूरी है--जैसा कार को पेट्रोल जरूरी है और तेल देना जरूरी है। और यंत्र की जो भी जरूरत है, उसको पूरा कर देना जरूरी है। न कम देने की जरूरत है, न ज्यादा देने की जरूरत है। जितना जरूरी है, उतना ही देने की जरूरत है।
जिसकी वासना हट जाती है, वहां आवश्यकता रह जाती है। आवश्यकता में कोई पीड़ा नहीं है। आवश्यकता जरूरत है। और जरूरत भी तभी तक--महावीर कहते हैं-- रहेगी, जब तक पिछले कर्मों का जो मोमेंटम है, वह पूरा नहीं हो जाता। और जैसे ही पिछले कर्मों की पूरी की पूरी गति समाप्त हो जाती है और पिछले सारे कर्म झड़ जाते हैं--शरीर से संबंध अलग हो जाएगा। फिर उसे भोजन देने की भी कोई जरूरत नहीं है। फिर शरीर से छुटकारा सहज हो जाएगा। उस यंत्र की कोई जरूरत न रही। हमने उसे छोड़ दिया।
शरीर और मैं अलग हूं, इसका बोध ही काफी है कि हमारी वासनाएं एकदम निज्रूव हो जाएं। मैं शरीर हूं, यही वासना का प्राण है; वासना का केंद्र है।
"जब वह सब जीवों की नानाविध गतियों को जान लेता है, तब पुण्य, पाप, बंध
और मोक्ष को भी जान लेता है।"
और जैसे ही कोई व्यक्ति अपने भीतर की भेद-रेखा को पहचान लेता है, वह यह
भी जान लेता है कि क्या है पुण्य और क्या है पाप--क्या है बंध, क्या है मोक्ष।
क्यों? जैसे ही मुझे पता चलता है कि मैं अलग और शरीर अलग, तब शरीर की मान कर चलना पाप और अपनी मान कर चलना पुण्य; तब शरीर की मान कर चल कर पाप करने से बंधन का जन्म, और अपनी मान कर चलने से मोक्ष का जन्म।
क्योंकि शरीर की मैं जितनी मानूं उतना वह मनाता है। हम जितने दबें, उतना वह दबाता है। हम जितना अनुसरण करें, उतना वह आश्वस्त हो जाता है कि तुम सदा पीछे आते हो। जितना हम अपने में लीन होने लगें, उतना ही धीरे-धीरे शरीर को पता चलने लगता है कि मेरी मालकियत विसर्जित हो गई; अब मैं मालिक नहीं हूं। धीरे-धीरे वह आपके पीछे आने लगता है। और जिस दिन शरीर आपके पीछे आता है, और आपके भीतर का स्वामी, आपके भीतर का मालिक प्रकट हो जाता है-- महावीर कहते हैं उस अवस्था को मुक्त।
एक बंधा हुआ मन है जो चलता चला जाता है बिना सोचे-समझे कि वह क्या मांग रहा है। कभी आप विचार करते हैं बैठ कर कि आपका मन आपको कहां-कहां ले जाता है; क्या-क्या करवाता है। ऐसा कोई पाप नहीं, जो आप छोड़ते हों। मनस्विद कहते हैं, ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है, जिसने वे सब पाप मन में न किए हों, जो मनुष्यता ने पूरे इतिहास में किए हैं।
मन में आप सभी पाप कर लेते हैं। हत्या कर लेते हैं, व्यभिचार कर लेते हैं, चोरी कर लेते हैं--ऐसा कुछ नहीं है जो आप छोड़ देते हैं, जहां तक मन का संबंध है। शरीर से नहीं कर पाते, क्योंकि बहुत उपद्रव बाहर है। अगर आपको पूरी छूट हो तो आप जरूर करेंगे।
कभी सोचें कि अगर आपको पूरी स्वतंत्रता हो, शक्ति हो और आपको कोई बाधा देने वाला न हो और न कोई दंड देने वाला हो, तो आप कौन सा पाप है जो नहीं करेंगे? आप सभी पाप कर लेंगे।
इसीलिए पद भ्रष्ट करता है। क्योंकि शक्ति हाथ में आती है तो जो-जो पाप नहीं किए, उनको करने की वृत्ति हाथ में आती है।
लार्ड एक्टन ने कहा है: पॉवर करप्ट्स एण्ड करप्ट्स एब्सोल्यूटली। वह ठीक कहा है कि शक्ति आदमी को दुराचारी बनाती है, और बुरी तरह दुराचारी बनाती है। लेकिन सच बात एक्टन के वचन में नहीं है। सच बात यह नहीं है कि

शक्ति किसी को दुराचारी बनाती है। दुराचारी लोग हैं, शक्ति सिर्फ अवसर देती है।
तो आप देखें, जो राजनीति के पद पर है उसके आलोचक, उसके विरोधी उसकी निंदा करते हैं कि वह भोग रहा है, पैसा लूट रहा है, रिश्वत ले रहा है, स्त्रियां रखे हुए है, व्यभिचारी है--सब कर रहा है।
यह जो विरोधी कह रहा है, इससे आप इस भ्रांति में पड़ जाते हैं कि यह ऐसा काम नहीं करेगा। इसके पास शक्ति नहीं है। जब यह ताकत में जाएगा, यह सब वही काम करेगा जो ताकत में पहले वाले आदमी ने किए थे।
यह बड़े मजे की बात है कि ताकत में जाते ही आदमी अपने दुश्मनों जैसा हो जाता है--किसी को भी शक्ति में बिठा दें! क्यों ऐसा होता है?
इसका कारण है, हर आदमी मन से तो करना ही चाहता है--सदा करना चाहता है।
यह विरोध भी इसीलिए कर रहा है कि तुम कर रहे हो और मुझे मौका नहीं मिल रहा है। एक मौका हमें भी दो। इसके विरोध का इतना ही मतलब है--अब तुम काफी कर लिए।
लेकिन यह आपसे ऐसा कह नहीं सकता। शायद इसको भी साफ नहीं है कि यह ऐसा
ही करना चाहता है। इसके भी कांशस, चेतन में यह बात नहीं होगी। यह तो अभी यही चाहता है कि जनता की सेवा करनी है, जगत का उद्धार करना है, समृद्धि बढ़ानी है, गरीबी मिटानी है--सब करना है। अभी शायद चेतन मन इसका भी यही कह रहा है। लेकिन अचेतन का इसे भी पता नहीं है कि इन सब बातों के पीछे अचेतन वृत्तियां वही हैं। क्योंकि जो इसके पहले बैठे हैं, वे भी इसीलिए वहां तक पहुंचे हैं।
पहुंचते ही सारी चीज बदल जाती है। सिंहासन पर बैठते ही दूसरे आदमी से मिलन होता है। जिसको हम जानते थे सिंहासन के पहले, वह आदमी खो ही जाता है। यह क्यों होता है? और इतना अनिवार्य रूप से होता है कि इसमें अपवाद नहीं है।
यह इसलिए होता है कि सिंहासन के नीचे हर आदमी के अचेतन में वे ही वासनाएं हैं। मौका नहीं है, धन नहीं है, ताकत नहीं है कि जो भी करना चाहता है वह कर सके, इसका उपाय नहीं है। तो अपने मन को समझा लेता है कि जो वह नहीं कर सकता, वह करने योग्य नहीं है।
ध्यान रहे, अंगूर खट्टे हैं, ऐसा समझा लेता है। जहां तक पहुंच नहीं होती है--वह बात करने योग्य ही नहीं है। लेकिन शक्ति इसे मिल जाए तो जो-जो सोया था, जो-जो दबाया था, वह सब प्रकट हो जाएगा। शक्ति हाथ में आते ही सब सक्रिय हो जाएगा। वैसे ही, जैसे एक बीज पड़ा है जमीन में और पानी न हो, तो बीज पड़ा रहेगा--पानी पड़ा कि अंकुर फूटा। बीज में अंकुर छिपा था, तैयार था, पानी की प्रतीक्षा थी--ठीक मौका और पानी मिलने पर प्रकट हो जाएगा।
शक्ति, पद, सामर्थ्य, धन लोगों को बिगाड़ता है--इसलिए नहीं कि धन किसी
को बिगाड़ सकता है। लोग बिगड़ने के लिए बिल्कुल तैयार हैं, सिर्फ धन की प्रतीक्षा है। संयोग आते ही बिगड़ जाते हैं। और मैं कहता हूं यह निरपवाद रूप से होता है--विदाउट एक्सेप्शन। क्यों? क्या ऐसा कोई भी आदमी नहीं है जिसकी कोई दबी वासना न हो, और जो पद पर पहुंचे और पद उसे बिगाड़े नहीं?
ऐसे आदमी हैं। लेकिन ऐसा आदमी पद पर जाने की कोशिश नहीं करता क्योंकि
पद पर जाने का कोई धक्का ही नहीं रह जाता। धक्का तो भीतर की वासना से आता है। ऐसा आदमी पद पर जाने की कोशिश नहीं करता। और यहां कोशिश करनेवाले जहां नहीं पहुंच पाते, बिना कोशिश करने वाला कैसे पद पर पहुंच पाएगा?
उसका कोई उपाय नहीं है। जो पद से व्यभिचारित नहीं होता, वह पद तक नहीं पहुंच पाता। उसके पहुंचने का कोई कारण नहीं है। और जो व्यभिचारित हो सकता है, वही पहुंचने की कोशिश करता है। और जितना ज्यादा तीव्र वेग हो दबी हुई वासना का, उतनी तीव्रता से पहुंचने की कोशिश करता है। दबे वेग शक्ति बन जाते हैं।
महावीर कह रहे हैं कि आप अगर अवसर से दूर हैं--इसका नाम संयम नहीं है। स्त्री पास नहीं है--आप ब्रह्मचारी हैं। धन पास नहीं है--आप सादगी से जी रहे हैं। किसी को मार नहीं सकते, क्योंकि डरते हैं। क्योंकि मार वही सकता है, जो पिटने को तैयार है।

आप ध्यान रखना, जो पिटने को तैयार नहीं है, वह मार नहीं सकता। मारने की क्षमता उसी में आती है, जो पिटने के लिए बिल्कुल तैयार है। आप पिटने को तैयार नहीं हैं, इसलिए मार नहीं सकते--तो सोचते हैं, अहिंसक हैं।
आदमी ऐसा है कि अपनी सब वृत्तियों के लिए रेशनेलाइजेशन खोज लेता है। कायर अपने को अहिंसक कहता है। क्योंकि कायरता तो बड़ा दुख देती है कि कोई कहे कि मैं कायर हूं। कायर अपने को अहिंसक कहता है कि मैं हिंसा नहीं करना चाहता।
इसलिए बड़ी हैरानी की बात है कि महावीर खुद क्षत्रिय थे, जैनों के बाकी तेइस तीर्थंकर भी क्षत्रिय थे--सब क्षत्रिय घरों से आए चौबीस तीर्थंकर। और उनको मानने वाले सब वणिक हैं, बनिया हैं। यह बड़ी हैरानी की बात है! इसमें कोई तालमेल नहीं दिखाई पड़ता। चौबीस तीर्थंकर क्षत्रिय हों जिनके, उनके सब मानने वाले दुकानदार हों, इसमें जरूर कोई न कोई बात बड़ी महत्वपूर्ण है।
असल में अहिंसा की बात कायरों को ठीक लगी--रेशनेलाइजेशन। उनको जंची
कि यह बात बिल्कुल ठीक हैः कायर के कायर रहो और अहिंसक भी हो जाओ। कोई कुछ कह भी नहीं सकता कि तुम कायर हो। कायरता को छिपाने के लिए अहिंसा का सिद्धांत--इससे सुंदर और क्या हो सकता था! जो-जो डरते थे, भयभीत थे, वे अहिंसा के भीतर खड़े हो गए। अहिंसा उनके लिए कवच बन गई।
लेकिन अहिंसा उसी के जीवन में फल सकती है जो कायर नहीं है। क्योंकि अहिंसा आखिरी वीरता है। हिंसा बड़ी वीरता नहीं है। दूसरे को मारने की तैयारी इसी बात की घोषणा है कि मैं कहीं मार डाला न जाऊं। वह डर का ही हिस्सा है। कोई मुझे मार न दे, इस डर से मैं पहले ही मार देता हूं।
हिंसक भयभीत व्यक्ति है। हिंसक पूरा बहादुर नहीं है, उसकी बहादुरी अधूरी है। वह डरा हुआ है कि मुझे मार न डाला जाए। इस भय से ही उसकी हिंसा है। आपके हाथ में तलवार है, वह तलवार खबर देती है कि आप भीतर कहीं डरे हुए हैं। वह डर हिंसा बन सकता है।
लेकिन अगर कोई व्यक्ति डरा ही हुआ नहीं है, तो ही दूसरे को मारने का ख्याल विदा होता है। जब मैं इतना निर्भय हूं कि मुझे कोई मारे तो भी मुझे मार नहीं सकता, भीतर मैं अमृत हूं--तो फिर दूसरे को मारने का कोई सवाल न रहा।
अहिंसा आखिरी वीरता है। लेकिन जगत में बड़ी विडंबना है; जो आखिरी वीरता है, वह प्राथमिक कायरता का कवच बन गई है। ऐसा रोज हो रहा है। सभी सिद्धांतों के साथ ऐसा हो रहा है। झूठ आप बोल नहीं सकते, क्योंकि फंसने का डर है। तो आप सच बोलते हैं, लेकिन वह सच निर्जीव है। उसके पीछे कोई आत्मा नहीं है। वह कायर का सत्य है।
यह जो हम इस भांति संयम साध लेते हैं, यह संयम हमें मोक्ष तक तो नहीं
ले जाता; हमें संसार से ऊपर भी नहीं उठाता; हमें संसार के भीतर ही बांध रखता है--एक कैप्सूल में। हम एक अपने ही संयम के कैप्सूल में बंद हो जाते हैं। न हम संसार को भोग पाते हैं--क्योंकि भोग भी शायद कभी संयम का मार्ग बन जाए। क्योंकि भोगते-भोगते भी आदमी को ऊब पैदा होती है। जिस चीज को हम बार-बार भोगते हैं, उससे ऊब पैदा हो जाती है।
मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी बड़ी नाराज थी एक दिन, क्योंकि नसरुद्दीन
ने थाली नीचे फेंक दी भोजन के समय। नसरुद्दीन की पत्नी ने कहाः यह तुम क्या कर रहे हो?
नसरुद्दीन ने कहा कि मुझे मार डालेगी! रोज भिंडी का साग!
पर उसकी पत्नी ने कहाः कैसी बात कर रहे हो? सोमवार को तुमने कहा था कि साग बहुत अदभुत है। और मंगलवार को भी तुमने कहा कि साग अच्छा बना है। और बुधवार को भी तुमने पसंद किया और बृहस्पतिवार को भी पसंद किया; शुक्रवार को भी पसंद किया--और आज शनिवार है; और आज अचानक तुम कहने लगे कि मार डालोगी! सोमवार को जो पसंद है, मंगलवार को कम पसंद हो जाएगा। बुधवार को और कम पसंद हो जाएगा। अनुभव भी उबा देता है। शनिवार को थाली फेंकने की नौबत आ जाएगी। जो स्वादिष्ट भोजन था, वह जहर जैसा मालूम पड़ने लगेगा।

लेकिन पत्नी यह कह रही है, उसकी बात बड़ी तर्कपूर्ण है। वह यह कह रही है
कि जब तुमको छह दिन जो चीज पसंद थी, तो आज अचानक सात दिन का तुम अपना मन कैसे बदल रहे हो? तुम तर्क संगत नहीं हो। जो चीज छह दिन पसंद थी, वह सातवें दिन और भी ज्यादा पसंद होनी चाहिए।
नहीं, मन ऊब जाता है। इसलिए पति-पत्नी एक दूसरे से ऊब जाते हैं। निरंतर एक का ही अनुभव उबाने वाला हो जाता है।
मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि जब तक पति-पत्नी जगत में हैं, तब तक व्यभिचार को मिटाना मुश्किल है। जब तक विवाह है, तब तक व्यभिचार को मिटाना मुश्किल है। वे शायद ठीक ही कहते हैं, क्योंकि विवाह उबाता है। ऊब से आदमी यहां-वहां भागता है, उससे व्यभिचार पैदा होता है।
अब यह बड़ी मुश्किल की बात है--मनस्विद कहते हैं कि वेश्याएं विवाह की संस्था का अनिवार्य अंग हैं। और जब तक विवाह है तब तक वेश्याएं होंगी। और अगर वेश्याओं को मिटाना तो ध्यान रखना, विवाह मिट जाएगा। विवाह ही मिट जाए तो ऊब मिट जाए, ऊब मिट जाए तो फिर कोई सवाल नहीं है। लेकिन विवाह के साथ वेश्या जुड़ी हुई है।
जिंदगी बड़ी अजीब है और बड़ी जटिल है। तो जो आदमी भोग से भी अपने को रोक लेता है और आत्म-ज्ञान को भी उपलब्ध नहीं होता, वह तो संयम की आखिरी संभावना भी बंद किए दे रहा है। एक संभावना तो यह है कि वह दुख में पड़े, नरक में उतरे और भोगे, और भोग-भोग कर परेशान हो जाए--इतना परेशान हो जाए कि वह परेशानी ही उसे बाहर निकालने लगे--वह भी बंद हो गया। और दूसरा उपाय यह है कि वह भीतर के प्रकाश को जलाए, शरीर और आत्मा को पृथकता से देखे--उस पृथकता के कारण शरीर की वासना गिर जाए। या फिर शरीर में कोई इतना जाए कि ऊब जाए, ऊब से संयम का जगत शुरू हो।
लेकिन जिसको हम संयमी कहते हैं, वह दोनों से बच जाता है। न तो वह आत्म-ज्ञान को उपलब्ध हो रहा है, न तो भोग के नरक से गुजर रहा है ताकि नरक छोड़ने जैसा मालूम पड़ने लगे। वह रुका हुआ है। उसने अपने चारों तरफ एक कारागृह बना लिया है अपनी कायरता का, अपने डर का, भय का। वह उसमें बंद है।
इस भय में बंद आदमी को मोक्ष से सर्वाधिक दूर समझना। भोगी भी इतना दूर नहीं है। यह जो तथाकथित योगी है, इससे ज्यादा दूर मोक्ष से कोई भी नहीं। भोगी भी इससे थोड़ा करीब है। क्योंकि आज नहीं कल, जिंदगी का अनुभव ही उसे बार-बार दुख देकर बता देगा कि यह जिंदगी कुछ सार्थक नहीं है। लेकिन इस संयमी को, तथाकथित संयमी को जिंदगी में जो-जो गलत है, उसका रस बना ही रहेगा। वह गलत का रस इसके संयम से पैदा हो रहा है। क्योंकि जिस-जिस चीज को आप रोकते हैं, उस-उस में रस पैदा हो जाता है।
आदमी के अधिक पापों का कारण संयम की शिक्षा और नीति की शिक्षा है। जिन-जिन पापों से आदमी को रोकने के लिए कहा जाता है, उन-उन में रस आ जाता है। जरा फिल्म में लगा दें कि ओनली फार एडल्टस--सिर्फ वयस्कों के लिए, फिर जिनकी मूंछ की रेखा भी नहीं आई, वह भी दो आने की मूंछ खरीद कर लगाकर क्यू में खड़े हो जाते हैं। फिर पत्रिकाएं निकलती हैं--"ओनली फॉर मैन।" सिर्फ औरतें पढ़ती हैं उस पत्रिका को, आदमी पढ़ते ही नहीं। "ओनली फॉर वुमन"--आदमी पढ़ेगा ही, स्त्रियां उसकी फिकर नहीं करतीं। क्योंकि वे उसे जानती हैं कि स्त्री में क्या होने वाला है।
जहां निषेध है वहां रस पैदा हो जाता है। जिस चीज में रस पैदा करना हो उसका निषेध करना जरूरी है। आप बड़े हैरान होंगे--इसको मैं जिंदगी की बिडंबना कहता हूं। और यह समझ में न आए तो बड़ी अड़चन हो जाती है। आपके सब तथाकथित साधु-संत आपकी जिंदगी में जो-जो गलत चल रहा है, उसके लिए जिम्मेवार हैं। क्योंकि वे निषेध किए चले जाते हैं और रस पैदा किए चले जाते हैं। और जिस चीज का निषेध कर दो, बहुत निषेध करो, उसमें शक होने लगता है कि जरूर कोई बात होनी चाहिए।
बाप बेटे को समझाता है, सिगरेट मत पीना। अभी बेटे को ख्याल ही नहीं आया था। सच तो यह है कि अगर बेटे अपने पर ही छोड़ दिए जाएं तो हजारों साल लग जाएंगे उनको सिगरेट खोजने में। क्योंकि धुआं बाहर-भीतर करना इतनी

नालायकी का काम है--इसको कौन करना चाहेगा! और किसलिए करना चाहेगा! इसमें कुछ भी तो अर्थ नहीं मालूम पड़ता।
लेकिन चारों तरफ समझाने वाले लोग हैं कि धूम्रपान है, सिगरेट मत पीना! बाप यह भी कहता हैः क्या करूं, मेरी तो खराब आदत कि मैं पीने लगा, बाकी तू मत पीना! बेटे को रस शुरू होता है कि जरूर कुछ न कुछ मामला है।
जो भी चीज रोकी जाती है, उसमें कुछ होना चाहिए। नहीं तो रोकेगा कौन! क्यों रोकेगा! और ए सारे समाज के पंडे-पुरोहित क्यों इसके खिलाफ पड़ेंगे अगर कुछ भी नहीं है! आखिर साधु-संन्यासी अपनी आत्मा की बात छोड़कर क्यों समझाते रहे हैं लोगों को कि धूम्रपान मत करो, सिगरेट मत पीओ; यह मत करो... । जरूर सिगरेट में कोई आनंद होना चाहिए कि इतने लोग दीवाने हैं करने को। और इतना समझाने वालों के बाद भी कोई रुकता नहींकोई रुकता नहीं। एक आदमी को नहीं बदल पाते इतना समझाकर!
तो बच्चे को भी यह दिखाई पड़ना शुरू होता है कि इतने लोग धुआं बाहर-भीतर कर रहे हैं। अरबों रुपये की सिगरेट--बीड़ी पीई जा रही है। और इतने हजारों साल से साधु-संत समझा रहे हैं, कोई इनकी सुनता नहीं। जरूर साधु- संतों में उतना रस नहीं है, जितना इस धूम्रपान में है।
पहली दफा जब बच्चा सिगरेट पीता है तो जरा भी रस नहीं आता। वमन भी हो सकता है, खांसी आ सकती है, आंख से आंसू आ जाएंगे--क्योंकि बात ही बेहूदी है। लेकिन वह देखता है कि कोई सुख बिना दुख के तो मिलते नहीं... तप के बिना। तो थोड़ी साधना करनी पड़ेगी; अभ्यास करना पड़ेगा। बिना अभ्यास के कहीं कुछ हुआ है! और जब इतने लोग पा चुके इस अवस्था को... धूम्रपान का मोक्ष--मैं भी कोशिश किए चला जाऊं।
फिर वह अभ्यस्त हो जाता है। नरक के लिए भी अभ्यस्त हो सकता है आदमी! दुख के लिए भी अभ्यस्त हो सकता है! और जब अभ्यस्त हो जाता है तब एक बड़ी मजेदार घटना घटती है; एक कंडिशनिंग हो जाती है। धूम्रपान एक कंडिशनिंग है। एक संस्कार आबद्ध हो गया। और सारी दुनिया उसमें रस देखती है। जो पीते हैं, वे भी रस देखते हैं; जो नहीं पीते हैं, वे भी रस देखते हैं। तो सारी दुनिया की हवा उसको राजी कर देती है कि इसमें जरूर रस है। और अगर मुझे नहीं दिखाई पड़ता; तो अपनी ही बुद्धि की भूल है। थोड़ा अभ्यास! वह कर लेता है अभ्यास। जब अभ्यास हो जाता है, तो रस तो बिल्कुल नहीं मिलता, लेकिन अब न पीए तो दुख मिलता है।
गलत का यही आधार है। अगर आप करें तो कोई सुख नहीं पाते, न करें तो दुख पाते हैं। क्योंकि न करें तो एक आदत, एक तलफ, एक बेचैनी कि कुछ करना था वह नहीं किया। तब फिर इस दुख से बचने के लिए आदमी पीए चला जाता है।
हमारे जीवन के अधिक पाप, हमारे चारों तरफ पाप के खिलाफ जो चर्चा है, उससे पैदा हुए हैं। और जब तक यह चर्चा बंद नहीं होती, तब तक उन पापों का हटाने का कोई उपाय नहीं है।
अभी कल ही मैंने देखा अखबार में कि दिल्ली में साधु-संन्यासियों ने
एक सम्मेलन किया अश्लील पोस्टरों के खिलाफ।
साधु-संन्यासियों को क्या प्रयोजन अील पोस्टरों से? इनको क्या अड़चन है?
कोई अश्लील पोस्टर देख रहा है, यह उसकी निजी स्वतंत्रता है। और उसे कोई रस आ रहा है तो वह हकदार है उस रस को लेने का। तुम्हें रस नहीं आ रहा-- तुम साधु-संन्यासी हो गए हो; तुमने सब छोड़ दिया। लेकिन अब भी तुम... अब भी तुम परेशान क्यों हो?
जरूर ये साधु-संन्यासी भी अील पोस्टर देखते होंगे। इनको पीड़ा क्या हो रही है? और ये अपना मोक्ष, सामायिक, ध्यान छोड़ कर इस तरह के सम्मेलन क्यों करते हैं? इतनी अड़चन क्यों उठाते हैं?
यह बड़े मजे की बात है कि "अश्लील पोस्टर होने चाहिए" इसका कोई सम्मेलन नहीं करता, और वे चलते हैं। और यह सम्मेलन करते रहे हजारों साल से, कोई रुकता नहीं। अश्लील पोस्टर में ये साधु-संन्यासी रस को बढ़ाते हैं, कम नहीं करते। ये जिम्मेवार हैं।

अश्लील पोस्टर हट जाएंगे उस दिन, जिस दिन हम कह देंगे, यह व्यक्ति की निजी बात है कि वह नग्न चित्र देखना चाहता है, मजे से देखे। नग्न चित्रों को न तो जमीन के नीचे दबा कर बेचने की जरूरत है, न छिपा कर रखने की जरूरत है। नग्न चित्रों को तो प्रकट कर देने की पूरी जरूरत है कि लोग देख कर ही ऊब जाएं कि अब कब तक देखते रहें।
मैंने सुना है कि एक सर्जन एक आर्ट एक्झिबीशन में गया एक चित्र खरीदने। चित्र का उसे शौक था। प्रदर्शनी में बड़े-बड़े चित्रकारों की पेंटिग्स थीं--सब उसे दिखाई गई, पर उसे कोई जंची नहीं। तब जो उसे दिखा रहा था, गाइड, उसने कहा, फिर ऐसा करिए, आप अंडरग्राउंड पेंटिग्स देखें। आपको ये कुछ जंच नहीं रही हैं, तो इस प्रदर्शनी में छिपा हुआ हिस्सा भी है जहां सिर्फ न्यूड्स, नग्न स्त्रियों के चित्र हैं--वे आपको जरूर जंचेंगे।"
तो उसने कहाः छोड़ो! मैं सर्जन हूं मैं इतनी नग्न स्त्रियां देख चुका हूं कि अब मैं डरता हूं, जब फिर से मुझे नग्न स्त्री देखनी पड़ती है। नग्न स्त्रियां देख-देख कर मेरा न केवल नग्न स्त्रियों को देखने में रस खत्म हो गया है--मेरा सारा रोमांस, स्त्री के प्रति मेरा आकर्षण, काम वासना का उद्दाम वेग, वह सब शिथिल पड़ गया है।"
कपड़े ढांक-ढांक कर हम शरीर में आकर्षण बढ़ा रहे हैं। जिस दिन दुनिया नग्न होगी, उस दिन कोई नग्न पोस्टर लगाने की जरूरत नहीं रह जाएगी। नग्न पोस्टर तरकीब है। इधर कपड़े से ढांको, तो फिर उघाड़ कर दिखाने में रस आना शुरू हो जाता है। आदमी जब तक इस पूरे भीतरी उलझाव को, उपद्रव को न समझ ले, तब तक जीवन में संयम की जगह संयम के नाम पर एक कारागृह पैदा हो जाता है। या तो भोग के अनुभव से गुजरो ताकि ऊब जाओ; और या फिर भीतर के विवेक को जगाओ ताकि शरीर की पकड़ खो जाए। इन दोनों से बच कर साधु तीसरे काम में लगा रहता है।
ये साधु जो सम्मेलन करते हैं कि अील पोस्टर नहीं होने चाहिए, इनको जरूर कुछ बेचैनी है। बेचैनी यह है कि तुम सब मजा ले रहे हो! और ये बेचारे बड़े परेशान हैं। इनकी परेशानी का अंत नहीं है।
अगर ये सच में ही संयम को उपलब्ध हुए होते और अगर इनको पता चला होता कि आत्मा और शरीर अलग हैं, तो ये कहते कि ठीक है, ये शरीर के नग्न चित्र हैं, शरीर कोई आत्मा नहीं है--इसमें चिंता की क्या बात है?
लेकिन यह ज्ञानी भी, अगर स्त्री इसको छू ले, तो हट कर खड़ा हो जाता है।
और यह कहता रहता है कि शरीर और आत्मा अलग हैं! और स्त्री का शरीर, तो बहुत दूर, उसका कपड़ा छू जाए तो भी इसमें रोमांस पैदा होता है। यह हट कर खड़ा हो जाता है।
जो साधु स्त्रियों को अपने पैर नहीं छूने देता, स्त्रियां उसमें बड़ी उत्सुक होती हैं कि जरूर गजब का आदमी है! स्त्री उसी आदमी में उत्सुक होती है जो स्त्रियों में उत्सुक न हो। क्योंकि तब उसे लगता है कि जरूर अदभुत है!
तो साधु स्त्री को पैर न छूने दे, पास न आने दे तो स्त्री भी मानती है, महात्मा पूरा है। लेकिन यह महात्मा को अभी इतना भी पता नहीं चल रहा है कि स्त्री की आत्मा तो कुछ स्त्री होती नहीं; पुरुष की आत्मा कोई पुरुष होती नहीं--शरीर ही में स्त्री और पुरुष होते हैं। और शरीर में भी क्या रखा है? स्त्री-पुरुष का भेद क्या है? अगर जीवशास्त्री से पूछें तो वह कहता है, बच्चा जब पैदा होता है, तो उसके शरीर में दोनों ही अंग होते हैं-- स्त्री-पुरुष के। कोई तीन सप्ताह बाद फर्क होना शुरू होता है। फर्क भी बड़ा मजेदार है। फर्क वही है जो शीर्षासन में होता है। पुरुष की इंद्रियां बाहर आ जाती हैं, वे ही इंद्रियां स्त्री में भीतर की तरफ मुड़ जाती हैं-- जैसे कोट के खीसे को आप उलटा कर लें। बस, इतना फर्क है!
जरा भी फर्क नहीं है। जो शरीर की चमड़ी बाहर लटक जाती है वह पुरुष की इंद्रिय बन जाती है, वही चमड़ी भीतर की तरफ सरक जाती है तो स्त्री की इन्द्रिय बन जाती है। बस, इतना ही फर्क हैः कोट का पाकेट उलटा या सीधा!

लेकिन यह शरीर का जिनको अनुभव हो रहा है कि शरीर-आत्मा अलग हैं, उनको
भी इतने फर्क में इतना रस मालूम पड़ता है। वह रस उनके रोग की खबर देता है।
उन्होंने जबरदस्ती अपने को रोक लिया है, कोई ज्ञान उत्पन्न नहीं हुआ। जबरदस्ती मुक्त नहीं कर सकती, सिर्फ समझ, अंडरस्टेंडिंग, होश मुक्त
कर सकता है।
महावीर कहते हैंः जब कोई व्यक्ति अपने इस आंतरिक भेद को जान लेता है
तब पुण्य, पाप, बंध, मोक्ष सभी जान लिए जाते हैं। जब पुण्य, पाप, बंध और मोक्ष जान लिए जाते हैं, तब देवता और मनुष्य संबंधी काम-भोगों की व्यर्थता स्पष्ट हो जाती है। उनसे विरक्ति सहज फलित होती है।
यह जरा समझने जैसा है। क्योंकि जो आदमी जबरदस्ती दमन के द्वारा अपने
को संयमी बना लेता है, भीतर पूरा अंधेरा रहता है, बाहर-बाहर इंतजाम कर लेता है अपने को रोकने का, इसकी वासना... इस जगत से भला यह अपनी वासना को भीतर रोक ले, दूसरे जगत में संलग्न हो जाती है। यह स्वर्ग की कामना करने लगता है। आपको पता होगा, कथाएं हैं कि जब भी कोई ऋषि-मुनि अपनी तपश्चर्या में पूर्ण होने लगता है तो इंद्र का सिंहासन डोलने लगता है।
यह बड़े मजे की बात है कि इंद्र का सिंहासन किसी ऋषि-मुनि के तपस्या में ऊपर उठ जाने से क्यों डोलता है? इसमें क्या संबंध है? और इंद्र के सिंहासन में ऐसा क्या ऋषि-मुनि को रस हो सकता है? और इंद्र इतना भयभीत क्यों होता है कि एक काम्पिटीटर, एक प्रतियोगी पैदा हो गया? और इंद्र वहां कर क्या रहा है--सिवाय नाच-गाने, खाने-पीने के और वहां कुछ हो नहीं रहा है! स्वर्ग का मतलब है: जहां इस संसार के सब दुख काट दिए हैं, और इस संसार
के सब सुख अपनी पराकाष्ठा में रख दिए हैं। स्त्रियां वहां सोलह साल पर रुक जाती हैं, उससे ज्यादा उनकी उम्र नहीं बढ़ती।
यहां भी कोशिश तो बहुत करती हैं। मजबूरी है, कितनी ही कोशिश करो, शरीर
तो उम्र पा ही लेता है। लेकिन वहां वह कोशिश सफल हो गई है। स्वर्ग में सोलह वर्ष पर सारी अप्सराएं रुक गई हैं--उससे ज्यादा उम्र नहीं होती।
शरीर स्वर्ण-कांचन के पारदर्शी हैं। ट्रांसपेरेंट कपड़े ही नहीं हैं--"सीथ्रु" कि कपड़ों के पीछे से देख लो, शरीर भी "सीथ्रु", पारदर्शी है; सब दिखाई पड़ेगा। कल्पवृक्ष हैं--जिनके नीचे जो ऋषि-मुनि तपश्चर्या करके पहुंच जाते हैं, वे बैठे हैं। जो भी वासना करो, तत्क्षण पूरी हो जाती है। यहां संसार में समय लगता है। कोई वासना करो, मेहनत करो, उपद्रव करो, भारी दौड़-धूप करो--जब तक पहुंचो, अधमरे हो चुके होते हैं। तो वासना भोगने की क्षमता उस वासना को प्राप्त करने की चेष्टा में ही नष्ट हो गई होती है। लेकिन वहां स्वर्ग में, कल्पवृक्ष के नीचे, वासना का उठना और पूरा होना तत्क्षण है; युगपत है--साइमलटेनियस!
किन्होंने यह स्वर्ग-कामना की है? किन्होंने यह स्वर्ग बनाया है? किनके सपनों का यह साकार रूप है? संयमी का? तो इसका मतलब हुआ कि यहां स्त्रियां छोड़ो ताकि वहां बेहतर स्त्रियां मिल सकें। कहां क्षुद्र धन की खोज में पड़े हो, कल्पवृक्ष की खोज करो।
तो भोगी कौन है?
दो तरह के भोगी हुएः एक जो नासमझ हैं, क्षुद्र के पीछे दौड़ रहे हैं; एक
जो समझदार हैं, जो शाश्वत के पीछे दौड़ रहे हैं--जो ज्यादा चालाक हैं; ज्यादा होशियार हैं। महावीर इसको संयमी नहीं कहते।
महावीर कहते हैं कि अगर यहां किसी ने अपने को दबाया, तो वह किसी परलोक में भोगने की कामना से भर जाएगा। और यह कामना इतनी बेहूदी हो सकती है कि आप कल्पना भी नहीं कर सकते। एक धर्म में न केवल वहां हूरों और स्त्रियों का इंतजाम है, वहां गिल्मों, खूबसूरत लड़कों का भी इंतजाम है--बहिश्त में। क्योंकि जब वह धर्म पैदा हुआ तो उस देश में होमो-सेक्सुअलिटी प्रचलित थी। और पुरुष पुरुषों से भी प्रेम कर रहे थे। जब वह धर्म पैदा हुआ तो उसको अपने स्वर्ग में यह भी इंतजाम करना पड़ा कि वहां हूरें तो हैं ही खूबसूरत, लेकिन गिल्में, लौंडे भी वहां उपलब्ध हैं।
जिनके मन से यह वासना उठती होगी, इनको महावीर संयमी किस हालत में कह सकते हैं। यह संयम नहीं है। यह तो यहां दबाना और वहां इसको पाने की कोशिश

है। यह तो दमित वासना का विकृत रूप है। इसलिए महावीर कहते हैं, स्वर्ग का आकांक्षी वस्तुतः धार्मिक व्यक्ति नहीं है। मोक्ष का आकांक्षी धार्मिक व्यक्ति है।
यह जरा समझने--जैसा है कि महावीर स्वर्ग और नरक को तो आपका ही फैलाव मानते हैं। उसमें कोई बहुत फर्क नहीं है। नरक वह जगह है, जहां आप दूसरों को भेजना चाहते हैं और स्वर्ग वह जगह है जहां आप जाना चाहते हैं। और कोई फर्क नहीं है।
महावीर कहते हैं कि मोक्ष वह जगह है जहां आप हैं--अभी भी, इस क्षण भी।
जो आपका स्वभाव है। वह कोई स्थान नहीं है, एक आंतरिक बोध की अवस्था है।
इसलिए उस अवस्था को हम "बुद्धत्व" कहते हैं।
जहां बोध पूरा जग गया, वहां बुद्धत्व है।
"जब साधक पुण्य, पाप, बंध, और मोक्ष को जान लेता है, तब देवता और मनुष्य संबंधी काम-भोगों की व्यर्थता को जान लेता है।"
तो देवता भी व्यर्थ ही भटक रहे हैं। इंद्र भी इंद्रियों के पार नहीं है। इसीलिए हमने उसको "इंद्र" नाम दिया है कि वह इंद्रियों का सबसे श्रेष्ठ रूप है। इन्द्रियों को भोगने की जो पराकाष्ठा है, वह इंद्र है। और बड़े मजे बात है; उसने भी बड़ी तपश्चर्या से यह अवस्था पाई है। इसलिए
जब भी कोई दूसरा वैसी तपश्चर्या करने लगता है, इंद्र घबड़ा जाता है। तब वह क्या करता है, तब वह उर्वशी को या किसी और अप्सरा को भेजता है कि जाकर जरा इस साधु महाराज को थोड़ा डिगाओ; इन्हें थोड़ा हिलाओ, मेरा सिंहासन हिल रहा है--इन्हें थोड़ा हिलाओ तो मेरा सिंहासन थिर हो जाए। यह आदमी प्रतियोगी मालूम पड़ता है।
और बड़ा मजा यह है कि अप्सराएं साधु-महात्माओं को डिगा जाती हैं। ये उसी साधु-महात्मा को डिगा सकती हैं, जिसने भीतर के बोध से संयम को नहीं पाया है; जो भीतर तो अंधेरे में खड़ा है, जिसने बाहर से जबरदस्ती थोप लिया है।
तो आप स्त्रियों से बच सकते हैं थोपकर, अप्सराओं से नहीं बच सकते; क्योंकि अप्सराएं बाहर खड़ी नहीं होती, मन में खड़ी होती हैं। अप्सराएं कल्पना के रूप हैं। इसलिए जो साधु जिस चीज का दमन करता है, उसी के सपने आने शुरू हो जाते हैं।
अब यह बड़े मजे की बात है, जिन समाजों में... जैसे यहूदी हैं, वे अपने साधु को भी विवाह का मौका देते हैं। तो एक भी यहूदी संत के जीवन में ऐसा उल्लेख नहीं है कि जब वह परमज्ञान के पास आया, तो अप्सराओं ने उसे परेशान किया। करने का कोई कारण नहीं है। अप्सराएं पहले ही काफी परेशान कर चुकी हैं। अब कोई अप्सरा परेशान नहीं कर सकती।
तो यहूदी धर्म एक बहुत वैज्ञानिक बात मानता है कि उसके पुरोहित तो शादीशुदा होने ही चाहिए; उनका संत तो शादीशुदा होना ही चाहिए, नहीं तो वह स्त्रियों के पार नहीं जा पाएगा। और तब फिर आखिर में स्त्रियां सताती हैं।
जिन-जिन धर्मों ने स्त्री से बचने को संयम का प्राथमिक चरण बना दिया, उन-उन धर्मों में स्त्रियां सताती हैं। निश्चित ही कोई कारण है।
कारण साफ हैः जो दबाया जाता है बाहर से, वह भीतर से उभरना शुरू हो जाता है। जिसे हम बाहर से छोड़ देते हैं, वह भीतर कल्पना में, स्वप्न में पकड़ लेता है। वह वहां सताने लगता है। अप्सराएं कहीं आती नहीं बाहर से। उनके घुंघरू ऋषियों को ही सुनाई पड़ते हैं। उन्हीं के पास ग्वाले अपनी गाएं चरा रहे हैं, उनको सुनाई नहीं पड़ते; उनको दिखाई नहीं पड़तीं वे अप्सराएं--ऋषि ही परेशान होते हैं।
दमित वासना विकृत होकर स्वप्न बन जाती है। जो अपने को उपवास की साधना में लगा देते हैं बिना भीतर के ज्ञान के, उनको भोजन सताने लगता है। उनके सारे स्वप्न भोजन से भर जाते हैं। आप जरा किसी दिन उपवास करके देखें, बात साफ हो जाएगी। दिन में उपवास करें, रात सम्राट, जो अब बचे ही नहीं, वे आपको निमंत्रण देंगे--राज-भोज! वहां छप्पन प्रकार के व्यंजन आपके लिए तैयार हैं।

ये छप्पन प्रकार के व्यंजन ऋषि-मुनियों ने देखे नहीं, सिर्फ उपवास में इन्हें दिखाई पड़े हैं। यह कहीं हैं नहीं। फिर उनका रंग और उनकी सुगंध-- बात ही और है! वह अलौकिक है। वह इस लोक की है नहीं। इस पृथ्वी से उसका कोई संबंध नहीं है।
दमित चित्त विकृत हो जाता है। महावीर की साधना में कहीं भी दमन नहीं है--बोध पर जोर है, विवेक पर जोर है, जागरूकता पर जोर है।
लेकिन यह हुआ नहीं है। उनकी परंपरा में जो हुआ है, वह दमन है। और जितना उनके पीछे चलने वालों ने दमन किया, इस जमीन पर किसी दूसरी धार्मिक परंपरा ने नहीं किया। जितना दमित जैन साधु है, उतना दमित कोई भी नहीं है।
दमन आसान है, जागरण कठिन है। जो आसान है वह हम कर लेते हैं, जो कठिन है उसे बाद के लिए पोस्टपोन करते चले जाते हैं। लेकिन जब तक वह कठिन न हो जाए, तब तक सब किया हुआ व्यर्थ है। उससे कोई मोक्ष की तरफ नहीं जाता और नये जन्मों के बंधंनों की तरफ उतर जाता है।

पांच मिनट कीर्तन करें; फिर जाएं।

महावीर-वाणी, भाग 2
छब्बीसवां प्रवचन

अंतस-बाह्य संबंधों से मुक्ति (मोक्षमार्ग-सूत्रः 3)

जया निव्विंदए भोए जे दिव्वे जे य माणुसे।
तया चयइ संजोगं, सब्भिन्तरं बाहिरं।।
जया चयइ संजोगं, सब्भिन्तरं बाहिरं।
तया मुण्डे भवित्ताणं, पव्वयइ अणगारियं।।
जया मुण्डे भवित्ताणं, पव्वयइ अणगारियं।
तया संवरमुक्किट्ठं धम्मं फासे अणुत्तरं।।
जया संवरमुक्किट्ठं, धम्मं फासे अणुत्तरं।
तया धुणइ कम्मरयं, अबोहिकलुसं कडं।।
जया धुणइ कम्मरयं, अबोहिकलुसं कडं।
तया सव्वत्तगं नाणं दंसणं चाभिगच्छइ।।

जब देवता और मनुष्य संबंधी समस्त काम-भोगों से (साधक) विरक्त हो जाता है, तब अंदर और बाहर के सभी सांसारिक संबंधों को छोड़ देता है।
जब अंदर और बाहर के समस्त सांसारिक संबंधों को छोड़ देता है, तब मुंडित (दीक्षित) होकर (साधक) पूर्णतया अनगार वृत्ति (मुनिचर्या) को प्राप्त करता है।
जब मुंडित होकर अनगार वृत्ति को प्राप्त करता है, तब (साधक) उत्कृष्ट संवर एवं अनुत्तर धर्म का स्पर्श करता है।
जब (साधक) उत्कृष्ट संवर एवं अनुत्तर धर्म का स्पर्श करता है, तब (अंतरात्मा पर से) अज्ञानकालिमाजन्य कर्म-मल को झाड़ देता है।
जब (अंतरात्मा पर से) अज्ञानकालिमाजन्य कर्म-मल को दूर कर देता है, तब सर्वत्रगामी केवलज्ञान और केवलदर्शन को प्राप्त कर लेता है।

काम-भोग से विरक्ति महावीर के साधना-पथ की अत्यंत अनिवार्य भूमिका है। कामवृत्ति का अर्थ हैः मैं अपने से बाहर जा रहा हूं। कामवृत्ति का अर्थ हैः मेरा सुख किसी और में निर्भर है। कामवृत्ति का अर्थ हैः मैं स्वयं अपने में पर्याप्त नहीं हूं, कोई और मुझे पूरा करने को जरूरी है।
साफ है कि कामवृत्ति से घिरा हुआ व्यक्ति कभी भी मुक्त नहीं हो सकता।
जब तक दूसरा मेरे सुख का कारण है, तब तक दूसरा ही मेरे दुख का कारण भी होगा।
और जब तक दूसरा मेरे जीवन का कारण बना है, तब तक मैं स्वतंत्र नहीं हूं।
जब तक हम दूसरे पर निर्भर रहे चले जाते हैं, तब तक स्वतंत्रता का कोई स्पर्श भी नहीं हो सकता। इसलिए कामवृत्ति मौलिक बंधन है। और जो कामवृत्ति से विरक्त हो जाता है, वह अनिवार्यतः अपनी ओर मुड़ना शुरू हो जाता है। लेकिन लोग कामवृत्ति से विरक्त क्यों नहीं हो पाते? सुख की झलक दिखाई पड़ती है, सुख कभी मिलता नहीं; दुख काफी मिलता है। लेकिन सुख की आशा में आदमी झेले चला जाता है।
इस बात को थोड़ा ठीक से, गौर से देख लेना जरूरी है कि हम जीवन की इतनी पीड़ाएं क्यों झेले चले जाते हैं। आशा में कि आज सुख नहीं मिला, कल मिलेगा; इस व्यक्ति से सुख नहीं मिला, दूसरे व्यक्ति से मिलेगा; इस संबंध से सुख नहीं मिला तो दूसरे संबंध से सुख मिलेगा। लेकिन सुख दूसरे से मिल सकता है, यह हमारी स्वीकृत धारणा है। और यही धारणा सबसे ज्यादा खतरनाक धारणा है। सुख मिल सकता है, दूसरे से कभी किसी को नहीं मिला। कभी यह घटना ही इतिहास में नहीं घटी कि कोई दूसरे से सुखी हो गया हो। हां, दूसरे से सुख मिलने की आशा बांधे हुए व्यक्ति बहुत दुखी जरूर होता है। लेकिन फिर भी आशा बंधी रहती है। हम भविष्य में ताकते रहते हैं, झांकते रहते हैं।
यह आशा जब तक न टूट जाए जीवन के अनुभव से, तब तक विरक्ति का कोई जन्म नहीं है। और जब हम दूसरे से सुख पाने की आशा रखते हैं, तो स्वभावतः जो भी हमारे जीवन में घटित हो, हम दूसरे को ही उसके लिए जिम्मेवार माने चले जाते

हैं। इसलिए खुद की अंतरजीवनधारा से सम्पर्क स्थापित नहीं होता। और वही सम्पर्क क्रांति ला सकता है।
चाहे सुख हो, चाहे दुख; चाहे सुविधा हो, चाहे असुविधा; हम सदा दूसरे की तरफ आंखें लगाए रखते हैं। यह दूसरे की तरफ लगी हुई आंखें ही कामवृत्ति है। अगर कोई परमात्मा की तरफ भी आंखें लगाए हुए है कि उससे सुख मिलेगा, आनंद मिलेगा, तो महावीर कहेंगे, वह भी कामवृत्ति है; वह भी कामना का ही दिव्य रूप है--लेकिन कामना ही है।
इस मन की साधारण जकड़ को अपने ही जीवन के अनुभव में खोजना चाहिए। जब भी कुछ घटता है, आप तत्क्षण दूसरे को जिम्मेवार ठहरा देते हैं।
मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी अपने वकील के पास गई थी। और उससे बोली कि अब बहुत हो चुका, और अब आगे सहना असंभव है। अब तलाक का इंतजाम करवा ही दें।
उसके वकील ने पूछा कि ऐसा क्या कारण आ गया है? तो उसने कहा कि मुल्ला नसरुद्दीन विश्वासघाती है। उसने मुझे धोखा दिया है। निश्चित ही उसके दूसरी स्त्रियों से संबंध हैं। और, अब और सहना असंभव है।
वकील ने पूछाः कोई प्रमाण? क्योंकि प्रमाण की जरूरत होगी। और कैसे तुम्हें पता चला, इसका कोई ठीक-ठीक सबूत, कोई गवाह?
उसकी पत्नी ने कहाः किसी गवाह की कोई जरूरत नहीं है। आई एम प्रेटी श्योर दैट ही इ.ज नॉट दि फादर ऑफ माई चाइल्ड--पूर्ण निश्चय है मुझे कि मेरे बच्चे का पिता मुल्ला नसरुद्दीन नहीं है।
लेकिन हमारा जैसा मन है, उसमें हम सदा दूसरे को ही जिम्मेवार ठहराते हैं। हम दूसरे को परदे की तरह बना लेते हैं और जो कुछ भी है उसे प्रोजेक्ट करते हैं, उसे परदे पर डालते चले जाते हैं। धीरे-धीरे प्रोजेक्टर तो दिखाई पड़ना बंद हो जाता है... ।
आप फिल्म गृह में बैठते हैं, तो आप पीछे लौट कर कभी नहीं देखते जहां असली फिल्म चल रही है; परदे पर ही देखते रहते हैं, जहां केवल छाया पड़ रही है। प्रोजेक्टर तो आपकी पीठ के पीछे लगा होता है--जहां से फिल्म आ रही है; जहां से प्रकाश की किरणें आ रही हैं; लेकिन दिखाई परदे पर पड़ती हैं। आप वहीं देखते रहते हैं। परदा सब कुछ हो जाता है, जो मूल नहीं है।
हर दूसरा व्यक्ति, जिससे हम संबंधित होते हैं, परदे का काम करता है। भीतर से वृत्तियां आती हैं, जो हम उस पर ढालते चले जाते हैं। इसलिए जो हमारे निकट होते हैं, वे ही हमारे लिए परदा बन जाते हैं। और फिर हम यह भूल ही जाते हैं कि हमारे भीतर कुछ घट रहा है, जो उनमें दिखाई पड़ता है; उनकी आंखों में, उनके चेहरों में, उनके व्यवहार में।
यह सारा जगत एक परदा है और सारे संबंध परदे हैं और प्रोजेक्टर हमारा अपना मन है। और अगर इस परदे पर हम कुछ बदलाहट करना चाहें तो असंभव है। अगर कोई भी बदलाहट करनी हो तो पीछे प्रोजेक्टर को ही बदलना होगा, जहां से स्रोत है।
धर्म की खोज ही तब शुरू होती है, जब मैं परदे को भूलकर उसे देखना शुरू
कर देता हूं जहां से मेरे जीवन का स्रोत है; जहां से सारी वृत्तियां आ रही हैं और जग रही हैं। जैसे ही मुझे यह दिखाई पड़ने लगता है कि मैं ही जिम्मेवार हूं, सुख और दुख मैं ही पैदा कर रहा हूं, मेरे संबंध भी मेरे ही भीतर से आ रहे हैं, दूसरा केवल बहाना है, वैसे ही व्यक्ति कामवृत्ति के ऊपर उठना शुरू हो जाता है।
लेकिन, जीवन के गणित को पकड़ने में थोड़ी सी कठिनाई है। एक स्त्री को आप प्रेम करते हैं, दुख पाते हैं; कलह है, संघर्ष है।
बाइबिल में पुरानी कथा है--बाइबिल में दो कथाएं हैं--एक कथा आपने सुनी है, दूसरी आमतौर से प्रचलित नहीं है; उसे भुला दिया गया है।
एक कथा है कि परमात्मा ने अदम को बनाया और अदम के साथ ही लिलिथ नाम की स्त्री को बनाया। दोनों को एक सा बनाया, समान बनाया। बनाकर वह निपटा भी नहीं था कि दोनों में झगड़ा शुरू हो गया। झगड़ा इस बात का था कि कौन ऊपर सोए, कौन नीचे सोए। लिलिथ ने कहाः मैं तुम्हारे समान हूं। मुझे भी परमात्मा ने बनाया है, और उसी मिट्टी से बनाया है जिस मिट्टी से तुम्हें बनाया। और

मेरे भी प्राणों में श्वास डाली; और तुम्हारे भी प्राणों में श्वास डाली; हम दोनों एक के ही निर्माण हैं और एक ही मिट्टी और एक ही प्राण से बने हैं। तो नीचे-ऊपर कोई भी नहीं है।
यह कलह इतनी बढ़ गई कि इस कलह को सुलझाने का कोई उपाय न रहा। तो लिलिथ
ने परमात्मा से प्रार्थना की कि मुझे अपने में विलीन कर लो। लिलिथ विलीन हो गई। फिर दूसरी कथा यह है कि फिर आदमी अकेला हो गया और अकेले में भी उसको बेचैनी होने लगी।
आदमी की बड़ी कठिनाई है। अकेला भी नहीं रह सकता और किसी के साथ भी नहीं
रह सकता। अकेला रहे तो लगता है, जीवन में कुछ भी नहीं है और किसी के साथ रहे तो जीवन कलह से भर जाता है।
तो उसको अकेला, उदास, परेशान देख कर परमात्मा ने फिर स्त्री बनाई।
लेकिन इस बार उसका ही एक स्पेअर पार्ट, उसकी एक हड्डी निकाल कर बनाई। दूसरी स्त्री ईव, यह दूसरी स्त्री परमात्मा ने बनाई नंबर दो, ताकि कलह न हो।
ये दोनों कहानियां बड़ी प्रीतिकर हैं। पहली कहानी भूल गई है, दूसरी कहानी जारी है। सोचा उसने जरूर होगा कि अब कलह न होगी, क्योंकि मनुष्य की ही हड्डी से बनाई हुई स्त्री है। लेकिन कलह में इससे कोई अंतर नहीं पड़ता। असल में जब भी हम दूसरे पर निर्भर होते हैं, तो कलह शुरू हो चुकी; और दूसरा हम पर निर्भर हो चुका। और जिस पर हम निर्भर होते हैं, उसके साथ बेचैनी, तकलीफ, क्योंकि हमारी स्वतंत्रता खो रही है; हमारी आत्मा खो रही है।
सभी संबंध आत्माओं का हनन करते हैं। जैसे ही हम संबंधित होते हैं कि मेरी जो निजता थी, मेरा जो अपना होना था, टू बी माई सेल्फ, वह नष्ट होने लगा। दूसरा प्रविष्ट हो गया। दूसरा भी अपना काम शुरू करेगा। वह चाहेगा कि मैं ऐसा होऊं। और मैं भी यही चाहूंगा कि दूसरा ऐसा हो। कलह शुरू हो गई। बाइबिल की कथा के हिसाब से पिछले पांच हजार सालों में अदम और उसकी स्त्री, दोनों के बीच जो संबंध थे, उसमें अदम मालिक था और स्त्री गुलाम थी। यह अदम और ईव की कथा चलती रही। लेकिन अब पश्चिम में ईव ने लिलिथ बनना शुरू कर दिया है। अब वह समान हक मांग रही है। दूसरी कहानी आनेवाली सदी में महत्वपूर्ण हो जाएगी।
स्त्रियां यहां तक पश्चिम में दावा कर रही हैं, जो बड़े महत्वपूर्ण हैं, सही भी हैं--समानता के दावे... । लेकिन जैसे ही समानता खड़ी होती है, कलह कम नहीं होती और बढ़ जाती है। स्त्रियां सोचती हैं, समानता हो जाए तो कलह कम हो जाएगी।
असल में दो व्यक्ति जब भी संबंधित होंगे और एक-दूसरे पर निर्भर होंगे,
और एक-दूसरे को बदलने की कोशिश करेंगे अपने अनुसार, तब कलह होगी ही-- क्योंकि एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति की आत्मा में प्रवेश कर रहा है और गुलामी निर्मित करने की कोशिश कर रहा है।
पश्चिम में एक स्त्री, जो कि एक समूह का नेतृत्व कर रही थी, और पुलिस
ने उस समूह पर हमला किया और उस स्त्री के पास खड़ी एक स्त्री को चोट लग गई और वह रोने लगी, तो उस स्त्री ने कहाः घबड़ाओ मत, गॉड इ.ज सीइंग एवरीथिंग। एण्ड शी विल डू जस्टिस। ईश्वर सब देख रहा है--लेकिन शी विल डू।
ईश्वर को भी "ही" कहना पश्चिम में स्त्रियों ने बंद कर दिया है, क्योंकि वह पुरुष सूचक है। परमात्मा भी स्त्री है। और पुरुषों ने ज्यादती की है अब तक उसको पुरुष कहकर।
कलह आखिरी सीमा पर पश्चिम में आकर खड़ी है, जहां परिवार पूरी तरह टूट जाने को है। लेकिन परिवार पूरी तरह टूट जाए, इससे कलह बंद नहीं होती, कलह सिर्फ फैल जाती है; एक स्त्री से न होकर बहुत स्त्रियों से होने लगती है। संबंध के भीतर कलह क्यों है, इसे थोड़ा समझ लेना जरूरी है। और संबंध को
हम कैसा ही बनाएं, कलह होगी। महावीर का क्या सूत्र है इस कलह के बाहर जाने का?
महावीर कहते हैंः कलह दूसरे के कारण नहीं है, कलह मेरी ही कामना के कारण है। अगर ऐसा संबंध कोई हो सके, जहां दोनों ही व्यक्ति कामवृत्ति से

भरे हुए नहीं हैं, तो कलह विदा हो जाएगी। अगर जरा सी भी कामवृत्ति मौजूद है, तो कलह जारी रहेगी।
जो आदमी दूसरे से सुख या दुख पाने की कोशिश कर रहा है, या स्त्री सुख
या दुख पाने की कोशिश कर रही है, वे दुख में और पीड़ा में, और नरक में अपने को उतार ही रहे हैं। क्योंकि महावीर कहते हैं, और सभी ज्ञानियों की सहमति है, कि आनंद का स्रोत भीतर है, दूसरे की तरफ आंख रखना भ्रांति है, वहां भिक्षापात्र फैलाना व्यर्थ है, वहां से न कुछ कभी मिला है और न मिल सकता है।
इसे हम अनुभव भी करते हैं। लेकिन जब एक स्त्री से दुख पाते हैं; एक पुरुष से दुख पाते हैं, तो हम सोचते हैं कि यह स्त्री गलत है, यह पुरुष गलत है; इतनी बड़ी पृथ्वी है, जरूर कोई ठीक पुरुष, कोई ठीक स्त्री होगी, जिससे मेरा संबंध हो तो यह पीड़ा नहीं होगी।
यही सारी भूल का गणित है। और हम कितनी ही स्त्रियों को बदलते चले जाएं, तो भी पृथ्वी बड़ी है। और कितने ही पुरुषों को बदलते चले जाएं--पृथ्वी बड़ी है। स्त्रियां सदा बाकी रहेंगी, पुरुष सदा बाकी रहेंगे, और वह भ्रांति कायम रहेगी कि शायद कोई न कोई पुरुष, कोई न कोई स्त्री हो सकती थी, जिससे मेरा संबंध स्वर्ग बन जाता!
वह कभी नहीं हुआ है। वह कभी होगा भी नहीं। लेकिन आशा को उपाय है। और वह आशा भटकाए चली जाती है। जब तक यह आशा न टूट जाए; जब तक एक स्त्री का अनुभव स्त्री मात्र का अनुभव न समझ लिया जाए; और जब तक एक पुरुष का अनुभव पुरुष मात्र का अनुभव न बन जाए; जब तक एक संबंध की व्यर्थता सारे संबंधों को व्यर्थ न कर दे, तब तक कोई व्यक्ति कामवृत्ति से ऊपर नहीं उठता।
हम कभी भी पूरा अनुभव नहीं कर पाते। पूरा अनुभव कर भी नहीं सकते। विज्ञान तक, जो कि सार्वभौम--युनिवर्सल नियम खोजने की कोशिश करता है, वह भी पूरे अनुभव नहीं कर पाता। और संदेह जो लोग करते हैं, वे किए जा सकते हैं। डेविड ह्यूम--बहुत कीमती विचारक हुआ इंग्लैंड में, उसने संदेह किया
है विज्ञान के ऊपर। ह्यूम कहता है कि विज्ञान कहता है कि कहीं भी पानी को गर्म करो सौ डिग्री पर, तो पानी भाप बन जाएगा। लेकिन ह्यूम कहता हैः क्या तुमने सारे पानी को भाप बना कर देख लिया है? क्या तुमने सारे जगत के पानी को भाप बना कर देख लिया है? तो जल्दी मत करो! क्योंकि कहीं ऐसा पानी मिल भी सकता है, जो सौ डिग्री पर भाप न बने। तो यह वैज्ञानिक नहीं है घोषणा। तुमने जितने पानी को भाप बनाकर देखा है, उतने पानी के बाबत कहो कि यह भाप बन जाता है सौ डिग्री पर; लेकिन शेष पानी बहुत है। उस पानी के संबंध में तुम्हारी कोई भी घोषणा अवैज्ञानिक है।
बात तो वह ठीक कह रहा है। विज्ञान की भी सामर्थ्य नहीं है कि वह सारे पानी को पहले भाप बना कर देखे। दस पचास हजार बार प्रयोग दोहराया जा सकता है और फिर विज्ञान मान लेता है कि यह असंदिग्ध है; क्योंकि सभी जगह पानी एक ही नियम का पालन करेगा। पानी का स्वभाव सौ प्रयोगों से पकड़ लिया जाता है। अब सारे पानी को भाप बनाने की जरूरत नहीं है। लेकिन तर्क की तरह तो ठीक कह रहा है ह्यूम। ठीक वही मुसीबत आदमी के मन की भी है।
एक स्त्री का अनुभव स्त्रैण तत्व का अनुभव है। लेकिन हम समझते हैं यह केवल एक व्यक्ति-स्त्री का अनुभव है। गलत ख्याल है! एक-एक स्त्री उसी तरह स्त्रैण तत्व का प्रतीक है, जैसे पानी की एक बूंद सारे जगत के पानी का प्रतीक है; एक पुरुष सारे पुरुष तत्व का प्रतीक है। जो फासले हैं, फर्क हैं, वे गौण हैं, मौलिक बात एक पुरुष में मौजूद है।
और जैसे एक पुरुष का स्वभाव जिस ढंग से बरतता है, उसी ढंग से सारे पुरुष बरतते हैं। उनमें जो फर्क हैं वे डिटेल्स के हैं, विस्तार के हैं कि कहीं किसी नदी का पानी थोड़ा नीला है, और किसी नदी का पानी थोड़ा मटमैला है, और किसी नदी का पानी थोड़ा हरा है, और किसी नदी का पानी थोड़ा शुभ्र है--ये डिटेल्स के फर्क हैं। इनसे सौ डिग्री पर पानी गर्म होगा, इसमें कोई भेद नहीं पड़ता।
किसी स्त्री की नाक थोड़ी लंबी है और किसी स्त्री की नाक थोड़ी छोटी है,
और कोई स्त्री थोड़ी गोरी है, और कोई स्त्री थोड़ी काली है--इससे कोई फर्क

नहीं पड़ता। और कोई स्त्री हिंदू घर में पैदा हुई है और कोई मुसलमान घर में--इसमें भी कोई फर्क नहीं पड़ता। उसकी जो मौलिक स्थिति है--स्त्रैणता-- वह वैसी ही है, जैसे सारे जगत का पानी। एक बूंद खबर दे देती है; लेकिन हम जन्मों-जन्मों से अनेक बूंदों का अनुभव करके भी निष्कर्ष नहीं ले पाते; क्योंकि सारे जगत का पानी तो कायम रहता है।
महावीर कहते हैं कि जो व्यक्ति एक अनुभव को इतना गहराई से ले और उसको सार्वभौम बना ले, उसको फैला ले पूरे जीवन पर--वही कामवृत्ति से मुक्त हो पाएगा--अन्यथा स्त्रियां सदा शेष हैं, पुरुष सदा शेष हैं, संबंध सदा शेष हैं; आशा कायम रहती है।
जैसा विज्ञान तय करता है थोड़े से अनुभव के बाद सार्वभौम नियम, वैसे ही धर्म भी तय करता है थोड़े से अनुभव के बाद सार्वभौम नियम। मैं न मालूम कितने लोगों का निकट से अध्ययन करता रहा हूं। सारे फर्क ऊपरी हैं, भीतर रंचमात्र फर्क नहीं है। सारे फर्क वस्त्रों के हैं, कहना चाहिए--भाषा के, व्यवहार के, आचरण के--सब ऊपर हैं। क्योंकि हरेक व्यक्ति का जन्म अलग ढंग में हुआ है, अलग व्यवस्था में, अलग नियम, नीति, समाज--सब फर्क ऊपरी हैं। जरा ही चमड़ी के भीतर प्रवेश करो, वहां एक ही पानी बह रहा है।
एक का अनुभव ठीक से ले लिया जाए तो हम इस बोध को उपलब्ध हो सकते हैं कि बहुत अनुभवों में भटकने की कोई जरूरत नहीं। लेकिन कोई चाहे तो बहुत अनुभवों में भी भटके, लेकिन कभी न कभी उसे यह नियम की तरह स्वीकार कर लेना पड़ेगा कि इतने अनुभव काफी हैं, अब मैं कुछ निष्कर्ष लूं। जिस दिन व्यक्ति सोचता है, इतने अनुभव काफी हैं, अब मैं कुछ निष्कर्ष लूं, उस दिन जीवन में क्रांति शुरू हो जाती है।
मुल्ला नसरुद्दीन काफी बूढ़ा हो गया था। वह और उसकी पत्नी अदालत में खड़े हैं। और मजिस्ट्रेट ने कहा कि हद कर दी नसरुद्दीन! अब इस उम्र में तलाक देने का पक्का किया?
नसरुद्दीन ने कहा कि उम्र से इसका क्या संबंध?
मजिस्ट्रेट ने पूछा कि तुम्हारी उम्र कितनी है?
नसरुद्दीन ने कहा कि चौरानबे वर्ष। और उसकी पत्नी से पूछा। उसने शर्माते हुए कहाः चौरासी वर्ष।
मजिस्ट्रेट भी थोड़ा बेचैन हुआ। उसने नसरुद्दीन से पूछाः और तुम्हारी शादी हुए कितना समय हुआ?
नसरुद्दीन ने कहाः कोई सड़सठ वर्ष!
मजिस्ट्रेट बड़े अविश्वास से भर गया, उसने कहा कि करीब-करीब सत्तर साल तुम्हारी शादी को हो चुके हैं, और अब तुम तलाक करना चाहते हो? सत्तर साल साथ रहने के बाद!
नसरुद्दीन ने कहाः योर आनर, व्हिचएवर वे यू लुक, इनफ इ.ज इनफ--अब, बहुत
हो गया, काफी हो गया। और काफी काफी है!
आप अपने जीवन में करीब-करीब पुनरुक्त करते चले जाते हैं चीजों को, और इनफ इ.ज इनफ कभी भी नहीं आ पाता। ऐसा कभी अनुभव नहीं होता कि अब काफी है। और जिस व्यक्ति को ऐसा अनुभव हो, उसके जीवन में विरक्ति की पहली किरण उतरती है।
महावीर कहते हैंः जब देवता और मनुष्य संबंधी समस्त काम-भोगों से साधक विरक्त हो जाता है, तब अंदर और बाहर के सभी सांसारिक संबंधों को छोड़ देता है।
"विरक्त हो जाता है।" विरक्ति कोई आयोजना नहीं हो सकती। आप चेष्टा करके विरक्त नहीं हो सकते। अनुभव की परिपक्वता ही विरक्ति ला सकती है। आप कच्चे में ही विरक्त नहीं हो सकते। आप जीवन से भाग कर और पलायन करके विरक्त नहीं हो सकते। आप ऐसा सोच कर, महावीर को पढ़ कर, ज्ञानियों को सुन कर विरक्त नहीं हो सकते। उतना काफी नहीं है। आपके अनुभव से मेल बैठना चाहिए। ज्ञानी तो कहते रहे हैं, कहते चले जाते हैं, लेकिन आपको कोई फर्क नहीं पड़ता। हां, आपमें से कुछ नासमझ कभी-कभी बिना परिपक्व हुए, बिना जीवन के अनुभव से विरक्ति को निकाले, प्रभावित होकर किसी की चर्चा, विचार तर्क से संन्यस्त हो जाते हैं। उनका संन्यास कच्चा है। और उनका संन्यास कभी भी

मुक्ति नहीं बन सकेगा। उनके संन्यास का मूल आधार ही गलत है। वे जीवन से विरक्त होकर संन्यस्त नहीं बने हैं, बल्कि साधु से आसक्त होकर संन्यस्त बने हैं। इसे थोड़ा ठीक से समझ लें।
साधु में बड़ा प्रभाव है। साधुता का अपना आकर्षण है। साधुता मैग्नेटिक है। उससे बड़ा कोई मैग्नेट दुनिया में होता नहीं। महावीर खड़े हों तो आप साधु हो जाएंगे।
लेकिन ध्यान रहे, यह साधुता आपके अनुभव से आ रही है या महावीर के आकर्षण से, प्रबल आकर्षण से? अगर महावीर के प्रबल आकर्षण से यह साधुता आ रही है तो विरक्ति को थोपना पड़ेगा। जो महावीर के लिए सहज है, वह हमारे लिए प्रयास होगा।
सहज मोक्ष तक ले जाता है, प्रयास कहीं भी नहीं ले जाता। प्रयास सिर्फ असत्य तक ले जाता है। जिस चीज को भी हमें प्रयास कर-कर के थोपना पड़ता है वह झूठ हो जाता है। हमारा पूरा जीवन इसी तरह झूठ हो गया है प्रयास कर-कर के। मां कह रही है कि मैं तेरी मां हूं, प्रेम करो। तो बेटा प्रयास करके प्रेम कर रहा है। बाप कह रहा है, मैं तेरा बाप हूं, प्रेम करो। तो बेटा प्रयास करके प्रेम कर रहा है। जिस दिन उसके जीवन में प्रेम का फूल खिलता, उस दिन वह अनायास होता। अभी यह सब प्रयास हो रहा है। और खतरा यह है कि इस प्रयास से वह इतना आवृत हो जाएगा कि उसके जीवन में प्रेम का सहज फूल कभी खिल ही न सकेगा।
इस दुनिया में हजारों में कभी एकाध आदमी प्रेम को उपलब्ध हो पाता है,
नौ सौ निन्यानबे नष्ट हो जाते हैं। वे बीज कभी अंकुरित ही नहीं होते; क्योंकि इसके पहले कि बीज से अंकुर फूटता, उन पर जबरदस्ती थोप-थोप कर कुछ चीजें लाद दी गईं, जिनकी वे चेष्टा करने लगे। फिर चेष्टा इतनी प्रगाढ़ हो जाती है कि सहजता को जन्मने का मौका नहीं रहता।
सहज और चेष्टा में विपरीतता है। एक विरक्ति है, जो आपके अनुभव से आती है--जीवन के दुख का प्रगाढ़ अनुभव, जीवन की पीड़ा का प्रगाढ़ अनुभव, जीवन की व्यर्थता की प्रतीति, स्पष्ट आपके ही जीवन और बोध में। महावीर के वचन और बुद्ध के वचन काम कर सकते हैं कि आपके अनुभव को सही साबित करें, गवाह बन जाएं तब तो ठीक है; कि आपने अपने जीवन में जो जाना, उनके वचनों से आपको लगा कि ठीक आपने जो अपने जीवन में जाना था, महावीर भी वही कह रहे हैं कि जीवन व्यर्थ है।
यह आपकी प्रतीति पहले थी, महावीर केवल गवाही हैं--इस फर्क को थोड़ा ठीक
से समझ लें। वे सिर्फ एक विटनेस हैं। उनका कहना भी आपके ही अनुभव को प्रगाढ़ कर रहा है। तो विरक्ति जो आपमें खिलेगी वह अनायास होगी, सहज होगी। उसकी सुगंध अलग है। और अगर महावीर आपको आकृष्ट कर लेते हैं--उनका आनंद, उनकी शांति, उनका उठना, उनका बैठना, उनका मोहक जादू भरा व्यक्तित्व, वह आपको आकर्षित कर लेता है--तो आप उस आसक्ति में अगर संसार से विरक्त होते हैं, तो आप कच्चे ही टूट जाएंगे और आप बुरी तरह भटकेंगे; क्योंकि आपके पैर के नीचे जमीन नहीं है। और यह विरक्ति झूठी है। सच में तो यह एक नई तरह की आसक्ति है। गुरु की आसक्ति है, ज्ञानी की आसक्ति है--तीर्थंकर, पैगंबर, अवतार की आसक्ति है।
और ध्यान रहे, कोई स्त्री क्या आकर्षित करेगी किसी पुरुष को, कोई पुरुष क्या आकर्षित करेगा किसी स्त्री को, जैसा कि एक तीर्थंकर लोगों को आकर्षित कर लेता है। नहीं कि वह करना चाहता है--उसका होना ही, उसकी मौजूदगी चुंबक की तरह आपको खींचने लगती है।
जो व्यक्ति किसी से प्रभावित होकर धार्मिक हो जाता है, वह धार्मिक होने का अवसर खो देता है। बहुत सचेत होने की जरूरत है। और जब तीर्थंकरों और पैगंबरों के करीब से गुजरने का मौका मिले, तब तो बहुत सचेत होने की जरूरत है; तब बहुत सावधान होने की जरूरत है। नहीं तो खाई से निकले और गड्ढे में गिरे। कोई फर्क नहीं रह जाता। मोह नये ढंग से पकड़ लेता है, आसक्ति नये ढंग से पकड़ लेती है।
अगर आपके अनुभव में ऐसी रेखा आ गई है कि जीवन सिर्फ दुख है।

बहुत लोगों को लगता है कि जीवन दुख है। लेकिन उनके लगने से विरक्ति पैदा नहीं होती। क्या कारण होगा? आपको भी बहुत बार लगता है, जीवन दुख है, लेकिन ऐसा नहीं लगता कि जीवन का स्वभाव दुख है। आपको ऐसा लगता है कि मैं असफल हो गया, इसलिए दुख है; कि ठीक परिवार न मिला, ठीक जगह न मिली, ठीक समय न मिला, सहयोग न मिला, संगी-साथी न मिले, प्रेमी न मिले, मैं असफल हो गया, इसलिए जीवन दुख है।
जीवन दुख है, ऐसा आपको नहीं लगता। अपनी असफलता मालूम पड़ती है, क्योंकि
कई लोगों का जीवन सुख मालूम होता है। यह बड़े मजे की बात है कि अपने को छोड़ कर सभी का जीवन लोगों को सुख मालूम पड़ता है। और यह सभी को ऐसा लगता है। खुद को छोड़ कर सब लोग लगते हैं कि सुखी हैं--कैसे मुस्कुराते, आनंदित सड़कों पर गीत गाते चल रहे हैं! एक मैं दुखी हूं। मगर यही प्रतीति सबकी है।
बहुत लोग हैं, जो आपको भी सुखी मान रहे हैं। बहुत लोग आपसे ईर्ष्या कर रहे हैं। ईर्ष्या पैदा ही न हो, अगर यह प्रतीति हो जाए कि सभी लोग दुखी हैं। कोई अपनी गरीबी में दुखी है, कोई अपनी अमीरी में दुखी है। कोई सफलता में दुखी है, कोई असफलता में दुखी है, लेकिन दुख का कोई भेद नहीं है, लोग दुखी हैं।
जीवन दुख है, व्यक्ति का कोई सवाल नहीं है। अगर आपको ऐसा लगता है कि मैं दुखी हूं, तो फिर आप विरक्त नहीं हो सकते, आप नये जीवन की तलाश करेंगे। यही तो हम करते रहे हैं। यही तो हम करते रहे हैं जन्मों-जन्मों से। ऐसे जीवन की तलाश करेंगे--जहां सफलता मिले, धन मिले, समृद्धि मिले, यश मिले, पद-प्रतिष्ठा मिले। इस बार चूक गए, कोई हर्जा नहीं, अगली बार नहीं चूकेंगे। जीवन व्यर्थ नहीं होता, एक जीवन व्यर्थ होता है--लेकिन हम दूसरे जीवन
की तलाश में निकल जाते हैं। पुनर्जन्म का सूत्र यही है कि हमारी वासना जीवन से नहीं छूटती। एक जीवन व्यर्थ होता है तो दूसरे जीवन को पकड़ती है, दूसरा व्यर्थ होता है तो तीसरे को पकड़ती है। अंतहीन है यहशृंखला।
जब महावीर कहते हैं, जीवन व्यर्थ है या बुद्ध कहते हैं, जीवन दुख है,
तो उनका मतलब नहीं है कि आपका जीवन दुख है। उनका कहना यह है कि जीवन का स्वभाव, जीवन के होने का ढंग ही पीड़ा है। जब ऐसा स्पष्ट दिखाई पड़ने लगे तो जो विरक्ति पैदा होती है, वह विरक्ति अंदर और बाहर के सभी सांसारिक संबंधों को तोड़ देती है।
यहां एक और मजे की बात समझ लेना है। महावीर यह नहीं कहते कि संबंधियों
को छोड़ देती है, कहते हैं, संबंधों को छोड़ देती है। यह जरा गहन है, नाजुक है।
मेरी पत्नी है, तो जब मुझे विरक्ति का अनुभव होगा तो मैं पत्नी को छोड़ दूंगा--यह बहुत गौण और सीधी दिखाई पड़ने वाली बात है, स्थूल है। लेकिन महावीर यह नहीं कहते कि संबंधियों को छोड़ देती है, महावीर कहते हैं, संबंधों को छोड़ देती है।
संबंध बड़ी अलग बात है। पत्नी वहां है, और पत्नी से मैं हजार मील दूर भी
हो जाऊं, तो भी संबंध के टूटने का कोई मतलब नहीं है। संबंध बहुत इलास्टिक है; इनफिनिटली इलास्टिक है। पत्नी दस हजार मील दूर हो, तो दस हजार मील दूर तक मेरा संबंध फैल जाएगा। वह धागा बना रहेगा। उसको तोड़ना मुश्किल है। पत्नी को चांद पर भेज दो--कोई फर्क नहीं पड़ता, यहां से लेकर चांद तक संबंध का धागा फैल जाएगा। वह कोई भौतिक घटना नहीं है कि उसको कोई अड़चन हो। वह मानसिक घटना है। शायद पत्नी दूर हो, तो संबंध ज्यादा भी हो जाए।
अकसर तो ऐसा ही होता है लोगों को। पत्नी को फिर से प्रेम करना हो, तो मायके भेज देना जरूरी होता है। थोड़ा फासला हो, फिर रस भर आता है। थोड़ा फासला हो, फिर आकांक्षा जग जाती है। व्यक्ति दूर हो, तो उसकी बुराइयां दिखनी बंद हो जाती हैं, और भलाइयों का ख्याल आने लगता है। व्यक्ति पास हो, तो बुराइयां दिखती हैं और भलाइयां भूल जाती हैं।
थोड़ा फासला चाहिए। ज्यादा फासला कभी-कभी हितकर हो जाता है। महावीर कहते हैं, संबंधी नहीं, संबंध छूट जाते हैं। वह जो मेरे भीतर से निकलता है धागा संबंध का, वह गिर जाता है। पत्नी अपनी जगह होगी, मैं अपनी जगह होऊंगा। कोई घर से भाग जाना भी आवश्यक नहीं है; लेकिन बीच से वह जो पति और पत्नी का

पागलपन था, वह विदा हो जाएगा। वह जो पजेस करने की धारणा थी, वह छूट जाएगी। वह जो दूसरे का शोषण करने की व्यवस्था थी, वह टूट जाएगी। दूसरे से सुख या दुख मिलता है, यह भाव गिर जाएगा। पत्नी पहली दफा एक व्यक्ति बनेगी, और मैं भी पहली दफा एक व्यक्ति बनूंगा, जिनके बीच खुला आकाश है, कोई संबंध नहीं; जिनके बीच संबंधों की जंजीरें नहीं हैं; जो दो निजी व्यक्तित्व हैं और परिपूर्ण स्वतंत्र हैं।
जब दो व्यक्ति परिपूर्ण स्वतंत्र हो जाते हैं, तो छोड़ने या पकड़ने का दोनों ही सवाल नहीं रह जाते। तब यह भी आवश्यक नहीं है कि मैं पत्नी के साथ घर में रहूं ही और यह भी आवश्यक नहीं है कि मैं पत्नी को छोड़ कर चला ही जाऊं। दोनों घटनाएं घट सकती हैं। जनक घर में ही रह जाते हैं, महावीर घर छोड़ कर चले जाते हैं। यह व्यक्तियों पर निर्भर होगा। लेकिन इसको थोड़ा समझ लेना जरूरी है।
जो आसक्त व्यक्ति है, उसके लिए यह समझना बहुत कठिन है। आसक्त दो काम
कर सकता हैः या तो जिससे आसक्त है, उसके पास रहे और अगर विरक्त हो जाए, तो उससे दूर जाए।
आसक्ति जिससे है, उसके हम पास रहना चाहते हैं। इसे थोड़ा समझें। जिससे हमारी आसक्ति है, हम चाहते हैं चौबीस घण्टे उसके पास रहें, क्षणभर को न छोड़ें। और अकसर हम अपने प्रेम को इसी में नष्ट कर लेते हैं। क्योंकि चौबीस घंटे जिसके साथ रहेंगे, उसके साथ रहने का मजा ही खो जाएगा। और चौबीस घंटे जिसके साथ रहेंगे, उसके साथ सिवाय कलह और दुख के कुछ भी न बचेगा।
लेकिन आसक्ति का एक स्वभाव है कि जिससे हमारा लगाव है, उसके पास ही रहें चौबीस घंटे, एक क्षण को न छोड़ें। विरक्ति जिससे हमारी हो जाए, जिसको हम विरक्ति कहते हैं, मतलब आसक्ति उलटी हो जाए--तो उसके हम पास नहीं होना चाहते क्षण भर। उससे हम दूर हटना चाहते हैं।
जो विरक्ति दूर हटना चाहती है, वह आसक्ति का ही उलटा रूप है। वह वास्तविक विरक्ति नहीं है। क्योंकि नियम काम कर रहा है; नियम वही है कि जिसे हम चाहते हैं, उसके पास और जिसे हम नहीं चाहते उससे दूर। लेकिन चाह, और चाह के विपरीत जो चाह है, उनमें कोई फर्क नहीं है।
विरक्ति का अर्थ यह है कि न तो हमें पास होने से अब फर्क पड़ता है, न दूर होने से फर्क पड़ता है। अब हम पास हों तो ठीक, और दूर हों तो ठीक। दूर हों तो याद नहीं आती, पास हों तो रस नहीं आता। न तो दूर होने में अब कोई रस है और न पास होने में कोई रस है। तब आप संबंध के ऊपर उठे। अगर दूर होने में रस है, तो अभी आसक्ति मौजूद है--सिर्फ उलटी हो गई है।
तो बुद्ध ने कहा है कि प्रियजनों के पास होने से सुख मिलता है; अप्रियजनों के दूर होने से सुख मिलता है--लेकिन सुख दोनों ही हालत में दूसरे से मिलता है। प्रियजन दूर जाएं तो दुख देते हैं, अप्रियजन पास आएं तो दुख देते हैं--लेकिन दुख दूसरे से ही मिलता है दोनों हालत में।
"प्रिय" का भी संबंध है, "अप्रिय" का भी संबंध है। विरक्ति का अर्थ अप्रिय का पैदा हो जाना नहीं है; क्योंकि अप्रिय एक संबंध है। विरक्ति का अर्थ है, संबंध ही न रहा, निर्भरता न रही; पास हूं कि दूर हूं, बराबर है। पास और दूरी में रंचमात्र का फर्क न रह जाए; निकट हूं या न निकट हूं, रंचमात्र का फर्क न रह जाए, तो व्यक्ति संबंध के ऊपर गया। अब दूसरा मूल्यवान नहीं रहा। अब मैं अपने लिए मूल्यवान हूं, दूसरा अपने लिए मूल्यवान है। दूसरे की आत्मा स्वतंत्र है, मेरी आत्मा स्वतंत्र है। ऐसी दो स्वतंत्रताओं का जन्म जब हो जाता है, तो बीच की गुलामी गिर जाती है। महावीर कहते हैं कि सभी सांसारिक संबंधों को छोड़ देता है, अंदर और बाहर के।
क्योंकि ध्यान रहे, आप उनसे ही नहीं बंधे हैं जिनके पास हैं, उनसे भी बंधे हैं जिनके आप पास नहीं हैं। जिस फिल्म अभिनेत्री को आप चित्रपट पर, तस्वीर पर देख लेते हैं, उससे भी बंधे हैं। उससे कोई मुलाकात नहीं है, पहचान नहीं है, कभी देखा नहीं है; तस्वीर देखी है--उससे भी बंधे हैं। सपना देखते हैं उसका, उससे भी बंधे हैं।

तो बाहर के ही संबंध नहीं है कि जिस घर में आप बैठे हैं, जो बच्चा आपका है, जो पत्नी आपकी है, पति आपका है, पिता-मां हैं--उनसे ही आप बंधे हैं, ऐसा नहीं है। शायद उनका तो आपको कभी स्मरण भी नहीं आता।
ऐसा पति खोजना मुश्किल है, जिसको पत्नी का सपना आता हो! खोज लें तो मुझे आप बताना। पत्नी का सपना आता ही नहीं। पति का भी सपना नहीं आता। सपने तो उनके आते हैं, जिनसे हमारी वासना अतृप्त है। सपने का मतलब ही अतृप्त वासना होती है। जिसको हम नहीं उपलब्ध कर पाते, उसका सपना आता है। जिसे उपलब्ध ही कर लिया, उसके सपने का कोई सवाल ही नहीं है। जिसका पेट भरा है, उसे रात भोजन के सपने नहीं आते। भूखे पेट आदमी को भोजन के सपने आते हैं। जो कमी है, अभाव है, उसका सपना निर्मित होता है।
तो जो आपके पास हैं स्थूल रूप से, जिनसे आप जुड़े हैं, उनसे शायद ज्यादा जोड़ है भी नहीं। लेकिन जिनसे आप नहीं जुड़े हैं, उनसे आपके सपने जुड़े हैं और भीतरी जोड़ है।
एक परिवार आपके आस-पास दिखाई पड़ता है, जो वस्तुतः है। और एक परिवार आपके चित्त का है, जो आप बना रखे हैं। जो आप चाहते हैं कि होता। जो आपकी कामना का है। जो कभी पूरा नहीं होगा। क्योंकि पूरा होते ही वह आपकी कामना का नहीं रह जाएगा। पूरा होते ही आप दूसरा परिवार अपने आसपास बसाने लगेंगे। तो एक तो बाहर के संबंधों का जाल है और एक भीतर के संबंधों का जाल है।
बायरन अंग्रेज कवि था, बहुत सी स्त्रियां उसके लिए दीवानी थीं और पागल थीं। जब बायरन को इंग्लैंड से निष्कासित कर दिया गया, तो अनेक स्त्रियों ने आत्महत्या कर ली, जिन्होंने उसे देखा भी नहीं था--तस्वीर देखी थी या कभी दूर से किसी कवि सम्मेलन में भीड़ में से देखा था। वे अपने निकटतम पति के लिए आत्महत्या करने वाली नहीं थी। लेकिन इस आदमी से कोई संबंध नहीं था, किसी तरह का स्थूल संबंध नहीं था--लेकिन मन के जाल थे। बायरन को उनका पता ही नहीं था, जिन्होंने उसके लिए आत्महत्या कर ली। जो अपने जीवन को दे सकते हैं, जरूर उनके बड़े गहरे भीतरी संबंध रहे होंगे, उनके सपनों में बायरन समाया रहा होगा।
बाहर के संबंध हैं; भीतर के संबंध हैं। आप बाहर के संबंध से भाग सकते हैं, बहुत आसान है। क्योंकि घर से भाग जाने में कोई बड़ी अड़चन नहीं है। लेकिन भीतर के संबंधों से भाग कर कहां जाइएगा? वह तो जब तक विरक्ति पैदा न हो जाए, तब तक भीतर के संबंध से कोई भी भाग नहीं सकता है। इसलिए साधु हो जाते हैं लोग, जंगल में बैठे जाते हैं, लेकिन मन की गृहस्थी जारी रहती है-- और फैल जाती है सच तो; और बड़ी हो जाती है; और रसपूर्ण हो जाती है।
संसार जितना रसपूर्ण अधूरे भागे साधु को मालूम पड़ता है, उतना गृहस्थ
को कभी मालूम नहीं पड़ता। थोड़े दिन छोड़ कर देखें, संसार से थोड़े दिन हट कर देखें, और आप पाएंगे कि सब चीजों में रस आना शुरू हो गया।
मुल्ला नसरुद्दीन कभी-कभी पहाड़ पर जाता था एकांतवास के लिए। कभी अपने मालिक को कह कर जाता कि पंद्रह दिन बाद लौटूंगा और पांच दिन में लौट आता; और कभी कह कर जाता, पांच दिन में लौटूंगा और पंद्रह दिन में लौटता। तो उसके मालिक ने एक दिन पूछा कि मामला क्या है, तुम छुट्टी पंद्रह दिन की मांगते हो, फिर पांच दिन में लौट क्यों आते हो? जब तय ही करके पंद्रह दिन का गए, तो तुम्हारा हिसाब क्या है?
नसरुद्दीन ने कहाः वह जरा एक भीतरी गणित है, आपकी शायद समझ में भी न आए। पहाड़ पर मैंने एक छोटा बंगला ले रखा है और एक बूढ़ी बदशक्ल औरत को उसकी देखभाल के लिए रख दिया है। और यह मेरा गणित है। वह इतनी बदशक्ल स्त्री है कि उसके पास बैठने का भी मन नहीं हो सकता--दांत बाहर निकले हैं, हड्डी- हड्डी हो गई है, काफी बूढ़ी है, कुरूप है। यह मेरा नियम है कि जब मैं पहाड़ पर जाता हूं, तो एक दिन, दो दिन, तीन दिन, चार दिन, पांच दिन--धीरे-धीरे उस स्त्री में भी मुझे सौंदर्य दिखाई पड़ने लगता है। और जिस दिन वह स्त्री मुझे सुंदर मालूम पड़ती है, मैं भाग खड़ा होता हूं। मैं समझता हूं बस, एकांत पूरा हो गया, अब यहां रुकना खतरनाक है।

तो कभी ऐसा पंद्रह दिन में होता है, कभी पांच दिन में हो जाता है। तो
वह मेरा भीतरी हिसाब है। वह स्त्री मेरा थर्मामीटर है। जैसे ही मुझे लगता है कि इस स्त्री में भी रस आने लगा है मुझे, मैं भाग खड़ा होता हूं। क्योंकि अब हद हो गई! अब यहां रुकना खतरे से खाली नहीं है। और अब मैं एकांत नहीं चाह रहा हूं। तो मैं वापिस लौट आता हूं।
आप अपने भीतर के संसार का थोड़ा ख्याल करेंगे तो आपकी समझ में आ जाएगा। बाहर की भीड़ में आप भूले रहते हैं भीतर के संसार को, लेकिन वह आपके भीतर है। वह आपके भीतर काम करता है। और भीतर का संसार भी थोड़ा समय नहीं लेता। आदमी अगर साठ साल जीए तो बीस साल सोता है; बीस साल सपनों में होता है। बीस साल थोड़ा वक्त नहीं है। सच तो यह है कि चालीस साल जिस समय वह जागता है, उस समय कितने लोगों से कितना संबंध बना पाता है--अधिक समय तो भोजन कमाने में, मकान बनाने में, व्यवस्था जुटाने में, दफ्तर से घर आने और घर से दफ्तर जाने में व्यतीत हो जाता है। अगर हम ठीक से हिसाब लगाएं तो चालीस साल में मुश्किल से चार साल उसको मिलते होंगे, जिनमें वह अपने स्थूल संबंधों में डूबता है; लेकिन बीस साल अपने सूक्ष्म संबंधों में डूबता है, जो उसके स्वप्न का जाल है। वह ज्यादा उसकी गहरी पकड़ है और ज्यादा उसे समय और अवसर है।
और ऐसे जब आप अपने स्थूल संबंधों में डूबे होते हैं, तब भी भीतर आपके सूक्ष्म संबंध चलते रहते हैं। मनोवैज्ञानिक जानते हैं हजारों घटनाओं के आधार पर कि पति पत्नी से संभोग करता रहता है, तब भी वह किसी फिल्म अभिनेत्री की धारणा करता रहता है। पत्नी पति से संभोग करती रहती है, लेकिन मन में किसी और से संभोग करती रहती है। और जब तक उसके मन में धारणा न आ जाए उसके प्रेमी की या प्रेयसी की, तब तक पति-पत्नी में कोई रस-संबंध निर्मित नहीं हो पाता। मनोवैज्ञानिक कहते हैं, बड़ी अजीब घटना हैः बाहर का संबंध बहुत गौण मालूम पड़ता है और भीतर के संबंध बहुत गहन मालूम पड़ते हैं। महावीर कहते हैं, विरक्त जब कोई होगा, तो बाहर और भीतर के सारे सांसारिक संबंध छूट जाते हैं। एक ढंग से जैसे जाल हमें पकड़े था, वह गिर जाता है। जैसे मछली जाल के बाहर आ जाती है।
लेकिन अभी तो हम कामवासना में इस तरह घिरे हुए हैं, कामवृत्ति में इस तरह डूबे हुए हैं कि हम सोच ही नहीं सकते विरक्त आदमी को क्या रस होगा। विरक्त आदमी तो रसहीन हो जाएगा--क्योंकि हम एक ही रस जानते हैं। हमारी हालत वैसी ही है, जैसे नाली का कीड़ा हो; उसे नाली में ही रस है। वह सोच भी नहीं सकता कि आकाश में उड़ते पक्षी क्यों जीवन व्यर्थ गवां रहे हैं! नाली में सारा रस है!
मुल्ला नसरुद्दीन एक व्याख्यान सुनने गया है। एक वैज्ञानिक बोल रहा है। वह मछलियों के संबंध में कुछ समझा रहा है। और वह कहता है कि मादा मछलियां अंडे रख देती हैं और फिर नर मछलियां उन अंडों के ऊपर से गुजरते हैं और उन अंडों को वीर्यकण दे देते हैं, और तब वह अंडा सजीव हो जाता है। तो नसरुद्दीन बड़ा बेचैन होता है। आखिर जब व्याख्यान खत्म हो जाता है,
वह पहुंचता है वैज्ञानिक के पास और उससे कहता है, क्या आपका मतलब है कि मछलियां संभोग नहीं करतीं?
उस वैज्ञानिक ने कहाः आप बिल्कुल ठीक समझे। मादा अंडे दे देती है, पुरुष अंडों को आकर फर्टिलाइज कर देता है। कोई संभोग नहीं होता।
तो नसरुद्दीन थोड़ी देर चिंतित रहा और फिर उसके चेहरे पर चमक आ गई! उसने कहा कि नाउ आइ अंडरस्टैंड, व्हाइ पीपुल कॉल फिशे.ज पुअर फिश--क्यों लोग मछली को गरीब मछली कहते हैं, मैं समझ गया। यही कारण है!
वह जो काम में डूबा हुआ है, उसके लिए सारा जीवन दीन-हीन है अगर कामवासना नहीं है। तब जीवन में कोई अर्थ नहीं दिखाई पड़ेगा। क्योंकि सारा अर्थ ही हमारे जीवन का कामवासना के आधार पर टिका हुआ है। हम सारी चीजों को तौल ही रहे हैं एक ही जगह से।
तो हम सोच भी नहीं सकते कि महावीर का आनंद क्या हो सकता है। एक आनंद ऐसा भी है, जो किसी पर निर्भर नहीं है और किसी का मुहताज नहीं है, और किसी की मांग नहीं करता, और किसी के सामने भिक्षा का पात्र नहीं फैलाता।

एक ऐसा निज में डूबने का आनंद भी है। उसकी हमें कोई खबर नहीं है; उसकी खबर हो भी नहीं सकती। उसकी खबर हमें तभी होगी, जब हमारी आसक्ति शुद्ध पीड़ा बन जाए और हमें दिखाई पड़ने लगे कि हम जो भी कर रहे हैं, वह सब दुख है। और यह प्रतीति इतनी सघन हो जाए कि यह प्रतीति ही हमें उपर उठा दे।
और एक क्षण को भी हमें अनुभव हो जाए अपने शुद्ध होने का, जहां दूसरे की कोई मौजूदगी नहीं थी, कल्पना में भी कोई दूसरा मौजूद नहीं था, हम अकेले थे-- टोटल लोनलीनेस--एकांत पूरा भीतर अनुभव हो जाए एक क्षण को भी, तो आपने खुला आकाश जान लिया। फिर आप कामवासना के कारागृह में लौटने को राजी नहीं होंगे।
महावीर कहते हैंः "जब साधक विरक्त हो जाता है, तब अंदर-बाहर के सभी सांसारिक संबंधों को छोड़ देता है।"
"जब अंदर और बाहर के समस्त सांसारिक संबंधों को छोड़ देता है, तब दीक्षित होकर पूर्णतया अनगार वृत्ति को प्राप्त होता है।"
और जब तक विरक्ति न हो, तब तक दीक्षा का कोई उपाय नहीं है। दीक्षा का अर्थ हैः उस विराट में इनिशिएशन। जब तक आप संसार से जकड़े हुए हैं, तब तक गुरु से कोई संबंध नहीं हो सकता; तब तक गुरु से कोई लेना-देना नहीं है; तब तक आप गुरु के पास भी संसार के लिए ही जाते हैं।
इसलिए जो गुरु आपका संसार बढ़ाता हुआ मालूम पड़ता है, आश्वासन देता है, भरोसा दिलाता है, उसके पास बड़ी भीड़ इकट्ठी हो जाती है। अगर सत्य साईंबाबा जैसे लोगों के पास लाखों लोग इकट्ठे हो जाते हैं, तो उसका कुल कारण इतना ही है कि सत्य साईंबाबा से किसी विरक्ति की आशा नहीं है; आपके आसक्ति के जाल को सघन करने की संभावना है। किसी को लड़का चाहिए, किसी को बीमारी मिटानी है, किसी को धन पाना है, किसी को लंबी उम्र पानी है, किसी को मुकदमा जीतना है-- वे सारे लोग इकट्ठे हो जाते हैं।
जिस साधु के पास ज्यादा भीड़ मालूम पड़े, समझ लेना कि जरूर उस साधु के पास संसार की घटना घट रही है। अन्यथा साधु के पास ज्यादा भीड़ नहीं हो सकती; होनी मुश्किल है। इस विराट संसार में बहुत थोड़े से लोग हैं, जो विरक्त हैं। वे ही लोग साधु के पास हो सकते हैं--चूजन फ्यू। बहुत चुने हुए लोगों का मामला है। गुरु के पास आना बहुत थोड़े से लोगों का मामला है--करोड़ों में एक!
लेकिन जिस गुरु के पास एक को छोड़ कर पूरा करोड़ पहुंच जाता हो, समझना कि वहां गुरु मूल्यवान नहीं है, वहां इस भीड़ में इकट्ठे हुए लोगों की वासना मूल्यवान है। इतनी बड़ी भीड़ विरक्त नहीं है, नहीं तो यह संसार दूसरा हो जाए। इतनी बड़ी भीड़ गहरी तरह से आसक्त है--इसकी आसक्ति में कोई भी सहारा देता हो।
मेरे पास मित्र आते हैं--भले, शुभ, चाहक--वे मुझसे कहते हैं कि आप कब तक थोड़े से लागों को समझाते रहेंगे। आप कोई चमत्कार क्यों नहीं दिखाते कि लाखों लोग आ जाएं।
मगर जो लाखों लोग चमत्कार के कारण आते हैं, उनसे मेरा कोई संबंध नहीं जुड़ सकता; उनसे मेरा कोई लेना-देना नहीं है। वे मेरे लिए आ ही नहीं रहे हैं। वे किसी और वासना से पीड़ित होकर आ रहे हैं। उनका इनिशिएशन, उनकी दीक्षा नहीं हो सकती। भीड़ दीक्षित नहीं हो सकती। बहुत चुने हुए लोग, जिनके जीवन का अनुभव परिपक्व हुआ है और जिन्होंने अपने अनुभव से जाना है कि व्यर्थ है सब कुछ जो हम कर रहे हैं, जिनको यह दिखाई पड़ जाता है कि जहां हम हैं वहां व्यर्थता है, वे ही उस यात्रा पर निकलने की चेष्टा करते हैं जहां सार्थक का जन्म हो सके।
दीक्षा का अर्थ है, इनिशिएशन का अर्थ हैः यह संसार व्यर्थ हुआ, अब हमारी चेतना किस आयाम में प्रवेश करे? ऐसे लोग द्वार खोजते हैं। तभी गुरु ऐसे लोगों को द्वार दिखा सकता है।
आप मंदिर में भी जाते हैं, गुरु के पास भी जाते हैं, तो कुछ मांगने जाते हैं, कुछ होने नहीं जाते; चाहते हैं अदालत में मुकदमा जीत जाएं; टी. बी. हो गया, कैंसर हो गया--दूर हो जाए। कुछ संसार का हिस्सा आपका अधूरा लग रहा है, वह गुरु पूरा कर दे। और जो गुरु आपके संसार के हिस्से को पूरा करता

है या करता हुआ दिखाने का धोखा देता है, वह आपका मित्र नहीं है, वह आपका शत्रु है! क्योंकि वह जीवन में आपको धक्का दे रहा है--उसी संसार में। जहां से शायद कैंसर आपको उबा देता। उसका चमत्कार वापस लौटा रहा है। जहां शायद टी. बी. आपको कह देती कि शरीर व्यर्थ है और सड़ा हुआ है, और इसके पार होना उचित है, वहां उसका चमत्कार आपको शरीर में वापस भेज रहा है।
चमत्कारी गुरु धर्म की तरफ नहीं ले जाते, वे संसार के ही एजेंट हैं। लेकिन उसमें एक सुविधा है, म्युचुअल संबंध है। क्योंकि जितनी बड़ी भीड़ इकट्ठी होती है, उतना अहंकार को तृप्ति मिलती है गुरु के। लगता है मैं कुछ हूं। और भीड़ इकट्ठी करनी हो तो भीड़ सिर्फ चमत्कार से इकट्ठी होती है। ज्ञान से किसी को प्रयोजन नहीं है; महात्मा से किसी का संबंध नहीं है, मदारी की मांग है। और जब महात्मा के वेश में मदारी दिखता है, तो आपकी आत्मा को बड़ी तृप्ति होती है। क्योंकि आशा बंधती है कि जो-जो हम नहीं कर पाए, शायद इस आदमी की कृपा से हो जाए।
एक भी ऐसा राजनीतिज्ञ नहीं है दिल्ली में, जो किसी न किसी महात्मा के चरणों में जाकर न बैठता हो। और जो हारे हुए राजनीतिज्ञ हैं, वे तो अनिवार्य रूप से महात्माओं के पास मिलेंगे। अगले इलेक्शन की वे तैयारी कर रहे हैं महात्मा के द्वारा--आशा! और महात्मा कह रहा है कि मत घबड़ाओ, सब हो जाएगा। जरूरी नहीं है कि महात्मा कुछ करता हो। जब कहा जाता है, सब हो जाएगा--सौ आदमियों से कहो, पचास को तो हो ही जाता है। न कहते तो भी हो जाता! यह महात्मा का काम ऐसा है, जैसा इंग्लैंड में वे कहते हैं कि सर्दी- जुकाम का अगर इलाज करो, तो सात दिन में ठीक हो जाता है; और अगर इलाज न करो, तो एक सप्ताह में ठीक हो जाता है।
एक सप्ताह में ठीक हो ही जाता है। सवाल यह नहीं है कि आप इलाज करो कि न करो। अगर मेरे पास सौ लोग आएं बीमार और उनको मैं कहूं कि आशीर्वाद, जाओ, ठीक हो जाओगे--पचास तो होते ही हैं। इससे मेरा कोई लेना-देना नहीं है। वे कहीं भी न जाते, तो भी होते।
जिंदगी में आदमी हजारों दफे बीमार पड़ता है, तब मरता है। कोई पहली बीमारी में तो कोई मरता हुआ देखा नहीं जाता। उन्हीं हजारों बीमारियों पर जिनसे आप ठीक होते चले जाते हैं, महात्मा जीते हैं।
मुकदमे में जब लोग लड़ते हैं, तो कोई न कोई जीतता ही है। और अक्सर तो ऐसा हो जाता है कि एक ही महात्मा के पास दोनों पार्टी पहुंच जाती हैं। और वे दोनों को आशीर्वाद दे देते हैं!
मेरे एक मित्र ज्योतिषी हैं। और जब सुब्बाराव राष्ट्रपति के लिए खड़े हुए, तो मेरे वे मित्र सुब्बाराव और जाकिर हुसैन दोनों के पास गए। और जाकिर हुसैन को भी कह आए कि आपकी जीत सुनिश्चित है, यह ज्योतिष में साफ है; सुब्बाराव को भी कह आए कि आपकी जीत सुनिश्चित है, यह ज्योतिष से साफ है। और दोनों से लिखवा लाए कि यह भविष्यवाणी मैं कर रहा हूं, आप लिखित दें। सुब्बाराव हार गए, उनका लिखा हुआ फाड़ कर फेंक दिया। फिर जाकिर हुसेन
के पास गए और कहा कि देखिए! और जाकिर हुसैन ने कहा कि आपकी भविष्यवाणी बिल्कुल सच निकली, आप महान ज्योतिषी हैं! सर्टिफिकेट लिख कर दिया, साथ में फोटो उतरवाई। अब सुब्बाराव तो उनका कोई पता लगाते फिरेंगे नहीं। जो हार गया वह तो फिकर ही नहीं करता।
वे उस दिन से महान ज्योतिषी हो गए हैं। उनके पास मिनिस्टरों ने आना जाना शुरू कर दिया है। क्योंकि जो आदमी राष्ट्रपति को घोषणा कर दे... और उनके पास सर्टिफिकेट है, फोटो है--सब प्रमाण है। लेकिन भीतरी राज किसी को पता नहीं है कि वे दोनों को जाकर घोषणा कर आए।
लेकिन वासनाओं से भरा हुआ आदमी उसकी पूर्ति की तलाश कर रहा है। वह साधना के माध्यम से भी वासना को ही खोजता है। ऐसा व्यक्ति दीक्षित नहीं हो सकता। तो महावीर कहते हैं, अंदर-बाहर के समस्त सांसारिक संबंध जब छूट जाते हैं, तब कोई दीक्षित हो सकता है। और दीक्षित होकर पूर्णतया अनगार वृत्ति को प्राप्त होता है।
अनगार वृत्ति का अर्थ हैः इस जगत में मेरा कोई घर नहीं है, मैं अगृही हूं। यह जगत घर नहीं है--ऐसी वृत्ति का नाम--दिस वर्ल्ड इ.ज नॉट दि होम। यह

संसार जो दिखाई पड़ रहा है, यह घर नहीं है। यहां मैं बेघरबार हूं। मेरा घर कहीं और है। चेतना के किसी लोक में मेरा घर है। और यहां जब तक मैं घर खोज रहा हूं और घर बना रहा हूं, तब तक मैं व्यर्थ समय नष्ट कर रहा हूं। यहां मैं विदेशी हूं। यहां मैं एक अजनबी हूं, एक आउट साइडर हूं। यह यात्रा है, मंजिल नहीं है।
महावीर कहते हैं, जब कोई पूर्ण साधक होकर दीक्षित होता है किसी गुरु
के माध्यम से, उस द्वार को खटखटाता है जहां से असली घर खुलेगा... । लेकिन वह तभी उस द्वार को खटखटा सकता है, जब यहां से अनगार वृत्ति हो जाए, इस जगत में घर खोजने की धारणा खो जाए। इस जगत में जो घर खोज रहे हैं, वे तो नया शरीर खोजते चले जाएंगे। वे जन्मेंगे, फिर मरेंगे--जन्मेंगे, फिर मरेंगे और घर को खोजते रहेंगे।
इस जगत में दो तरह के लोग हैं--वे जो यहां घर खोज रहे हैं, और वे जो यहां
घर नहीं खोज रहे हैं। जो यहां घर नहीं खोज रहा है, वह अनगार हो गया है। और अनगार होकर यह पात्रता मिलती है कि दूसरा, असली घर खोजा जा सके। वह भीतर है, वह बाहर नहीं है। उसे बनाने की भी कोई जरूरत नहीं है, वह मौजूद है। वह मेरे जीवन का मूल उत्स और स्त्रोत है। उसे कहीं भी पाने जाने का कोई सवाल नहीं है। वह सदा से मौजूद है, सिर्फ मैं भीतर मुडूं।
दीक्षा का अर्थ है, वह व्यक्ति, वह गुरु जो तुम्हें भीतर मोड़ दे।
"जब दीक्षित होकर कोई अनगार वृत्ति को प्राप्त करता है, तब साधक उत्कृष्ट संवर एवं अनुत्तर धर्म का स्पर्श करता है।"
एक तो धर्म है जिसे हम शास्त्रों से सुनते हैं, सदगुरुओं से सुनते हैं, जो प्रचलित है। वह साधारण धर्म है। और जब कोई व्यक्ति दीक्षित होकर भीतर जाता है तो अनुत्तर धर्म का स्पर्श करता है। तो उसे वास्तविक धर्म की खबर मिलती है। इसे हम ऐसा समझें, वह साधारण धर्म भी, जो बाहर हमें दिखाई पड़ता है--चर्च है, मंदिर है, गुरुद्वारा है, मस्जिद है, कुरान है, बाइबिल है, गीता है, महावीर-बुद्ध के वचन हैं, सदगुरु हैं, जो कह रहे हैं, बोल रहे हैं। यह कितना ही सही हो तो भी मूल नहीं है--मूल से थोड़ा हट कर है, सेकेंड हैंड है।
और कुछ भी कहें--वह जो सेकेंड हैंड है, वह जीवन में क्रांति नहीं ला सकता। और उससे आप अपने को समझाने की कोशिश मत करना। लोग हैं, जो अपने को समझा लेते हैं।
एक मित्र मुझसे आकर कह रहे थे, मुझसे आकर बोले कि आई हैव परचेज्ड ए ब्रैंड न्यू सेकेंड हैंड कार।
ब्रैंड न्यू सेकेंड हैंड कार! बिल्कुल नई सेकेंड हैंड गाड़ी खरीदी है।
अब सेकेंड हैंड गाड़ी बिल्कुल नई कैसे हो सकती है।
लेकिन आप महावीर के वचन कितने ही समझ लें, कृष्ण को कितना ही पी जाएं,
वे सेकेंड हैंड हैं। उनसे वास्तविक धर्म का संबंध नहीं हो रहा है।
वास्तविक धर्म की खबर मिल रही है--संबंध नहीं हो रहा है। वास्तविक धर्म की तरफ से चुनौती, निमंत्रण मिल रहा है--संबंध नहीं हो रहा है। यात्रा करनी पड़ेगी।
तो महावीर कहते हैं, जब कोई दीक्षित होकर भीतर प्रवेश करता है, तब अनुत्तर धर्म--शुद्ध, वास्तविक, मौलिक, निज का धर्म अनुभव होता है।
"जब साधक उत्कृष्ट संवर एवं अनुत्तर धर्म का स्पर्श करता है, तब अंतरात्मा पर से अज्ञानकालिमाजन्य कर्म-मल सब झड़ जाते हैं।"
"जब अंतरात्मा से अज्ञानकालिमाजन्य कर्म-मल दूर हो जाता है, तब सर्वत्रगामी, केवलज्ञान और केवलदर्शन प्राप्त होता है।"
इसे थोड़ा समझ लें। महावीर और सभी जानने वालों की यह दृष्टि है कि आपकी अंतरात्मा शुद्ध ज्ञान है--प्योर नोइंग। अगर आपको उस शुद्ध ज्ञान का पता नहीं चल रहा है, तो उसका कारण है कि आपके आस-पास बहुत से कर्मों का जाल है। जैसे एक दीया जल रहा है, एक लालटेन जली है और कांच पर कालिमा है, तो प्रकाश बाहर नहीं आता; अंधेरा है कमरे में। दीया जल रहा है और कमरे में अंधेरा है। लेकिन अंधेरे का कारण यह नहीं है कि भीतर ज्योति नहीं है। अंधेरे का कुल कारण इतना है कि ज्योति बाहर आ सके, इसके बीच में बाधाएं हैं।

तो धर्म सिर्फ बाधाओं को अलग करने का नाम है। भीतर ज्योति जली हुई है, सिर्फ बाधाएं गिर जाएं। वह जो लैंप के कांच पर जम गई कालिख है, काजल है, वह हट जाए तो प्रकाश प्रकट हो जाए। प्रकाश को किसी से मांगने नहीं जाना है, उसे आप लेकर ही पैदा हुए हैं, वही आप हैं। वह आपका स्वरूप है।
इसलिए महावीर कहते हैं, जब कोई अनुत्तर धर्म से संस्पर्शित होता है
जब भीतर की निजता का स्वभाव समझ में आता है और जब भीतर के जीवन की वास्तविकता प्रतीत होती है, और जब भीतर का स्पर्श और स्वाद मिलता है, तो सारे कर्म की जो कालिमा है चारों तरफ से, वह गिर जाती है। वह इसीलिए थी कि हमें भीतर का कोई स्वाद न था--इसलिए बाहर के स्वाद की तड़प थी। और उसके लिए हमने सारे कर्मों का जाल निर्मित किया था। वह इसीलिए थी कि भीतर का आनंद जाना नहीं--इसलिए बाहर के सुख की दौड़ थी। उस दौड़ में हमने बड़ी-बड़ी दीवालें खड़ी कर ली थीं। उस दौड़ के लिए हमने बड़े साधन-सामग्री जुटा ली थी। वही सारे सामग्री-साधन हमारे चारों तरफ घिर गए थे और हम भीतर अंधेरे में बंद हो गए थे। रोशनी कहीं दिखाई नहीं पड़ती थी, और रोशनी सदा भीतर मौजूद थी।
यह जो भीतर की रोशनी है, इसको महावीर कहते हैं कि जैसे ही कर्म-मल झड़ जाते हैं, सर्वत्रगामी केवलज्ञान और केवलदर्शन प्राप्त होता है। और तब सब दिशाओं में जानेवाला प्रकाश उपलब्ध हो जाता है। तब कोई दिशा अंधेरी नहीं रह जाती। और तब कोई कोना अज्ञान से भरा नहीं रह जाता। तब जीवन पूरा प्रकाशोज्वल हो जाता है। तब पूरा जीवन एक सूर्य बन जाता है।
ऐसा महावीर किसी सिद्धांत के कारण नहीं कह रहे हैं। महावीर कोई दार्शनिक नहीं हैं, कोई फिलासफर नहीं हैं। यह उनकी कोई हाइपोथिसिस, कोई परिकल्पना नहीं है। ऐसा महावीर अपने निज के अनुभव से कह रहे हैं। वे एक यात्री हैं, जो उसी रास्ते से गुजरे हैं, जहां से आप गुजर रहे हैं। लेकिन ऐसे यात्री हैं, जो मंजिल पर पहुंच गए हैं और जो अपने पीछे वाले लोगों को कह रहे हैं कि जिस यात्रा पर तुम चल रहे हो उसमें वर्तुल में मत घूमते रहना, नहीं तो तुम कहीं पहुंच न पाओगे, घूमते ही रहोगे। सीधी रेखा पकड़ना। और सीधी रेखा पकड़ने के सूत्र दे रहे हैं। और मंजिल दूर नहीं है।
अगर आसक्ति का वर्तुल टूट जाए, तो मंजिल बहुत निकट है। और आसक्ति का वर्तुल न टूटे, तो मंजिल निकट होकर भी बहुत दूर है।
आप ऐसा समझिए कि इस कमरे में हम एक गोल घेरा खींच दें और आप उस गोल घेरे में घूमते रहें, घूमते रहें--कमरे से बाहर जाना है और घूमते रहें, घूमते रहें--और कोई आपको कहे कि कितना ही चलो, इससे आप कहीं पहुंच न पाओगे। लेकिन आप कहोगे कि चलने से आदमी पहुंचता है। अगर मैं नहीं पहुंच पा रहा हूं, तो उसका मतलब है कि मैं ठीक से नहीं चल रहा हूं। वह आदमी कहेगा, आप ठीक से भी चलो, तो भी जिस रेखा-पथ पर आप चल रहे हो, ठीक से चलकर भी नहीं पहुंच पाओगे। तो आपको उसकी बात समझ में नहीं आएगी। आप कहोगे, यह हो सकता है कि ठीक से चलकर भी न पहुंच पाऊं, क्योंकि मेरी चाल की गति धीमी है। तो मुझे दौड़ना चाहिए। तो अगर मैं दौडूंगा तो जरूर पहुंच जाऊंगा--क्योंकि ऐसी कोई भी मंजिल हो, कितनी ही दूर हो, आखिर दौड़ने से मिल ही जाएगी। वह आदमी आपसे कहे कि आप दौड़ो, तो भी नहीं पहुंचोगे, सिर्फ थक कर गिरोगे। क्योंकि जिस वर्तुल में आप चल रहे हो, वह वर्तुल बाहर जाता ही नहीं है। इस वर्तुल को छोड़ो, दरवाजे को देखो और दरवाजे से बाहर निकलने की कोशिश करो--तो इतना चलने की जरूरत नहीं है, दरवाजा बहुत निकट है।
आपका वर्तुल कई बार दरवाजे के करीब से ही जाता है। बिल्कुल दरवाजे के करीब से--लेकिन आप अपने वर्तुल में मुड़ जाते हैं। कितनी बार आपकी आसक्ति आपको विरक्ति के करीब नहीं ले आती। कितनी बार आपका जीवन आपको आत्मघात के करीब नहीं ले आता! और कितनी बार संसार व्यर्थ नहीं होने लगता, लेकिन व्यर्थ होते ही होते आप फिर मुड़ जाते हैं। नई आसक्ति और वर्तुल फिर वापस निर्मित हो जाता है। दरवाजा बहुत बार करीब आता है, लेकिन छूट जाता है।
यह होता रहेगा। महावीर इसलिए विरक्त के लिए ही कहते हैं कि द्वार खुल सकता है। आसक्ति जिसे व्यर्थ हुई अनुभव से, वह विरक्त। जो विरक्त हुआ, वह अब द्वार खोजेगा नया। इस संसार में जिसका कोई घर न रहा, वह हुआ अनगार, अगृही। अब वह असली घर की खोज में लगेगा। यह खोज दीक्षा बन सकती है।

तो जिन्होंने वह घर पा लिया है, जो उस घर में प्रवेश कर गए हैं--अब वह उनकी आवाज समझने की कोशिश करेगा, उनके इशारे।
और जो व्यक्ति दीक्षित हो जाता है, उसे अनुत्तर धर्म का अनुभव शुरू होता है। महावीर धर्म का अर्थ करते हैं--"स्वभाव।" महावीर कहते हैं जैसे आग का स्वभाव है उष्णता और जल का स्वभाव है नीचे की तरफ बहना, ऐसे ही प्रत्येक आत्मा का स्वभाव है--ज्ञान, बोध, बुद्धत्व।
जैसे ही कोई व्यक्ति भीतर मुड़ता है, इस ज्ञान की किरणें उसे घेर लेती हैं। और इस ज्ञान की किरणों का अनुभव अनुत्तर धर्म का, कभी न जाने गए धर्म का अनुभव है। दूसरों ने जाना है, आपने कभी नहीं जाना है। आपके लिए नई घटना है, एक मौलिक घटना है। और यह कोई उधार बात नहीं है अब। अब आपको गीता और कुरान और बाइबिल में खोजने की जरूरत नहीं है। अब आपको वह मिल गया है, जो जीसस को पता था, कृष्ण को पता था, मोहम्मद को पता था। अब आप वहां खड़े हैं, जहां खड़े होने वालों ने बोला है, और बोल कर नंबर दो के, द्वितीय मूल्य के शास्त्र निर्मित हुए हैं।
महावीर कहते हैं, शास्त्र प्रतिध्वनि है, मूल नहीं। और जब कोई व्यक्ति अपने भीतर प्रवेश करता है, तो मूल में प्रवेश करता है। इस व्यक्ति से प्रतिध्वनियां होंगी, वे शास्त्र बन जाएंगे। और जो लोग प्रतिध्वनियां को ही सब कुछ समझ कर जी लेते हैं, वे भटक जाते हैं।
मूल की खोज जरूरी है। गीता पढ़ कर, कृष्ण कहां थे, उस जगह की खोज करनी चाहिए। महावीर को सुन कर, अंधे की तरह महावीर को मान लेने की जरूरत नहीं है। महावीर कहां थे, उस जगह की खोज की जरूरत है। मोहम्मद को सुन कर मुसलमान बनने से कुछ भी न होगा, मोहम्मद बनना पड़ेगा।
दुनिया में मुसलमान बहुत हैं, जैनी बहुत हैं, हिंदू बहुत हैं, ईसाई बहुत हैं--उनसे कुछ भी नहीं होता। क्राइस्ट को सुन कर क्रिश्चियन बनना धोखा है, क्राइस्ट बनने की जरूरत है। तो अनुत्तर धर्म उपलब्ध होगा। लेकिन कोई क्राइस्ट नहीं बनना चाहता। क्रिश्चियन बनने में सुविधा है, क्योंकि क्रिश्चियन बनने में सारी जिम्मेवारी क्राइस्ट पर है, हम तो सिर्फ पीछे चल रहे हैं। अगर भटके तो तुम जिम्मेवार।
और क्रिश्चियन को बड़ी सुविधाएं है जीवन में--कुछ बदलना नहीं पड़ता। क्रिश्चियन को क्राइस्ट को मानने तक की जरूरत नहीं है। जैन को कहां महावीर को मानने की जरूरत है! सिर्फ इतना मानने की जरूरत है कि हम मानते हैं। और कुछ करने की जरूरत नहीं है। एक रत्ती भर बात मानने की जरूरत नहीं हैं।
बर्ट्रेंड रसल ने लिखा है, तब बायन्ड विन इंग्लैंड का प्रधानमंत्री था। बायन्ड विन निष्ठावान क्रिश्चियन था और रसल ने मजाक में लिखा है कि बायन्ड विन निष्ठावान क्रिश्चियन है, हर रविवार चर्च में मौजूद होता है-- प्रधानमंत्री हो जाने के बाद भी। रोज बाइबिल पढ़ कर सोता है। लेकिन, ध्यान रखना, कोई जाकर बायन्ड विन को चांटा मत मार देना। हालांकि जीसस ने कहा है कि जो चांटा मारे, उसके सामने तुम दूसरा गाल कर देना। बायन्ड विन नहीं करेगा तब तुम भूल में पड़ोगे।
वह मजाक कर रहा है। वह यह कह रहा है कि चर्च में जाने से क्या होगा! बाइबिल पढ़ने से क्या होगा! बायन्ड विन को भी अगर चांटा मारोगे तो दिक्कत में पड़ जाओगे। वह गाल आगे नहीं करने वाला है दूसरा!
क्राइस्ट होना एक बात है, क्रिश्चियन होना एक बात है। क्रिश्चियन होना शायद खुद को धोखा देना है, आत्मवंचना है। अगर महावीर से प्रेम ही है, तो जिन होने की कोशिश करनी चाहिए, जैन होने की नहीं। अगर महावीर से प्रेम ही है, तो महावीर जहां है, वहां पहुंचने की चेष्टा करनी चाहिए।
महावीर कहते हैं कि जो व्यक्ति भीतर के धर्म का स्पर्श कर लेता है, उसके सारे कर्म-मल गिर जाते हैं। कुछ करना नहीं होता। जैसे यहां कोई रोशनी जला दे, तो अंधेरा समाप्त हो जाएगा। ऐसे ही भीतर की रोशनी जलते ही जीवन का सारा अंधेरा गिर जाता है। उस अंधेरे में जितने उपद्रव हमने पाले थे, वे भी गिर जाते हैं। जो भय, जो आसक्तियां, जो मोह बनाए थे अंधेरे के कारण, अंधेरे के गिरते ही खो जाते हैं।

जैसे इस कमरे में अंधेरा हो, और आप डरते हैं कि पता नहीं कमरे में कोई छिपा न हो। तो भय है। या आप सोचते हैं कि मेरी प्रेयसी इस कमरे के भीतर होगी, तो आप अंधेरे में बड़े रस से टटोल कर खोज रहे हैं। फिर रोशनी हो जाए, वहां कोई भी नहीं है। तो भय भी खो गया, प्रेम भी खो गया और अंधेरा भी चला गया। हमने अंधेरे में जी-जी कर संसार के जो भी संबंध बनाए हुए हैं, वे ऐसे ही हैं। जिस दिन भीतर की रोशनी होती है--अंधेरा भी खो जाता है, वे सारे संबंध और कर्मों का जाल भी गिर जाता है।
महावीर कहते हैं, उस दिन सब दिशाओं को आलोकित करने वाला प्रकाश जन्मता है। वही सिद्ध की अवस्था है। उसे महावीर ने केवलज्ञान कहा है। वह परम निर्वाण, परम मुक्त चेतना का अनुभव है। जहां सिर्फ ज्ञान ही रह जाता है। जहां सिर्फ प्रकाश ही रह जाता है। कोई चीज प्रकाशित भी नहीं रह जाती, सिर्फ शुद्ध प्रकाश रह जाता है। और अनंत आयामों तक प्रकाश फैल जाता है-- जिसके लिए कोई बाधा नहीं रहती। निर्बाध प्रकाश का सागर।
लेकिन विरक्ति से शुरुआत है यात्रा की और निर्बाध प्रकाश के सागर पर अंत है।
जो विरक्ति में कच्चा है, वह यहां तक कभी भी नहीं पहुंच पाएगा। पहला कदम ही जिसका भटक गया है, उसकी मंजिल कभी आने वाली नहीं है। और जो उधार धर्म को ही लेकर चल रहा है, वह भी कभी सत्य तक नहीं पहुंच पाएगा। धर्म प्रतिध्वनि है जानने वालों की। मगर हमारी बड़ी अजीब हालत है।
मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन बैठा है एक रेलवे स्टेशन के विश्रामालय में। उसका मित्र पंडित रामशरण दास उसके पास ही अखबार पढ़ रहा है। नसरुद्दीन कहता है, पंडित जी, कागज तो नहीं है?
वह अपने खीसे से बिना आंख उठाए एक कागज निकाल कर नसरुद्दीन को दे देता है।
फिर थोड़ी देर बाद नसरुद्दीन कहता है, पंडित जी, कलम तो नहीं है?
तो वह एक कलम निकाल कर अपने खीसे से दे देता है।
नसरुद्दीन कुछ लिखता है; फिर कहता है, "लिफाफा?
तो पण्डित रामशरण दास लिफाफा दे देते हैं।
फिर वह लिफाफा में रख कर कहता है, "स्टैम्प?
तो वे क्रोध में अपनी डायरी खोल कर स्टैम्प निकाल कर दे देते हैं। तो
वह स्टैम्प लगा देता है। फिर वह कहता है, पंडित जी, वॉट इ.ज दि एड्रेस ऑफ योर गर्ल-फ्रेंड--तुम्हारी प्रेयसी का पता क्या है?
वे चिट्ठी लिख रहे हैं। कागज भी उधार, कलम भी उधार, लिफाफा भी उधार, स्टैम्प भी उधार। यहां तक भी ठीक। वह प्रेयसी भी उनकी नहीं है, जिसको वे पत्र लिख रहे हैं। वह भी पंडित जी की प्रेयसी! और उनकी प्रेयसी का पता पूछ रहे हैं।
करीब-करीब हमारी जिंदगी ऐसी ही उधार है।
परमात्मा को भी चिट्ठी लिखते हैं, तो वह परमात्मा शंकर का, नागार्जुन का, वसुबंधु का। मोक्ष को चिट्ठी लिखने की कोशिश करते हैं, वह मोक्ष महावीर का, बुद्ध का। ब्रह्म की कुछ खोज-खबर लेते हैं--तो वह ब्रह्म कृष्ण का!
किसी और का हमेशा!
प्रेयसी भी अपनी न हो, तो पत्र लिखना व्यर्थ है। परमात्मा अपना न हो,
तो सारी प्रार्थनाएं व्यर्थ हो जाती हैं। इसे स्मरण जो व्यक्ति रखता है, आज नहीं कल उधार से बच जाता है, और अपने निज-परमात्मा की खोज करने लगता है। और जिस दिन खोज निज होती है, उसका आनंद ही और है। क्योंकि तभी उदघाटन होना शुरू होता है! अंधेरे से प्रकाश की तरफ, मृत्यु से अमृत की तरफ यात्रा शुरू होती है।

पांच मिनट रुकें; कीर्तन करें।

महावीर-वाणी, भाग 2
सत्ताईसवां प्रवचन

संन्यास प्रारंभ है, सिद्धि अंत (मोक्षमार्ग-सूत्रः 4)

जया सव्वत्तणं नाणं दंसणं चाभिगच्छइ।
तया लोगमलोगं च जिणो जाणइ केवली।।
जया लोगमलोगं च जिणो जाणइ केवली।
तया जोगे निरुंभित्ता सेलेसिं पडिवज्जइ।।
जया जोगे निरुंभित्ता सेलेसिं पडिवज्जइ।
तया कम्मं खवित्ताणं सिद्धिं गच्छइ नीरओ।।
जया कम्मं खवित्ताणं सिद्धिं गच्छइ नीरओ।
तया लोगमत्थयत्थो
सिद्धो हवइ सासओ।।

जब सर्वत्रगामी केवलज्ञान और केवलदर्शन को प्राप्त कर लेता है, तब जिन तथा केवली होकर लोक और अलोक को जान लेता है।
जब केवलज्ञानी जिन लोक-अलोकरूप समस्त संसार को जान लेता है, तब (आयु समाप्ति पर)मन, वचन और शरीर की प्रवृत्तिका निरोध कर शैलेशी (अचल-अकंप)अवस्था को प्राप्त होता है।
जब मन, वचन और शरीर के योगों का निरोध कर आत्मा शैलेशी अवस्था पाती है, पूर्ण रूप से स्पंदन-रहित हो जाती है, तब सब कर्मों का क्षयकर सर्वथा मलरहित होकर सिद्धि (मुक्ति)को प्राप्त होती है।
जब आत्मा सब कर्मों का क्षयकर सर्वथा मलरहित होकर सिद्धि को पा लेती है, तब लोक के मस्तक पर, ऊपर के अग्रभाग पर स्थित... होकर सदा काल के लिए सिद्ध हो जाती है।

एकमात्र बीमारी है। मन को स्वस्थ करने का कोई भी उपाय नहीं है, मन को शून्य करने का जरूर उपाय है। बीमारी मिट सकती है, बीमारी स्वस्थ नहीं हो सकती। साधारणतः लोग कहते हैं, उनका मन अशांत है, बेचैन है, परेशान है; तो पूछते हैं, कैसे मन को शांत करें?
मन कभी भी शांत नहीं होता। मन के शांत होने का कोई उपाय नहीं है। अशांत होना मन का स्वभाव है। ठीक से समझें तो अशांति ही मन है। मन से मुक्त हुआ जा सकता है। मन के पार हुआ जा सकता है। मन को छोड़ा जा सकता है। मन को शांत नहीं किया जा सकता। मन के शांत होने का एक ही अर्थ है, जहां मन न रह जाए।
इसका यह अर्थ हुआः शांति और मन का कोई संबंध कभी भी नहीं हो पाता। जब
तक मन है, तब तक शांति नहीं और जब शांति होती है, तब मन नहीं होता। मन को मिटाना, मन से मुक्त होना, मन के पार होना समस्त साधना का आधारभूत सूत्र है। तो मन को हम ठीक से समझ लें तो महावीर के इन अंतिम सूत्रों में प्रवेश हो जाए।
मन है क्या? क्योंकि बीमारी ठीक से न समझी जा सके, निदान न हो पाए, डायग्नोसिस न हो, तो उपचार नहीं हो सकेगा। निदान आधे से ज्यादा उपचार है। और बिना निदान किए जो उपचार में लग जाए, हो सकता है बीमारी को और बढ़ा ले; नई बीमारियों को निमंत्रण दे दे।
अधिक लोग मन को बिना समझे उपचार करने में लग जाते हैं। ऐसे लोग या तो
मन को दबाने लगते हैं या ऐसे लोग मन को मूर्च्छित करने लगते हैं।
मन को दबाना हम सभी जानते हैं। क्रोध आ जाए तो उसे कैसे पी जाना, उसे कैसे गटक जाना गले के नीचे, हम सभी जानते हैं। क्योंकि जिंदगी में सभी मौकों पर क्रोध नहीं किया जा सकता। वासना मन में उठे, तो कैसे उसे पीते रहना, दबाते रहना, वह हम सभी जानते हैं। क्योंकि हर क्षण वासना को पूरा करने का उपाय नहीं है।
तो मन को हम सभी दबाते हैं। लेकिन इस दबाने से कोई कभी मुक्त होता है?
ये दबी हुई जो वृत्तियां हैं, ये धक्का मारती रहती हैं; ये भीतर चोट करती

रहती हैं और अवसर की तलाश करती हैं। जब भी कमजोर क्षण मिल जाएगा, ये प्रकट हो जाएंगी। ये इकट्ठी होती रहती हैं।
और मनस्विद कहते हैं कि जो आदमी बहुत ज्यादा क्रोध को दबाता रहता है,
वह एक न एक दिन क्रोध के भयानक भूकंप से भर जाता है। जो लोग रोज-रोज क्रोध करते रहते हैं, छोटी-छोटी बातों में क्रोध करते रहते हैं, ऐसे लोग बड़े अपराध नहीं कर पाते। ऐसे लोग हत्या नहीं कर सकते, क्योंकि हत्या करने के लिए जितना क्रोध इकट्ठा होना चाहिए, उतना उनके पास कभी इकट्ठा ही नहीं होता। इसलिए अक्सर जो लोग छोटी-छोटी बातों में क्रोध कर लेते हैं, बुरे लोग नहीं होते। और जो आदमी दबाए चला जाता है, वर्षों तक दबाता रहता है, उसके भीतर ज्वालामुखी इकट्ठा हो जाता है। जब भी इसका विस्फोट होगा, तब यह छोटी-मोटी घटना होने वाली नहीं है। यह कोई महा-उपद्रव करेगा।
तो जिनको आप साधारणतः शांत समझते हैं, वे भयंकर अशांति के जन्मदाता
हो सकते हैं। तो जो आदमी कभी-कभी क्रोध करता है, उसके क्रोध से जरा सावधान रहना। जो अक्सर करता है, उसके क्रोध का कोई मतलब नहीं है--हवा आई और गई। छोटे बच्चे बड़े अपराध नहीं कर सकते। और उसका कारण यह है कि वे छोटा- छोटा क्रोध करके दिन भर निकाल लेते हैं। इसलिए छोटे बच्चे क्षण भर में क्रोध करेंगे, क्षण भर बाद बिल्कुल शांत हो जाएंगे--जैसे तूफान कभी आया ही न हो। भरोसा ही न आएगा कि इस बच्चे ने थोड़ी देर पहले एक भयंकर क्रोध किया था। वह मुस्कुरा रहा है, नाच रहा है, प्रसन्न है। बच्चे से बड़े अपराध की संभावना नहीं है।
जो लोग अपने जीवन को सहज प्रकट करते रहते हैं, ये कोई महात्मा तो नहीं
हो सकते, लेकिन ये महा-अपराधी भी नहीं हो सकते। इनके महा-अपराधी होने का कोई उपाय नहीं है।
दमन से महा-अपराध पैदा होता है। अपराध से बचना हो जाता है, महा-अपराध पैदा हो जाता है; क्योंकि ऊर्जा का एक नियम है कि आप उसे इकट्ठी करके रख नहीं सकते--उबल जाएगी, ओवरफ्लो हो जाएगी। एक सीमा है जब तक आप सम्हाल सकेंगे, और फिर सम्हालने के बाहर हो जाएगी। इस तरह अगर आप सम्हालते गए, सम्हालते गए, तो वह सीमा आ जाती है जहां आपके भीतर इकट्ठी शक्ति प्रकट होगी, और अगर वह आपके विपरीत प्रकट हो जाए तो आप विक्षिप्त भी हो सकते हैं। मनस्विद कहते हैं कि पागल आदमी वही है, जिसने बहुत दबाया है। दबाना इतना ज्यादा हो गया है कि अब होश में उसे निकालने का कोई उपाय न रहा, तो उसने होश भी खो दिया है। अब वह बेहोशी में निकाल रहा है। पागलखानों में जो लोग बंद हैं, वे दमित स्थिति के आखिरी परिणाम हैं।
तो आप दमन कर-कर के विक्षिप्त हो सकते हैं, विमुक्त कभी नहीं हो सकते। विमुक्त होना हो, तो दबाना कोई रास्ता नहीं है। और जिसे हम दबाते हैं, हम उससे और ज्यादा बुरी तरह ग्रसित हो जाते हैं। उसकी जकड़ हम पर बढ़ जाती है। तो दबाने से तो कोई कभी पहुंचता नहीं, पर मन को बिना समझे बहुत लोग दबाने की कोशिश में लग जाते हैं। वह सरल दिखता है, सुगम दिखता है, तात्कालिक परिणामकारी दिखता है--लेकिन लंबे अरसे में भयानक है, खतरनाक है।
दूसरा, कुछ लोग मन को मूर्च्छित करने में लग जाते हैं। उन्हें लगता है, अगर मन मूर्च्छित हो जाए, न पता चलेगा, न मन की उद्विग्नता, पीड़ा सताएगी।
मूर्च्छा के कई उपाय हैं। शराब कोई पी ले तो सीधा उपाय है--केमिकल्स, रासायनिक तत्व शरीर को मूर्च्छित कर देते हैं। मस्तिष्क भी शरीर का हिस्सा है, वह भी मूर्च्छित हो जाता है। मूर्च्छित हो जाने से फिर कुछ दुख, पीड़ा, तनाव, परेशानी, चिंता, संताप--कुछ भी पता नहीं चलता। लेकिन जो मूर्च्छित हो गया है, वह मिट नहीं जाता है। होश आएगा, सारी बीमारियां फिर खड़ी हो जाएंगी।
सारे धर्मों ने शराब का विरोध किया है--इसलिए नहीं कि शराब में कोई अपने आप में बुराई है। सारे धर्मों ने विरोध किया है, क्योंकि धर्म जिस बीमारी को मिटाना चाहते हैं, शराब उसे केवल भुलाती है। भुलाने से कोई चीज मिटती नहीं।

शराब में अपने आप में कोई बुराई नहीं है। बुराई है इसमें कि जो बीमारी मिट सकती थी, उसे हम भुला कर स्थगित कर रहे हैं, टाल रहे हैं। वह जीवन में और गहरी होती चली जाएगी। और एक ऐसी घड़ी आ जाएगी कि हम इतने कमजोर हो जाएंगे बेहोश होते-होते कि बीमारी हमसे सबल होगी और उसे मिटाने का कोई उपाय न रह जाएगा।
लेकिन, शराब अगर अकेली मूर्च्छा की बात होती तो भी ठीक था, बहुत सी अच्छी शराबें हैं। धार्मिक शराबें भी हैं, जिनमें पता ही नहीं चलता कि हम अपने को भुला रहे हैं। एक आदमी बैठा है और राम-राम, राम-राम जप रहा है। आपको पता नहीं होगा कि एक ही शब्द को बार-बार दोहराने से मस्तिष्क में रासायनिक परिवर्तन होते हैं, जो मूर्च्छा ले आते हैं। एक ही शब्द की ध्वनि बार-बार चोट करती रहे तो ऊब पैदा करती है, उदासी पैदा करती है, तंद्रा पैदा करती है, नींद पैदा हो जाती है।
तो एक आदमी सुबह से बैठ कर एक घंटा अगर राम-राम या ओंकार, या नमोकार करता रहे--एक ही शब्द को दोहराता रहे--तो उस पुनरुक्ति के कारण मूर्च्छा पैदा हो जाती है। उस मूर्च्छा में और शराब की मूर्च्छा में कोई बुनियादी अंतर नहीं है। यह ध्वनि के माध्यम से मस्तिष्क को सुलाना है।
छोटे-छोटे बच्चे को मां यही करती है, लोरी सुना देती हैः राजा बेटा सो जा, राजा बेटा सो जा, राजा बेटा सो जा। थोड़ी देर में राजा बेटा सो जाता है। मां समझती है कि उसके संगीत के कारण सो रहा है, तो गलती में है--राजा बेटा सिर्फ ऊब रहा है। बार-बार कहे जा रहे हो, राजा बेटा सो जा--इतनी ऊब पैदा हो जाती है कि इस ऊब से बचने का एक ही उपाय रहता है कि वह नींद में खो जाए। इसको आप ठीक से समझ लें।
ऊब पैदा हो जाती है, तो ऊब से बच्चा भाग भी तो नहीं सकता। मां को छोड़ कर कहां भागे--बिस्तर पर उसको पकड़े बैठी हुई है। उसको छोड़ कर बच्चा कहीं जा भी नहीं सकता। जाने का कोई उपाय नहीं है। एक ही भीतरी उपाय है कि नींद में डूब जाए, तो इस उपद्रव से छुटकारा हो।
लेकिन जो लोरी का सूत्र है, वही जिनको हम मंत्र कहते हैं, उनका सूत्र है। छोटे बच्चे को मां कह रही हैः राजा बेटा सो जा। जरा बच्चा बड़ा हो गया है, वह खुद ही राम-राम, राम-राम जप रहा है। उसका खुद चित्त ऊब जाता है। ऊब से झपकी लग जाती है। नींद में डूब जाता है। यह झपकी थोड़ा फायदा भी कर सकती है, जैसा नींद करती है--स्वस्थ करेगी; थोड़ा ताजा करेगी।
आज पश्चिम में महर्षि महेश योगी के ट्रांसेंडेंटल मेडिटेशन का जोर से प्रचार है। लोरी से ज्यादा नहीं है वह। जो भी किया जा रहा है, वह सिर्फ इतना है कि एक शब्द दिया जा रहा है, एक मंत्र दिया जा रहा है--इसे दोहराए चले जाओ। इस दोहराने से तंद्रा पैदा होती है।
पूरब में इतना प्रभाव नहीं पड़ रहा है। भारत में कोई प्रभाव नहीं है, अमरीका में बहुत प्रभाव है, कारण? अमरीका में नींद खो गई है, भारत में अभी भी लोग सो रहे हैं।
अमरीका में नींद सबसे बड़ा सवाल हो गया है। बिना ट्रैंक्वेलाइजर के सोना मुश्किल है। फिर धीरे-धीरे ट्रैंक्वेलाइजर का भी शरीर आदी हो जाता है। फिर उनसे भी सोना मुश्किल है। और नींद इतनी ज्यादा व्याघात से भर गई है कि ट्रांसेंडेंटल मेडिटेशन, भावातीत--ध्यान जैसे प्रयोग फायदा पहुंचा सकते हैं, और नींद आ सकती है।
लेकिन नींद ध्यान नहीं है, नींद मूर्च्छा है। इसके अच्छे परिणाम भी
हो सकते हैं। नींद स्वास्थ्यकृत है, स्वास्थ्य को देगी, थोड़ा सुख भी देगी। नींद के बाद थोड़ा हलकापन भी लगेगा। और सच्चाई तो यह है कि साधारण नींद की अपेक्षा मंत्र के द्वारा जो नींद आती है, वह ज्यादा गहरी होती है। क्योंकि मंत्र के द्वारा जो नींद आती है, वह हिप्नोसिस है, वह सम्मोहन है। हिप्नोसिस शब्द का अर्थ भी निद्रा ही होता है--चेष्टा से पैदा की गई निद्रा; कोशिश से लाई गई निद्रा; और मन के तंतुओं को शिथिल करके लाई गई निद्रा।
आपको जब रात नींद आती, तो कारण आप जानते हैं क्या होता है? कारण यह होता है कि मन के तंतु खिंचे होते हैं, विचार में लगे होते हैं। इतने विचार

में लगे होते हैं कि खून दौड़ता ही चला जाता है। इस खून के दौड़ने के कारण नींद मुश्किल हो जाती है। इसलिए बिना तकिए के आप सोएं तो नींद नहीं आती, क्योंकि खून सिर की तरफ दौड़ता रहता है। तकिया आप रख लें तो खून सिर की तरफ नहीं दौड़ता, नहीं दौड़ने के कारण जल्दी नींद आ जाती है।
इसलिए जैसे-जैसे लोग बौद्धिक होते जाते हैं, वैसे-वैसे तकियों की संख्या बढ़ती जाती है। जंगली आदमी बिना तकिए के सो सकता है। जानवरों को तकिए की कोई फिकर ही नहीं है। जंगली आदमी सोच भी नहीं सकता कि तकिए की क्या जरूरत है। बड़ी गहरी नींद सोता है। असल में विचार न होने से खून की गति मस्तिष्क में वैसे ही कम होती है। लेकिन आपके मन में इतने विचार चल रहे होते हैं, कि जब तक विचार चल रहे होते हैं, तब तक खून दौड़ता रहता है। क्योंकि बिना खून दौड़े विचार नहीं चल सकते।
तो मंत्र के द्वारा ये विचार बंद हो जाते हैं। और मंत्र पुनरुक्ति हैं एक शब्द की। एक शब्द के दोहराने से मन के तंतु शिथिल होने लगते हैं। शिथिल होने से निद्रा आ जाती है। अगर आपको कोई भी एक मोनोटोनस वातावरण दिया जाए, वह नींद के लिए अच्छा होता हैं।... मोनोटोनस चाहिए।
आपका सोने का जो कमरा है, मनोवैज्ञानिक कहते हैं, बहुत से रंगों से उसको नहीं रंगना चाहिए। क्योंकि बहुत रंग मन को उत्तेजित करते हैं। एक रंग होना चाहिए--और वह भी मोनोटोनस, जिससे ऊब आए, उदासी आए, तंद्रा मालूम पड़े। कमरे में ज्यादा चीजें नहीं होनी चाहिए।
और हर आदमी के सोने का रिचुअल होता है। वह उसी को रोज दोहराता है। जैसे छोटे बच्चे हैं--कोई छोटा बच्चा अपनी गुड्डी को हाथ में पकड़ कर सो जाता है; कोई छोटा बच्चा अपने अंगूठे को मुंह में ले लेता है। वह मोनोटोनस हो गया है। वह रोज वही करता है। अगर आप उसका अंगूठा उसके मुंह से निकाल लें, तो उसकी नींद तोड़ देंगे। वह जैसे ही अंगूठा मुंह में डाल लेता है, अंगूठा मंत्र हो जाता है। वह ऊब हो गई। वही पुराना अंगूठा रोज-रोज--वह सो जाता है।
आप ऐसा मत सोचना कि छोटे बच्चे ही ऐसा करते हैं। आपका भी क्रियाकांड है। हर आदमी का क्रियाकांड है। सोते वक्त वह वही क्रियाकांड करेगा, उसके बाद नींद आ जाएगी। नींद आ जाएगी, अगर आपने वही क्रियाकांड किया।
इसलिए नये कमरे में नींद नहीं आती, क्योंकि मोनोटोनी टूट जाती है। नये मकान में नींद नहीं आती। नया आदमी कमरे में सो रहा हो, तो जरा अड़चन होती है। वही पत्नी सो रही हो, वही पति सो रहा हो, वही घुर्राटा चल रहा हो सदा का--ऊब पैदा होनी चाहिए, नींद का सूत्र है। जरा भी नई चीज अड़चन पैदा करती है।
तो मन को कुछ लोग उबा कर मूर्च्छित कर लेते हैं। ऐसे लोग, महावीर जिसको सिद्धावस्था कह रहे हैं, उस तक कभी भी नहीं पहुंच सकते। ये दो ढंग हैं। दबाने वाला विक्षिप्त हो जाता है, सुलाने वाला धीरे-धीरे सुस्त हो जाता है। वह शांत भला दिखाई पड़ने लगे, लेकिन उसकी शांति मुर्दा है, मरे हुए आदमी की शांति है, मरघट की शांति है। वह कोई जीवंत शांति नहीं है, जहां भीतर जीवन प्रवाह ले रहा है और अशांति न हो।
इन दो बातों से बचना जरूरी है। लेकिन वही बच सकता है, जो मन का स्वभाव समझ ले।
मन का स्वभाव क्या है?
मन है विचार की प्रक्रिया। मन कोई यंत्र नहीं है। मन कोई वस्तु नहीं है। मन एक प्रवाह है। मन को अगर हम ठीक से समझें तो मन कहना ठीक नहीं--मनन, चिंतन, विचारों की धारा, नदी। ये विचार बहे चले जाते हैं। और जब तक ये बहते रहते हैं, तब तक आप शांत नहीं हो सकते। क्योंकि हर विचार आपको आंदोलित कर जाता है; हर विचार आपको हिला जाता है।
कंपित होना संसार में होना है महावीर के हिसाब से। अकंप हो जाना संसार के बाहर हो जाना है। और हम प्रतिक्षण इसी कोशिश में लगे हैं कि थोड़ा सा कंपन मिले। उसे हम सेंसेशन कहते हैं।
थ्रिल... हमारी पूरी कोशिश यह है कि जिंदगी ऊब न जाए, तो कुछ नया हो जाए। एक नया वस्त्र भी आप ले आते हैं, तो थोड़ी जिंदगी में रौनक मालूम पड़ती

है। एक नई चीज खरीद लाते हैं। तो लोग पागल हो गए हैं खरीदने में। बिना किसी फिकर के चीजें खरीदते चले जाते हैं। क्योंकि हर नई चीज थोड़ी सी थ्रिल देती है। थोड़ी देर को ऐसा लगता है, जिंदगी आई। क्योंकि थोड़ी सी ऊब टूटती है, बोर्डम टूटती है। मन की पूरी कोशिश यह है कि आप नया-नया खोजते रहें रोज। यह जान कर आप हैरान होंगे कि पूरब के मनीषियों ने पुराने दिनों में इस बात की फिकर की थी कि समाज बहुत न बदले, चीजें बहुत नई न हों, घटनाओं में बहुत नयापन न हो ताकि मन को तरंगित होने का कम से कम उपाय हो। वह जो पूरब का समाज स्टैटिक था, स्थिर था, उसके पीछे मनीषियों का हाथ था। आज पश्चिम में ठीक उससे उलटी हालत हो गई है। हर चीज नई हो, हर दिन नई हो। दूसरे दिन पुरानी चीज ऊब देने लगती है। सब कुछ नया होता चला जाए।
अमरीका के आंकड़े मैं पढ़ता था। कोई भी आदमी एक मकान में तीन साल से ज्यादा नहीं रहता। यह औसत है। हर आदमी तीन साल के भीतर तो मकान बदल ही लेता है। कार तो आदमी हर साल बदल लेता है। तलाक की संख्या पचास प्रतिशत को पार कर गई है। सौ विवाह होते हैं, तो पचास तलाक हो जाते हैं। इस सदी के पूरे होते-होते जितने विवाह होंगे, उतने ही तलाक होंगे। ये विवाह और तलाक भी मौलिक रूप से नये की खोज है।
मुल्ला नसरुद्दीन के पड़ोस में एक चर्च था। और चर्च का पादरी कभी-कभी नसरुद्दीन को शिक्षण दिया करता था। देखता था उसका जीवन, तो कभी-कभी समझाता था। एक दिन नसरुद्दीन ने उससे कहा कि आप ठीक ही कहते हैं, मैंने अब पक्का कर लिया है कि आज जाकर मैं अपनी पत्नी से क्षमा मांग लूंगा, और अब किसी स्त्री की तरफ आंख उठा कर भी नहीं देखूंगा! बहुत हो गया। और आप ठीक ही कहते थे, लेकिन मैं माना नहीं। यह मन की दौड़ थी, वासना थी, चलती रही। लेकिन अब उम्र भी हो गई। तो आज जाकर पत्नी से क्षमा मांग लेता हूं। सब कनफेशन कर लूंगा कि मैं उसे धोखा दे रहा हूं।
दूसरे दिन सुबह पादरी प्रतीक्षा करता रहा कि कब नसरुद्दीन घर से निकले। नसरुद्दीन बड़ी शान से, बड़ी ताजगी से जोर से कदम रखता हुआ चर्च के पास से निकला। बड़ा प्रसन्न था। तो पादरी ने कहाः मालूम होता है, नसरुद्दीन, पत्नी ने तुम्हें क्षमा कर दिया!
नसरुद्दीन ने कहा कि नहीं, पत्नी ने क्षमा तो नहीं किया, लेकिन अभी बात न करो। दो-चार दिन बाद... !
पादरी ने कहाः लेकिन, ऐसा क्या मामला हुआ है? प्रसन्न तुम बहुत दिखते हो?
नसरुद्दीन ने कहाः मैंने अपनी पत्नी को कहा कि मैं तुझे धोखा दे रहा हूं। एक दूसरी स्त्री से मेरा संबंध है। तो वह बड़ी बेचैन हो गई और कहने लगी, उसका नाम बताओ। तो नाम बताना तो उचित नहीं था, क्योंकि उस दूसरी स्त्री की इज्जत का भी सवाल है; उसके पति का भी सवाल है; उसके बच्चों का भी सवाल है। तो मैंने कहा कि नाम तो मैं नही बता सकूंगा, माफी मांगता हूं, क्षमा कर दे। तो पत्नी नाराज हो गई। उसने कहा कि जब तक तुम नाम नहीं बताओगे, मैं क्षमा न करूंगी। और फिर कहने लगी, अच्छा, अगर तुम नहीं बताते तो मैं खुद ही ख्याल कर लेती हूं। तुम पादरी की पत्नी के प्रेम में तो नहीं हो? और जब मैं चुप रहा तो उसने कहा कि नहीं-नहीं, पादरी की बहन! और जब मैं फिर भी चुप रहा तो उसने कहा कि नहीं-नहीं, अब तो पक्का है कि तुम पादरी की लड़की से!
मैं चुप ही रहा।
तो पादरी ने कहाः लेकिन इससे तुम इतने प्रसन्न क्यों हो?
तो नसरुद्दीन ने कहा कि और तो कुछ हल न हुआ, बट शी हैव गिवन मी थ्री न्यू कांटेक्ट्स। और अभी अब बीच में पड़ो मत!
मन फिर गतिमान हो गया। अब तीन नये पते उसने और बता दिए। इन तीन स्त्रियों का ख्याल ही नहीं था नसरुद्दीन को।
कई बार आप संयम के करीब पहुंचने लगते हैं और फिर कोई तरंग हिला जाती है। आप सोचते हैं, संयम की इतनी जल्दी भी क्या है, कुछ देर और रुका जा सकता है। और अक्सर लोग मरते क्षण तक संयम नहीं साध पाते। आखिरी क्षण तक भी जीवन हिलाता ही रहता है।

महवीर कहते हैं, जिसे बाहर की स्थितियां कंपित कर देती हैं, आंदोलित
कर देती है--आंदोलन का अर्थ है, जो बाहर जाने को उत्सुक हो जाता है, वह आदमी संसार में है। वह चेतना कभी भी सिद्ध नहीं हो सकती।
महावीर का शब्द है, "शैलेशी अवस्था", हिमालय की तरह थिर। जहां कोई कंपन न हो। हिंदुओं ने शिव का घर कैलाश पर बनाया है सिर्फ इसी कारण। कोई कैलाश पर ढूंढने से शिव मिलेंगे नहीं। और अब तो करीब-करीब सारा हिमालय खोज डाला गया है। और कुछ बचा होगा तो चीनी छोड़ेंगे नहीं। वे खोजे ले रहे हैं। और शिव अगर मिलते होते, तो आपको ही मिलते, चीनियों को तो कभी मिल ही नहीं सकते।
शिव वहां हैं भी नहीं, सिर्फ प्रतीक है, कि शिवत्व की जो आखिरी अवस्था है, वह कैलाश जैसी थिर होगी। इसलिए महावीर ने शैलेशी अवस्था कहा है उसे। शैलेश जैसी, हिमालय जैसी थिर। जहां कोई कंपन नहीं है।
लेकिन अगर वैज्ञानिकों से पूछें तो वे कहेंगे कि यह शब्द ठीक नहीं है, क्योंकि हिमालय कंप रहा है। सच तो यह है कि हिमालय से ज्यादा कंपने वाला कोई पहाड़ ही दुनिया में नहीं है। विंध्याचल है, सतपुड़ा है--ये ठहरे हुए हैं। आलपस--ये सब ठहरे हुए हैं, कंप नहीं रहे हैं; हिमालय कंप रहा है--उसका कारण है--क्योंकि हिमालय जवान है। विंध्या और सतपुड़ा बूढ़े हैं। भू-तत्वविद कहते हैं कि विंध्याचल जगत का सबसे पुराना पर्वत है, सबसे बूढ़ा पर्वत है। हमारी भी कहानियां कहती हैं कि ऋषि अगस्त्य जब दक्षिण गए, तो वे विंध्या से कह गए कि मैं जब तक लौट न आऊं, तुम झुके रहना, क्योंकि मैं बूढ़ा आदमी हूं और मुझे चढ़ने में बड़ी तकलीफ होती है।
उनके लिए ही वह झुका था। लेकिन फिर वे लौटे नहीं, उनकी मृत्यु हो गई दक्षिण में। तब से वह झुका है। कहानी बड़ी मीठी है। वह यह कहती है कि बूढ़ा पहाड़ है, गर्दन झुक गई है, कमर झुक गई है।
विंध्या सबसे पुराना पहाड़ है। उसमें कोई परिवर्तन नहीं हो रहा है। वह
बढ़ नहीं रहा है; घट रहा है। हिमालय रोज बढ़ रहा है। उसकी ऊंचाई रोज बढ़ती जाती है। उसमें रोज कंपन है। वह अभी जवान है।
जितना जवान चित्त होगा, उतना कंपित होगा। अगर चित्त कंपित ही होता रहता है, तो आपका वार्धक्य शरीर का है--लेकिन चित्त के अर्थों में अभी आप जवान की वासना से भरे हैं। लेकिन महावीर का प्रयोजन है--महावीर को ख्याल भी नहीं होगा कि हिमालय कंप रहा है। उस समय तक इस बात का कोई उदघाटन नहीं हुआ था कि हिमालय कंपित हो रहा है और बढ़ता जा रहा है।
रोज कुछ इंच हिमालय ऊपर उठ रहा है जमीन से। अभी जवान है, अभी वह वयस्क नहीं हुआ। अभी बाढ़ रुकी नहीं। लेकिन महावीर का प्रयोजन साफ है, क्योंकि हिमालय जैसी थिर और कोई चीज जगत में मालूम नहीं पड़ती। ऊपर से देखने पर तो कम से कम हिमालय बिल्कुल थिर मालूम होता है।
सब बदल जाता है, हिमालय बदलता हुआ नहीं मालूम होता--इस अर्थ में प्रतीक है। ऐसी चित्त की अवस्था हो जाए, जहां कोई परिवर्तन नहीं होता, कोई कंपन नहीं होता, कोई बढ़ता नहीं, कोई गिरता नहीं। सब ठहर जाता है; जैसे कोई झील बिल्कुल निस्तरंग हो जाए; शून्य आकाश हो, जहां बादल का एक टुकड़ा भी न तैरता हो; हवा का एक झोंका भी न आता हो--ऐसी अवस्था में चित्त नहीं रह जाता, मन नहीं रह जाता। ऐसी अवस्था में सिर्फ आत्मा रह जाती है।
तो हम ऐसी व्याख्या कर सकते हैं कि जब तक आत्मा कंपती है, उस कंपन का नाम मन है। मन कोई वस्तु नहीं है, मन सिर्फ कंपती हुई आत्मा का नाम है। और जब आत्मा नहीं कंपती, और ठहर जाती है, स्वस्थ हो जाती है, स्वयं में रुक जाती है, शैलेशी बन जाती है, तब मन नहीं रह जाता। जब मन नहीं रह जाता है, तो जो शेष रह जाता है, वहां कोई कंपन नहीं है।
इस अवस्था को पाने के लिए जरूरी होगा कि हम नई की जो विक्षिप्त तलाश करते हैं, वह न करें। और मन जब मांग करता है नई उत्तेजनाओं की, तब हम सावधान रहें। और जब मन कहता है, खोजो नये को, तो हम समझें कि मन क्या मांग रहा है। मन मांग रहा है कि मुझे नया इधन दो, ताकि मैं कंपता रहूं।
पुराने से मन बड़े जल्दी ऊब जाता है--नये से भी ऊब जाएगा। आज नया है, कल पुराना हो जाएगा। मन की वृत्ति को जो निरंतर भरता रहे नये से, बिना यह समझे

कि मन सिर्फ कंपने की कोशिश कर रहा है, नये कंपन तलाश कर रहा है--वह आदमी कभी भी समाधि को उपलब्ध नहीं होगा।
और ऐसी अवस्था में हम सदा ही दूसरे पर भटकते रहते हैं। दूसरा ही उत्तेजना दे सकता है। उत्तेजना सदा बाहर से आती है। बाहर से शांति के आने का कोई उपाय नहीं है। शांति सदा भीतर जन्मती है, उत्तेजना सदा बाहर से आती है। अशांति बाहर से आती है, शांति भीतर से बहती है। और जब तक हम बाहर लगे हुए हैं।
मुल्ला नसरुद्दीन युद्ध के दिनों में सेना में भर्ती हुआ था। उसका नया शिक्षण चल रहा था। और उसके कैप्टन ने एक दिन उससे पूछा कि नसरुद्दीन, जब तुम बंदूक साफ करते हो, तो सबसे पहले क्या करते हो? बंदूक साफ करने के पहले सबसे पहला काम क्या है?
नसरुद्दीन ने कहाः सबसे पहला काम, पहले मैं नंबर देखता हूं। उस कैप्टन ने कहा कि नंबर से सफाई का क्या संबंध? नसरुद्दीन ने कहाः जस्ट टु बी श्योर दैट दिस इ.ज माई ओन, आई एम नॉट क्लीनिंग समबडी एल्स--यह पक्का करने के लिए कि बंदूक अपनी ही है, किसी और की बंदूक साफ नहीं कर रहे हैं।
यह जो नसरुद्दीन कह रहा है, बड़ी कीमत की बात कह रहा है। जिंदगी में करीब-करीब हम दूसरों की बंदूकें साफ करते रहते हैं, अपनी बंदूक तो गंदी ही रह जाती है। दूसरों की साफ करने के कारण फुर्सत ही नहीं मिलती कि अपने पर ध्यान चला जाए।
जो व्यक्ति भी उत्तेजनाओं में रसलीन है, वह दूसरों की बंदूकें साफ करने में जीवन बिता देता है। दूसरों को ठीक करने में, दूसरों को सुधारने में, दूसरों को सुंदर बनाने में, दूसरों को मित्र बनाने में, दूसरों को अपने निकट लाने में, दूसरों का भोग करने में--पर सारा जीवन दूसरे पर लगा रहता है। और दूसरे काफी हैं! दूसरों का कोई अंत नहीं है।
सार्त्र ने एक अदभुत बात कही है। कहा है कि अदर इ.ज दि हेल--दूसरा नरक है। बात थोड़ी सही है। हम अपना नरक दूसरे के ही माध्यम से पैदा करते हैं। आप खुद अपने नरक को देखें। आदमी-आदमी का अपना-अपना नरक है। हर आदमी अपने-अपने नरक में जी रहा है। मुस्कुराहटें तो ऊपर हैं और धोखे की हैं, और चिपकाई गई हैं, पेंटेड हैं--भीतर नरक है। और हर आदमी अपने-अपने नरक में जी रहा है; लेकिन वह नरक आप अकेले पैदा नहीं कर सकते हैं; उसके लिए आपको दूसरों की जरूरत है। दूसरों के बिना नरक पैदा नहीं हो सकता।
थोड़ा सोचें, क्या आप अकेले नरक पैदा कर सकते हैं? दूसरों के बिना नरक पैदा नहीं हो सकता। लेकिन, अगर यह सच है कि दूसरों के बिना नरक पैदा नहीं हो सकता, तो हम दूसरों के पीछे इतने पागल क्यों हैं?
क्योंकि यह आशा बंधी है, कि दूसरों के बिना स्वर्ग भी पैदा नहीं हो सकता। दूसरे के द्वारा स्वर्ग पैदा हो सकता है, इसी कोशिश में तो हम नरक पैदा कर लेते हैं।
स्वर्ग का स्वप्न नरक को जन्म देता है। सब नरकों के द्वार पर लिखा है, स्वर्ग। तो जिस दरवाजे पर आप स्वर्ग लिखा देखें, जरा सोच कर प्रवेश करना, क्योंकि नरक बनाने वाले काफी कुशल हैं। वे अपने दरवाजे पर नरक नहीं लिखते, फिर कोई प्रवेश ही नहीं करेगा। नरक के दरवाजे पर सदा स्वर्ग लिखा होता है-- वह दरवाजे पर ही होता है। भीतर जाकर, जैसे-जैसे भीतर प्रवेश करते हैं, वैसे-वैसे प्रकट होने लगता है।
दूसरे से जो स्वर्ग की आशा करता है, दूसरे के द्वारा उसका नरक निर्मित
हो जाएगा। सार्त्र ठीक कहता है कि "द अदर इ.ज दि हेल।" पर सार्त्र ने कहीं भी यह उल्लेख नहीं किया कि दूसरा नरक क्यों है।
वह दूसरे के कारण नरक नहीं है। दूसरे में स्वर्ग की वासना ही नरक का जन्म बनती है। तो बहुत गहरे में देखने पर मेरी वासना ही, कि दूसरे से मैं स्वर्ग बना लूं, नरक का कारण होती है। और जो व्यक्ति दूसरे में उलझा है, वह सदा कंपित रहेगा।
आपने कभी देखा कि आपके जितने कंपन हैं, वे दूसरे के संबंध में होते हैं? क्रोध के, प्रेम के, घृणा के, मोह के, लोभ के--सब दूसरे के संबंध में होते हैं। थोड़ी देर को सोचें कि आप इस पृथ्वी पर अकेले रह गए हैं, क्या

आपके भीतर कोई कंपन रह जाएगा? सारा संसार अचानक खो गया, आप अकेले हैं, तो कोई कंपन नहीं रह जाएगा। क्योंकि कंपन के लिए दूसरे से संबंधित होना जरूरी है; दूसरे और मेरे बीच वासना का सेतु बनना जरूरी है, तब कंपन होगा। आदमी जब गहन भीतर डूबता है आंख बंद करके, बाहर को भूल जाता है--तो वह ऐसे ही हो जाता है, जैसे पृथ्वी पर अकेला है; जैसे और कोई भी न रहा। सब होंगे--लेकिन जैसे नहीं रहे; मैं अकेला हो गया। इस अकेलेपन में शैलेशी अवस्था पैदा होती है। इस अकेलेपन में, इस नितांत भीतरी एकांत में, सब कंपन ठहर जाते हैं और अकंप का अनुभव होता है।
सूत्र महावीर का हम लें।
"जब सर्वत्रगामी केवलज्ञान केवलदर्शन को प्राप्त कर लेता है साधक, तब जिन तथा केवली होकर लोक और अलोक को जान लेता है।"
"जब केवलज्ञानी जिन लोक-अलोकरूप समस्त संसार को जान लेता है, तब मन, वचन और शरीर की प्रवृत्ति का निरोध हो जाता है और शैलेशी (अचल, अकंप)अवस्था प्राप्त होती है।"
महावीर ने पिछले सूत्र में कहा है कि जब अंतर प्रकाश का उदय होता है,
जब कोई जीवन-ऊर्जा पूरी तरह भीतर की तरफ मुड़ जाती है... ।
इस भीतर की तरफ मुड़ जाने का नाम ही प्रतिक्रमण--अपनी तरफ आना है।
तो प्रतिक्रमण कोई क्रिया नहीं है कि आपने बैठकर कर ली। प्रतिक्रमण चेतना का, ऊर्जा का अपनी तरफ लौटना है। यह बड़ी गहन घटना है।
लोग मुझे आकर कहते हैं कि आज प्रतिक्रमण करके आ रहे हैं। प्रतिक्रमण करके कहीं कोई आता है? प्रतिक्रमण का मतलब ही है कि बाहर आना नहीं, भीतर जाना शुरू हुआ। प्रतिक्रमण ऊर्जा का भीतर की तरफ लौटना है। आपने देखे होंगे, अनेक इसोटेरिक, गुह्य समाजों ने सांप के प्रतीक को चुना है, जिसमें सांप अपनी पूंछ को पकड़े हुए है, वह सांप का अपनी पूंछ को पकड़ना प्रतिक्रमण है। जब चेतना अपने ही द्वारा अपने को पकड़ लेती है, और एक वर्तुल निर्मित हो जाता है, तब प्रतिक्रमण है।
जब तक मैं दूसरे की तरफ ध्यान दे रहा हूं, तब तक आक्रमण जारी है। और आक्रमण जब तक जारी है, तब तक मैं अपने को व्यर्थ कर रहा हूं; व्यर्थ खो रहा हूं--तब तक मैं नष्ट हो रहा हूं। क्योंकि जितनी ऊर्जा बाहर जा रही है, वह व्यर्थ जा रही है। जब तक भीतर जोड़ न हो जाए ऊर्जा का, जब तक अंतर्संभोग न हो जाए, जब तक मैं स्वयं से भीतर न मिल जाऊं, तब तक आनंद उपलब्ध नहीं होगा। दूसरे से मिल कर जो थोड़ा-बहुत सुख उपलब्ध हो सकता है, वह केवल राहत है।
वह शक्ति का क्षीण होना है। और जब भी शक्ति भारी हो जाती है, और दूसरे के माध्यम से बाहर निकल जाती है, तो हलकापन लगता है।
कभी-कभी, आपको ख्याल होगा कि बुखार जब ठीक होता है, तो बड़ा हलकापन लगता है, जैसे उड़ सकते हैं। लेकिन वह हलकापन कमजोरी के कारण लगता है, शक्ति के कारण नहीं। शक्ति भीतर नहीं है, इसलिए बिल्कुल हलके लगते हैं। बुखार के बाद बिल्कुल हलकापन लगता है--जैसे सब शांत हो गया। दूसरे से मिलकर जिस ऊर्जा का हम व्यय करते हैं, वह बुखारवाला हलकापन है, जहां एक उत्तेजना आई और उत्तेजना विलीन हो गई।
अमरीका में मास्टर्स और जान्सन ने संभोग के संबंध में बड़े वैज्ञानिक अध्ययन किए हैं। और पहला अध्ययन उनका यह है कि संभोग के क्षण में दो व्यक्ति, स्त्री-पुरुष, दोनों ही बुखार की अवस्था में आ जाते हैं, फीवरिश हो जाते हैं। दोनों का शरीर उत्तप्त हो जाता है, गर्मी बढ़ जाती है, टेम्प्रेचर ज्यादा हो जाता है, श्वास जोर से चलने लगती है। शरीर का रोआं- रोआं बेचैन और परेशान हो जाता है। कुछ ही क्षणों में दोनों ही उत्तप्त होकर जलने लगते हैं। और जब दोनों का स्खलन हो जाता है, तो इस बुखार से छुटकारा हो जाता है। वापस लौट आते हैं।
यह जो बुखार से छूट जाना है, इसमें राहत मिलती है, सुख नहीं मिल सकता। दूसरे से हमारा कोई भी संबंध ज्यादा से ज्यादा रिलीफ का हो सकता है। स्वयं से संबंध आनंद का हो सकता है।
महावीर इस स्वयं से संबंध को कहते हैं, प्रतिक्रमण। जब चेतना अपने पर लौट आती है। जैसे ही चेतना अपने पर लौटती है, वैसे ही कर्म-मल गिर जाते

हैं। क्योंकि कर्म-मल हमने इकट्ठे ही किए थे दूसरे के लिए, दूसरे से संबंधित होने के लिए। इसे हम थोड़ा समझें।
हम बोलते हैं; भाषा हम सीखते हैं। लेकिन भाषा हम सीखते हैं दूसरों के लिए। भाषा का कोई उपयोग अपने लिए नहीं है। भाषा सामाजिक है, दूसरे से जुड़ने का उपाय है। अगर आप अकेले रह जाएं जगत में, तो भाषा छूट जाएगी, भाषा की कोई जरूरत नहीं रह जाएगी। क्योंकि भाषा थी ही दूसरे से जुड़ने के लिए। आप कार में बैठते हैं कहीं जाने के लिए, अगर कहीं जाना ही न हो, तो आप कार के बाहर निकल आएंगे। और अगर सारा जाना ही बंद हो जाए, कहीं जाने का सवाल ही न हो, कोई मंजिल ही न हो, तो कार को आप भूल ही जाएंगे।
आप वस्त्र पहनते हैं ताकि दूसरे को आपकी नग्नता न दिखाई पड़े। लेकिन अगर जगत में कोई भी न हो, आप घने जंगल में हों, जहां कोई भी नहीं है--आप निर्वस्त्र घूमने लगेंगे। वस्त्र की चिंता नहीं रहेगी।
आप घर से निकलते हैं, आइने में चेहरा देखते हैं। क्योंकि कोई दूसरा आपके चेहरे में गंदगी न देख ले, कुरूपता न देख ले--अभद्र न मालूम पड़े। लेकिन आप जंगल में अकेले हों--दर्पण पड़ा-पड़ा टूट जाएगा, आप देखना बंद कर देंगे।
हम जीवन में जो भी कर रहे हैं, वह दूसरे के कारण, दूसरे के लिए। महावीर कहते हैं, हमने जीवन-जीवन में, जन्मों-जन्मों में, जो भी कर्म इकट्ठे किए हैं, वे दूसरे से संबंधित होने के लिए। हमारा सारा खेल यंत्र का है। हमारा सारा शरीर, हमारा सारा मन दूसरे से संबंधित होने का उपकरण है। जब कोई चेतना अपने से संबधित होती है, यह सारा उपकरण नीचे गिर जाता है। इसकी कोई जरूरत नहीं रह जाती। इससे हमारा संबंध टूट जाता है।
यह जो संबंध का टूट जाना है, तभी सर्वत्रगामी केवलज्ञान का उदय होता है। तब ऐसे बोध का जन्म होता है, जो सब तरफ फैलता चला जाता है; जिसकी कोई सीमा नहीं है; जो असीम है। तब भीतर से प्रकाश के वर्तुल चारों तरफ फैलते चले जाते हैं, अनंत लोक को घेर लेते हैं। जितना विस्तार है, उसे घेर लेते हैं। महावीर कहते हैं, न केवल लोक का, बल्कि अलोक का भी बोध हो जाता है। मैंने पीछे आपको कहा कि आधुनिक भौतिक शास्त्री एंटी यूनिवर्स, अलोक
की धारणा के करीब पहुंच गए हैं। और पहुंचना जरूरी हो गया, क्योंकि जगत का एक अनिवार्य नियम समझ में आ गया है कि यहां द्वंद्व के बिना कुछ भी नहीं होता। यहां होने का ढंग विपरीत के द्वारा है। यहां सब चीजें विपरीत के साथ मौजूद हैं; अंधेरा प्रकाश के साथ, जन्म मृत्यु के साथ। तो अकेला यूनिवर्स, अकेला लोक नहीं हो सकता, अलोक भी होगा। इससे विपरीत भी कुछ होगा।
महावीर बड़ी अनूठी बात कहते हैं। और तब तो उनके पास कोई वैज्ञानिक उपकरण न थे इसको जानने के। निश्चित ही, यह उनके ज्ञान के विस्तार में ही प्रतीत हुआ होगा। क्योंकि वैज्ञानिक के पास तो उपकरण हैं, महावीर के पास तो कोई उपकरण न थे; कोई प्रयोगशाला न थी; स्वयं को छोड़ कर। खुद ही प्रयोगशाला थे--इससे ज्यादा तो कुछ भी साथ न था। आंख बंद करके भीतर देखने के सिवा उनकी कोई और विधि न थी। इस विधि के द्वारा उनको यह प्रतीति हुई कि अलोक भी है एंटी यूनिवर्स भी है।
ठीक उस अलोक के नियम इसके बिल्कुल विपरीत होंगे। वह इससे बिल्कुल उलटा है। और वह उलटा होना जरूरी है ताकि यह लोक हो सके। क्योंकि द्वंद्व के बिना जगत में कोई भी अस्तित्व नहीं है। अगर स्त्रियां न हों, तो पुरुष खो जाएं; पुरुष न हों, स्त्रियां खो जाएं।
एक बहुत पुरानी कथा है, अरब में कि एक बार लोग बिल्कुल सुस्त और कहिल
हो गए, और ऐसा समय आया कि सब आलसी हो गए। कोई कुछ करना नहीं चाहता था। कोई कुछ करता नहीं था। तो एक मनीषी को पूछा गया कि क्या करें? तो उसने कहा कि तुम एक उपाय करो, सारे पुरुषों को एक द्वीप पर बंद कर दो और सारी स्त्रियों को दूसरे द्वीप पर बंद कर दो। बस, सब ठीक हो जाएगा।
पर उन्होंने कहा कि आप पागल हो गए हैं, इससे क्या होगा? स्त्रियों को
एक द्वीप पर बंद कर देंगे, पुरुषों को एक द्वीप पर बंद कर देंगे--इससे सुस्ती कैसे मिटेगी?

उसने कहा कि तुम इसकी फिकर छोड़ो--वे दोनों ही नाव बनाने में लग जाएंगे
कि दूसरे द्वीप पर कैसे पहुंचे। सुस्ती बिल्कुल टूट जाएगी। आलस्य बिल्कुल खो जाएगा। उपक्रम आ जाएगा, श्रम शुरू हो जाएगा। पुरुष अकेला नहीं रह पाएगा, स्त्री अकेली नहीं रह पाएगी। वे पास आना चाहेंगे। उपद्रव शुरू हो जाएगा। तुम अराजकता पैदा कर दो, तुम दोनों को अलग कर दो।
द्वंद्व यहां इस पृथ्वी पर जीवन का आधार है। तो महावीर कहते हैं, अलोक
और लोक ये दो अस्तित्व की अनिवार्यताएं हैं। जिस व्यक्ति के भीतर मौन घटित होगा, मन समाप्त हो जाएगा; जहां मन समाप्त होता है, वहां मौन है। जो भीतर मुनि हो जाएगा, उसको लोक और अलोक दोनों आलोकित हो जाएंगे, दोनों दिखाई पड़ने लगेंगे। जीवन का मौलिक आधार दिखाई पड़ जाएगा कि द्वंद्व, डुआलिटि, डायलेक्टिक्स, संघर्ष, जीवन का आधार है।
और इस जीवन से द्वंद्व नहीं मिट सकता। कोई चाहे तो अपने भीतर द्वंद्व
के पार जा सकता है। लेकिन बाहर द्वंद्व नहीं मिट सकता--नये रूप ले लेगा, नये संघर्ष बना लेगा, नये उपद्रव खड़ा करेगा--क्योंकि बिना उपद्रव के जीवन अस्तित्व में नहीं हो सकता। संघर्ष वहां अनिवार्य है।
"जब सर्वत्रगामी केवलज्ञान और केवलदर्शन को प्राप्त कर लेता है साधक,
जब जिन तथा केवली होकर।"
जिन का अर्थ है, जिसने अपने को जीत लिया। अपने को जीतने का अर्थ है, जो दूसरे पर किसी भी अर्थों में निर्भर नहीं रह गया है। दूसरे की निर्भरता जहां पूर्णतया समाप्त हो जाती है, वहां महावीर कहते हैं, व्यक्ति जिन हुआ। और अपने को जिन कहने का हकदार वही है, जो किसी पर किसी भी कारण से निर्भर नहीं है। जो अपने में पर्याप्त है। जिसका होना काफी है। जिसकी चेतना किसी की भी तलाश में नहीं जाती। जो किसी को भी खोजता नहीं है; और कोई न मिले, तो जरा भी पीड़ा नहीं होती। जो अपने साथ रह कर इतना प्रसन्न है कि उसकी प्रसन्नता में कोई भी कमी नहीं है।
अपने ही साथ जो प्रफुल्ल है, उसे महावीर कहते हैं, जिन। और केवली उसे कहते हैं, जिसे इस ज्ञान का अनुभव हो गया है; जिसकी कोई बाधा नहीं है, जिस पर कोई अवरोध नहीं है। जो फैलता ही चला जाता है। जो अनंत प्रकाश है। भीतर के इस अनंत प्रकाश का जिसे अनुभव हो गया। महावीर ने शब्द बड़ा अनूठा चुना हैः केवली--अलोन, अकेला, एकाकी, जहां सिर्फ ज्ञान ही रह जाए।
उपनिषदों में कहा जाता है कि जगत का ज्ञान एक त्रिवेणी है। वहां जानने वाला है, जानी जाने वाली वस्तु है, और दोनों के बीच का संबंध है, ज्ञान। वहां तीन हैं।
प्रयाग आप गए होंगे। वहां कुंभ भरता है; त्रिवेणी का मेला जुड़ता है। लेकिन त्रिवेणी बड़ी मजे की है! नदियां वहां दो हैं, तीसरी, कहते हैं, कभी थी। कभी भी नहीं थी। तीसरी अदृश्य है। सरस्वती अदृश्य है, यमुना और गंगा प्रकट हैं। यह त्रिवेणी प्रतीक है भीतर के संगम का।
इस जगत में जो ज्ञान की घटना घटती है, जो तीर्थ निर्मित होता है ज्ञान का, वह तीन से निर्मित होता हैः वस्तु, ऑब्जेक्ट, ज्ञेय; ज्ञाता, जानने वाला, सब्जेक्ट; और दोनों के बीच निर्मित होने वाली तीसरी धारा जो दिखाई नहीं पड़ती--ज्ञान। वह ज्ञान, सरस्वती है।
इसलिए सरस्वती ज्ञान की प्रतिमा है। और वह नदी कभी भी नहीं रही दुनिया में। वह हो नहीं सकती। उसके होने का कोई कारण नहीं है। अदृश्य उसका स्वभाव है। पदार्थ दिखाई पड़ता है, देखने वाला दिखाई पड़ता है; दृश्य दिखाई पड़ता है, द्रष्टा दिखाई पड़ता है; दर्शन दिखाई नहीं पड़ता। ज्ञाता, ज्ञेय दिखाई पड़ता है--ज्ञान दिखाई नहीं पड़ता।
मैं यहां बैठा हूं, आपको देख रहा हूं। मैं हूं, आप हैं, और दोनों के बीच
एक सरस्वती बह रही है जो दिखाई नहीं पड़ती--जानने की, ज्ञान की, बोध की, दर्शन की। इन तीनों से मिलकर इस जगत का सारा ज्ञान निर्मित हुआ है। महावीर कहते हैं, जब ज्ञाता भी मिट जाए, ज्ञेय भी मिट जाए, केवल सरस्वती रह जाए; वह जो अदृश्य है, वही एकमात्र शेष रह जाए। जो दृश्य हैं, वे दोनों खो जाएं। क्योंकि दृश्य पदार्थ है, अदृश्य चैतन्य है।

अब यह बड़े मजे की बात है, आप जब प्रयाग जाते हैं तो गंगा-यमुना दिखाई पड़ती हैं, सरस्वती दिखाई नहीं पड़ती। भीतर एक ऐसा प्रयाग भी है, जहां सिर्फ सरस्वती दिखाई पड़ती है--गंगा-यमुना दोनों खो जाती हैं। जहां गंगा-यमुना खो जाती हैं, सरस्वती मात्र रह जाती है, उस अवस्था का नाम "केवल" है।
जो दिखाई पड़ता है, वह नहीं दिखाई पड़ता वहां, और जो नहीं दिखाई पड़ता है, वही केवल दिखाई पड़ता है। इस जगत का दृश्य वहां अदृश्य हो जाता है और उस जगत का अदृश्य यहां दृश्य हो जाता है। इस जगत से वह बिल्कुल विपरीत है। यहां जो अदृश्य है, वहां दृश्य हो जाता है।
पदार्थ और पदार्थ के जानने वालों के बीच, दोनों किनारों के बीच, एक तीसरी अदृश्य धारा बह रही है ज्ञान की। महावीर कहते हैं, वही तुम्हारा वास्तविक स्वरूप है; जो दिखाई नहीं पड़ता। और जब तक तुम उसे न जान लोगे, तब तक तुम अज्ञानी ही रहोगे। केवलज्ञान ही एकमात्र ज्ञान है। वस्तुतः, बाकी सब ज्ञान अज्ञान की टटोलें हैं। अज्ञानी आदमी टटोल रहा है; कुछ खोज रहा है; बना रहा है; सिद्धांत निर्मित कर रहा है।
ज्ञानी का अर्थ है, जहां दोनों खो गए। द्वंद्व खो गया और बीच की अदृश्य धारा प्रकट हो गई। उस अदृश्य धारा का नाम केवल है।
"जब केवलज्ञानी जिन लोक-अलोक को, समस्त संसार को जान लेता है, तब मन, वचन और शरीर की प्रवृत्ति का निरोध हो जाता है; शैलेशी (अचल-अकंप)अवस्था प्राप्त होती है।"
उस तीसरे में थिर होते ही सारी अथिरता खो जाती है। फिर कोई कंपन नहीं है। फिर कोई चीज हिला नहीं सकती, क्योंकि कोई चीज आकर्षित नहीं कर सकती। फिर कोई चीज डिगा नहीं सकती, क्योंकि कोई चीज आंदोलित नहीं कर सकती। कोई आमंत्रण सार्थक न रहा, फिर कोई निमंत्रण बाहर नहीं बुला सकता।
फिर कुछ भी नहीं है जगत में, जो मैन गेट हो। फिर आप अपने ही मैन गेट पर केंद्र थिर हो गए। अब आप अपने पर हैं--केंद्रित हो गए। आप खड़े हो गए अपनी जगह। आप उस जगह आ गए... । गाड़ी का चाक चलता है, लेकिन चाक के बीच में एक कील है, जो नहीं चलती।
और बड़ा मजा यह है कि कील नहीं चलती, इसलिए चाक चल पाता है। कील भी चलने लगे, तो चाक गिर जाए। कील ठहरी रहती है।
जब तक हम मन के साथ जुड़े होते हैं, हम चाक के साथ जुड़े हैं और जब हम मन
से पीछे हटते हैं, शांत और मौन और शून्य हो जाते हैं, तो हम कील पर ठहर गए। कील पर ठहरा हुआ व्यक्ति, सेंटर्ड, स्वयं में ठहरा हुआ व्यक्ति--महावीर कहते हैं--शैलेशी है। वह हिमालय बन गया चेतना का। अब उसमें कोई कंपन नहीं है। अब उसे कोई चीज दुख नहीं दे सकती। क्योंकि अब उसे किसी से सुख की कोई आकांक्षा नहीं है। ऐसा व्यक्ति आनंद को उपलब्ध हो जाता है; या चाहें तो कहें, ब्रह्म को उपलब्ध हो जाता है।
महावीर कहते हैं, ऐसा व्यक्ति परमात्मा हो गया। परमात्मा का अर्थ है, ऐसी शैलेशी अवस्था को पा लेना।
"जब मन, वचन और शरीर के योगों का निरोधकर आत्मा शैलेशी अवस्था पाती है; पूर्ण रूप से स्पंदन-रहित हो जाती है, तब सब कर्मों का क्षयकर सर्वथा मल-रहित होकर सिद्धि को प्राप्त होती है।"
महावीर के लिए "सिद्ध" अंतिम शब्द है। सिद्ध का अर्थ हैः वन हू हैज रीच्ड। सिद्ध का अर्थ हैः जो पहुंच गया। सिद्ध का अर्थ हैः जिसे मंजिल मिल गई। सिद्ध का अर्थ हैः जिसकी यात्रा का अंत हुआ। सिद्ध का अर्थ हैः जिसे अब कहीं जाने को न बचा। सिद्ध का अर्थ हैः जिसे अब कुछ पाने को न बचा। सिद्ध का अर्थ हैः जिसे अब कुछ जानने को न बचा। जो हो सकता था आखिरी इस जीवन में, वह घट गया। बीज फूल तक आ गया। इसके पार कोई यात्रा नहीं है। चेतना अपनी पूरी संभावनाओं को वास्तविक कर ली। जो-जो हो सकता था, वह हो गया। अब चेतना में कोई और बीज नहीं बचा, सब बीज प्रकट हो गए।
इस पूर्ण प्रकटावस्था को महावीर कहते हैं, परमात्मा की अवस्था। इसलिए महावीर के लिए परमात्मा नहीं है, जितनी चेतनाएं हैं--अनंत चेतनाएं हैं-- उतने ही परमात्मा हैं--अनंत परमात्मा हैं। कुछ हैं, जो बीज में बंद हैं। कुछ हैं, जो तड़प रहे हैं और बीज को तोड़ रहे हैं। कुछ हैं, जो अंकुरित हो गए

हैं और फूलों की तरफ बढ़ रहे हैं। और कुछ हैं, जो फूल हो गए और आखिरी अवस्था को पहुंच गए हैं।
सभी परमात्मा हैं--कुछ बीज में, कुछ अंकुर में; कोई वृक्ष में, कोई फूल में। लेकिन उनके स्वभाव में कोई अंतर नहीं है; स्वरूप में कोई अंतर नहीं है। अनंत परमात्माओं की धारणा है महावीर की। प्रत्येक व्यक्ति परमात्मा है, प्रत्येक व्यक्ति के भीतर भगवत्ता है।
सिद्धि का अर्थ हैः भगवत्ता को पा लेना, भगवान हो जाना। सिद्धि का अर्थ हैः जहां अब कोई वासना का सवाल न रहा; जहां से पार जाने का कोई उपाय नहीं है; जो आखिरी बिंदु है जीवन का।
इसी की हम तलाश भी कर रहे हैं। लेकिन जहां हम तलाश कर रहे हैं, शायद वह जगह नहीं है जहां इसे पाया जा सके। हम इसी को खोज भी रहे हैं--कोई धन में, कोई पद में, कोई प्रतिष्ठा में, कोई शास्त्र में। लेकिन यह खोज वहां हो नहीं सकती, उसे खोजना होगा भीतर। जहां भी हम खोज रहे हैं हम गलत खोज रहे हैं। और इसलिए जब हमें नहीं मिल पाता, तो हम इस बात का ख्याल नहीं लेते कि हमारी खोज गलत थी। हम सोचते हैं, हमारा भाग्य गलत था। हम सोचते हैं, कोई चीज बाधा बन गई।
जब हम एक व्यक्ति में सुख खोजते हैं; नहीं पाते हैं, तो हम सोचते हैं,
यह व्यक्ति ही गड़बड़ है, इसीलिए सुख नहीं मिल पा रहा है, किसी और में खोजें। धन में खोजते हैं; नहीं मिलता, तो सोचते हैं, पद में खोजें, पद में खोजते हैं; नहीं मिलता है तो सोचते हैं, शास्त्र में खोजें।
लेकिन एक दिशा सदा अछूती रह जाती है; हम कभी नहीं सोचते कि अपने में खोजें। सदा कहीं, किसी और में! जब तक हमें यह ख्याल न आ जाए कि हम कहीं भी खोजें, खोज गलत होगी; जब तक हम अपने में न खोजें। और इसीलिए हमें दूसरों में इतने दोष दिखाई पड़ते हैं। दूसरे में दोष दिखाई पड़ने का कुल कारण इतना है कि जहां-जहां हम असफल होते हैं, वहां-वहां दोष खोज कर हम अपने मन को तृप्त कर लेते हैं।
मुल्ला नसरुद्दीन बूढ़ा हो गया था। नौकरी के लिए एक दफतर में गया। वाचमैन की, पहरेदार की जगह खाली थी। उस मालिक ने कहा कि ठीक है, लेकिन मैं तुम्हें बता दूं कि हमें किस तरह का व्यक्ति चाहिए। तुम ठीक हो, काम हम दे सकेंगे, लेकिन फिर भी तुम समझ लो। हमें ऐसा व्यक्ति चाहिए जो चौबीस घंटे संदेह करे--वाचमैन। कोई भी भीतर आए, तो कभी आस्था और भरोसे से न देखे, चौबीस घंटा संदेह करे। और चौबीस घंटा लोगों के दोष, भूल-चूक निकालने की कोशिश में लगा रहे। और चौबीस घंटा लड़ने को तत्पर रहे। दुष्ट स्वभाव हो, कर्कश आवाज हो। भयावह चेहरा हो और जरा ही कोई उत्तेजना दे दे तो बिल्कुल शैतान उसके भीतर प्रकट हो जाए--हमें ऐसा आदमी चाहिए। ठीक है, तुम चल पाओगे। नसरुद्दीन ने कहाः क्षमा करें--आइ एम सारी, दिस जाब इज नाट फार मी, बट
आई विल सेंड वाइफ अराउंड--यह काम मेरा नहीं है, लेकिन मैं अपनी पत्नी को भेज दूंगा। बिल्कुल जैसा आप कह रहे हैं, वैसा ही व्यक्तित्व है उसका! अपने में दोष देख पाना तो बहुत मुश्किल है। वह आदमी कह रहा है--जिसको नौकर रखना है--कि तुम ठीक हो। लेकिन नसरुद्दीन कहता है, यह नौकरी मेरे... मैं इसमें नहीं जमूंगा, मेरी पत्नी... !
दोष सदा दूसरे में दिखाई पड़ते हैं। क्योंकि जो-जो हम पाना चाहते हैं दूसरे से, वह-वह हमें नहीं मिलता। वह मिल नहीं सकता--इसलिए नहीं कि दूसरे में कोई भूल है। वह मिल ही नहीं सकता--वह वस्तुओं का स्वभाव नहीं है।
हम दूसरे से प्रेम चाहते हैं और क्रोध पाते हैं। इसलिए नहीं कि दूसरा क्रोधी है। दूसरे से इसका कोई संबंध नहीं है। जो भी प्रेम चाहता है, वह क्रोध पाएगा। वह प्रेम की चाह में ही हम दूसरे में क्रोध पैदा कर रहे हैं। यह बड़ी मुश्किल बात है; जटिल बात है।
हमारी वासना ही उपद्रव का कारण है। हम जो-जो मांगते हैं, उससे विपरीत हमें मिलता है। आप खुद अपने जीवन को देखें। जो-जो आपने मांगा है, उससे विपरीत आपने पाया है। लेकिन आप सोचते हैं कि विपरीत मिला इसलिए कि दूसरी तरफ गलत लोग थे।

नसरुद्दीन के गांव में पहली दफा टेलीफोन लगा। बूढ़ा आदमी था और प्रतिष्ठित था, और सारे लोग जानते थे, जाहिर था--या कहिए बदनाम था। तो टेलीफोन कंपनी ने सोचा कि पहले टेलीफोन का उदघाटन नसरुद्दीन करे। उसकी पत्नी तीस मील दूर कहीं गांव में गई थी। तो उसकी पत्नी से मुलाकात उदघाटन में।
नसरुद्दीन बामुश्किल राजी हुआ। उसने कहा कि बामुश्किल तो वह गई है और तुम उसी से मुलाकत करवा रहे हो। और हम किसी तरह थोड़ी शांति अनुभव कर रहे थे, तब यह एक उपद्रव टेलीफोन का गांव में आ गया! मतलब यह है कि अब पत्नी से कोई छुटकारा नहीं--वह बाहर जाए तो भी!
फिर भी लोग नहीं माने तो वह राजी हो गया। आषाढ़ के दिन थे, वर्षा का मौसम था। उसने टेलीफोन हाथ में लिया कंपते हुए, डरते हुए--जैसा कि सभी पति पत्नी को फोन करते वक्त नर्वस... हाथ कंपने लगता है। और फिर यह तो पहला टेलीफोन था और उसने कभी टेलीफोन किया नहीं था।
उसका हाथ कंपने लगा। और तभी संयोग की बात, जोर से बिजली कड़की और सामने
के वृक्ष पर बिजली गिरी। उसके हाथ से टेलीफोन छूट गया, वह धड़ाम से नीचे गिर पड़ा। किसी तरह सम्हाल कर अपने को उसने उठाया और उसने कहा कि दैट्स आल राइट! "दैट्स माई ओल्ड वुमन!"
उसने कहा कि बिल्कुल पक्की बात है कि वही बोली है, यही मेरी पत्नी है!
यह हम पहले ही कहे थे कि यह और उपद्रव टेलीफोन का यहां मत लगाओ!
तो दूसरे में हम सदा ही खोज पाते हैं--सभी। नसरुद्दीन अति पर हो, आप थोड़े पीछे हों, इससे फर्क नहीं पड़ता। लेकिन हमारे जीवन की पूरी अड़चन यही है कि सारा दुख हमें कोई दे रहा है। कोई परिस्थिति, कोई व्यक्ति, कोई घटना-- लेकिन सदा बाहर से आ रहा है।
महावीर कहते हैं कि बाहर से कुछ भी नहीं आता। हम बाहर से मांगते हैं, उससे विपरीत हमें मिलता है। यह सीधा उत्तर है हमारी मांग का। सिद्धावस्था वैसी अवस्था है, जब बाहर से हमारी मांग गिर गई, और हम भीतर तृप्त हैं। और हम भीतर जैसे हैं, वैसे होने से हम परिपूर्ण तथाता में हैंः टोटल एक्सेप्टेबिलिटी पूर्ण संतुष्टि।
सिद्ध को आप हिला नहीं सकते। आप कहें कि वहां हीरे की खदान मकान के बगल में है, तो भी वह हिलेगा नहीं। आप कहें कि इंद्र निमंत्रण देने आया है कि चलो स्वर्ग में, आपकी तपश्चर्या काफी हो गई, तो भी वह हिलेगा नहीं। आप उसे किसी भी तरह आकर्षित नहीं कर सकते। आप कुछ भी नहीं दे सकते हैं, जो उसे कंपित कर दे। आपके पास कुछ भी नहीं है। सारा जगत राख हो गया। इस जगत में कुछ भी मूल्यवान न रहा। सारा जगत निर्मूल्य हो गया।
ध्यान रहे, मूल्य हम देते हैं। जगत में सभी चीजें निर्मूल्य हैं। मूल्य हमारा दिया हुआ है। कितना हम मूल्य देते हैं, यह हम पर निर्भर है। किस चीज को हम मूल्य देते हैं, यह हम पर निर्भर है।
सारा मूल्य मनुष्य कल्पित है। इसलिए अलग-अलग जगह अलग-अलग मूल्य दिखाई पड़ते हैं। अलग-अलग समाज अलग-अलग चीजों को मूल्य देते हैं। और जहां जो चीज मूल्यवान है, वहां मूल्यवान है। आपको दो कौड़ी की लगेगी, क्योंकि आपके समाज में आपने उस चीज को कोई मूल्य नहीं दिया है।
मूल्य व्यक्ति देता है। और मूल्य दिए जाते हैं वासना से। सिद्ध के लिए जगत निर्मूल्य है।
और ध्यान रहे, जब तक जगत में मूल्य है तब तक आप भीतर निर्मूल्य रहेंगे। जब जगत से मूल्य खो जाएगा, तो भीतर मूल्य स्थापित हो जाता है। सिद्ध की आत्मा में मूल्य है, और सारा जगत निर्मूल्य है। इसलिए शंकर कहते हैं कि आत्मा ही सत्य है, सारा जगत माया है। माया का मतलब इतना ही है केवल कि वहां हमने ही डाला था मूल्य और हमने ही निकाला था। जो हम डालते हैं, वही हम निकालते हैं। हम पहले प्रोजेक्ट करते हैं मूल्य, और फिर हम मूल्य से आंदोलित होते हैं। बड़ा खेल है!
महावीर कहते हैं, सिद्ध वह है, जो इस खेल के बाहर हो गया।

"जब आत्मा सब कर्मों का क्षय कर--सर्वथा मल-रहित होकर सिद्धि को पा लेती है, तब लोक के मस्तक पर, ऊपर के अग्रभाग पर स्थित होकर सदा काल के लिए सिद्ध हो जाती है।"
महावीर कहते हैंः लोक और आलोक, ये द्वंद्व हैं। जैसा मैंने कहा यमुना
और गंगा, ये दो दृश्य हैं और सरस्वती अदृश्य है। लोक और अलोक, मैटर और एंटी मैटर--विज्ञान की भाषा में कहें--ये दो विरोध हैं। इन दोनों विरोधों के बीच लोक के अग्रभाग पर और अलोक के प्रथम भाग पर सिद्ध चेतना थिर हो जाती है। पदार्थ और अ-पदार्थ, लोक और अलोक--इन दोनों के द्वंद्व के मध्य में चेतना थिर हो जाती है।
इस अवस्था का फिर कोई अंत नहीं है। यह अनंत अवस्था है। यह टाइमलेसनेस है। यह शाश्वतता है। इस क्षण से फिर कोई दूसरा क्षण नहीं है। यह क्षण अनंत है।
इससे बड़े विचार पैदा हुए, बड़ी चर्चा हजारों साल तक चली है। क्योंकि पश्चिम में वे पूछते हैं कि जब भी कोई चीज शुरू होती है तो उसका अंत होता है। अगर यह सिद्धावस्था शुरू होती है तो यह अंत कब होगी?
महावीर कहते हैं, इसका कोई अंत नहीं होता, यह सिर्फ शुरू होती है। सिद्धावस्था की सिर्फ बिगनिंग है, अंत नहीं है। यह बड़े मजे की बात है। और महावीर की बात समझने जैसी है। महावीर कहते हैंः संसार का अंत है, प्रारंभ नहीं है; सिद्धावस्था का प्रारंभ है, अंत नहीं है। और दोनों मिल कर एक वर्तुल बन जाते हैं।
महावीर कहते हैं, संसार का कोई प्रारंभ नहीं है, यह सदा से है। इसलिए महावीर स्रष्टा को नहीं मानते, या कभी क्रिएशन हुआ, इसको नहीं मानते; सृष्टि की गई, इसको नहीं मानते। वे कहते हैं, संसार सदा से है। इसका कोई प्रारंभ नहीं है। दि वर्ल्ड इ.ज बिगनिंगलेस। सिद्धावस्था का प्रारंभ है। सिद्धावस्था के प्रारंभ का अर्थ हुआ कि संसार का अंत। जैसे ही कोई सिद्ध हुआ, उसके लिए संसार का अंत हो गया, संसार शून्य हो गया।
तो महावीर कहते हैंः संसार का प्रारंभ नहीं है, अंत है; सिद्धावस्था
का प्रारंभ है, अंत नहीं है। और दोनों मिल कर वर्तुल को पूरा कर देते हैं। हम एक बड़ी लकीर को खींचें। इस लकीर को हम दो हिस्सों में बांट दें। पहले हिस्से के अग्रभाग पर सिद्धावस्था को रख दें; उसका कोई अंत नहीं है, प्रारंभ है। सिद्धावस्था एक दिन प्रारंभ होती है, लेकिन उसका अंत कभी नहीं होता। यह आधी बात हुई, आधा संसार है। उसका प्रारंभ नहीं है, उसका अंत है। दोनों को जोड़ दें तो एक वर्तुल बन जाएगा।
महावीर कहते हैं; ये दोनों घटनाएं एक ही विस्तार के दो हिस्से हैं। सिद्ध पहुंच गया वहां, जहां से फिर कोई रूपांतरण नहीं--न गिरना, न उठना; न आगे न पीछे।
अनेक दार्शनिकों ने सवाल उठाया है कि जब उसका कोई अंत नहीं होगा--इतनी लंबी, एण्डलेस, अंतरहित स्थिति होगी, तो हम उससे ऊब नहीं जाएंगे? उससे घबड़ाहट पैदा नहीं हो जाएगी? उससे आदमी भागना नहीं चाहेगा?
महावीर कहते हैं कि जब भी हम सोचते हैं, अंत-रहित, तो हमारा मतलब होता है, बहुत लंबी है, लेकिन कहीं अंत होगा। महावीर कहते हैं, जब मैं कहता हूं, अंतरहित, तो उसका मतलब ही यह होता है कि जहां लंबाई का सवाल नहीं है, शाश्वतता का सवाल है, इटरनिटी का सवाल है। तब एक क्षण, जो प्राथमिक क्षण है, वही अंतिम क्षण है। वहां कोई चीज गुजरती हुई मालूम भी नहीं पड़ेगी; वहां समय व्यतीत होता हुआ मालूम भी नहीं पड़ेगा; क्योंकि समय संसार का हिस्सा है।
कालातीत है चेतना की सिद्धावस्था। वहां कोई समय नहीं है। इसलिए आपको ऐसा नहीं लगेगा कि बहुत देर हो गई सिद्ध हुए। ऐसा कभी नहीं लगेगा। क्योंकि देर का, ड्यूरेशन का कोई सवाल नहीं है। समय वहां है नहीं। वहां आपकी घड़ी रुक जाएगी। वहां घड़ी नहीं चल सकती।
जीसस से कोई पूछता है, तुम्हारे स्वर्ग के राज्य में खास क्या बात होगी? तो जीसस कहते हैं--देयर शैल बी टाइम नो लांगर--वहां समय नहीं होगा।

समय संसार का हिस्सा है, क्योंकि समय परिवर्तन का हिस्सा है। अगर हम ठीक से समझें, तो परिवर्तन होता है, इसलिए समय का हमें पता चलता है। अगर परिवर्तन न हो, तो समय का पता न चले। जितना ज्यादा परिवर्तन होता है, उतना ज्यादा समय का पता चलता है।
इसलिए पश्चिम में लोग ज्यादा टाइम कांशस हैं--ज्यादा समय का पता चलता है, क्योंकि परिवर्तन बहुत हो रहा है। पूरब में लोग उतने समय से परेशान नहीं हैं। अगर जंगल में जाएं आदिवासियों के पास, उन्हें समय से कोई लेना- देना ही नहीं है। समय का कोई सवाल नहीं है। समय जैसे है ही नहीं। सब चीजें ठहरी हुई हैं।
जब परिवर्तन जोर से होता है, तो समय का पता चलता है। परिवर्तन धीमा होता है, तब समय भी धीमा हो जाता है। जब परिवर्तन बिल्कुल नहीं होता, तो समय समाप्त हो जाता है।
अगर ठीक से समझें तो समय का मतलब हुआ, परिवर्तन। परिवर्तन के बीच जो बोध होता है, वह समय है। अन्यथा समय का हमें कोई पता नहीं होगा। अगर आप एक ऐसी अवस्था में हों, जहां कुछ भी न बदले--समझें, इस कमरे में आप बैठे हैं, कुछ भी न बदले, सब चीजें थिर हों--तो आपको समय का कोई भी पता नहीं चलेगा। समय का पता चलता है, क्योंकि चीजें बदल रही हैं। एक बदलाहट से दूसरी बदलाहट के बीच जो खाली जगह है, उसमें ही समय का पता चलता है।
समय परिवर्तन का बोध है।
तो महावीर कहते हैं, सिद्धावस्था में कोई परिवर्तन नहीं है, इसलिए समय भी नहीं है। वहां समय का कोई पता नहीं चलता। सिद्ध होते ही समय गिर जाता है, संसार गिर जाता है।
असल में वासना के गिरते ही परिवर्तन समाप्त हो जाता है। जहां तक वासना है, वहां तक परिवर्तन है। जहां वासना नहीं है, सिर्फ आत्मा है, वहां कोई परिवर्तन नहीं है। वहां शाश्वतता है, इटरनिटी है।
यह जो सिद्धावस्था है, यही तलाश है हर प्राण की। यही खोज है हर श्वास की। प्राण इसी के लिए आतुर हैं कि एक ऐसी जगह मिल जाए, जिसके पार पाने को कुछ न बचे। आप कितना ही धन पा लें, ऐसी जगह नहीं मिलती। क्योंकि और धन पाने को बच रहता है! कितने ही बड़े पद पर हो जाएं, वह पद नहीं मिलता। और पद पाने को बच रहते हैं! और कितने ही शास्त्र के ज्ञाता हो जाएं, कुछ फर्क नहीं पड़ता। और शास्त्र बचे रहते हैं!
इस जगत में ऐसी कोई चीज नहीं है, जिसको पाकर आप कहें, इसके आगे कुछ भी नहीं बचता। आगे बचता ही है! इसलिए इस जगत की उपलब्धियों में कोई सिद्धावस्था नहीं हो सकती। सिर्फ अंतर्यात्रा में एक जगह है, जहां पाने को कुछ भी नहीं बचता।
जो अपने को पा लेता है, उसे पाने को कुछ भी नहीं बचता है। और जो अपने को नहीं पाता, उसे पाने को सदा ही बचा रहता है। और जब तक वह अपने को न पा लेगा, तब तक कितना ही भटके, कितनी ही यात्रा करे; यात्रा का कोई अंत नहीं है। यात्रा मिटती है अपने को पाकर। स्वयं में होकर ही यात्रा समाप्त होती है। जो स्वयं में पूरी तरह हो गया, वही सिद्ध है।
महावीर इस सिद्धयोग के लिए ही इन सारे सूत्रों को दिए हैं। क्षण भर को
आप भी सिद्ध होने का रस ले सकते हैं। क्षण भर को भी रस मिल जाए, तो आपकी खोज शुरू हो जाए। क्षण भर को भी आपका मन न दौड़ता हो, तो एक क्षण को झलक मिलती है सिद्ध होने की। एक क्षण को पता लगता है उसका कि क्या होता होगा सिद्ध को! पर वह आनंद भी अपरिसीम है। एक क्षण को भी झलक, एक बिजली कौंध जाए भीतर, तो भी आप शुरू हो गए, चल पड़े।
जिन्हें भी उस स्थान की तलाश हो, जिसके आगे कोई स्थान नहीं और जिन्हें
भी वह धन पाना हो, जो छीना नहीं जा सकता, जो नष्ट नहीं होता, जो खोया नहीं जा सकता; जिन्हें भी वह पद पाना हो, जिस पद के बिना आप हमेशा दीन-हीन मालूम पड़ेंगे--चाहे कुछ भी पा लें, आपकी दीन-हीनता चाहे कितने ही सम्राट के वस्त्रों में छिप जाए, दीन-हीनता ही रहेगी--जिस पद को पाकर सारी दीनता मिट जाती है और वस्तुतः व्यक्ति सम्राट होता है... !

स्वामी राम अपने को बादशाह कहते थे। जब वे अमरीका गए तो लोगों को बड़ी परेशानी होती थी। क्योंकि वे हमेशा अपने को कहते थे "राम बादशाह।" उन्होंने एक किताब लिखी, जिसका नाम हैः "राम बादशाह के छह हुक्मनामे-- सिक्स आर्डर्स फ्रॉम एम्परर राम।" अमरीका का प्रेसिडेंट उनसे मिलने आया था, वह जरा बेचैन हुआ। और उसने कहा कि और सब तो ठीक है, लेकिन आप बिल्कुल फकीर हैं, और अपने को बादशाह क्यों कहते हैं?
राम ने कहाः मैं इसीलिए बादशाह कहता हूं कि मुझे पाने को अब कुछ भी नहीं बचा है। जिसको पाने को कुछ बचा है, वह भिखारी है, अभी वह मांगेगा। जिसको पाने को कुछ नहीं बचा, वह सम्राट है। मुझे पाने को कुछ भी नहीं बचा है। मैं सम्राट इसलिए अपने को कहता हूं कि अब इस जगत में कुछ भी नहीं है, जो मेरी वासना का आकर्षण बन जाए। अब मैं मालिक हूं! मेरे पास कुछ भी नहीं है, लेकिन मैं हूं! यह मेरी मालकियत है, यही मेरा जिनत्व है।
महावीर कहते हैं, हर व्यक्ति जिनत्व को, सिद्धत्व को खोज रहा है। जैसे
हर सरिता सागर को खोज रही है, ऐसे हर चेतना, हर आत्मा सिद्धत्व को खोज रही है। दिशाएं भटक जाएं, मार्ग भूल-चूक से भरे हों, लेकिन खोज वही है। धन में भी हम वही खोज रहे हैं; पद में भी वही खोज रहे हैं; संसार में भी वही खोज रहे हैं; प्रेम में भी वही खोज रहे हैं। हम खोज रहे हैं कुछ और, पर जहां खोज रहे हैं, वहां वह मिलता नहीं, इसलिए हम पीड़ित हैं; इसलिए हम दुखी हैं।
जिस दिन हमें ठीक दिशा का बोध हो जाए और जिस दिन हम भीतर की तरफ चल पड़ें, और थोड़ी सी भी भनक पड़ने लगे कानों में सिद्धावस्था की, थोड़ा सा भी स्वर गूंजने लगे उस अनंत संगीत का, थोड़ी सी सुगंध आने लगे, थोड़ा सा प्रकाश स्पर्श करने लगे, फिर इस संसार का कोई मूल्य नहीं है।
जरा सा संस्पर्श, फिर जादू की तरह खींचने लगता है। एक बार व्यक्ति भीतर की तरफ मुड़ा कि खींच लिया जाता है। फिर केंद्र खुद ही खींच लेता है। लेकिन उस मुड़ने के लिए ध्यान के क्षण चाहिए। थोड़ी देर के लिए संसार से अपने को बंद करके भीतर की तरफ खुला छोड़ देना जरूरी है ताकि मौका मिले कि भीतर का चुंबक आपको खींच सके। थोड़ी देर के लिए भीतर के लिए अवेलेबल, उपलब्ध होना चाहिए--कि आप खुले हैं और राजी हैं।
चौबीस घंटे में एक घंटा निकाल लें। उस एक घंटे में कुछ भी न करें, आंख बंद करके बैठ जाएं और भीतर के अंधेरे से राजी हों। धीरे-धीरे, धीरे-धीरे प्रकाश आना शुरू होगा। और धीरे-धीरे प्रतिक्रमण शुरू होगा; चेतना भीतर मुड़ने लगेगी। बाहर कोई मार्ग न पाकर भीतर की तरफ मुड़ना अनिवार्य हो जाएगा। और एक किरण आपको मिल जाए, सिद्ध होने की एक झलक, फिर आपको कोई रोक न सकेगा। फिर कितने ही संसार चारों तरफ खड़े आपको बुलाते रहें, निर्मूल्य हैं। सब स्वप्न हो गया! जैसे नींद जिसकी टूट जाए, फिर स्वप्न कितना ही मधुर क्यों न रहा हो, वापस नहीं बुला सकता। ऐसे ही, जिसकी तंद्रा में एक किरण सिद्धावस्था की उतर आए, फिर संसार व्यर्थ है। फिर उसे नहीं बुला सकता। ऐसी ही चेतना का नाम संन्यस्त चेतना है। संन्यास प्रारंभ है, सिद्ध होना अंत है।

आज इतना ही।